पर्यावरण-विमर्श



आई.एन.सिंह ● डॉ. बृजेश सिंह









पर्यावरण विमर्श

इन्द्रनाथ सिंह/ डॉ. बृजेश सिंह

3

पर्यावरण-विमर्श

संपादन

इन्द्रनाथ सिंह/ डॉ. बृजेश सिंह

भावना प्रकाशन, दिल्ली-110091

G1

I.S.B.N.: **978-81-7667-271-9**

© सं. आई.एन. सिंह/ डॉ. बृजेश सिंह

मूल्य : 800.00

प्रकाशक : भावना प्रकाशन

109-A, पटपड़गंज, दिल्ली-110091

दूरभाष : 22756734

प्रथम संस्करण : 2012

आवरण : नीरज

शब्द संयोजक : पंकज ग्राफिक्स, दिल्ली-110092

मुद्रक : राधा आर्फसेट, दिलशाद गॉर्डन, दिल्ली

Paryavaran-Vimarsh Ed. ***by*** **I.N. Singh/ Dr. Brijesh Singh**

पर्यावरण चेतना की अलख जगाने वाले
युग मनीषी वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
आचार्य पं. श्रीराम शर्मा
को समर्पित

7

भूमिका

'पर्यावरण' का शाब्दिक अर्थ यदि 'चारों ओर की स्थिति' या 'आस-पास की परिस्थिति' से समीकृत है तो प्रकृति से जुड़कर यह वायु, जल, मृदा, पादप, प्राणी को समेटता हुआ मनुज के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास का प्रतीक प्रमाणित होता है। प्रकृति से जुड़कर ही मनुज पूर्णत्व को प्राप्त होता है। इसी दृष्टि से भारतीय संस्कृति में प्रकृति की क्रोड़ में साधना संयोजित होती थी, वन-प्रांतर में शिक्षा-दीक्षा नियोजित होती थी। मनुज की उपभोक्तावादी दृष्टि और अंडा देने वाली मुर्गी को एकबारगी मारने की प्रवृत्ति के कारण आज प्रकृति के प्रकोप-बतौर प्रदूषण की ऐसी भयावह स्थिति पैदा हो गई है कि मनुष्य का जीवन संकट से घिर गया है। ऋतु-परिवर्तन का चक्र भी परिवर्तित हो गया है जो जलवायु-संकट के रूप में विश्व-पर्यंत चर्चा के केंद्र में है।

प्रकृति की सुकृति संस्कृति है और विपरीत-कृति विकृति है। प्रकृति से जब-जब मानव ने छेड़छाड़ की तब-तब वह दुष्परिणाम भुगतने के लिए बाध्य हुआ। हम जिस डाल पर बैठे हैं, उसी को काट रहे हैं। प्रकृति तो देवी है क्योंकि वह देती है, धरा भी मां है जो नाना प्रकार के रत्नों को धारण करती है। सबकी कृपा वरदान के रूप में मानव को प्राप्त है, लेकिन शोषण और दोहन के क्रम में वह देवी पर जुल्म करने से बाज नहीं आता, मां के रत्नों को हड़पने के लिए धैर्य का मोहताज नजर नहीं आता। इसी कारण भूकंप आते हैं, सुनामी कहर का आगम होता है। औद्योगीकरण के प्रसार से 'क्लोरो-फ्लोरो कार्बन' की मात्रा नित्यप्रति बढ़ रही है। परिणामतः वातावरण की ऊपरी सतह पर अवस्थित ओजोन की जीवन-रक्षक पर्त पतली होती जा रही है और कई स्थलों पर इसके फटने तक के प्रमाण मिले हैं। इससे पराबैंगनी किरणों का विकिरण विस्तृत हो रहा है। फलतः नेत्र, चर्म व त्वचा के रोग व कैंसर के प्रकोप को फलने-फूलने का अवसर मिल रहा है।

भारतीय साहित्य में निर्दिष्ट है कि इस संसार में जो कुछ भी है, परमात्मा की देन के रूप में, प्रकृति के रूप में संस्थित है। धर्म-ग्रंथों में स्पष्ट निर्देश है कि प्रकृति का पोषण करके ही मानव शांति और सुख़ का आह्वान कर सकता है। वेदों में प्रकृति से परे किसी भी तत्व को महत्व नहीं दिया गया है, जबकि उपनिषदों में पर्यावरण-संरक्षण की तार्किक मीमांसा की गई है। वाल्मीकि रामायण में तो पृथ्वी द्वारा समय-समय पर प्रदत्त रत्नों की खान का उल्लेख है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने पर्यावरण का प्रादर्श ही प्रस्तुत कर दिया है—

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं।
खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा।
गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥

लोकसाहित्य में भी स्वस्थ पर्यावरण और प्रकृति के पर्यंक में लोकजीवन का लोकमंगल-स्वरूप लयमान है। गांव की गोरी तालाब के दर्पण में अपना मुखड़ा देखती है लेकिन आज ऐसा जल कहां देखने को मिलता है? गंगाजल तक को लोगों ने प्रदूषित कर दिया है। नगरों और महानगरों में सांस लेना दूभर हो गया है। महानगरों में तो 'ऑक्सीजन पॉर्लर' का प्रयोग प्रचलन में आ रहा है और ग्रामों को नगर व महानगर निगल रहे हैं। जल और वायु को परमात्मा या प्रकृति का वरदान माना गया है लेकिन यह भी प्रदूषित हो गया है। कुल मिलाकर पर्यावरण का प्रदूषण यत्र-तत्र-सर्वत्र व्याप्त है। इस दिशा में जन-चेतना जागृत करने की दृष्टि से पूरे विश्व में चिंता की लहर दौड़ चुकी है। इस राष्ट्रव्यापी समस्या से जूझने और अकादमिक आचार्यों, पटु प्राध्यापकों, समर्थ साहित्यकारों, विज्ञ वैज्ञानिकों, अग्रणी अभियंताओं और पर्यावरणविदों से संपर्क साधकर, विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् द्वारा दो राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठियों का आयोजन किया गया। इन शोध-आलेखों को संपादित कर और पांच प्रमुख प्रखंडों में विभक्त कर संपादकद्वय श्री इन्द्रनाथ सिंह वन-संरक्षक, बिलासपुर तथा डॉ. बृजेश सिंह वरिष्ठ साहित्यकार ने पर्यावरण-विमर्श का वृत्त विनिर्मित करके महत्वपूर्ण स्थापना दी है। दोनों संपादक क्रमशः विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष व राष्ट्रीय महामंत्री के रूप में पूरे देश में पर्यावरण जागरुकता पर एक अनुकरणीय पहल कर रहे हैं। इस दिशा में महत्वपूर्ण शोध-आलेखों का संग्रह आपके समक्ष निवेदित है। श्री इन्द्रनाथ सिंह और डॉ. बृजेश सिंह देश के प्रख्यात पर्यावरणविद्र् हैं तथा पर्यावरण-विमर्श को एक सशक्त विमर्श के रूप में जनचेतना जागृत करने का महती कार्य संपादित कर रहे हैं। डॉ. बृजेश सिंह ने पर्यावरण चेतना पर तीन सौ से अधिक गजलों का प्रणयन किया है। पर्यावरण की चिंता में जुटे सभी महानुभावों को इस विमर्श से जुड़ने का अवसर प्राप्त हो, यही इस ग्रंथ के प्रकाशन का उद्देश्य भी है।

शुभकामनाओं सहित!

–डॉ. विनय कुमार पाठक
एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट्. (हिंदी, भाषाविज्ञान)

सी-62, अज्ञेयनगर,
बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

९

आमुख

महामनीषी आचार्य पं. श्रीराम शर्मा ने समाज के आमूल-चूल परिवर्तन के लिए सात सूत्रीय आंदोलन का आह्वान किया है जिसमें एक प्रमुख सूत्र पर्यावरण चेतना है। आपने मानव-जीवन के साथ ही अन्य प्राणियों के कल्याण की कामना भी की है। आचार्य पं. श्रीराम शर्मा की प्रेरणा से अखिल भारतीय विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् का गठन राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण चेतना जागृत करने के महती उद्देश्य से किया गया है। आचार्य प्रवर द्वारा दिखाया मार्ग परिषद् का पाथेय है।

यद्यपि पर्यावरण चारों ओर के वातावरण को स्वच्छ रखने का संदेश संप्रेषित करता है तथापि मनुज की स्वार्थ और लोभी-वृत्ति ने प्रकृति के चहुंमुखी और बहुमुखी दोहन द्वारा आज जो प्रदूषण का संकट उपस्थित किया है, वह विश्व के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। जलवायु के परिवर्तन से भीषण संकट उपस्थित हो चुका है और बाजारवाद, भूमंडलीकरण और उत्तर-आधुनिकता के इस युग में हम विकास के नाम पर विनाश को ही आमंत्रित कर रहे हैं। आज पर्यावरण के प्रति समग्र जागरण जरूरी है, इसीलिए 'पर्यावरण-विमर्श' की उपादेयता युग की मांग बन चुकी है।

प्रकृति से हमारा रिश्ता चोली-दामन के रूप में रहा है। ऋषि-मुनियों ने इसी आधार पर जीवेत शरदः शतम् का उद्घोष किया और शुद्ध पर्यावरण को सुखी और शांत जीवन की पीठिका प्रमाणित किया। प्रकृति से अभिन्नता ही चेतना की शिखर यात्रा है, इससे दूर जाकर हमने अपने लिए भीषण संकट खड़ा कर लिया है। हम 'वन' में नहीं रह सकते तो 'उपवन' तो उपस्थित कर सकते हैं। जो हमारे उद्यम की परिधि में है, वह सब तो कर ही सकते हैं। इस तरह पर्यावरण प्राचीन विषय होते हुए भी आज की दृष्टि से अत्यधिक प्रासंगिक और सार्थक प्रतीत होता है। 'पर्यावरण-विमर्श' को साहित्य में प्रमुखता प्रदान करने की आवश्यकता इसीलिए अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है।

अखिल भारतीय विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् का उद्देश्य इसी आधार पर स्वतः-स्फूर्त स्थापित हुई। पर्यावरण पर प्रत्येक दृष्टि से विचार-विनिमय के लिए साहित्यकारों, प्राध्यापकों, अभियंताओं, वैज्ञानिकों और पर्यावरणविदों से परामर्श कर इस विमर्श को स्वरूप दिया गया। आचार्य पं. श्रीराम शर्मा ने जो सात प्रमुख आंदोलन चलाए उनमें पर्यावरण भी एक महत्वपूर्ण विषय था। आचार्य पं. श्रीराम शर्मा के जन्म शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में दो राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों का आयोजन किया गया। इसमें प्रथम दो-दिवसीय

राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी 15 एवं 16 जनवरी, 2011 को गायत्री शक्तिपीठ, बिलासपुर के कोने-कोने से आए विद्वानों के 180 शोध-आलेखों के शोध-सार का वाचन किया गया। पर्यावरण पर केंद्रित दो-दिवसीय राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी अखिल भारतीय विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद के प्रायोजकत्व एवं स्वामी स्वरूपानंद महाविद्यालय, भिलाई के आयोजकत्व में 15 एवं 16 अक्टूबर, 2011 को संपन्न हुई।

इन दोनों संगोष्ठियों के महत्वपूर्ण आलेखों को संपादित कर पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। अखिल भारतीय विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् की तृतीय राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी, जो जल संसाधन पर केंद्रित है, जल्द ही संपन्न करने का निर्णय लिया है। संभवतः इस ग्रंथ के प्रकाशन तक वह आयोजित हो चुकी होगी। जल संरक्षण पर प्राप्त महत्वपूर्ण आलेखों को पृथक् से प्रकाशित करने की योजना है।

आशा है पर्यावरण की चिंता करने वाले प्रत्येक मनुष्य के लिए यह 'पर्यावरण-विमर्श' ग्रंथ उपयोगी प्रमाणित होगा।

राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों के आयोजन में डॉ. विनय कुमार पाठक प्रख्यात भाषाविद्, डॉ. ए.एस. झाड़गांवकर, कुलपति डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, इं. जयंत पवार अधीक्षण अभियंता, इं. ए.के. यदु कार्यपालन अभियंता, इं.वी.के. श्रीवास्तव कार्यपालन अभियंता, इं. आलोक अग्रवाल कार्यपालन अभियंता एवं श्री ओ.पी. चौबे सहायक वन-संरक्षक के विशेष योगदान के लिए हम आभारी हैं।

–डॉ. बृजेश सिंह
साहित्यकार
राष्ट्रीय महामंत्री
अ.भा. विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद्
तिथि : 11/11/11 (शुक्रवार)

–इन्द्रनाथ सिंह
(वन-संरक्षक), बिलासपुर
राष्ट्रीय अध्यक्ष
अ.भा. विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद्

आचार्य श्रीराम शर्मा जन्म शताब्दी पर पर्यावरण-चेतना पर प्रथम राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी

गायत्री शक्तिपीठ बिलासपुर में पर्यावरण-चेतना पर दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी 15-16 जनवरी, 2011 को आयोजित

बिलासपुर/ विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् द्वारा 'पर्यावरण चेतना' पर आधारित द्विदिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी का आयोजन सभाकक्ष गायत्री शक्तिपीठ बिनोबा नगर, बिलासपुर में शुभारंभ अवसर पर मुख्य अतिथि श्री आई.एन. सिंह वन-संरक्षक, छत्तीसगढ़ शासन, अध्यक्षता भाषाविद् समीक्षक डॉ. विनयकुमार पाठक, विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री फणींद्र राव वन मंडलाधिकारी, बिलासपुर तथा पर्यावरणविद् श्री ललित कुमार सिंघानिया की गरिमामय उपस्थिति में मां गायत्री के चित्र पर पुष्प-समर्पित और पूजन-अर्चन कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया गया। आधार वक्तव्य में वरिष्ठ साहित्यकार और संयोजक राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी पर्यावरण चेतना, डॉ. बृजेश सिंह ने कहा कि दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी से विविध विचार निःसृत होंगे, जिससे पर्यावरण को संरक्षित करने की नयी दिशा मिलेगी। डॉ. बृजेश सिंह ने निर्दिष्ट किया कि आचार्य श्रीराम शर्मा द्वारा पर्यावरण पर सुझाए गए उपायों द्वारा ही विश्व का कल्याण संभव है। पर्यावरणविद् और 'पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स' के संपादक ललित कुमार सिंघानिया को पर्यावरण क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने पर पर्यावरण अलंकरण सम्मान से स्मृति चिह्न, श्रीफल-शाल पुष्पहार समर्पित किया गया। विशिष्ट अतिथि के उद्गार क्रम में वनमंडलाधिकारी श्री फणींद्रराव ने पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया। अध्यक्षीय उद्गार में भाषाविद् डॉ. विनय कुमार पाठक ने पर्यावरण और साहित्य के गहरे परिपार्श्वों को खंगालते हुए उसके अंतर्संबंधों आई.एन. सिंह ने कहा कि पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य करने पर और पर्यावरण संरक्षक के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी का आयोजन एक सार्थक पहलू तथा क्रांति का सूत्रपात साबित हुआ है। उद्घाटन सत्र का आभार प्रदर्शन ओ.पी. चौबे ने किया। 'पर्यावरण स्वरूप और अवधारणा' और साहित्य में पर्यावरण को चेतना प्रथम तकनीकी सत्र के अध्यक्ष मंडल में डॉ. सुरेश माहेश्वरी, अमलनेर, महाराष्ट्र एवं डॉ. दशरथ अग्रवाल की उपस्थिति में डॉ. डी.पी. अग्रवाल, इं. अमरनाथ त्यागी, प्रो. कावेरी दाभड़कर, ललित मिश्रा, प्रो. ईशा बेला लकड़ा, इं. संजय शर्मा, डॉ. जगदीश कुलदीप, अनिता सिंह, रेखा पालेश्वर, गीता नायक और भगवती यादव ने आलेख वाचन किए। संचालन इं. महेश शर्मा ने किया।

द्वितीय तकनीकी सत्र डॉ. इंद्रबहादुर सिंह (मुंबई), डॉ. मीना सोनी (झारसुगुड़ा), डॉ. कौशलेंद्र त्रिपाठी के समवेत अध्यक्ष-मंडल में इं. एम.के. जैन, डॉ. वीर अभिमन्यु सिंह,

12

डॉ. हरिराम निर्मलकर, करुणा सिंह, राजेंद्र कुमार वर्मा, डॉ. धनंजय मिश्रा, कृष्ण कुमार भट्ट 'पथिक', 'प्रो. चंद्रशेखर सिंह, डॉ. जगदीश कुलदीप, श्रीमती तुलसी तिवारी, एस.के. बेरीवाल, कु. अश्मिका तिवारी, इं. संजय शर्मा, जयति चटर्जी आदि ने शोध पत्रों का वाचन किया। संचालन इं. ए.के. यदु व आभार प्रदर्शन संजय त्रिपाठी ने किया। डॉ. बृजेश सिंह रचित 'पर्यावरण पर केंद्रित कुछ गजलों को प्रख्यात गजल गायक कृष्ण कुमार ने संगीत के साथ प्रस्तुति दी। डॉ. बृजेश सिंह की 1600 गजलों में 300 पर्यावरण चेतना पर केंद्रित हैं।

द्वितीय दिवस तृतीय तकनीकी सत्र डॉ. शरदेंदु शर्मा (दिल्ली), डॉ. श्याम निर्मम, गाजियाबाद तथा डॉ. हंसा शुक्ला (भिलाई) के अध्यक्ष मंडल में डॉ. डी.एस. ठाकुर, अनिता सिंह, रेखा पालेश्वर, गीता तिवारी, रेखा दुबे, सुनीता बाजपेयी, दिव्या शुक्ला, प्रो. निहारिका देवांगन, रमाकांत सिंह चंदेल, डॉ. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर, डॉ. ऊषा तिवारी, प्रो. रंजना तिवारी, स्नेहलता निर्मलकर, डॉ. चंद्रावती नागेश्वर, आशा तिवारी, डॉ. उमेश साहू, आस्था दीवान, तरुणधर दीवान, सुनील कुमार तिवारी, द्वारिका पटेल, डॉ. राम मनोहर निर्मलकर, डॉ. राजेश सिंह परिहार, कांति कश्यप, इं. एस.के. वर्मन, सीताराम अग्रवाल आदि विद्वानों ने शोध पत्रों की प्रस्तुति की। कार्यक्रम का संचालन डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह व आभार प्रदर्शन एस.बी. द्विवेदी ने किया।

सारतः सभी प्रमुख वक्ताओं ने पर्यावरण के क्षेत्र में जन-जागरूकता को बढ़ावा देने पर बल देते हुए पर्यावरण के क्षेत्र में सर्वेक्षण से संबंधित विविध वैज्ञानिक एवं प्राकृतिक पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए शोध सार का वाचन किया। अध्यक्षीय मंडल के विद्वान् वक्ताओं ने पर्यावरण के क्षेत्र में राष्ट्रीय संगोष्ठी के माध्यम से जन-जागरण की बात कही। पर्यावरण विषय पर विद्वानों द्वारा पढ़े गए आलेखों का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत करते हुए संस्थाओं से इस श्रृंखला को आगे बढ़ाने का आग्रह अध्यक्ष मंडल द्वारा किया गया।

तृतीय सत्र के समापन उपरांत समापन सत्र के मुख्य अतिथि ए.एस. झाड़गांवकर, कुलपति, डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, अध्यक्ष आई.एन. सिंह, वन-संरक्षक, विशिष्ट अतिथियों में सी.पी. सिंह, मुख्य प्रबंधक गायत्री शक्तिपीठ बिलासपुर, वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. विमल कुमार पाठक, नाइसटेक के चेयरमैन, रविंद्र प्रताप सिंह की उपस्थिति में लेखक डॉ. इंद्रबहादुर सिंह का लिखित निबंध संग्रह 'कुंठित केर हुलसित बेर' एवं लेखिका डॉ. मीना सोनी झारसुगुड़ा उड़ीसा द्वारा लिखित पुस्तक 'प्रेमचंद और फकीर मोहन के उपन्यासों में समाज के बदलते रूप' का विमोचन अभ्यागतों द्वारा किया गया।

सी.पी. सिंह ने पर्यावरण समस्या से संबंधित समस्याओं के निदान के लिए आचार्य श्रीराम शर्मा के सुझाए गए मार्ग पर सबको आगे आने की आवश्यकता पर बल दिया। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. विमल कुमार पाठक ने छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के माध्यम से पर्यावरण के संरक्षण-संवर्धन को रेखांकित किया। संयोजक, राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी डॉ. बृजेश सिंह ने सभी उपस्थित विद्वानों और साहित्यकारों को धन्यवाद दिया कि आपके निष्कर्ष से पर्यावरणीय संरक्षण-संवर्धन की दिशा में कई प्रस्थापनाएं सामने आईं। डॉ. हंसा शुक्ला, भिलाई एवं डॉ. मीना सोनी का विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् द्वारा आत्मीय सम्मान

13

किया गया। इस अवसर पर डॉ. विमल पाठक व सी.पी. सिंह को संस्कृति रत्न से तथा डॉ. ए.एस. झाड़गांवकर को पर्यावरण रत्न से सम्मानित किया गया।

मुख्य अतिथि डॉ. ए.एस. झाड़गांवकर ने पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विषय पर सभी वर्गों से संरक्षण हेतु व्यापक प्रचार-प्रसार करने का आह्वान किया तथा पर्यावरण की हो रही क्षति पर अपने महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए। समापन सत्र के अध्यक्ष आई.एन. सिंह ने कहा कि पर्यावरण पर विश्वस्तरीय प्रयास चल रहे हैं, हमें भी इसमें विशिष्ट भूमिका का निर्वहन करना होगा, ताकि आगामी पीढ़ियों के लिए मार्ग सुगम हो सके। दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी के समीक्षक/ भाषाविद् डॉ. विनय कुमार पाठक एवं संगोष्ठी के संयोजक साहित्यकार डॉ. बृजेश सिंह द्वारा पर्यावरण के क्षेत्र में किए जा रहे सामाजिक, शैक्षिक एवं साहित्यिक प्रयासों की अतिथियों ने सराहना की, साथ ही प्रचार-प्रसार के साथ साहित्यिक कृतियों के प्रकाशन में किए जा रहे कार्यों को अनुपमेय बताया। दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में लगभग 180 शोध आलेखों का वाचन साहित्यकारों, प्राध्यापकों और पर्यावरणविदों द्वारा किया गया। कार्यक्रम में 300 से अधिक प्रतिभागी और श्रोतागण उपस्थित थे।

आचार्य श्रीराम शर्मा जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर दो राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियां आयोजित कर शोध-ग्रंथ का प्रकाशन हेतु अखिल भारतीय विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् द्वारा निर्णय लिया गया। पर्यावरण पर द्वितीय राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी का आयोजन स्वामी स्वरूपानंद महाविद्यालय में कराए जाने हेतु, डॉ. हंसा शुक्ला प्राचार्या ने प्रस्ताव दिया, जिसे अखिल भारतीय विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् ने सहमति प्रदान की तथा 15-16 अक्टूबर, 2011 को आयोजित करने का निर्णय लिया गया। दोनों संस्थानों के संयुक्त तत्वावधान में शोध संगोष्ठी का आयोजन संपन्न हुआ।

डॉ. बृजेश सिंह जो आचार्य शर्मा के शिष्य हैं, उनका विश्वास है कि गुरुदेव के सात सूत्रिय आंदोलन के क्रियान्वयन से विश्व का कल्याण होगा। सात सूत्रिय आंदोलन के एक प्रमुख सूत्र पर्यावरण-चेतना पर समर्पित होकर कार्य करने का निश्चय डॉ. बृजेश सिंह ने किया है। पर्यावरण परिषद् का गठन इसी महती उद्देश्य के प्रतिपूर्ति के लिए किया गया है।

आचार्य श्रीराम शर्मा जन्म शताब्दी पर पर्यावरण-चेतना पर द्वितीय राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी

स्वामी स्वरूपानंद महाविद्यालय, भिलाई में पर्यावरण-चेतना पर दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी 15-16 अक्टूबर, 2011 को आयोजित

स्वामी स्वरूपानंद इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, हुड़को भिलाई के पर्यावरण सेल एवं अखिल भारतीय विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् के संयुक्त तत्वावधान में 'पर्यावरण चुनौतियां एवं समेकित विकास' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी का उद्घाटन समारोह श्री आई.एन. सिंह, वन-संरक्षक, बिलासपुर के मुख्य आतिथ्य में संपन्न हुआ। अध्यक्षता डॉ. विनय कुमार पाठक ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. बृजेश सिंह, वरिष्ठ साहित्यकार, जगद्गुरु शंकराचार्य कॉलेज ऑफ एजुकेशन के डायरेक्टर डॉ. बी.एन. शर्मा, महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. श्रीमती हंसा शुक्ला उपस्थित हुए। इस अवसर पर सोविनयर एवं विकास संस्कृति त्रैमासिक पत्रिका के पर्यावरण अंक का विमोचन किया गया।

कार्यक्रम के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कार्यक्रम की संयोजिका श्रीमती निहारिका देवांगन, विभागाध्यक्ष वनस्पति शास्त्र ने कहा, "हमारे सामने अनेक पर्यावरणीय चुनौतियां मौजूद हैं, परंतु पर्यावरणीय क्षति एवं समस्याओं के कारण विकास की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता, तो दूसरी ओर जीव जगत् पर बढ़ते संकट को भी अनेदखी नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में पर्यावरण को बचाते हुए सतत् विकास आवश्यक है। आज हमारी आवश्यकता 'विनाश रहित विकास' की है।"

प्राचार्य डॉ. हंसा शुक्ला ने अपने उद्बोधन में कहा, "ग्लोबल वार्मिंग भावी पीढ़ी के लिए खतरे के संकेत हैं। हम पर्यावरणीय क्षति के लिए राज्य, केंद्र सरकार व स्वयंसेवी संस्था को दोषी नहीं ठहरा सकते, जब तक व्यक्तिगत जिम्मेदारी नहीं उठाते, हममें पर्यावरणीय नैतिकता का विकास नहीं होता, तब तक पर्यावरणीय क्षति को नहीं रोक सकते।"

डॉ. शर्मा ने कहा, "कंक्रीटों के जंगल में बसने शुरू कर दिए है, क्योंकि जंगल कटते जा रहे हैं।" विशिष्ट अतिथि डॉ. बृजेश सिंह ने कहा कि "आचार्य श्रीराम शर्मा जन्म शताब्दी वर्ष में पर्यावरण चेतना पर दो राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठियों का निर्णय लिया गया था, पर इस कड़ी में यह दूसरी राष्ट्रीय संगोष्ठी है।"

श्री बृजेश सिंह ने अपने आधार वक्तव्य में कहा, "भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के प्रति पूजा का भाव निहित है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के तत्व, पृथ्वी, अग्नि, वायु और जंगल सबको देवता माना गया, उनकी पूजा की गई। इसके पीछे पर्यावरण

15

संरक्षण का भाव निहित है। उन्होंने घोषणा की शोध-संगोष्ठी में पढ़े गए श्रेष्ठ शोध पत्रों को दिल्ली से शोध ग्रंथ के रूप में प्रकाशित करवाकर समस्त विश्वविद्यालयों में वितरित करवाएंगे।'' डॉ. बृजेश सिंह ने निर्दिष्ट किया कि युग ऋषि आचार्य श्रीराम ने अपने सात आंदोलनों में पर्यावरण को प्रमुख स्थान प्रदत्त किया है।

प्रथम सत्र के मुख्य वक्ता डॉ. विनय कुमार पाठक ने कहा, ''ईश्वर ने वन बनाया, मनुष्यों ने उपवन बनाया, जिससे शुद्ध हवा मिलती रहे।'' उन्होंने पर्यावरण प्रदूषण का कारण मानव की भोगवादी प्रवृत्ति को बताया व कहा अगर हम चार रोटी खाते हैं, यह हमारी प्रकृति है, 6 खाते हैं यह विकृति है, 2 खाते हैं तथा दो अन्य को देते हैं, यह हमारी संस्कृति है। अगर हम प्रकृति का इतना दोहन करें कि अपना विकास करें व अपनी पीढ़ी के लिए बचाकर रखें, यही भारतीय संस्कृति और पर्यावरणीय चेतना है। श्री आई.एन. सिंह ने प्रथम सत्र की अध्यक्षता करते हुए कार्यक्रम का विश्लेषण प्रस्तुत किया।

द्वितीय सत्र के मुख्य वक्ता श्री इंद्रबहादुर सिंह, प्राचार्य एस.एन. भगवान सिंह महाविद्यालय, पतारकला, मिर्जापर (उ.प्र.) थे तथा श्री संतोष खरे, एन.जी.ओ., एम.पी. विज्ञान सभा ने की।

प्रथम एवं द्वितीय सत्र में श्रेष्ठ 35 शोध पत्र पढ़े गए, जिनमें से निम्न के शोध पत्र विशेष से सराही गई–

आरजु राईन, बी.एड. छात्रा–An approach to deal with global warming.

नरेश साहू–नगरीकरण की दौड़ एवं पर्यावरणीय चुनौतियां छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर के विशेष संदर्भ में विषय पर हाईटेक प्रस्तुति दी।

कृष्ण कुमार भट्ट 'पथिक'–मिनरल वाटर गांव-देहात, जंगल तक (संरक्षक छ.ग. शा. राजपत्रिक अधिकारी, बिलासपुर)

डॉ. राजेश कुमार मानस (बिलासपुर से)–पर्यावरण हम और हमारी जिम्मेदारी

डॉ. कांति कुमार सिंहा–प्राकृतिक स्रोतों का संरक्षण एवं पर्यावरण

विवेक तिवारी (बिलासपुर से)–प्रदूषित पर्यावरण बिगड़ता जीवन

प्रो. चंद्रशेखर सिंह, विभागाध्यक्ष हिंदी शा. विज्ञान महा. मुंगेली

स्वराज तिवारी, संयोजक इको-क्लब मुंगेली–पर्यावरण नैतिकता

दादूलाल जोशी (शोध छात्र), राजनांदगांव, डॉ. श्रीमती भावना पांडेय, भिलाई, हेमलाल वर्मा, गुंडरदेही, सतीशचंद्र खंग, संजू सिंह, संगोष्ठी में देशभर से आए पर्यावरणविद् साहित्यकार, प्राध्यापक, शोधार्थी सहित महाविद्यालय के समस्त प्राध्यापक/ प्राध्यापिकाएं एवं छात्र-छात्रा सम्मिलित हुए। कार्यक्रम में मंच संचालन सहायक प्राध्यापक श्रीमती नीलम गांधी ने किया।

स्वामी स्वरूपानंद इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, हुड़को भिलाई के पर्यावरण सेल एवं अखिल भारतीय विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद् के संयुक्त तत्वावधान में 'पर्यावरण चुनौतियां एवं समेकित विकास' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी का समापन समारोह श्री सुब्रत साहू, सचिव, छत्तीसगढ़, शासन खेल, संस्कृति एवं पर्यटन के मुख्य आतिथ्य में हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता गंगाजली शिक्षण समिति के अध्यक्ष श्री

आई.पी. मिश्रा ने की। कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. विनय कुमार पाठक, प्राचार्या डॉ. श्रीमती हंसा शुक्ला उपस्थित हुईं।

समापन सत्र में संयोजिका श्रीमती निहारिका देवांगन, विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र ने सत्रों से संबंधित एक प्रतिवेदन तथा परिचर्चा से उभरे बिंदुओं को अनुशंसा स्वरूप प्रस्तुत किया।

प्राचार्या डॉ. शुक्ला ने अपने उद्‌बोधन में कहा, 'जल और वायु को हमें इस तरह उपयोग करना पड़ेगा, जिससे वे विनाश का कारण न बनें।' उन्होंने आग्रह किया कि पर्यावरण संरक्षण से संबंधित जितने भी बिंदु हैं, वे सभागार तक न सिमटकर रह जाए, अपितु संगोष्ठी के बाहर भी इसे अमल में लाएं, तभी संगोष्ठी सफल होगी।

डॉ. पाठक ने पर्यावरण संरक्षण के लिए वनोत्सव मनाने की बात कही और बताया कि प्राचीनकाल में मदनोत्सव मनाया जाता था, इस अवसर पर स्त्रियां वृक्षों की पूजा कर उनसे अपनी कामना पूर्ति के लिए प्रार्थना करती थी। इसके पीछे पर्यावरण संरक्षण की भावना ही थी।

श्री मिश्रा ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा, 'पर्यावरण प्रदूषण के कारण ओजोन परत में छेद हो गया है और यह लगातार बढ़ता ही जा रहा है, पर प्रदूषण दूर करने की जिम्मेदारी हम स्वयं न लेकर दूसरों को देना चाहते हैं। अपनी सुविधाओं में कोई कटौती नहीं करना चाहते।'

अपने आतिथ्य उद्‌बोधन में श्री सुब्रत साहू ने कहा कि पर्यावरण में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना है, वह देश-प्रदेश की सीमा नहीं जानता। हम जिस हवा में सांस ले रहे हैं, उसकी कोई सरहद नहीं है। जो हवा अमेरिका में बह रही है, वह यहां भी बह रही है। अतः पर्यावरण संरक्षण हम सबकी जिम्मेदारी है। आजकल फल व सब्जियां भी प्रदूषित हो गई है, क्योंकि उगाने से लेकर पकाने की प्रक्रिया में अनेक रासायनिक खाद एवं केमिकल का प्रयोग किया जाता है। श्री साहू ने सॉफ्ट ड्रिंक एवं मोबाइल के बढ़ते उपयोग पर चिंता व्यक्त की और कहा मोबाइल के उपयोग से इलेक्ट्रो मैगनेटिक बेव निकलती है, वह मनुष्य के लिए बहुत घातक है।

तृतीय सत्र में मुख्य वक्ता डॉ. पीयुष कांत पांडेय, प्राचार्य वी.आई.टी. कॉलेज, रायपुर, ने पृथ्वी के विकास की प्रक्रिया को 24 घंटे में बांटते हुए हर घंटे में किस प्रकार विकास हुआ, इसकी रोचक जानकारी दी। सत्र अध्यक्ष डॉ. बी.बी. नांदेकर, विभागाध्यक्ष, वनस्पतिशास्त्र, नागपुर, विश्वविद्यालय महाराष्ट्र ने 'इंटरलिंकिंग ऑफ इंडियन रिसर्च' पर अपने व्याख्यान देते हुए सूखे से बचने के लिए भारत की सभी नदियों को आपस में जोड़ने की बात कही।

चतुर्थ सत्र के मुख्यवक्ता डॉ. पी.के. श्रीवास्तव और प्रो. विश्वनाथ यादव, तामस्कर शासकीय महाविद्यालय, दुर्ग ने बताया पृथ्वी का तापमान बढ़ना आतंकवाद से ज्यादा खतरनाक कहा है। और उन्होंने बताया कि 1/2 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान बढ़ने से गेहूं की फसल 17 प्रतिशत कम हो जाती है।

सत्र अध्यक्ष डॉ. अनिता सावंत प्रदूषण बोर्ड की सदस्य ने पर्यावरण संरक्षण एवं जैव विविधता के बारे में व्यावहारिक जानकारी दी और बताया घरेलू कचरा उठाने वाले

17

व्यक्ति बहुत अधिक प्रदूषण का शिकार होते हैं, क्योंकि कचरा ले जाने वाली गाड़ी खुली होती है और कचरा सड़ने से निकलने वाली गैसों से श्रमिक अनेक बीमारियों के शिकार हो सकते हैं। विशेष वक्ता श्री शशिकांत द्विवेदी, अध्यक्ष कॉपरेटिव बैंक, राजनांदगांव ने संगोष्ठी के माध्यम से सरकार से आग्रह किया कि सरकार ऐसी योजना बनाए कि प्रत्येक बेटी के जन्म पर दंपति पांच वृक्ष सागौन, साल आदि का लगाए व लड़की की शादी के समय उसे बेचकर पैसा लड़की के विवाह हेतु दे दिया जाए व लड़के के जन्म पर पांच फलदार वृक्ष लगाए। लड़के की नौकरी में इसके लिए पांच बोनस अंक मिले, अगर यह नियम लागू किया जाता है तो वृक्षारोपण में बहुत सहायता मिलेगी। उन्होंने सरकार को इस संदर्भ में ज्ञापन भी सौंपा।

इस सत्र में 30 से अधिक शोत्र पत्र पढ़े गए, जिसमें से मुख्यतः डॉ. शीला शर्मा, शिल्पा माहेश्वरी और श्रीमती तृप्ता कश्यप के शोध पत्रों को सराहा गया।

कार्यक्रम की सहसंयोजिका स.प्रा. श्रीमती श्वेता दवे, बायोटेक विभाग ने बताया कि कार्यक्रम में 150 से अधिक प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यक्रम में महाविद्यालय एवं अन्य महाविद्यालय से आए प्राध्यापक, पर्यावरणविद् शोधार्थी एवं विद्यार्थी बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। कार्यक्रम में मंच संचालन श्रीमती नीलम गांधी, विभागध्यक्ष वाणिज्य एवं श्रीमती नीहारिका देवांगन, विभागाध्यक्ष वनस्पतिशास्त्र ने किया। आभार प्रदर्शन स.प्रा. श्रीमती श्वेता दवे ने किया।

19

अनुक्रम

(अ) भारतीय चिंतन और पर्यावरण

(आ) वैचारिक वृत्त

(इ) प्रदूषण

(ई) जल संरक्षण व वन प्रबंधन

23

(उ) साहित्य और पर्यावरण चेतना

24

(अ)

भारतीय चिंतन और पर्यावरण

भारतीय चिंतन : पर्यावरणीय-चेतना का स्रोत

डॉ. विनयकुमार पाठक

जले विष्णुः थले विष्णुः विष्णुः पर्वत मस्तके।
ज्वाला माला कुले विष्णुः सर्वे विष्णुमयं जगत ॥

युगों से चला आ रहा भारतीय चिंतन और परंपरा प्रकृति से तादात्म्य और उसकी महिमा को हक दरकिनार नहीं कर इस वैज्ञानिक युग में प्रकृति की ही, जो चर्चा है—

'पर्यावरण' शब्द 'अनावरण' में 'परि' उपसर्ग—संश्लिष्ट से निर्मित है, जिसका शाब्दिक अर्थ चारों ओर से ढंकना, आच्छादन या घेरा है। डॉ. बद्रीनाथ कपूर इसकी वैज्ञानिक परिभाषा 'आस-पड़ोस' की परिस्थितियां और उसका प्रभाव से समीकृत करते हैं।[1] 'परि' संस्कृत का उपसर्ग है, जिसका अर्थ 'अच्छी तरह' और 'आच्छादन' भी है।[2] आवरण का शाब्दिक अर्थ ढंकना, छिपना, घेरना, चहारदीवारी है।[3] यद्यपि शाब्दिक अर्थ से इसका पूर्ण अभिप्राय प्रकट नहीं होता, तथापि इसका मूल अर्थ इसमें समाकृत है।

'पर्यावरण' नवनिर्मित पारिभाषिक शब्द है, लेकिन इसके पूर्व, इसके व्यवहार हेतु यहां 'परिधि' और 'परिवेश' का प्रचलन रहा है। अथर्ववेद में 'परिधि' अधिक विस्तृत रूप में स्वीकृत है। गो, अश्व एवं पशु आदि सभी प्राणियों के जीवन के लिए एक परिधि अत्यावश्यक है—

सर्वो वै तत्र जीविति गौरवः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधि जीवनायकम् ॥[4]

मानव-कृत पर्यावरण आधुनिक समस्या है। पहले न तो जनसंख्या की प्रचुरता थी और न उसके प्रदूषित होने का आसन्न संकट था। यही कारण है कि 'पर्यावरण' शब्द का प्रचलन नया है। हमारे ऋषि-मुनि जानते थे कि पृथ्वी, जल, पावक, गगन, समीर—रूपी पंचतत्वों से यह शरीर निर्मित है।[5]

'पर्यावरण' अंग्रेजी के 'इन्वायरमेंट' से समीकृत है, जिसका आशय है, 'ऐसी क्रिया जो घेरने के भाव को सूचित करे।'[6] डॉ. रघुवीर ने इसी शब्द के आधार पर प्रथम प्रयोक्ता के रूप में 'पर्यावरण' शब्द को गढ़ा।[7] स्पष्ट है कि हमारे चारों ओर जो विराट प्राकृतिक परिवेश विस्तृत है, वही पर्यावरण है। यह हमें प्रभावित करता है। अतः इसका प्रदूषणरहित होना जीवन के लिए अनिवार्य है। वेदकाल में ही ऋषि-मुनियों ने इसमें संतुलन बनाए रखने का हर संभव प्रयास किया है तथा अंतरिक्ष से पृथ्वी-पर्यंत शांति बनाए रखने की भी कामना की थी। ऋषि-मुनियों की यह मंगलकामना पर्यावरण-संतुलन का श्रेष्ठ उदाहरण है। क्योंकि

इसके बिना जीवन में सुख-शांति असंभव है। अंत में तीन बार शांति का प्रयोग क्रमशः दैहिक, दैविक व भौतिक संताप के निराकरण के लिए ही निर्दिष्ट है। प्रो. रामआसरे चौरसिया के अनुसार, पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन संपूर्ण शक्तियों-परिस्थितियों का योग है, जो मानव को परावृत्त करती हैं तथा उसके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं।[8] थल, जल और वायु में ही जीवनमंडल है, जो जीवन की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक और जीवीय परिस्थितियों का योग है।[9] ऋषि-मुनियों ने जिस पर्यावरण संतुलन को बनाए रखा था, वह हमारी दिनचर्या थी। इसी दृष्टि से सौ वर्ष तक सार्थक जीवन व्यतीत करने की आधारशिला रखी गई थी।

वैज्ञानिक युग की समृद्धि ने हमें सुविधाभोगी और भौतिकवादी बना दिया है। परिणामतः एक ओर यदि प्रकृति के प्रभाव व पर्यंक से हम दूर होते गए तो दूसरी ओर कंक्रीट का जंगल उगाते चले गए। स्वार्थ के लिए वनों को काटना, जनसंख्या-विस्फोट का आह्वान करना हमारा जीवन-क्रम हो गया। ठंड में गुनगुने पानी से नहाना, गर्मी में वातानुकूलित कमरे में रहना और हल्की वर्षा में भी रेनकोट पहनकर निकलना हमें प्रकृति से दूर ले जाता है। ऋतु-परिवर्तन के अनुरूप हमारे शरीर पर भी प्रकृति का प्रभाव पड़ना जरूरी है, अन्यथा प्रतिरोधक शक्तियों का क्षरण होता है। इसीलिए हमारा शरीर भीग जाने या हल्की ठंड लग जाने पर छींक, खांसी, बुखार को गले लगाता है तथा ग्रीष्म में 'सिरदर्द' और 'सनस्ट्रोक' की शिकायत प्रायः हो जाती है। हमारी काया वर्षा में भीगते, ठंड में ठंडक और गर्मी में ताप महसूस कर प्रतिरोधी शक्ति प्राप्त कर रोग से लड़ने लायक बनाती है, लेकिन हम प्रकृति से निरंतर दूर होकर नानाविध बीमारियों को साथी बनाते हैं। जंगल कटने से वर्षा कम होती है, जिसके कारण क्रमशः गर्मी बढ़ती है, फसल कम होती है। फसल के अधिक उत्पादन के लिए रासायनिक खाद का उपयोग किया जाता है, जो जल और जमीन को बर्बाद कर देती है। फ़सल में नानाविध विकृतियां आ जाती हैं तथा धीरे-धीरे धरती अनुर्वर होने लगती है।

हमारा देश कृषि-प्रधान है, लेकिन कुटीर उद्योग के सहयोग बतौर इसे आत्मनिर्भर बनाना है। बृहत्काय उद्योगों के आगमन से ध्वनि, वायु और जल-प्रदूषण का संकट गहराया है। अधिक जनसंख्या वाले हमारे देश में उंगलियों की कला वाले लघुउद्योगों की जरूरत है, न कि हाथ काटने वाले वृहद् उद्योगों की। यदि एक ओर अर्थव्यवस्था चरमरा रही है तो दूसरी ओर पर्यावरण का संतुलन भी नष्ट हो रहा है। भोपाल के अमेरिकी कारबाईड कारखाने की गैस-त्रासदी मानवीय विनाश का प्रत्यक्ष उदाहरण है। इससे वायुमंडल तो दूषित हो ही रहा है, हमें सांस लेने में परेशानी होती है, परिणामतः क्षय रोग, फेफड़े और हृदय की गंभीर बीमारियों को यह जन्म देता है। जल तो पूरी तरह प्रदूषित है और पतित-पावनी गंगा भी मैली हो गई है। इस तरह जिस स्थल में हम रहते हैं, वह स्वस्थ और संतुलित नहीं है, क्योंकि प्रकृति से हम कट रहे हैं। थल, जल और वायु के प्रदूषण से जीवन संकट से घिर रहा है और उसका कारण हम स्वयं हैं। हमने ही प्रकृति को हटाकर कृत्रिमता को आरोपित किया है, पर्यावरण की उपेक्षा कर प्रदूषण से नाता जोड़ा है।

प्रकृति तो सब कुछ देती है, लेकिन मनुष्य को धैर्य कहां है? उसे प्रतिदिन सोने का अंडा देने वाली मुर्गी नहीं चाहिए? वह दोहन करके सभी कुछ अभी-का-अभी प्राप्त करना

चाहता है। प्रकृति तो स्वतः समय पर रत्नों की खान को मानव को भेंट कर देती है, लेकिन हम तत्काल सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहते हैं। भूकंप का प्रकोप हमें झेलना पड़ता है। आज न जल पीने के लायक रह गया है और न वायु सांस लेने के लायक। कब तक हम अपने को संकट और समस्या के मुंह में धकेलते रहेंगे? प्रकृति के संतुलन को बनाए रखना, प्रकृति के पर्यंक में बने रहना और ॠतु-चक्र के नियमों में उंगली न कर उसके अस्तित्व को बचाए रखकर ही मद-सुगंध-समीकरण तो प्राप्त होगा ही, स्वच्छ भूमि व जल भी उपलब्ध होगा। इसके लिए रासायनिक खाद के उपयोग को रोकना, ध्वनि, वायु और जल को दूषित करने वाले संयंत्रों और उद्योगों को रोकना होगा। यह विडंबना ही है कि हमारे देश में ऐसे विदेशी संयंत्र लगाए जाने की परंपरा है, जिसका उपयोग वैज्ञानिक अपने देश में नहीं करते। आज प्रदूषणरहित यंत्रों के प्रजनन की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान गया है। इस दिशा में जन-जागृति आवश्यक है। इसके साथ ही फसल में हम उत्पादकता की जगह गुणवत्ता देखें और जनसंख्या-शिक्षा का प्रसार कर प्रकारांतर में पर्यावरण-संरक्षण की दिशा में पहल करें। इससे ही हमारा और जीवन का विकास संभव होगा। हमारे चिंतन के साथ पर्यावरण-संरक्षण तमाम स्तरों पर आवश्यक है। साहित्य में समाज से ही सब कुछ आता है, ऐसी स्थिति में साहित्यकार को जागरूक प्रहरी की भांति पर्यावरण-रक्षा हेतु उद्यत होकर कार्य करना होगा, ताकि समाज का संपूर्ण विकास और भविष्य मंगलकारी बन सके।

संदर्भ

1. वैज्ञानिक परिभाषा कोश, डॉ. बद्रीनाथ कपूर, पृ. 325
2. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुय, तारिणीश झा, पृ. 648
3. द्रष्टव्य—वृहद् हिंदी कोश, कालिका प्रसाद, पृ. 136
4. अथर्ववेद, 8/2/55
5. शब्द कल्पद्रुम, तृतीय भाग, पृ. 64
6. द्रष्टव्य—वैज्ञानिक परिभाषा कोश, पृ. 123
7. वृहद् हिंदी कोश, कालिका प्रसाद, पृ. 1025
8. द शार्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 619
9. द्रष्टव्य—पर्यावरण तथा प्रदूषण, अरुण चित्रलेखा रघुवंशी, पृ. 1

निदेशक प्रयास प्रकाशन,
सी-62, अज्ञेय नगर,
बिलासपुर (छ.ग.)

वेदों में पर्यावरण चिंता

डॉ. प्रणव

वेद शब्द से वह ज्ञान अभिप्रेत है, जिसको सर्वप्रथम ऋषि-महर्षियों ने खोजा अथवा साक्षात्कृत किया। वेद संपूर्ण वाङ्मय का बोधक शब्द है। ऋषियों ने जिस परमात्मास्वरूप ज्ञान का साक्षात्कार किया, वह दीप्तिपुंज वेद, भारतीय ज्ञान गंगा का उत्स है, जो अपनी दिव्य आभा से स्वयं भासित है।

वेद अपौरुषेय और अनादि हैं, इसलिए वे स्वयंभू, स्वयं प्रकाश और स्वतः प्रमाण हैं। भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण है। अपने प्रातिम चक्षु के सहारे साक्षात्कृत धर्म ऋषियों द्वारा अनुभूत अध्यात्म शास्त्र के तत्वों की विशाल शब्दराशि का ही नाम वेद है। लौकिक वस्तुओं का साक्षात्कार करने के लिए जिस प्रकार नेत्र की उपयोगिता है, उसी प्रकार अलौकिक तत्वों का रहस्य जानने के लिए वेद की उपादेयता है। इष्टप्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के लिए कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान स्वयं कराता है।

प्रकृति, भारतीयों के लिए सदा से पूजनीय रही है, चाहे कांति प्राप्ति के लिए सूर्य का पूजन हो, चाहे नारी को स्वामी की दीर्घायु का वरदान मांगना हो या निर्धन को कुबेर बनने का स्वप्न अथवा विद्यार्थी को विद्या प्राप्ति की कामना अथवा हमें जीवन प्रदान करने वाली नदियों की उपासना हो, इन सबके लिए हमें वेदों की शरण में ही जाना पड़ता है। वेदों में वर्णित नदी, सागर, सूर्य, चंद्र, जल और वायु—ये सभी हमारी आस्था के स्रोत रहे हैं। हमने तो वृक्षों से वरदान मांगना भी अपनी संस्कृति में समाहित कर लिया है। प्रकृति के अनेक वृक्षों का समय-समय पर पूजन करके हम यश और कीर्ति के अनुगामी बनते हैं।

अथर्ववेद में वृक्षों एवं वनों को संसार के समस्त सुखों का स्रोत कहा गया है। वृहदारण्यकोपनिषद् में बताया गया है कि वृक्षों में जीवनी शक्ति है। वन में व्याप्त महर्षियों के गुरुकुलों और आश्रम ने ही भारतीय ज्ञान-प्रणाली ने संसार की संपन्नता को विकसित किया। वनों में पले भरत जैसे वीरों ने शेर के दांत गिने। वृक्षों की अपूर्व जीवनदायिनी शांति के कारण वृक्षों को काटना वैदिक धर्म में पातक माना गया है, क्योंकि वृक्ष स्वयं बड़े परोपकारी होते हैं। वन हमारी संपदा रहे हैं और उसके पोषक तत्वों की रक्षा करते हैं। वृक्ष पर्वतों को थामे रखते हैं, वे तूफानी वर्षा को दबाते हैं तथा नदियों को अनुशासन में रखते हैं तथा पक्षियों का पोषण कर पर्यावरण को सुखद, शीतल एवं नीरोग बनाते हैं।

अतः वृक्षों को वर्षा का संवाहक कहा जाता है। वन वर्षा के जल को सोखकर अपनी जड़ों द्वारा पानी की धार की बजाय घटाने के बढ़ाते रहते हैं। वेदों तथा पुराणों में दश गुणवान पुत्रों का यश उतना ही है, जितना एक वृक्ष लगाने का। सांस्कृतिक विकास ही वनों की प्राकृतिक हरियाली में हुआ है। वनों की हरीतिमा हमारे विकास की प्रतीक है, यह नेत्रों को अपूर्व स्फूर्ति एवं चेतना प्रदान करती है।

पद्मपुराण में लिखा है जो मनुष्य सड़क के किनारे तथा जलाशयों के तट पर वृक्ष लगाता है, वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक फलता-फूलता रहता है, जितने वर्षों तक वह वृक्ष फलता-फूलता है।

स्वार्थ के वशीभूत होकर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण लोगों ने पेड़ों को काटना आरंभ कर दिया। वन के वन नष्ट हो गए, इससे देश में अनावृष्टि होने लगी, रेगिस्तान के चरण बढ़ने लगे, धूल भरी आंधियां चलने लगीं। वातावरण और पर्यावरण प्रदूषित होने लगा।

वेदों में पर्यावरण का वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। पर्यावरण का अर्थ है—पृथ्वी पर विद्यमान, जल, वायु, ध्वनि, रेडियोधर्मिता एवं रासायनिक पर्यावरण। जब ये समृद्ध होते हैं तो हमें जीवन एवं नीरोगता प्रदान करते हैं। जब ये पर्यावरण के आवश्यक तत्व दूषित हो जाते हैं तो हमारी चिंता का विषय बन जाते हैं। यही पर्यावरण चिंता प्रदूषण का प्रयोग बन गया है। चारों ओर पर्यावरण में विकृति ही प्रदूषण को जन्म देती है।

आज हमारा वायुमंडल अत्यधिक प्रदूषित हो चुका है, जिसके कारण मानव का जीवन खतरे में आ गया है। दुनिया के प्रसिद्ध यात्री इब्नेबतूता ने भारत आने पर चौदहवीं शती के शासक मुहम्मद तुगलक के जीवनकाल के संस्मरणों में गंगा की पवित्रता एवं निर्मलता का उल्लेख करते हुए प्राथमिकताओं में अपने लिए गंगा के जल का प्रबंध भी सम्मिलित था। गंगाजल को ऊंट, घोड़े, हाथियों पर लादकर दौलताबाद पहुंचाने में डेढ़-दो महीने लगते थे। कहा जाता है कि गंगाजल तब भी साफ एवं मीठा बना रहता था। तात्पर्य यह है कि गंगाजल हमारी आस्थाओं और विश्वासों का प्रतीक इसी कारण बना था, क्योंकि वह सब प्रदूषणों से मुक्त था, किंतु अनियंत्रित औद्योगीकरण, हमारे अज्ञान एवं लोभ की प्रवृत्ति ने, देश की अन्य नदियों के साथ गंगा को भी प्रदूषित किया है। वैज्ञानिकों का विचार है कि तन-मन की सभी बीमारियों को धो डालने की उसकी औषधीय शक्तियां अब समाप्त होती जा रही हैं। यदि प्रदूषण इसी गति से बढ़ता रहा तो गंगा के शेष गुण भी शीघ्र नष्ट हो जाएंगे और 'गंगा तेरा पानी अमृत' वाला मुहावरा निरर्थक हो जाएगा।

पर्यावरण चिंता में जल, वायु एवं स्थल की भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं में होने वाला वह अवांछनीय परिवर्तन है, जो मनुष्य और उसके लिए लाभदायक दूसरे जंतुओं, पौधों, औद्योगिक संस्थानों तक दूसरे कच्चे माल इत्यादि को किसी भी रूप में हानि पहुंचाता है।

वेदों में कहा गया है कि जीवधारी अपने विकास और व्यवस्थित जीवन-क्रम के लिए एक संतुलित पर्यावरण एवं वातावरण पर निर्भर रहते हैं। संतुलित पर्यावरण में प्रत्येक घटक एक निश्चित मात्रा में उपस्थित रहता है। वातावरण में कुछ हानिकारक घटकों का प्रवेश हो जाता है, परिणामतः समस्त जीवधारियों के लिए किसी-न-किसी रूप में हानिकारक सिद्ध होता है जो पर्यावरणीय चिंता को जन्म देता है।

पर्यावरण के प्रति चिंता की समस्या का जन्म जनसंख्या वृद्धि के साथ हुआ है। विकासशील देशों में औद्योगिक, रासायनिक कचरे ने जल ही नहीं, वायु और पृथ्वी को भी प्रदूषित किया है। भारत जैसे देशों में घरेलू कचरे और गंदे जल की निकासी ने विकराल रूप ले लिया है।

सभी जीवधारियों के लिए जल बहुत महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। पौधे भी अपना भोजन जल के माध्यम से ही प्राप्त करते हैं, यह भोजन पानी में घुला रहता है। जल में अनेक प्रकार के खनिज तत्व, कार्बनिक-अकार्बनिक पदार्थ तथा गैसें घुली रहती हैं, यदि जल में आवश्यकता से अधिक पदार्थ एकत्र हो जाते हैं तो जल प्रदूषित होकर हानिकारक हो जाता है और वह प्रदूषित जल उदर एवं यकृत के पीलिया जैसे भयंकर रोग को जन्म देता है।

वायुमंडल में विभिन्न प्रकार की गैसें एक विशेष अनुपात में उपस्थित रहती हैं। जीवधारी अपनी क्रियाओं द्वारा वायुमंडल में ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड का संतुलन बनाए रखते हैं। अपनी श्वसन प्रक्रिया द्वारा हम ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ते रहते हैं। हरे पौधे प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन-डाई-ऑक्साइड लेकर ऑक्सीजन निष्कासित करते रहते हैं। इससे दोनों गैसों का संतुलन बना रहता है, किंतु मानव अज्ञानतावश अपनी आवश्यकता के नाम पर वनों को काटकर इस संतुलन को बिगाड़ता है। मिलों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं के कारण हानिकारक गैसों में सल्फर-डाई-ऑक्साइड गैस का प्रदूषण में प्रमुख योगदान है।

वायु प्रदूषण से मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है, वायु में विकसित अनेक धातुओं के कण जैसे सीसा, कैडमियम, नाइट्रोजन, ओजोन और प्रदूषित वायु शरीर संस्थान में अनेक विकृतियां ला देते हैं। अनेक प्रकार के वाहन, मोटर-कार, बस, जैट विमान, ट्रैक्टर आदि तथा लाउड-स्पीकर, बाजे एवं कारखाने के साइरन व विभिन्न प्रकार की मशीनों आदि से ध्वनि-प्रदूषण उत्पन्न होता है। ध्वनि की लहरें जीवधारियों की क्रियाओं को प्रभावित करती हैं।

अधिक तेज ध्वनि से मनुष्य की सुनने की शक्ति का ह्रास होता है और अनिंद्रा रोग सताता है। इससे स्नायुतंत्र विकृत होकर पागलपन को जन्म देता है। कुछ ध्वनियां छोटे-छोटे कीटाणुओं को नष्ट कर देती हैं, परिणामतः बहुत से पदार्थों का प्राकृतिक रूप से अपघटन नहीं होता।

प्रायः कृषक अधिक पैदावार के लिए कीटनाशक और रोगनाशक दवाओं तथा रसायनों का प्रयोग करते हैं। इनका स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। आधुनिक पेस्टीसाइडों का अंधाधुंध प्रयोग भी लाभ के स्थान पर हानि ही पहुंचा रहा है। जब ये रसायन जल के साथ बहकर नदियों द्वारा सागर में पहुंच जाते हैं तो वहां पर रहने वाले जीवों पर घातक प्रभाव डालते हैं। इतना ही नहीं, किसी-न-किसी रूप में मानव-देह भी इनसे प्रभावित होती है।

परमाणु शक्ति उत्पादन केंद्रों और परमाणु परीक्षणों के फलस्वरूप जल, वायु तथा पृथ्वी का प्रदूषण निरंतर बढ़ता जा रहा है। यह प्रदूषण आज की पीढ़ी के लिए ही नहीं, वरन् भावी पीढ़ी के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। विस्फोट के समय उत्पन्न रेडियोधर्मी

पदार्थ वायुमंडल की बाह्य परतों में प्रवेश कर जाते हैं। जहां वे ठंडे होकर संघनित अवस्था में बूंदों का रूप ले लेते हैं, बाद में ओस की अवस्था में बहुत छोटे-छोटे धूल के कणों के रूप में वायु में फैलकर वायुमंडल को दूषित करते हैं। पर्यावरण में होने वाले प्रदूषण को रोकने एवं उसके समुचित संरक्षण के लिए गत कुछ वर्षों से समस्त विश्व में एक नई चेतना उत्पन्न हुई है एवं इसे रोकने के लिए व्यक्तिगत और सरकारी दोनों ही स्तरों पर पूरा प्रयास आवश्यक है। जल-प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण बोर्ड गठित किए गए हैं। इन बोर्डों ने प्रदूषण नियंत्रण की अनेक योजनाएं तैयार की हैं। उद्योगों के कारण उत्पन्न होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए भारत सरकार ने एक महत्वपूर्ण निर्णय यह लिया है कि नये उद्योगों को लाइसेंस दिए जाने से पूर्व उन्हें औद्योगिक कचरे की निस्तारण की समुचित व्यवस्था करनी होगी और इसके लिए विशेषज्ञों से स्वीकृति प्राप्त करनी होगी।

वनों की अनियंत्रित कटाई को रोकने के लिए कठोर नियम बनाए गए हैं। इस बात के लिए प्रयास किए जा रहे हैं कि नये वन क्षेत्र बनाए जाएं और जन-सामान्य को वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहित किया जाए। पर्यावरण के प्रति जागरूकता से हम आने वाले समय में और अधिक अच्छा एवं स्वास्थ्यप्रद जीवन व्यतीत कर सकेंगे और आने वाली पीढ़ी को प्रदूषण के अभिशाप से मुक्ति दिला सकेंगे।

जैसे-जैसे मनुष्य अपनी वैज्ञानिक शक्तियों का प्रयोग करता जा रहा है, वैसे-वैसे प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है। विकसित देशों में वातावरण का प्रदूषण सबसे अधिक बढ़ रहा है और यह ऐसी चिंता एवं समस्या है, जिसे किसी विशिष्ट क्षेत्र या राष्ट्र की सीमाओं में बांधकर नहीं देखा जा सकता। यह विश्वव्यापी समस्या है, इसीलिए सभी राष्ट्रों का संयुक्त प्रयास ही इस समस्या से मुक्ति दिलाने में सहायक हो सकता है।

संदर्भ

1. पद्मपुराण
2. अथर्ववेद

कृष्ण बिहार, थानसिंह,
पीलीभीत-262001 (उ.प्र.)

पर्यावरण और भारतीय संस्कृति

सतीश कुमार

हिंदू मान्यताओं के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से जीवन विकसित हुआ। प्रकृति को मां एवं पुरुष को पिता माना गया है। संतानोत्पत्ति में पिता का योग तो होता है, किंतु उसे गर्भ में एवं बाद में भी पालने का कार्य मां अर्थात् प्रकृति करती है। इस कारण प्राणीजगत् चर एवं अचर सभी की मां पृथ्वी है। पूरे विश्व का लालन-पालन करने के लिए पृथ्वी पर प्रकृति-जन्य वे सभी चीजें, जो उसमें जीवन के लिए आवश्यक हैं, पृथ्वी पर मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे एवं अन्य सभी जीव-जंतु एक ऐसे प्रकृति प्रदत्त चक्र से बंधे हुए हैं, जिसमें वे अपने जीवन को सफलतापूर्वक चला सकें। कभी-कभी, दैविक आपदाओं, प्रकृति-जन्य बदलाव के कारण या कभी मानवीय क्रिया-कलापों के कारण प्रकृति-चक्र टूटते हैं, जिससे पर्यावरण असंतुलित होता है और सभी प्राणी उस असंतुलन से प्रभावित होते हैं। इस असंतुलन से पैदा हुई विषमताओं के कारण बड़ी-बड़ी सभ्यताएं समाप्त हो गई। पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों एवं अन्य जीवों की पूरी जाति समाप्त हो चुकी हैं। वर्तमान में भी, पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों की कई प्रजातियां समाप्त हो चुकी हैं या समाप्त होने के कगार पर हैं और इसमें बहुत बड़ा योगदान मानव-जाति के क्रिया-कलापों का है।

मनुष्य के क्रिया-कलापों में मुख्य रूप से युद्ध के कारण प्रयोग किए गए रासायनिक एवं आणविक हथियारों ने प्रकृति को दुष्प्रभावित किया है। इस प्रयास में प्रकृति का आवरण छिन्न-भिन्न हुआ है, जिससे प्रकृति का संतुलन बिगड़ा है। लेकिन वर्तमान में जहां सुख-सुविधा के लिए प्रयुक्त होने वाली सामग्री तथा विद्युत आदि के निर्माण, उत्पादन के लिए कार्यरत कल-कारखानों, ताप विद्युत-गृहों से निकलने वाली विषैली गैसों, दूषित पानी तथा अन्य विषाक्त पदार्थों में भी प्रदूषण फैल रहा है, वहीं दूसरी ओर इन्हें रोकने या कम करने वाले पेड़ों और पौधों को अंधाधुंध काटने के कारण प्रकृति प्रदूषण रोकने में सफल नहीं हो पा रही है।

वर्तमान परिस्थितियां मनुष्य के लिए कठिन चुनौती के रूप में उपस्थित हुई हैं। प्रकृति की विपरीत परिस्थितियों का सामना करने में यदि थोड़ी-बहुत सफलता मिल जाए, तब भी एक बड़ी संख्या में पशु-पक्षियों को प्राणोत्सर्ग देने पड़ सकते हैं। इतना ही नहीं मानव-जाति को भी इस विषम परिस्थिति में निरंतर कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, जो भविष्य में तीव्र रूप से बढ़ेगा। पर्यावरण 'परि' और 'आवरण' इन दो शब्दों से मिलकर

बना है। परि का अर्थ है, चारों ओर और पर्यावरण का अर्थ है ढकने वाला वस्त्र। पृथ्वी का यह वस्त्र है—वायु, पानी, पेड़-पौधे, घास के मैदान, बर्फ के पहाड़, हिमनद एवं समुद्र आदि। इस आवरण से प्रकृति सुंदर, हरी-भरी और गरिमामयी लगती है। सूखे नंगे पहाड़, मरुस्थल एवं सूखी नदी ने कभी किसी का मन नहीं मोहा होगा। वर्तमान में मनुष्य ने अपनी सभ्यता को विकसित करने के लिए जिस प्रकार तेजी से कंक्रीट के जंगल फैलाए हैं, पेड़ों को काट-काटकर, मैदानों और पहाड़ों को नंगा किया है, कल-कारखानों से निकली विषैली वायु ने जिस प्रकार वायु प्रदूषित की है एवं इनसे निकले विषाक्त पदार्थों ने जिस प्रकार प्राकृतिक जल प्रणालियों एवं मृदा को दूषित किया है, उससे प्रकृति-चक्र दुष्प्रभावित हुए हैं और प्रकृति असंतुलित हुई है।

मनुष्य द्वारा पृथ्वी पर अपनी सभ्यता को विकसित करने की धुन में जिस प्रकार ऊर्जा के स्रोतों का उपयोग किया गया है, उससे जल और वायु के प्रदूषण में वृद्धि, भूमि का अनुपजाऊ होना, नदियों के जल का कम तथा दूषित होना, ध्वनि-प्रदूषण, रेडियोधर्मी विकिरण का बढ़ना आदि समस्याएं मुख्य हैं, इनके कारण पृथ्वी का पर्यावरण संतुलन छिन्न-भिन्न हो गया है। पिछली दो सदी में वायु में कार्बन-डाई-ऑक्साइड के घनत्व में 25 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है, जो पृथ्वी के गर्म होने का मुख्य कारण है।

ऐसा नहीं है कि पृथ्वी पर किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। होता है, क्योंकि पृथ्वी गतिमान है तथा आकाश में अन्य खगोलीय पिंडों के साथ घूम रही है। इस कारण परिवर्तन निश्चित है। व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो संसार में सभी कुछ परिवर्तनशील है और इसी परिवर्तन से जीवन है। परंतु गति के कारण, पृथ्वी पर परिवर्तन का प्रभाव हजारों वर्षों में दिखलाई पड़ता है, जैसे समुद्र के जल-स्तर में वृद्धि, पृथ्वी के तापमान में वृद्धि, ध्रुवों की स्थिति में परिवर्तन आदि। वैसे तो 5000 से 7000 वर्षों में पृथ्वी पर 1 डिग्री सेल्सियस ताप में वृद्धि होती है, परंतु यदि यह परिवर्तन सौ या पचास वर्ष के अंतराल में होने लगे तो प्राणियों को उस परिवर्तन के अनुकूल ढालना कठिन हो जाएगा।

पृथ्वी द्वारा आकाशीय पिंडों की सहायता या अपनी अंतर्निहित शक्ति से इस असंतुलन को संतुलित करने की कोशिश में, भयंकर तूफान, भूकंप, ज्वालामुखी का फटना, अति/ अनावृष्टि का होना आदि निश्चित है। परंतु पृथ्वी द्वारा इस असंतुलन को संतुलित करने की प्रक्रिया में जीवन का नष्ट होना, धन व संपदा की हानि, नदी का मार्ग बदलना, अन्न की पैदावार में कमी होना या ऐसी संक्रामक बीमारियों का फैलना, जो निश्चित ही किसी भी सभ्यता के लिए घातक हैं, का होना भी अवश्यंभावी है।

यदि हम कल्पना करें कि अपनी गति एवं जीवन के साथ-साथ पृथ्वी प्राणवान भी है, जैसे—तेज, मंद एवं तूफानी हवाएं उसकी सांस हों, नदियां उसकी रक्तवाहिनी हों, लहराता हुआ महासागर उसका दिल हो, हिमालय-सा उन्नत पर्वत उसका मुख हो तथा अन्य पर्वत उसके हाथ-पैर और झीलें उसकी आंखें हों तथा पेड़-पौधे उसकी रोमावलियां या फिर कल्पना करें, यदि ऐसे विशाल मनुष्य की आंखें निस्तेज कर दी जाएं, धमनियों में अशुद्ध रक्त का प्रवाह होने लगे या कुछ धमनियां बंद अथवा सकरी कर दी जाएं, उसके शरीर का अंग-भंग करने का निरंतर प्रयास किया जाए तथा उसकी रोमावलियां नोंच ली जाएं तो ऐसा प्राणी कितना कुरूप लगेगा? ऐसा रुग्ण व्यक्ति यदि दुःख से कराहेगा तो आपका

हृदय भी पसीज उठेगा। फिर पृथ्वी के साथ इतना अमानवीय व्यवहार क्यों? जबकि यह वसुंधरा, मां की तरह प्रत्येक जीव का पोषण करती है। इस पृथ्वी ने सभी प्राणियों के लिए भोजन, औषधि, वस्त्र आदि दिए हैं, मन को लुभाने वाले सुंदर फूल और स्वादिष्ट फल मौसम के अनुरूप जाड़े में गूदेदार तथा गरमी में रसदार फल। ऐसा कौन है, जो पृथ्वी का ऋणी नहीं है? क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं कि हम पृथ्वी को सुंदर एवं रहने लायक रहने दें?

किसी भी प्राणी के शरीर में ज्वर होने से या रोग-ग्रस्त होने से जो प्रभाव उसकी शक्ति पर पड़ता है, वही प्रभाव पृथ्वी का ताप बढ़ने पर होगा। जिन पंच-तत्वों से पृथ्वी का निर्माण हुआ है, उससे ही हमारा शरीर बना है। यदि पृथ्वी में असंतुलन होगा तो हमारा शरीर भी असंतुलित होकर बीमार पड़ जाएगा। जैसे बीमार मां अपने बच्चे का ठीक से पोषण नहीं कर सकती, वैसे ही वसुंधरा बीमार होकर जीवनदान देने में असमर्थ होगी, उसकी यह असमर्थता पृथ्वी पर जीवन को नष्ट होने से नहीं रोक सकती। सामान्यतया अधिक परिवर्तन होने पर पशु-पक्षी अपना स्थान बदल लेते हैं। स्थान परिवर्तन उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है, किंतु मनुष्य के लिए कई कारणों से यह संभव नहीं है। मनुष्य के लिए प्रकृति के अनुरूप अपने को ढालना ही समस्या का समाधान है। किंतु व्यापक बदलाव के कारण शरीर तदनुसार ढल नहीं पाता। सामान्यतया ऊंचे पहाड़ी स्थान पर जाने पर शरीर को प्रकृति के अनुरूप ढालने की सलाह दी जाती है। इसीलिए यह कहावत भी कही गई है, 'लामा की भूमि पर गामा मत बनो'।

मानव द्वारा तैयार वे समस्त वैज्ञानिक उपकरण, जिस पर उसे गर्व है, वे कुछ चंद लोगों की जान तो बचा सकते हैं, किंतु न तो वह संपूर्ण मानव-जाति की समस्या का हल बन सकते हैं और न प्रकृति के बदलाव को रोक सकते हैं। बस चंद लोगों को आलू की तरह शीतगृह में सुरक्षित रख सकता है, जब तक कि बिजली का उत्पादन संभव है, किंतु कितने दिन?

मानव स्वभाव से स्वार्थी है, वह सभी वस्तुओं को अपने ऐश्वर्य, विलासिता एवं अहम् के लिए प्राप्त करना चाहता है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि के बल पर इसमें सफलता प्राप्त कर ली है, यहां तक कि उसके पांव चंद्रमा तक पहुंच चुके हैं और मंगल पर जाने की तैयारी में लगा हुआ है। अपने इसी गुण के कारण उसने पृथ्वी को अपना दास समझ लिया है। यह किसी भी सभ्यता के लिए पतन की पहली सीढ़ी है। क्या बुद्धिमान कहा जाने वाला मानव, समाज का और अपना ही दुश्मन है? क्या उसका ज्ञान सीमित है या वह आगे आने वाली पीढ़ी के प्रति अपना कोई दायित्व नहीं मानता? या वह ऐसी कठिनाई के दौर से गुजर रहा है कि उसके सामने कोई विकल्प नहीं? या वह प्रकृति का स्वामी बनना चाहता है? या आत्मघात करना चाहता है? यह उसे समझना होगा।

किंतु शायद पृथ्वी पर बढ़ती हुई आबादी सभी वस्तुओं को किसी भी कीमत पर प्राप्त करने की ललक, स्वार्थ, जिद, मनुष्य द्वारा मनुष्य को जीतने की चाह, प्रकृति का विच्छेदन एवं विश्लेषण कर समझने की कोशिश तथा पृथ्वी द्वारा सब कुछ प्राप्त करने की कोशिश ने तथा पृथ्वी से अपने को अलग समझने की भूल ने मनुष्य को ऐसी परिस्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है, जहां आगे बढ़ना दुष्कर और पीछे मुड़कर देखना आर्थिक दौड़ से बाहर दिखाई देता है।

आज से लाखों वर्ष पूर्व मनुष्य जंगलों में रहता था—पेड़ों, गुफाओं और चट्टानों से वह भोजन और घर दोनों प्राप्त करता था। परंतु उसके पास समय देखने के लिए घड़ी, हवा का दबाव मापने के लिए दाबमापी नहीं था। फिर भी मनुष्य, पशु-पक्षियों की गति-विधियों तथा पेड़ों, कीड़े-मकोड़ों की गतिविधियों से, हवा के रूख से, समय का अंदाज तथा पानी बरसने की संभावना को मालूम कर लेता था, यहां तक कि भूकंप आने का पूर्वानुमान पशु-पक्षियों की गतिविधियों से लगा लेता था, जिसके लिए आज बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक विधियों द्वारा तैयार करोड़ों रुपये के यंत्र लगाकर जानने की कोशिश की जाती है।

समय के साथ-साथ मनुष्य ने जंगलों और गुफाओं को छोड़कर खेती करना तथा मकान बनाकर रहना शुरू किया, फिर भी जानवरों का सहयोग उपयोगिता के आधार पर प्राप्त किया। अग्नि की खोज ने मनुष्य के जीवन में क्रांति ला दी और सभ्यता का मार्ग वहीं से शुरू हुआ। मनुष्य द्वारा जानवरों को वश में करने के बाद, मनुष्य ने मनुष्य को वश में करने की कोशिश की और यहीं से सभ्यता का इतिहास शुरू हुआ। फिर शुरू हुई किले-बंदी, समूह का गठन, सीमा-रेखा, राजा-प्रजा, धन की व्यवस्था, सुरक्षा के तरीके, शासन-प्रणाली और अपने को मजबूत करने की होड़ ने मनुष्य द्वारा हथियारों के लिए पत्थरों से लेकर तांबा, लोहा, पीतल, कांसा आदि धातुओं का प्रयोग शुरू किया। समय ने करवट बदली, सुरक्षा के हथियार जैसे तीर-कमान, तलवार, कटार, भाले, बर्छी आदि ने अपना रूप बदला और उनकी जगह ली पिस्तौल, राइफल, बंदूक, तोप और मशीनगन ने तथा रथ, हाथी-घोड़ों का स्थान लिया ट्रक, जीप, मोटर साइकिल तथा टैंकों ने।

सभ्यता को जिन चिह्नों द्वारा आज भी पहचाना जाता है, उन चिह्नों ने आधुनिक सभ्यता को सोचने पर विवश कर दिया। कला, साहित्य, संगीत, वास्तु-कला, भवन निर्माण तथा हस्तशिल्प से लेकर कुछ वैज्ञानिक उपलब्धियां ऐसी भी हैं, जिन्हें आज का वैज्ञानिक युग आश्चर्य से देखता है। मनुष्य ने हमेशा लड़-भिड़कर एक-दूसरे को समझने की कोशिश की है, दूसरे से ऊंचा सिद्ध करने की हवस, अपनी जीवन-पद्धति को दूसरे से अच्छा समझने की सोच ने बहुत बार जमीन को खून से रंगा है। फिर भी समय-समय पर ऐसे लोग हुए हैं, जैसे भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, प्रभु यीशु, मोहम्मद साहब तथा महात्मा गांधी, जिन्होंने मानव समाज को प्रेम का संदेश दिया तथा पूरे संसार को सोचने-समझने के लिए नयी दिशा दी।

आज का युग भौतिकवाद का युग है। मनुष्य अपने पास मौजूद भौतिक उपलब्धियों से पहचाना जाता है। इस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि है, पूरे संसार को पास लाना और इसका कारण है तीव्रगामी वाहन, एक स्थान से दूसरे स्थान को देखने एवं बातचीत करने के साधन तथा सुरक्षित एवं सुख-सुविधा-संपन्न रहने के स्थान तथा मार्ग, परंतु इसी के साथ घातक हथियार एवं विस्फोटक सामग्री भी इसकी उपलब्धि है, जिसका उपयोग कल्याण कार्य के लिए कम तथा एक-दूसरे को नष्ट करने के लिए अधिक हुआ है।

प्राकृतिक गैसों का उपयोग विद्युत ऊर्जा, उर्वरक तथा पेट्रो रसायन उद्योगों के लिए किया जाता है तथा घर के लिए भी ईंधन के रूप में मुख्य रूप से प्रयोग किया जा रहा है। रेडियोधर्मी तत्वों का उपयोग—विद्युत ऊर्जा, चिकित्सा, वैज्ञानिक उपकरण तथा आणविक हथियारों के अतिरिक्त तीव्रगामी सैनिक वाहनों में भी किया जाता है।

उपर्युक्त सभी ऊर्जा-पदार्थों से विद्युत ऊर्जा तैयार की जाती है। विद्युत का महत्व, अन्य ऊर्जाओं से उसकी उपयोगिता, सरल प्रेषण, सुलभ प्राप्ति और आवश्यकतानुसार वैभव को बढ़ाने तथा घटाने आदि के कारण है। इस कारण आज के युग के अधिकतम संसाधन विद्युत ऊर्जा पर आधारित हैं। आज के सुसंस्कृत समाज में विद्युत ऊर्जा की प्रति व्यक्ति खपत उस देश के विकास का मापदंड है, जो देश जितनी अधिक विद्युत ऊर्जा की खपत करता है, वह उतना ही विकसित माना जाता है, परंतु जिस तरह प्रति व्यक्ति विद्युत ऊर्जा की खपत बढ़ रही है, उससे जहां एक ओर प्रदूषण बढ़ रहा है, वहीं दूसरी ओर उनके स्रोतों में निरंतर कमी हो रही है, जो पूरे विश्व के वैज्ञानिकों के लिए चिंता का विषय बन गया है। इस सबके अतिरिक्त युद्ध के कारण एक ओर विस्फोटकों तथा दूसरी ओर तेल के कुओं में आग लगाने के कारण प्रदूषण में वृद्धि हो रही है।

विद्युत ऊर्जा बनाने के लिए प्रयुक्त कोयला, पेट्रोल एवं प्राकृतिक गैसों द्वारा निकला धुआं तथा शोर और आणविक भट्‌टी द्वारा तथा अन्य औद्योगिक इकाई द्वारा निकला अवशेष प्रकृति में वायु, ध्वनि एवं जल प्रदूषण को बढ़ाकर बीमारियों एवं असाध्य रोगों को जन्म दे रहे हैं। संसार की बढ़ती हुई आबादी के कारण खेती, घरेलू और औद्योगिक उपयोग के लिए लकड़ी काटने से वन-संपदाएं निरंतर कम हो रही हैं, जिससे प्रदूषण रोकने में यह सक्षम पेड़ हमारी सहायता नहीं कर पा रहे। मनुष्य द्वारा मांस खाने, उद्योग एवं सजावट के लिए, जानवर की खाल टांगने के शौक ने शिकार खेलकर वन्य-जीवन को खतरे में डाल दिया है। इस कारण हमारी प्राकृतिक समस्याएं, निरंतर बढ़ रही हैं। हमारी आगे आने वाली पीढ़ी परिस्थितिजन्य रोगों के निदान में प्राकृतिक साधनों के अभाव में निरंतर समस्याओं से जूझती रहेगी।

आज पूरे विश्व के वैज्ञानिक परंपरागत ऊर्जा के स्रोतों की कमी एवं उससे उत्पन्न प्रदूषण को रोकने के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों को उपयोग में लाने के लिए लगे हुए हैं, जिनसे न प्रदूषण-वृद्धि की संभावना है और न उनके समाप्त होने की। इसके लिए शोध एवं विकास कार्यों में तीव्रता आई है और दूसरी ओर ऊर्जा के परंपरागत स्रोतों की उपयोगिता को समझते हुए ऊर्जा को पूर्ण क्षमता, मितव्ययता, उपयोगिता और वैज्ञानिक कुशलता के साथ प्रयोग में लाने की आवश्यकता पर भी बल दिया जा रहा है। इस पर शोध एवं विकास कार्यों के अतिरिक्त प्रचार तथा प्रसार तथा प्रत्येक स्तर पर शिक्षा की आवश्यकता है। ऊर्जा उपभोग के तरीके को ऊर्जा-संरक्षण कहते हैं। यदि ऊर्जा संरक्षण के कार्य में तत्परता एवं जन-साधारण का सहयोग मिलेगा तो पर्यावरण के बढ़ते असंतुलन में कमी लाई जा सकती है। साथ ही प्रदूषण को कम करके पर्यावरण में सुधार लाया जा सकता है। यदि यह कहा जाए कि ये एक-दूसरे के पूरक हैं तो अनुचित न होगा।

पूर्व में भी कई बार ऐसा हुआ है कि जब अपने क्रियाकलापों से मानव सभ्यताएं नष्ट हुईं और उनकी संस्कृति, सभ्यता की लड़खड़ाती सीढ़ियों के साथ गिरकर जमीन पर ढेर हो गईं। लेकिन कहावत है कि 'जहां चाह वहां राह'। प्रकृति की व्यापकताओं और उसकी अथाह शक्ति का अनुभव करने के फलस्वरूप भौतिक सुखों की कमी ने उन्हें पुनः सोचने पर विवश किया कि भविष्य में विकास का मार्ग अपने को प्रकृति के अनुरूप ढालने पर ही संभव है। हमारी भारतीय हिंदू सभ्यता एवं संस्कृति इसका जीता-जागता उदाहरण

है। युग-परिवर्तन एवं प्रलय के बाद नये सिरे से नये तंत्र की स्थापना के लिए जिस प्रकार प्रकृति के अनुरूप ढालने का प्रयास भारतीय संस्कृति में किया गया, अन्यत्र ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। कोई भी सभ्यता तभी सफल मानी जाती है, जब वह दूसरे से श्रेष्ठ दिखाई दे। श्रेष्ठता समय के साथ-साथ कम-ज्यादा हो सकती है, किंतु किसी भी सभ्यता के लंबे समय का इतिहास उसके सामाजिक संगठन, प्राकृतिक संसाधनों का मितव्ययिता के साथ सदुपयोग और प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने पर ही रह सकता है। भारतीय दर्शन, चिंतन, परंपरा और संस्कृति इस कसौटी पर खरे उतरते हैं अन्यथा हिंदू संस्कृति कभी की समाप्त हो चुकी होती। पूर्वजों ने पेड़ों, नदियों, पहाड़ों, मिट्टी, वायु, जल तथा पशु एवं पक्षियों को अपने ही परिवार का अंग समझा और सभी के प्राकृतिक गुणों को समझकर एक ऐसी संस्कृति की नींव डाली, जिसमें सभी की सहभागिता हो सके। पशुओं से प्रेम करने, प्रकृति को समझने, पेड़ों के सहयोग के प्रभाव को समझकर उनके प्रकृति-प्रदत्त गुणों का लाभ उठाने और प्रकृति एवं मानव में सामंजस्य स्थापित करने के लिए मानव ने स्वयं का अध्ययन कर तथा अन्य प्राकृतिक तत्वों का समावेश कर अपनी जीवन-पद्धति विकसित की।

पेड़-पौधे, पशु-पक्षी एवं वनों का महत्व समझाते हुए हिंदू-धर्म में स्वस्थ जीवन निर्वाह के चार आश्रमों की नींव डाली गई और इस प्रकार चार आश्रमों में दो—ब्रह्मचर्य तथा संन्यास—दोनों का वन में रहकर ही पालन किया जाता था। इतना ही नहीं वानप्रस्थ आश्रम वन की ओर प्रस्थान करने वाला आश्रम है, जिसमें धन-धान्य का संग्रह करना वर्जित था। मात्र गृहस्थ-आश्रम उपभोग के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र था। इसका सीधा अर्थ हुआ कि जीवन का 25 प्रतिशत भाग ही पूरी सामाजिक व्यवस्था की धुरी था, जो भौतिक सुखों के लिए सभी सुख-सुविधाओं का उपभोग कर सकता था। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन का 50 प्रतिशत जीवन जंगल में बिताएगा तो जंगल को काटने का अव्यावहारिक निर्णय कभी नहीं ले सकता, साथ ही और अधिक पेड़ लगाएगा और पशु-पक्षियों को समझने की कोशिश भी करेगा। घर के आगे नीम का पेड़ लगाना, चौबारे या चौराहे पर पाकड़, पीपल और बरगद का पेड़ लगाना हिंदू संस्कृति का अंग है। अभी भी पेड़ों को काटना उचित नहीं माना जाता। यहां तक कि आवश्यकता पड़ने पर पेड़ों की पूजा करके उसे काटा जाता है, ताकि कम-से-कम पेड़ों के काटने की आवश्यकता पड़े। पीपल, वट, आंवला, आम और नीम की पूजा, तुलसी का पौधा घर में लगाना आदि महत्वपूर्ण कार्य मात्र ज्ञान और विज्ञान का समाज के लिए सुलभतम उपयोग है, क्योंकि हम चिकित्सा-उपयोगी पौधों एवं पेड़ों के विभिन्न भागों का प्राकृतिक रूप से प्रयोग करने में विश्वास रखते हैं न कि पेस्ट बनाकर ट्यूब में भरकर बेचने में। अन्य सभ्यताओं से विपरीत हिंदू-संस्कृति की धारणा मानव की सेवा करना था, उसे वाणिज्यिक रूप देने की नहीं।

इसी कारण गांव-गांव में, लोगों को विभिन्न पेड़-पौधों के फूल-पत्ती, जड़, छाल आदि का उपयोग चिकित्सा हेतु करना आता था। यह परंपरा पैतृक धरोहर के रूप में समाज में जीवित है, किंतु मूल वैज्ञानिक तथ्यों को न जानने एवं परीक्षण (टेस्ट) के लिए विकसित प्रणाली न होने एवं उनका प्रयोगशाला-परीक्षण न हो पाने के कारण अब उनका उपयोग प्रतिदिन कम होता जा रहा है।

गीता का यह श्लोकांश 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्...' वृक्षों की पर्यावरण को संतुलित रखने की महती भूमिका को रेखांकित करने का सजीव उदाहरण है कि वृक्षों में भी जीवन है।

गीता में भगवान् कृष्ण का कथन है कि 'वृक्षों में मैं पीपल हूं और मत्स्य पुराण में पेड़ों को पुत्रों की संख्या से अभिहित करना' पेड़ों के महत्व को स्पष्ट करते हैं। हमारी संस्कृति में नीम को पूर्ण चिकित्सक, आंवले को पूर्ण भोजन, पीपल को शुद्ध वायुदात्री, पाकड़ और वट के युग्म वृक्षों को जल संग्राहक एवं वट को पूर्ण घर माना गया है। भारतीय संस्कृति में त्योहारों का विशेष महत्व है। अपनी प्राचीन एवं पारंपरिक संस्कृति को जानने के साथ-साथ विभिन्न त्योहारों में वट, पीपल, नीम, आम के पेड़ों, केला एवं तुलसी के पौधे की पूजा तथा गाय, कुत्ता, चिड़ियों यहां तक कि कौवों आदि को भोजन खिलाना हमारी संस्कृति का अंग है। यह हमारी प्रकृति एवं मनुष्य के विभिन्न सहभागियों के प्रति जागरूकता का द्योतक है। नदियों एवं पहाड़ों का मानवीयकरण करके हमने उसमें जीवंतता ही नहीं पैदा की वरन् उन्हें अपना हिस्सा बनाया।

प्रकृति से सामंजस्य स्थापित कर जीवन-यापन करने के लिए आध्यात्मिकता को अपने जीवन का अंग बनाकर प्रकृति से केवल आवश्यकता भर प्राप्त करने का मूल-मंत्र हमने सीखा है। इस कारण विभिन्न धर्मों—सनातन, जैन एवं बौद्ध धर्म में अन्न को बरबाद होने से रोकना, अधिक अन्न का संग्रह न करना, अपने शरीर को प्रकृति के अनुरूप ढालना, स्वस्थ शरीर के लिए शुद्ध जल एवं वायु पर निर्भर रहना, पशु-पक्षियों के साथ रहना एवं उनके प्रति करुणा का भाव रखना आदि पर विशेष जोर दिया गया।

सामान्य मानता है कि विज्ञान जहां समाप्त होता है, अध्यात्म वहां से प्रारंभ होता है, किंतु ऐसा नहीं है। यदि हम ध्यान से देखें तो विज्ञान और अध्यात्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हां, यह सही है कि दोनों के दृष्टिकोण एक-दूसरे के विपरीत हैं। इस कारण विज्ञान और अध्यात्म एक-दूसरे से दूर दिखाई देते हैं। विज्ञान भौतिक सुख-सुविधाएं आप तक उपलब्ध कराता है और आपके शरीर के अनुकूल वातावरण तैयार करता है, जैसे शरीर को सुखद लगने वाले ताप के लिए एयरकंडीशन का उपयोग, हवा के लिए पंखा, सुखद यात्रा के लिए वाहन का प्रयोग आदि। अध्यात्म द्वारा आप अपने शरीर को वातावरण के अनुकूल बनाते हैं, ताकि ताप के अंतर से आपको कष्ट का अनुभव न हो। अधिक ऊर्जा प्राप्त कर आप कठिन मार्ग पर चल सकें। अध्यात्म की यौगिक क्रिया द्वारा शरीर को हल्का करके उड़ना, यहां तक कि किसी भी स्थान पर ताप में बदलाव लाना, अध्यात्म के एक विशिष्ट अंग की तकनीक है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विज्ञान और अध्यात्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

इन दोनों में विशेष अंतर है, जो प्रकृति और पर्यावरण से सीधा जुड़ा है। वैज्ञानिक तरीके से भौतिक सुखों को प्राप्त करने में प्रकृति में विकृति, प्रदूषण की वृद्धि, पर्यावरण में असंतुलन एवं प्रकृति के चक्रों में बाधा उत्पन्न होती है, जबकि अध्यात्म के मार्ग से जीवन-यापन करने से प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक होता है। अतः प्रकृति का निर्बाध चक्र और पर्यावरण संतुलन दोनों ही संयोजित रहते हैं। अतः किसी भी कठिनाई का अनुभव नहीं होता। हां, इस पर चलने का कार्य कठिन अवश्य है, किंतु सुखद है।

अध्यात्म का एक और बड़ा गुण है—यौगिक क्रिया द्वारा अपने शरीर को स्वस्थ रखना, जो किसी भी जीवन के सुख का आधार होती है। विज्ञान यह सुख नहीं दे सकता, मात्र आप दवाओं के दास बनकर ही रह सकते हैं। कष्ट तो आपको उठाना ही पड़ेगा, कम या अधिक। अब या तो कठिन मार्ग से चलकर सुख उठाएं या सुखद मार्ग से चलकर कष्ट झेलें, इसका निर्णय मनुष्य को ही करना है। यही है अध्यात्म का लक्ष्य और भारतीय चिंतन का परम् उद्देश्य।

विज्ञान के विभिन्न महत्वपूर्ण ज्ञान को जीवन में उतारना भी हमारे दर्शन का मुख्य उद्देश्य रहा है। दक्षिण एवं पूर्व की ओर सिर करके सोना, सूर्य नमस्कार, ध्यान, योग और पूजा द्वारा अपनी मानसिक शक्ति को दृढ़ करना आदि ऐसे तमाम क्रियाकलापों को जीवन का अंग बनाया गया, जिससे लोग कम-से-कम बीमारी का शिकार हों और समाज स्वस्थ हो। भगवान् दत्तात्रेय के 24 गुरुओं में 11 पशु-पक्षी, 5 मनुष्य, 5 प्रकृति के पंचतत्व तथा समुद्र, सूर्य और चंद्रमा थे, इसी कारण 'वसुधैव कुटुंबकम्' हिंदू दर्शन का महत्वपूर्ण अंग है। कबूतर, अजगर, पतंग, भौंरा, मधुमक्खी, हाथी, हिरण, मछली, कुररी पक्षी, सर्प, मकड़ी, भृड़ीकीट, शहद निकालने वाला, पिंग्ला, वेश्या, बालक, कुंवारी कन्या, बाण चलाने वाला, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य और समुद्र।

अधिशासी अभियंता,
उत्तरप्रदेश जल विद्युत निगम लि.,
लखनऊ

भारतीय चिंतन में पर्यावरण-संरक्षण

प्रो. चम्पा कुमारी

आज पूरा विश्व यदि किसी एक समस्या को लेकर चिंतित है, तो वह पर्यावरण की समस्या है। प्राचीन भारत में मानव का सर्वप्रथम ध्येय प्राकृतिक व्यवस्था के साथ तारतम्यता बनाए रखना था। मनु धर्मशास्त्रों व उपनिषदों के नियम इस तारतम्यता की इच्छा को प्रदर्शित करते हैं। टैगोर ने लिखा है—वन व प्राकृतिक वस्तुएं मानव-जीवन को एक निश्चित दिशा देते थे। मानव प्राकृतिक जीवन की वृद्धि के साथ निरंतर संपर्क में था, वह अपनी चेतना का विकास आस-पास की भूमि से करता था। उसने विश्व की आत्मा व मानव की आत्मा के बीच के संबंध को महसूस किया। मानव और प्रकृति के बीच इस तारतम्यता ने पर्यावरण को आत्मार्पित करने की शांतिपूर्ण व अपेक्षाकृत अच्छे तरीकों को जन्म दिया। पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उस संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव को परावृत्त करती हैं तथा उसके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं। मानव संपूर्ण जीव-जगत् का केंद्र-बिंदु है। आनुवांशिकता उसकी अंतर्निहित क्षमताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करती है, जबकि पर्यावरण इन क्षमताओं को भू-स्तर पर लाता है। इस प्रकार मानव तथा अन्य जीव पृथ्वी तथा पर्यावरण के अविभाज्य अंग हैं और पृथ्वी को एक अविभाज्य पूर्ण इकाई का स्वरूप प्रदान करते हैं।

पर्यावरण दो शब्दों—'परि और आवरण' से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है— चारों ओर का घेरा। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं, परिस्थितियां विद्यमान हैं, वे मानव-क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा परिवार, आवास, गांव, मुहल्ला, नगर, प्रदेश, देश, महाद्वीप, ग्लोब अथवा संपूर्ण सौर मंडल का हो सकता है। पर्यावरण अनेक छोटे तंत्रों से लेकर अनेक विशालविशाल तंत्रों का जटिल सम्मिश्रण है, इसीलिए वेदकालीन मनीषियों ने द्युलोक से लेकर व्यक्ति तक शांति की प्रार्थना की है—

ओम द्यौः शांतिरंतरिक्षम् शांतिः पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिर्वनस्पतयः शांति विश्वे देवाः शांतिरेधि।

—शुक्ल, यजुर्वेद, 36/1711

(इस प्रकार द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें। अदृश्य आकाश (द्युलोक) नक्षत्र युक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक जल, औषधियां, वनस्पतियां, संपूर्ण संसाधन (देव) एवं ज्ञान संतुलन

की अवस्था में रहें, तभी व्यक्ति शांत एवं संतुलित रह सकता है)। संभवतः पर्यावरण एवं पर्यावरण संतुलन की इतनी वैज्ञानिक परिभाषा विश्व के किसी अन्य मनीषी ने नहीं की।

प्रारंभिक काल में पर्यावरण का अर्थ वातावरण माना जाता रहा है, पर आज पर्यावरण का अर्थ इतना व्यापक हो चुका है कि इसमें संपूर्ण पृथ्वी, उसका वातावरण और इस धरती पर विद्यमान हर वस्तु को पर्यावरण का हिस्सा मान लिया गया है। 'पर्यावरण' वह महाविज्ञान है, जिसके अंतर्गत प्राणी-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, रसायन-विज्ञान तथा खगोल-विज्ञान जैसे अनेक विज्ञान एक शाखा के रूप में विद्यमान हैं। आज 'पर्यावरण' शब्द आम बोलचाल की भाषा बन गया है। इसे घर-घर में पहचाना जाने लगा है—'सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्' के सत्मार्ग पर चलते हुए 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया' की जीवनचर्या अपनाते हुए संपूर्ण जीवन जीने के बाह्य संसाधनों तथा शारीरिक, मानसिक विकास के आवश्यक अंगों (आंतरिक संसाधनों) का सामंजस्यात्मक आच्छादन ही पर्यावरण है।

आज के अर्थों में पर्यावरण के वास्तविक स्वरूप का वर्णन हम इस रूप में कर सकते हैं, 'मानव जीवन को प्राकृतिक रूप से अपने निश्चित समय-चक्र में जीने के लिए उनकी आधारभूत व हानिरहित आंतरिक एवं बाह्य आवश्यकताएं, जो उसके आस-पास—अन्न, भूमि, वायु, जीव तथा संसाधन आदि के रूप में विद्यमान हो, पर्यावरण है।'

पर्यावरण उन सभी प्राकृतिक संसाधनों की समग्रता का नाम है, जो धरती माता ने मानव-जाति के लिए वरदान के रूप में दिए हैं। ये संसाधन हैं—भूमि, जल, वायु, वनस्पति, वन और वन्यजीव जो हमें घेरे हुए हैं और जो प्रतिदिन हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं—

क्षिति, जल, पावक, गगन, पवन मिल पर्यावरण सजाते,
सफल सृष्टि के संचालन को, ये संतुलित बनाते।

पर्यावरण जीवन का एक अभिन्न अंग है, जिस तरह मनुष्य को जीने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान आवश्यक है, उसी प्रकार पर्यावरण भी इन सबसे ऊपर एवं अतिआवश्यक है। मनुष्य प्रकृति का पुत्र माना जाता है, प्रकृति के आंगन में वह बड़ा होता है। पर्वत, नदी, तालाब, शस्य श्यामला भूमि और सुवासित वायु हमारे जीवन को स्वच्छ और सुखद बनाते है।

धरती, अंबर, जल और जंगल, इनकी रक्षा सबका मंगल।

प्रकृति, समय और परिस्थितियों के असमय सुरक्षा प्रदान करती है, लेकिन उलझने पर पिता के समान क्रोध भी करती है।

प्रकृति ने मनुष्य को अनूठी प्रतिभा, क्षमता, सृजनशीलता, तर्कशक्ति देकर विवेकशील, चिंतनशील एवं बुद्धिमान प्राणी बनाया है। अतः मनुष्य का दायित्व है कि वह प्राकृतिक संसाधनों में संतुलित चक्र को बनाए रखते हुए स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर अपना पुनीत कर्तव्य समझे। आज का मानव अपने उत्तरदायित्वों से मुंह मोड़ रहा है, क्योंकि भौतिकवाद व औद्योगीकरण ने उसे स्वार्थी बना दिया है। भारत में पर्यावरण की समस्या अत्यधिक औद्योगीकरण का परिणाम नहीं, बल्कि विकास की अपूर्णता का द्योतक है।

मनुष्य में कई तत्व माने गए हैं। जैसे—अन्नतत्व, प्राणतत्व, बुद्धितत्व और आत्मतत्व। प्राणतत्व के लिए प्राणवायु की आवश्यकता होती है। मनुष्य ने पशुओं का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया है। अतः पर्यावरण का आशय है—पशु-जगत्, वनस्पति-जगत्, जल-जगत् एवं वायु, नदी, पहाड़, खनिज संपदा—जो प्रकृति की देन हैं। पर्यावरण उन जैविक तथा अजैविक घटकों का समूह है, जो परस्पर प्रक्रिया द्वारा मानव तथा जीव-जंतुओं के जीवन को प्रभावित करता है। इतना सब होने पर भी विभिन्न प्राकृतिक घटकों का संतुलन बिगड़ जाने से संपूर्ण पर्यावरण-तंत्र अस्थिर हो जाता है। इस अस्थिरता को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। इसके विपरीत जब प्रकृति के सभी घटकों में संतुलन बना रहता है तो उसे पर्यावरण संरक्षण कहते हैं।

प्रकृति का महत्व हमारे जीवन में सौंदर्य की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि हमने सदैव उसे अपने प्राण से भी ज्यादा प्यारा समझा है। प्राण की सुरक्षा किसी व्यक्ति के लिए जितनी अहमियत रखती है, उतनी ही महत्ता प्रकृति को प्रदान करते हुए पूजनीय समझा है। वे सभी संस्कारों एवं त्योहारों में कभी शमी के रूप में तो कभी पीपल, बड़, तुलसी के रूप में विराजते हैं। आम, पल्लव, कुंद, पाटल, अशोक, तुलसी दल आदि हमारे जीवन-प्रक्रिया के अभिन्न अंग बन चुके हैं। भगवान् कृष्ण ने गीता में विभूतियोग में वृक्षों की महिमा का बखान किया है। हमारी संस्कृति वनों-तपोवनों में फली-फूली है, हम वृक्षों को देने वाले अर्थात् देवता समझकर कृतज्ञ भावना के उज्ज्वल आदर्श को प्रस्तुत करते हैं। हमारे देश में कन्याएं पेड़ों की थालों को सींचती हैं। उनका विश्वास है कि उनके इस कृत्य से आशीर्वाद प्राप्त होगा और उन्हें अच्छा वर प्राप्त होगा।

उदाहरण के लिए, दुष्यंत राजा पेड़ों को पानी डालती शकुंतला पर मुग्ध हो गए थे। वह पेड़-पौधों को अपने सगे-संबंधियों जैसा प्यार करती थी। भगवती पार्वती को देवदार से अगाध प्रेम था, यह जग-जाहिर है, क्योंकि स्वयं पार्वती ने अपने सोने के घट रूपी स्तनों के रस से सींच-सींचकर उसे इतना बड़ा पेड़ बनाया था। पेड़ हमारे उपदेशक हैं, जो हमें निरंतर भेदभाव के बिना निःस्वार्थ भाव से देने में विश्वास करते हैं। बड़े होकर फल-फूलों के भार से झुके हुए पेड़ विनम्र होने का उपदेश देते हैं, जो हमारी सभ्यता व संस्कृति का मूलभूत आधार हैं। महाकवि रसखान, तुलसीदासजी ने भी अपने काव्य में पेड़ों का वर्णन किया है। अशोक महान् ने लोकहितार्थ पेड़ लगवाए। ऐसे अनेक उदाहरण भारतीय इतिहास में उपलब्ध हैं। जिन पेड़ों ने आदर्श व उत्प्रेरणा प्रदान की है, उनके प्रति संवेदनशील होकर उनका संरक्षण करना हमारा कर्तव्य स्वतः ही बन जाता है।

इसी प्रकार हमारी पवित्र नदियां हमारे लिए पूजनीय रही हैं। उनके पास बैठकर स्नान करने मात्र से हम अपने जीवन को सफल मानते हैं। हरिद्वार में हर की पौड़ी सारे भारतीयों के लिए श्रद्धेय है। हमारी पवित्र नदियों पर ही देश की संस्कृति व आर्थिक ढांचा टिका हुआ है। वन जीवों की उपयोगिता के कारण उनका संरक्षण भारतीय संस्कृति का विशिष्ट और अभिन्न अंग रहा है। मोर सरस्वती के साथ, सिंह महाकाली के साथ, इंद्र हाथी के साथ, चूहा गणेश के साथ पूजा जाता है। ज्योतिष में राशियों के नाम पशुओं के नाम पर हैं। अशोक स्तंभ पर वन-जीवों की सुरक्षा का निर्देश भी उपलब्ध है। भारतीय मां जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के कष्ट सहन कर भी बच्चों का संरक्षण करते हुए उनके

विकास व संरक्षण के प्रति सचेष्ट रहती है, उनकी आवश्यकता की पूर्ति हेतु समर्पित रहती है, ठीक इसी प्रकार प्रकृति हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। दोहन और पोषण में विश्वास करना हमारी संस्कृति का आधार रहा है, हम किसी भी प्रकार के शोषण को स्वीकृति नहीं देते। आज प्रकृति का अत्यधिक 'दोहन' शोषण की श्रेणी में आता है। शोषण सदैव दोनों पक्षों के लिए हानिकारक है। एक उदाहरण से मैं अपनी बात स्पष्ट करना चाहूंगी, "हम गाय का दोहन करते हैं, वह हमें दूध देती है, परंतु दोहन से पूर्व तथा पश्चात् हम उसका पोषण भी करते हैं।"

प्राचीनकाल से प्रकृति हमारे लिए पूजनीय रही है, लेकिन आज हम पेड़ों को निर्दयता से काट रहे हैं तथा प्रकृति का निजी स्वार्थ के लिए विध्वंस कर रहे हैं, जबकि हमारे देश के पौराणिक ग्रंथों ने प्रकृति को देवी रूप में प्रतिष्ठित किया है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् इस तथ्य के ज्वलंत प्रमाण हैं कि हमने सदैव प्रकृति देवी की पूजा की है। पीपल, तुलसी, नीम, बड़, खेजड़ी की पूजा आज भी कतिपय अनेक जन-समुदायों में की जाती है, जिसका धार्मिक एवं सांस्कृतिक ही नहीं, अपितु वेदांतिक महत्व भी है। आयुर्वेद के अधिष्ठाता धनवंतरि ने तो प्रकृति से प्राप्त जड़ी-बूटियों को समस्त असाध्य रोगों के निदान के लिए रामबाण औषधि समझा था। आंग्ल कवि 'वर्ड्सवर्थ' ने प्रकृति की गोद में ही जीवन का परमूसुख समझा था। रूसो ने 'बैक टू दि नेचर' का शंखनाद किया था। वस्तुतः प्रकृति के समस्त उपादान हमारे लिए श्रद्धेय ही नहीं, अपितु परम पूजनीय हैं।

भारतीय चिंतन में मनीषियों ने प्रकृति को मातृशक्ति के रूप में माना है और स्वयं को उसके पुत्र के रूप में—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

धार्मिक कार्यों में पृथ्वी का पूजन किया जाता है और धरती माता के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा जाता है—

ॐ पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि! त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मा देवि! पवित्र कुरू चासनम्।

वास्तव में ऋषियों ने संपूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को देवस्वरूप माना है। वेदों में जल को आपो देवता नाम से संबोधित किया गया है। जल सतत् प्रवहमान है। यह शरीर को जीवन देता है। मिट्टी के साथ मिलकर वनस्पतियों को उगाता है। उससे अन्न पैदा होता है। जल ही पशुओं में दूध बनाता और फलों को रस प्रदान करता है। जल से ही बल और तेज की उत्पत्ति होती है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णन है कि सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही जीवित रहते हैं, अन्न से ही बल और तेज दोनों हैं, अन्न के बिना जीवन दुर्लभ है। ऊर्जा के अक्षय स्रोत सूर्य को स्थावर जंगम की आत्मा कहा गया है—

सूर्य आतना जगत स्तस्थुषश्च।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि हमारे मंत्र दृष्टा ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व जिस सूर्य को अक्षय ऊर्जा का स्रोत स्थावर जंगम की आत्मा बताया है, उसी को आज वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया है।

सब मंत्रों में श्रेष्ठ गायत्री मंत्र माना जाता है—

ॐ भूभुर्वः स्वः तत्सवितुवरिण्यम् भार्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

वेद हमें पग-पग पर पर्यावरण संरक्षण का संदेश देते हैं। वेदों में वर्णित द्यआश्रम पद्धति का विभाजन प्रकृति पर आधारित है। आश्रम व्यवस्था में संपूर्ण मानव जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया गया है। इन चार आश्रमों में तीन आश्रम—ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास तो पूरी तरह से प्रकृति के साथ ही व्यतीत होते थे। विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल सदैव वन प्रदेश एवं नदी तट पर होते थे। यहां बालक प्रकृति के सान्निध्य में पलता, बढ़ता एवं विद्याध्ययन करता था। आचार्य उसे विद्या अध्ययन के साथ-साथ प्रकृति से ताल-मेल एवं सामंजस्य का सूत्र भी सिखलाते थे। इस संदर्भ में संदीपनी आश्रम में श्रीकृष्ण-सुदामा का जंगलों से लकड़ियां लाना, वहां वन की कठिनाइयों से अवगत होना, विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को अपने यहां ले जाना और उद्दालक ऋषि के शिष्य आरुणि का प्रसंग सर्वविदित है। वन में श्रीराम का सीताहरण के समय पशु-पक्षियों से संवाद—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी
तुम्ह देखी सीता मृगनयनी।

श्रीराम द्वारा जटायु का अंतिम संस्कार अपने हाथ से करना यह दर्शाता है कि भारतीय संस्कृति मानव को पशु-पक्षियों से भी संवेदनात्मक एवं भावनात्मक संबंध रखने का संदेश देती है।

गृहस्थ आश्रम की शुरुआत विवाह-संस्कार से प्रारंभ होती है, जिसमें व्यक्ति को गृहस्थी संबंधी जानकारियां दी जाती हैं। इस आश्रम में भी भूमि, जल, वृक्ष, वनस्पतियों के पूजन-अर्चन के माध्यम से लोकोपकार व लोक कल्याण हेतु जानकारियां दी जाती हैं। सनातन धर्म में विवाह को संस्कार माना गया है। इसका आरंभ द्वार-पूजन, भूमि-पूजन, जल-पूजन, कूप-पूजन के रूप में मिट्टी-पूजन, माड़ो-पूजन में बांस का रोपण, दूर्वा-कुश आदि को नवगृह पूजन में प्रयुक्त करना, पूजा के कलश में सात नदियों का जल आदि नदी व भूमि को पवित्र बनाए रखने की प्रेरणा देता है। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए विभिन्न मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु विभिन्न वृक्षों व वनस्पतियों के पूजन का भी विधान है, जो पर्यावरण संरक्षण का संदेश देती हैं।

भारतीय ऋषियों ने प्रत्येक वृक्ष में किसी-न-किसी देवता का प्रतिरूप देखा। प्रायः हर पेड़ के साथ कोई-न-कोई कथा जुड़ी है और धार्मिक महत्व मिला है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है पीपल का वृक्ष। स्वयं गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है—

'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां' (समस्त वृक्षों में मैं पीपल का पेड़ हूं)। योगेश्वर श्री कृष्ण द्वापर के अंत में गोलोक जाने के पूर्व इसी दिव्य वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यानावस्थित हुए थे। कलियुग में भगवान् बुद्ध को भी बोधिसत्व की प्राप्ति पीपल वृक्ष के नीचे हुए थी। संभवतया इसके इन्हीं गुणों के कारण श्रीकृष्ण ने स्वयं को सभी वृक्षों का अश्वत्थ कहकर इस वृक्ष की महिमा प्रतिपादित की है। कई प्रदेशों में पीपल के वृक्ष को पुत्रदाता माना जाता है, इसलिए पुत्र चाहने वाली स्त्रियां सायंकाल पीपल वृक्ष के नीचे दीपक जलाती हैं। विग्रह-हवन और पूजा-पाठ के समय पीपल के पत्ते व लकड़ियां शुभ मानी जाती हैं। इस वृक्ष की जड़ों में ब्रह्मा, तने में विष्णु और शाखाओं में शिव का वास माना जाता है। कहा भी गया है—

पत्रे-पत्रे देवानाम् वृक्षराज नमस्ते।

भगवान् बुद्ध अशोक वृक्ष की छाया में पैदा हुए, पीपल के पेड़ के नीचे ज्ञान प्राप्त किया, आम के बगीचे में धर्म का उपदेश दिया तथा सागौन वृक्ष के वन में परि-निर्वाण प्राप्त किया। अपने उपदेश में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक मनुष्य को पांच साल में कम-से-कम एक वृक्ष जरूर लगाना चाहिए। पीपल और तुलसी में दिव्य औषधीय गुण विद्यमान हैं। पीपल सर्वाधिक ऑक्सीजन देता है, यह वैज्ञानिक तथ्य है। तुलसी के औषधीय गुण सर्वविदित हैं। नारायण का कोई भी भोग तुलसी के बिना पूर्ण नहीं होता है। वायुमंडलीय शुद्धिकरण की दृष्टि से भी तुलसी अत्यधिक ऑक्सीजन प्रदान करने वाला पौधा माना जाता है। इनके पास हानिकारक जीवाणु-विषाणु नहीं पनपते है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार जिस घर में तुलसी की नित्य पूजा होती है, वहां यमदूत कभी नहीं पहुंचते और संभवतया मृत्यु शैया पर पड़े व्यक्ति को यमत्रास से मुक्ति दिलाने के लिए ही तुलसी और गंगा जल अंतिम समय में व्यक्ति के मुंह में डाला जाता है—

तुलसी यस्य भवने प्रात्यहं परिपूज्यते,
तदगृहं निर्वसंति कदाचित यम किंकरा।

इस प्रकार तुलसी भारतीय संस्कृति में जन-जन के रोम में बसी हुई है। तुलसी की रोग निवारक क्षमता के कारण ही आयुर्वेद में इसका महत्व है। कई आयुर्वेदिक दवाएं तुलसी के रस में दी जाती हैं।

आदिवासियों में विवाह के समय महुए के पेड़ पर सिंदूर लगाकर वधू उससे अचल सुहागिन होने का वरदान मांगती है और वर आम के पेड़ को प्रणाम कर उससे सफल वैवाहिक जीवन की कामना करता है।

वैदिककाल से आज तक शमी वृक्ष भारत में अपने विभिन्न गुणों के कारण पूज्य रहा है। राजस्थान में विश्नोई समाज में शमी को विशेषतौर पर पूजते हैं। शमी के काटे जाने पर एक बार विश्नोई समाज ने प्रबल विरोध करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। शास्त्र में शमी को समस्त पापों का शमन करने वाला बताया गया है—

शमी अमम में पापं अमी लोहित कष्टका।
धारिव्यर्जुन वागाचां शमस्य प्रियवादिनी ॥

धार्मिक दृष्टि से शमी वृक्ष में लक्ष्मी का वास माना गया है। इसका उपयोग मांगलिक कार्यों में किया जाता है। अभिज्ञान शाकुंतलम् में महाकवि कालिदास ने शमी का वर्णन इस प्रकार किया है—

दुयंते नाहितं तेजो दधानां भृतये भुवः।
अवेहि तनया ब्रह्मस्त्राग्निगर्भा शमीमिव ॥

राजस्थान में दुर्भिक्ष पड़ने पर शमी की फलियां खाकर लोग अपनी क्षुधा शांत करते हैं। शमी का महात्म्य भारतीय संस्कृति में जगह-जगह धार्मिक पुस्तकों में विशेषतौर पर बताया गया है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार दूब की उत्पत्ति वासुकी नाग की पीठ से हुई मानी जाती है। भादों के शुक्लपक्ष की अष्टमी को दुर्गाष्टमी के रूप में मनाए जाने का विधान है। इसमें दूब की पूजा की जाती है।

जैन तीर्थंकारों को जिन वृक्षों की छाया के नीचे ज्ञान की प्राप्ति हुई उन्हें केवली वृक्ष कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि धार्मिक स्थलों पर केवली वृक्षों के रोपण से उस स्थल की आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि होती है–

एको सद्विप्रा बहुधा भवंति।

भारतीय ग्रंथ इस तथ्य का प्राण हैं कि कृष्ण ने गोकुलवासियों को इंद्र की पूजा की बजाय गोवर्धन पर्वत की पूजा करने हेतु उद्बोधित किया था। आज भी गंगा, यमुना, सरस्वती हमारे लिए पूजनीय संगम नदियां हैं, ये राष्ट्रीय एकता की भी प्रतीक हैं। इसी प्रकार सूर्य, अग्नि, चंद्रमा, वायु, पेड़, जल की भी उपनिषदों में देववत् उपासना की गई है।

प्रकृति के साथ सुसंबद्धता, मध्यकालीन भारत तथा मुगलकाल में भी एक प्रमुख लक्ष्य रहा है। मुगलकाल में कला व स्थापत्य कला का अद्वितीय विकास प्रकृति के साथ इस तारतम्यता को प्रदर्शित करता है कि उक्त काल में मुस्लिम तथा हिंदू कला व परंपराओं के तत्वों का सुखद मिश्रण था।

जिस तरह शरीर की शोभा प्राण से होती है, उसी प्रकार पर्यावरण की शोभा वनों से व वनों की शोभा वन्य प्राणियों से होती है। मानव वृक्षों के बिना जीवित नहीं रह सकता, इसलिए नहीं कि उसे मकान, ईंधन, चारा, छाया व फल, औषधि तथा रोजगार आदि वृक्षों से प्राप्त होते हैं, वरन् इसलिए भी कि वृक्ष जलवायु में संतुलन बनाकर तीक्ष्णता का शमन करते हैं, भूमि-कटाव से रक्षा करते हैं, मानव का समूचा अस्तित्व ही मृदा व जल के समुचित नियंत्रण पर निर्भर है। इसी प्रक्रिया में वृक्ष एक अपरिहार्य कड़ी हैं। ठीक ही कहा गया है– 'वृक्ष से जल, जल से अन्न, अन्न से जीवन'।

वृक्ष बादलों को आमंत्रित करते हैं। भारत की अर्थव्यवस्था वर्षा पर निर्भर करती है। ये पशु के लिए छाया और पक्षियों के लिए रैन-बसेरा हेतु स्थान देते हैं, लेकिन गरीबों द्वारा ईंधन हेतु और विकास व भवनों के लिए पेड़ों को काटा जा रहा है। वह पेड़ जिसके नीचे बैठकर गौतम बुद्ध को बोध हुआ। हमें मालूम होना चाहिए कि सीमावर्ती प्रदूषण के आयात से पीपल, बरगद, नीम, आम आदि सुरक्षा करते हैं–

वृक्ष न काटें, पौधे रोपें, सरिताओं को करें न दूषित,
कृत्रिम गतिविधियों से अपना, करें न वातावरण प्रदूषित।

गौतम बुद्ध के शब्दों में, ''वृक्ष असीमित परोपकार वाली विलक्षण रचना का नाम हैं, यह अपने निर्वाह के लिए कोई मांग नहीं करता और पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ अपने जीवन-चक्र द्वारा उत्पादित सभी उत्पादों को दान कर देता है। यह अन्य जीवों के साथ-साथ अपने काटने वाले, जो नष्ट करता है, को भी छाया अर्पित कर संरक्षण देता है।''

आने वाली पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को सुरक्षित रखने तथा कृषि व वनों की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए हमें जरूरी कदम उठाने होंगे, तभी हम अपने उद्देश्य पूरे कर पाएंगे व आने वाली पीढ़ियों को स्वस्थ पर्यावरण व वर्तमान को सुखी जीवन दे पाएंगे–

यदि शुद्ध हो पर्यावरण, यदि प्रबुद्ध हो हर आचरण।
भय दूर रहेगा रोग का, संतुलित होगा जीवन-मरण।

आज हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या प्रदूषण एवं शुद्ध पर्यावरण की उतनी नहीं है, जितनी पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता के फलस्वरूप होने वाले दुष्परिणामों की है, जिन्हें अपनाकर भारतीय मूल्य, परंपराओं एवं संस्कृति के मूलभूत आयामों पर चोट पहुंचाई जा रही है, जिसके फलस्वरूप चरागाह नष्ट हो रहे हैं, पशुपालन उजड़ रहे हैं, जलाऊ लकड़ी का संकट निरंतर बढ़ता जा रहा है, खनिज उत्पाद से फसल और वन चौपट होते जा रहे हैं, झीलें सूख रही हैं, नदी के पानी के प्रदूषण के फलस्वरूप मछुआरों का जीवन अनिश्चित हो रहा है, हरित-क्रांति समाज पर बोझ बन रही है, बांध जिन्हें देश की प्रगति का नया तीर्थ स्थल कहा गया था, उनका कलश फीका पड़ रहा है। बिजलीघरों के झुंड तैयार हो रहे हैं, विकास के नाम पर झोले में असाध्य बीमारियां आ रही हैं, रासायनिक कीटनाशकों के कारखानों ने हजारों की जान ले ली है।

फर्टिलाइजर्स फैक्ट्ररियां दांतों को विकृत कर फेफड़ों को कमजोर कर रही हैं, गैस रिसाव से सैकड़ों महिलाओं का गर्भपात हो रहा है और तो और हम आकाश में बिजलीघर स्थापित करने की व्यवस्था करने जा रहे हैं। ये सब वैज्ञानिक आविष्कार मानव-जाति के लिए उपादेय सिद्ध न होकर हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। सरकार द्वारा पर्यावरण रक्षा का उत्तरदायित्व वहन करने हेतु कानूनों का निर्माण किया गया है, फिर भी विभिन्न प्रकार के प्रदूषण--जल, वायु, भूमि, ध्वनि, आकाश प्रदूषण निरंतर बढ़ रहा है—

जल, ध्वनि, वायु प्रदूषण, सब पर करना हमें नियंत्रण।
वृक्ष काटकर हम विनाश को, दे न खुला आमंत्रण॥

ऊर्जा की अंधाधुंध खपत व वनों की बेशुमार कटाई, अनायास बढ़ती हुई जनसंख्या, तेजी से फैलता हुआ प्रदूषण और उसके बीच संसाधनों का निर्मम शोषण, यहीं बदला चुकाया मनुष्य ने प्रकृति की अनुकंपा का। फसलों की लालच ने पृथ्वी के गर्भ को चीरकर रासायनिक खाद से भरने को मजबूर किया, विलासिता के दृष्टिकोण ने मिलों, फैक्ट्ररियों, कारखानों और संयंत्रों के माध्यम से चारों ओर प्रदूषण फैलाया। तेज रफ्तार की चाहत ने कारों, ट्रकों और स्कूटरों आदि की ताबड़तोड़ भाग-दौड़ से वातावरण में धुआं-ही-धुआं भर दिया। उपयोग की संस्कृति ने कोयले, पेट्रोलियम एवं अन्य खनिजों को स्वाहा करने के लिए उसे विवश किया तथा बहादुरी खान-पान और सजावट की लिप्सा ने जीव-जंतुओं के व्यापक संहार का रास्ता खोल दिया।

अतः हम मनुष्यों का ऐसे अवसर पर कर्तव्य है कि जिस तेजी से विज्ञान व तकनीक का विकास हो रहा है, उससे हम अध्यात्म पर हावी हो जाने के इस खतरे को टालते जाएं और सारे कृत्य मानवता से ओत-प्रोत ही हों। संसार में स्थित कोई भी वस्तु चाहे निर्जीव हो या सजीव, हम उसका प्रकृति से पृथक् अस्तित्व स्वीकार नहीं कर सकते। विश्व का सारा वातावरण एक इकाई के रूप में समझा जाना वांछित है। अतः घर, परिवार, समाज, राष्ट्र, पड़ोसी, राज्य विभिन्न भूमंडलों में स्थित मानव व प्रकृति सभी पर्यावरण के रूप हैं। प्रकृति इन सब में सर्वोपरि है।

पर्यावरण संतुलन के विभिन्न घटकों—वायु, जल, भूमि, वन, वातावरण, नागरिक स्वास्थ्य, ऊर्जा, जीवन संपदा, राज्य, समाज, जीव-जंतुओं एवं वनस्पति का समग्र रूप से परस्पर समन्वय करते हुए गंभीरता से चिंतन करने की महती आवश्यकता है—

प्रदूषण मुक्त हो पर्यावरण, दूर हटाओ कृत्रिम आवरण।
तन-मन हो साफ-सुथरे, शुद्ध हो हर आचरण॥

व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागकर सामाजिक स्वार्थ को मान्यता देनी चाहिए। प्रकृति एवं मनुष्य में सह-अस्तित्व की भावना का विकास हो, सांस्कृतिक मूल्यों को सर्वोपरि समझते हुए कथनी व करनी में एकरूपता हो, आत्मावलोकन व आत्मनिरीक्षण का विकास, सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में करते हुए मानव-समाज के हित में समर्पित भाव रखने से सामाजिक, राजनीतिक ही नहीं, प्राकृतिक प्रदूषण पर भी रोक लगेगी तथा पर्यावरण संतुलन की संभावनाएं स्वतः ही बढ़ जाएंगी और वायु, जल, मिट्टी, वनस्पति अथवा भौतिक जलीय, वायु और आकाशीय रिश्तों में संतुलन स्थापित हो सकेगा। वस्तुतः पर्यावरण ही मानव-जीवन का मूल आधार है और इसके लिए आवश्यक है कि मानव समष्टि कल्याण की भावना के साथ पर्यावरण से मित्रवत् व्यवहार करें। यजुर्वेद में चर-अचर सभी को मित्र की दृष्टि से देखने का संदेश दिया गया है—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे
मित्रस्य चक्षुष समीक्षा महे।

यजुर्वेद में ही एक और उदाहरण दृष्टव्य है—

सुमित्रिया न आप ओषधयः संतु दुर्भित्रियास्तस्मै
संतु योस्मान दृष्टि यं च वयं द्विष्मः।

अतः जब पर्यावरण के प्रति मानव में मित्रता का भाव रहेगा, तभी वह पर्यावरण सुरक्षित रख सकेगा। मानव को चाहिए कि वह अपने आस-पास की प्राकृतिक संपदाओं को मित्र समझकर उसका उपयोग करे। किसी भी प्राणी, समाज या समूह विशेष का पर्यावरण, उसके आस-पास की प्रत्येक जैविक व अजैविक वस्तुओं को मिलाकर बना है। इस प्रकार पर्यावरण और कुछ नहीं, बल्कि हमारे चारों ओर फैले हुए भौतिक व जैविक मंडलों की प्रतिक्रियाओं द्वारा उत्पन्न वातावरण है।

प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)

वेद-विज्ञान-संस्कृति एवं पर्यावरण

डॉ. मनुप्रताप सिंह

मनुष्य के हृदय में एक कौतूहल आज भी प्रश्नवाचक बना हुआ है कि आखिर संसार है क्या? सृष्टि की रचना, सभ्यता एवं संस्कृति का विकास-क्रम कैसे और किस प्रकार बना और सृष्टि का विनाश कब, कैसे और किस रूप में होने वाला है? युद्ध, महायुद्ध, भूकंप, ओजोन परत में छिद्र या परमाणु विखंडन आदि से संसार का नष्ट होना निश्चित है? ऐसे प्रश्न पर चर्चा-परिचर्चा विश्व-स्तर पर होती रहती है, लेकिन इस विषय में सभी का समान मत नहीं होने से विषय पर प्रश्नवाचक बना हुआ है।

परंतु विभिन्न विद्वानों, वैज्ञानिकों एवं भविष्यवेत्ताओं में संसार की स्थिति, निर्माण और उसके नष्ट होने की तिथि के बारे में मतभेद हो सकते हैं कि वेद, ज्ञान का प्रकाश पुंज है, जिससे ऐसा अखंड, अनंत, अपरिमित ज्ञान बोध होता है, जिसको सृष्टि के ऋषियों ने हृदयंगम किया था। वेद, शास्त्र के विद्वान्, वेद को सृष्टि विज्ञान के संपूर्ण एवं परिपूर्ण ग्रंथ की मान्यता देने हेतु सर्वसहमत हैं। मनुष्य की उन्नति, प्रगति, सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हुआ है या भविष्य में होगा, वह वैदिक विज्ञान के आश्रय से ही संभव है।

विश्व की प्राचीनतम मानव सभ्यता के युग से आधुनिक सभ्यता, संस्कृति एवं वैज्ञानिक आविष्कारों का मुख्यतः आधार भू-मंडल में स्थित प्रमुख चार अवयव—जल, अग्नि, वायु और मृदा हैं। इन चारों वस्तुओं के विषद् ज्ञान को वेद कहते हैं।

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनकी चार अलग-अलग संहिताएं हैं। बिखरे हुए वेद मंत्रों का संकलन करने का कार्य ऋषियों ने संपन्न कर उन्हें संहिताओं में विभाजित किया। भू-मंडल में स्थित चार वस्तुओं में से जल के संबंध में सामवेद में वर्णन किया गया है। सामवेद में जल के इस रूपांतर कार्य तथा गुणों का ज्ञान आदि विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक ढंग से सविस्तार उपलब्ध है। ऋग्वेद से अग्नि के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यजुर्वेद में वायु के विभिन्न प्रकार एवं उनके कार्यों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार अथर्ववेद में मृदा के विभिन्न गुणों के संबंध में जानकारी अवगत हो सकती है। इसी कारण जल, अग्नि, वायु और मृदा को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद कहा जाता है। अग्नि, जल, वायु और मृदा के क्रमशः 21, 1000, 101 एवं 9 मुख्य विभाग होते हैं। इन सबका योग 1,131 के बराबर होता वेदों की भी 1000, 21, 101, 9 ऋचाएं हैं। यजु का अर्थ वायु है और अथर्व का अर्थ मिट्टी है।

प्रत्येक वेद में जल, अग्नि, वायु और मिट्टी पारिभाषिक शब्द हैं और उनसे केवल हमारे इस जल, अग्नि, वायु और मिट्टी का ही तात्पर्य नहीं है, वरन् इन चारों पदार्थों के आदिस्वरूप, प्रकृति की अव्यय अवस्था से लेकर स्थलतम अवस्था तक जितने रूप, प्रकारांतर, विभाग इत्यादि बनते हैं, उन सबका जातिवाचक नाम जल, अग्नि, वायु और मिट्टी वेद में निहित हैं। उदाहरणस्वरूप जल से वेद में घृत, मधु, सुरा, जल इत्यादि समस्त जलीय पदार्थों से अभिप्राय है और जल के सूक्ष्म कण जो भाप रूप में आकाश में स्थित हैं, उनको भी वेद जल ही कहकर पुकारता है।

प्राचीन ऋषियों ने प्रकृति की आदि अवस्था से अन्त्य अवस्था तक पूर्णावलोकन कर प्रत्येक देश में उन देशों की प्राकृतिक रचना को देखकर इन शाखाओं का विस्तृत तथा सक्रम प्रचार किया। उदाहरणस्वरूप उत्तर प्रदेश में जल और वायु प्रधान होने से विंध्य पर्वत के ऊपर साम और यजुर्वेद का प्रचार हुआ तथा विंध्य से नीचे दक्षिण देश अग्नि और भूमि प्रधान होने से वहां ऋग्वेद तथा अथर्ववेद का प्रचार एवं प्रसार हुआ। इससे स्पष्ट है कि हमारे ऋषि-मुनियों को संसार का जबरदस्त सूक्ष्म एवं विस्तृत ज्ञान था, तभी तो वे परिस्थिति-अनुकूल वेदों का प्रचार करने में सक्षम सिद्ध हो सके।

जिन वेदों की रचना भारत में हुई, उनकी 1,131 शाखाएं थीं, उनमें से केवल मात्र 6 शाखाएं ही उपलब्ध हैं अर्थात् 1,125 शाखाएं उपलब्ध नहीं हैं। जर्मन में 103 शाखाएं अवश्य उपलब्ध हैं, जिन्हें जर्मन सरकार ने बहुत ही सुरक्षित ढंग से रखा है, जिनका अध्ययन केवल वहां के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों द्वारा किया जा सकता है। वेद का अर्थ निरुक्त से होता है। प्राचीनकाल में 18 निरुक्त प्रचलित थे। अब भारत में केवल एक यास्कीन निरुक्त ही उपलब्ध है। जर्मनी में 3 निरुक्त उपलब्ध हैं।

वेदों का अध्ययन प्राचीनकाल में वेद की आज्ञानुसार (यजुर्वेद अ. 26/15) ही पर्वतों के शिखर पर अथवा नदियों के संगम पर किया जाता था। ऋक् और अथर्व का अध्ययन पर्वतों पर होता था, कारण कि पत्थर पर जो प्रभाव पड़ता है, वह भी जाना जा सकता है। इससे अग्नि तथा मिट्टी का ज्ञान विशेष रूप से वहां जाना जा सकता है। साम और यजु का अध्ययन नदियों के संगम पर हुआ करता था, इसका कारण भी स्पष्ट है कि दो नदियों के जल-संगम से विभिन्न गुणों एवं शक्तियों की संभावित संभावनाओं का भी अवलोकन हो सकता है। वायु और जल के संघर्ष से नवीन शक्ति के प्रकट होने की संभावनाएं होती थीं, उसका भी प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन सरलता एवं सुगमता से किया जा सकता है। अग्नि और मिट्टी को वैज्ञानिक एकजातीय समझते हैं। ठीक इसी प्रकार जल और वायु भी एकजातीय हैं।

हमारे पूर्वजों ने अनेक ऐसे आविष्कार किए, जिनका विचारमात्र भी आज के वैज्ञानिक नहीं कर सकते। वेद में 18 प्रकार के वायुयानों का उल्लेख है। हमारे ऋषि सूर्य आदि अन्य मंडलों में जा सकते थे। आधुनिक वायुयान के अधिकतम गति 101 मील प्रति घंटा से ऊपर तक जाने की संभावनाएं हम संजोए हुए हैं। सामान्य वायुयान अभी तक 21 मील ऊपर तक ही जा सकता है। 9 प्रकार के विद्युत को ऋषिगण जानते थे। यजुर्वेद के वर्णनानुसार, एक ही विद्युत दीप जिसे उत्तरी ध्रुव के नीचे बिंदु सरोवर के ऊपर रखा जाता था, संपूर्ण एशिया में प्रकाश देता था। ऋग्वेद 4 अ. 4 के अनुसार उनका सामाजिक

जीवन इतना पवित्र तथा उच्च था कि सदैव उनका उद्देश्य यही रहता था कि सभी देशों में शांति तथा स्वराज्य स्थापित रहे।

यजुर्वेद आख्यान 17/20 में लिखा है कि वैदिक मंत्रों के आधार पर मन द्वारा ही सृष्टि की उत्पत्ति क्रम का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिक सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में तथ्यात्मक प्रत्युत्तर देने में असफल हैं कि ईश्वर ने इतने विशाल संसार की रचना कैसे की। जब सृष्टि के आदि में कुछ भी नहीं था तो भला उसका वर्णन कौन कर सकता है? उस काल में न देवता थे और न ही पितृ और न ही मनुष्य, फिर मन और प्राण ही सूक्ष्म अवस्था में उस काल में वहां उपस्थित थे। अतः वेद ने उसी मन की ओर संकेत कर हमें सृष्टि विज्ञान को सही ढंग से जानने व पहचानने का एकमात्र यंत्र है तो म नहीं है? (ऋग्वेद अ. 20 सू. 164 स. 4 के अनुसार)

अपने मन से यदि हम पूछें कि कौन-सा वन है, उस वन में कौन-सा वृक्ष है, उस वृक्ष में कौन-सी डाली है, जिस डाली को काटकर ईश्वर ने इतने बड़े संसार की रचना की है तो इसका उत्तर वृष्ण यजु. अ. 5 में 7 दिया है कि स्वयंभू वन है, वाक् वृक्ष है, मन उसकी डाली है, जिसको काटकर उस एक शक्ति ने इतना बड़ा संसार बनाया है।

ऋग्वेद अ. 2 अ. 20 म. 13 के अनुसार संपूर्ण ब्रह्मांड पांच चक्रों स्वयंभू, परमेष्ठ, सूर्य, पृथ्वी और चंद्र पर आधारित है। प्रत्येक चक्र, सृष्टि, पृथ्वी एवं चंद्र के स्वयंभू मंडल में विलीन हो जाने से प्रलय होती है। जिन शक्तियों और नियमों के आधार पर पांचों चक्र अपने-अपने भार को धारण करते हैं, उन्हें सनातन धर्म कहते हैं, क्योंकि ये आदि से अंत तक धारण किए रहता है। धर्म वही है, जो प्रकृति के अनुकूल हो और पाप वही है, जो प्रकृति के विरुद्ध हो।

भारतीय संस्कृति 'अरण्य संस्कृति' है। वन दार्शनिक एवं रहस्यमय ज्ञान के लिए उपयुक्त स्थल माना गया है, लेकिन आज की भौतिकवादी संस्कृति ने वनों का विनाश द्रुतगति से किया है, जिससे कालांतर में सूर्य एवं पृथ्वी को अपने भार को वहन करने की क्षमता क्षीण होती प्रतीत हो रही है। सूर्य की बैंगनी किरणें पृथ्वी पर सीधे रूप से पड़ने पर संभावित संतुलन को क्षति पहुंचने की संभावनाएं प्रबल बनती जा रही हैं। अब हमें प्रकृति के प्रतिकूल आचरण से जलवायु परिवर्तन के खतरों से सावधान होकर परिस्थिति के संतुलन की आवश्यकता है। जिस पृथ्वी से हमारा जन्म से मृत्यु तक का सह-संबंध है, उस पर करुणामय वृत्ति नहीं है। जो पेड़ अपने काटने वाले को भी छाया देता है, उसकी भी कुल्हाड़ी से हत्या अर्थात् हम पर्यावरण को असंतुलित करके निश्चय ही असनातनी एवं अवैदिक बनते जा रहे हैं, जिससे हमारा भविष्य अंधकारमय परिलक्षित हो रहा है। यदि पृथ्वी पर सूर्य की बैंगनी किरणों के आगमन की गति तीव्र हो गई तो पुंडरीकात्मक संसार नहीं रह पाएगा। अतः समय रहते पर्यावरण को संतुलित रखने से ही मानव सुरक्षित रह सकेगा।

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग,
गांधी स्मारक, पी.जी. कॉलेज,
सुजननगर, जयनगर, मुरादाबाद

भारतीय चिंतन और पर्यावरण-संरक्षण

डॉ. जितेंद्रकुमार सिंह 'संजय'

भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म, संस्कृति और सभ्यता के उत्कर्ष का विराट् चिंतन भारतीय साधकों, ऋषियों, तपस्वियों और आचार्यों की महनीय मेधा का परिणाम है। ज्ञानालोक से आलोकित भारतीय ऋषि अद्वितीय वैज्ञानिक, अनुसंधानकर्ता, मानवता के अनन्य हित-चिंतक, दूरदृष्टि संपन्न पथ-प्रदर्शक थे। वे स्वाध्याय द्वारा इस सत्य से भलीभांति परिचित थे कि प्रकृति द्वारा स्थापित विधानांतर्गत कुछ भी निरर्थक नहीं है। सूर्य, हवा, जल, भूमि, वनस्पति, जीव-जंतु प्रभृति सभी एक-दूसरे के हित में सदैव सहयोगी बने रहते हैं। ये मनुष्य के शुभैषी हैं, अतः मनुष्य का नैतिक धर्म है कि वह इन पर्यावरणीय पदार्थों का यथोचित उपयोग करे और सदैव इनके संरक्षण में निरत रहे।

भारतीय ऋषियों ने मानव-मस्तिष्क को उचित दिग्दर्शन कराने के लिए वेद, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक प्रभृति उत्कृष्ट ग्रंथों की उद्‌भावना की, जिससे मानव-समुदाय समष्टिगत चिंतन में निरत रहते हुए, सामाजिक सद्‌भाव बनाए रखे और प्रकृति में अंगीभूत 'जीयो और जीने दो' के विधान का पालन करते हुए, विकास के प्रत्येक सोपान पर अपने चरण-चिह्न अंकित तो करे ही, साथ ही आत्मोद्धार भी करे। इस सद्‌भाव को बनाए रखने की प्रेरणा यजुर्वेद के शांति मंत्र से प्राप्त होती है, जिसमें द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, वनस्पति प्रभृति में सर्वत्र परम् शांति बने रहने की उदात्त भाव अनुस्यूत है। प्रत्येक घटक में शांति की कामना तत्कालीन ऋषियों की सामाजिक और पर्यावरणीय सद्‌भावना का द्योतक है। यहीं से भारतीय चिंतन के मार्तंड का उषःआलोक प्रकीर्णित होता है—

'द्यौः शांतिरंतरिक्षᳫं शांतिः पृथिवी शांति रापः
शांतिरोषधयः शांतिः। वनस्पतयः शांतिर्विश्वे
देवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः सर्वᳫं शांतिः शांतिरेव
शांतिः सा मा शांतिरेधि ॥'

उपर्युक्त शांति मंत्र में पर्यावरण-संतुलन या सद्‌भाव को बनाए रखने हेतु भारतीय ऋषियों द्वारा प्रार्थना की गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि वैदिककालीन ऋषि पर्यावरण के प्रत्येक रूप की संरक्षा एवं संतुलन के प्रति कितने सजग थे। उन्होंने जन सामान्य में श्रद्धाभाव जागृत कर प्रकृति के समस्त रूपों को अशांत अर्थात् सांप्रतिक परिप्रेक्ष्य में प्रदूषित न करने की प्रेरणा दी। साथ ही जीवन के प्रति संकट बन रहे प्रदूषण से सजग रहने के लिए न केवल सत्परामर्श दिया, अपितु प्रेरित भी किया। इसी क्रम में मैत्री भावना स्थापित करने के लिए मंत्र पाठ का विधान किया गया है—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षंताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य
चक्षुषा समीक्षामहे ॥[2]

अर्थात् सब जीव मेरी ओर मित्रता की दृष्टि से देखें। मैं सबकी ओर मित्रता की दृष्टि से देखूं। सब एक-दूसरे की ओर मित्रता की दृष्टि से देखें।

वस्तुतः वैदिककालीन भारतीय ऋषियों का चिंतन मैत्री-भावना से अनुप्राणित था। इसलिए उन्होंने न केवल मनुष्य के प्रति मनुष्य की मैत्री-भावना की कल्पना की, अपितु मनुष्य के प्रति प्रकृति की और प्रकृति के प्रति मनुष्य की मैत्री-भावना को व्यावहारिक धरातल पर चरितार्थ किया। ऋषियों ने पर्यावरण-संरक्षण के लिए प्रकृति के प्रत्येक घटक की प्रार्थना की है। प्रदूषण मुक्त वायु के लिए पवनदेव से प्रार्थना की गई—

शं नो वातः पवतां[3]

अर्थात् हे पवनदेव! वायु हमारे लिए शुद्ध होकर बहे।

यजुर्वेद में अंतरिक्ष (वायुमंडल) के पवित्र रहने की भी कामना की गई है। मृदा संरक्षण की एक प्रार्थना में कहा गया है—

पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥[4]

अर्थात् मृदा को उर्वर बनाएं तथा उसके प्रति हिंसा (प्रदूषण) न करें।

एक मंत्र में भारतीय ऋषियों ने बादलों से कामना की है कि वे हमारे लिए सुखकारी हों—

शं योरिभि स्रवंतु नः[5]

भारतीय ऋषियों ने वनस्पतियों और पशुओं की रक्षा करने की शिक्षा दी है तथा उनको हानि न पहुंचाने का भी आदेश दिया है। आचार्यों ने वनस्पति देवी की कल्पना की। वनस्पति देवी का ही बिगड़ा हुआ रूप 'वनसत्ती देवी' है। कहने का आशय है कि भारतीय ऋषियों, महर्षियों एवं आचार्यों को प्रकृति-प्रदत्त वनस्पतियों का पर्यावरणीय लाभ भलीभांति ज्ञात था। उन्हें ज्ञात था कि प्रकृति के विधानांतर्गत ये वनस्पतियां अपने विकास के लिए मात्र दस प्रतिशत भाग मृदा से प्राप्त करती हैं और नब्बे प्रतिशत भाग के लिए वायुमंडल पर निर्भर होती हैं। इन क्रियाओं को संपन्न करने के लिए प्रकृति ने वनस्पतियों को प्रकाश संश्लेषण जैसी अद्‌भुत क्षमता प्रदान की है। इसके माध्यम से वे सौर-ऊर्जा से मिलकर वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाई ऑक्साइड तथा पानी के अणुओं को ऑक्सीजन तथा कार्बोहाइड्रेट (खाद्य पदार्थ) में परिवर्तित करते रहने में निरंतर सक्रिय रहती हैं। पार-श्वसन क्रिया द्वारा वनस्पतियां वायुमंडल के भीतर समुचित मात्रा में जल-स्तर स्थापित रखने में योगदान करती हैं। सूर्यमुखी का एक छोटा पौधा दो लीटर और सेब का एक बड़ा पेड़ तीस लीटर पानी प्रतिदिन वायुमंडल में त्यागता है। जंगल की हरित लतिकाएं, नन्हीं-नन्हीं घासें भी इसी प्रकार का योगदान करती हैं। इसी कारण तीव्र आपातकाल में बाग-उद्यान-जंगल की हरिताभा ताप-कष्ट से मुक्ति प्रदान करती है। वनस्पतियों के पारश्वसन और जलाशयों के सौर-वाष्पीकरण द्वारा पानी के कण वायुमंडल में पहुंचते हैं और पुनः हिम तथा वर्षा के रूप में मनुष्य को प्राप्त होते हैं। यह कभी न समाप्त होने वाली दोतरफा आवागमन क्रिया है। इसी के माध्यम से पृथ्वी के जल-भंडार प्राकृतिक रूप से सतत् समृद्ध होते रहते

हैं। भारतीय आर्षग्रंथ इस उपयोगिता को ध्यान में रखकर इनको स्वच्छ रखने का आदेश एवं परामर्श देते हैं।

इस संसार में जीवित रहने के लिए समस्त जीवधारियों को स्वच्छ हवा के पश्चात् दूसरी सबसे बड़ी अनिवार्यता जल की है। इन दोनों के अभाव में पृथ्वी पर जीवन की कल्पना ही निराधार है। 'जल' और 'वायु' के संयोग से ही 'जलवायु' का सृजन होता है। जलवायु की स्वच्छता एवं उत्कृष्टता पर ही खाद्य पदार्थों की उपलब्धता निर्भर है। मिट्टी, जल, वायु और ऊष्मा को यथोचित संस्कार प्राप्त कर खाद्य पदार्थ या खाद्यान्न उत्पन्न होता है। खाद्य पदार्थ या खाद्यान्न को ग्रहण करते हुए आत्मोद्धार की ओर कदम बढ़ाते रहना सभी जीवधारियों की नियति है। इन खाद्य पदार्थों का आधार वनस्पति है। वनस्पतियों के माध्यम से ही शाकाहारी जीवों के लिए फल, फूल, खाद्यान्न उपलब्ध होते हैं। मांसाहारी जीवों के लिए उनकी रुचि के अनुरूप भोज्य जीवों की श्रृंखला का विकास होता है। इस प्रकार की अद्भुत खाद्य-श्रृंखला की स्थापना स्वयं प्रकृति ही करती है।

भारतीय ऋषियों ने पारिस्थितिकीय विश्लेषण की पराकाष्ठा को प्राप्त कर पर्यावरण-संरक्षण के लिए अनेक सरल तथा सामाजिक-आचरण के लिए हितकर नियम प्रतिपादित किए थे, जिनका उद्देश्य था कि समाज का प्रत्येक सदस्य अपने दैनंदिन कर्म के संपादन के साथ ही इस महत्वपूर्ण संरक्षण-क्रिया में जाने-अनजाने अपना योगदान करता रहे। उन दूरदर्शी ऋषियों ने नियमों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उन्हें व्यावहारिकता एवं मानव-मनोविज्ञान से अनुस्यूत करते हुए स्वर्ग-नरक, शुभाशुभ, धर्माधर्म, पाप-पुण्य प्रभृति की संज्ञा प्रदान कर सन्मार्ग निबद्धित किया। संप्रति वैज्ञानिकता की दृष्टि से विचार-विनिमय करने वाली एवं शिक्षित होने के अहंकार में दिग्भ्रांत युवा पीढ़ी प्राक्तन महर्षियों के धर्माभिप्रेरित पारिस्थितिकीय विश्लेषण की पराकाष्ठा को समझे बिना ही भारतीय धर्माचरण को मिथ्या ढोंग एवं आडंबर सिद्ध करने में ही अपनी योग्यता समझती है। तब और अब में इतना ही अंतर है कि तब का मनुष्य ऋषियों के नियमों के गूढ़ रहस्य को समझे बिना उनका पालन करते हुए स्वतः अनुशासित रहता था और प्राकृतिक संतुलन के साथ-साथ पर्यावरण का अनजाने ही संरक्षण करता था, जबकि आज का मनुष्य भूगोल एवं खगोल के रहस्य को अनावृत्त कर चुका है। उसके लिए कुछ भी अज्ञेय नहीं है, संपूर्ण ब्रह्मांड उसके लिए हस्तामलकवत् है, किंतु सब कुछ जानते हुए भी वह स्वार्थसिद्धि के कारण प्रकृति का दोहन करते हुए पर्यावरण को प्रदूषित करता है। तब का मनुष्य अशिक्षित होते हुए भी पर्यावरण की दृष्टि से संपन्न था और आज का मनुष्य शिक्षित होकर भी पर्यावरण की दृष्टि से विपन्न है। इसका मूल कारण भारतीय चिंतन से विमुख होना है। ऋषियों ने इतने व्यावहारिक नियमों का निर्माण किया था कि उनके अनुरूप आचरण से ही पर्यावरण संरक्षित हो जाता था।

आर्षग्रंथ पीपल, वट, तुलसी प्रभृति कतिपय वृक्षों को पूजनीय बताते हुए उनके काटने का निषेध करते हैं। वट, पीपल आदि देववृक्ष हैं। वटवृक्ष के मूल में भगवान् ब्रह्मा, मध्य में भगवान् जनार्दन तथा अग्रभाग में देवाधिदेव शिव प्रतिष्ठित रहते हैं। देवी सावित्री भी वटवृक्ष में स्थित रहती हैं—

वटमूले स्थितो ब्रह्मा वटमध्ये जनार्दनः।
वटाग्रे तु शिवो देवः सावित्री वटसंश्रिता ॥

ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या को वटसावित्री व्रत में वट का विशेष पूजन होता है। इससे सौभाग्य की वृद्धि होती है। ऐसे ही पीपल के मूल में भगवान् ब्रह्मा, त्वचा में भगवान् विष्णु, शाखा में भगवान् शिव एवं पत्र में देवताओं का अधिवास है—

मूले ब्रह्मा त्वचा विष्णुः शाखा शंकरमेव च।
पत्रे-पत्रे देवानाम वासुदेव नमस्तुते ॥

पीपल वृक्ष रूप में श्रीहरि का स्वरूप है। भगवान् ने उसे अपनी विभूति बताया है—

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्।

'छांदोग्योपनिषद्' में संपूर्ण संसार की उपमा अश्वत्थ (पीपल) से दी गई है—

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूले ऽभ्यहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो...
स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ॥[6]

अर्थात् हे सौम्य! यदि कोई इस महान् वृक्ष के मूल में आघात करे तो वह जीवित रहते हुए भी केवल रसस्राव करेगा। यह वृक्ष जीव-आत्मा से ओत-प्रोत है और जल-पान करता हुआ आनंदपूर्वक स्थिर है।

गीता में मानव के स्नायु-संस्थान की उपमा उल्टे अश्वत्थ से दी गई है—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्[7]

वस्तुतः पीपल वृक्ष को भगवान् विष्णु और वटवृक्ष को भगवान् शिव का स्वरूप प्रदान करने पर इन वृक्षों के स्थायी संरक्षण की व्यवस्था इतनी सफल सिद्ध हुई कि आज भी भारतीय जन-मानस में अधर्म के भय से इन वृक्षों के न काटने की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। तत्वतः ये चिरंजीवी, वृहद्, छतनार, औषधीय तथा प्रदूषण नियंत्रण, गुण-संयुक्त होने के साथ ही भारतीय पर्यावरणीय परिवेश में सहस्राब्दियों से स्थापित सबसे उपयुक्त वृक्ष हैं। ये महदाकार वृक्ष मृदा-निर्माण, संरक्षण, जैविक उर्वरा-वृद्धि, जीवधारियों के लिए वायुमंडल में सही वायु-मिश्रण-वृद्धि के साथ उसे स्वच्छता प्रदान करते रहने एवं भू-जल-भंडारण की वृद्धि में सहायक होने की भूमिका का निर्वाह करते हैं। अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष तुलसी के समान अहोरात्र प्राणवायु (ऑक्सीजन) का प्रसारण करता है। अनुमानतः पीपल का वृक्ष एक घंटे में 1713 लीटर प्राण-वायु (ऑक्सीजन) का उत्सर्जन करता है और 2252 लीटर कार्बन डाई-ऑक्साइड (CO_2) का प्रभक्षण कर अपना भोजन बनाता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के वृक्ष कई प्राणियों के लिए भोजन तथा आवास के माध्यम भी होते हैं।

वनस्पतियों में सोम का उल्लेख वन के राजा के रूप में हुआ है। ऋग्वेद के पूरे नवम् मंडल में तथा अन्य मंडलों में सोम की स्तुतियां हैं। वस्तुतः सोम एक शक्तिवर्धक तत्व है, उससे मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की शक्तियों में वृद्धि होती है। वैदिक सूक्तों में सोम लता को भगवान् का रूप कहा गया है—

त्वमिमा औषधिः सोम विश्वास्त्वमपो अजनय स्त्वं गाः।
त्वमा ततन्योर्वंतरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥[8]

अर्थात् हे सोम! आपने ये सब औषधियां, जल और गौएं उत्पन्न की हैं। आपने यह विशाल अंतरिक्ष फैलाया है और प्रकाश से अंधकार को दूर किया है।

सोम के अतिरिक्त ऋग्वेद में शाल्मली, खदिर, सिन्सोपा, विभिदक, शमी और प्लक्ष आदि वृक्षों का नामोल्लेख हुआ है। फलदार वृक्षों में उर्वारुक, कर्कंधु, कुवलय, उदुंबर, खजूर, बिल्व प्रभृति का उल्लेख संहिताओं में प्राप्त होता है। भारतीय ऋषियों ने अपने प्रातिभ ज्ञान से वनस्पतियों द्वारा दिव्य औषधियों का निर्माण कर वनस्पति-जगत् की अलौकिक महत्ता का प्रतिपादन किया। वेदों में औषधियों की भी प्रार्थनाएं की गई हैं। एक प्रार्थना में विवृत्त है—

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपा मधुमन्नो भवत्वंतरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यंतो अन्वेनं चरेम् ॥[9]

अर्थात् औषधियां-वनस्पतियां हमारे लिए मधुमती हों। द्यु, जल, अंतरिक्ष हमारे लिए मधुर हो। भूमि भी हमारे लिए मधुरतायुक्त हो और हम किसी भी तरह से हिंसित न होते हुए क्षेत्रपति का अनुसरण करें।

वृक्षों के विकास के लिए मंगलानुशंसा की जाती थी और उन्हें सुखी जीवन के लिए अपरिहार्य माना जाता था—

वनस्पते शतवल्शो वि रोह
सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः
प्रणिनाय महते सौभगाय ॥[10]

हे वनस्पते! इस अत्यंत तीक्ष्ण फरसे ने तुझे बनाया है, तू शताधिक शाखाओं वाला होकर उत्पन्न हो और हम भी सहस्राधिक शाखाओं से युक्त होकर उन्नति करें।

भारतीय ऋषि इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे कि मनुष्य और वनस्पति-जगत् अन्योन्याश्रित रूप से परस्पर निर्भर हैं। इसलिए ऋषियों ने वनस्पतियों और औषधियों के गुणों की वृद्धि के लिए मंत्रों का विधान किया है—

यः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः।
वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ॥[11]

इसी में वृक्षों को वन का स्वामी कहा गया है, जो मनुष्य को पाप से बचा सकते हैं—

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः।
इंद्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चंत्वंहसः ॥[12]

वृक्षों को साक्षात् ब्रह्म मानते हुए कहा गया है कि दस कुआं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ी के बराबर एक तालाब, दस तालाब के बराबर एक पुत्र एवं दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है—

दश कूप समो वापी दश वापी समो सरः।
दश सरः समो पुत्रः दश पुत्र समो तरुः ॥

प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज ऐषणात्रयी—पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा की कामना करता रहा है। इनमें भी पुत्रैषणा का महत्व सर्वाधिक है। दस पुत्र के समतुल्य एक

वृक्ष कहकर ऋषियों ने न केवल वृक्ष की महत्ता को प्रतिपादित किया, अपितु वृक्षारोपण को ही अगले जन्म की पुत्रैषणा की पूर्ति का भी साधन बताया—

वृक्षारोपयितुर्वृक्षाः परलोके पुत्रा भवंति ।[13]

ऋषियों ने बताया है कि जो व्यक्ति पीपल, नीम और बरगद के एक-एक, चिंचिड़ी (इमली) के दस, कपित्थ, बिल्व और आमलक (आंवला) के तीन-तीन और आम के पांच पेड़ लगाता है, वह कभी नरक में नहीं जाता—

अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकम् ।
कपित्थबिल्वामलकत्रयं च पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् ॥[14]

वस्तुतः भारतीय समाज स्वर्गकामी एवं मोक्षकामी है। भारतीय जन नरकगामी होना तो दूर नरक का दर्शन भी नहीं करना चाहते। ऋषियों को भली-भांति ज्ञात था कि भोले-भाले भारतीयों को नरक का सर्वाधिक भय है। इसी बात का फायदा उठाते हुए उन्होंने वृक्षारोपण के विधान से पर्यावरण-संतुलन का मार्ग प्रशस्त किया।

वैदिक संहिताओं के अतिरिक्त उपनिषद् ग्रंथ भी वृक्षों के महत्व को यथावत् स्वीकार करते हैं। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में महर्षि याज्ञवल्क्य ने मानव-शरीर से वृक्ष की तुलना करते हुए उनके निर्विवाद महत्व का प्रतिपादन किया है—

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा ।
तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका बहिः ॥
त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यंति त्वच उत्पटः ।
तस्मात् तदा तृण्णात् प्रैति रसो वृक्षादिहतात् ॥
मांसान्यस्य शकराणि की नाटऽस्नावतत् स्थिरम् ।
अस्थीन्यंतरतो दारुणि मज्जा मज्जोपमा कृता ॥[15]

अर्थात् जैसा अरण्य का वृहद् वृक्ष है, वैसा ही मानव शरीर भी है। मानव शरीर में रोम हैं, वृक्ष में पत्र हैं। मानव की त्वचा है, वृक्ष की बाह्य छाल है। जैसे मानव की त्वचा से रक्त प्रवाहित होता है, वैसे ही वृक्ष की बाह्य छाल से रक्तपात होता है। मानवीय मांस और मांसपेशियों की तरह वृक्ष की बाह्य छाल का आभ्यांतर भाग है। मनुष्य में जैसे नाड़ी-जाल है, वैसे ही वृक्ष का कीनाट (लकड़ी से संपृक्त कोमल भाग) है। उसकी अंदर की लकड़ियां मानों अस्थियां हैं। वृक्ष की मज्जा मनुष्य की मज्जा-सदृश है।

यद्यपि 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में महर्षि याज्ञवल्क्य ने मानव-शरीर से वृक्ष का तुलनात्मक विश्लेषण पुनर्जन्म-संबंधी चर्चा के अंतर्गत किया है, तथापि इस विश्लेषण से वृक्ष-वनस्पतियों में जीवनानुसंधान की सुस्पष्ट दृष्टि विद्यमान है। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा वृक्ष में जीवनानुसंधान से बहुत पहले भारतीय ऋषि इस तथ्य से परिचित थे। इस तथ्य का प्रमाणन 'छांदोग्योपनिषद्' से भी होता है—

अस्य यदेकाऽशाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति
द्वितीयां जहात्यथ-सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा
शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति ।[16]

भारतीय ऋषियों ने वृक्षों पर न केवल जीवानानुसंधान किया, अपितु उन्हें अवध्य बताया। ऋषियों ने बताया कि वृक्षों को काटना अपराध है। इस अपराध के लिए दंड एवं प्रायश्चित का प्राविधान है। व्यर्थ में वृक्ष काटने वाला व्यक्ति 'असिपत्र' (एक नरक जहां तलवार के समान पत्ते वाले वृक्ष हैं) में स्थान पाता है। ऋषियों ने वृक्षों को काटने पर दंड का विधान दर्शा कर पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में वृक्षों की अनिवार्यता का बोध कराया है। आज इस प्रकार के नियम विश्व के कई देशों में बनाए जा रहे हैं।

प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धति के अनुसार पृथ्वी में ऐसी कोई भी वनस्पति नहीं है, जो औषध न हो। इसलिए यजुर्वेद में वानस्पतिक औषधियों को अच्छा मित्र बताकर उनके फलने-फूलने की कामना की गई है, ताकि वातावरण शुद्ध रहे तथा प्राणी निरोगी हों—

माध्वीर्नः संत्वोषधीः।[17]

महर्षि पराशर ने 'वृक्ष आयुर्वेद' संज्ञक ग्रंथ का प्रणयन किया है, जिसमें बीजोत्पत्ति, वानस्पत्य, गुल्म, वनस्पति, लता तथा चिकित्सा नामक छह कांड हैं। अथर्ववेद में आकृति तथा लक्षण के आधार पर पादपों को सात भाग—वृक्ष, तृण, औषधि, गुल्प, लता, अवतान तथा वनस्पति में वर्गीकृत किया गया है। आयुर्वेद ही नहीं, अपितु विश्व की चिकित्सा-पद्धति मूलतः वनस्पतियों पर निर्भर है। अतः वृक्ष औषधि है, जीवन है। 'चरकसंहिता', 'सुश्रुतसंहिता', 'शार्ङ्गधरसंहिता', 'राजनिघंटु', 'मदननिघंटु' प्रभृति ग्रंथों में इस तथ्य का विस्तार के साथ विवेचन किया गया है।

आचार्य रामकृष्ण झा ने 'द्रौपदी' शब्द की वन के संदर्भ में व्याख्या करते हुए लिखा है, "द्रौपदी राजा द्रुपद की पुत्री थी। 'द्रुपद' शब्द का 'द्रु' शाखा और 'पद' मूल का द्योतक है। 'द्रु' से ही 'द्रुम' शब्द बना है, जिसका अर्थ पेड़ अथवा वृक्ष है। द्रुपद-संस्कृति अर्थात् 'वन-संस्कृति' के अप्रतिष्ठित होने के कारण ही 'महाभारत' का युद्ध हुआ। वस्तुतः वन-संस्कृति को आघात पहुंचाना, सृष्टि-विनाश का कारण बन सकता है।"[18] वर्तमान संदर्भ में पर्यावरण-संरक्षण अत्यंत प्रासंगिक एवं ज्वलंत विषय है। इसका निदान वन-संस्कृति के माध्यम से ही संभव है।

भारतीय ऋषियों ने पर्यावरण के अन्य घटकों को भी संरक्षित करने का आदेश एवं परामर्श दिया है। जल को देव स्वरूप मानते हुए नदियों को 'जीवनदायिनी' कहा गया है। 'अथर्ववेद' में विवृत्त है कि जल एक विश्वसनीय औषध है। जल विश्वभेषज (दवा) है—

आप इद् वा उ भेषजीरापो अभीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चंतु क्षत्रियात् ॥[19]

नदियों, तालाबों आदि में मल-मूत्र, थूक अथवा अन्य दूषित पदार्थों का विसर्जन अशुभ कार्य है।[20] बावड़ी, पोखर, तालाब आदि से पांच मुट्ठी मिट्टी बाहर निकालकर स्नान करना शुभ माना गया है। इसके पीछे भावना यह थी कि यदि प्रत्येक व्यक्ति स्नान करने से पूर्व पांच मुट्ठी मिट्टी बाहर निकालेगा तो सरोवर कभी उथला नहीं होगा।

आर्ष ग्रंथों में इष्टपूर्तधर्म की बड़ी महिमा गाई गई है। यज्ञ-यगादि का संपादन 'इष्ट' और निःस्वार्थभाव से कुआं, बावड़ी, तालाब, देवालय, धर्मशाला, मंदिर, पौसला प्रभृति का निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराना, छायादार एवं फलदार वृक्ष लगाना 'पूर्त' है। 'यमस्मृति' में वर्णित है कि इष्टकर्मों से स्वर्ग तथा पूर्तकर्मों से मोक्ष की प्राप्ति होती है—

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षां समश्नुते ॥[21]

'मत्स्यपुराण' तथा 'पद्मपुराण' के सृष्टिखंड में वृक्षारोपण की विधि बताकर वृक्षारोपण महोत्सव मनाने का माहात्म्य बताया गया है। जो व्यक्ति विधि-विधान से वृक्षारोपण करता है, उसकी सारी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं और वह अक्षय फल का भागी होता है–

सर्वान् कामानवाप्नोति फलं चानन्त्यमश्नुते ।[22]

भविष्यपुराण में कहा गया है कि जो व्यक्ति छाया, फूल और फल प्रदान करने वाले वृक्षों का रोपण करता है या मार्ग एवं मंदिर-परिसर में वृक्षारोपण करता है, वह अपने पितरों का उद्धार कर देता है, साथ ही शुभ परिणाम को प्राप्त होता है। जिसको पुत्र नहीं है, उसके लिए वृक्ष ही पुत्र हैं। अश्वत्थ वृक्ष संतानप्रद, अशोकवृक्ष आनंदप्रद (शोकनाशक), प्लक्ष (पाकड़) वृक्ष उत्तम ज्ञानप्रद, बिल्व वृक्ष दीर्घायुष्यप्रद, वट वृक्ष मोक्षप्रद, आम्र वृक्ष अभीष्ट कामनाप्रद तथा कदंब वृक्ष विपुल वैभवप्रद होता है। इस प्रकार शास्त्रों में वृक्षारोपण से लौकिक-पारलौकिक फल की प्राप्ति बताई गई है।

आज के वैज्ञानिक युग में भले ही ऊपर निर्दिष्ट वृक्ष विशेष के माहात्म्य विशेष को लोग अवैज्ञानिक एवं कपोल-कल्पित मान लें, किंतु यह अनुभूत सत्य है। भारतीय ऋषियों ने अपने आश्रम की प्राकृतिक प्रयोगशाला में परीक्षण करने के पश्चात् ही किसी मत का प्रतिपादन किया था।

यजुर्वेद में वनस्पतियों की रक्षा के साथ-साथ पशुओं की रक्षा का भी उल्लेख है–

अभयं नः पशुभ्यः ।[23]

द्विपादव चतुष्पात् पाहि ।[24]

यजुर्वेद में मनुष्य को स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वे पशुओं को निर्भय होकर रहने दें, उनके साथ हिंसक व्यवहार न करें। शास्त्रों में छोटे-बड़े कई पशु-पक्षियों को देवी-देवताओं का वाहन बताकर उनको श्रेष्ठता प्रदान की गई है। भारतीय 'गोवंश' को 'गोमाता' के रूप में प्रतिष्ठित कर उसे 'अघ्न्या' (न मारने योग्य जीव) जैसी संज्ञा प्रदान की गई है। वेदों में गाय के साथ-साथ वृषभ (बैल) को भी 'अघ्न्य' माना गया है–

गवां यः पतिरघ्न्यः ।[25]

यहां बैल को गाय का पति बतलाया गया है। शास्त्रों में गायों को चरने आदि के लिए 'गोचरभूमि' छोड़ने की बात कही गई है। जिस गोचरभूमि में सौ गाय और एक बैल स्वतंत्र रूप से विचरण करते हों, वह भूमि 'गोचर्मभूमि' कहलाती है, ऐसी भूमि का दान करने से सभी पापों का नाश होता है–

गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठत्ययंत्रितः।
तद् गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाधनाशनम् ॥[25]

'गोचर्मभूमि' परती छोड़ने के वैज्ञानिक तथ्य हैं, उसके लाभ कुछ समय पहले तक प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होते रहे हैं। संप्रति यह परंपरा लुप्त-सी होती जा रही है, जिससे गोधन की बहुत हानि हो रही है।

गाय से मात्र दूध भर ही नहीं, अपितु अनेक जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। भारत कृषि-प्रधान देश है। यहां की सर्वाधिक प्रजा कृषि पर आद्धृत है। भारतीय

कृषि को उन्नत बनाने में गोवंश का योगदान किसी से छिपा नहीं है। गोधन-पंचगव्य—गोबर, गोमूत्र, गोक्षीर, गोदधि एवं गोघृत से निर्मित विभिन्न प्रकार की आयुर्वेदिक एवं जैविक औषधियां बिना किसी उत्तर प्रभाव (साइड इफेक्ट) के असाध्य रोगों को ठीक कर रही हैं।

कृषि-कार्य तथा भू-जल भंडारण को समृद्धि प्रदान करते रहने में 'भूसत ही मृदा' की उपस्थिति एक अन्य अनिवार्यता है, जिसे केवल वनस्पतियां ही संरक्षित कर सकती हैं। इस मृदा के अस्तित्व में रहने पर ही पेड़-पौधे उगते हैं और कुछ समय में ही जंगलों का रूप धारण कर स्थानीय मृदा परत को सुरक्षा कवच प्रदान कर उसके क्षरण को न केवल रोकते हैं, अपितु भू-जल भंडारण को समृद्ध करते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि 2.6 सेंटीमीटर सतही उपजाऊ मृदा निर्माण में 500 से 1000 वर्ष लग जाते हैं और इस मृदा निर्माण में मात्र प्राकृतिक वनस्पतियां ही सहायक हैं। संप्रति वृक्षों की अंधाधुंध कटाई एक भयावह वास्तविकता की ओर इंगित कर रही है कि करोड़ों रुपये व्यय करने के बाद भी उपजाऊ मृदा कहीं से क्रीत नहीं की जा सकती। डॉ. अनंतराम मिश्र 'अनंत' की निम्न पंक्तियां इस संदर्भ को भली-भांति रेखांकित करती हैं—

वरदहस्त-सी मानव के सिर पर जिनकी शाखाएं
वसुंधरा के विशद गर्भ की मौन-मुखर गाथाएं
जिनकी डालें सृष्टि-यज्ञ की हैं पावन समिधाएं
फहराती हैं हरित-क्रांति की जिनसे विजय-ध्वजाएं
वृक्ष भुजाएं सृजन-पुरुष की व्योमोन्मुख सुषमाएं
पत्र-पत्र पर सत्र प्रगति के सुमन-सुमन कविताएं।

हरे पेड़ काटना पुत्र-हत्या-सा पाप घृणित है
दल-प्रसून तोड़ना कुवेला में नितांत वर्जित है
ये भी मानव के समान ही जगते हैं, सोते हैं
हर्षित होते लहराते हैं, गाते हैं, रोते हैं
अगर चाहते हो जीना, तो इनको भी जीने दो
अमृत न दो, तो विष ही इन्हें, प्रदूषण का पीने दो
इनका जनन, निषेचन, संरक्षण, संवर्द्धन कर ले
ब्रह्मपुत्र मानव! दुकूल में शस्य संपदा भर ले![7]

निश्चय ही वृक्ष प्रदूषण के विष को पीकर मनुष्य को अमृत प्रदान करने वाले नीलकंठ हैं। संभवतः इसलिए भगवान् शिव के वैदिक स्तोत्र 'रुद्राष्टाध्यायी' में वृक्षों को पशुपति का हरित-विग्रह कहा गया है, 'नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनाम्पतये नमः'। वृक्ष हरे-हरे केशोंवाले पशुपति हैं। अतएव ये नमस्कार के योग्य हैं।

वृक्ष वनस्पतियों में प्राकृतिक रूप से विद्यमान गुण-धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए आयुर्वेद के महान् आचार्य चरक ने कहा है कि प्राकृतिक रूप में उगने वाली सभी वनस्पतियां किसी-न-किसी रूप में औषधीय गुणों से युक्त एवं मानवोपयोगी हैं।

भारतीय भूगोल तथा जलवायु-परिवेश के अंतर्गत भौतिक रूप में तालाब-निर्माण के ऋषियों-महर्षियों द्वारा प्रोत्साहन देना पारिस्थितिकीय विधान के उच्च-स्तरीय ज्ञान से उभरा

नियम है। एक अनुमान के अनुसार अगर भारत के प्रत्येक जिले के तीन प्रतिशत भू-भाग में तालाबों का निर्माण कर दिया जाए तो देश में जल-समस्या का स्थायी निदान हो जाए। तालाबों में वर्षा का पानी एकत्र रहता है और शनैः-शनैः मृदा में रिसते हुए भूमिगत जल-भंडारण को समृद्धि प्रदान करता है। इससे कुओं एवं नलकूपों में वांछित जल-स्तर विद्यमान रहता है। इसलिए भारतीय आचार्यों ने तालाबों के रख-रखाव पर अधिकाधिक बल दिया है। तालाब की गहराई निरंतर बनी रहे, इसलिए आचार्यों ने यह विधान बनाया कि प्रत्येक व्यक्ति पांच मुट्ठी मिट्टी निकालने के बाद ही तालाब में स्नान करें। भारत में लगभग 53,330 लाख टन मृदा का क्षरण प्रतिवर्ष हो रहा है, जिसका 21 प्रतिशत प्रवाहित होकर समुद्र में और 10 प्रतिशत जलाशयों की तह में जमा होकर जल ग्रहण क्षमता को एक से दो प्रतिशत वार्षिक दर से न्यून कर रहा है। अतएव तालाब, पोखर, जलाशय, सरोवर आदि की गहराई को बनाए रखने में पांच मुट्ठी मिट्टी निकालने वाली क्रिया का निर्विवाद महत्व है। तालाब के बंध को सुरक्षित रखने के लिए अश्वत्थ, बरगद, उदुंबर, आम्र, निंब, बिल्व, प्लक्ष, वंकुल (मौलश्री), कदंब, कपित्थ, जंबु (जामुन), मधूक प्रभृति भारतीय वृक्ष लगाने की चिरंतन प्रथा रही है। शास्त्रों में वृक्षविहीन बंध की तुलना मूर्तिविहीन मंदिर से की गई है। कतिपय स्थानों पर अरहर के पेड़ बंध में लगाए जाते हैं। नये तालाब के बंध में सरसों की खली का धुआं करने की प्रथा के दर्शन होते हैं, जिससे मूषक आदि जीव उसमें बिल बनाकर उसे क्षीण न करें। तालाब के जल को स्वच्छ बनाए रखने के लिए उसमें मत्स्य, कच्छप, कर्क प्रभृति प्राणी भी छोड़े जाते हैं।

प्रकृति ने स्थानीय स्थलाकृति-परिवेश में वर्षा तथा पानी-संचयन क्षमतानुरूप ही नदी-नालों का निर्माण किया है। इसलिए आरण्यक स्वरूप को निर्वृक्ष करने से प्रकृति असंतुलित हो जाती है, जिससे सतही मृदा-क्षरण-क्रिया सक्रिय हो जाती है और कालांतर में मृदा-कवच के अभाव में भूमिगत चट्टानें सतह पर प्रकट होकर प्रकृति द्वारा स्थापित ऊर्जा निर्णायक स्रोतों—सौर, पवन, वृष्टि के प्रभाव में भू-जल-भंडारण प्रभावित होने लगते हैं, जिससे कृषि-उत्पादन क्षमता दुष्प्रभावित होती है। ऐसी स्थिति में वर्षाकाल का जल वसुधा के अंतर में समाविष्ट होने के अपेक्षा नव-निर्माणाधीन बालू के साथ स्थानीय नदी-नालों में प्रवाहित होकर उन्हें दिन-प्रतिदिन उथला कर उनके जल-प्रवाह की क्षमता को निरंतर न्यून करता रहता है। इससे वर्षा ऋतु में इन नदी-नालों के आवाह क्षेत्र में त्वरित बाढ़ की संभावना बलवती हो जाती है। ऐसे क्षेत्रों के नदी-नाले वर्ष की अन्य ऋतुओं में 'सदानीरा' की मर्यादा से च्युत हो जाते हैं।

आज विश्व में जल-भंडारण को समृद्ध करने के लिए 'जलसंभर-प्रबंध कौशल' कार्य के दौरान प्राचीन भारतीय नियम व्यवहार रूप में अपनाए जा रहे हैं।

भारतीय ऋषियों ने जिन पुनीत सरिताओं को जीवनदायिनी एवं संस्कृति-स्रोत-स्विनी कहा है, उन्हीं को वर्तमान मनुष्य ने स्वार्थ के वशीभूत होकर विषाक्त कर दिया है। बिहार की प्रसिद्ध दामोदर नदी बोकारो एवं राउरकेला इस्पात संयंत्र, बंगाल पेपर मिल्स एवं सिंदरी उर्वरक कारखाने के अपशिष्ट पदार्थों का संवहन करने के कारण प्रदूषित हो गई है। 'राजनिघंटु' के अनुसार 'रुचिदं संतापशोषापहं पथ्यं वह्निकरं तथा च बलदं क्षीणाङ्ग पुष्टिप्रदम्' गुणयुक्त महानद शोणभद्र की स्थिति बिहार में दामोदर नदी से भी बदतर है।

यही स्थिति पश्चिम बंगाल की हुगली नदी, तमिलनाडु की कावेरी नदी, केरल की चालियार नदी, महाराष्ट्र की थानेक्रीक नदी, ओडिशा की राकुल्या नदी एवं उत्तर प्रदेश की सई आदि नदियों की है। यही नहीं गंगा, यमुना, चर्मण्यवती, नर्मदा, महानदी, कृष्णा, कावेरी, वैगे प्रभृति पवित्र नदियों का भी यही हाल है। वस्तुतः प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक दोहन करने में मनुष्य प्राचीन ऋषियों के आदेश एवं सत्परामर्श को भूल बैठा है, जिसके कारण उसे ऐसी भयावह परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। यद्यपि जल-प्रदूषण की गंभीर समस्या से मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से केंद्र सरकार ने 1974 ई. में 'जल प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण अधिनियम' पारित किया तथा 1985 ई. में 'केंद्रीय गंगा प्राधिकरण' का गठन किया, तथापि इसे किसी स्थायी निदान की अपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि स्वात्मानुशासन की प्रेरणा से ही जल-प्रदूषण जैसी गंभीर समस्या का निदान हो सकता है।

मानवीय गतिविधियों के फलस्वरूप विश्व में चतुर्दिक पारिस्थितिकीय असंतुलन से पर्यावरण-प्रदूषण स्तर में वृद्धि और प्राकृतिक खाद्य-शृंखलाओं के ध्वस्त होने का सिलसिला चल पड़ा है। वनस्पति के लुप्त होने से उस पर आश्रित जीव-जंतुओं की प्रजातियां भी विलुप्त होती जा रही हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के संदर्भ में भगवान् महावराह द्वारा हिरण्याक्ष-वध एवं वसुमत्योद्धार-कथा में अंतर्निहित प्रतीकों का निर्विवाद महत्व है। हिरण्याक्ष कोई राक्षस नहीं, अपितु सोने की आंखवाला धनलोलुप मनुष्य है, जो निजी स्वार्थ के वशीभूत होकर पृथ्वी को प्रदूषित कर रहा है। अंततः प्रदूषित पृथ्वी को भगवान् महावराह द्वारा ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसमें किंचित् संदेह नहीं--

जलौघमग्ना सचराचराधरा
विषाणकोट्याऽखिल विश्वमूर्त्तिना।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा
स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ॥

संदर्भ

1. यजुर्वेद, 36/17
2. वही, 36/18
3. वही, 36/10
4. वही, 36/18
5. वही, 36/12
6. छांदोग्योपनिषद्, 6/11/1
7. श्रीमद्भगवद् गीता, 15/1
8. ऋग्वेद, 1/91/22
9. वही, 4/57/3
10. वही, 3/8/11
11. अथर्ववेद, 8/7/24
12. वही, 11/6/1

13. विष्णुधर्मसूत्र, 19/4
14. भविष्यपुराण (उत्सर्गमयूख)
15. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/9/28
16. छांदोग्योपनिषद्, 6/11/2
17. यजुर्वेद, 13/27
18. भारतीय संस्कृति में 'वृक्ष' का महत्व : सलम इंडिया, आचार्य रामकृष्ण झा, वर्ष : 25, अंक : 8, अगस्त, 2010, पृ. 38
19. अथर्ववेद, 3/7/5
20. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/137
21. यमस्मृति, 68
22. मत्स्यपुराण, 59/16
23. यजुर्वेद, 36/22
24. वही, 14/8
25. अथर्ववेद, 9/4/17
26. कल्याण वर्ष : 82, संख्या : 6, जून, 2008, पृ. 728
27. जलदाकर्षी वृक्ष, डॉ. अनंतराम मिश्र 'अनंत', सुलभ इंडिया, वर्ष : 25, अंक : 8, अगस्त, 2010, पृ. 37

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
अवधूत भगवान् राम पी.जी. कॉलेज,
अनपरा-231225, सोनभद्र (उ.प्र.)

प्रदूषण : धर्म, संस्कृति एवं नैतिकता का परिप्रेक्ष्य

डॉ. जयश्री शुक्ल

आज हम चारों ओर एक शब्द सुनते हैं 'पर्यावरण'। इस शब्द का प्रयोग किसी एक विषय के लिए नहीं वरन् बहुआयामी हो गया है। हमारा पर्यावरण विकृत हो रहा है, प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या बन गई है। कोई ध्वनि प्रदूषण की बात करता है तो कोई नैतिक प्रदूषण की, कोई प्राकृतिक प्रदूषण की तो कोई सामाजिक प्रदूषण की। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रदूषण एवं पर्यावरण आज सर्वव्यापी समस्या बन गई है। प्रदूषण चाहे किसी भी प्रकार का हो, वह व्यक्ति और विश्व के लिए अहितकारी है। प्रदूषण, प्रदूषण ही है। आज सारा विश्व इस समस्या के समाधान के लिए चिंतित है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो रहे हैं कि हम इस समस्या से कैसे उबर पाएंगे। इस विषय पर व्यक्तिगत रूप से भी सोचना होगा। जो जहां है, वहीं से उसे इस समस्या का निवारण करने का संकल्प लेना होगा, तभी हम इस दानव से जीत पाएंगे। आज हम प्रदूषण के उस भयावह स्थान पर खड़े हैं कि अब भी अगर सावधान नहीं हुए तो फिर कुछ नहीं कर पाएंगे। 'पर्यावरण', एक वृहद् विषय है और प्रदूषण उसकी इकाई है, तरह-तरह के प्रदूषण मिलकर पर्यावरण को विषाक्त कर देते हैं।

पर्यावरण। (Environment)

पृथ्वी की समस्त वस्तुओं को दो भागों में विभाजित किया गया है—1. जैविक और 2. अजैविक। इन सभी वस्तुओं का प्राणीमात्र पर एकजुट प्रभाव ही पर्यावरण कहलाता है। निःसंदेह इसमें पेड़-पौधे, वनस्पति, भूमि, वायु, जल, प्रकाश, ताप आदि सभी सम्मिलित हैं।

अच्छे पर्यावरण की संकल्पना उन स्थितियों से है, जिसमें प्राणधारी की समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह सुखमय जीवन बिता सके। विकृत पर्यावरण अनेक समस्याओं से ग्रसित होता है और जीवन को कष्टमय बना देता है।[1]

मानव मात्र एक सामाजिक प्राणी है एवं समाज में रहने के लिए प्रमुख आधार होता है धर्म का। धर्म शब्द का अर्थ है जिसे धारण किया जाए, वह धर्म है। धर्म चाहे हिंदू का हो, मुस्लिम का हो, सिख या ईसाई का हो, सभी धर्म की सीमा में बंधे होते हैं। जन्म से मृत्यु तक प्राणिमात्र के समस्त कार्य-व्यवहार धार्मिक मर्यादा के अनुसार ही होते हैं। हिंदू धर्म में जन्म से मृत्यु तक सोलह संस्कार होते हैं। आज हम

धर्म और पर्यावरण (Religion and Environment) पर भी एक दृष्टि डालें कि धर्म और पर्यावरण का क्या संबंध है?

1. हिंदू धर्म–हिंदू धर्म में तो समस्त प्राकृतिक स्रोतों को धर्म की सीमा में माना गया है। गंगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियों को मां का स्वरूप माना गया है। सूर्य उपासना हिंदू धर्म की प्रातःकालीन धार्मिक पूजा है। सूर्य और चंद्र विराट् रूप पुरुषोत्तम के नेत्र माने गए हैं। पृथ्वी हमारी मां है। वायु पवन देव है। हमारा शरीर ही पंच-तत्वों से मिलकर बना है। कहा गया है–

'छिति, जल, पावक, गगन, समीरा,
पंचतत्व से रचित शरीरा।'

हिंदू धर्म के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद और उपनिषद् हैं और इनमें जगह-जगह प्रकृति और प्रकृति से विरासत में मिली सभी वस्तुओं का जीवन से गहरा जुड़ाव मिलता है, इन सभी को पवित्र मानकर लोग उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। जल की महत्ता को हिंदू धर्म में इस सीमा तक स्वीकार किया गया है कि व्यक्ति किसी नदी में स्नान करने से पूर्व उसके जल को नमन करता है, स्नान करते समय मंत्रोच्चारण से उसकी पूजा-अर्चना करता है और अत्यंत श्रद्धा से आचमन कर अपना जीवन धन्य समझता है। उसकी यह भी मान्यता है कि जल के स्पर्श मात्र से दैविक शक्ति उसकी रक्षा करेगी। ऋग्वेद में इसका उल्लेख कुछ इस प्रकार दिया है,

'आकाश का पानी, नदी और कुओं का पानी, जिनका स्रोत सागर है, यह सब पवित्र जल मेरी रक्षा करें।'[2]

वनस्पति और पेड़-पौधों के महत्व को हिंदू धर्म में बहुत मान्यता दी गई है और किसी-न-किसी प्रकार हर पेड़ को किसी देवी-देवता अथवा मान्यता से जोड़कर उसकी रक्षा करने का उपाय कालांतर से बनाए रखा है। वैज्ञानिक दृष्टि से जो महत्व आज वृक्षों का बताया जाता है और जिस वस्तुनिष्ठ आधार पर उनकी रक्षा करने पर बल दिया जाता है, वह पूर्वकाल में अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रचलन में था। इस संदर्भ में निम्न सारणी का अवलोकन करें–

देवी-देवताओं से संबद्ध विभिन्न वृक्ष

क्र.	वृक्ष	संबंधित देवी-देवता
1.	वट	ब्रह्मा, विष्णु और कुबेर
2.	तुलसी	लक्ष्मी, विष्णु
3.	सोम	चंद्रमा (चंद्र)
4.	बेल	शिव
5.	अशोक	इंद्र
6.	आम	लक्ष्मी
7.	कदंब	कृष्ण
8.	नीम	शीतला, मंसा
9.	पलाश	ब्रह्मा, गंधर्व

10.	पीपल	विष्णु, कृष्ण
11.	महुआ	पूजा-पाठ हेतु
12.	सेमल	पूज-पाठ हेतु
13.	गूलर	विष्णु, रुद्र
14.	तमाल	कृष्ण

हिंदुओं के मान्य ग्रंथ 'वराह पुराण' में वृक्षों का महत्व निम्न प्रकार बताया है, 'एक व्यक्ति जो एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दस फूल वाले पौधे अथवा लताएं, दो अनार, दो नारंगी और पांच आम के वृक्ष लगाता है, वह नरक नहीं में नहीं जाएगा।' (**वराह पुराण, पृ. 172-39**)

पशुओं और पक्षियों की रक्षा हेतु उन्हें पालना, भोजन खिलाना और उन पर किसी अत्याचार की आशंका को जड़ से हटाने के उद्देश्य से प्राचीनकाल से ही हिंदू धर्म में आकर्षक व्यवस्था की गई है। अनेक देवी-देवताओं से इनको जोड़ना भी इसी क्रम में आंका जा सकता है कि पुराने लोगों को सभी पशु और पक्षियों के प्रति अत्यंत लगाव रहा है जिससे निःसंदेह प्रकृति का संतुलन व्यवस्थित हुआ है। निम्न सारणी देखें—

देवी-देवताओं से संबद्ध पशु एवं वन्य जीव

क्र.	पशु एवं पक्षी	संबंधित देवी-देवता
1.	शेर	दुर्गा
2.	कलहंस	ब्रह्मा
3.	हाथी	इंद्र, गणेश
4.	नांदिया	शिव
5.	चूहा	गणेश
6.	हंस	सरस्वती
7.	गरुड़	विष्णु
8.	बंदर	राम
9.	घोड़ा	सूर्य
10.	मोर	कार्तिकेय
11.	उलूक	लक्ष्मी
12.	गिद्ध	शनि
13.	चीता	कात्यायनी
14.	कुत्ता	भैरव
15.	हिरण	वायु
16.	गधा	शीतला

यही नहीं बल्कि पुराने ग्रंथों में प्राकृतिक प्रदूषण फैलने से रोकने तथा दोषी को दंड देने की व्यवस्था का विवरण भी कई स्थानों पर मिलता है। अवलोकन करें, 'किसी भी वस्तु को, जो इन अपवित्र वस्तुओं, रक्त और विष से मिश्रित हो, जल में फेंकना नहीं चाहिए।' (**मनुस्मृति, 4/56**)

2. बौद्ध धर्म–बौद्ध धर्म भी पर्यावरण का समर्थक है कि प्रकृति और उसके संसाधन तथा पशु-पक्षी जगत्, सबका संरक्षण करना चाहिए। बुरे कामों को नहीं करना चाहिए और अच्छे कार्यों को करना चाहिए।

3. जैन धर्म–हिंदू धर्म से ही जैन धर्म का जन्म हुआ है और यह धर्म भी यही कहता है कि मनुष्य और प्रकृति के मध्य समन्वय हो। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी का विनाश न करें। यह धर्म अहिंसा का समर्थक है। तपश्चर्या का इस धर्म में अधिक महत्व है, अपने को कष्ट दें, परंतु दूसरों की रक्षा करें।

4. सिख धर्म–सिख धर्म भी यही कहता है कि प्रकृति, पशु-पक्षी और मौसम, वन्य प्राणी, वन-वनस्पति सभी को संरक्षित करने से ही मनुष्य स्वयं सुखी रह सकता है। प्राकृतिक नियमों से ऊपर कोई नहीं होता, अतः उन्हें मानना चाहिए। सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य है कि पर्यावरण ही ईश्वर है, अतः पर्यावरण को संभालना सभी का उत्तरदायित्व है।

5. इस्लाम धर्म–इस्लाम धर्म की भी यही मानना है कि अल्लाह ने जिन वस्तुओं को बनाया है, उनका दुरुपयोग न करें, बल्कि संरक्षण करें।

6. ईसाई धर्म–पर्यावरण का संरक्षण ही हमारा जीवन है। चाहे हम विश्वास करें या न करें, पर्यावरणीय संकट हमारे जीवन के सभी क्षेत्र, हमारे सामाजिक स्वास्थ्य, हमारे संबंध, हमारे आचरण, अर्थव्यवस्था, राजनीति, हमारी संस्कृति और हमारे भविष्य को प्रभावित करता है। प्रकृति का संरक्षण ही हमारी प्राणमयी ऊर्जा है।

7. पारसी धर्म–प्रकृति संवेदनशील भी है और विनाशकारी भी। हमें प्रकृति के संवेदनशील स्वभाव को संभालना होगा, वही हमारा जीवन भी है। प्रकृति को सभी प्रकार के प्रदूषण से बचाना होगा।

पर्यावरण प्रदूषण

आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास से सारा जगत् अभिभूत है। भौतिकता की दौड़ में बेतहाशा भागने वालों की होड़-सी लगी है। यह दौड़ हमें कहां गिराएगी, इसका विचार करने का भी समय किसी के पास नहीं है। प्रकृति के साथ छेड़छाड़, नियमों का उल्लंघन, मर्यादाओं का खंडन, अनुशासनहीनता इन सब अप्राकृतिक कार्यों का ही परिणाम हैं–सुनामी, भूकंप, ज्वालामुखी, बाढ़ इत्यादि। मानव प्रकृति के शाश्वत नियमों को अपनी क्षमता के बाहर जाकर चुनौती देता है और पर्यावरण के विभिन्न घटकों को प्रदूषित करता है। अपनी निजी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किए जा रहे मानव के विवेकहीन प्रयत्न ही प्रदूषण का कारण हैं, अतः आवश्यक है कि हर विश्व नागरिक पर्यावरण के प्रति सजग होकर अपनी प्रकृति का उपभोग और संरक्षण करे। मानवीय क्रियाकलापों से निरपेक्ष, पर्यावरण में होने वाली प्राकृतिक प्रक्रियाएं ही इसका मूल कारण हैं, लेकिन आपदा की गंभीरता को बढ़ाना या कम करना मानव द्वारा प्रकृति के साथ किए जा रहे व्यवहार पर निर्भर है।

पर्यावरण अध्ययन की रूप-रेखा में मेधातिथि के विचार इस प्रकार हैं, 'महात्मा गांधी न तो पर्यावरण विज्ञानी थे और न ही उनके काल में प्रदूषण की समस्या चिंता का

विषय थी, किंतु प्रकृति के साथ तादात्म्य का आग्रह पर्यावरण से प्रेम से ओत-प्रोत था। आज जब हम उस महात्मा को भूल गए हैं, विश्व के कई राष्ट्र गांधी के विचारों में अपनी समस्या का समाधान ढूंढ रहे हैं। महात्मा गांधी के जीवन के हर पक्ष में सादे जीवन और सीमित उपभोग की आवश्यकता को बार-बार रेखांकित किया गया है। चाहे वह अहिंसा हो अथवा खादी, बुनियादी शिक्षा हो या कुटीर उद्योग, पूंजीपतियों को उनके सामाजिक दायित्व की याद दिलाता ट्रस्टीशिप सिद्धांत हो अथवा ग्राम स्वराज और स्वावलंबन की संकल्पना, गांधी के विचार सदैव दूरदर्शी और पर्यावरण सजग दिखलाई देते हैं। गांधी क़ो आधुनिक युग में पोषणीय विकास की संकल्पना का प्रणेता कहा जा सकता है।'[4] आज के युग में गांधी-दर्शन और चिंतन सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हो रहा है, विशेषकर प्रदूषण की समस्या के लिए सीमित आवश्यकताएं और सीमित साधन तीन-चौथाई भागमभाग की दौड़ को नियंत्रित करते हैं। शांति और स्थिर चित्त से लोकहित में स्वहित स्वमेव हो जाता है, यदि इस चिंतन को प्रत्येक व्यक्ति अपना ले तो समाज में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक प्रदूषण की समस्या का समाधान भी होगा। राम और कृष्ण आज भी वंदनीय क्यों है? क्योंकि वे लोकहित के कार्य करते थे।

पर्यावरण के लोक अनुभव के अनुसार, '1990 से 2020 के बीच हर रोज 50 जीव और पादप प्रजातियां समाप्त होती जाएंगी। अगर वनों के कटाव और औद्योगिक गैसों से उत्पन्न तापक्रम वृद्धि पर नियंत्रण न हो पाया तो भयंकर परिणाम होंगे।'[5]

अपने आस-पास घटित होने वाली किसी भी घटना को हम अब यूं ही अनदेखा नहीं कर सकते। शुतुरमुर्ग की तरह मुंह छिपा लेने से बात नहीं बनेगी। आज सारा विश्व सिमटकर एक इकाई बन गया है, एक छोर में पृथ्वी की एक घटना घटित होती है और उसका प्रभाव दूसरे छोर तक पहुंचता है। अगर ऐसा नहीं होता तो आज विश्व 'ओजोन परत' के लिए चिंतित नहीं होता। इसका चिंतन आज की ज्वलंत समस्या है और वह एक देश की नहीं, संपूर्ण विश्व की है। पर्यावरण और प्रदूषण को संभालना हम सबकी आवश्यकता है। इसके लिए हमें पूर्ण मनोयोग से अपनी संस्कृति की रक्षा करते हुए नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि मानते हुए सम्मिलित प्रयास करने पड़ेंगे। नैतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए हमें नैतिक प्रदूषण रोकना होगा। स्वयं के स्तर पर, सामाजिक स्तर पर एवं राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर।

नैतिक प्रदूषण

'नैतिकता किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों से संबंधित वह सिद्धांत और मूल्य हैं, जिन्हें सामान्यतः किसी समाज द्वारा अथवा लोगों के समुदाय द्वारा स्वीकार किया जाता है।'[6]

देश में नैतिकता की स्थिति अत्यंत शोचनीय है। हम अपने चारों ओर इसके अनेक उदाहरण देखते हैं। जैसे किसी भी कार्य के लिए, चाहे वह नियमानुसार ही हो, संबंधित कर्मचारियों को टिप (घूस) देनी पड़ेगी, तभी आपका कार्य होगा। कार्यालय के कार्य पद पर कर्मचारी का न मिलना, देर से कार्यालय आना, समय पर अपना कार्य न करना, खाने-पीने की वस्तुओं में मिलावट, दवाइयों में मिलावट, दूध और घी में मिलावट, सिंथेटिक

दूध, सिंथेटिक पनीर इसी के उदाहरण हैं। सामान कम तौलना, निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य लेना, नौकरी पाने के लिए गलत प्रमाण-पत्र पेश करना, चोरी करना, टैक्स समय पर न देना, रिश्वत लेना, बिजली चोरी करना, चुनाव में अनुचित साधनों का प्रयोग करना। बात-बात में दंगे-फसाद खड़े कर देना, शासकीय संपत्ति को क्षति पहुंचाना, भाषा और प्रांत के गैर-कानूनी विवाद उत्पन्न करना, आतंकवाद एवं नक्सलवाद जैसी गलत धारणाओं में सहयोग करना, दूसरों को चोट पहुंचाना, दूसरों की विवशता का लाभ उठाना, नारी सम्मान की जगह बस और सार्वजनिक स्थानों में महिलाओं, लड़कियों के साथ अभद्र व्यवहार करना, यह नैतिक प्रदूषण है, जिसे रोका जाना चाहिए।

नैतिकता के ह्रास के संभावित कारण भी हैं, व्यक्ति का स्वार्थपरक होना, लोभ-लालच, आलस्य, कठोर परिश्रम से बचना, शनैः-शनैः प्रगति के स्थान पर अचानक ही एक दिन में बड़ा बन जाने की ललक व्यक्ति से वह सब कुछ करवा लेती है, जो वह नहीं करना चाहता और यह भी जानता है कि यह नहीं करना चाहिए। राष्ट्रीय भावना में भी कमी, दूसरों से तुलना करने की प्रतिस्पर्धा, अशिक्षा, बुरी संगत, आत्मविश्वास की कमी यह सब कारण हैं जिनसे नैतिक प्रदूषण बढ़ता है। पर्यावरण का संरक्षण ही प्रदूषण को रोकने में सहायक होगा। पर्यावरण को सुधारने के लिए नैतिकता का विकास आवश्यक है। जीवन-मूल्यों में आस्था जैसे—सच्चाई, साहस, आत्मविश्वास, देशभक्ति, ईमानदारी, सहयोग, दृढ़-निश्चय, परोपकार, कर्तव्यपराणयता, समाज सेवा, श्रम में निष्ठा, त्याग, विनम्रता, अहिंसा, प्रेम, धैर्य, क्षमा, सहानुभूति, दया, मित्रता, निर्भीकता, सादगी, मितव्ययता, अनुशासन, प्रशंसा करना, अच्छा सोचना और अच्छा करना इत्यादि। पर्यावरण के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सकारात्मक सोच एवं ऊर्जा का उपयोग करके प्रदूषण समाप्त करना होगा। प्रदूषण के लिए पानी, वायु, भोजन, आवास आदि की शुद्धता और स्वच्छता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। नैतिकता, पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण सुरक्षा और पर्यावरण प्रदूषण में सुधार आवश्यक है।

नैतिकता की तरह सांस्कृतिक श्रेष्ठता भी पर्यावरण को सुधारने, प्रदूषण को दूर करने के लिए आवश्यक है। भारत एक सांस्कृतिक एवं धर्म-प्रधान देश है। हमारी संस्कृति ही हमारी धरोहर है। आज पुनः भारत को विश्वगुरु के स्थान पर प्रतिस्थापित करने का समय आ गया है। सारा विश्व अशांत है, आतंकवाद का दानव समस्त विश्व को निगलने की ताक में है। आए दिन निर्दोष, निरीह प्राणियों को बम विस्फोट तथा प्रक्रियाओं द्वारा मौत के घाट उतारा जा रहा है। सभ्यता की भौतिक दौड़ में मानवीय-मूल्य, आध्यात्मिक सोच, आत्मिक उन्नति सब खोते जा रहे हैं। 'अति सर्वत्र वर्जयते' की उक्ति आज की भौतिक चकाचौंध पर लागू होती है। आज पैसा ही धर्म हो गया है। अब प्रकृति अपना प्रकोप दिखाने लगी है, जिसके दोषी भी हम ही हैं। वन काटकर गगनचुंबी इमारतें खड़ी करना, पशु-पक्षियों को मारना, जल और वायु के साथ छेड़छाड़, इन सबका दुष्परिणाम हैं प्राकृतिक आपदाएं। ऐसी विकराल आपदाएं प्रकृति दिखाती है कि हमारी सारी व्यवस्था बौनी हो जाती है। आज आवश्यकता है कि हमारी संस्कृति विकसित हो। हम विश्व की आध्यात्मिक शक्ति के स्रोत ईश्वर की शक्ति में अपनी आस्था और विश्वास जागृत करें। बड़ों का सम्मान करें, छोटों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करें, अतिथि का सत्कार करें, पढ़-लिखकर

अहंकारी न बनें, विनम्र बनें। हमारे व्यवहार में, हमारी सोच में, सद्व्यवहार, सद्भावना, प्रेम, त्याग, सभ्यता की झलक हो। हम अपने आप पर गर्व कर सकें और हमारे माता-पिता, पूर्वज, हम पर गर्व कर सकें। देश का सम्मान, हमारी पूजा हो। भारत माता के सच्चे सपूत बनकर मातृभूमि की सेवा करें, तभी हमारा कल्याण होगा। हम सुधरेंगे तो हमारी पीढ़ियां सुधरेंगी।

विश्व-शांति के उपाय

किसी कवि ने आज की गंभीर और अशांत स्थिति पर विचार करते हुए लिखा है—

'जान पड़ता है सब संकट बिसार कर,
मानव है नाश के कगार पर,
जागी है उसमें पाशविकता, बधिकता,
देखता नहीं है, कुछ वृद्ध-बाल,
सबके लिए है काल,
दस्यु सम घात में है खड़ा,
लज्जा नहीं आती है, आत्मा के हनन की।'

आज विश्व में शांति कैसे और किस प्रकार हो सकती है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न के समाधान के लिए हम यह कह सकते हैं कि विश्व-शांति के लिए भाई-चारे और मेल-मिलाप की भावना ही ठोस कदम होगा। विश्व-शांति के लिए सबको अपने ही समान समझना और अपने ही समान आचरण करना, एक ठोस और प्रभावशाली विचार होगा। अगर इस तरह की सद्भावना और श्रेष्ठ विचार प्राणी-प्राणी के मन में उत्पन्न हो जाएगा तो किसी प्रकार से विश्व में अशांति और अव्यवस्था की भावना उत्पन्न नहीं हो सकेगी। पर्यावरण सुधरेगा, शांत होगा, बढ़ी हुई दुर्भावनाएं समाप्त हो सकती हैं। 'मनुष्य और प्रकृति का संबंध आदिम अवस्था से ही रहा है। प्रकृति उसकी रचयिता माता के समान है। प्रकृति की सत्ता से ही मनुष्य का विकास होता है। जीवन के हर क्षेत्र में वह प्रकृति से ही आश्रय व प्रेरणा लेता रहा है, फिर समकालीन कविता कैसे अछूती रह सकती है? कवि और कविता दोनों उसके प्रभाव से प्रभावित हैं। प्रकृति की विनष्टि, शारीरिक और मानसिक कष्ट देती है। उसे चिंता है पर्यावरणीय असंतुलन की, बढ़ती आबादी की, घटते वन की, प्रदूषण की, विनाश की। प्रकृति है तो संपूर्ण मानवता है, सुख-साज है अन्यथा हम कुछ भी नहीं। यथार्थ से आंखें मूंदने में हमारी भलाई नहीं है। समकालीन कविता ने भी आंखें खुली रखी हैं, आम आदमी को परखा है और चेतना के धरातल पर प्रतिष्ठित किया है।'[7]

अंत में यही निष्कर्ष निकलता है कि पर्यावरण शुद्ध हो, पवित्र हो, स्वस्थ हो, जिसके लिए सभी प्रदूषण समाप्त करने होंगे। इस चुनौती का सामना सर्वांगीण क्षेत्रों को व्यवस्थित करते हुए करना होगा। विज्ञान और अध्यात्म में तादात्म्य स्थापित करते हुए मनुष्य मात्र के हित में सोचना होगा। आज बम के द्वारा शांति नहीं प्राप्त की जा सकती है, बल्कि वेद की ऋचाओं से, उनके उद्देश्यों से और मनसा-वाचा कर्मणा पर खरे उतरने से शांति स्वमेव प्राप्त होगी। पर्यावरण शुद्ध होगा, पवित्र होगा। नैतिकता बढ़ेगी, आचरण पवित्र

होंगे। सुउद्देश्य से सर्वत्र सुख-शांति होगी। वसुधैव कुटुंबकम् की विचारधारा से प्रेम एवं शांति का साम्राज्य बढ़ेगा। धर्म, संस्कृति, नैतिकता सभी एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह आपस में संबद्ध है। मानव मात्र के हित में अपना हित ढूंढना जीवन का मुख्य उद्देश्य हो तो पर्यावरण के प्रदूषित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। राम और कृष्ण के लोकोपकारी पथ पर चलकर ही हम विश्व विजेता, विश्व शांति के उद्देश्य को दिग्दर्शित करते हैं।

उच्चरित होती चले वेद की वाणी,
गूंजे गिरि कानन सिंधु पार कल्याणी,
अंबर में पावन होम धूम फहरावे,
वसुधा का हल दुकूल भरा लहरावे।[8]

संदर्भ

1. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. एस.के. गोयल, पृ. 17
2. स्रोत—World Religions and Environment : Ed. O.P. Dwivedi.
3. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. एस.के. गोयल, पृ. 265
4. पर्यावरण अध्ययन की रूपरेखा, मेधातिथि जोशी, राकेश पारीक, पृ. 154
5. पर्यावरण और लोकअनुभव, डॉ. हरिमोहन, पृ. 13
6. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. एस.के. गोयल, पृ. 228
7. समकालीन हिंदी कविता, सं. डॉ. परमानंद तिवारी, पृ. 7
8. वही, पृ. 64

प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
शासकीय बिलासा कन्या स्ना. स्वशासी महाविद्यालय,
बिलासपुर (छ.ग.)

वैदिक वाङ्मय और पर्यावरण संस्कृति

इंजी. अमरनाथ त्यागी

पर्यावरण

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव जगत् को परावृत्त करती हैं तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं। हमारे चारों ओर जो विराट् प्राकृतिक परिवेश व्याप्त है, उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं। परस्परावलंबी संबंध का नाम पर्यावरण है। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं, परिस्थितियां एवं शक्तियां विद्यमान हैं, वे सब हमारे क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा व्यक्ति, गांव, नगर, प्रदेश, महाद्वीप, विश्व अथवा संपूर्ण सौरमंडल या ब्रह्मांड हो सकता है। इसीलिए वेदकालीन मनीषियों ने द्युलोक से लेकर व्यक्ति तक, समस्त परिवेश के लिए शांति की प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है, 'द्योः शांतिरंतरिक्षं...' *(शुक्ल यजुर्वेद, 36/17)*। इसलिए वैदिक काल से आज तक चिंतकों और मनीषियों द्वारा समय-समय पर पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता को अभिव्यक्त कर मानव-जाति को सचेष्ट करने के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया गया है।

इस प्रकार द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें, अदृश्य आकाश (द्युलोक), नक्षत्रयुक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक—जल, औषधियां, वनस्पतियां, संपूर्ण संसाधन (देव) एवं ज्ञान-संतुलन की अवस्था में रहें, तभी व्यक्ति और विश्व, शांत एवं संतुलन में रह सकता है। प्रकृति में हमें जो कुछ भी परिलक्षित होता है, सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रचना करते हैं। जैसे—जल, वायु, मृदा, पादप और प्राणी आदि। अर्थात् जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक और जीवीय परिस्थितियों का योग पर्यावरण है। इसलिए विद्वानों का मत है कि प्रकृति ही मानव का पर्यावरण है और यही उसके संसाधनों का भंडार है।

वैदिक ऋषियों ने उन समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित तो किया ही है, साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्व को भी भली-भांति स्वीकार किया है। इन देवताओं के लिए मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया और शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्य को पितृऋण और ऋषिऋण के साथ-साथ देवऋण से भी उन्मुक्त होने की ओर संकेत किया है। वह अपने कर्तव्य में देवऋण से मुक्त होने के लिए

भी कर्तव्य करे। ऋषियों ने उसके लिए यह मर्यादा स्थापित की है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें—सूर्य, वायु, वरुण (जल) एवं अग्नि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।

आज पर्यावरण शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, अब से तीन-चार दशक पूर्व उसका ऐसा कोई पारिभाषिक अर्थ नहीं था। प्राचीन कोशों में और यहां तक कि संस्कृत हिंदी कोशों में भी यह शब्द उपलब्ध नहीं होता। उसके पीछे मूल कारण यही है कि यह शब्द उस समय तक किसी पारिभाषिक रूप से प्रचलित नहीं हो पाया था। अतएव प्राचीन कोशकारों ने इसका कोई विशेष अर्थ प्रस्तुत नहीं किया। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति, परि-उपसर्ग के साथ आवरण शब्द की संधि से होती है। इसके साथ ही आङ्पूर्वक वरण शब्द का प्रयोग भी संस्कृत शब्दार्थ—कौस्तुभ ग्रंथ में हमें प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है, 'ढकना, छिपाना, घेरना, ढक्कन, पर्दा, घेरा, चारदीवारी, वस्त्र, कपड़ा और ढाल *(वही, पृ. 200)*'। इसी ग्रंथ में संस्कृत के उपसर्ग 'परि' का अर्थ—सर्वतोभाव, अच्छी तरह, चारों ओर तथा आच्छादन आदि के रूप में मिलता है और 'आङ्' भी संस्कृत का एक उपसर्ग है, जिसका अर्थ, 'समीप, सम्मुख और चारों ओर' से होता है *(वही, पृ. 170)*'। वरण शब्द संस्कृत के 'वृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ, 'छिपना, चुनना, ढकना, लपेटना, घेरना, बचाना आदि है *(वही, पृ. 1056)*'। इसी प्रकार पर्यावरण—परि + आवरण से बने शब्द का अर्थ, 'चारों ओर से ढकना, चारों ओर से घेरना या चारों ओर का घेरा' होगा। अतएव वैज्ञानिक कोशकारों ने इसका अर्थ, 'पास-पड़ोस की परिस्थितियां और उनका प्रभाव' के रूप में माना है।

सर्वप्रथम डॉ. रघुवीर ने तकनीकी शब्द कोष निर्माण के समय 'इन्वायरमेंट' (फ्रेंच भौतिक शब्द) के लिए 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग किया है। वे ही इसके प्रथम 'शब्द प्रयोक्ता हैं *(कंप्रिहेंसिव इंग्लिश-हिंदी डिक्शनरी, डॉ. रघुवीर, पृ. 589)*'। वास्तव में पर्यावरण या इन्वायरमेंट शब्द अत्यधिक प्राचीन शब्द नहीं है। जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नेस्ट हीकल द्वारा 'इकॉलॉजी' शब्द का प्रयोग सन् 1869 में किया गया, जो ग्रीक भाषा के ओइकोस (गृह या वासस्थान) शब्द से उद्धृत है। यही शब्द पारिस्थितिकी के अंग्रेजी पर्याय के रूप में इन्वायरमेंट शब्द से प्रचलित हुआ है। *(पर्यावरण तथा प्रदूषण, अरुण रघुवंशी, पृ. 41)*। इन्वायरमेंट शब्द का प्रयोग, ऐसी क्रिया जो घेरने के भाव को सूचित करे, के संदर्भ में किया जाता है। विभिन्न कोशों में इसके विभिन्न अर्थ दिए गए हैं। जैसे—वातावरण, उपाधि, परिसर, परिस्थिति, प्रभाव, प्रतिवेश, परिवर्त तथा वायुमंडल, वातावरण और परिवेश, अड़ोस-पड़ोस, इर्द-गिर्द, आस-पास की वस्तुएं एवं पर्यावरण आदि।

आधुनिक चिंतन में पर्यावरण के दो भेदों का ही वर्णन मिलता है। वे हैं—

1. भौतिक या प्राकृतिक पर्यावरण—इसके अंतर्गत वे तत्व सम्मिलित होते हैं, जो जैवमंडल का निर्माण करते हैं।

2. सांस्कृतिक या मानवकत पर्यावरण इसमें आर्थिक क्रियाएं, धर्म अधिवास, आवासीय दशाएं एवं राजनीतिक परिस्थितियां आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह तथ्य

वैदिक और आधुनिक चिंतन से स्वयं स्पष्ट होता है कि प्राणि-जगत् को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय तत्व 'देव' केवल पार्थिव ही नहीं हैं, अपितु उनका स्थान अंतरिक्ष और द्युलोक भी है। वैदिक ऋषियों ने उन सभी से प्राणियों की मंगल-कामना एवं सुरक्षा चाही है।

पर्यावरण को जानने के लिए अब यह जानना भी आवश्यक है कि पर्यावरण का निर्माण करने वाले समस्त तत्वों की सृष्टि किस क्रम में और किस प्रकार हुई और उसके कारक तत्व कौन से हैं, तभी पर्यावरण के समस्त रहस्यों से आवरण दूर किया जा सकता है। वैदिक ऋषियों ने ही सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिंतन-मनन करते हुए, सृष्टि को प्रारंभिक अवस्था में जिस रूप में देखा, उसका वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं 'नासदासीत्रो सदासीत्तदानी...' (ऋग्वेद, 10/129, 1-7) में उपलब्ध होता है। जहां ऋषि कहते हैं कि सृष्टि के आरंभ में न सत् था न असत्। फिर ब्राह्मण ग्रंथों (पृ. 158) में भी पुनः शंका उठाई गई कि कौन जानता है यह सब? और कौन उसका वर्णन ही कर सकता है? किंतु इसके समाधान के लिए ऋग्वेद संहिता में मंत्र है, 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे...' (ऋग्वेद, 10/121/1) जिसमें सृष्टि के विकास-क्रम को बताया गया है कि सर्वप्रथम जीवों का स्वामीभूत हिरण्यगर्भ अस्तित्व में आया और उसी से सृष्टि का अविच्छिन्न विकास हुआ आदि-आदि।

विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती है—कण, प्रतिकण एवं विकिरण। चाहे वह सृष्टि उत्पत्ति का समय हो या अन्य कोई समय। वैदिक सिद्धांत के अनुसार प्रकृति में मूल तीन वर्ग, 'त्रयः कृण्वंति भुवनस्य रेत' (ऋग्वेद, 7/33/7) विद्यमान हैं। ये हैं वरुण, मित्र और अर्यमा। इनकी संयुक्त सत्ता को अदिति कहा गया है, जो अनादि एवं अखंड सत्ता है। व्यक्तिगत रूप से ये आदित्य कहलाते हैं। ये अनादि शाश्वत् सत्ता के अंगभूत हैं। अर्यमा उदासीन कण है, जो विज्ञान की विकिरण के फोटांस के अनुरूप है। वरुण और मित्र प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं तथा विज्ञान के कण-प्रतिकण का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा वे विपरीत आवेश (चार्ज) वहन करते हैं। वैदिक परिकल्पनानुसार सृष्टिकाल से दृश्य जगत् तक भौतिक पदार्थ पांच अवस्थाओं में निष्क्रमण करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि में महा-अग्निकांड (बिग बैंग) के बाद की अवस्थाएं क्रमशः इस प्रकार हैं—

1. आपः (क्रियाशील) अवस्था—क्वांटम या क्वार्कसूप (शपतथ ब्राह्मण, 1/1/1)
2. बृहती आपः—प्लाज्मा अवस्था (ऋग्वेद, 10/12/7)
3. अपानपात—नाभिक अवस्था या कॉस्मिक मैटर (ऋग्वेद, 1/35/2)
4. अर्ध गर्भः—परमाणु अवस्था (ऋग्वेद, 1/164/36)
5. पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) का दृश्य जगत्।

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों में—तैत्तिरीय ब्राह्मण (2, 8, 9, 6 तथा 1, 1, 3, 1), गोपथ ब्राह्मण (1, 1, 1, 2), सामविधान ब्राह्मण (1/1), जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (7, 1, 1), शतपथ ब्राह्मण (6, 1, 1, 13, 19, 2, 2, 3, 28), जैमिनीय ब्राह्मण (1, 68 तथा 2, 146), ऐतरेय ब्राह्मण (5, 5, 7), तांड्य ब्राह्मण (4, 1, 1), तैत्तिरीय संहिता (4, 1, 8, 3), ऐतरये उपनिषद् (1, 1), तैत्तिरीय उपनिषद् (2, 7, 10) आदि में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है, जो वेदों की विषद् व्याख्या रूप हैं और उन अर्थों का पूरक भी है। इसी क्रम में दार्शनिकों एवं वेदांत ने भी उसी प्रकार चिंतन किया है। पौराणिक दृष्टि तथा

मनु का सृष्टि सिद्धांत व आयुर्वेद का चिंतन भी वैदिक विज्ञान का समर्थन करता हुआ ही प्रतीत होता है।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति और जगत् का विकास ही पर्यावरण प्रादुर्भाव है। सृष्टि का जो प्रयोजन है वही पर्यावरण का भी है। जीवन और पर्यावरण का अन्योन्य संबंध है। इसीलिए आदिकाल से मानव पर्यावरण के प्रति जागरूक रहा है, ताकि मानव दीर्घायुष्व, सुस्वास्थ्य, जीवन-शक्ति, पशु, कीर्ति, धन एवं विज्ञान को उपलब्ध हो सके। यही कामना अथर्ववेद का ऋषि, 'आयुः प्राणं प्रजां पशुं' (अथर्ववेद, 19, 71, 1) व 'शत जीव शरदो' ...(अथर्ववेद, 3, 11, 4) करता है और ऋग्वेद में ऋषि, 'शतां जीवंतु शरदः...' (ऋग्वेद, 10/18/4) तथा यजुर्वेद में ऋषि, 'शतिमिन्नु शरदो अंति...' (यजुर्वेद, 25/22) तथा वह ऋषि का आशीर्वाद पाता है कि हे मनुष्य! बढ़ता हुआ तू सौ शरद ऋतु और सौ बसंत तक जीवित रहे। इंद्र (विद्युत), अग्नि, सविता (सूर्य), बृहस्पति (संकल्पशक्ति) और हवन (यज्ञ) तुझे सौ वर्ष तक आयुष्य प्रदान करें (अथर्ववेद)।

इतना ही नहीं कि किसी भी तरह सौ वर्ष जिएं, प्रत्युत, आरोग्यता और बल के साथ जिएं। हम सौ वर्ष पर्यंत, ज्ञानशक्ति का विकास करें, सौ वर्ष तक जीवन को ज्ञान के अनुकूल विकसित करें, सौ वर्ष तक वेद को सुनें और प्रवचन करें और आयु भर किसी के पराधीन न रहें (ऋग्वेद, 7/66/16)। संतान और धन के साथ अभ्युदय को हम प्राप्त होते हुए, बाहर से शुद्ध, अंदर से पवित्र तथा निरंतर यज्ञ करने वाले हों। नृत्य, हास्य, सरलता और कल्याणमय श्रेष्ठ मार्ग के आचरण से आयु बढ़ती है (ऋग्वेद 10/18/2 तथा 10/18/3)। दीर्घायु प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम अपने मन में श्रेष्ठ सद्गुण बढ़ाते हुए राष्ट्रीयता तथा क्षात्रतेज अपने अंदर बढ़ाना चाहिए। प्राणशक्ति के साथ आत्मिक बल धारण करने वाले मृत्यु के वश में नहीं जाते (अथर्ववेद 10/3/12 तथा 19/27/8)। इसलिए वेद की उपर्युक्त शाश्वत् भावना के अनुरूप ही पर्यावरण शुद्धि एवं सुस्वास्थ्य मानव की एक बड़ी आवश्यकता है।

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है। इस पर आचार्य सायण एवं नैरुक्त चिंतन है कि अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है एवं प्राप्ति का संरक्षण क्षेम है (ऋग्वेद, 5/51/11)। अतएव सहज-सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना स्वस्ति है। इस प्रकार पर्यावरण को सुरक्षित रखने की उदात्त भावनाएं हमें अनेक स्थलों पर देखने को मिलती हैं (ऋग्वेद, 5/51/11, 5/51/13, 5/51/14 तथा 10/7/1)।

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख-शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की भावनाएं अनेक स्थलों पर हमें उपलब्ध होती हैं। जैसे—पृथ्वी हमारे लिए कंटकरहित और उत्तम बसने योग्य हो (ऋग्वेद, 7/35/3 तथा यजुर्वेद 36/13)। हमारे दर्शन के लिए अंतरिक्ष शांतिप्रद हो (ऋग्वेद, 10/35/5)। वह आकाश जिसमें बहुत पदार्थ रखे जाते हैं, हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 7/35/2)। सूर्य, अपने विस्तीर्ण तेज के साथ हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 10/35/8)। सूर्य, हमारे लिए सुखकारी तपे (यजुर्वेद, 36/10), चंद्रमा हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/7)। नदी, समुद्र और जल हमारे लिए सुखप्रद हो

(ऋग्वेद, 7/35/8)। पीने का जल और वर्षा का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/12)। जलधाराएं तुम्हारे लिए अमृत वस्तुएं बरसाएं (अथर्ववेद, 8/6/5)। ज्योतिर्मय अग्नि हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/4)। अग्नि दुःखदायक रोगादि को और अनावृष्टि आदि दुःखों का हनन करती है (सामवेद मंत्र-4)।

इसी प्रकार अन्य पर्यावरणीय घटकों के लिए शुभकामनाएं की गई हैं। जैसे— शीघ्र चलने वाली वायु हम लोगों के लिए सब ओर से सुखरूप होकर बहे (ऋग्वेद, 7/35/4)। पवन हमारे लिए सुखकारी चले (यजुर्वेद, 36/10)। पूर्व आदि चारों दिशाएं व विदिशाएं हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/8)। समस्त दिशाएं हमें मित्रवत् सुख दें (अथर्ववेद, 19/15/16)। विशेष दीप्ति वाली उष्माएं हमारा कल्याण करें (ऋग्वेद 7/35/10)। दिन और रात्रि हमारे लिए सुखकारी हो (यजुर्वेद, 36/11)। हम दिन और रात में अभय रहें (अथर्ववेद, 19/15/16)। मेघ हम प्रजाजनों के लिए शांतिप्रद हों (ऋग्वेद, 7/35/10)। बिजली और गरज के साथ शब्द करते हुए पर्जन्य (मेघ) देव की वर्षा कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/10), आज वैज्ञानिकों ने भी मौसम में बदलाव को नियंत्रित करने में बादलों की भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है (टेक्सास ए एंड एम यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर शाइमा नसीरी, नवभारत, 4 जनवरी, 2011 के रायपुर संस्करण के पृष्ठ 5 पर)। उन्होंने शोध कर कहा कि मध्य स्तर के बादल छोटी बूंदों और बर्फ के कणों का निर्माण करते हैं। उन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में नयी सेटेलाइट तकनालॉजी को वैज्ञानिक रहस्य उजागर करने में बहुत कारगर एवं सहयोगी बताया। नासा ने इस अध्ययन के लिए प्रो. शाइमी को न केवल सम्मानित किया, अपितु उन्हें भू-व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए 3 लाख 24 हजार डॉलर का तीन वर्ष के लिए अनुदान भी दिया।

इसी तारतम्य में वैदिक ऋषियों ने पर्वतों, वृक्षों, वनस्पतियों एवं पशुओं को प्रजाजनों के लिए सुख स्वरूप होने की कामना की है। उदाहरणार्थ—हमारी शांति के लिए पर्वत निश्चल हों (ऋग्वेद 7/35/3 एवं 8), वनों के वृक्ष हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/5), हमारे लिए औषधियां शंतिकारक हों (यजुर्वेद, 36/17), घोड़े और गायें हम लोगों के लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/12)। इस प्रकार पर्यावरण के हर घट के शांत एवं सौम्य रहने पर ही विश्व-शांति का स्वप्न साकार होने की कामना वैदिक ऋषियों ने की है। उन्होंने एक संपूर्ण वैचारिक जगत् के साथ-साथ सांस्कृतिक जगत् पर भी अत्यंत गहराई से विचार कर पर्यावरण के दायरे को विराटता प्रदान की है और प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा की कामना के साथ-साथ मार्धुय की उदात्त भावना तथा अभय की प्रार्थना भी की है। जहां-जहां हमारे लिए जैसी परिस्थिति हों, वहां-वहां हमें हर प्रकार से अभय प्राप्त हो तथा प्रजा एवं पशुओं से भी हमें अभय मिले (यजुर्वेद, 37/12)। संसार में वायु मधुर होकर चले, नदियां मधुर होकर बहें, औषधियां मधुर उगें। रात मधुर हो प्रभात भी। पृथ्वी, द्यौ, वनस्पतियां, सूर्य और गौवें मधुर हों (यजुर्वेद, 13/27, 29)। हमें अंतरिक्ष अभय करे, द्यावा, पृथ्वी, नीचे-ऊपर, आगे-पीछे, मित्र-शत्रु, ज्ञात-अज्ञात, रात-दिन और समस्त दिशाओं से अभय की प्राप्ति हो (अथर्ववेद, 19/15/5/6)।

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान् योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने बृहत् चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व एवं महात्म्य को स्वीकार करते

हुए कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है—

दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः।
दशहद समः पुत्रो, दशपुत्रो समो द्रुमः।

प्राकृतिक शक्तियों में देवी स्वरूप की अवधारणा मात्र यह इंगित करती है कि हम इनकी रक्षा करें, इनसे अनुराग रखें और स्वस्थ, संतुलित जीवन-यापन करते हुए पर्यावरण की यथाशक्ति रक्षा करें। उक्त बिंदुओं को यदि नैतिकता-अनैतिकता की सीमा-रेखा में न भी बांधें तो भी ये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के संवाहक प्रतीत होते हैं। भारतीय चिंतन-धारा की यही प्रमुख विशेषता है, जो इस प्रदूषण-अभिशप्त सदी में हमें अपने अतीत की बार-बार याद दिलाती है।

प्रदूषण

पर्यावरण प्रदूषण की आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा जोर-शोर से होने लगी है, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि यह शब्द अंतर्राष्टीय स्तर पर अचानक ही दो-चार दशक पूर्व प्रकट हो गया है। इसकी अवधारणा भले ही नयी लगती हो, किंतु यह तो प्रकृति के प्रारंभ से ही विद्यमान रहा है, क्योंकि मानव द्वारा श्वास और मल-मूत्र तथा पसीना त्यागने के साथ-ही-साथ प्रदूषण आरंभ हो गया।

महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त में वस्तु या भाव के जो छह विकार गिनाए हैं, उनमें पर्यावरण के संबंध में अस्ति या सत्ता शब्द चिंतनीय हैं। इसकी व्याख्या में वे कहते हैं कि कोई वस्तु तभी अपनी सत्ता बनाए रख सकती है, जब वह स्वयं को धारण करने में समर्थ हो। जब उसमें बाहरी हस्तक्षेप अधिक होता है अथवा उसकी नैसर्गिक संरचना विकृत होती है तो उसकी आत्मधारणा शक्ति नष्ट हो जाती है, यही उसका प्रदूषण है। वस्तु के निर्माण का जो अनुपात है, वह स्थित रहना चाहिए। अनुपात भंग हुआ और वस्तु का स्वास्थ्य नष्ट हो गया। वस्तु के स्वास्थ्य का विनष्ट होना ही प्रदूषण है।

प्रकृति में एक का उच्छिष्ट दूसरे के लिए उपभोग्य बन जाता है। प्रकृति की संतुलन प्रक्रिया सृष्टि के आदिकाल से अनवरत् एवं अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। यदि किसी कारण से इसमें कभी कोई व्यवधान पड़ता है तो पारिवेशिक संतुलन में प्रतिकूल स्थितियां दृष्टिगत होने लगती हैं। वस्तुतः प्रकृति में उत्पन्न होने वाली यही प्रतिकूलता प्रदूषण है। प्रदूषण के भाव को दर्शाने वाले कुछ शब्द हमें प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं। जैसे—

'रपः' शब्द वैदिक वाङ्मय में कुछ स्थलों पर आया है, जिसे शारीरिक दोष या बुराई के अर्थ में माना गया है। ऋग्वेद में प्राचीन चिकित्सक अश्विनी कुमारों से प्रार्थना की गई है कि तुम हमारे दोषों को अच्छी प्रकार शोधन करो (ऋग्वेद, 1/34/11)। इसी प्रकार रुद्रदेव को देवकृत पाप का अपहरण करने वाला तथा किए हुए अपराध को क्षमा करने वाला या विनष्ट करने वाला बताया गया है (ऋग्वेद, 2/33/7 तथा 10/97/10)। औषधियों को भी शरीर के दूषण को दूर करने वाली बताया गया है और अन्यत्र वायु से

व्याधि दूर कर सुख प्रदान करने और दोषों को हटाने की कामना की गई है (ऋग्वेद, 10/137/10)।

इसी प्रकार 'विष' शब्द का प्रयोग शारीरिक व प्राकृतिक प्रदूषण के रूप में किया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 191वें सूक्त के मंत्रों में विष शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। ऋषि अगस्त्य ने विष की आशंका से युक्त होकर उसके निवारण के लिए इस सूक्त का प्रयोग किया है। इसके देवता जल, तृण और सूर्य हैं तथा इसमें मधुविद्या का वर्णन है। आचार्य सायण ने इसे विषरहित करने वाली मधुविद्या कहा है कि यह विषभाव को दूर कर अमृत बनाती है। उन्होंने इसके अल्प और महाविष–दो प्रकार लिखे हैं। इकाई अथवा सामूहिक रूप से इसका प्रयोग किया जा सकता है। विष के प्रभाव से खाद्य, पेय, भक्ष्य सामग्री तथा जल एवं वायु आदि विषाक्त हो जाते हैं। इस प्रकार सभी विष क्षोभक और श्वासरोधक होकर प्राणों का नाश करते हैं। प्राचीन युग के विष चिकित्सक अपने राजा की सेना एवं जनपद की रक्षा करने में समर्थ होते थे।

एक और शब्द 'पाप' भी प्रदूषण के पर्याय स्वरूप अथर्ववेद में आया है (अथर्व., 10/1/10)। उपनिषदों में प्रदूषण का पर्याय 'पाप' शब्द आया है (महानारायणोपनिषद्, 4/6)। यहां मिट्टी से दोष हरने की प्रार्थना है। अन्यत्र तिल को भी पापनाशक माना है। कहीं-कहीं 'मल' शब्द भी प्रदूषक वाचक माना गया है (अथर्ववेद, 6/115/3)। इसमें स्नान करने से जैसे दैहिक मल दूर होता है, वैसे ही पवित्र आचरण व व्यवहार से सभी लोग प्रदूषण से बचने के लिए प्रयत्नशील हों। इसी प्रकार ऋग्वेद में पापों और हिंसकों के आने के पूर्व ही उनसे बचने के लिए प्रयत्न करने को कहा गया है (ऋग्वेद, 8/44/30 तथा 10/113/10)। इसके लिए यहां 'दुरित' शब्द का प्रयोग हुआ है। कुछ स्थलों पर 'अहंः' शब्द भी पर्यावरण के लिए प्रयुक्त हुआ है (ऋग्वेद, 1/106/10)। इसमें यह प्रार्थना है कि हमसे सभी दोषों को दूर कर दे। (अथर्ववेद 4/27/1 से 7/11/6 तथा 6/8 एवं 10/21) के अनेक मंत्रों में मरुत देवों से पाप एवं दोषों को छुड़ाने की बार-बार प्रार्थना की गई है। वेद में एक और शब्द 'एनः' उन्हीं अर्थों में आया है, जिनमें अहंः या अघ शब्द आए हैं। यजुर्वेद के कई मंत्रों में--अग्नि, वायु और सूर्य द्वारा दिन-रात, स्वप्न अथवा जागते हुए पाप अथवा प्रदूषण से छूटने की कामना की गई है (यजुर्वेद, 20/14 से 16)।

प्रदूषण निवारण के लिए ऋग्वेद (मंडल 7, सूक्त 50) में विभिन्न पदार्थों से विष आदि हरण की कामनाएं की गई हैं। आचार्य सायण ने 'विषादिहरणे विनियोग' लिखकर ही इस सूक्त का भाष्य किया है। प्रथम मंत्र में मित्र वरुण देवताओं से प्रार्थना की गई है कि विशेष रूप से बढ़े हुए विष से बचाते हुए हमारी पालना करें। 'अजका' नामक रोग की तरह यह अनिष्टकारी विष समाप्त हो, जिससे हम लोग प्रदूषण के पाप से पीड़ित न हों। दूसरे मंत्र में कहा गया है कि वृक्षों की गांठ में अथवा शरीर के विभिन्न भागों में जो विष है, उसे प्रदीप्त अग्नि हमसे दूर करे। तीसरे मंत्र में, जो प्राण हरने वाला पदार्थ विष, सेमर आदि वृक्षों में तथा जो नदियों के प्रवाह में होता है, और जो विष, यव आदि औषधियों से उत्पन्न होता है, उस विष को विद्वान् निरंतर दूर करें, ताकि उस पापाचरण प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले रोग हमें प्राप्त न हों।

ऋग्वेद (7/104/9) में चेतावनी दी गई है कि जो कल्याणकारक पदार्थों अथवा वचनों को अपनी क्रियाओं से दूषित करते हैं, वे राक्षस दुःख सागर में गोते खाते हैं। इस प्रकार भौतिक एवं वैचारिक प्रदूषण के प्रति भी ऋषियों ने अपनी चिंता प्रगट की है। ऋग्वेद (10/137/5) के इस मंत्र में, देवगणों से प्रदूषण आदि दोषों से हमारे शरीर की रक्षा करने की कामना की गई है। इस लोक में सारी दिव्य शक्तियां सबकी रक्षा करें, मरुतों का समूह सबकी रक्षा करे, समस्त उत्पन्न पदार्थ हमारी रक्षा करें, जिससे हमारे शरीर आदि निर्दोष रहें। इसी प्रकार अथर्ववेद (8/2/19) में भी प्रदूषण मुक्ति की कामना उपलब्ध है, 'हे मनुष्य! जो तू खेती का उपजा धान्य खाता है और जो तू दूध व जल पीता है, चाहे वह नया हो या पुराना, वह सब अन्नादि तेरे लिए विष रहित हों।'

प्रदूषण : सृष्टि के लिए विनाशकारी

सृष्टि की विनाश प्रक्रिया पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि विनाश का मूल कारण प्रदूषण ही है, क्योंकि व्यक्त पदार्थों के गुणों में विकार उत्पन्न होने पर, उनके विनष्ट होने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इसे ही वेदों में प्रतिसर्ग अथवा सर्ग कहा गया है। उक्त विकार को ही आधुनिक भाषा में प्रदूषण कहते हैं। वेदों को व्याख्यायित करते हुए वायुपुराण (62/15) में महर्षि वेदव्यास ने अपनी चिंता प्रगट करते हुए कहा है कि इस सृष्टि के अपने स्वरूप में अधिष्ठित हो जाने पर इसका अंधाधुंध दोहन न किया जाए, क्योंकि मनुष्यों के क्रियाकलापों तथा अतिशय भोगवादिता के कारण प्राकृत पदार्थों में समय पूर्व वे दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो कल्प के अंत में आने वाली प्रलय में उत्पन्न होते हैं, जिससे यह दृश्य प्रकृति लय की ओर अग्रसर हो दुःखद हो जाता है। ऋग्वेद (10/86/5) का ऋषि भी इसी प्रकार चिंता करते हुए कहता है कि पर्यावरण प्रदूषण द्वारा बनाए हुए व्यक्त पदार्थों को, जब मनुष्य अपनी अतिशय भोगतृष्णा से दूषित करता है, तब यह प्रकृति उसके सिर को झुका देती है। ऐसे विनाश की ओर जाने वाला विश्व के लिए यह प्रकृति सुज्ञेय एवं सुखकारी नहीं होती।

प्रदूषण का प्रभाव

प्रदूषण के कारण अत्यधिक ताप बढ़ जाने से सूर्यादि ग्रह क्रूर हो जाते हैं और सूर्य की किरणें उग्र होकर स्थावर, जंगम, नदी, पर्वत, वनस्पति आदि तीनों लोकों को जलाने लगती हैं (महाभारत, भीष्म पर्व, 77/11 तथा वायुपुराण, 7/41-42)। इसी प्रकार मत्स्य पुराण में भी कहा गया है कि प्रचंड सूर्य अपनी किरणों से समुद्रों को शोषित कर संपूर्ण नदी, कूप एवं पर्वतों के झरनों के जल को भी सुखा देता है और अंत में वह अपनी प्रलयकालीन किरणों द्वारा पृथ्वी का भेदन करता हुआ, पाताल के जल को भी अर्थात् भू-गर्भ के जल को भी खींच लेता है (मत्स्यपुराण, 165/1-3)। इससे भूगर्भीय जल का स्तर निरंतर नीचे गिरने लगता है, जिससे कुएं और नलकूप असफल होने लगते हैं और चारों ओर विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु में पानी के जल का भीषण संकट ग्राम और नगर सब ओर दिखाई देने लगता है। इस भीषण अग्नि से, वन आदि जलने लगते हैं। मत्स्य

पुराण (165/11/1) में इसी प्रलयकालीन संवर्तक अग्नि के विनाशक रूप का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार अधिक ताप उत्पन्न होने के कारण भयानक आंधियां चलने लगती हैं और प्रकुपित वायु के प्रकोप से विनाशकारी मेघ, सूर्य, अग्नि और आंधियों की उत्पत्ति होती है (महाभारत, शल्य पर्व, 66/6)। यह प्रकुपित वायु समुद्रों को भी सुखा देती हं, जिससे भीषण जल-संकट उत्पन्न हो जाता है। अधिक ताप उत्पन्न होने के फलस्वरूप वृष्टि (वर्षा) असंभव हो जाती है और अनावृष्टि से चारों ओर हाहाकार मचने लगता है। यही संकेत ब्रह्मपुराण (231/14) में भी किया गया है। इस प्रकार बढ़े हुए ताप को ही 'कालाग्नि' के नाम से अभिहित किया गया है और उसके द्वारा विदग्ध हुई भूमि का भयावह चित्रण करते हुए महाभारत (शांतिपर्व, 293/4) में कहा गया है कि इससे समस्त स्थावर-जंगम प्राणियों के नष्ट होने का संकट उत्पन्न हो जाता है और अंत में समुद्रों का जल सूख जाने के कारण इस भूमि के, जल और तृण आदि से रहित होने पर, कछुए की पीठ की तरह स्वरूप होने की संभावना प्रबल हो जाती है। इस प्रकार अत्यधिक ताप और भयानक आंधियों के पश्चात् उनसे भी अधिक भयंकर घने मेघ आकाश में उत्पन्न होते हैं और घनघोर वर्षा द्वारा इस संसार के जल-प्लावित होने का भय उत्पन्न हो जाता है, जिससे इस सृष्टि के डूबकर नष्ट होने की संभावनाएं प्रबल हो जाती हैं (मत्स्यपुराण, 165/15)। ब्रह्मपुराण (232/14-19) में इसी प्रकृति-प्रलय की संभावनाओं को प्रदर्शित करते शार्दूल-मुनि ने पर्यावरण रक्षा के लिए विश्व को सचेत रहने का उपदेश किया है और भौतिक पर्यावरण में इनकी रक्षा का उपाय बताते हुए, इनके स्थान क्रम को इस प्रकार परिगणित किया है– 1. पृथ्वी मंडल, 2. जल मंडल, 3. तेजो मंडल, 4. वायु मंडल और 5. आकाश मंडल। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार हैं–

पृथ्वी मंडल

इस संदर्भ में भूमि, वन, प्राणी, पर्वत, ग्रह और ऋतु आदि का समावेश किया गया है। प्राकृतिक पदार्थों का विशिष्ट उपभोक्ता मनुष्य ही है। उपभोग की अधिकांश वस्तुएं इस प्रकृति में हैं, इसलिए भौतिक पर्यावरण में प्रथम स्थान में परिगणित पृथ्वी आदि शब्द विचारणीय है। पृथ्वी के अनेक गुणों के कारण उसके अनेक पर्यायवाची शब्द उसमें अभिहित अर्थों की ओर संकेत करते हैं। उक्त नामों में से कुछ नामों पर संहिता ग्रंथों एवं वैदिक व्याख्यापरक वाङ्मय में विवेचना की गई है। यहां स्थानाभाव के कारण उनके केवल संदर्भ दिए गए हैं। यथा–

1. पृथ्वी (तैत्तिरीय संहिता, 2/1/2/3, निरुक्त, 1/4/5, ऋग्वेद सायण भाष्य, 5/85/1 और अमरकोश, रामाश्रमी : टीका, पृ. 141) के विस्तार के कारण पृथ्वी है।
2. गौः (निरुक्त 2/2/5) गति के कारण गौ है।
3. भूमि (रामाश्रमी टीका, अमरकोश, पृ. 141) निवास योग्य होने के कारण भूमि है।
4. वसुंधरा (वही, पृ. 141) रत्न आदि धनों से युक्त होने के कारण।
5. मही (वही, पृ. 141) पूजनीय एवं इसमें प्राणियों के बड़े होने के कारण।
6. धरा (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।

7. धरणी (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
8. अवनी (वही, पृ. 141) प्राणियों की रक्षा एवं पालन करने के कारण।
9. मेदिनी (वही, पृ. 141) समस्त प्राणियों से स्नेह होने के कारण।
10. स्थिरा (वही, पृ. 141) अपने स्थान पर स्थित रहने के कारण।
11. विश्वंभरा (वही, पृ. 141) सबका भरण-पोषण होने के कारण।
12. रसा (वही, पृ. 141) रस से परिपूर्ण होने के कारण।
13. क्षमा (वही, पृ. 141) क्षमाशील होने के कारण।
14. गोत्रा (वही, पृ. 142) सहनशील होने के कारण।
15. सर्वसहा (वही, पृ. 142) सब कुछ सहने योग्य होने के कारण।
16. अचल (वही, पृ. 142) स्थित होने के कारण।
17. अनंता (वही, पृ. 142) अंतिम छोर न होने के कारण।

इसी प्रकार पृथ्वी-उत्पत्ति के इतिहास पर, सृष्टि-सृजन से लेकर आज तक चिंतन करने पर, उसके स्वरूप का भी बोध होता है। यथा—

1. मृण्मयी पृथ्वी—भुवनमात्र में प्रथम उत्पन्न होने के कारण इस भूमि को मृण्मयी कहा गया है (यजुर्वेद, 37/4 एवं शतपथ ब्राह्मण, 14/1/2/10)। जल प्रधान आर्द्रा पृथ्वी में अग्नि और जल के मेल से मलाई रूप झाग (फेन) उत्पन्न होकर, जब वह कुछ ठोस आकृति में परिवर्तित हो गया, तब वही मृद कहलाया। वही मृद पृथ्वी कहलाई (शतपथ ब्राह्मण, 14/1/2/9)।

2. अश्ममयी पृथ्वी—मृदा के तप्त होने पर सफेद और काली दो प्रकार की सिकता बनी। (शतपथ ब्राह्मण, 6/1, 3/4/7, 3/1, 4/3) और ढीली पृथ्वी को देवों ने कंकर-पत्थर से दृढ़ किया (शतपथ ब्राह्मण, 6/1/3/3 तथा मैत्रयणी संहिता 1/6/3)। इस प्रकार पृथ्वी अश्ममयी हुई।

3. रत्नगर्भा भूमि (अथर्ववेद 12/1/26 तथा गोपथ ब्राह्मण, 2/2/7)।

4. अग्निगर्भा पृथ्वी (अथर्ववेद, 12/1/21, शतपथ, 14/9/4/21 तथा जैमनीय ब्राह्मण, 3/186)।

5. परिमंडल पृथ्वी (शतपथ ब्राह्मण, 7/1/1/37 व जैमिनीय ब्राह्मण, 1/2/5/7)।

6. हरित भूमि (ऋग्वेद 5/84/3, 6/47/27, 7/34/23 व मैत्रायणी संहिता, 3/9/2, 4/5/5/ जैमिनीय ब्राह्मण, 2/5/4 व कोषीतकी ब्राह्मण, 6/14)।

7. गंधवती पृथ्वी (अथर्ववेद, 12/1/23-25 तथा शतपथ ब्राह्मण, 9/4/1/8, 10)।

पृथ्वी एवं पर्यावरण

पृथ्वी पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है। प्राणी जिस पर बसते हैं और जिसके आधार पर जीवन पाते हैं, वह भूमि निश्चय ही वंदनीय एवं अतिशय उपयोगी है। इसीलिए पृथ्वी को माता कहकर नमन करने का संकेत वेदमंत्रों में है (अथर्ववेद, 12/1/23-2/5, ऋग्वेद, 10/18, 10/11, यजुर्वेद 9/22, 13/18, 36/13 व अथर्ववेद, 12/1/1-3, 12/1/6, 10/12, 6/21/1)। पृथ्वी के अत्यधिक महत्व का प्रतिपादन आधुनिक पर्यावरणविदों ने भी किया है। भूमि या मिट्टी सर्वाधिक मूल्यवान संसाधन हैं, क्योंकि विश्व के 71 प्रतिशत

खाद्य पदार्थ मिट्टी से ही पैदा होते हैं। 2 प्रतिशत भाग में ही कृषि योग्य भूमि है, जो निम्न प्रकार है–

1. कृषि भूमि–भूमंडल का 2 प्रतिशत–71 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
2. वन भूमि–भूमंडल का 8.8 प्रतिशत–10.4 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
3. घास मैदान–भूमंडल का 7.2 प्रतिशत–12 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
4. दलदल व मरुस्थल–भूमंडल का 10.4 प्रतिशत–3.3 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
5. समुद्र–71.8 प्रतिशत–3.3 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमि या मिट्टी एक अतिसीमित किंतु मूल्यवान संसाधन है। खाद्य पदार्थों की समुचित उपलब्धि के लिए इस सीमित संसाधन को प्रदूषण से बचाना आज की अनिवार्य आवश्यकता है।

प्रदूषण रहित भूमि एवं उसका संरक्षण

ऋग्वेद में भूमि संरक्षण संबंधी विभिन्न विचार उपलब्ध हैं। उनमें ऋषि द्वारा विद्वानों को सत्य लक्षणों से युक्त ज्ञान से प्रकाशित मंत्रों से भूमि को धारण करने का निर्देश दिया गया है (ऋग्वेद, 1/67/3)। उनमें राजा को आदेश दिया गया है कि वह धन, औषधि, जल आदि को धारण करने वाली पृथ्वी की सुरक्षा करे (ऋग्वेद, 3/51/5 तथा 3/55/22)। यजुर्वेद में यह कामना करते हुए संदेश दिया गया है कि भूमि को अपने दुष्कर्मों से न बिगाड़ें, उसको प्रदूषित करना उसके प्रति हिंसा है। भूमि की हिंसा हम और हिंसा हमारी भूमि न करे (यजुर्वेद, 10/23)। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि सबका पालन करने वाली भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट न होने दें। हे भूमि, हम तेरी खुदाई करें, वह शीघ्र भर जाए, हम तेरी हिंसा न करें (अथर्ववेद, 12/1/34-35)। भूमिसूक्त के ऋषि प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि यज्ञ भूमि में देवताओं के लिए हम अलंकृत हव्य प्रदान करें। उसी भूमि में मरणशील मनुष्य स्वधा और अन्न से जीवन धारण करते हैं। वह भूमि हमें वृद्धावस्था तक प्राणप्रद वायु प्रदान करे। पृथ्वी की गोद हमारे लिए निरोग और सब रोग से रहित हो। दीर्घकाल तक जागते हुए हम अपने जीवन को इसकी सेवा में लगाएं (अथर्ववेद, 12/1/22 तथा 12/1/62)।

भूमिसूक्त का ऋषि हमें बताता है कि निवास योग्य तथा विभिन्न कार्यों में प्रयोग होने वाली भूमि का संरक्षण करने से वह सुखद होती है। हे भूमि, तुम्हारी पहाड़ियां, हिमाच्छादित पर्वत, वन, पुष्टि देने वाली भूरे रंग की मिट्टी, कृषि-योग्य काली मिट्टी, उपजाऊ लाल रंग की मिट्टी अनेक रूपों वाली, सबका आश्रय स्थान, स्थिर भूमि पर अजेय, अवध्य और अक्षत रहकर हम निवास करें (अथर्ववेद, 12/1/11)। वेदों में मनुष्य को समृद्ध बनाने वाली उर्वरा भूमि के लिए कृषकों एवं वैज्ञानिकों की प्रेरणा दी गई है कि वे उसकी उर्वरा-शक्ति बनाए रखने के लिए पर्यावरण-प्रदूषित करने वाले खाद के स्थान पर, गोबर-खाद प्रयुक्त खेती को ही उत्तम फलवती मानकर, मधुर अन्न उत्पन्न करने वाले खाद के स्थान पर उन्नत करें। बार-बार बुआई से भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होने की ओर संकेत किया गया है कि सब कुछ देने वाली जिस विस्तृत पृथ्वी की जागरूक, विविध व्यवहारों में कुशल विद्वान् प्रजाजन प्रमादरहित होकर रक्षा करते हैं, उस भूमि को हम प्रिय मधु दिया करें तथा हम उसके तेज को बढ़ाएं (अथर्ववेद, 19/31/2 तथा 12/17)।

प्रदूषण-रहित प्राचीन कृषि-विज्ञान

वेदों में सर्वप्रथम भूमि संस्कारवान बनाने के लिए कहा गया है। भूमि और अन्न को प्रदूषणरहित रखने के लिए मलिन अथवा विषयुक्त खाद डालकर उसे बिगाड़ने के प्रति निषेध किया गया है। यजुर्वेद में हल बैलों द्वारा खेतों को जोतकर, उत्तम अन्नों के बीज बोने का निर्देश दिया गया है। खेतों में गोबर-खाद डालें और विष्ठा आदि मलिन पदार्थ न डालने के लिए कहा गया है। बीजों को सुगंध आदि से उपचारित करके बोएं ताकि अन्न भी रोगरहित होकर मनुष्य की बुद्धि को बढ़ाए। वहां निर्देश दिया गया है कि खेतों को घी, मीठा और जल आदि से संस्कारित करें। यहां मीठा का अर्थ शहद या शक्कर से लिया गया है। प्रदूषणरहित कृषि ही राष्ट्र निवासियों को बलवान् बनाती है। इसलिए राजा को भी आदेश दिया गया है कि राजा हमारे लिए ऐसी खेती को सदैव बढ़ावा दे, उसे प्रोत्साहित करे। मनुष्यों में तेज और बल बढ़ने से ही उत्तम राष्ट्र उन्नतिशील होता है और यह संभव होता है प्रदूषणरहित कृषि अपनाने से (ऋग्वेद, 10/101/3, 4 तथा यजुर्वेद 4/10, 12/69/70, 23/46 एवं अथर्ववेद 8/10/12 व 3/12/4)।

यज्ञ द्वारा प्रदूषण निवारण

भूमि प्रदूषण निवारण हेतु अनेक उपाय वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं। उन उपायों में यज्ञ महत्वपूर्ण है, जिससे पृथ्वी सस्यादि से पुष्ट होकर सुख देने वाली बनती है। वैदिक ऋषि कहते हैं कि विस्तृत द्युलोक तथा भूमि हमारे इस यज्ञ का सेवन करे और वे यज्ञ से पोषण प्राप्त कर, हमारा भरण-पोषण करें। क्योंकि यजमान द्वारा अनुष्ठीयमान यज्ञ वर्षाकारक इंद्र की शक्ति को बढ़ाता है और भू-लोक को विविध अनाज आदि से पुष्ट करता है (ऋग्वेद 1/22/13 तथा 8/14/5)।

प्रदूषण से भूमि फलवती नहीं होती, जिसे आचार्य सायण ने अनृत का परिणाम लिखा है। उन्होंने कहा है कि सत्यविरोधी अधर्माचरण से भूमि में अन्नादि नहीं फलते। यजमान द्वारा यज्ञादि में दी गई आहुति से देवगण नया जीवन पाते हैं। अग्नि में घी-सामग्री की हवि देने से भूमि महती होती है और वर्षा द्वारा अनाज आदि की वृद्धि के कारण औषधि से प्रवर्धित पृथ्वी बलवती होती है (ऋग्वेद, 10/85/ 1-2)। यजुर्वेद में भी पृथ्वी को यज्ञ के द्वारा समर्थ बनाने की कामना की गई है। उसमें कहा गया है कि विस्तृत भूमि और उसमें स्थित पत्थर, हीरा आदि रत्न, मिट्टी, मेघ, छोटे-बड़े पर्वत और उसमें होने वाले पदार्थ, रेत आदि और बड़, पीपल, आम आदि वृक्ष, सोना, चांदी, लोहा, तांबा, नीलमणि, चंद्रमणि, सीसा और लाख, जस्ता एवं पीतल आदि—ये सब यज्ञ से समर्थ होते हैं (यजुर्वेद, 18/13/18)। इसमें पृथ्वी को भस्म से भरने का भी संकेत है, जो यज्ञ से प्राप्त होती है, चूंकि यज्ञ की भस्म द्वारा उत्तमोत्तम औषधियों का क्षारतत्व पृथ्वी को प्राप्त होता है (यजुर्वेद 6/21 तथा मैत्रायणी संहिता 3/9/4)।

यजुर्वेद में आया है कि भूमि को उपयोगी बनाते समय यज्ञ का प्रयोग करें। इससे पृथ्वी समर्थ और शक्तिशाली बनेगी। वर्षा भी यज्ञ द्वारा समर्थ होती है। वहां यह भी कहा गया है कि यदि उत्तान लेटी हुई भूमि का हृदय क्षतिग्रस्त हो गया है और उसकी उपजाऊ शक्ति क्षीण या समाप्तप्रायः हो गई है तो कुछ समय उसमें खेती न करके तथा उसे खाली

रखकर उसमें शुद्ध वायु, सूर्यरश्मि, वर्षा आदि द्वारा पुनः शक्ति का संधान करना चाहिए (यजुर्वेद, 18/9, 11/39 एवं आर्षज्योति, पृ. 261)।

पर्यावरण का संदेश

अथर्ववेद में 'भूमि की हरेपन से रक्षा करने' का जो संदेश है, उसके द्वारा दो बातें कही गई हैं। प्रथम तो यह कि पर्यावरण तथा प्राणियों की रक्षा पृथ्वी में हरियाली के माध्यम से होती है एवं द्वितीय यह कि भूमि भी पेड़-पौधों की हरितिमा से सुरक्षित रहती है। इसलिए भूमि को प्रदूषण से बचाए रखने के लिए न केवल हरियाली के प्रभाव को समझना होगा, अपितु सघन वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाकर, धरती पर हरियाली का हर संभव प्रयास करना होगा। यही कारण है कि हमारे चिंतक मनीषियों ने वृक्षों एवं वनों की रक्षा करने वालों का विशेष सम्मान करने तथा उन्हें सतत् अन्न-धन देते रहने का संदेश दिया है। इसीलिए अथर्ववेद के भूमिसूक्त में ऋषि ने भूमि से भी कहा है कि तेरे जंगल हमारे लिए सुखदायी हों (अथर्ववेद, 5/28/5, 12/1/11 तथा यजुर्वेद, 16/18-20)। सुश्रुत संहिता (कल्पस्थान, 3/12) में भूमि उपचार (चिकित्सा) का वर्णन करते हुए बताया गया है कि अनंता (सारिवा) को एलादिगण (सर्वगंधा) के साथ सुरा में पीसकर दूध तथा काली मिट्टी अथवा वाल्मीकि मिट्टी मिलाकर इससे छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त वायविडंग, पाठा, कटभी (अपराजिता) आदि द्रव्यों के काढ़े से प्रदूषित भूमि में परिषेक क्रिया करें।

पर्यावरण वानिकी

वैदिककाल में लोकजीवन वनस्पतिमय था। वन्य प्रदेशों में तो वनस्पतियों का बाहुल्य था ही, ग्रामीण क्षेत्रों में भी उसकी अधिकता थी। इस कारण मनुष्य अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति उसी के माध्यम से करता था। यज्ञों में भी वनस्पतियों का विशेष उपयोग था। इन प्राकृत प्रयोजनों के अतिरिक्त विकारों के निवारण के लिए भी वनस्पतियों का प्रयोग होता था। प्राचीन मानव के योग क्षेम में वनस्पतियों का महत्वपूर्ण स्थान था। यही कारण है कि हमें वैदिक वाङ्मय में औषधि-वनस्पतियों की स्तुति में अनेक मंत्र उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद के औषधि सूक्त (1/187 तथा 10/97) तो प्रसिद्ध ही हैं, अथर्ववेद में भी ऐसे अनेक स्थल (अथर्ववेद, 8, 7, 11, 6, 19, 28, 44) तथा यजुर्वेद का 12वां अध्याय है, जहां मंत्रदृष्टा महर्षि वनस्पतियों की स्तुति करते नहीं अघाते।

वैदिककाल में प्रकृति के साहचर्य से भी वनस्पतियों का ज्ञान प्राप्त किया गया। सभ्यता के विकास के साथ जैसे-जैसे उसकी आवश्यकताएं बढ़ने लगीं, वैसे-वैसे वनस्पतियों का क्षेत्र विकसित होता गया। इस कार्य में उसने प्राणियों से भी सहायता ली। पशु-पक्षी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिन औषधियों का उपयोग करते थे, उन पर भी मनुष्य ने अपने लिए प्रयोग किए। पशुओं की प्रयोगशाला में भी उसने अनेक अनुसंधान किए (अथर्ववेद, चिकित्सा विज्ञान, पृ. 69-70)। कुछ पौधों को वराह (सूअर) जानता है और कुछ औषधियों को नेवला, कुछ को सांप और गंधर्व। कुछ आंगिरसी औषधियां सुपर्ण (चील, गिद्ध) जानते हैं और कुछ रघट जानता है। कुछ को पक्षी एवं हंस तथा अन्य पंखवाली चिड़िया जानती हैं। कुछ औषधियां मृग जानते हैं। न जाने कितनी औषधियां गौएं खाती हैं और कितनी भेड़-बकरियां। ये सब औषधियां कल्याणकारी और पोषक हों

(अथर्ववेद, 8/7/23-25)। इसी प्रकार आयुर्वेद के आचार्यों ने और भी अनेक औषधियों का आविष्कार किया, जो पर्यावरण संतुलन के लिए अत्यंत आवश्यक थीं (वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, डॉ. सत्यप्रकाश, पृ. 219)। इसी प्रकार वैदिक ऋषि अत्रि ने वन और वर्षा का परस्पर संबंध बताते हुए कहा है कि वनों से जल फैलाया जाता है (ऋग्वेद, 5/85/2)। जंगलों से अधिक वृष्टि होने के प्रमाण भी वेदों में मिलते हैं। सूर्य की किरणें अंतरिक्ष में जल का संचय करके अवर्षण के समय में भी वर्षा को वनों के ऊपर गिरने की प्रेरणा करती हैं। इसलिए जंगलों में कभी अवर्षण नहीं होता (ऋग्वेद, 1/24/7 तथा वैदिक संपत्ति, पं. रघुनंदन शर्मा, पृ. 654)। औषधियां पृथ्वी की आच्छादक होने से वस्त्र के समान हैं (ऐतरेय ब्राह्मण, 5/28)।

प्राचीन ऋषिगण, औषधियों के पर्यावरणीय महत्व से भलीभांति परिचित थे। वे औषधियों को प्रदूषणनाशक मानते थे (ऋग्वेद, 1/191/2)। उन्होंने औषधि 'अवघ्नती' को अपनी गंध से अनेक विषों को नष्ट करने वाली तथा कीटों को मारने वाली बताया है (वैदिक साहित्य में शल्य-चिकित्सा एक अध्ययन, डॉ. रामजी विश्वकर्मा, पृ. 105)। पर्यावरण पर औषधियों के प्रभाव को बताते हुए कहा है कि जहां भी प्रदूषण होता है, वे उसे बाहर निकाल देती हैं (यजुर्वेद, 12/84/91/101)। यहां राजा को प्राकृतिक संसाधनों को न बिगाड़ने का आदेश दिया गया है और प्रत्येक स्थान में जल और औषधियों, अन्नपान पदार्थों तथा वनज पदार्थों को न बिगाड़ने की भी व्यवस्था करें (यजुर्वेद, 12/72)। औषधियां प्रदूषण हरने वाली होती हैं (अथर्ववेद, 8/7/10, 13, 14, 17)। जितनी औषधियां इस पृथ्वी के ऊपर हैं, सहस्रों पोषण वाली, वे सब हमें प्रदूषण से बचाएं। संहिता ग्रंथों में भी औषधियों को प्रदूषण-नाशक कहा गया है (तैत्तिरीय संहिता, 4/2/6/1, मैत्रालयी संहिता, 2/7/13, काठक संहिता, 16/13, मैत्रालयी संहिता, 4/9/27)। पृथ्वी के जिस भाग में अधिक पौधे होते हैं, वह स्थान प्राणियों के लिए अतिशय जीवनोपयोगी होता है (शतपथ ब्राह्मण, 1/3/3/10)। ऋषि पुनर्वसु ने छह प्रकार के जिन पौधों को पर्यावरण को शुद्ध करने वाला माना है, वे इस प्रकार हैं—स्नुही (थूहर), अर्क (आकड़ा), अश्मंतक (पथरचटा), पूतीक (करंज), कृष्णगंधा (सहजना), तिल्लक (पठानी लोध), (चरक संहिता, सूत्रस्थान, 1/76)।

अथर्ववेद में जिन पर्यावरणोपयोगी पेड़-पौधों का वर्णन है, वे इस प्रकार हैं— 1. अश्वत्थ, 2. शमी, 3. वरणवर्ती, 4. अजशृंगी, 5. अपामार्ग, 6. उदुंबर, 7. दर्भ, 8. जडिगड़, 9. शतावर, 10. गुग्गुल, 11. करीर, 12. पलाश। करीर की यज्ञ में आहुति देने से शीघ्र वृष्टि होती है। पलाश को ब्रह्मतुल्य कहा गया है, जो व्यापक प्रदूषणों को दूर करता है।

पर्यावरण-संरक्षण और प्राणी

प्राणी भी पर्यावरण के लिए मुख्य घटक हैं। पर्यावरण को जीवंत रखने के लिए पशु-पक्षी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मनुष्य, जीव तथा पेड़-पौधे परस्पर संबद्ध हैं, इसलिए पर्यावरण संरक्षण में प्राणियों का सुरक्षित होना नितांत आवश्यक है। ये प्राणी-पर्यावरण से, पर्यावरण में और पर्यावरण के लिए जीते हैं, इसलिए प्राचीन साहित्य में पशु-पक्षियों के स्वरूप, महत्व एवं भेद पर हमें बहुत अधिक विवरण प्राप्त होता है। यथा—

1. अग्निमय पशु—अग्नि का तेज प्रदूषण निवारण में सक्षम है। अग्नि के तेज से उत्पन्न होने के कारण पशुओं को आग्नेय कहा गया है (कपिष्ठल संहिता 38/1, ऐतरेय ब्राह्मण, 2/6, तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1/1/4/3)।

2. गंधमय पशु—पशु एक विशिष्ट गंध से समाविष्ट हैं, जो प्रदूषण निवारण में सक्षम है। देवताओं ने यह गंध, सोम से लेकर, पशुओं में प्रविष्ट की है, अतः इस गंध को घृणित समझकर नाक बंद नहीं करनी चाहिए (शतपथ ब्राह्मण एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 223)।

3. मारुत पशु—पशु मरुत गुण से भी संबंधित हैं, जो प्रदूषण को विनष्ट करते हैं (ऐतरेय ब्राह्मण, 3/19)।

पशुओं का पर्यावरणीय महत्व इसी से सिद्ध हो जाता है कि उनकी उपस्थिति मात्र से वायु और भूमि आदि में विद्यमान दोष स्वतः दूर हो जाते हैं। उनके गंध और अग्नि तेज से रोगाणु तथा विष तो नष्ट होते ही हैं, पशुओं द्वारा प्रदत्त दूध, घी एवं मल-मूत्र भी रोग तथा विषनाशक हैं। पशुओं में सर्वाधिक उपयोगी गाय है। ऋग्वेद में गाय को यज्ञपूरक तथा दुग्ध आदि से बढ़ाने वाली कहा गया है (ऋग्वेद, 10/69/3)। वैज्ञानिकों का मत है कि गाय के रोम-रोम से ऑक्सीजन निःसृत होती है। गौ-घृत से तैयार यज्ञ-आहुति से ऑक्सीजन तैयार होती है। बकरियां क्षयरोग को विनष्ट करती हैं। अपान शुद्धि के लिए बकरी का दूध, ज्ञानयुक्त वाणी बढ़ाने के लिए भेड़ का दूध, ऐश्वर्य वृद्धि के लिए गौ-दुग्ध, रोग निवारण में औषधियों का रस तथा बल के लिए संस्कारवान अन्न का भोजन करने का परामर्श दिया गया है (यजुर्वेद, 21/59-60)। घोड़े के हिनहिनाने से ज्वर और खांसी आदि का निवारण होता है (अथर्ववेद, 2/30/5, 11/2/22)। बैल पृथ्वी को धारण करता है और परिश्रम से प्रदूषण को विनष्ट करता है (अथर्ववेद, 4/11/1, 4/10)। मृग (हिरण) भी पर्यावरण-प्रदूषण को दूर करने में समर्थ है। शीघ्रगामी हरिण के मस्तक के भीतर औषधि है, वह अपने सींग से क्षेत्रीय रोग और विष को नष्ट कर देता है (अथर्ववेद, 3/7/1/2)। इनकी रक्षा के लिए कठोर-से-कठोर दंड का प्रावधान करते हुए कहा गया है कि जो पुरुष घोड़े तथा गाय आदि पशुओं की हत्या, मांसाहार के लिए करता है, वह राक्षस है। पर्यावरण के पोषक तत्वों को नष्ट करने वाले कठोर-से-कठोर दंड के योग्य हैं।

इसी प्रकार तोता पक्षी को पीलिया (कामला) रोग को हरने वाले और क्षयरोग से दूषित वायु को चीड़ के वृक्ष और बकरी-बंदर आदि पशु अधिक अपनाते हैं। ऐसे ही मनुष्य के कामला रोग को दारुहल्दी के वृक्ष एवं हरे तोते अपनाते हैं (अथर्ववेद, 1/22/4 तथा अथर्ववेदीय मंत्रविद्या, स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक, पृ. 26)। गरुड़ और मोर तथा सर्प आदि विषभक्षक हैं (अथर्ववेद, 4/6/3-4)। इस तरह हम देखते हैं कि भूमि, वृक्ष, पशु-पक्षी तथा मनुष्य—एक-दूसरे के पूरक ही नहीं अपितु अभिन्न हैं। ये पर्यावरण-चक्र के परे हैं। इनमें से किसी एक का भी अभाव सृष्टि प्रवाह में बाधक ही नहीं, अपितु पर्यावरण के लिए घातक है।

पर्यावरण एवं पर्वत

पर्वत भी पर्यावरण के महत्वपूर्ण भाग हैं। पृथ्वी में कील की तरह विद्यमान पर्वत, न केवल भूमि की सुरक्षा के लिए हैं, अपितु पर्यावरण संतुलन में उपयोगी भी हैं।

औषधि, जल और विभिन्न रत्नों के केंद्र होने के कारण पर्वतों की उपयोगिता है। अथर्ववेद (3/21, 10/8, 7/17) में उल्लेख है कि मनुष्य प्रयत्न करे कि सोम लता आदि औषधियां उत्पन्न करने वाले पर्वत, जल, वायु, मेघ, अग्नि आदि सब पदार्थों को शुद्ध रखकर सुखदायक हों। पर्वत शब्द के अर्थ पर चिंतन करने से भी पर्वत महत्व का बोध होता है। पालनार्थक और पूरणार्थक 'पृ' धातु से 'पर्व' शब्द बनता है, जो पालना करे और कामनाओं की पूर्ति करे, वह पर्व कहा जाएगा। ऐसे पदार्थ जिसके पास हों, वह पर्वत कहलाएगा। पर्वतों में हमारी पालना एवं आवश्यकताओं की पूर्ति तथा प्रदूषण को विनष्ट करने वाले अनेक पदार्थ होते हैं (ऋग्वेद, 3/57/6, 6/24/6, अथर्ववेद, 20/51/2 तथा वेदों के राजनीतिक सिद्धांत, आचार्य प्रियव्रत, पृ. 507)।

पर्यावरण एवं निवास स्थान

पर्यावरण में गृह का विशेष महत्व है। परिवेश का अपर पर्याय आवास को कहा जा सकता है। जिस आवास में हम रहते हैं, वह न केवल हमारे लिए, वरन् पशु-पक्षियों के लिए भी उपयुक्त होना चाहिए। इस दिशा में भी वैदिक ऋषियों ने पर्याप्त चिंतन किया है। ऋग्वेद में हवादार तथा प्रकाशयुक्त विशाल घर को परम् पद प्राप्ति में सहायक कहा गया है। यहां दीर्घतमा ऋषि ने ऐसा घर बनाने का उपदेश किया है (ऋग्वेद 1/154/6)। अथर्ववेद के शाला-देवता वाले सूक्त में भी गृह महत्व का प्रतिपादन है। इन मंत्रों में प्रयुक्त शाला के विशेषण, पर्यावरण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण एवं चिंतनीय हैं। उसमें कहा गया है स्थिरता से स्थापित घर, गाय और घोड़े से युक्त बलप्रद, दूध-घी से भरपूर, महान् सौभाग्य के लिए हैं। विशाल छत के नीचे शुद्ध अन्न-धन का भंडार हो। सुख देने वाली देवी शाला, देवताओं की आश्रय स्थली है। घास-पात से ढकी हुई, घृत की अमृतधारा से संपृक्त शाला में अग्नि के साथ निवास करें (अथर्ववेद, 3/12/2, 3/5, 8/9)।

वास्तुकला

मनुष्य समाज में गृह-निर्माण कला का अतिशय महत्व है। वास्तुकला पर ऋषियों ने चिंतन करते हुए कहा है कि जब कोई मनुष्य घर बनाए तो वह सब तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला उत्तम उपमायुक्त हो, जिसे देखकर विद्वान् लोग सराहना करें। उसमें एक द्वार के सामने दूसरा द्वार तथा उसके कोने एवं कक्षा भी सम्मुख हों। वह चारों ओर के परिमाण से समचौरस हो। उस घर के द्वार चारों ओर के पवन को ग्रहण करने वाले हों। उसकी चिनाई एवं बंधन दृढ़ हों (अथर्ववेद, 9/3/1, 7,11)। प्रत्येक घर में होम करने का स्थान एवं यज्ञीय पदार्थ रखने का स्थान होना चाहिए। इससे घर की वायु में विशेष प्रकार के पौष्टिक, सुगंधित, रोगनाशक (प्रदूषण नाशक) और आयुवर्धक तत्वों की उपस्थिति एवं वृद्धि बनी रहती है। इससे वायु संस्कारित होती है। घर केवल ईंटों और पत्थरों से घिरा हुआ स्थान नहीं होता, यह वह स्थान होता है, जहां परिवार के लोग अपने स्वभाव को सुधारने एवं एक सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी पर चढ़कर जीवन के पुरुषार्थों को पाकर आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं।

जल मंडल

जल भी पृथ्वी की तरह ही पर्यावरण का महत्वूपर्ण घटक है। जल के बिना किसी तरह का जीवन संभव नहीं। जल के कारण ही पृथ्वी पर जीवन प्रारंभ हुआ। प्राचीन साहित्यकारों द्वारा इसकी अतिशय उपादेयता का ध्यान कर ही जल के— अर्णः, क्षोदः, नभः, अंभः, सलिलम्, आपः, अमृतम्, इंदुः, अंब, तोयम्, वारि, इदम् आदि 101 नाम गिनाए गए हैं (निघंटुकोश, 1/12)। अमरकोश में पानी के 27 नाम आए हैं, जिनमें से 17 नाम निघंटु में वर्णित हैं (अमरकोश, 1/10/3-5)। अथर्ववेद के 'आपोदेवता' वाले सूक्त में भी जल के कुछ नामों के निर्वचन उपलब्ध हैं (अथर्ववेद, 3/13/1-3)। जल के अनेक अभिधानों के संबंध में यह अभिमत है कि वैदिक काल में जल का नामकरण उसके गुणों के आधार पर रखा गया है, जो निश्चित रूप से पर्यावरण की रक्षा करते हैं।

अथर्ववेद में पर्यावरण को दूषित करने वालों को चेतावनी देते हुए कहा है कि वे कुएं आदि जलस्रोतों को गंदा न करें। इस संदेश के साथ राजा को यथावत् प्रबंध करने के लिए कहा गया है (अथर्ववेद, 5/31/8)। इन जलस्रोतों का प्राचीन साहित्य में इस प्रकार उल्लेख हुआ है—1. वर्षा जल को ऐंद्र और दिव्य कहा गया है, 2. नदी एवं नद-गंगा आदि नदियां और सिंधु आदि नद कहे गए हैं, 3. समुद्र, 4. झील, 5. कुआं—कूप तथा वापी यह दो प्रकार का होता है। 6. तालाब—(अ) पुष्करिणी (ब) पुष्कर (स) सर—जो प्राकृतिक हो और तड़ाग—जो मनुष्यकृत हो। 7. निर्झर, 8. औद्भिद (सोते का जल), 9. चौंडा—जो थोड़ा गहरा हो और बंधा न हो— ऐसा कुआं, 10. विकरि—बालू के नीचे का जल, 11. क्यारी या नहर का जल, 12. पल्लव को गड़ही कहा गया है और 13. प्रपा—ऋग्वेद में प्याऊ को प्रपा कहा गया है। इसी प्रकार जल के अनेक प्रकार वेद-संहिताओं में कहे गए हैं—ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में 14 प्रकार के जल का उल्लेख है, जबकि (शतपथ) ब्राह्मण ग्रंथों में 17 प्रकार के जल का उल्लेख है। आचार्य सायण ने 16 नामों का भाष्य किया है। इन सब जल से पर्यावरण की शुद्धि बताई गई है।

इसी प्रकार आयुर्वेदज्ञों ने विभिन्न जल के विज्ञान का निरूपण भेदोपभेदपूर्वक लिखा है। यथा—1. धारा जल, 2. समुद्र जल, 3. अनार्तव जल, 4. कारक जल, 5. तौषार जल, 6. हिम जल, 7. आनूप जल, 8. जांगल जल, 9. साधारण जल और 10. नादेय जल।

जल का महत्व

सृष्टि निर्माण के मौलिक तत्वों में जल मुख्य घटक है। माता के गर्भ में जिस प्रकार शिशु के चारों ओर कलल रस विद्यमान रहता है, जिससे शिशु का संवर्धन, पोषण एवं संरक्षण होता है, उसी प्रकार इस महान ब्रह्मांड के भी चारों ओर रसज् या कुहूक (कोहरा) स्थिति में जल विद्यमान रहता है (वैदिक संपदा, पं. वीरसेन वेदश्रमी, पृ. 381)। जल उत्कृष्ट माता है, क्योंकि इससे पर्यावरण का निर्माण ही नहीं वरन् पालन भी होता है (ऋग्वेद 1, 23/16, 6/50, 7,10, 9, 2, 10, 17, 10)। जल अमृतमय है (ऋग्वेद, 1/23/19)। जल महौषध है (ऋग्वेद 1/23/19-21)। वैदिक संहिताओं में जल को दुरित-निवारक एवं पाप-संशोधक कहकर, जल के पर्यावरणीय महत्व का प्रतिपादन किया गया है (ऋग्वेद 1/23/22, 10/9/3)। गायंत्री मंत्र से अभिमंत्रित जल से राक्षसों का शासन होता है

(तैत्तिरीय आरण्यक, 2/2/1)। उसी प्रकार पर्यावरणीय जलविज्ञान में पर्जन्य (बादल) बहुत महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद (5/83/1 से 5, 9, 10/36/4) में कहा गया है कि गरजता हुआ बादल राक्षस-रोग व प्रदूषण को नष्ट करता है। इसी प्रकार नदियों के भी 24 प्रकार के भेद कहे गए हैं (ऋग्वेद 10/75/5-8)। सूर्य और वायु दोनों प्रदूषित जलों को पवित्र करते हैं (यजुर्वेद, 1/12 तथा अथर्ववेद, 4/37/8)। ऋग्वेद (7/47/3) में जल वृष्टि को यज्ञ द्वारा पवित्र करने का संकेत है। अतः घृत को यज्ञ में, देवताओं के लिए प्रयुक्त करना चाहिए ताकि वृष्टिजल शुद्ध हो सके (ऋग्वेद, 9/49, 11/3), जिससे पर्यावरण पवित्र होता है। यज्ञ से संस्कारित जल का निर्माण होता है। कुशा आदि अनेक औषधियों से भी जल शुद्धि बताई गई है।

जल-निर्माण प्रक्रिया

प्राचीन चिंतन में जल निर्माण प्रक्रिया को समझाया गया है। जीवन के देने वाले मित्र तथा वरुण (प्राण व उदान), वृष्टि का सृजन कर पृथ्वी एवं द्युलोक को धारण करते हैं (ऋग्वेद, 5/62/3, 7/33, 10-11)। संहिता तथा ब्राह्मण ग्रंथों में भी यही प्रतिपादित किया गया है (तैत्तिरीय संहिता, 6/4, 3/3 तथा मैत्रायणी संहिता 4/5/2)।

तेजोमंडल

अग्नि के नाम व भेद हमें वैदिक साहित्य में इस प्रकार प्राप्त होते हैं–

अग्नि–आचार्य शाकपूणि ने अग्नि शब्द को–इण (जानना), अञ्ज (चमकना) या दह (जलाना) तथा नी (ले जाना)--इन तीन क्रियाओं से बना बताया है। अग्नि शब्द के निर्माण में ई से आकार, अञ्ज या दह से गकार और नी से अंतिम वर्ण नि हुआ (निरुक्त, 7/4/14)। अमरकोश के टीकाकार ने अग्नि का अर्थ–जाना, चलना किया है, जो गतिशील है वह अग्नि है (अमरकोश, रामश्रमी टोका, पृ. 20)।

वेदों में अग्नि के निम्न प्रकार आए हैं–

1. वैश्वानर–ऋग्वेद (1/98, 3/3, 1/59, 7-8, 10/88)। आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली अर्थात् अंग्रेजी में इसका अर्थ दिया गया है (Latent Heat of Fusion & Vaporisation)।

2. जातवेद–ऋग्वेद (1/19/1)। इसे अंग्रेजी में Potentional and Kinetic Energy कहा है।

3. द्रविणोदः–ऋग्वेद (1/15/7)। इसे Atomic Energy कहा गया है।

4. इध्म–ऋग्वेद (1/13/1) इसे Thermal Heat कहा गया है।

5. तनूनपात्–इसे Internal Combustion of Fuel Derivatives Like Ghee, Petroleum and Coal Gas etc. कहा गया है। ऋग्वेद (सायण भाष्य, 3/29/11)।

6. नराशंस–(निरुक्त, 8/2/4) इसे Chemical Energy and the Result of Chemical Affinity in Terms of Valency कहा गया है।

7. ईल–(निरुक्त, 8/2/5) इसे Electromagnetic Field कहा गया है।

8. बर्हि–(निरुक्त, 8/2/6) इसे Echo-Resonant Energy of Use in Rectar etc. कहा गया है।

9. द्वार—(निरुक्त सम्मर्श, स्वामी ब्रह्ममुनि, पृ. 628-632) इसे Electrons in Atomic Arbits कहा गया है।

10. उषासानक्ता—इसे Ions and chagres in electolytes or Electrostatic and Dynamic Machines Proceeding in a current to Electrodes and Terminals as Positive and Negative charges कहा गया है।

इसी प्रकार तेज या अग्नि के 108 नाम व भेद वैदिक साहित्य में आए हैं। उनमें कहा गया है कि सर्वप्रथम अग्नि को मंथन के द्वारा अथवा ऋषि ने उत्पन्न किया (ऋग्वेद, 1/95, 3/29, 2, 6/15/17, 6/16/13) आदि। वेदों में अग्नि को 'अपां गर्भः' कहकर जल का पुत्र कहा गया है। अग्नि के अनेक भेद बताए गए हैं। अग्नि सात ज्वालाओं वाली कही गई है (ऋग्वेद, 10/8/4)। ऋग्वेद में कम-से-कम 200 सूक्तों में अग्नि का वर्णन है।

पर्यावरण में अग्नि का महत्व सर्वोपरि है। अग्नि से ही प्रदूषण समाप्त होता है। ताप और आर्द्रता दोनों के संयोग से ही किसी भू-भाग की वनस्पति तथा जीवमंडल का निर्धारण होता है (संसाधन संरक्षण भूगोल, राजीव शर्मा, पृ. 23)। ऋग्वेद (1/160/3) में कहा है कि अग्नि यज्ञवेदी एवं शरीर के रोगाणुओं को मारती है। अग्नि को वर्षाकारक माना गया है।

प्रदूषण-निवारण तथा पर्यावरण-पोषण के लिए अग्नि में ही यज्ञ पूर्ण होते हैं। यज्ञ प्रदूषण को नष्ट करता है एवं जगत् को पुष्ट करता है। यज्ञ जगत् की नाभि है (ऋग्वेद, 1/164, 34-35)। यज्ञ प्राकृतिक शक्तियों को न केवल वहन ही करता है, अपितु उन्हें अनुकूल भी करता है। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने यज्ञ को देवरथ के रूप में प्रस्तुत किया है (ऐतरेय ब्रा., 2/37)। यज्ञ आरोग्यप्रद है (यजुर्वेद, 19/12)। प्रदूषण-निवारण में वेदपारायण यज्ञों को देखा व परखा जा सकता है। संहिता तथा ब्राह्मण ग्रंथों में घी का महत्व न केवल यज्ञ की अग्नि के लिए अपितु पर्यावरण-शोधन में भी महत्वपूर्ण द्रव के रूप में प्रतिपादित है (तैत्तिरीय सं., 2/3, 10/1)। यज्ञ से आणविक-विकिरण का प्रभाव बहुत कम हो जाता है। गाय के गोबर से घर लीपने पर विकिरण का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

गोघृत की आहुतियां अग्नि में देने से वायुमंडल सुगंधित एवं तुष्टिकारक बनता है। प्रदूषण के कारण वातावरण में समाए रसायन आदि सभी सौम्य विषयों का प्रभाव तत्काल समाप्त हो जाता है। पूना के फर्ग्युसन कॉलेज के जीवाणु शास्त्रियों ने एक प्रयोग में पाया है कि नित्य अग्निहोत्र की एक समय की आहुतियों से 36 × 22 × 10 फुट के हाल में कृत्रिम रूप से निर्मित वायु-प्रदूषण समाप्त हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि एक समय के अग्निहोत्र से ही 8000 घन फुट वायु का 77.5 प्रतिशत हिस्सा शुद्ध और पुष्टिकारक वायु से युक्त हो जाता है और 96 प्रतिशत कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। वेदमंत्रों की ध्वनि शक्ति से भी पर्यावरण को शुद्ध एवं पुष्ट किया जाता है।

वायुमंडल

पर्यावरण का चतुर्थ घटक 'वायु' महाभूतों की उत्पत्ति के क्रम में द्वितीय तत्व है। वह अन्य तत्वों से सूक्ष्म होने के कारण बहुत शक्तिशाली होते हैं। अमरकोश में वायु के वायु, वात, प्राण आदि बीस नाम गिनाए हैं (अ.कोश 1/1/61-63)। कहीं-कहीं इसके 150

तक नामों की गिनती भी है। वायु स्पर्श के गुण से पहचानी जाती है। पृथ्वी के जन्म से ही उसे चारों ओर से गैसों ने घेर रखा है, जिसे वायुमंडल कहते हैं। 12 मील की ऊंचाई पर कार्बन-डाई-ऑक्साइड, 62 मील की ऊंचाई पर ऑक्सीजन तथा 80 मील की ऊंचाई पर नाइट्रोजन लुप्त हो जाती है।

विषाक्त/ प्रदूषित वायु से बचने के लिए प्रतिविष के रूप में लाक्षा, हरिद्रा, अतीस, हरीतकी, मोथा, हरेणुका, इलायची, दालचीनी, तगर, कूठ और प्रियंगु आदि द्रव्यों को अग्नि में जलाकर, उससे उत्पन्न धूम के द्वारा वायु को शुद्ध करें। 400 वर्गमीटर क्षेत्र के लिए 4-5 मिनट में 16 आहुतियों द्वारा होने वाले दैनिक अग्निहोत्र से वायु प्रदूषण से मुक्त हो जाती है।

सुश्रुत संहिता (कल्पस्थान, 5/68-73) में जटामांसी, हरेणु, त्रिफला, शोभांजन आदि चीजों को कूट-पीसकर पित्त तथा शहद के साथ लेप बनाकर यदि भेरी या नगाड़े पर लगा दिया जाए तो बजाने से विष शीघ्र नष्ट हो जाता है। तोरण, पताका आदि में लगाने से भी विष दूर हो जाता है।

आकाश-मंडल शब्द

पंचमहाभूतों में आकाश अंतिम तत्व है, परंतु उत्पत्ति क्रम में प्रथम है। ऋग्वेद के मंत्रदृष्टा ऋषि वशिष्ठ ने बृहस्पति देवता युक्त मंत्र में गाया है कि आकाश का रूप नहीं है, किंतु वायु आदि का आवासीय केंद्र है। सर्वव्यापक होने से आकाश सभी में है तथा निरूप निरवयव होने से सबका आश्रयस्थल है (ऋ. 7/97/6)। व्योम के यजुर्वेद में 16 प्रकार के स्तर बताए गए हैं (यजु. 14/2/3)। उपनिषदकार ने विद्युदाकाश आदि पांच प्रकार के आकाश बताए हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने आकाश के ट्रापोस्फियर आदि पांच विभाजन किए हैं। वैदिक कोश निघंटु एवं अमरकोश में आकाश के 16 नाम गिनाए हैं। शब्द की सिद्धि में कणाद मुनि ने कहा है कि शब्द पृथ्वी आदि चार भूतों, आत्मा और मन का गुण न होने के कारण आकाश का चिह्न है। निघंटु में वाणी इंद्रिय और उसके कार्य शब्द को मिलाकर 57 नामों का उल्लेख है। अमरकोश ने शब्द के ध्वनि, निनाद आदि 17 नाम गिनाए गए हैं। प्रचंड वचनों को विष-निवारक कहा गया है (अथर्व, 5/13/3)। सूक्ष्म ध्वनि वाला शंख रोगजनक प्रदूषण से बचाए। बाजे और ढोल-नगाड़ों से भयंकर प्रदूषण भी नष्ट हो जाते हैं (अथर्व, 5/20, 5/21)। चाणक्य ने भी शत्रु द्वारा किए विष-प्रयोग से बचने के उपायों में से एक उपाय औषधि लिप्त बाजे का बजाया जाना भी बताया है (कौटिल्य अर्थशास्त्र, 14/11/12)। ध्वनि के दो भेद—नाद और शब्द हैं। नाद के पुनः दो भेद—आहत और अनाहत कहे गए हैं (संगीत रत्नाकर, 1/2/3)।

ध्वनि प्रदूषण

आधुनिक पर्यावरणविद् अवांछित ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण मानते हैं। इसके लिए वे उर्दू शब्द 'शोर' का प्रयोग करते हैं। शोर प्रदूषण का अर्थ है वायुमंडल में उत्पन्न की गई अवांछित ध्वनि, जिसका मानव व अन्य प्राणियों के श्रवण तंत्र और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संस्कृत के वैयाकरणों ने इस पर अत्यधिक गंभीर चिंतन किया है और उन्होंने संवृत्तः, एणीकृत आदि 16 प्रकार के ध्वनि प्रदूषण पर प्रकाश डाला है *(व्याकरण*

महाभाष्य, चारुदेव शास्त्री, पृ. 47)। आज प्राकृतिक स्रोतों के अतिरिक्त कृत्रिम स्रोत औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण यह समस्या विकराल होती जा रही है। उद्योग-धंधे और मशीनें, स्थल तथा वायु परिवहन के सघन, तीव्र ध्वनि वाले मनोरंजन एवं सामाजिक क्रियाकलापों को अनुशासित एवं नियंत्रित करना आवश्यक है, तभी पर्यावरण को स्वस्थ और पुष्टिकारक बनाया जा सकता है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

ध्वनि प्रदूषण हाइड्रोजन बम से भी खतरनाक है। इनमें अंतर केवल सहसा और निरंतरता का है। 190 डेसिबल का शोर स्टील गर्डर के रिबेट तोड़ सकता है। आदमी 150 डेसिबल का शोर तनिक भी सहन नहीं कर सकता। तीव्र दर्द का शोर 130 डेसिबल होता है। हवाई जहाज की उड़ान-उतार का शोर 120 डेसिबल होता है। कार-स्कूटर-बस का शोर 120 डेसिबल। खेतों की बहती हवा का शोर 10-15 डेसिबल होता है। स्वास्थ्यकर ध्वनि 30 डेसिबल होती है। सतत् शोर में काम करने वाले लोग चिड़चिड़े और असामाजिक हो जाते हैं।

ध्वनि-शोधन

ध्वनि-शोधन का अर्थ है, उसका संतुलित प्रयोग। पर्यावरण में ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव रोकने के लिए अग्नि में सुगंधित पदार्थ आदि को होमने के लिए कहा है *(ऋग्वेद, 3/30/16)*। मौन रहकर भी उसका श्रेष्ठ उपाय किया जा सकता है *(ऋग्वेद, 1/162/15)*। आधुनिक पर्यावरणविदों ने ध्वनि-प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए हॉर्न आदि पर प्रतिबंध लगाने आदि के आठ सूत्र सुझाए हैं।

उपसंहार

वैदिक संस्कृति में प्रकृति प्रेम और उसका संरक्षण एक महत्वपूर्ण कार्य है। भूमि को प्रदूषण से बचाने के लिए हरियाली के प्रयोग की ओर संकेत किया गया है। नदियां प्रदूषणरहित हों, ऐसी उदात्त कामना की गई है। जल और वायु शुद्धि के लिए वनौषधि और यज्ञ को उपयुक्त माना है। आकाशीय शब्द की तारता, तीव्रता अथवा मंदता का प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है। संतुलित प्रयोग एवं मौन साधना तथा वाणी के संयम से किसी भी प्रकार की तीव्र ध्वनि का विस्तार रोका जाना चाहिए।

निष्कर्षतः क्रियात्मक-अध्यात्म का परिपालन, विरासत की सुरक्षा और तृष्णा पर अंकुश लगाकर ही पर्यावरण को बचाया जा सकता है। आज जरूरत है प्रदूषण रहित तकनीक की। विवादहीन प्रगति ही सही विकास है। आज पूरा विश्व पर्यावरण प्रदूषण पर चिंतन कर रहा है। हम आशा करते हैं कि आने वाली सदी प्रदूषणरहित पर्यावरण की सदी होगी।

27/406, पुरानी बस्ती,
रायपुर

शास्त्रों की दृष्टि में प्रदूषण का स्वरूप

महेश कुमार शर्मा

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

—अथर्ववेद, 10/8/1

इस वैदिक स्तुति में ब्रह्म को ज्येष्ठ, भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल के जगत् का अधिष्ठाता-नियंता मानते हुए नमन किया गया है, उसका स्वरूप केवल स्वः अर्थात् विशुद्ध अनंत आनंद बताया गया है। इसी प्रकार की अन्य स्तुतियों में भी विशुद्धता के आधार पर ब्रह्म की श्रेष्ठता स्थापित की गई है। ऋग्वेद के 10वें मंडल में 129वें सूक्त के प्रथम सात मंत्र, जो 'नासदीय-सूक्त', 'सृष्टि-सूक्त' अथवा 'सृष्ट्युत्पत्ति-सूक्त' के नाम से जाने जाते हैं, सृष्टि के मूल-तत्व, गूढ़ रहस्य तथा सृष्टि की रचना जैसे गंभीर विषय से संबंधित हैं।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यत्र परः किं चनास।

—ऋग्वेद, 10/129/2

से स्पष्ट किया गया है कि 'महाप्रलय के समय' वायु से रहित उस दशा में एकमात्र ब्रह्म ही अपनी शक्ति के अनुप्राणित हो रहा था, उससे परे या भिन्न कोई और वस्तु नहीं थी। सृष्टि-सर्जना के संकल्प से स्वतः आविर्भूत इस तत्व को चारों ओर से जल ने घेर लिया और सत्-असत् के रूप में द्वंद्व प्रस्फुटित हुआ। इसी के एक अंश 'रेतोधा' और दूसरे अंश 'महिमा' में परस्पर आकर्षण के फलस्वरूप स्वाभाविक सृष्टि का अस्तित्व उपस्थित है। वेद में आए 'स्वधा' शब्द का अर्थ माया है, जो शक्तिमान में रहती है और स्वतंत्र न होने के कारण उसकी कोई सत्ता नहीं है। इसी माया से संयुक्त होकर ब्रह्म ने जीव का रूप धारण किया है। किंतु यह अत्यंत गूढ़ विषय है और प्रस्तुत प्रसंग में इतना संकेत ग्रहण करना ही पर्याप्त है कि 'विशुद्धता' के साथ माया का संयोग सृष्टि की रचना का प्रमुख हेतु है। नव-सृजन के उद्देश्य से जिस प्रकार दूध में जामन की अति-अल्पमात्रा ग्राह्य है, उसी प्रकार सत् के साथ असत् तथा अन्य ऐसे ही द्वंद्वों का परस्पर संयोजन मान्य किया जाता रहा। धीरे-धीरे संयोजनों की इस स्वतंत्रता ने स्वच्छंदता का रूप धारण कर लिया, जिसकी परिणति 'प्रदूषण' के रूप में हुई।

वस्तुतः प्रदूषण हानिकारक तत्वों के उत्सर्जन से उत्पन्न होता है और यह उत्सर्जन मानवीय अथवा जैविक क्रियाओं के लिए आवश्यक है। प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार सूर्य की ऊर्जा इन हानिकारक तत्वों का नाश करती है, किंतु इसकी भी अपनी निश्चित सीमा

है। औद्योगीकरण तथा संश्लेषित पदार्थों के उपयोग आदि की आपाधापी से प्राकृतिक व्यवस्था का संतुलन नहीं रह पाता और निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए सार्वजनिक हित को दांव पर लगा दिया जाता है। प्राकृतिक संतुलन का ध्यान न रखते हुए, मौलिक पंच-तत्वों की सात्विकता नष्ट करने वाला प्रत्येक कार्य प्रदूषण को जन्म देने वाला होता है।

विकास के प्रयासों में जाने-अनजाने जल, वायु, मृदा, ध्वनि तथा नाभिकीय ऊर्जा आदि की विशुद्धता को प्रभावित करने वाला प्रत्येक कार्य प्रदूषण को उत्पन्न करता है।

प्रदूषण को मुख्य रूप से 'स्थानीय प्रदूषण' तथा 'वैश्विक प्रदूषण' जैसे भागों में व्यक्त किया जा सकता है। प्राचीन समय में घरेलू उपयोग में कोयले के धुएं आदि को ही 'स्थानीय प्रदूषण' के रूप में देखा जाता था, किंतु वर्तमान विश्व की गतिविधियों, नाभिकीय परीक्षण एवं विकिरण, उद्योगों तथा वाहनों के उत्सर्जन से उत्पन्न ओजोन-परत संकट, ध्वनि प्रदूषण के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव तथा जल प्रदूषण जनित बीमारियों ने 'वैश्विक प्रदूषण' का रूप ले लिया है, जो विश्व जन की स्वाभाविक चिंता का विषय बना हुआ है। क्लोरो-फ्लोरो कार्बन से आहत ओजोन-परत, सूर्य से आने वाले हानिकारक विकिरणों को रोकने में अक्षम होकर अपना उत्तरदायित्व पूरा करने में सफल नहीं है। प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार खाद्य-शृंखला जैसी कड़ियां विभिन्न घटकों में समन्वय करते हुए प्रदूषण का विस्तार रोकती रही हैं। सूर्य की ऊर्जा ग्रहण करने के लिए 'प्रकाश संश्लेषण' की क्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। ऊर्जा का एकमात्र स्रोत होने के कारण सूर्य ही संपूर्ण को ऊर्जा प्रदान करता है, किंतु पौधों में उपस्थित क्लोरोफिल अन्य प्राणियों में उपलब्ध नहीं होता, जिसके बिना वे सूर्य की ऊर्जा सीधे प्राप्त नहीं कर सकते और खाद्य-शृंखला का सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार मानव के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए पेड़-पौधों की अनिवार्यता है। पेड़-पौधों के लिए जल तथा मृदा की उर्वरा-शक्ति महत्वपूर्ण है और सृष्टि के अन्य घटक भी परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। संपूर्ण तंत्र में से किसी छोटे-से-छोटे घटक की अनुपस्थिति अथवा अशुद्धि स्वाभाविक प्रक्रिया के संचालन में समर्थ नहीं होती और समग्र रूप में प्रदूषण का प्रभाव उपस्थित बना रहता है। स्कॉटलैंड के विज्ञान लेखक रॉबर्ट चैंबर्स का मत है कि 'वन नष्ट होते हैं तो जल नष्ट होता है, पशु नष्ट होते हैं, उर्वरता विदा ले लेती है और तब ये पुराने प्रेत एक के पीछे एक प्रकट होने लगते हैं—बाढ़, सूखा, आग, अकाल और महामारी।'

'प्रदूषण' का स्वरूप समझने के लिए इसके विभिन्न रूपों—ध्वनि, जल, वायु एवं मृदा के बारे में संक्षिप्त चर्चा करना उचित होगा।

ध्वनि प्रदूषण

निश्चित अनुपात की आवृत्ति से युक्त ध्वनि, जब घटते या बढ़ते क्रम में उत्पादित होती है तो स्वाभाविक रूप से कर्णप्रिय होकर संगीत के रूप में जानी-पहचानी जाती है। इसके विपरीत किसी अनुशासन या नियम से अनाबद्ध ध्वनि, जिसे मात्र शोर या कोलाहल के रूप में जाना जाता है, ध्वनि-प्रदूषण को जन्म देती है। मनुष्य बिना किसी असुविधा के जो शोर सह सकता है, उसकी अधिकतम सीमा 80 डेसिबल है। इससे अधिक शोर में लंबे समय तक रहने से सुनने की शक्ति खत्म होने लगती है। अत्यधिक तीव्रता के

पटाखों की आवाज भी सुनने की शक्ति पर विपरीत प्रभाव डालती है। वेदों में कहा गया है कि हम स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक तीखी ध्वनि से बचें, आपस में वार्ता करते समय धीमा एवं मधुर बोले--

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत श्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

–अथर्ववेद, 3/30/3

अर्थात् 'भाई-भाई से, बहन-बहन से अथवा परिवार में कोई भी एक-दूसरे से द्वेष न करे। सब सदस्य एकमत और एकव्रती होकर आपस में शांति से भद्र-पुरुषों के समान मधुरता से बातचीत करें।'

एक अन्य स्थान पर लेख है–

जिह्वाया अग्रे मधु में जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥

–अथर्ववेद, 1/34/2

अर्थात् मेरी जीभ से मधुर शब्द निकले। भगवान् का भजन-पूजन-कीर्तन करते समय मूल में मुधरता हो। मधुरता मेरे कर्म में निश्चय से रहे। मेरे चित्त में मधुरता बनी रहे।

वेदों के अतिरिक्त अन्य आर्ष ग्रंथों से भी ध्वनि प्रदूषण के उल्लेख मिलते हैं, किंतु बहुधा औद्योगिक क्षेत्र की विभिन्न अवांछित ध्वनियों को ही ध्वनि-प्रदूषण का कारण माना जाता रहा है। सामान्य जन-जीवन में ध्वनि की तीव्रता के प्रति संवेदनशील जागरूकता के बेहतर परिणाम हो सकते हैं और परस्पर वार्तालाप, टी.वी. व म्यूजिक सिस्टम की धीमी आवाज, वाहनों के हॉर्न, ध्वनिविस्तारक यंत्रों व पटाखों का सम्यक् उपयोग करते हुए इस संबंध में बनाए गए नियम-कायदों का पालन किया जाना सबके हित में होगा।

जल प्रदूषण

मानव तथा जीवधारियों के लिए खतरनाक तत्व जब झीलों, नदियों, समुद्र या अन्य जल भंडारों में पहुंचते हैं तो जल में घुलकर प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। सहज-प्रवाही गुण के कारण जल के प्रवाह से ये प्रदूषक तत्व एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से पहुंचने में सफल हो जाते हैं। इतना ही नहीं जल के साथ जीवधारियों के पाचन-तंत्र में पहुंचकर कई गंभीर बीमारियों का कारण बनते हैं। घरेलू कचरे, रासायनिक पदार्थों के धारक बर्तनों का जल-विसर्जन तथा साबुन-डिटर्जेंट की जल में निकासी के साथ-साथ उद्योगों के उच्छिष्ट आदि से जल प्रदूषण की स्थिति सतत् बनी रहती है, जिसका प्रभाव मनुष्य के साथ-साथ, जानवरों, जल-जंतुओं, पक्षियों के साथ-साथ कृषि एवं वन क्षेत्र पर भी होता है। गंभीर प्रकृति के इस प्रदूषण से जल की शाश्वत शुद्धता तथा उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है।

वेदों में जल की महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। प्राणिमात्र के रक्षक तथा दीर्घायु प्रदान करने वाले भाव निम्न ऋचा में स्पष्ट हैं–

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवंतु पीतये।
शं योरभि स्त्रवंतु नः ॥

–ऋग्वेद, 10/9/4

अर्थात् सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा रक्षा के लिए भी कल्याणकारी हो। जल हम पर सुख-समृद्धि की वर्षा करे।

ऋग्वेद की ही अन्य ऋचा के अनुसार कृषि-कर्म में जल का महत्व दर्शाया गया है—

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥

—ऋग्वेद, 10/7/3

अर्थात् हे जल! तुम अन्न की प्राप्ति के लिए उपयोगी हो। तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियां, वनस्पतियां एवं अन्न आदि पदार्थ निर्भर हैं। तुम औषधि रूप हो।

अथर्ववेद की निम्न ऋचाओं में भी जल के महत्व का उल्लेख कर जल प्रदूषण के परिणामस्वरूप संभावित भयावहता की ओर संकेत किया गया है—

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचाभरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत ॥

—अथर्ववेद, 3/13/5

आदित्पश्चाम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्मासाम्
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥

—अथर्ववेद, 3/13/6

अर्थात् याद रखिए, जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है और वही मधुरताभरी जलधाराओं का स्रोत भी है। भोजन को पचाने में उपयोगी तीव्र रस है। प्राण और कांति, बल और पौरुष, प्रदान करने वाला तथा अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्व है।

'देखने-सुनने और बोलने की शक्ति, पर्याप्त जल के उपयोग बिना नहीं आती। जल ही जीवन का आधार है। अधिकांश जीव जल में ही जन्म लेते हैं और उसी में रहते हैं। हे जलधारको! मेरे निकट आओ। तुम अमृत हो।'

इस प्रकार जल का महत्व समझने के पश्चात् यह हमारी प्रथम जिम्मेदारी बनती है कि जल में किसी प्रकार का प्रदूषक उत्सर्जन न करें, न होने दें। यही नहीं, वर्तमान परिस्थितियों में जल-संकट की भयावहता को ध्यान में रखते हुए जल संरक्षण व संवर्धन की महती आवश्यकता समझना भी अनिवार्य है।

जीवधारियों के पाचन, रक्त-संचरण, उत्सर्जन और यहां तक कि लसिका-तंत्र की गतिविधियों के लिए जल की अहम् भूमिका होती है और प्रदूषित जल से हुए प्रतिकूल प्रभाव इन तंत्रों के सुचारू संचालन को अवरुद्ध कर जीवन को जोखिम में डालते हैं। यह जानने के बाद जल को प्रदूषित करने का दुस्साहस हमें नहीं करना चाहिए।

वायु प्रदूषण

वायुमंडल में जीवन के लिए एक या एक से अधिक प्रदूषक हानिकारक तत्वों की उपस्थिति वायु प्रदूषण के रूप में जानी जाती है। जीवधारियों को हानि पहुंचाने के साथ-साथ प्रदूषण का यह रूप, वायुमंडल की सर्वोच्च ओजोन-परत को भी क्षति पहुंचाता है और परिणामस्वरूप जलवायु व मौसम-चक्र पर भी प्रतिकूल प्रभाव होता है। कार्बन के

ऑक्साइड, धूलकण, क्लोरो-फ्लोरो कार्बन, सीसा, सल्फर व नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा अन्य लटकने वाले कणों के साथ रेडियोधर्मी व नाभिकीय कणों से हमारा वायुमंडल बुरी तरह प्रभावित होता है। औद्योगिक उत्सर्जन, वाहनों तथा अन्य प्रकार की गैसों से उत्पन्न इस प्रदूषण का प्रभाव जीवधारियों के स्वास्थ्य, वनस्पति, पदार्थों तथा मौसम पर स्पष्ट अनुभव किया जाता है।

वायुमंडल में विभिन्न तत्वों का सहनीय और अहसनीय मात्रा का प्रतिशत विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित किया गया है। अन्य मानकों के साथ-साथ यह भी तय किया गया है कि वायु में ऑक्सीजन की अधिकता तथा कार्बन डाई-ऑक्साइड की न्यूनता होनी चाहिए तथा तापक्रम 33.5 डिग्री सेल्सियस से अधिक नहीं होना चाहिए। जीवधारियों की शारीरिक क्रियाओं से ऑक्सीजन का कार्बन डाई-ऑक्साइड में परिवर्तन होता है और पेड़-पौधों द्वारा कार्बन डाई-ऑक्साइड का अवशोषण कर ऑक्सीजन का उत्सर्जन करने की क्रिया के फलस्वरूप वायुमंडल में ऑक्सीजन व कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा का संतुलन बना रह पाता है। इसी गुण के कारण पेड़-पौधों का महत्व सदियों से स्वीकारा जाता रहा है और अनवरत् ऑक्सीजन उत्सर्जन करने वाले तुलसी व पीपल की पूजा का विधान करते हुए वृक्षों को देवतुल्य स्वीकारा गया है।

मूले ब्रह्मा त्वचा विष्णु शाखायाम तु शंकरः।
पत्रे-पत्रे तु देवानाम् वृक्ष राज नमोस्तुते॥

वायु की शुद्धि को जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हुए स्पष्ट किया गया है कि—

तनूनपादसिरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन॥

—यजुर्वेद, 27/12

अर्थात् 'उत्तम गुण वाले पदार्थों में उत्तम गुणवाली प्रकाशरहित तथा सबको प्राप्त होने वाली जो वायु शरीर में नहीं गिरती, वह कामना करने योग्य मधुर जल के साथ श्रोत्र आदि मार्ग को प्रकट करे, उसको तुम जानो।

अमूल्य वायु की महत्ता का वर्णन निम्न ऋचाओं में भी किया गया है—

वात आ वातु भेषज शंभु मयोभु नो हदे।
प्र ण आयूंषि तारिषत्॥

—ऋग्वेद, 10/186/1

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥

—ऋग्वेद, 10/137/4

अर्थात् 'याद रखिए, शुद्ध, ताजी वायु अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदय के लिए दवा के समान उपयोगी है, आनंददायक है, वह उसे प्राप्त कराता है और हमारी आयु को बढ़ाता है।'

तथा—'यह जानो कि शुद्ध वायु तपेदिक जैसे घातक रोगों के लिए औषधि रूप है। हे रोगी मनुष्य! मैं वैद्य तेरे पास सुखकर और अहिंसा कर रक्षण में आया हूं। तेरे लिए कल्याणकारण बल को शुद्ध वायु के द्वारा लाता हूं और तेरे जीर्ण रोग को दूर करता हूं।'

हृदय रोग, तपेदिक तथा निमोनिया जैसे घातक रोगों में वायु को बाहरी साधनों से लेना जरूरी हो जाता है, किंतु यदि वायु प्रदूषित हो तो रोग-निवारण करने में सक्षम न होकर रोग-वृद्धि का कारण बन जाती है।

इतना जान-समझ लेने के बाद सामान्य जागरूक नागरिकों से अपेक्षा की जाती है कि घर, उद्योग तथा वाहनों से उत्सर्जित धुएं की मात्रा में हर संभव कमी करने तथा वायु प्रदूषण को रोकने हेतु निर्धारित नियमों का पालन करेंगे।

मृदा प्रदूषण

पृथ्वी की सतह पर अप्राकृतिक क्रियाओं, घातक रसायनों व कीटनाशकों आदि के प्रयोग से होने वाला प्रदूषण 'मृदा प्रदूषण' के रूप में जाना जाता है। उर्वरा शक्ति में कमी के साथ-साथ पौष्टिक उत्पादनों के स्थान पर घातक उत्पादन इसी प्रदूषण का परिणाम है। विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पाद, फल, औषधियां तथा वनस्पतियां इसी मृदा के सहारे उत्पन्न होते हैं, जिन पर हमारा भोजन तथा स्वास्थ्य निर्भर होता है। स्पष्ट है कि मृदा का प्रदूषण हमारे भोजन तथा स्वास्थ्य से सीधे संबंधित है, अतः इस पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है—

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

के माध्यम से पृथ्वी को माता के रूप में स्वीकारा गया है और सभी प्राणियों को उसका पुत्र कहा गया है। वेदों में पृथ्वी का महत्व बहुविधि वर्णित है, जिसका सार है—

यस्मान्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्ष मेदसे॥

—अथर्ववेद, 12/1/42

अर्थात् 'भोजन और स्वास्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियों की माता भूमि और पिता मेघ है, क्योंकि वर्षा के रूप में पानी बहाकर वह पृथ्वी में गर्भाधान करता है।'

पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार की धातुएं ही नहीं, जल, कंद-मूल आदि खाद्यान्न भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, जिसका लाभ उठाते हुए वर्तमान में हम अपनी माता पृथ्वी से न्याय नहीं कर रहे हैं। अंधाधुंध शहरीकरण, औद्योगीकरण के लिए वनों की तेजी से कटाई की जा रही है। मिट्टी ढीली पड़ती जा रही है, खेत अनुपजाऊ हो रहे हैं, जल-जमाव के फलस्वरूप दलदल (वाटर लॉगिंग) पनप रही है। वनों की कमी से वर्षा भी अनियमित होने लगी है और यदि समय रहते उचित व्यवस्था सुनिश्चित नहीं की गई तो स्थिति की भयावहता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

प्रदूषण को इसी प्रकार के कई भागों में विभक्त कर व्यक्त किया जा सकता है, किंतु इसके मूल में उपस्थित भावना को समझकर निराकरण का प्रयास किया जाना आवश्यक है।

वस्तुतः प्रदूषण का प्रादुर्भाव मोह आदि षट्-विकारों की ही परिणति है। स्वार्थ, लापरवाही, अभिमान, असीमित कामना तथा मत्सर व क्रोध के परिणामस्वरूप अनियमित कार्य करने से प्रदूषण का अस्तित्व होता है। कोई भी मनुष्य प्रदूषण फैलाने के उद्देश्य से कार्य नहीं करता, किंतु षट्-विकारों से युक्त होने के कारण अनायास ही ऐसा करता

चला जाता है, अतः षट्-विकारों का निवारण-नियंत्रण प्रथम आवश्यकता है, जिसके लिए वेदों में निम्नानुसार प्रार्थना की गई है—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहिश्वयातुमुत कोकयातुम।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इंद्र ॥

—ऋग्वेद, 7/104/22 तथा अथर्ववेद, 8/4/22

अर्थात् हे इंद्र! दिनभर अंधे रहकर उल्लू के समान आचरण करने वाले मोह की प्रवृत्ति, भेड़िए (शुशुलूक) के समान आचरण कराने वाले क्रोध, कुत्ते के समान मत्सर, कोक (चकवा-चकवी) के समान कामना, गरुड़ (सुपर्ण) के समान अभिमान तथा गीध के समान लोभ का आचरण कराने वाली राक्षसी वृत्तियों का अपने सदुपायों से विध्वंस कर उसी प्रकार पीस दे, जैसे पत्थर से मिट्टी के ढेले को पीस दिया जाता है।

भारतीय आर्ष ग्रंथों व वेदों में जन-कल्याण की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। धार्मिक आयोजनों के पश्चात् किया जाने वाला शांति पाठ अंतरिक्ष, पृथ्वी, द्युलोक, वनस्पतियों, औषधियों के साथ-साथ शांति को शांति की मर्यादा में रहने की कामना करता है।

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्तं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥

—अथर्ववेद, 1/31/4

इस मंत्र में स्वार्थ की जड़ पर कुठाराघात करते हुए चित्तवृत्तियों को शुद्ध तथा हृदय को विशाल करने का साधन बताया गया है। प्रत्येक बुरे कर्म की जड़ मनुष्य की इच्छाओं में रहती है, इसलिए 'दूसरों के लिए भला हो' ऐसी इच्छा उत्पन्न करनी चाहिए। मन जैसा सोचता है, वैसी ही इच्छा करता है और इच्छाएं ही कार्य रूप में परिणित होती हैं। इस मंत्र में माता, पिता, गौ, पुरुषों तथा संपूर्ण जगत् के कल्याण में ही स्वयं का कल्याण देखने का उपदेश है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' तथा 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना से ओत-प्रोत होकर दृढ़ इच्छाशक्ति संपन्न मनुष्य ऐसा कोई कार्य कर ही नहीं सकता, जिससे किसी प्रकार का प्रदूषण उत्पन्न हो। सनातन भारतीय आर्ष ग्रंथों की मूल भावना यही रही है कि सदैव दूसरों के कल्याण को प्राथमिकता दी जाए।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वय।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम ॥

की मूल भावना गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में सरल शब्दों में व्यक्त की है—

परहित सरिस धरम नहि भाई।
परपीड़ा सम नहि अधमाई ॥

यदि दूसरों के हित को प्रधानता देते हुए ऐसे कार्यों को रोकने का प्रयास होने लगे, जिससे दूसरों को पीड़ा पहुंचने की संभावना हो, तो प्रदूषण रोका जा सकेगा।

समग्र रूप से स्थिति इस प्रकार स्पष्ट होती है कि विकारों की परिणति से विभिन्न प्रकारों के प्रदूषण उपस्थित होते हैं, जो हमारे भविष्य के लिए भयावह परिस्थितियों का पर्याप्त आधार बनते जा रहे हैं। दूसरे शब्दों में अपने वर्तमान को संवारने की कपोल-कल्पना तथा आपाधापी में किए जाने वाले अनियंत्रित कृत्यों से प्रदूषण कर हम स्वतः

ही अपने भविष्य को भयावह बनाने में लगे हुए हैं। संपूर्ण स्थिति का ज्ञान होने के बाद इस दिशा में गंभीरतापूर्वक मनन एवं पश्चाताप करते हुए सार्थक संयमित कार्यप्रणाली को अपनाने की आवश्यकता है, जो प्रदूषणरहित वायुमंडल व वातावरण प्रदान करने में सफल हो सके।

संदर्भ

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. अथर्ववेद
4. रामचरितमानस
5. कल्याण के विभिन्न अंक
6. पर्यावरण अध्ययन, कक्षा 12, पाठ्यपुस्तक निगम, छत्तीसगढ़।
7. पर्यावरण-मित्र की बुलेटिन।
8. प्रदूषण से संबंधित विभिन्न पत्रिकाएं व समाचार-पत्र।

स्टॉफ ऑफिसर
छत्तीसगढ़ राज्य सूचना आयोग,
शंकरनगर, रायपुर

शास्त्रों में पर्यावरण चेतना

श्रीमती तुलसी तिवारी

चतुर्दिश अवलोकन करने पर जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, वह सब पर्यावरण के अंतर्गत आता है। पर्यावरण के लिए अंग्रेजी शब्द 'इन्वायरमेंट' (Environment) प्रयुक्त किया जाता है, जो फ्रेंच भाषा के इनवाइरन शब्द से बना है, जिसका अर्थ है आस-पास का वातावरण। परि + आवरण, अतः पर्यावरण परिस्थितियों एवं पदार्थों का ऐसा समुच्चय है, जो जीवधारियों के पालन-पोषण में मुख्य भूमिका करता है। इसमें अंतरिक्ष, ग्रह-नक्षत्र, रात-दिन, जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, वनस्पतियां, पहाड़, पशु-पक्षी, कीट-पतंगे और जाड़ा-गर्मी आदि समग्र वस्तुएं सम्मिलित हैं।

पर्यावरण में प्रमुखतः दो तरह के तत्व विद्यमान हैं–

1. जैवतत्व समूह तथा
2. अजैवतत्व समूह।

जैवतत्व समूह में वनस्पति, जीव-जंतु, मानव तथा सूक्ष्म जीव आते हैं, जबकि अजैव तत्व समूह के अंतर्गत सूर्य, प्रकाश ऊर्जा, तापमान, पर्वत, सागर, झील, नदी, भूमिगत जल, मृदा, जल, मृदा वायु, धात्विक एवं अधात्विक खनिज चट्टानें आदि आते हैं।

एक संतुलित पर्यावरण में ये सभी तत्व समुचित मात्रा में पाए जाते हैं, जब एक या अधिक तत्वों की मात्रा पर्यावरण में अधिक हो जाती है या वातावरण में विषैले तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है, तब वह पर्यावरण जीवधारियों के जीवन के लिए संकट उत्पन्न करने लगता है। पर्यावरण में होने वाला यही घातक परिवर्तन पर्यावरण प्रदूषण के नाम से जाना जाता है।

प्रदूषण के कारण

प्रदूषण बढ़ने के मुख्य कारण—बढ़ती जनसंख्या, कटते वन, विकास हेतु बढ़ते कल-कारखाने, निवास, फसल उगाने, साज-सज्जा हेतु वनों की निर्मम कटाई, आवागमन हेतु धुआं उगलते वाहन, नदियों, समुद्रों में आबादी के मल-मूत्र, कूड़ा-कचरा, शव विसर्जन, कल-कारखानों के अपशिष्ट परमाणविक परीक्षण, विद्युत उत्पादन में कोयले का दहन, वनों की आग, आबादी के भोजन निर्माण में प्रयुक्त पेट्रोलियम ईंधन, जीवित ज्वालामुखी, भूकंप, हवा में मिले धूल के कण, कृषि कार्य में प्रयुक्त रासायनिक कीट-पीड़, खरपतवार नाशक नाभिकीय रेडियोधर्मी प्रदूषण, नाभिकीय अस्त्र-शस्त्र, उत्खनन, त्योहारों पर की जाने वाली आतिशबाजी, ध्वनि विस्तारक यंत्र, दुर्घटनाएं आदि हैं।

मनुष्य अपने पर्यावरण में जन्म लेता है, उसी में विकास करता है और समय पाकर तिरोहित होता है। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंचरचित यह अधम शरीरा—पृथ्वी, अग्नि, आकाश, वायु, जल से मिलकर मनुष्य का शरीर बना है। प्रकृति में प्रचुर मात्रा में प्राण वायु, पेय जल उपलब्ध है। पृथ्वीवासियों के जीवनदाता भुवन भास्कर सदैव ऊर्जा और प्रकाश देते रहते हैं, पृथ्वी वनस्पतियों से परिपूर्ण है, अभी पचास वर्ष पूर्व तक आबादी के मुकाबले ये संसाधन कई गुना अधिक थे। पर्यावरण संतोषजनक था, किंतु अब विश्वभर में गंभीर चिंता का विषय बन गया है।

हमें अपनी संस्कृति, सभ्यता, प्राचीन इतिहास आदि का ज्ञान, अपने प्राचीन शास्त्रों से प्राप्त होता है। हिंदू धर्मशास्त्रों में पर्यावरण चेतना के स्वर बार-बार मुखरित होते हैं।

हमारे धर्मशास्त्रों में सभी ग्रहों, नक्षत्रों, चांद-तारों, सूर्य, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, वनस्पतियों को देवों का स्थान प्राप्त है। सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में इन सबकी स्तुतियां की गई हैं। जल के देव वरुण हैं, इंद्र इन सबके राजा हैं, जो जल बरसाते हैं, मेघों को धरती पर भेजते हैं, जिससे पृथ्वी पर जीव-संसार जीवन पाता है। बरगद, पीपल, नीम, आंवला, तुलसी, दौना आदि पेड़-पौधे ईश्वर की भांति पूजित हैं। इनकी महिमा का गान हर धर्मशास्त्र करता है। नदियों को पवित्र मानकर उनकी भी पूजा की जाती है। स्नान पर्वों पर करोड़ों की संख्या में लोग गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, महानदी में पुण्य स्नान करते हैं।

त्रेतायुग का वर्णन करने वाला प्रमुख धर्म-ग्रंथ रामायण और तुलसीदास कृत रामचरितमानस तो जैसे पर्यावरण चेतना के ही ग्रंथ हैं। इनमें बार-बार प्रकृति से एक्य स्थापित होते देखा जाता है। यूं भी मनुष्य का अधिकांश जीवन वनों के संसर्ग में ही व्यतीत होता था। आयु के प्रथम 25 वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम, वनों में घूमते, पेड़-पौधे लगाते, फल-फूलों पर जीवन-निर्वाह करते, गुरु से शिक्षा प्राप्त करते व्यतीत होते, बाद में 25 वर्ष भी शास्त्र लेखन, आश्रम संचालन, प्रकृति रक्षण में व्यतीत होते थे, तपस्या वनों में, सजा वनों में, शिक्षा वनों में अर्थात् मानव-जीवन और प्रकृति को अलग-अलग करके देखना असंभव जैसा ही था। मनु शतरूपा ने वन में तपस्या कर ईश्वर को पुत्र रूप में पाने का वरदान पाया। यज्ञ रूप पर्यावरण शोधन के फलस्वरूप राजा दशरथ ने राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को प्राप्त किया। चारों भाइयों ने गुरु वशिष्ठ के आश्रम में पेड़-पौधों, फूलों के सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त की। यज्ञ द्वारा वायु की शुद्धता को बनाए रखने वाले ऋषियों के कार्य में विघ्न उत्पन्न करने वाले राक्षसों—ताड़का, सुबाहु, मारीच आदि का वध कर राम ने विश्वामित्र का यज्ञ पूर्ण कराया। जनकपुर जाते हुए गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या को नयी चेतना देकर पुनर्जीवित किया, अहिल्या को शाप दे गौतम ऋषि अन्यत्र चले गए थे, जिसके कारण आश्रम के पेड़-पौधे, पुष्प, लताएं सब उजड़ से गए थे, अहिल्या को चैतन्य कर प्रभु श्रीराम ने पर्यावरण की रक्षा की। आगे जीवनदायिनी गंगा की स्तुति एवं महत्व पर प्रकाश डाला। राजा जनक की पुष्पवाटिका सीता-राम के प्रथम दर्शन का कारण बनी, श्रीराम अपने गुरु की पूजा हेतु पुष्प चयन करने आए थे, सीताजी भवानी पूजन हेतु सखियों के साथ पधारी थीं।

श्रीराम ने देखा—

लागे विटप मनोहर नाना, बरन-बरन बर बेलिबिताना।
नव पल्लव फल सुमन सुहाए, निज संपत्ति सुर रुख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा, कूंजत विहक नटत कल मोरा।
मध्य बाग सरू सोह सुहावा, मनि सोपान विचित्र बनावा॥

विमल सलिलु सरसिज बहुरंगा, जल खग, कूंजत गुंजत भृंगा—सखि मुख से श्रीराम-लक्ष्मण की शोभा का वर्णन सुन सीताजी दर्शन हेतु अधीर हो जाती है, तब का प्रकृति चित्रण—

लता भवन ते प्रगट भे ते ही अवसर दोऊ भाई।
निकसे जनु जुग विबुध विधु जलद पटल बिगलाई॥

चित्रकूट में हो अथवा पंचवटी में, जहां-जहां राम ने पर्णकुटि बनाई, लक्ष्मण, सीता ने पेड़-पौधे, फुलवारी लगाई और उनका संरक्षण किया। नदी से जल लाकर स्वयं जनकनंदिनी अपनी वाटिका का सिंचन करती थीं। श्रीराम ने पर्यावरण के अभिन्न अंग जीव-जंतुओं से भी आत्मीयता का व्यवहार किया। जटायु ने इसी मित्रता की लाज रखते हुए वैदेही को रावण से बचाने के लिए प्राणाहुति दे दी। प्रभु ने उसका अंतिम संस्कार अपने पिता की भांति श्रद्धापूर्वक किया (गिद्ध पर्यावरण स्वच्छ करने वाला महत्वपूर्ण प्राणी है)। जब मारीच की आर्त्त पुकार सुनकर वैदेही ने मर्म वचन कहकर लक्ष्मणजी को कुटिया से जाने को विवश किया, तब वे सीताजी को प्रकृति देव के संरक्षण में रखकर गए। यथा—

वन दिशि देव सौंपि सब काहू, चले जहां रावन शशि राहू।

सीता-हरण के पश्चात् राम एक-एक लता, पशु व पक्षी से सीताजी का पता पूछते हैं—

हे खग-मृग हे मधुर श्रेणी, तुम देखी सीता मृग नैनी।

रिष्यमूक पर्वत पर रहते हुए सीताजी के विरह में श्रीराम प्रकृति से स्वयं को अभिन्न अनुभव करते हैं। उनसे बातें करते हैं—

घन घमंड गरजत नभ घोरा, प्रिया हीन डरपत मन मोरा।

पर्यावरण के माध्यम से शिक्षा दी गई है—

बूंद-बूंद करि भरई तड़ागा, जिमी सद्गुण सज्जन पहिआवा।
कृषि निरावही चतुर किसाना, जिमि बुध तजही मोह मद नाना॥
बूंद आघात सहईं गिरी कैसे, खल के वचन संत सह जैसे।

अपहरण के पश्चात् अशोक वन में रावण सीता को तरह-तरह से अपने अनुकूल करने की कोशिश करता हैं, तब वे कहती है—

तृण धरि ओट कहति वैदेही, सुमिरी अवधपति परम सनेही।

तिनके को अपना भाई समझकर (सीता धरती की पुत्री और तिनका पुत्र हैं), सीताजी उसकी ओट से रावण को फटकार लगाती हैं—

रे दस मुख खद्योत प्रकाशा, कबहू की नलिनी करई विकासा।

रावण द्वारा एक मास का समय दिए जाने पर, सीताजी प्रकृति को अपनी सहचरी मान उससे ही अपना दुःखड़ा कहती हैं—

देखियत प्रगट गगन अंगारा, अवनी न आवत एकौ तारा।

या फिर—

पावकमय शशि स्रवत न आगी, मानहुं मोहि जानि हतभागी,
सुनही विनय मम विटप अशोका, सत्यनाम करूं हरु मम शोका।
नूतन किसलय अनल समाना, देहि अगिनी जनि करहि निदाना ॥

हनुमानजी लंका में पहुंचकर पर्वत से लंका की शोभा देखते हैं, जो वनों, बागों, उपवनों और तड़ागों से सुसज्जित है। तुलसी के पौधे को देखकर ही हनुमानजी विभीषण को हरिभक्त के रूप में पहचानते हैं। शक्तिसंपन्न होते हुए भी श्रीराम विभीषण से वह मार्ग पूछते हैं, जिससे समुद्री जीव-जंतुओं को हानि पहुंचाए बिना, सेना सहित समुद्र पार हो सकें। भाई लक्ष्मण उनकी इस विनय से रुष्ट होकर कहते हैं कि अग्निबाण द्वारा समुद्र को सुखा दीजिए, भाग्य भरोसे तो आलसी बैठते हैं। परंतु मछली, मगर, कछुए, प्रवाल, सर्प आदि असंख्य जीवों को नष्ट होने से बचाने हेतु श्रीराम ने समुद्र की पूजाकर उसे सम्मुख आने पर विवश किया एवं सेतु बंधन का कष्टसाध्य, किंतु सर्वजन कल्याणकारक मार्ग का अनुसरण किया। लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने में हिमालय की संजीवनी बूटी काम आती है। अयोध्या से निष्कासन के बाद सीताजी पुनः अपने पुत्रों—लव एवं कुश के साथ वाल्मीकि मुनि के आश्रम में वास करती हैं और अंत में पृथ्वी में समाहित हाकेर पंचतत्व में विलीन हो जाती हैं।

श्री कृष्ण ने मथुरा नगर में जन्म लेकर गोकुल में अपना बाल्यकाल व्यतीत किया। गेंद के बहाने कालीदह में कूदकर अपने विष से यमुना जल को प्रदूषित करने वाले कालियानाग का दमन किया। यह जल शोधन का उदाहरण है। कदंब की डाल, करील की झाड़ियां, फूल-पत्तों का सिंगार, रासलीला, यमुना स्नान आदि सभी प्रकरण पर्यावरण के प्रति व्यक्तियों को सचेत करते हैं।

महाभारत युद्ध के पश्चात् पांडवों द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन वास्तव में वायु शोधन का उपक्रम था।

कार्तिक माह में प्रातः स्नान कर तुलसी की पूजा करने वाली पटरानी सत्यभामा के आंगन में ही स्वर्ग के नंदन कानन से जीतकर लाया गया पारिजात वृक्ष लगाया गया था, ये कुछ उदाहरण हैं कि धर्मशास्त्रों का हर पृष्ठ पर्यावरण चेतना का संदेश देता है।

कहा गया है कि एक वृक्ष दस पुत्रों के समान होता है, इसी क्रम में—

'जो नर-नारी वृक्ष लगावही, सो चारों धाम फल पावहीं'।

हमारे ऋषि-मुनियों ने धर्म द्वारा अशिक्षित जन को पर्यावरण के प्रति सचेत करने का सफल विधान रचा है। पीपल के वृक्ष में मूल ब्रह्मा, तना विष्णु, पत्रे देव महेश्वर बताए गए हैं। अब तो सिद्ध हो गया है कि पीपल की ऊंची शाखाएं बादलों को अपने में उलझाकर वर्षा में सहायक होती हैं। ऑक्सीजन निर्माण, शीतल छाया, पक्षियों का आश्रय, पथिकों को विश्रांति देने वाला पीपल वृक्ष पूजा का आश्रय है, उसे कौन नहीं बचाएगा। इसी प्रकार नीम, तुलसी एवं आंवले की उपयोगिता कहने या लिखने की आवश्यकता नहीं है। पंच महायज्ञों के माध्यम से जन-जन में पर्यावरण चेतना का विकास किया गया है।

पूजा की वस्तुएं वस्तुतः पर्यावरण सुरक्षा का ही माध्यम हैं। फूल, पत्ते, मौसमी फल, दूर्वा इनकी आवश्यकता के मद्देनजर इन्हें लगाया भी जाएगा। दुर्वा भू-क्षरण रोकने का सशक्त माध्यम है, पत्र-पुष्पों से वातावरण में ऑक्सीजन की मात्रा संतुलित रहती है। शुद्ध

जल ही देवता को चढ़ाया जाता है। नदियों की भी पत्र-पुष्प, दुग्ध, अक्षत आदि से पूजा की जाती है, इन्हें खाकर जलचर अपने जीवन-निर्वाह के साथ जल-शोधन भी करते हैं।

प्रश्न उठता है कि हमारे ऋषि-मुनियों के प्रयास के पश्चात् भी इतना प्रदूषण कैसे फैल गया?

इसका कारण पिछले सौ वर्षों से धर्म का ह्रास ही है। कुछ पाश्चात्य संस्कृति के अंधे भक्त पूजा-पद्धति को पाखंड कहकर उसका उपहास उड़ाते हैं। कथा सुनी भी तो जो उनके अनुकूल हुआ, उसी पर ध्यान देते हैं। हमारे यहां तो सांप की उपादेयता को समझकर ही (चूहों को खाकर कृषक की मदद करता है) उसे शंकरजी का आभूषण बनाया गया होगा, किंतु लोग हमें सपेरा कहने की धृष्टता कर बैठते हैं। सिंह, वृषभ, महिष, गर्दभ, अश्व, मयूर, कुत्ता, उल्लू आदि शक्तिशाली देवताओं के वाहन हैं, अर्थात् उनके द्वारा संरक्षित, पोषित, पालित और बहु उपयोगी हैं, इसलिए लोग इनके प्रति सहज भक्ति भाव रखते आए हैं। पक्षियों के लिए दाना-पानी रखना, गाय व कुत्ते को रोटी देने की अनिवार्यता जिसे पाप-पुण्य से जोड़ा गया है, वस्तुतः पर्यावरण संचेतन ही है।

बढ़ती हुई आबादी भी भोगवादी जीवन का ही परिणाम है, जिसके नियंत्रण के साथ-साथ मनुष्य को एक बार फिर से प्रकृति की ओर लौटने की आवश्यकता है। यदि मनुष्य आवश्यक संसाधन ही प्राप्त करे और सामान्य जीवन जीए तो पर्यावरण का इतना विनाश नहीं होगा, जितना अभी हो रहा है। यदि पृथ्वी को जीवनरहित नहीं करना है तो पेड़-पौधों को देवों का स्थान पुनः देना ही होगा। भगवान् विष्णु ने वाराह अवतार लेकर हिरण्यक्ष द्वारा विष्ठा में डुबाई गई पृथ्वी को निकालकर उसका वध कर दिया था, अर्थात् उस समय भी पृथ्वी असह्य प्रदूषण युक्त हो गई थी, जिसे स्वच्छ करने विश्व नियंता को वाराह जैसा निम्न श्रेणी का जीव बनना पड़ा। प्रकारांतर में वाराह जैसे घृणित प्राणी की अतुलनीय सेवा का ध्यान रखकर ही उसे भी पूज्य माना गया है। गो-वंश पूजनीय एवं पालनीय माना गया है। गो-वंश से अमृत तुल्य दुग्ध तो मिलता ही है, उसके गोबर-मूत्र से जो जैविकीय उर्वरक प्राप्त होता है, वह पृथ्वी के पोषण हेतु अमृत-तुल्य होता है। रासायनिक उर्वरकों से होने वाली हानि से हम सभी परिचित हैं। जैविकीय उर्वरक एवं जैविकीय कीटनाशक पर्यावरण की सुरक्षा करते हुए, अपना कार्य कर पृथ्वी को हरी-भरी बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इस उपकार के फलस्वरूप ही हमारे गणेशजी गाय के गोबर से बनते हैं, जिसके बिना कोई पूजा सफल नहीं होती। गौ, गंगा, तुलसी-पत्र के बिना किसी देव की पूजा संपन्न नहीं होती।

अतः हम कह सकते हैं कि हमारे धर्मशास्त्र जीवन और पर्यावरण की शिक्षा देने वाले महान् ग्रंथ हैं और इनके हर पृष्ठ में पर्यावरण चेतना का संकेत प्राप्त होता है।

बिलासपुर (छ.ग.)

यज्ञ और पर्यावरण

डॉ. सुनीता मिश्रा

पर्यावरण से अभिप्राय हमारे चारों ओर फैले उस वातावरण एवं परिवेश से है, जिससे हम घिरे रहते हैं। प्रकृति में मौजूद समस्त जैविक और अजैविक घटक पर्यावरण की संरचना में सहायक हैं, अर्थात् भूमि, जल, वायु, वनस्पति, जंतु, मानव और सूर्य प्रकाश पर्यावरण के घटक हैं। ब्रह्मांड में संभवतः पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा खगोलीय पिंड है, जहां जीवन के अनुकूल प्राकृतिक दशाएं पाई जाती हैं, इसी कारण यहां जीवों का विकास संभव हो सका है। पृथ्वी पर जीवन की निरंतरता बनी रहे, इसके लिए प्रकृति के घटकों का एक निश्चित अनुपात तथा संतुलित रहना जरूरी है, तभी हमारा वर्तमान और भविष्य सुरक्षित रह सकता है।

प्रकृति और मानव का सृष्टि के आरंभ से ही अन्योन्याश्रित संबंध रहा है और मानव के पृथ्वी पर आभिर्भाव के साथ ही आवश्यकताओं का भी सत्य उदय हुआ। आदि मानव का जीवन पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर था। अतः मानव और प्रकृति में एक सामंजस्य था, किंतु आधुनिक युग में मानव की आवश्यकताएं चरम पर हैं, जिसकी पूर्ति के लिए मानव ने प्रकृति का निर्दयतापूर्वक दोहन शुरू कर दिया। परिणाम आप सबके सामने है—'पर्यावरण प्रदूषण', जो आधुनिकता की देन हैं। प्रदूषण के कारण ही पूरा ब्रह्मांड संकट में है।

हमारी प्राचीन धार्मिक परंपराएं इतनी महत्वपूर्ण हैं कि समूचे जन-जीवन को सुख-समृद्धि प्रदान करने के साथ ही ये विज्ञान सम्मत भी हैं। उदाहरणस्वरूप— 'यज्ञ' को ही लें। 'यज्ञ' एक ठोस वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। महर्षि दयानंद ने भी कहा था, ''यदि पर्यावरण की शुद्धि एवं सुखों की वृद्धि चाहते हो तो नित्य प्रातः-सायं प्रत्येक घर में हवन-यज्ञ करो।''

'यज्ञ' एक व्यापक शब्द है और इसका रूप भी व्यापक है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्मयोग समझाते हुए दान, पुण्य, सेवा, उपकार, रक्षा आदि सत्कर्मों को यज्ञ की संज्ञा देते हैं। 'यज्ञौ वै विष्णु' अर्थात् यज्ञ विष्णु का स्वरूप है और विष्णु व्यापक हैं। ज्ञान, ध्यान, आराधना और चिंतन यज्ञ हैं, सेवा भी यज्ञ है और देश सेवा सबसे बड़ा यज्ञ है।

यज्ञ की परंपरा प्राचीनकाल से रही है। ऋषि वनों में रहते हुए प्रातः-सायं दैनिक यज्ञ किया करते थे। पंच महायज्ञों का प्रचलन था। धार्मिक अनुष्ठान के समय वृक्षों में भगवान् का वास मानकर पीपल, बरगद, आम, अशोक, बिल्व, परिजात, आंवला आदि की पूजा की जाती थी। ऋषि-मुनि, यज्ञ को सफलता और सिद्धिकारक मानते थे और वायुमंडल की शुद्धि का कारक भी मानते थे। यही कारण था कि उस समय लोग निरोग

और दीर्घायु होते थे।

मध्यकाल में यज्ञ को विकृत तथा विलुप्त होते देख महर्षि दयानंद ने यज्ञ को ज्ञान, विज्ञान का कारक बनाकर उसे आध्यात्मिक मंच पर पुनः प्रतिष्ठित किया और कहा, "एते पंच महायज्ञा मनुष्यैर्नित्यं कर्तव्याः।" यज्ञ का संबंध मन से है और शुभ संस्कार मन के साथ रहते हैं। इसलिए मनु ने भी कहा है, "ऋषि यज्ञं देव यज्ञं भूत यज्ञं च सर्वदा, नृयज्ञं, पितृयज्ञं च यथा शक्ति न हाययेत्।" कहने का तात्पर्य यह कि सभी ने यज्ञ करने पर जोर दिया।

यज्ञ का प्रभाव

यज्ञ से मानव के भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, प्राकृतिक एवं व्यक्तिगत उद्देश्य पूर्ण होते हैं। यज्ञ किसी-न-किसी इच्छा की पूर्ति के लिए किया जाता है। 'स्वर्ग कामोयज्ञेत' अर्थात् स्वर्ग की कामना से यज्ञ करो। यज्ञ से जीवन में सुख, शांति और आनंद की प्राप्ति होती है। महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया तो चार पुत्रों की प्राप्ति हुई। अतः यज्ञ समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाला है। हमारे पूर्वज भी कहते थे कि बिना यज्ञ-हवन का घर आर्य का घर नहीं होता।

अग्नि अमूल्य है। जीवन का संबंध आरोग्यता से है और आरोग्यता का संबंध यज्ञ से। अनगिनत अज्ञात सूक्ष्म जीवाणु हमारे चारों तरफ वातावरण में और हमारे रोमकूपों, रक्त और जोड़ों में रहते हैं। हवन द्वारा इन सभी का नाश होता है। तपेदिक, चेचक, मलेरिया आदि का इलाज हवन से संभव है। जिस घर में प्रतिदिन हवन होता है, वह घर बीमारियों से बचा रहता है। मनु के अनुसार, "यज्ञ-व्रतादि से मानव शरीर व आत्मा को ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बनाया जाता है। यज्ञ से ही तपने वाला सूर्य कल्याणकारी बनता है और यज्ञ से ही जीवनाधार पर्जन्य (बादल) कल्याणकारी बनकर बरसता है। 'यज्ञाद भवति पर्जन्यो यज्ञकर्म समुदभवः।" अतः यज्ञ में प्राणि-मात्र के सुखी होने की कामना निहित है।

यज्ञ एवं शोध

यज्ञ अथवा अग्निहोत्र आज केवल धार्मिक कर्मकांड तक ही सीमित नहीं रह गया है। यह शोध का विषय भी बन गया है। 'अमेरिका' में यज्ञ पर शोध हुए हैं और प्रायोगिक परीक्षणों से पाया गया है कि वृष्टि, जल एवं वायु की शुद्धि, पर्यावरण संतुलन एवं रोग निवारण में यज्ञ की अहम् भूमिका है।

चेचक के टीके के आविष्कारक डॉ. हैफकिन का कथन है 'घी जलाने से रोग के कीटाणु मर जाते हैं।' फ्रांस के वैज्ञानिक प्रो. ट्रिलबिर्ट कहते हैं, "जली हुई शक्कर में वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति हैं। इससे टी.बी., चेचक, हैजा आदि बीमारियां तुरंत नष्ट हो जाती हैं।" अंग्रेजी शासनकाल में मद्रास के सेनिटरी कमिश्नर डॉ. कर्नल किंग आई.एम.एस. ने कहा, "घी और चावल में केसर मिलाकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है।"

आज अत्यधिक धूम्रपान, अंधाधुंध पेट्रोलियम पदार्थों के प्रयोग से बढ़ता प्रदूषण तथा विषैली गैसें चिंता का विषय, जिसका प्रतिकार यज्ञ है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. स्वामी सत्य-प्रकाश ने भी कहा है, "यज्ञ में बहुत स्वास्थ्यप्रद उपयोगी ओजोन तथा फारमेल्डिहाइड गैसें भी उत्पन्न होती हैं। ओजोन ऑक्सीजन से भी ज्यादा लाभकारी एवं स्वास्थ्यवर्द्धक है। यह ठोस रूप में प्रायः समुद्र के किनारे पाई जाती है, जिसे हम अपने घर में ही यज्ञ से पा सकते हैं।

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वैज्ञानिक आधार पर शोध करके सामग्री व समिधाओं का चयन किया था। जैसे—बड़, पीपल, आम, बिल्व, पलाश, शमी, गूलर, अशोक, पारिजात, आंवला व मौलश्री वृक्षों के समिधाओं का घी सहित यज्ञ-हवन में विधान किया था, जो आज विज्ञान सम्मत है, क्योंकि यज्ञ का उद्देश्य पंचभूतों की शुद्धि है, जो हमारे पर्यावरण का अंग हैं। यज्ञ का वैदिक उद्देश्य भी पर्यावरण शुद्धि एवं संतुलन है। यज्ञ-विज्ञान का नियम है कि जब कोई पदार्थ अग्नि में डाला जाता है तो अग्नि उस पदार्थ के स्थूल रूप को तोड़कर सूक्ष्म बना देती है। इसलिए यजुर्वेद में अग्नि को 'धूरसि' कहा जाता है। महर्षियों ने इसका अर्थ दिया है कि भौतिक अग्नि पदार्थों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने पर उनकी क्रियाशीलता उतनी ही बढ़ जाती है। यह एक वैज्ञानिक सिद्धांत है। जैसे अणु से सूक्ष्म परमाणु और परमाणु से सूक्ष्म इलेक्ट्रान होता है। अतः ये क्रमानुसार एक-दूसरे से ज्यादा क्रियाशील एवं गतिशील हैं। यज्ञ में यह सिद्धांत एक साथ काम करते हैं। यज्ञ में डाली गई समिधा अग्नि द्वारा विघटित होकर सूक्ष्म बनती है, वहीं दूसरी तरफ वही सूक्ष्म पदार्थ अधिक क्रियाशील एवं प्रभावी होकर विस्तृत क्षेत्र को प्रभावित करते हैं।

एक चम्मच घी एक आदमी खाता है तो उसकी लाभ-हानि सिर्फ खाने वाले आदमी तक ही सीमित है, परंतु यज्ञ कुंड में एक चम्मच घी अनेक व्यक्तियों को लाभ पहुंचाता है। जिस घर में हवन होता है, यज्ञाग्नि के प्रभाव से वहां की वायु गर्म होकर हल्की होकर फैलने लगती है और उस खाली स्थान में यज्ञ से उत्पन्न शुद्ध वायु वहां पहुंच जाती है। इसमें विसरणशीलता का वैज्ञानिक नियम काम करता है। इसलिए हम देखते हैं कि किसी पर या कोई स्थान, जहां यज्ञ हुआ रहता है, वहां कई दिनों तक समिधा की खुश्बू विद्यमान रहती है।

प्रदूषण आज की विकट समस्या है। इसका कारण एक तो हमारी भोगवती प्रवृत्ति और दूसरा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भी है। आज का बढ़ता तापमान, औद्योगीकरण, वृक्षों की कटाई, पॉलिथीन का उपयोग, जल, वायु, मृदा प्रदूषण चरमावस्था में है, जिसके कारण प्राणियों की रक्षा के लिए संरचित हमारे रक्षा कवच, ओजोन परत में छेद होने लगा है। उद्योगों, कल-कारखानों से गंदगी निकलकर पृथ्वी को दूषित कर रहे हैं। बेतरतीब वाहनों से निकलता धुआं, अर्थात् कार्बन मोनो-ऑक्साइड गैस से आंखों में जलन, सिर दर्द, अस्थमा, टी.बी. आदि से लोग परेशान हैं। ऐसा लगता है संपूर्ण जैवमंडल विनष्ट हो रहा है। 'ओ पूर्णतः दः पूर्णमिदं' को आधुनिक स्वार्थी, भोगलिप्सा में लिप्त मानव अनसुना करके अपने आपको ही मारने पर तुला है। ओजोन परत में हुए छेद से सूर्य की प्रचंड गर्मी, विध्वंसकारी पराबैंगनी किरणों के रूप में चर्म रोग, कैंसर, आंखों से अंधा होना आदि का संवाहक बन गई है। ऐसे में इस समस्या के समाधान हेतु प्रयासों के साथ क्या हम एक छोटा-सा प्रयास 'यज्ञ' के रूप में नहीं कर सकते?

आइए आज से ही हम सब सामूहिक यज्ञ का संकल्प लें।

सहायक प्राध्यापक हिंदी,
एच-2/5, नर्मदानगर,
बिलासपुर (छ.ग.)

(आ)

वैचारिक वृत्त

बारूद के एक ढेर पे बैठी दुनिया

इं. अमरनाथ

प्रदूषण और पर्यावरण—ये दो ऐसे शब्द बन चुके हैं कि एक अनपढ़ व्यक्ति भी इनका कुछ-न-कुछ भाव समझ लेता है। प्रदूषण शब्द 'प्र' + 'दूषण', दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसमें दूषण के पहले उपसर्ग के रूप में 'प्र' अव्यय का प्रयोग किया गया है। यहां 'प्र' का अर्थ अत्यधिक लिया जा सकता है। अर्थात् प्रदूषण का सामान्य अर्थ हुआ, अत्यधिक खराबी या गंदगी। इसी प्रकार पर्यावरण शब्द भी दो शब्दों से मिलकर बना है—परि + आवरण। आवरण अर्थात् परदा जिसके पहले उपसर्ग के रूप में 'परि' अव्यय का प्रयोग करके सामान्य अर्थ लिया जा सकता है चारों ओर का आवरण। इन दो शब्दों को जब हम साथ-साथ प्रयोग में लाते हैं तो एक सीधा अर्थ यह भी निकलता है, 'हमारी पृथ्वी के चारों ओर, और हमारे अपने चारों ओर प्रकृति को लपेटे हुए आवरण में अत्यधिक गंदगी या खराबी'। अब अगर हम इनका विस्तार से विभाजन करें तो सामान्य-जन ध्वनि, जल, वायु प्रदूषण के बारे में तो बखूबी जानता है, परंतु खाद्य प्रदूषण, सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक प्रदूषण व नैतिक प्रदूषण के बारे में वह अभी इतना जागरूक नहीं हुआ है। आइए इनके बारे में संक्षेप में चर्चा कर लें।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। स्वस्थ मन, स्वस्थ तन, स्वस्थ चिंतन। ये तीन कारक ऐसे हैं, जिन पर मानव-जाति का पूरा भविष्य टिका हुआ है। मन को प्रभावित करता है अशांति, तनाव, शोर, भूख, चिड़चिड़ापन एवं शोक। जब मन अस्वस्थ होगा तो तन स्वतः अस्वस्थ हो जाएगा। जब मन एवं तन दोनों अस्वस्थ होंगे तो चिंतन भी अस्वस्थ ही होगा। जब चिंतन अस्वस्थ होगा तो फिर बचा ही क्या? इन तीनों को अस्वस्थ बनाने वाले कारकों पर विचार किया जाना आवश्यक है।

ध्वनि प्रदूषण

एक निश्चित डेसिबल मात्रा तक, जहां तक एक सामान्य मनुष्य को सुनने में उलझन न हो, उसकी लयात्मकता भंग न हो, वहीं तक ध्वनि सहनीय है। इससे अधिक शोर, जोर-जोर से चीखना या गाना, तेज आवाज में बोलना, लाउडस्पीकर का प्रयोग, हॉर्न की आवाज, शेर का दहाड़ना, कुत्ते का भौंकना आदि जैसी ध्वनि की तेजी, प्रदूषण फैलाती है और आदमी की श्रवण-शक्ति पर दुष्प्रभाव डालती है, जिससे इंसान धीरे-धीरे बहरेपन का शिकार हो जाता है। बच्चों की पढ़ाई तो प्रभावित होती ही है, रोगों के उपचार में भी

व्यवधान पैदा होता है। माइक से भजन-कीर्तन, अखंड रामायण, जपुजी का पाठ, नमाज का पढ़ना आदि ध्वनि प्रदूषण के आम विस्तारक हैं। मेरे विचार से लाउडस्पीकर को ध्वनि-विस्तारक की बजाय प्रदूषण-विस्तारक कहना ज्यादा समीचीन होगा। कबीर ने ठीक ही कहा था 'क्या बहरा हुआ खुदाय?' इस प्रदूषण को रोकने के लिए सामाजिक चेतना की जरूरत है। प्रत्येक व्यक्ति को माइक के न्यूनतम प्रयोग के बारे में सतर्क रहने की आवश्यकता है, अन्यथा समाज का अधिकांश तबका यह इक्कीसवीं शताब्दि पूर्ण होने से पहले ही बहरा हो चुका होगा और लगभग पूरी दुनिया बहरों की दुनिया बन चुकी होगी।

जल प्रदूषण

एक तरफ तो हम अपनी भारतीय संस्कृति का गुण-गान करते नहीं थकते, दूसरी तरफ हम ही लोग नदियों में कूड़ा-कचरा, मिट्टी की प्रतिमाएं, फूल-मालाएं, शव, गंदे नाले आदि विसर्जित करते हैं, मल-त्याग करते हैं। अगर भूगोल व इतिहास का संगम करें तो हम स्वीकार करेंगे कि मानव सभ्यता का उद्‌गम, विकास एवं प्रसार नदियों के किनारे ही हुआ। नदी को ही उसने अपना जल स्रोत बनाया, इसीलिए उसे पूज्य बनाया, परंतु उसी नदी के जल को पीना, उसी में नहाना, कपड़े धोना, मल त्याग करना, शव बहाना कहां तक उचित है? जिस नदी की हम पूजा करते हैं, उसी में गंदे नाले बहाएं, शव बहाएं, मिट्टी की प्रतिमाएं विसर्जित करें, क्या इसी का नाम भारतीय संस्कृति है? हम माता-पिता की पूजा करें और उन्हीं पर मल त्याग करें, यह केवल शिशु ही कर सकता है। हजारों टन कचरा प्रतिदिन नदियों, समुद्रों में बहाना, कौन-सी सभ्यता का प्रतीक है? क्या हम अपनी मृत्यु को स्वयं अपने पास नहीं बुला रहे? भारत की नदियों में जितना जल है, उतना शेष एशिया की कुल नदियों में भी नहीं है, फिर भी भारत की आधी से ज्यादा आबादी शुद्ध पेयजल के अभाव में प्रदूषित, कीटाणुयुक्त, सड़ा पानी पी रही है और फिर अपनी रोटी को बेच रही है डॉक्टरों को, दवा-दारू के नाम पर। हमारी माताएं गंगा-यमुना आज सड़ रही हैं, हमारे अपने ही कर्मों द्वारा और हम हैं कि प्रतिमाएं विसर्जित करके पुण्य के भागीदार बनना चाहते हैं? एक तरफ तो अधजला शव उसमें बहाते हैं और दूसरी तरफ उसी में स्नान कर मोक्ष पाना चाहते हैं। इससे बड़ी अशिक्षा एवं अदूरदर्शिता और क्या हो सकती है?

वायु प्रदूषण

वायु में ऑक्सीजन ही एक ऐसी गैस है, जो जीवन को संरक्षित करती है, परंतु इसकी मात्रा का एक निश्चित प्रतिशत सर्वदा वायुमंडल में बना आवश्यक है। पहले हिंदू संस्कृति में हर गांव में पीपल, हर घर में तुलसी का पौधा लगाया जाता था। पीपल किसी भी अन्य सामान्य वृक्ष की अपेक्षा सौ गुना अधिक ऑक्सीजन देता है, इसीलिए पीपल को काटना हिंदुओं में वर्जित माना गया। श्रीकृष्ण ने भी गीता में यही कहा है कि वृक्षों में मैं पीपल हूं अर्थात् पीपल को इसीलिए भगवान् का दर्जा दे दिया गया कि कोई भी इसे काटकर ऑक्सीजन की मात्रा कम करने का प्रयास न करे। पीपल का एक पेड़ काटने का अर्थ है, सौ सामान्य पेड़ काट डालना। तुलसी ही एकमात्र ऐसा पौधा है, जो दिन और

रात, हर समय ऑक्सीजन देता है। इसीलिए इसे घर में (आंगन में) लगाने की प्रथा है, ताकि प्रत्येक घर को दिन-रात ऑक्सीजन की पूरी मात्रा मिलती रहे। इसीलिए इसे तुलसी माता का दर्जा दिया गया, क्योंकि जिस प्रकार एक माता बच्चों का पालन-पोषण कर उसे स्वस्थ रखती है, उसी प्रकार तुलसी भी संपूर्ण परिवार को स्वस्थ बनाए रखती है, परंतु आजकल पीपल और तुलसी दकियानूसी व देहाती संस्कृति के प्रतीक समझे जाने लगे और घर-घर कैक्टस या प्लास्टिक के पौधे सजने लगे—घर-घर कैक्टस आज लगे हैं, सूखी नरगिस वीरानों में। आकाश में ओजोन की पर्त हल्की होती जा रही है, जिसके कारण सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणें पृथ्वी का तापमान बढ़ाती जा रही हैं। वाहनों का बढ़ता हुआ कारवां वायुमंडल में कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाईऑक्साइड व हाइड्रोजन की मात्रा बढ़ाता जा रहा है और हमारी हर सांस बोझिल होती जा रही है। दम-सा घुटता रहता है, प्रत्येक इंसान का हर समय, उसकी ही अपनी करतूत के कारण। केवल व्यापारिक उद्देश्य से अंधाधुंध पेड़ों की कटाई कहां तक न्यायसंगत है? हिंदुओं में होली का त्योहार वैसे तो उल्लास व एकता का प्रतीक है, परंतु पेड़ों का हत्यारा है। जितने पेड़ इस त्योहार पर कटते हैं, उतने तो पूरे साल में भी नहीं कट पाते। होलिका-दहन के नाम पर कहीं हम स्वयं ही अपना दहन तो नहीं कर रहे? कोई भी व्यक्ति कहीं पर भी बेखौफ पेड़ काटने पर आमादा है और हम मात्र मूकदर्शक बने हुए हैं, नपुंसकों की तरह। कटने दो मेरे बाप का क्या जाता है? अरे बाप का नहीं जाता तो न सही, पर बेटे का अवश्य जाएगा। जब वह ऑक्सीजन की कमी के कारण घुट-घुटकर आधी जिंदगी जीने पर मजबूर होगा। आखिर हम कब जागेंगे? क्या भावी संतति के प्रति हमारा कोई दायित्व है ही नहीं?

एक तरफ हम पृथ्वी को मां कहते हैं, उस पर अपने चरण तक रखने पर क्षमा मांगते हैं—

समुद्रवसने देवी, पर्वतस्तनमंडले,
विष्णुपत्नीः नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।

परंतु दूसरी तरफ हम ही उसके तथाकथित पुत्र, उसके पर्वत रूपी स्तनों को रोज काटते जा रहे हैं। उसके समुद्र रूपी वस्त्र को रोज गंदा कर रहे हैं, उसका सीना चीरते जा रहे हैं, उसकी नाड़ियां, नदियों को सड़ा रहे हैं, उनके प्रवाह को रोक रहे हैं, उसके वृक्षों को काट-काटकर, उसे नंगा किए जा रहे हैं। सुजलां-सुफलां कही जाने वाली हमारी धरती माता का आज न तो जल ही शुद्ध है, न वायु और न फल ही। बढ़ती हुई आबादी का बोझ वह संभाल नहीं पा रही है और हम उससे अपना पालन-पोषण जबरदस्ती कराए जा रहे हैं। आखिर यह कब तक चलेगा?

खाद्य प्रदूषण

खाद्य प्रदूषण, अर्थात् खाने-पीने की चीजों में अखाद्य एवं हानिकारक वस्तुओं का अपमिश्रण। सरसों के तेल में—आर्जीमोन, भटकटैया के बीजों का तेल या धान की भूसी के तेल में सरसों के तेल का एसेंस मिलाकर सरसों के तेल के रूप में बेचना, देसी घी में जानवरों की चर्बी की मिलावट, पिसे धनिए में लीद, काली मिर्च में पपीते के बीज, हल्दी में पीली मिट्टी, रोगनी मिर्च में सिंदूर, नमक में कंकर-पत्थर, आटे में सेलखड़ी आदि की

मिलावट तथा सिंथैटिक दूध बेचना, न केवल कानूनी अपराध है, अपितु संपूर्ण समाज को रोगी बनाने की प्रक्रिया भी। जिन शिशुओं को हम गाय-भैंस का दूध पिलाकर देश का भावी नागरिक बनाना चाह रहे हैं, उन्हें हम पिला रहे हैं सिंथैटिक मिल्क, या उन गाय-भैंस-बकरी का दूध, जिन्हें इंजेक्शन दे-देकर दुहा जा रहा है। उस इंजेक्शन का विष दूध में मिलकर बच्चों के पेट में पहुंच रहा है। माताओं की 'फिगर' खराब न हो जाए, इसीलिए पाउडर दूध के रूप में हम उसे क्या पिला रहे हैं, यह हमें खुद पता नहीं है। कृषि-उपज में जैविक खाद की जगह घातक रासायनिक यूरिया खाद का प्रयोग एवं जहरीली कीटनाशक दवाओं का बेहिसाब इस्तेमाल करके हमें अन्न के रूप में क्या खाने को मिल रहा है? होटलों में बासी-सड़ी सब्जियां, डिब्बा बंद फल-अचार-जैम-मुरब्बा, शीतल-पेय के रूप में पेप्सी, कोका-कोला, आइसक्रीम की एवज में क्या खा-पी रहे हैं, कौन सोच रहा है? अभिभावक अपने बच्चों को कोल्ड ड्रिंक, लस्सी, नींबू की शिकंजी, आम का पना, ब्रह्मी, शंखपुष्पी, मगज-खरबूजा, बादाम, काली मिर्च, सौंफ, गुलाब, खसखस आदि से बनी ठंडाई, फालसे या बेल का शर्बत, रुहअफजा आदि? ये भारतीय पुराने पेय आजकल कौन अपना रहा है? हम लोग पी रहे हैं—पेप्सी, कोका-कोला, सेवन-अप आदि। न कोई ऊर्जा, न कोई राहत। धनिए-पोदीने की चटनी की बजाय हम लोग खा रहे हैं टोमॉटो-सॉस, जिसमें टमाटर को छोड़कर और बाकी वह सब कुछ है, जिनका नाम जानकर तो क्या हम सुनना तक भी पसंद न करें। वैसे भी अधिकांश व्यक्ति अपने खान-पान के प्रति इतने लापरवाह एवं दूषित खाद्य-पदार्थों के सेवन के आदी हो चुके हैं कि उन पर अब किसी भी प्रकार की शिक्षा का कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। मांस, मछली, नशे की वस्तुएं जैसे शराब के रूप में व्हिस्की, ब्रांडी, रम, शैंपेन, ठर्रा, देशी कच्ची शराब, ताड़ी आदि तथा भांग, धतूरा, सुलफा, गांजा, चरस, तंबाकू, खैनी, सुरती, सिगरेट-बीड़ी, अफीम, पान मसाला, एल.एस. डी., हैरोइन, कोकीन आदि का सेवन करना; डीजल-पेट्रोल, स्पिरिट को पीना; रबड़ी में संखिया, नीला थोथा मिलाकर खाना, सर्प-दंश लेना कहां तक उचित है? पान मसाले के रूप में हम घातक रासायनिक पदार्थों एवं जहरीले जानवरों को मारकर, जलाकर उनकी राख को उसमें मिला हुआ खाते हैं। बहुत से आदमी तो आयोडैक्स, मृत संजीवनी सुरा तक का नशे के रूप में प्रयोग करते हुए देखे गए। विश्व में लाखों व्यक्ति प्रतिदिन इसी प्रकार के खाद्य पदार्थों के सेवन के फलस्वरूप हुए घातक रोगों के कारण मर रहे हैं, परंतु हम अपनी आदत से बाज क्यों आएं? जग सुधरे, हम नहीं सुधरेंगे।

सामिष के रूप में निरंतर पशु-पक्षियों की हत्या, उनका मांस खाना, सूप-जूस बनाकर पीना, उनकी जिंदा खाल खींचकर बेचना—क्या आदिम-सभ्यता को दोहराना चाह रहे हैं हम? तिस पर भी हम ढोल पीटे जा रहे हैं भारतीय संस्कृति का। बने हुए हैं हम उसके ध्वज के अलमबरदार! वाह रे हम!

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रदूषण

आज वैज्ञानिक भी यह स्वीकार कर रहे हैं कि एक व्यक्ति के वंशानुगत रोग उसकी छह पीढ़ियों तक को भोगने पड़ सकते हैं। हर व्यक्ति का जीन अलग होता है, डी.एन. ए. अलग होता है। हमारे पुराने चिंतकों ने इस विषय की गंभीरता को समझते हुए कर्म

के आधार पर पूरे समाज को चार वर्णों में इसीलिए बांट दिया था कि एक वर्ण के व्यक्ति का रोग दूसरे वर्ण के व्यक्ति में न पहुंच सके। अलग-अलग काम करने वाले में अलग-अलग रोग होते हैं। जैसे—रुई धुनने वाला, कोयला खदान में काम करने वाला, समुद्री पानी से नमक बनाने वाला, डामर गरम करने वाला, चमड़े का काम करने वाला, शिक्षक, सुनार, मजदूर, डॉक्टर आदि को अलग-अलग रोग, पेशे के अनुरूप जकड़ेंगे। अब कर्म के अनुसार व्यक्तिगत वर्गीकरण हो जाए और इनके अंतर-जातीय विवाहों पर रोक लग जाए तो एक-दूसरे के रोग स्थानांतरित नहीं हो पाएंगे। परंतु इस कर्म-व्यवस्था को कुछ चालाक व्यक्तियों ने धीरे-धीरे जाति-प्रथा में बदलकर घिनौना रूप दे दिया, परिणामस्वरूप स्वयं को उच्च कुल का घोषित कर एक तबका भगवान् बन बैठा। प्रतिकार स्वरूप समाज में जो प्रदूषण फैला, अब उसकी रोकथाम संभव नहीं है। तथाकथित घोषित शूद्र, निम्नवर्गीय अछूत वर्ग को ऊपर उठाने हेतु आरक्षण जैसी विशेष सुविधाओं ने जन्म लिया। जिसका सरकारी लाभ तो यह वर्ग जितना उठा सकता था, उठा रहा है, परंतु सामाजिक तौर पर वह अब भी स्वयं को अछूत मानने अथवा कहलाने को तैयार नहीं है। वह अब छद्मवेशी उच्चवर्णीय व्यक्ति बनकर उच्च वर्ण से वैवाहिक संबंध स्थापित करने की धोखाधड़ी कर रहा है। कोई अन्य वर्ण का व्यक्ति उन्हें अछूत या उनकी सरकारी तौर पर स्वयं घोषित जाति से संबोधित नहीं कर सकता। जब क्षत्री को क्षत्री, ब्राह्मण को ब्राह्मण एवं वैश्य को वैश्य कहने और कहलाने में कोई परहेज नहीं है तो इस तथाकथित अछूत वर्ग को अपने जातिगत संबोधन से इतनी चिढ़ क्यों है? सरकारी घोषणाओं में तो वे स्वयं को अछूत घोषित करते हैं, परंतु सामाजिक तौर पर घालमेल पसंद करते हैं। अगर जातिवाद मिटाना है तो सभी जगह जातिगत विशेषणों एवं संबोधनों को समाप्त करना होगा। परंतु सरकारी सुविधाओं के लिए अछूत, परंतु सामाजिक तौर पर उच्चवर्ण घोषित होना क्या सामाजिक प्रदूषण नहीं है? किसी भी जाति/ वर्ग का व्यक्ति किसी अन्य जाति/ वर्ग के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करते समय अपनी सच्ची जाति बताने की हिम्मत क्यों नहीं जुटा पा रहा है? यह भी एक सामाजिक प्रदूषण है।

जब सामाजिक प्रदूषण की बात चल ही रही है तो आइए बात करें निर्माण प्रक्रिया के दौरान होने वाले प्रदूषण की भी। जब कभी भी मकान, सड़क, नहर, बांध या किसी भी चीज का निर्माण होता है तो उसके आस-पास खुदाई, तुड़ाई से निकले मलबे का ढेर लग जाता है। निर्माण प्रक्रिया पूरी होने के बाद भी अधिकांश जगहों पर उस मलबे के ढेर के अवशेष बरसों पड़े रहते हैं। न तो उस निर्माणकर्ता को ही कुछ परवाह होती है और न विकास प्राधिकरण एवं नगरपालिकाओं को। निर्माण कर्ता उस मलबे को हटाने में होने वाले मामूली से व्यय को बचाकर लखपति बन जाता है और सरकारी संस्थाएं बाकायदा मलबा चार्ज वसूलने के बाद भी भ्रष्टाचार एवं कामचोरी के दलदल में फंसी रहती हैं। नतीजन आस-पास गंदगी के ढेर व्याप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार नयी बस रही कॉलोनियों में अधिकतर मकान मालिक अपने मकान एवं उसके सामने से गुजर रही सड़क के बीच में स्थित पटरी को ऊंचा करके सड़क के पानी को अपने मकान के किनारे से गुजरती हुई नाली में जाने से रोक देता है। नतीजन पानी सड़क पर जमा रहता है। सड़कें तो खराब होती ही हैं, बरसात में चारों तरफ जल भराव तक की नौबत आ जाती है और

हम लोग उस समय अपनी मूर्खता स्वीकार करने की बजाय गालियां बकते हैं, पी.डब्ल्यू. डी., नगरपालिका तथा विकास प्राधिकरणों को। गलती करें हम और भड़ास निकालें दूसरों पर। अपने मकान से निकले कूड़े को हम सड़क पर फेंक देते हैं। किसी भी बाजार में जाइए, वहां पर सड़क के बीचोंबीच कूड़े का अंबार लगा मिलेगा। क्योंकि सड़क की दायीं ओर का दुकानदार अपनी दुकान के सामने सफाई करके कूड़ा सड़क के बीच में छोड़ देता है और इसी प्रकार बायीं ओर का दुकानदार भी। सरकारी सफाईकर्मियों को तो अपने वेतन से मतलब, उन्हें कूड़ा उठाने के लिए वेतन थोड़े ही मिलता है। वे तो स्थानीय सभासद का घर साफ रखना ही अपना कर्तव्य समझते हैं और हम सभी मूकदर्शक बने बस झुंझलाते रहते हैं। नयी बसी कॉलोनियों में कूड़े के अंबार, मच्छरों की फौज, सूअरों की पलटन तथा छुट्टा जानवरों द्वारा भारत की आजादी का मनमाना उपयोग सामाजिक प्रदूषण की रोज नयी दास्तान लिखते हैं। और हम लोग डॉक्टरों, हकीमों, वैद्यों, ओझाओं के चक्कर लगा-लगाकर अपनी जेबें हल्की करते रहते हैं। जो काम हम स्वयं कर सकते हैं, वह भी नहीं करना चाहते। इससे बड़ा सामाजिक प्रदूषण और क्या हो सकता है?

सामान्यतः समाज और संस्कृति को अलग नहीं किया जा सकता, परंतु प्रत्येक सभ्यता, प्रत्येक जाति, प्रत्येक देश की अपनी कुछ अलग-अलग संस्कृति एवं परंपराएं होती हैं, जिनके बल पर उनकी अपनी अलग पहचान बनी रहती है। अगर संस्कृति में भी घालमेल हो जाए तो फिर सबकी पहचान खत्म हो जाएगी। उदाहरणार्थ आजकल पुराने प्रसिद्ध फिल्मी गानों का रीमिक्स कार्यक्रम जोरों पर तेजी पकड़ रहा है। पुराने गानों के गायक, संगीतकार एवं गीतकार अलग थे, जिनके विवरण पुराने गानों के पुराने कैसेटों में मिलेंगे। अब उसी फिल्म के नाम पर उन्हीं गानों को रीमिक्स करके नये गायक, नये संगीतकार के निर्देशन में गाकर नया कैसेट बाजार में उतार रहे हैं। अगर भविष्य में कोई इतिहासकार उसी फिल्म का इतिहास लिखने बैठता है और उसके सामने दोनों कैसेट भी रखे हों तो वह किसको गायक एवं संगीतकार मानेगा? उस समय इतिहास जो भी लिख देगा, वही सही मान लिया जाएगा। सिकंदर एवं पोरस के बीच हुए युद्ध का परिणाम अलग-अलग इतिहासकार अलग-अलग बताते रहे हैं। कोई सिकंदर को विजयी, तो कोई पोरस को विजयी मान रहा है। यह सांस्कृतिक प्रदूषण है। भारत में आज भी अधिकतर पुराने विदेशी नाटकों का ही मंचन किया जा रहा है। हमारे भारत का शायद ही कोई जीवित या मृत नाटककार ऐसा हो, जो इन तथाकथित नाटक-निदेशकों की नजरों में खरा उतर रहा हो। यह विदेशी संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर चरखा-दाव है, जिसमें हमारी संस्कृति को जानबूझकर चारों खाने चित होने को कहा जा रहा है। ऊपर से ये नाटककार यह दावा करते हैं कि उन्हें सुचारू दर्शक नहीं मिलते। क्या ये असली पैरासाइट्स नहीं हैं?

धर्म भी, समाज का एक अंग है। धर्मविहीन समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पहले धर्म मानव जाति की आभा होती थी, प्राण होता था। धर्मविहीन व्यक्ति को समाज बहिष्कृत कर देता था। यह सत्य है कि धर्म ने समाज को फिरकों, कबीलों, समुदायों में बांटा, परंतु प्रत्येक धर्मानुयायी को उसके अनुसार जीने का ढंग भी सिखाया और उसे कुछ अलग सोचने को मजबूर किया। परंतु आज धर्म की अफयून की खेती की जा रही है। जगह-जगह मुल्ला, मौलवी, पंडित, संत, पीर, औलिया एवं भगवानों की बाढ़ आ गई

है। ये तथाकथित भगवान् आम जनता को अपरिग्रही बनने, अपना सर्वस्व प्रभु के चरणों में, उनके माध्यम से अर्पित करने का लगातार उपदेश देते चले जा रहे हैं। इनका भक्त भले ही भिखारी बनकर इनका चाकर बन जाए, परंतु ये संसार को मिथ्या बताने वाले धर्मगुरु एयरकंडीशंड कार के बिना सफर तक नहीं करते। सुंदरियां इनके चरण धो-धोकर चरणामृत के रूप में पान करके पुण्य कमा रही हैं। धर्म के नाम पर इन्हीं धर्माचार्यों द्वारा धर्म की खिल्ली उड़ाई जा रही है। ये आलीशान आश्रमों और मठों में रहते हैं। धन को मिट्टी बताने वाले ये धर्म के ठेकेदार स्वयं धन के कितने लोभी हैं, इसे हर कोई जानता है। इसी कारण वर्तमान पीढ़ी धर्मच्युत होकर अधर्म की राह पर चलती जा रही है और पूरा विश्व एक अनदेखी, अंधी गुफा में खोता जा रहा है।

नैतिक प्रदूषण

हमारे पूर्वजों एवं धर्म-ग्रंथों द्वारा जिस वर्ग और समाज के लिए जो भी नीतियां स्थापित की गई हैं, उनसे अलग हटकर, अपने निजी स्वार्थ के लिए मनमाना आचरण करना एक प्रकार से नैतिक प्रदूषण है। उदाहरणार्थ रिश्वत लेना-देना एक अपराध है, परंतु केवल देते समय ही क्यों? दहेज एक सामाजिक बुराई के साथ ही अपराध भी है, परंतु केवल देते समय ही क्यों? बेईमानी एक अनैकिता है, परंतु दूसरा व्यक्ति तुम्हारे साथ बेईमानी न करे और आप स्वयं खुले सांड की तरह मनमाना आचरण करते घूमें। किसी भी लड़की या औरत को छेड़ना निःसंदेह अक्षम्य है, परंतु यह नियम आप एवं आपके पुत्र पर लागू नहीं होना चाहिए? हां, अगर कोई आपकी लड़की की तरफ आंख उठाकर भी देखे तो उसकी आंखें अवश्य फोड़ देनी चाहिएं। आखिर उसकी इतनी जुर्रत कैसे हो गई? वाह रे इंसान! तू क्या सोचता है, क्या चाहता है, और करता क्या है? यही दोहरी मानसिकता ही नैतिक प्रदूषण है। ईमानदारी को पहले सर्वोत्तम गुण समझा जाता था, परंतु आजकल यह सबसे बड़ा अवगुण और सामाजिक अभिशाप बन चुका है। अगर आप सरकारी नौकरी में किसी मलाईदार सीट पर नहीं हैं तो आप निकम्मे हैं, नकारा हैं, नालायक हैं, निहायत बेवकूफ हैं, केवल बाह्य समाज की नजरों में ही नहीं, बल्कि अपने मां-बाप, भाई-बहनों एवं पत्नी तथा संतान की नजरों में भी। जो सरकार चलाने का दावा करते हैं और अपने कर्मचारियों को ईमानदार बने रहने का निरंतर उपदेश देते रहने में कभी नहीं चूकते, वे स्वयं अपने गिरहबान में झांकें और स्वयं ही फैसला करें कि क्या यह नैतिक प्रदूषण की श्रेणी में नहीं आता? इस नैतिक प्रदूषण ने समाज, जाति, देश व काल का जितना अहित किया है, उतना और सभी प्रकार के प्रदूषण मिलकर भी नहीं कर सकते।

इन सब प्रदूषणों से बचने का एकमात्र विकल्प है, प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके अपनी भौतिक आवश्यकताओं में कमी करें, और कोई भी गलत काम करने से पहले अपने गिरेबान में झांकने का साहस जुटाएं। अन्यथा पं. प्रदीपजी की बहुत ही प्रसिद्ध पंक्तियां हैं, 'बारूद के एक ढेर पर बैठी है यह दुनिया'।

401-ए, उदयन-1,
बंगला बाजार, लखनऊ (उ.प्र.)

सिकुड़ता पर्यावरण : झुलसता देश

शरदेंदु शर्मा

पर्यावरण का संकट आज सभी के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। जून, 1992 में रियो (ब्राजील) में आयोजित पृथ्वी शिखर सम्मेलन में 140 से भी अधिक देशों के शासनाध्यक्षों ने जमा होकर एक बार फिर पृथ्वी नाम के इस ग्रह को पर्यावरण प्रदूषण से मुक्त रखने की शपथ ली थी। हालांकि कुछ औपचारिकताएं निभाने के बाद, जैसी आशंका थी, बिना किसी ठोस दिशा-निर्देश या कार्य-योजना के यह सम्मेलन भी धुएं के गुब्बार की तरह समाप्त हो गया। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित इससे पूर्व किसी भी पर्यावरण सम्मेलन में दुनिया के इतने देशों के नेता एक साथ एकत्र नहीं हुए थे, इसके बाद भी पर्यावरण-संरक्षण के लिए अनेक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो चुके हैं, जिनमें अनेक विवादास्पद विषयों पर वार्ताएं अवश्य हुई हैं, परंतु सभी देशों के अपने-अपने स्वार्थों के कारण कोई भी सर्वसम्मत हल नहीं निकल सका है। दरअसल पर्यावरण आज अमीर और गरीब देशों के बीच की लड़ाई बनकर रह गया है। इन सम्मेलनों ने उत्तर-दक्षिण के बीच के विवाद की चिंगारी को ही हवा देने में मदद की है। अमीर देशों ने अपनी फिजूलखर्ची से इस पृथ्वी को न केवल खोखला करके रख दिया है, बल्कि धूल, धुआं और कोलाहल से इसे भरने के लिए भी वे ही जिम्मेदार हैं।

वास्तविकता यह है कि यह पर्यावरण बनाम विकास की लड़ाई है। आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों की उपलब्धियों के बीच मनुष्य जाति की स्थिति सांप की कुंडली में जकड़े व्यक्ति जैसी होकर रह गई है। औद्योगीकरण तथा विकास की नीति का परिणाम यह हुआ है कि वायु एवं जल में प्रदूषण के अतिरिक्त समूचे औद्योगिक विश्व में अम्लयुक्त वर्षा के कारण खेत और वन तो नष्ट हुए ही हैं, पृथ्वी की रक्षक ओजोनपरत में भी बड़ा छिद्र हो गया है, जिससे उत्पन्न 'ग्रीनहाउस इफेक्ट' के कारण मनुष्य कैंसर तथा अंधता जैसे असाध्य रोगों का शिकार हो रहा है और पृथ्वी पर दुर्लभ जीव-जंतु एवं वनस्पतियां लुप्त होने लगी हैं। साथ ही पृथ्वी का तापमान बढ़ गया है, जलवायु का चक्र बदलने लगा है, नदियां, झीलें तथा समुद्र इतने प्रदूषित हो गए हैं कि वे मछलियों और अन्य जीवों को सुरक्षित रखने की अपनी शक्ति खोते जा रहे हैं। न इससे ध्रुव प्रदेश बचा है और न अंतरिक्ष। और अब चंद्रमा के बाद अन्य ग्रहों की निस्तब्धता भंग करने के लिए मनुष्य के कदम उठ चुके हैं। अब तो सैलानी पर्यटन भी पर्यावरण के लिए एक अभिशाप बनकर

रह गया है। फिर परिवहन व फैक्ट्रियों के धुएं, धूल, वायु प्रदूषण एवं शोर के कारण नगर-ग्रामों में जीना ही मुहाल हो गया है।

एक अध्ययन के अनुसार अकेले अमेरिका में ही प्रतिवर्ष लगभग 18 करोड़ मीट्रिक टन औद्योगिक कचरा निकलता है। यह सब कहां जाएगा? कुछ समय पूर्व टाइम्स ऑफ इंडिया में एक समाचार छपा था, '167 पात्रों में भरे हुए विषैले पदार्थ के साथ इटली का एक जहाज नाइजीरिया के कोको बंदरगाह पर बरामद हुआ।' होगा यही कि संपन्न देश अपना कूड़ा-कचरा चुपचाप तीसरे विश्व के देशों में आकर छोड़ जाएंगे। परिणाम भुगतना है तो वे भुगतें। सन् 1993 के प्रारंभ में बी.बी.सी. द्वारा आयोजित एक पर्यावरणीय वाद-विवाद के अवसर पर प्रतिष्ठित 'रॉयल ज्योग्रॉफिकल सोसायटी' के सभागार में पश्चिम की अति भोगवादी प्रवृत्ति पर कठोर प्रहार करते हुए भारत सहित अनेक वक्ताओं का यह कहना था कि "आज जो ब्राजील विनाश के कगार पर खड़ा है, उसके लिए पश्चिम जवाबदेह है।" वहां के तीन-चौथाई जंगल नष्ट कर गायों के लिए चारागाह बनाए गए हैं। उन गायों के लिए जिनका गोश्त आम अमेरिकियों के नाश्ते की प्लेट में सर्वाधिक उपयोग किए जाने वाले हेम्बर्गर के लिए होता है। 'ओजोन परत' के विखंडन के लिए कौन जिम्मेदार है—रेफ्रिजरेशन, मॉडलिंग व एयरोसोल के निर्माण में प्रयुक्त सी.ए.सी. व युद्ध में प्रयुक्त विध्वंसकों के निर्माण से उत्पन्न सी.एफ.सी.। इसके परिणामस्वरूप सन् 1993 में लगभग 5 लाख व्यक्तियों को संपूर्ण विश्व में त्वचा के कैंसर की त्रासदी झेलने की संभावना बन गई थी और इथियोपिया के बाद अब सोमालिया अकाल की भीषण अग्नि में झुलस रहा है?

इस अंधी दौड़ में भारत भी कहीं पीछे नहीं। 1987 में देश के लगभग दो-तिहाई हिस्से पर दुर्भिक्ष की काली छाया मंडराती रही थी। वनों की कटाई, खनन उद्योग, दलदलों व लवणीकरण तथा भारी उद्योगों के उच्छिष्ट व कचरे के कारण पतित-पावनी नदियों की पवित्रता ही भंग नहीं हुई। देश की कुल 32 करोड़, 90 लाख हेक्टेयर भूमि में से लगभग 18 लाख हेक्टेयर क्षेत्र क्षरण-ग्रस्त एवं बंजर होकर रह गया। उपग्रह से प्राप्त ताजे चित्र बताते हैं कि देश में प्रतिवर्ष 15 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में वन नष्ट हो रहे हैं। 1951 में जो कृषि योग्य भूमि प्रति व्यक्ति 0.48 हेक्टेयर थी, 1981 में घटकर 0.26 हेक्टेयर रह गई और अनुमान है कि सन् 2010 तक मात्र 0.11 हेक्टेयर ही रह जाएगी। कुछ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध चिपको नेता सुंदरलाल बहुगुणा ने हिमालय के पर्यावरण के विनाश से व्यथित होकर कश्मीर से कोहिमा तक चार हजार किलोमीटर से भी अधिक की पदयात्रा की थी। उनका कहना था कि "वहां झरने सूख गए हैं, पहाड़ उखड़ गए हैं और मध्य हिमालय की तलहटियों तक रेगिस्तान फैलता जा रहा है।" अनंतकाल से कविगण जिसके गुणगान में ग्रंथों की रचना करते रहे हैं, देश की उसी सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला धरती में अपनी अमृत संतानों का पेट भरने की क्षमता नहीं रही है। कभी सोने की चिड़िया कहा जाने वाला यह देश आज विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा धनाढ्य राष्ट्रों का मुंह ताकने को विवश है।

मुंबई में सात वर्ष तक एक अध्ययन चला था। पता चला कि मध्य मुंबई का समूचा इलाका सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड और बेंजोपाइरीन गैसों से भरा है।

दिल्ली, कानपुर, कोलकाता, अहमदाबाद की कहानी भी इससे भिन्न नहीं है। उस पर इन महानगरों में बेतहाशा भागते हुए मोटरवाहनों की चिल्ल-पौं और उनसे निकलते हुए धुएं के रूप में जहरीली गैसों का रिसाव। भोपाल के बाद देश में कहीं-न-कहीं गैस रिसी है। देश के पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों का विशद विविध भंडार तथा अनंतकाल से संरक्षित अनुवंशकों का क्षय हो चला है और भावी पीढ़ियों को शायद उनकी अनेक जाति-प्रजातियों का विवरण डायनासोर की तरह किताबों में ही मिलेगा। आज हमारे देश की स्थिति बहुत कुछ ऐसी हो गई है, जैसी औद्योगिक क्रांति के समय सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप की थी। इसपर दुगुनी, तिगुनी और चौगुनी होती हुई आबादी। अकाल, भुखमरी और रोग तो आएंगे ही।

समाज और वैज्ञानिकों का एक वर्ग यह मानता है कि यह बढ़ती हुई आबादी ही समस्या की जड़ है और सच तो यह है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण ही देश के संसाधनों की क्षमताएं चुक गई हैं। किंतु दूसरा वर्ग कहता है कि देश की धरती के संसाधनों की तलाश के लिए कभी कोई ठीक अध्ययन नहीं हुआ और हम पश्चिम का अंधानुकरण करते विकास के उस मार्ग पर निकल पड़े हैं, जिससे देश के स्थायी संपोषणीय संसाधनों की क्षमताएं चुकने लगी हैं। विकास के नाम पर पर्यावरण के रूप में हम भारी कीमत चुकाते चले जा रहे हैं।

कुछ वर्ष पूर्व मास्को में हुए एक साम्यवादी सम्मेलन में तत्कालीन रूस के एक शीर्षस्थ पर्यावरणशास्त्री फ्योडोर मार्गव ने कहा था, 'साथी रसायनशास्त्रियो, आज के विस्तार को कुछ क्षणों के लिए रोक दें...विश्राम करें और हमें सामान्य वायु में सांस लेने का मौका दें।''

निश्चय ही विकास की अपनी पूरी संकल्पना में हम कहीं भटक जरूर गए है। भाखड़ा बांध के लिए स्वयं नेहरूजी ने कहा था कि यह बांध परियोजना देश की प्रगति का मंदिर है। किंतु अब वे वादे झूठे पड़ते जा रहे हैं, जो इन मंदिरों की नींव के पत्थर रखते समय किए गए थे। 'हरित क्रांति' की प्रारंभिक चकाचौंध के बाद वैज्ञानिक अब पशोपेश में हैं कि सघन पैदावार की वजह से जमीन के पौष्टिक तत्व—जिंक, लोहा, तांबा, मैगनीज, बोरोन और मोजिब्डीनम गायब होते जा रहे हैं। परमाणु ऊर्जा क्या देगी, यह अभी तक पक्का नहीं हो पाया, पर उसके खतरनाक कचरे को कैसे ठिकाने लगाया जाए, हम यह नहीं समझ पा रहे। देश जब ईंधन और चारे के भयानक दौर से गुजर रहा है, तब सबसे ज्यादा यूकेलिप्टस के पेड़ लगाने के पीछे क्या तर्क है, जो न चारा देता है और न जलाने के काम आता है, तिस पर जमीन का पानी और सोख लेता है। सन् 1979-80 में उत्तर प्रदेश में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम शुरू हुआ था। राज्य सरकार ने पाया कि इससे बड़े और संपन्न किसान ही पूरा लाभ उठा रहे हैं।

दरअसल, विकास-योजनाओं में पूंजी-संवर्धन की रणनीति, विशाल बांधों का निर्माण, बिजली उत्पादन, खनन, भारी उद्योग, नहरों, सड़कों, रेलों के विस्तार की नीति की कीमत हम पर्यावरण के विनाश से ही चुकाते रहे हैं।

ऐसा नहीं है कि देश में पर्यावरण संबंधी नियम-कानूनों की कमी रही हो। समुद्रतटों की सुरक्षा के लिए 1853 में 'शोर एक्ट' (मुंबई-कोलाबा) बना था वायु प्रदूषण के निवारण

और नियंत्रण के लिए बंगाल-स्मोक न्यूसेंस एक्ट 1905 में लागू हुआ था। बाद में 1912 में मुंबई और 1958 में कानपुर के लिए भी इसी तरह के कानून बने। 1939 में राज्य सरकारों को मोटर-वाहनों से प्रदूषण की रोकथाम के बारे में नियम बनाने का अधिकार दिया गया, जबकि वन कानून 1927 में लागू किया गया था। वन्य जीवन (संरक्षण) कानून 1972, जल प्रदूषण (निवारण और नियंत्रण) कानून 1974, वन संरक्षण कानून 1980 और वायु प्रदूषण (निवारण और नियंत्रण) कानून 1981 के पहले जितने भी कानून थे, शायद इतने प्रभावी नहीं थे। पर्यावरण के प्रति सजगता का युग देश में इन्हीं कानूनों के बनने के बाद कहा जा सकता है। इस तरह आज भी देश में 200 से अधिक ऐसे नियम-कानून हैं, जिन्हें पर्यावरण की रक्षा के लिए काम में लाया जा सकता है। इन सभी में समुचित दंड-विधान है, किंतु जैसा कि होता है, इनका अनुपालन, पालन से अधिक उल्लंघन में ही हुआ है।

पिछले दो दशकों में सरकारी-स्तर पर होने वाले इन प्रयासों के अतिरिक्त प्राकृतिक संपदा तथा पर्यावरण की साज-संवार के लिए अनेक शक्तिशाली आंदोलन भी उभरे हैं और अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं ने सामने आकर इस क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान भी दिया है। अब तो राजनीतिक दल भी अपने चुनाव-घोषणा पत्रों में पर्यावरण को विशेष मुद्दा बनाकर पेश करने लगे हैं।

किंतु विसंगति यह रही कि देश के संविधान में 1976 तक पर्यावरण की सुरक्षा के बारे में कोई प्रावधान नहीं था और सरकार संविधान के तहत कुछ अधिक शक्तियां और अधिकार ग्रहण करना चाहती थी। अतः 1976 में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में अनुच्छेद-48अ जोड़कर यह प्रावधान किया गया कि 'राज्य देश के प्राकृतिक पर्यावरण और वनों व वन्य-जीवन की सुरक्षा और विकास के उपाय करेगा' तथा संविधान के मौलिक कर्तव्यों के अध्याय में अनुच्छेद 51-अ(जी) में कहा गया, 'वनों, झीलों, नदियों और वन्य-जीवन की सुरक्षा व विकास और सभी जीवों के प्रति सहानुभूति प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा।' तद्नुसार वनों और वन्य-जीवन संबंधी प्रश्न राज्य सूची से निकालकर समवर्ती सूची में शामिल कर दिए गए।

1972 में स्टॉकहोम में हुए मानवीय पर्यावरण सम्मेलन के बाद भारत में एक उच्च-स्तरीय समिति 'राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजन समिति' का गठन हुआ था, पर्यावरण विभाग बन जाने के बाद इसे राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजन समिति कहा जाने लगा। बाद में फरवरी, 1980 में योजना आयोग के तत्कालीन उपाध्यक्ष श्री नारायण दत्त तिवारी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया, जिसकी सिफारिशों के आधार पर केंद्र में नवंबर, 1980 में एक अलग पर्यावरण विभाग अस्तित्व में आया, जिसमें वन विभाग को मिलाकर 1985 में एक सम्मिलित वन तथा पर्यावरण मंत्रालय बना दिया गया।

विभाग के प्रमुख कार्य हैं—पर्यावरण रक्षा एवं विकास तथा विकास योजनाओं के आयोजन में पर्यावरण की चिंता रखना, वनस्पतिशास्त्रीय और प्राणिशास्त्रीय सर्वेक्षण तथा पर्यावरण संदेश का प्रचार-प्रसार। विभाग की मदद और कार्य-निर्धारण के लिए विभाग के अधीन कम्प्यूटर सूचना केंद्र, राष्ट्रीय पर्यावरण निगरानी संगठन, केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड तथा कुछ अनुसंधान व प्रशिक्षण केंद्र हैं। मानव और बायोस्फीयर संबंधी कार्यक्रम यूनेस्को द्वारा संचालित एक अंतर्राष्ट्रीय योजना के तहत चलता आ रहा है।

इस दिशा में राज्य भी पीछे नहीं हैं। प्रत्येक राज्य में एक अलग पर्यावरण विभाग है या फिर वहां विज्ञान व तकनीकी विभाग में पर्यावरण केंद्र स्थापित किए गए हैं। पर्यावरण से जुड़े विषयों को लेकर देश में समन्वित आर्थिक विकास की संकल्पना चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) में हुई थी और तब से पर्यावरण विकास सभी परियोजनाओं का अंग बनता आ रहा है।

दून घाटी तथा गंगा-यमुना क्षेत्र बोर्ड, साइलेंट वैली संयुक्त समिति, टिहरी बांध परियोजना कार्यदल आदि जैसी कुछ विशेष परियोजनाओं को लेकर अभी तक पर्यावरण विभाग द्वारा अनेक विशेष दलों और कार्यदलों की स्थापना की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त गंगा-यमुना सफाई अभियान जैसे प्रदूषण-निवारण कार्यक्रम चलाए गए हैं। राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजन समिति तथा पर्यावरण विभाग के संयुक्त प्रयास से विभिन्न प्रकार की और विविध आकार की परियोजनाओं में पर्यावरण मूल्यांकन का प्रश्न जोड़ा गया है। जल विद्युत और सिंचाई परियोजनाओं द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव की जांच के लिए पर्यावरण समिति तथा योजना आयोग ने एक प्रश्नावली भी तैयार की थी। वन संवर्धन अधिनियम 1980 में पारित हो जाने से, उन सभी योजनाओं पर, जिनके कारण वनभूमि जलमग्न होती हो, वन्य पशु अथवा पक्षी अभयारण्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो या उसका उपयोग विस्थापितों के पुनर्वास के लिए किया जाना हो तो, उसके लिए कृषि मंत्रालय एवं सहकारिता विभाग की सलाहकार समिति तथा वन पर्यावरण मंत्रालय से अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है। सभी मंत्रालयों एवं विभागों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे अपनी परियोजनाओं के कार्यान्वयन के पूर्व पर्यावरणीय स्वीकृति प्राप्त करें। 1988 में सरकार द्वारा नीति की घोषणा गई थी। इस तरह पर्यावरण विभाग द्वारा पर्यावरण सुरक्षा और प्रदूषण की रोकथाम के लिए किए गए कार्यों की एक लंबी सूची है। आजादी के बाद से देश के सामने अब तक दो ही प्रश्न रहे थे--समानता और विकास। शायद पहली बार पर्यावरण के क्षेत्र में हो रही घटनाओं को, तत्संबंधी रीति-नीति और विकास की संकल्पनाओं के साथ देखने की कोशिश भी हुई है, अर्थात् देश में विकास की अवधारणा में सतत् संपोषणीय विकास का प्रश्न सबसे बड़ी चुनौती बनकर आ खड़ा हुआ है।

यदि केंद्र सरकार की उन समस्त एजेंसियों, संस्थानों व समितियों तथा राज्य सरकारों के कार्य का मूल्यांकन किया जाए तो बड़ा ही निराशाजनक परिणाम सामने आता है। योजनाएं बनकर कार्यान्वित पहले हो जाती हैं और उनका मूल्यांकन और समीक्षा बाद में होती है। हालांकि जनता और कुछ आंदोलनों के दबाव में आकर सरकार कुछ परियोजनाओं पर पुनर्विचार करने और कुछ की मंजूरी वापस लेने के लिए राजी हो जाती है। कुछ वर्ष पूर्व केंद्र सरकार द्वारा शारावती (कर्नाटक) आदि परियोजनाओं पर काम रोकने के आदेश जारी किए गए हैं। वास्तव में पर्यावरण इतना विशाल और बहुआयामी है कि पर्यावरण विशेषज्ञों की मौजूदा संस्थाएं या संस्थान तथा सरकारी व गैर-सरकारी स्तरों पर होने वाले प्रयास ही इसके लिए पर्याप्त नहीं है। यहीं प्रारंभ होती है, स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका।

पिछले दो दशकों में देश में पर्यावरण की चिंता को लेकर अनेक स्वैच्छिक व स्वयंसेवी संस्थाएं खड़ी हुई हैं और उनके माध्यम से पर्यावरणीय जन-जागृति के लिए अनेक

आंदोलन उभरे हैं। हमारे यहां पर्यावरण से जुड़े प्रश्नों को लेकर जितने स्वैच्छिक संगठन काम कर रहे हैं, उतने अन्य देशों में नहीं हैं। 'चिपको' का नाम लेते ही बरबस विश्नोई समाज के उन 300 व्यक्तियों की याद ताजा हो जाती है, जिन्होंने 50 वर्ष पूर्व अपने पेड़ों को कटने से बचाने के लिए पेड़ों से लिपटकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया, पर वे पेड़ों से हटे नहीं। आज सुंदर लाल बहुगुणा जैसे पुरोधा नेता के मार्गदर्शन में 'चिपको', 'क्या हैं जंगल के उपकार 'मिट्टी, पानी और बयार' को अपना उद्घोष वाक्य बनाकर जंगलों के संरक्षण के लिए कृतसंकल्प हैं। 'मार्ग', टिहरी बांध विरोधी समिति, नर्मदा बचाओ आंदोलन तथा भारतीय सांस्कृतिक निधि (इन्टैक) जैसी अनेक संस्थाएं पर्यावरण रक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं और उन्हें राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग एवं समर्थन प्राप्त है। कहीं-कहीं ये आंदोलन हिंसक भी हो उठे हैं। कुछ समय पूर्व कोलकाता तालाब के मछुआरों ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए हथियार उठा लिए थे। लोकहित में इन संस्थाओं द्वारा पर्यावरण से जुड़े अनेक प्रश्नों को लेकर न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय के दरवाजे भी खटखटाए गए हैं।

किंतु इच्छित सफलता प्राप्त न होने के कारण गिनाए जाएं तो असंख्य होंगे। निहित स्वार्थ, राजनीति, अवैध धनलोलुपता और भ्रष्टाचार ने हमें यहां भी नहीं छोड़ा। उड़ीसा के मुख्यमंत्री चिल्का झील परियोजना इसलिए लागू करने के लिए कटिबद्ध थे कि वह राज्य की समृद्धि के लिए इसे बाजार-अर्थव्यवस्था से जोड़ना चाहते थे। उत्तर प्रदेश सरकार टिहरी बांध परियोजना राज्य में अधिक बिजली की खपत पूरा करने के लिए तत्काल लागू करना चाहती थी, हालांकि इस परियोजना के विरुद्ध ब्रून जैसे विश्वविख्यात भूकंपशास्त्री ने, जिनसे देश के शीर्षस्थ भू-वैज्ञानिक डॉ. विनोद गौड़ भी सहमत रहे हैं, अपनी राय दी कि जहां टिहरी बांध बनेगा वहां एक विशाल भ्रंश है और निकट भविष्य में वहां 8.7 गुरुत्व का भूकंप आने की संभावना है। यदि यह भूकंप आ गया तो यह बांध अभूतपूर्व विनाश और तबाही का कारण बनेगा। इसी कारण प्रधानमंत्री द्वारा इस पर पुनर्विचार का आश्वासन भी दिया गया था। इसी तरह विश्व बैंक, जिसकी सहायता से नर्मदा परियोजना बन रही है, की स्वतंत्र समीक्षा समिति की विपरीत राय के बावजूद अनेक मुद्दों पर समुचित कार्यवाही किए बिना मध्य प्रदेश व गुजरात के मुख्यमंत्री इस परियोजना का निर्माण करने पर आमादा हैं। ये परियोजनाएं देश के हित में ही क्यों न हों, लेकिन उनके लाभ-लागत का लेखा-जोखा और पर्यावरणीय दुष्प्रभाव का आकलन तो होना ही चाहिए।

दरअसल हम इस क्षेत्र में जागे तो हैं, पर बहुत देर से जागे हैं। वास्तविकता तो यह है कि देश में अभी तक पर्यावरण की कोई सुनिश्चित नीति नहीं है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए बनाई जाने वाली नीति और 'एक राष्ट्रीय पर्यावरण नीति' में बहुत अंतर है। वन महोत्सव, वृक्षारोपण, हरित व श्वेत क्रांति, प्राणी उद्यानों व अभ्यारण्यों की स्थापना, बांध परियोजना जैसी परियोजनाएं लागू करके ही हम पर्यावरण साज-संवार की इतिश्री मान बैठे हैं। यह जंगलों, नदियों, पहाड़ों, झीलों व जैव-वनस्पतियों को बचाने का सवाल नहीं है, बल्कि यह समझने और समझाने का सवाल है कि इनके स्थायी और समतामूलक उपयोग का तरीका क्या है, समस्त विकास के साथ इस प्राकृतिक दाय के संपोषणीय विकास का तरीका क्या है? पृथ्वी के इस समस्त पारिस्थितिकी-तंत्र की रक्षा और संपोषण

का तरीका क्या है? जहां तक भारत का सवाल है, इस सवाल को हल करने के लिए हमें दो समस्याओं से जूझना होगा, एक तो पर्यावरण बनाम विकास की समस्या है और दूसरी गरीबी तथा पिछड़ेपन की समस्या, जिनका सूत्रपात भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की औद्योगिक संस्कृति के साथ हुआ। ब्रिटिश शासकों ने वनों को व्यापार और कमाई का साधन बनाया था। गांववालों से उनके वन अधिकार छीन लिए और फिर शुरू हुआ उनका व्यापारिक दोहन। फलतः गांवों की अर्थव्यवस्था चरमरा गई।

रियो सम्मेलन के अवसर पर जून, 1992 में सरकार द्वारा राष्ट्रीय संरक्षण रणनीति एवं पर्यावरण विकास पर एक घोषणा-पत्र तथा कार्य-योजना जारी की गई थी, जिसका मूल स्वर था, 'राष्ट्र के अस्तित्व व कल्याण के लिए सतत् संपोषणीय विकास।' इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए देश के पारंपरिक सांस्कृतिक दाय का आधार मजबूत करना होगा और एक ऐसे समाज का निर्माण करना होगा, जिसमें संरक्षण की चिंता और चेतना हो और जो प्रकृति के साथ संपूर्ण सामंजस्य की स्थिति में रहकर विज्ञान के क्षेत्र में अर्जित श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ उठाते हुए नैसर्गिक संसाधनों के विनाश के बिना उनका कुशलता से उपयोग करने में समर्थ हो।

कुछ वर्ष पूर्व महाराष्ट्र के एक गांव 'रालेगांव सिद्धि' में एक सफल प्रयोग हुआ था। देश के गांव-गांव में यदि यही प्रयोग हों तो पर्यावरण का कुछ कल्याण अवश्य होगा। देश के पर्यावरण शासन-तंत्र को मजबूत बनाने के अलावा विदेशों का मुंह ताके बिना यह लड़ाई हमें अब खुद आंगन से, देहरी से और सड़क से संसद तक लड़नी होगी।

हिंदी सलाहकार,
भारतीय सांस्कृतिक निधि (इन्टैक)
71, लोदी एस्टेट, नयी दिल्ली-110003

पर्यावरण अनुकूलन : एक सामयिक चर्चा

इं. गोविंद प्रसाद शर्मा

जीवन का मूल आधार है पर्यावरण। पर्यावरण का संतुलन प्रकृति, संस्कृति एवं विकृति के त्रिक पर आश्रित है। प्रकृति नियति का नैसर्गिक स्वरूप है। संस्कृति जीवन-शैली है। संस्कृति ही मानव में देवत्व उभारती है। विकृति वस्तुतः संस्कृति एवं प्रकृति दोनों की विलोम स्थिति है। विकृति के फलस्वरूप समाज में असुरता बढ़ने लगती है। प्रकृति को संवारना संस्कृति है, जबकि इसको बिगाड़ना विकृति।

संस्कृति के अंतर्गत ही तकनीकी विकास होता है। तकनीकी विकास का क्रम सुविधाओं और आवश्यकताओं के लिए दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ता गया। संस्कृति के अंतर्गत एक तथ्य पर सदैव बल दिया जाता रहा कि समाज और प्राकृतिक वातावरण के मध्य एक पारिस्थितिक संतुलन रहे। यही पारिस्थितिक संतुलन आदर्श पर्यावरण है। यदि संतुलन बिगड़ने लगे तो इसका अर्थ हुआ हैं—पर्यावरण दूषित हो रहा है। प्रदूषण के मुख्यतः कारक हैं—सभ्यता का अति विकास, यांत्रिकता का अनावश्यक विकास, पर्यावरण बोध रहित तकनीकी विकास, जनसंख्या विस्फोट, वनस्पतियों का विनाश, अनावश्यक औद्योगिक विस्तार, परमाणु बम का प्रयोग, मशीनों की अनिवार्यता, रसायनों का बढ़ता प्रयोग एवं मानसिक विकार।

प्राणिजगत् के लिए संतुलित वातावरण अत्यंत आवश्यक है, लेकिन पर्यावरण को प्रदूषित एवं असंतुलित करने के जिन उपर्युक्त कारकों को रेखांकित किया गया है, उन सभी का मुख्य कारण मानव समुदाय ही है। अदूरदर्शिता, स्वार्थ, सुविधा-भोग, जनसंख्या-विस्फोट आदि ने पर्यावरण को प्रदूषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

पर्यावरण और सृष्टि के बीच एक घनिष्ठ संबंध रहा है। सृष्टि-परिवर्तन के प्रभाव से पर्यावरण में भी परिवर्तन होता है। यदि परिवर्तन जीव-जगत् के लिए अनुकूल होता है तो यह कहा जाता है कि वे हमारे लिए ग्राह्य हैं। यदि परिवर्तन से प्राणी को प्रतिकूलता प्रतीत होती है तो वे अग्राह्य हैं। यही प्रतिकूलता प्रदूषण इंगित करती है।

वर्तमान में पर्यावरण का जो स्वरूप है, वह निश्चित रूप से प्रदूषित पर्यावरण का रूप है। इसलिए यह सामयिक चुनौती है कि पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त कैसे रखा जाए?

पर्यावरण से संबंधित भारतीय विचारधारा

पर्यावरण के प्रति सजग रहने के लिए मानव को सनातनकाल से संप्रेरित एवं प्रशिक्षित किया जाता रहा है। वैदिककाल से ही मानव संतुलित एवं अनुकूल पर्यावरण की

अपेक्षा करता आ रहा है। 'वातऽअवातु भेषजम्', 'शंभु मयोभु नो हृदे' और 'प्रणऽ आयूंषितारिषत्' में यही कामना है कि वातावरण में चारों ओर जीवनप्रद रोग निवारक वायु ही बहे, यही वायु हमारे लिए सुखदायी, कल्याणकारी एवं आनंददायी हो तथा जीवनदायिनी एवं आरोग्यकारिणी रहते हुए समाज को पोषित करे, स्वस्थ रखे।

यज्ञ को ऋतुओं का संचालक माना गया है। 'अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्' से स्पष्ट संकेत मिलता है कि अग्नि स्थापित कर उसमें हवि प्रदान कर ऋतु चक्र को अनुकूल रखा जा सकता है। पर्यावरण में अनुकूलता स्थापित करने के लिए प्रदूषणरोधक एवं प्रदूषणशोधक आदि उपक्रम करने की संप्रेरणा दी जाती रही है, मानव समुदाय को। भारतीय संस्कृति में वायु, जल, मृदा एवं वृक्ष को देवरूप मानते हुए, इनकी आराधना की गई है। जिस प्रकार देवमूर्ति की पूजा-अर्चना की जाती है, उसी प्रकार प्रकृति के तत्वों को पूजने की परंपरा है। प्रकृति पूजन वस्तुतः वातावरण को मानव समुदाय के लिए उपयुक्त एवं अनुकूल बनाने का प्रयास है। नदी को गंदा न करके, जल को छानकर पीने, वातावरण को दुर्गंधरहित रखने आदि हजारों निर्देश अंकित हैं, भारतीय ग्रंथों में—

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वाष्टीवनं समुत्सृजेत्।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥

यह मनुस्मृति का उद्धरण है। इसमें प्रदूषण रोकने संबंधी निर्देश हैं कि पानी में मल-मूत्र, थूक अथवा दूषित पदार्थ, रक्त या विष का विसर्जन न करें। ऋग्वेद के ये सूत्र पर्यावरण को अनुकूल रखने की दृष्टि से ही अंकित हैं—

'माकाकंबीरमुद् वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः'

अर्थात् वृक्षों को मत उखाड़ो (काटो), वे प्रदूषण रोकते हैं।

'प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम्'

अर्थात् मैं मृगों के आश्रयदाता वन की प्रशंसा करता हूं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के प्रति सजग रहने तथा उसे अनुकूल रखने के लिए एक समग्र दर्शन है। इसी मूलदर्शन को अपनाने की आज आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

पारिस्थितिकीय संतुलन का सिद्धांत

स्वस्थ तथा अनुकूल पर्यावरण में ही सुखद जीवन निर्वाह की आशा की जा सकती है, लेकिन वर्तमान सदी में जिस प्रकार से औद्योगिक विकास हुआ है, उससे विश्व के सामने पर्यावरण-संरक्षण की समस्या विकटतर हो गई है। पारिस्थितिकीय असंतुलन से प्राकृतिक प्रकोप के भीषण संकट उत्पन्न हो रहे हैं। विकास के नाम पर एकपक्षीय नियोजन एवं कार्यान्वयन हो रहे हैं। विकास के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्थितियों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसी का दुष्परिणाम है कि आज विश्व पारिस्थितिकीय असंतुलन का सामना कर रहा है। विवेकांध औद्योगीकरण से प्रकृति का निर्मम दोहन हुआ है। कल-कारखानों के अपशिष्ट-निस्तारण के फलस्वरूप नदियां प्रदूषित हुईं, वायुमंडल प्रदूषित हुआ तथा मृदा व अन्यान्य प्रदूषित हुए। इस प्रकार अनेक प्रदूषणों से पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ गया।

पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखना एक सतत् क्रियात्मक प्रक्रिया है। पारिस्थितिकीय संतुलन के मुख्य अवयव हैं—वायु, जल, मृदा, वनस्पतियां, जीव-जंतु, मानव समुदाय तथा प्रौद्योगिकी। प्रकृति की संतुलित पारिस्थितिकी के किसी भी घटक से यदि उसकी लोच सीमा से अधिक छेड़छाड़ किया जाएगा तो पारिस्थितिकी असंतुलित हो जाएगी और पर्यावरण प्रदूषित हो जाएगा। यदि किसी कारखाने का अपशिष्ट नदी में बहाया जाएगा तो नदी एक सीमा तक ही सहन करेगी। उससे अधिक होने पर नदी प्रदूषित हो जाएगी तथा प्राणीजगत् पर कुप्रभाव पड़ने लगेगा। यही समझ पारिस्थितिकी का एकीकृत सिद्धांत कहलाता है। इसी सिद्धांत पर पारिस्थितिकीय जाल के अंतर्गत वायु, जल, मृदा, वनस्पतियां, जीव-जंतु, मानव समुदाय तथा प्रौद्योगिकी एक-दूसरे से जुड़ी हैं।

पारिस्थितिकीय जाल

चूंकि मानव पारिस्थितिकी के अन्य घटकों से सीधा जुड़ा होता है, इसलिए वह पारिस्थितिकी का प्रधान घटक माना जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पारिस्थितिकीय संतुलन को मानव के सापेक्ष में ही परिभाषित किया जा सकता है या किया जाता है। मानव के आंतरिक गुणधर्मों का भी बहुत अधिक महत्व है। मानव के आंतरिक गुणधर्मों के आधार पर ही सामाजिकता, नैतिकता, मनःस्थिति, राजनीति, अध्यात्म-शक्तियां, अर्थ-क्षमता, संस्कृति आदि परिभाषित होती हैं और निर्धारित होती हैं।

पर्यावरण अनुकूलन हेतु कतिपय विचार

यह तो सर्वदा सत्य है कि मानव सभ्यता का विकास हुआ है। इस विकास का मुख्य मापदंड है—औद्योगिक विकास। औद्योगिक विकास के साथ-साथ मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओं के लिए अनेक वस्तुओं का उत्पादन तो कर लिया, लेकिन उस विकास का दुष्परिणाम यह हुआ कि विकसित समाज में वह अस्वस्थ एवं प्रतिकूल वातावरण में रहने के लिए मजबूर है। आज की स्थिति यह हो गई है कि मानव अपने द्वारा बनाई गई मशीनों का स्वयं गुलाम बन गया है। यदि समय रहते इस पर समुचित विचार नहीं किया गया तो पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने या बनाए रखने की समस्या जटिलतर हो जाएगी। अब विचारक इस समस्या के प्रति संवेदनशील दिखने लगे हैं। यह एक शुभाग्रह है। प्रदूषित पर्यावरण को अनुकूल बनाने के लिए कुछ विचारक इस बात पर बल देने लगे हैं कि सभ्यता के विकास को यदि नकार दिया जाए तो पर्यावरण को प्रदूषणरहित बनाने में सरलता रहेगी। इसका आशय हुआ कि अंतरिक्ष-युग से लौटकर आखेट युग में जिया जाए। कुछ अन्य विचारकों की राय है कि प्रकृति स्वतः भी इस दिशा में कार्य करती है। ईंधन ऊर्जा की अंधाधुंध खपत से ईंधन का संकट पैदा हो जाएगा और समाज मजबूरी में प्रदूषण के स्रोत कल-कारखाने, वाहन आदि बंद हो जाएंगे। दोनों विचारों में एक समानता है कि प्रदूषण को पूर्णतः समाप्त करने की बलवती इच्छा है। इस प्रकार के विचार को पश्चगमन कहते हैं। चूंकि मानव की सदा से यही उत्कंठा रही है कि वह प्रकृति में हलचल पैदा कर नयी-नयी संभावनाओं को विकसित करे। मानव की इस प्रकृति से ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चगमन का विचार अर्थपूर्ण नहीं है, लेकिन यह सर्वथा संभव है कि प्रदूषण

नियंत्रण कर पर्यावरण को अनुकूल रखा जा सकता है। इसी क्रम में एक विचार प्रसारित हो रहा है कि तकनीक का अति-विकास ही मानव को प्रदूषणरहित पर्यावरण दे सकेगा। पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले कारकों को पुनः मानवोपयोगी बनाकर समाज को उपलब्ध कराया जाए, जिससे प्रदूषण की समस्या सुलझाई जा सके।

प्रदूषण के कतिपय रूप और उनका प्रभाव

यह तो निर्विवाद है कि पर्यावरण अनुकूलन के लिए प्रदूषण को समाप्त करना होगा। प्रदूषण के कई रूप मौजूद हैं—कुछ प्रत्यक्ष रूप में तथा कुछ अप्रत्यक्ष रूप में। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, रासायनिक प्रदूषण आदि प्रत्यक्ष प्रदूषण हैं। जबकि मानसिक विकृति, ओजोन परत का छिद्रण, हरितालय-प्रभाव (Greenfield Offer) आदि प्रदूषण के अप्रत्यक्ष रूप हैं। प्रदूषण के विभिन्न रूपों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(क) वायु प्रदूषण—मानव जीवन की प्रथम आवश्यकता है वायु, जिसकी प्रतिक्षण जरूरत है, लेकिन वायु अनेक कारणों से प्रदूषित होकर मनुष्य के लिए अनुपयोगी बनती जा रही है। मुख्य रूप से वायु को प्रदूषित करने वाले कारक हैं—कीटनाशक रसायन, कल-कारखानों की चिमनियों से निकलने वाला काला धुआं, सड़कों पर चलने वाले वाहनों से निकलने वाला धुआं, गंदगी के ढेर, बढ़ती हुई जनसंख्या, घटती हुई वनस्पतियां। वायु विभिन्न गैसों का संतुलित अनुपात वाला मिश्रण है। अनुपात का संतुलन बिगड़ जाने से वायु की अनुकूलता समाप्त हो जाती है, वह विषैली हो जाती है और इसका कुप्रभाव न सिर्फ मानव, बल्कि वनस्पति पर भी पड़ता है। वायु प्रदूषण के मुख्य अवयव हैं—सल्फर डाईऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, धूम्रकण आदि। वायु प्रदूषण के ही दुष्परिणाम हैं कि आदमी श्वास-तंत्र के रोगों (ब्रांकाइटिस) का शिकार हो रहा है। इमारतों की संरचनाओं में क्षरण (स्टोन कैंसर) आदि होने लगे हैं। फसलों एवं पशुओं पर फ्लोराइड से हानि पहुंच रही है। वायु प्रदूषण की मात्रा थोड़ी होती है तो वायु का शुद्धिकरण वायु की गति, ताप, वर्षा तथा सूर्य-रश्मियों आदि से स्वतः हो जाता है। इसलिए विषैले पदार्थों का इतना तनुकरण होना चाहिए, जिससे वातावरण स्वयं शुद्धिकरण-क्षमता की सीमा के अंतर्गत आ जाए। वायु प्रदूषण वृक्षों के कटान के फलस्वरूप भी होता है। अतः पेड़ों का रोपण एवं पोषण वायु प्रदूषण समाप्त करने का एक आवश्यक पहलू है। इसके अतिरिक्त वायु प्रदूषण को रोकने के लिए प्रदूषण वृद्धि करने वाले कारकों एवं अभिकारकों पर वैधानिक शर्त आरोपित करनी चाहिए।

(ख) जल प्रदूषण—वायु के बाद मानव के लिए सबसे ज्यादा उपयोगी एवं आवश्यक अवयव है जल। जल के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। जीवन-निर्वाह के लिए निर्मल एवं पेयजल की आपूर्ति आवश्यक है। जल प्रदूषण के मुख्य कारक हैं—घरों से निकलने वाला कूड़ा-कचरा एवं अपशिष्ट पदार्थ, फैक्ट्रियों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ आदि। जल प्रदूषण का दुष्परिणाम यह होता है कि जल का ताप, उनका रंग, उसकी गंध एवं रेडियोधर्मिता में अंतर आ जाता है। जल की हाइड्रोजन-आयन-सांद्रता (पी) क्षारीयता आदि परिवर्तित हो जाती है। जल प्रदूषण के फलस्वरूप जीवाणुओं एवं विषाणुओं का संक्रमण फैलने लगता है, जिससे महामारी फैल जाती है। पीलिया, डायरिया आदि

बीमारियां जल प्रदूषण के कारण फैलती हैं। जल प्रदूषण का दुष्प्रभाव फसलों एवं मिट्टी पर भी पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिए फैक्ट्रियों को यह निर्देश दिया जाना चाहिए कि अपशिष्ट युक्त पानी को स्वच्छ कर ही निस्तारित किया जाए। जल आपूर्ति के लिए बिछाई गए पाइपों के जोड़ उचित ढंग से जोड़े जाएं। क्लोरीकरण से जल शुद्ध किया जाना चाहिए।

(ग) मृदा प्रदूषण—मृदा एक आवश्यक पदार्थ है, जिसका उपयोग जीवन में कई तरह से किया जाता है। मृदा का सबसे बड़ा उपयोग खेती में किया जाता है। मृदा प्रदूषण का दुष्प्रभाव वायु, जल एवं फसल पर पड़ता है। यह अंततः मानव समुदाय को कुप्रभावित करता है। मृदा प्रदूषण के मुख्य कारक हैं—कीटनाशक दवाइयां एवं अपशिष्टों के रसायनों, प्रदूषित जल, रेडियोधर्मिता आदि।

(घ) ध्वनि प्रदूषण—आज कोलाहलपूर्ण वातावरण से मानव परेशान है। इसका एकमात्र कारण है—ध्वनि प्रदूषण। जो ध्वनि गीत-संगीत के रूप में कर्ण-प्रिय लगती है, वही प्रदूषण बनकर जानलेवा बन रही है। ध्वनि प्रदूषण का सीधा दुष्प्रभाव कर्ण एवं मस्तिष्क पर पड़ता है और इससे पाचन-तंत्र भी बिगड़ता है। ध्वनि प्रदूषण वस्तुतः ध्वनि की अत्यधिक मात्रा और उसकी तीव्रता है। यदि ध्वनि की तीव्रता मानव की सहन-शक्ति से बढ़ जाती है तो वह ध्वनि प्रदूषित कहलाती है। प्रदूषित ध्वनि शारीरिक एवं मानसिक तनाव पैदा करती है। मानव औसत रूप से अधिकतम 40 डेसिबल ध्वनि को सहन करने की सामर्थ्य रखता है। उससे अधिक तीव्रता वाली ध्वनि प्रदूषित ध्वनि कहलाती है। ध्वनि प्रदूषण के कारण हैं—लाउडस्पीकर, वाहनों एवं रेलगाड़ियों की सीटी एवं उसकी गति से होने वाली तेज ध्वनि इत्यादि। ध्वनि सीमा के अनुसार इंजन, टेलीफोन, मिक्सी, रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी एवं वायुयान, पटाखे आदि ध्वनि प्रदूषण के मुख्य अभिकारक हैं। ध्वनि अवशोषक की परिकल्पना एवं विकास का उचित प्रयास किया जाना चाहिए।

(ङ) रासायनिक प्रदूषण—कुछ रासायनिक कण मानव के लिए हानिकारक होते हैं। वे मुख्य रूप से सीसा, जस्ता, लोहा, कैडमियम, फ्लोराइड, निकल, क्लोरीन, बेरियम आदि हैं। ये वायु, जल, मृदा आदि को प्रदूषित कर मानव-मस्तिष्क में विकार पैदा करते हैं। इनके दुष्परिणाम से यकृत और वृक्क भी प्रभावित होते हैं।

(च) रेडियोधर्मी प्रदूषण—रेडियोधर्मी गैसें ही इसके मुख्य स्रोत हैं। परमाणु कचरे से वायु, जल, मृदा आदि प्रदूषित होती हैं। रेडियोधर्मी प्रदूषण के कारण ही एनीमिया, ल्यूकोनिया, कैंसर तथा नपुसंकता आदि बीमारियां फैलती हैं या फैल रही हैं। रेडियोधर्मी प्रदूषण के अन्य स्रोत ये भी हैं—न्यूक्लीयर रिएक्टर, प्रायोगिक उत्प्रेरक, रेडियोधर्मी आइसोटोप्स की सहायता से निर्मित दवाइयां एवं परमाणु-बम परीक्षण आदि।

(छ) मानसिक प्रदूषण—मानसिक प्रदूषण वस्तुतः मानसिक विकार है। इसके ही दुष्परिणाम हैं—आतंक, परमाणु बम का वायुमंडल में परीक्षण, रेडियोधर्मी कचरों का अनियोजित निस्तारण, कल-कारखानों के अपशिष्टों को बिना उपचार किए खुला बहा देना, तीव्र आवाज का प्रयोग, लाउडस्पीकरों इत्यादि को तेज ध्वनि में बजाना आदि। मानसिक प्रदूषण वस्तुतः अन्य प्रदूषणों का उत्प्रेरक एवं समर्थक है। पर्यावरण अनुकूलन के प्रति सार्थक दृष्टिबोध का न होना मानसिक प्रदूषण का दुष्परिणाम है। इच्छाशक्ति का ह्रास होना, सामाजिकता के बोध में कमी आना, नैतिक दृष्टिकोण का न होना, आदि मानसिक

विकार के लक्षण हैं। अध्यात्मबोध मानसिक विकार दूर करने में सहायक होता है। अंधविश्वास मानसिक प्रदूषण को बढ़ाता है। अंधविश्वास के फलस्वरूप पर्यावरण अनुकूलन के प्रति प्रतिबद्धता में कमी आती है।

(ज) ओजोन परत में छिद्रण—ओजोन परत वायुमंडल के ऊपरी भाग में एक आवरण है, जिसका निर्माण ऑक्सीजन और सूर्य रश्मियों की क्रिया द्वारा होता है। मानव को इसके बारे में सर्वप्रथम सन् 1785 में ज्ञान हुआ। यह आवरण वस्तुतः पृथ्वी के 25-30 कि.मी. ऊपर होता है। यह परत प्राणी जगत् के लिए ईश्वर का वरदान है। सूर्य की पराबैंगनी रश्मियों एवं अन्य विकिरणों से, जो प्राणियों के लिए घातक होती हैं, यह परत बचाती है। ओजोनपरत वस्तुतः प्राणी-जगत् के लिए रक्षा-कवच है। लेकिन मानव सभ्यता एकपक्षीय विकास कर अपने रक्षाकवच को ही कमजोर बना रही है। विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों के कारण ओजोन परत में छिद्रण हो रहा है। इससे प्राणी जगत् को घातक विकिरणों का दुष्प्रभाव झेलना पड़ेगा। आज त्वचा कैंसर तथा अंधापन जैसी बीमारियां ओजोन परत छिद्रण का ही दुष्परिणाम हैं। ओजोन परत छिद्रण के मुख्य कारक हैं—क्लोरो-फ्लोरो कार्बन (सीएफसी)।

(झ) हरितालय प्रभाव—भूमंडलीय ताप में हो रही निरंतर वृद्धि प्राणी जगत् के लिए खतरे की घंटी है। पिछले सौ वर्षों में भूमंडलीय औसत ताप में लगभग 0.6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है। ऋतुओं में परिवर्तन होने लगा है। भूमंडल का तापमान बढ़ना तथा हरियाली का लुप्त होना ही हरितालय प्रभाव के लक्षण हैं। इस प्रभाव के कारण प्राणी का जीवन ही नष्ट होने लगेगा। हरितालय प्रभाव के लिए मुख्य रूप से कार्बन डाईऑक्साइड तथा अन्य 39 गैसें, जिनमें—मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरा-फ्लोरो कार्बन आविमुख्य हैं, मुख्य रूप से उत्तरदायी कारक हैं।

प्रदूषण-नियंत्रण से संबंधित आधारभूत अवधारणाएं

यह तो स्पष्ट है कि यदि पर्यावरण-अनुकूलन के लिए समय रहते प्रयास नहीं किया गया तो प्राणी-जगत् पर संकट के बादल और घने हो जाएंगे तथा मानव के ज्ञान एवं अनुसंधान की क्षमताओं पर प्रश्नचिह्न लग जाएंगे। यद्यपि विश्व के विचारक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं, फिर भी कुछ सर्वमान्य आधारभूत सिद्धांतों के अनुरूप आवश्यक कदम उठाने पड़ेंगे। प्रदूषण नियंत्रण की समस्याएं तीन स्तरीय हैं—विश्व स्तरीय, राष्ट्र स्तरीय तथा स्थानीय। ओजोन परत छिद्रण, हरितालय प्रभाव, वायु प्रदूषण, मानसिक प्रदूषण आदि राष्ट्रीय समस्याएं हैं। विश्व स्तरीय परमाणु बम का परीक्षण रोकने के लिए प्रयास होने चाहिएं। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, मानसिक प्रदूषण आदि राष्ट्र-स्तरीय समस्याएं हैं। इनके नियंत्रण के लिए राष्ट्र-स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिएं। जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, मानसिक प्रदूषण आदि स्थानीय समस्याएं हैं। इसी दिशा में कुछ मूलभूत विचार सिद्धांत स्वरूप में रखे गए हैं, जिनका कार्यान्वयन प्रदूषण नियंत्रण के लिए किया जाना चाहिए।

(क) लागत-लाभ सिद्धांत—न्यूनतम लागत और अधिकतम लाभ, प्रबंधन का लक्ष्य होता है। इसलिए मानव समुदाय को न्यूनतम स्वास्थ्य स्तर बरकरार रखते हुए लागत-लाभ स्थिति का विश्लेषण कर प्रदूषण-नियंत्रण की दिशा में समुचित निर्णय लेना चाहिए। यदि

लागत और लाभ की समतुल्यता पर मानव के अपेक्षित स्वास्थ्य-स्तर को बरकरार रखा जाए तो इस सिद्धांत का पालन करना मानवोचित होगा।

(ख) प्रदूषण-मानक सिद्धांत–इस सिद्धांत की अवधारणा है कि विभिन्न उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्टों के प्रदूषण को मानवानुकूल बनाकर उन्हें बाहर नदी या वायुमंडल में छोड़ा जाए। इस सिद्धांत के अंतर्गत 'शून्य प्रदूषण' की अवधारणा नहीं है, बल्कि 'अनुकूल वातावरण' (जल + वायु + मृदा) की मौलिकता है। यह एक व्यावहारिक एवं माननीय सिद्धांत है।

(ग) प्रदूषण-दंड सिद्धांत–प्रदूषण नियंत्रण परिषद् जैसी शासकीय संस्था बनाकर वैधानिक दंड के प्रावधान द्वारा प्रदूषण नियंत्रण की दिशा में पहल की जानी चाहिए। इस दिशा में कुछ अधिनियम भी हैं, जिनके अंतर्गत प्रदूषण के लिए दंड दिया जा सकता है। जल (प्रदूषण बचाव एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 तथा उपकर अधिनियम 1977, वायु (प्रदूषण बचाव एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 तथा नियम 1982, खान एवं खनिज संपत्ति (विनियम एवं विकास) अधिनियम, 1947, वन संरक्षण अधिनियम 1980, भू-क्षरण अधिनियम 1955, वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम आदि इसी सिद्धांत का प्रतिफलन हैं।

(घ) अध्यात्म एवं नैतिक दृष्टिकोण सिद्धांत–अध्यात्म का मूल दर्शन है 'सर्वे भवंतु सुखिनः', 'सर्वे संतु निरामया', 'सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्'। इसी मूल दर्शन पर पूरी नैतिक शिक्षा परिभाषित है। व्यक्ति को सुख भोगने का अधिकार तो है, लेकिन दूसरे को बिना कष्ट दिए। आज विलासी युग में व्यक्ति एवं समाज ऐश्वर्यपूर्ण जीवन भोगना चाहता है, लेकिन इसकी परवाह उसे नहीं रहती है कि इसका दुष्परिणाम समाज के अन्य लोगों को तथा स्वयं को भुगतना पड़ेगा, इसलिए नैतिक दृष्टिकोण स्थापित करने में प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक समुदाय, प्रत्येक राजनीतिज्ञ एवं प्रत्येक इकाई को संकल्पबद्ध होना पड़ेगा। पर्यावरण अनुकूलन के लिए समग्र दर्शन के सिद्धांत को महत्व दिया जाना चाहिए। इसी सिद्धांत को डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने शब्दों में इस प्रकार कहा है, 'भौतिक सुख पाने के लिए आजकल भीतरी चरित्र की बलि चढ़ा दी गई है...असली शिक्षा वह है, जो संपूर्ण मानव तैयार करे। ऐसी शिक्षा की जड़ें भारत की पुरानी परिपाटी में हैं।'

(ङ) जनसंख्या नियंत्रण का सिद्धांत–यह सर्वविदित है कि जनसंख्या विस्फोट पारिस्थितिकीय असंतुलन का सबसे बड़ा कारक है। इसलिए जनसंख्या नियंत्रण कर प्रदूषण-नियंत्रण का प्रबंधन किया जाना चाहिए।

उपसंहार

उपर्युक्त चर्चा से यह बात साफतौर पर सामने आई कि उपभोक्तावादी व्यवस्था, चकाचौंध में जीने की चाहत, प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन, पर्यावरण एवं प्रदूषण-नियंत्रण के प्रति उदासीनता, प्रदूषण-नियंत्रण के प्रति अप्रतिबद्धता, आध्यात्मिक दर्शन एवं नैतिक शिक्षा के प्रति लापरवाही, पर्यावरण के प्रति अबोधता, कचरा-निस्तारण में लापरवाही इत्यादि बातें 'पर्यावरण-अनुकूलन' की दिशा में समुचित विचार न करने के लिए उकसाती हैं। यद्यपि 'पर्यावरण अनुकूलन' की दिशा में नित नयी-नयी विचारधाराएं प्रवाहित हो रही हैं, फिर भी उसमें तीव्रता लाने के लिए दृढ़संकल्प होना पड़ेगा।

पर्यावरण : वैश्विक एवं स्थानीय परिप्रेक्ष्य में

वीरभद्र मिश्र

पिछली शताब्दियों में मनुष्य का भौतिकता से संबंध उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इस अवधि में मनुष्य ने भौतिक शक्तियों का क्रमशः विकास किया। स्थूल भौतिक ज्ञान का विकास किया और इस ज्ञान एवं शक्ति का उपयोग प्रकृति पर विजय प्राप्त करने एवं भौतिक जीवन के लिए अधिक सुख-साधन इकट्ठे करने के लिए किया। मनुष्य ने अपने इस लक्ष्य की पूर्ति में बहुत सफलता हासिल की। इंद्रियों की स्थूल शक्ति एवं उनके भोग्य पदार्थों की प्राप्ति में आशातीत सफलताएं मिलीं, लेकिन इस अप्रत्याशित शक्ति एवं सुख-सुविधा प्राप्ति के क्रम में मनुष्य ने अपनी जीवन-धात्री पृथ्वी माता एवं प्रकृति के ईश्वर प्रदत्त साधनों का इतना निर्मम दोहन किया है कि आज पृथ्वी एवं प्रकृति विध्वंस के कगार पर आ गई हैं। आज मनुष्य की भौतिक शक्तियां एवं सुख भोग की भूख जैसे कुंभकरण के रूप में संसार में विचरण करने लगी है। पृथ्वी एवं प्रकृति इनके आहार बन गए हैं। ऐसा लगता है कि कुंभकरण रूपी इन दानवों से 'विश्व बेगि सब चौपट होई' की घटना चरितार्थ हो रही है।

विज्ञान के उत्सर्ग के चलते आज हम अन्य ग्रहों पर जाने लगे हैं। आज अग्रिम पंक्ति के वैज्ञानिक दिक् एवं काल (टाइम एवं स्पेस) रहस्य-भेदन में लगे हैं। विज्ञान ने आज असंभव को संभव कर दिखाया है, लेकिन आज भी वह मनुष्य की पीड़ा, रोग एवं गरीबी नहीं दूर कर सका है। मात्र विज्ञान के सहारे किए जाने वाले विकास के चलते आज संसार का जल एवं वायु प्रदूषित होता जा रहा है। पृथ्वी की हरियाली खत्म होती जा रही है। बाढ़, तूफान, एवं भयंकर ताप से पृथ्वी तप्त होती जा रही है। यदि हमने इन भयंकर परिस्थितियों की तरफ ध्यान नहीं दिया तो संसार में मनुष्य जाति का जीवित रहना संभव नहीं हो पाएगा। विनाश हमारा दरवाजा खटखटा रहा है, पृथ्वी के पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता जा रहा है।

आज पर्यावरण की समस्याओं पर हमारे जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संपादित हो रही विकास योजनाओं पर गंभीरता से विचार करने पर लगता है कि हम पर्यावरण संरक्षण एवं विकास का सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। हम पर्यावरण संरक्षण के साथ देश का ठोस विकास भी कर सकते हैं। हम मजदूर, पर्यावरण, व्यापार एवं विकास का तारतम्य स्थापित करने की दिशा में कार्य करके भविष्य का सृजन कर सकते हैं। आज ज्ञान एक बहुत बड़ी संपदा (रिसोर्स) है। इस संपदा का भरपूर उपयोग कर हम

पर्यावरण-संरक्षण एवं विकास का सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। सिंगापुर एक ऐसा देश है, जहां प्राकृतिक संसाधनों के पूर्ण अभाव में भी देश ज्ञान संपदा का भरपूर उपयोग कर समृद्ध है।

विश्व-पर्यावरण की समस्या का केंद्र-बिंदु नगर है। पर्यावरण की प्रायः सारी समस्याएं आज नगरीय विकास से जुड़ी हैं। नगरों के बढ़ते कदम पूरी पृथ्वी पर दीख पड़ते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट (1999) के अनुसार सन् 1960 में संसार की एक-तिहाई आबादी शहरों में रहती थी। 1999 में 47 प्रतिशत लोग शहरों में रहते थे। सन् 2030 में 61 प्रतिशत लोगों के शहरों में रहने की संभावना है। शहर एवं गांव दोनों से संबंध रखने वाले समुदाय की जनसंख्या बढ़ती जा रही है और यही कारण है कि गांवों पर शहर की छाप दिनोंदिन गहराती जा रही है। अतः शहरों पर ध्यान देना और इनकी समस्याओं का समाधान करना पर्यावरण संरक्षण का एक बहुत कारगर कार्यक्रम हो सकता है। नगरों का आकार-प्रकार बढ़ता जा रहा है। इन नगरों की समस्याएं मूलतः पर्यावरण की समस्याएं हैं। नगरों में स्वच्छ जल एवं स्वच्छ वायु सुलभ कराना, खुले स्थान सुलभ कराना और पर्यावरण की दृष्टि से सुखद एवं सक्षम यातायात सुलभ कराना आज पर्यावरण की बड़ी चुनौतियां हैं। हमें इन चुनौतियों का सामना करने के लिए दीर्घकालीन प्रयास करने होंगे। हमारे देश की पर्यावरणीय समस्याएं मूल रूप से दो कारणों से हैं। प्रथम विकास की प्रक्रिया से ऋणात्मक प्रभाव के कारण और दूसरी जनसंख्या, गरीबी, अशिक्षा एवं पिछड़ेपन के कारण। वर्तमान में जिन समस्याओं का सामना भारत को करना पड़ रहा है, उनमें निम्न हैं—

1. जनसंख्या वृद्धि के चलते जीवन-यापन के साधनों पर पड़ रहे अधिभार के कारण विकास के धनात्मक प्रभाव का निष्प्रभावी हो जाना।

2. बढ़ती हुई पशु संख्या के कारण घास के मैदानों एवं चारागाहों के क्षेत्र का कम होना।

3. 3290 लाख हेक्टेयर भूमि में से 1750 लाख हेक्टेयर भूमि को विशेष उपचार की आवश्यकता है, ताकि उससे होने वाले लाभ एवं आमदनी को बढ़ाया जा सके।

4. बढ़ता हुआ भू-अवकरण—

(क) वायु एवं जल द्वारा (1590 लाख हेक्टेयर)

(ख) लवणता एवं क्षारता द्वारा (80 लाख हेक्टेयर)

(ग) नदियों द्वारा (70 लाख हेक्टेयर)

5. वनक्षेत्र में कमी (47500 हेक्टेयर प्रतिवर्ष)। इसके मुख्य कारण—पशुओं का जंगलों में चरना, लकड़ी के लिए पेड़ों की अंधाधुंध कटाई, वनों का अतिक्रमण एवं अन्य क्रियाकलाप आदि।

6. कृषि क्षेत्र में वृद्धि एवं उनका स्थानांतरण सड़कों, मकानों, नहरों एवं विद्युत संयंत्रों का निर्माण।

7. पशु, पौधों एवं जीवाणुओं की प्रजातियों की संख्या में कमी (15000 पशुओं एवं पौधों की प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा विद्यमान है)।

8. सजल क्षेत्रों का प्रदूषण एवं उनमें मिट्टी जमा होने की गति में वृद्धि।

9. रसायनों एवं समुद्रीय जल द्वारा भूगर्भीय जल का प्रदूषण।

10. समुद्रतटीय क्षेत्रों में निर्माण के चलते बढ़ता प्रदूषण।

11. समुद्रतटीय वनस्पतियों में कमी।

12. वन के परितंत्र का अवकरण।

13. द्वीपों के परितंत्र का विनाश।

14. नगरों में बढ़ता प्रदूषण एवं स्वास्थ्य सुविधाओं में कमी।

15. घातक अवशिष्टों एवं जैवीय प्रक्रिया से विघटित न हो सकने वाले अवशिष्टों का निस्तारण।

16. नदियों के प्रदूषण एवं उनमें मिट्टी जमा होने की गति में वृद्धि।

17. नगर क्षेत्रों के समीप उद्योगों एवं विकास योजनाओं की स्थापना द्वारा प्रदूषण एवं भीड़-भाड़ में वृद्धि।

18. ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों एवं नगरों की तरफ प्रव्रजन प्रमुख हैं। इनके निराकरण हेतु सुविचारित दीर्घकालीन नीति अपनाने की आवश्यकता है।

काशी और गंगा

पर्यावरण के सर्वांगीण स्वरूप का ध्यान रखना हमारा दायित्व है, परंतु वैश्विक रूप से सोचते हुए भी स्थानीय पर्यावरण की समस्याओं के समाधान में प्रवृत्त होना हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है।

काशी में देवनदी गंगा का लोकोत्तर महत्व है। यहां गंगा और गंगा की मिट्टी कुछ और ही अलौकिकता धारण कर लेती है। असी संगम से वरुणा संगम तक सात कि.मी. में फैली घाटों की शृंखला पर प्रतिदिन लगभग 60 हजार नर-नारी श्रद्धापूर्वक स्नान करते हैं, जो संभवतः संसार के किसी अन्य नदी तट पर देखने को नहीं मिलेगा। काशी का वह दृश्य अद्‌भुत है। इसी स्वरूप ने कला, संस्कृति एवं परंपरा को जन्म दिया है। इसका बने रहना एवं इसमें विश्वास रखकर मज्जन-पान करने वालों को स्वस्थ प्रसन्न रखना हम सबका दायित्व है।

गंगा कार्य-योजना के प्रथम चरण में इस दायित्व का निर्वाह हो सकता था, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। असी-वरुणा के बीच स्थित कई नाले आज भी गंगा में मल-जल गिरा रहे हैं। इस क्षेत्र में गंगा पर तैरने वाले वस्तुओं का वर्णन करने से मन बहुत खराब हो जाता है। इस देवभूमि से निकलती गंगा का दर्शन करने से हमें सुख एवं शांति का अनुभव हो, यह लक्ष्य सर्वोपरि है। आज के भौतिकवादी युग में इन भावनात्मक बातों का कितना असर पड़ेगा, यह तो हम नहीं जानते, लेकिन अभी भी पर्याप्त संख्या में ऐसे लोग हैं, जिनकी भावनाओं का यह सत्य निरूपण है कि वे गंगा के साथ जिएंगे तथा गंगा के साथ मरेंगे। कम-से-कम इन प्राणियों की रक्षा के लिए गंगा को साफ करना आवश्यक है। ये लोग जैविक ऑक्सीजन मांग की बात भी नहीं सुनेंगे। पक्षियों एवं जानवरों की नस्ल बचाने में लगे पर्यावरणविदों को इन प्राणियों की रक्षा के लिए, उनकी भावनाओं की रक्षा के लिए, गंगा को साफ रखना चाहिए। वैज्ञानिकों की भाषा में मुझे यह कहना पड़ रहा है कि असी-वरुणा के बीच गंगा जल का बी.ओ.डी. तीन मि.ग्रा. प्रति लीटर से अधिक है। कुछ

स्थानों पर तो 10-15 मि.ग्रा. प्रति लीटर तक है। पेट की अनेक एवं जानलेवा बीमारियों को फैलाने वाले जीवाणुओं में फीकल कोलीफार्म बहुत खतरनाक है। असी-वरुणा के बीच ये जीवाणु 70 हजार से 1 लाख की संख्या में, जल के प्रत्येक 100 घन से.मी. के नमूने में पाए जाते हैं। गंगा कार्य योजना में इन्हें कम करने का कोई उपाय नहीं किया गया। यह कितनी विडंबना है कि यह सब नालों के अवजल गंगा में गिरने से हो रहा है। असी से पहले 6 कि.मी. दूर गंगाजल का बी.डी.ओ. एक मि.ग्रा. प्रति लीटर एवं फीकल कोलीफार्म बैक्टीरिया की संख्या शून्य है। यानी कि वहां का जल अत्यधिक निर्मल है। जाहिर है कि गंगाजल की दुर्दशा मुख्यतः काशी में ही गंगा में गिरने वाले नालों से हो रही है।

गंगा कार्य-योजना के प्रथम चरण की अवधारणा एवं कार्यों की वरीयता में कुछ ऐसी असावधानियां की गई हैं, जिनके चलते वाराणसी नगर की भी स्थिति बिगड़ी है। वर्तमान में वाराणसी नगरनिगम अपने प्रदेश का एकमात्र नगरनिगम है, जिसने अपने नगर एवं देश-विदेश के सहयोग से एक सराहनीय योजना पेश की है। आज हमें प्रतीत हो रहा है कि वाराणसी की तरफ हम सबका ध्यान एवं शक्ति केंद्रित हो और वहां नदी-प्रदूषण रोकने का एक अनुकरणीय कार्य कर दिखाया जाए। पिछले 9 वर्षों से वाराणसी गंगा कार्य-योजना उचित निर्णय एवं प्रोत्साहन की कमी से रुकी पड़ी है। आज भी वाराणसी में पूरे शहर का मल जल अबाध गति से गंगा में गिर रहा है। यदि हम कोटि-कोटि गंगा-काशी प्रेमियों की आकांक्षा पूरी करने का सत्-संकल्प लें तो विश्व के सम्मुख जल संरक्षण, संस्कृति एवं परंपरा संरक्षण का अप्रतिम निर्णय होगा। इस पुनीत कार्य में विश्व हमारी मदद करेगा। हमें अपनी इस प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक संपदा का विचारपूर्वक सेवन करना आवश्यक प्रतीत होता है। किसी भी सिविल सोसायटी में नदी में मल-जल गिराना असहनीय अपराध है। इस संकल्प को साकार करने हेतु हमें कड़े प्रयास करने होंगे, उचित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना होगा। जनता, गैर-सरकारी संस्थाओं एवं निकायों को इस बड़े कार्य में लगाना होगा। यह गुरुतर कार्य मात्र भावनात्मक आवेश से नहीं संपन्न होगा। किसी एक स्थान पर हमें उचित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर नदी में मल-जल गिरना बंद करके, देश के समक्ष एक उदाहरण पेश करना होगा, जिससे जनता उत्साहित हो, प्रेरणा ले।

लखनऊ (उ.प्र.)

पर्यावरण और मानव कल्याण

डॉ. शारदा प्रसाद

मैं पर्यावरण पर चर्चा करने से पहले प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंद पंत की पंक्तियां उद्धृत करना चाहूंगी, जो आज के संदर्भ में बिल्कुल फिट बैठती है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बालेवेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन
भूल अभी से इस जग को।

—सुमित्रानंदन पंत

हम आज प्रकृति से ज्यों-ज्यों दूर होते जा रहे हैं, अपने लिए मुसीबतें खड़ी करते जा रहे हैं। आज हम प्रगति की राह के राही हैं और प्रगति करते-करते इस मुकाम पर आ पहुंचे हैं, जहां 'द्रुमों की मृदु छाया और प्रकृति से माया' तोड़ चुके हैं। अपने विकास के लिए हम लगातार प्रकृति का दोहन करते चले जा रहे हैं, जो हमारे लिए ही विनाशकारी साबित हो रहा है। हम अगर प्रकृति के साथ इसी प्रकार छेड़छाड़ करते रहेंगे तो वह भी हमसे प्रतिशोध लेगी ही।

सौर परिवार में केवल पृथ्वी पर ही पौधों और प्राणियों के विकास के लिए अनुकूल पर्यावरण उपलब्ध है, इसीलिए इसे 'वसुंधरा' कहा गया है। पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रकृति का श्रेष्ठ वरदहस्त है। भारत में पर्यावरण के प्रति जागरूकता आदिकाल से रही है, यही कारण है कि यहां पृथ्वी या धरातल को मां; पेड़ों को देवता; जीवों को ईश्वर का अंश एवं जल, वायु और मौसम को भी देवता माना गया है। अब हम वेदों पर नजर डाले तो यज्ञ के महत्व का पता चलता है, जिसमें सभी देवों का आह्वान किया जाता है ताकि वे प्रसन्न रहें और पर्यावरण मानव के अनुकूल रहे तथा मानव-जीवन स्वस्थ, सुखी और समृद्ध रहे। मानव आचरण और अनुभूति से जोड़ने के लिए पर्यावरण को धर्म से जोड़कर देखा गया है। प्राचीनकाल में धर्म ही एकमात्र ऐसा साधन था, जो जन-जन को पर्यावरण के प्रति जागरूक बना सकता था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह प्रक्रिया चलती रही, जिस कारण पर्यावरण संबंधी संकट न्यूनतम थे। अपने पांच हजार वर्ष के सभ्यता काल में पर्यावरण की कोई विकट समस्या नहीं झेलनी पड़ी, जो विगत कुछ सौ वर्षा के तीव्र प्रगतिकाल के दौरान झेलनी पड़ रही है। आज भी गांव का अनपढ़ व्यक्ति पेड़ के प्रति संवेदनशील है, जबकि शहरी आदमी यह संवेदना खो चुका है और कंक्रीट के घने जंगल बनाता जा रहा

है। आधुनिक नगर निर्माण के लिए वनस्पतियों का सफाया आज आवश्यक समझा जा रहा है, जबकि प्राचीन भारत के वास्तुकार 'वाटिका नगर' (Garden City) की मान्यता पर नगर निर्माण कर पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने का प्रयास करते रहे।[1]

आज का युग विज्ञान और तकनीक के विकास का युग है। इस तकनीक ने आर्थिक-सामाजिक प्रगति को नया आयाम दिया है। कृषि, पशुपालन, उत्खनन, परिवहन, उद्योग और सामरिक महत्व के संसाधनों के लिए उच्च तकनीक आवश्यक है। तकनीकी विकास के बल पर आज मानव विकास की जिन ऊंचाइयों को छू रहा है उसकी कल्पना तक कुछ वर्ष पहले नहीं की जा सकती थी। कम्प्यूटर का विकास तकनीक का ऐसा करिश्मा है, जो जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर रहा है, लेकिन विज्ञान और तकनीकी विकास का यह युग एक भयावह दृश्य भी उपस्थित कर रहा है। अधिक ऊर्जा उपभोग से पर्यावरण अवक्रमण जैव-जगत् के लिए संकट बनता जा रहा है। आज परिवहन, उद्योग-धंधों के विकास आदि के कारण ध्वनि-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण जैसी समस्याएं जन-जीवन को संकटमय बना रही हैं। नोबल शांति पुरस्कार प्राप्त कर चुके पर्यावरणविद् डॉ. आर.के. पचौरी का कहना है कि 'अगर आम आदमी भी ऊर्जा की बचत को अपनी आदत में शुमार कर ले तो काफी हद तक धरती का उद्धार हो सकता है। इसका आसान तरीका यह है कि हर इंसान कुछ संकल्प लेकर आज से ही उन पर अमल शुरू करे दे। इस दिशा में दूसरा जरूरी कदम इंडस्ट्रियल सेक्टर को उठाना है, वह है फैक्ट्रियों में कार्बन उत्सर्जन पर लगाम लगाना। हालांकि कुछ बदलने का इरादा जताया है, लेकिन ज्यादातर उद्योग अभी नींद से नहीं जाग पाए हैं। जाहिर है कि आने वाली पीढ़ियों और हमारी पृथ्वी की सेहत के लिए यह अच्छा संकेत नहीं है।'[2]

आज पर्यावरण से उत्पन्न खतरें इतने भयावह होते जा रहे हैं कि विश्व समुदाय इससे चिंतित हो उठा है और पर्यावरण संतुलन के प्रति लोगों को जागरूक करने के उपाय किए जा रहे हैं। आज पर्यावरण संबंधी जो समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं, वे मानव-जनित हैं। अगर हम आज नहीं चेते तो स्थिति कितनी भयावह होगी, यह पी. सुधीर के शब्दों में, 'पिछले सौ वर्षों में वातावरण में तापमान करीब 1 डिग्री से अधिक बढ़ गया है और यह तापमान प्रतिवर्ष तीन प्रतिशत की दर से बढ़ता जा रहा है। अगर तापमान बढ़ने की यही गति जारी रही, तो अगले तीस साल में वातावरण का तापमान 2 डिग्री से भी अधिक बढ़ जाएगा। यह होने से पूर्व ही वातावरण पर विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा। गंगा, यमुना आदि नदियां सूख जाएंगी। वहीं दूसरी ओर तापमान बढ़ने से ग्लेशियर पर जमा बर्फ पिघलकर समुद्र में पहुंचेगा, जिससे समुद्र का जल-स्तर बढ़ेगा और तटीय एवं समुद्र तल से नीचे अवस्थित देश-प्रदेश जलमग्न हो जाएंगे।''[3]

वर्तमान में हम देख रहे हैं कि मौसम का संतुलन गड़बड़ा गया है। हाल के वर्षों में जाड़े का आरंभ देर से हो रहा है और अवधि भी सीमित हो गई है। इसी तरह ग्रीष्म ऋतु में भी इस वर्ष (2009) अप्रैल के महीने में तापमान 45-46 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच गया। तापमान में हुए परिवर्तन के कारण आज सूखा, बाढ़, अतिवृष्टि, चक्रवात इत्यादि समस्याओं से जन-जीवन तबाह हो रहा है। जान-माल की क्षति हो रही है। 22 अप्रैल, 2009 को भारत मौसम विज्ञान केंद्र, रांची द्वारा जारी किए गए आंकड़े दर्शाते हैं कि पिछले दस वर्षों में पहली बार अधिकतम तापमान 42 डिग्री सेल्सियस को छू गया है। 1999 में 30

अप्रैल को रांची का अधिकतम तापमान 42.6 डिग्री सेल्सियस दर्ज किया गया था। 21 अप्रैल, 2009 को जमशेदपुर का तापमान 45.6 डिग्री सेल्सियस दर्ज किया गया। इसी प्रकार तापमान के कारण फसलों का उत्पादन घट जाएगा, जबकि बढ़ती आबादी की क्षुधा-निवारण के लिए अधिक खाद्यान्न की आवश्यकता होगी। वर्तमान में भारत की खाद्यान्न उत्पादकता चीन से आधी है। लगातार यह प्रयास किया जा रहा है कि यह उत्पादकता चीन के बराबर की जाए, लेकिन तापमान वृद्धि के कारण यह बढ़ने की बजाय घटती ही जाएगी। पी. सुधीर की माने तो तापमान बढ़ने से बिना मौसम बरसात लगभग हर भाग में होगी। बिन मौसम बरसात के साथ पानी की अधिकता हो जाएगी, सूखा भी भयंकर बढ़ेगा। मौसम में विनाशकारी परिवर्तन होगा। नदियों में विनाशकारी बाढ़ आएगी। यदि ग्लोबल वार्मिंग की समस्या पर नियंत्रण अगले 10 साल में नहीं लाया गया तो वर्तमान पीढ़ी अपने जीवन काल में ही अपनी विनाशलीला स्वयं देखेगी। जलवायु परिवर्तन के विषय में डॉ. आर.के. पचौरी कहते हैं, "यह साबित हो चुका है कि मानवीय गतिविधियों के कारण ही आज जलवायु परिवर्तन की समस्या पैदा हुई है। इतिहास पर नजर डालें तो साफ हो जाता है कि माया सभ्यता, सिंधु घाटी और मेसोपोटामिया जैसी सभ्यताओं के लुप्त होने के पीछे भी ऐसे ही कारण रहे हैं। ताजा उदाहरण देखना चाहें तो दक्षिण-पूर्व एशिया के खमेर साम्राज्य का जिक्र किया जा सकता है। इसलिए जलवायु परिवर्तन मनुष्यजनित है तथा मानव ही अपना व्यवहार बदलकर इस खतरे को कम कर सकता है।"

मौसमविदों का कहना है कि समुद्र और जमीन लगातार गर्म होते जा रहे हैं। समुद्री जल के गर्म होने से लहरों का तूफान उठ रहा है और बाढ़ जैसी विभीषिका देखने का मिल रही है। अभी हाल में आए 'आयला' से अधिकारिक तौर पर सवा सौ जानें गई हैं और लाखों लोग बेघर हो गए। लाखों पेड़ तूफान से धराशायी हो गए। पर्यावरण में पेड़ों के महत्व से सभी वाकिफ हैं। वैसे भी बढ़ती जनसंख्या के कारण लगातार पेड़ों की कटाई हो रही है। वैसे तो लाखों पेड़ों का नष्ट हो जाना चिंताजनक है। सन् 1995 के बाद लगातार चक्रवात का सिलसिला चल पड़ा है। विश्व भर में चक्रवातों की बारंबारता में वृद्धि हुई है। अमेरिका में वैज्ञानिकों का मानना है कि अगर चक्रवाती तूफान का बढ़ना इसी तरह जारी रहा तो वर्षा का चक्र गड़बड़ा जाएगा, जिस कारण सूखा और बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होगी। इन सबके मूल में हैं, पर्यावरण की उपेक्षा।

विदेशों में पर्यावरण को लेकर योजनाबद्ध तरीके से इसके निदान के लिए नीतियां बनाई जा रही हैं, कार्यक्रम तय हो रहे हैं और ग्लोबल सेमिनार हो रहे हैं। लेकिन भारत में ऐसी गंभीरता दिख नहीं रही है। पर्यावरण को सबसे ज्यादा नुकसान कार्बन डाईऑक्साइड से होता है। कार्बन डाईऑक्साइड का संतुलन पेड़ों से ही बनता है और हम अंधाधुंध पेड़ों की कटाई करते जा रहे हैं। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक देश में वनाच्छादित दायरा कुल भूमि का 19.27 प्रतिशत है। यह कम-से-कम एक-तिहाई हो तो सामान्य स्थिति मानी जाती है। जिन वनों पर देश की लगभग 95 करोड़ मानव और 45 करोड़ पशु आबादी निर्भर हैं, हम लगातार उनका सफाया करते जा रहे हैं। सरकारी प्रतिबंध के बावजूद गैर-कानूनी तरीके से वनों की कटाई हो रही है। वन-संरक्षण और 'चिपको' जैसे आंदोलन चलाकर नये पौधों को लगाएं और उनका संरक्षण करें तो कुछ हद तक हम सफलता पा सकते हैं।

पर्यावरण में कार्बन डाईऑक्साइड बढ़ाने वाले कारकों में मुख्य रूप से सड़कों पर दौड़ने वाले वाहन, फैक्ट्रियों की बढ़ती तादाद, एयरकंडीशनर आदि है। बिजली उत्पादन में कोयले का इस्तेमाल होता है और इनसे निकलने वाली गैस मौसम को प्रभावित करती है। हमें ऊर्जा की बचत की आदत डालनी होगी। बिजली उत्पादन में कोयले का इस्तेमाल होता है, हमें इस तकनीक में परिवर्तन लाकर वैकल्पिक व्यवस्था करनी होगी। कम कोयले से ज्यादा बिजली उत्पादन करने से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम होगा। विकास कार्यक्रमों की योजना बनाते समय तथा बहुमंजिली इमारतों को बनाते समय हरीतिमा यानी पेड़-पौधों और वर्षा जल-संरक्षण की व्यवस्था पर बल देना होगा।

आज विश्व के अनेक औद्योगिक विकसित देश अपने प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण आरंभ कर चुके हैं। विकसित देश अपने संसाधनों का संरक्षण कर अन्य विकासशील देशों से संसाधनों का आयात कर रहे हैं। पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका इस दिशा में अग्रणी देश हैं। बीसवीं शताब्दी जहां एक ओर आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी और वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए गौरवांवित रही, वहीं अनेक पर्यावरणीय समस्याओं के कारण संकट की शताब्दी भी बन गई। इस संकट का प्रमुख कारण मानव-प्रकृति का बिगड़ता संतुलन है। अतः यह आवश्यक है कि पर्यावरण के अवनयन के प्रमुख कारकों को समझा जाए और इनके संरक्षण के उपाय किए जाएं तथा विकास के रथ को गतिमान रखने के लिए वैकल्पिक उपायों की खोज की जाए। आज पर्यावरण-अवनयन से उपजे भय के कारण समस्त विश्व उद्वेलित है। वर्तमान समय में विश्व समुदाय में जो भय देखने को मिल रहा है, वह आज की भयावह स्थिति का आईना दिखलाता नजर आता है। हाल के वर्षों में तापमान असंतुलन, बाढ़, सूखा, हिमपात, आंधी, बवंडर की वृद्धि के लिए वायुमंडल की गुणवत्ता का ह्रास प्रमुख कारण बताया जा रहा है।

उपलब्धियों के साथ संलग्न पर्यावरणीय संकट संपूर्ण मानवता के लिए प्रश्नचिह्न बनता जा रहा है। यदि यही ढंग रहा तो पृथ्वी जीवनविहीन हो सकती है। ओजोन गैस के आवरण को जहरीली गैस से क्षति इसका एक उदाहरण है। मौसम और जलवायु के स्वभाव में इतना परिवर्तन आ सकता है कि बाढ़ और सूखे के प्रकोप से जन-धन की अपार क्षति हो सकती है। अतः आवश्यक है कि पर्यावरण की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए वैकल्पिक व्यवस्था के उपाय किए जाएं। हर व्यक्ति अगर जागरूक हो जाए और संकल्प कर ले कि कम-से-कम ऊर्जा खपत करेगा, पर्यावरण को सुंदर और संतुलित बनाने में अपना योगदान देगा तो इस खतरे को कुछ तो कम किया ही जा सकता है, क्योंकि मानवीय गतिविधियां जलवायु को प्रभावित कर रही हैं।

संदर्भ

1. पर्यावरण और पारिस्थितिकी, डॉ. बी.पी. राव और डॉ. वी.के. श्रीवास्तव, पृ. 14
2. हिंदुस्तान, 5 जून, 2009
3. हिंदुस्तान, पी. सुधीर, 10 जून, 2009

व्याख्याता हिंदी विभाग,
रामगढ़ महाविद्यालय, रामगढ़
पिन-809122 (झारखंड)

नई सदी में प्राकृतिक आपदाएं एवं चुनौतियां

प्रो. एस.के. तिवारी/ डॉ. (प्रो.) ए.के. श्रीवास्तव

मानव के अनेक प्रकार के अस्वस्थ क्रियाकलापों के कारण पर्यावरण के तत्वों एवं प्रकृति के सुसंचालन में बाधा उत्पन्न की जा रही है, परिणामस्वरूप जीवन-चक्र की गुणवत्ता में अंतर आता जा रहा है। प्राकृतिक आपदा का सीधा संबंध, पर्यावरण से है। आपदा जो प्रकृति के कारण हो वह प्राकृतिक आपदा है। प्राकृतिक आपदा आज विश्वव्यापी है। भूकंप, बाढ़, हिमस्खलन, दावानल, तड़ित, चक्रवात, सुनामी लहर, सूखा, हेलस्टॉर्म, लू, हरिकेन, टायफून, आइस ऐज, टोरनेडो, लैला, संक्रामक रोग (स्वाइन फ्लू, प्लेग, हैजा आदि), पर्यावरण असंतुलन आदि प्राकृतिक आपदा से संबंधित हैं। समय-समय पर राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन जागरूकता का कार्य करते रहते हैं। जनवरी, 2011 में चेन्नई में आयोजित राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस में वैज्ञानिकों ने बढ़ते ग्लोबल वार्मिंग पर गहरी चिंता जताई है। आज अधिकांश ग्रीनहाउस गैसें अपने उच्च पैमाने से तीन गुना ज्यादा हो गई हैं। आई.पी.सी.सी. की चौथी मूल्यांकन रिपोर्ट ने एंथ्रोपोजेनिक गैस पर सवालिया निशान खड़ा किया है। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रॉपिकल मीट्रोलॉजी के प्रो. बी.एन. गोस्वामी के अनुसार आज हम पर्यावरण असंतुलन के कारण मानसून की भविष्यवाणी नहीं कर सकते।

थियोफ्रेस्टस, हैकेल, टांसलेन हेगेंट, मॉकहाउस, स्माल, स्क्रोलर, शाइमा नासरी, प्रो. वायजी जोशी, सुरेश प्रसाद, नारलिकर, डॉ. दधिच आदि ने पर्यावरण से जुड़े व उपजी प्राकृतिक आपदा पर अपना-अपना मंतव्य व्यक्त किया है। अप्रत्याशित मौसमी परिवर्तन का धरती पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रकृति का नियामक उपकरण विफल हो गया है। समय से पहले आम के पेड़ों में मंजर, गर्मी में बरसात होना, राजस्थान जैसे शुष्क और कम वर्षा वाले क्षेत्र में कभी-कभी बाढ़ आना, पंजाब व हरियाणा में जहां कम बारिश होती थी, वहां अतिवृष्टि का प्रकोप होना, बर्फीली पहाड़ियों पर कम बर्फ गिरना, लेह में असमय बादल फटना, राजस्थान में ही बीकानेर का तापक्रम -2 डिग्री सेंटीग्रेट, माउंट आबू का -4 डिग्री सेंटीग्रेट, चुरु भी बदहाल (जनवरी माह), गंगानगर हाइवे भी अति प्रभावित। ऐसा लगता है जैसे मरुभूमि न बनकर हिमभूमि हो गया हो, यह सब अपशकुन के संकेत हैं।

हमने देखा कि प्राकृतिक आपदा का सीधा तात्पर्य पर्यावरण से है और पर्यावरण का संबंध जलवायु एवं मौसम से है। जलवायु परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके साथ ही कई प्रतिक्रियाएं जुड़ी हैं। इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑफ क्लाइमेंट चेंज (IPCC) के अनुसार तापमान में बढ़ोतरी के परिणामस्वरूप सन् 2030 तक विश्व में समुद्र के पानी

का स्तर 20 सेमी. तक और अगली सदी के अंत तक 65 सेमी. तक बढ़ जाएगा। नतीजतन 300 प्रशांत प्रवाल द्वीप पूरी तरह से समुद्र में समा जाएंगे और हिंद महासागर तथा कैरेबियन सागर के अनेक द्वीप भी बुरी तरह से तबाह हो सकते हैं। यही नहीं, समुद्र के पानी के सतह की ओर प्रवाह से दुनिया के कई हिस्सों में, भूमि लवण से दूषित हो जाएगी। उपजाऊ भूमि पर खारे पानी के प्रवेश से भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो जाएगी, जानलेवा उष्णकटिबंधीय रोगों का प्रसार होगा।

पूर्वोत्तर भारत भीषण गर्मी की तपिश से छटपटा रहा है। देश के कई भागों में अब दिन का तापमान पचास डिग्री को पार कर रहा है। उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड और पश्चिम बंगाल में 'लू' लगने से मरने वालों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। दरअसल, पिछली शताब्दी में धरती के औसतन तापमान में 1 डिग्री फॉरनेहाइड (0.6 डिग्री सेल्सियस) की वृद्धि ने तापमान में बढ़ोतरी को लेकर किसी तरह की कोई शंका नहीं छोड़ी थी। पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में सर्दियों में बर्फ गिरने का समय डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की तुलना में 10 दिन आगे बढ़ गया है, जबकि बर्फ के पिघलने का समय 9 दिन पहले हो गया है। पृथ्वी की ठंडक और गर्मी के चक्र की एक सामान्य प्रक्रिया है। समशीतोष्ण इलाकों में हिमखंडों की हालत अधिक नाजुक है। वर्तमान में अप्रत्याभित जलवायु परिवर्तन में कुछ मुख्य बिंदु शामिल किए जो निम्न हैं–

- पृथ्वी और सूर्य के बीच ज्यामितीय संबंध,
- सौर विकिरण,
- महासागरों की भूमिका,
- अलनीनों की भूमिका,
- वायुमंडलीय एरोसॉल की उपस्थिति,
- वैश्विक ताप वृद्धि।

साथ ही अप्रत्याशित मौसमी परिवर्तन का धरती पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। जलवायु का संतुलन बिगड़ जाने से सन् 2000 में इंग्लैंड व वेल्स में तीन महीने तक जबरदस्त बारिश हुई। लगातार सूखे के कारण जुलाई, 2000 में ग्रीस के सामोस द्वीप में भयंकर आग लग गई, जिससे 20 प्रतिशत द्वीप तबाह हो गया। 1999 में अपने देश के ओड़िशा राज्य में भयंकर चक्रवात आया जिसने विनाश लीला का तांडव किया।

ऐसा अनुमान है कि 21वीं शताब्दी के अंत तक भारत में वायुमंडल का औसत तापमान 4 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। उत्तरी तथा पश्चिमी भाग में यह परिवर्तन अधिक होगा, गंगा नदी की घाटी के पश्चिमी भाग में वर्षा ऋतु की लंबाई में कमी होगी। दूसरी ओर गोदावरी तथा कृष्णा नदी की घाटियों में वर्षा ऋतु की लंबाई बढ़ जाएगी। इसका परिणाम यह होगा कि देश के कुछ भाग में सूखे का प्रकोप बढ़ेगा तो दूसरे क्षेत्र में बाढ़ की समस्या उत्पन्न हो सकती है। मनुष्यों के साथ-साथ पशु-पक्षी भी ग्लोबल वार्मिंग से अछूते नहीं हैं। कुछ समय पहले लखीमपुर खीरी जनपद में फरवरी माह के अंतिम दिनों में सारस पक्षी बेमौसम स्वयंवर रचा रहे थे। शोध के मुताबिक सारस जुलाई से अक्टूबर माह के बीच तालाबों के किनारे एकत्रित होते हैं। फिर ये जोड़े मीटिंग करते हैं, लेकिन अब इनका जीवन-चक्र भी अस्त-व्यस्त हो गया है।

समय रहते हम अगर इन चुनौतियों को काबू में नहीं कर पाते हैं तो पूरी मानव-जाति के साथ-साथ पर्यावरण का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। अतः हमें समय रहते कारगर नीति बनानी होगी। बच्चों को प्राइमरी स्कूल से ही प्राकृतिक आपदा, आपदा प्रबंधन, पुनर्वास नीति, सतत् जागरुकता एवं संचेतना अभियान के बारे में चित्रों द्वारा जानकारी दी जाए तथा पर्यावरण-मित्र की सार्थकता पर जोर दिया जाए। विद्यालय से विश्वविद्यालय तक प्राकृतिक आपदा को संबद्ध किया जाए। प्रकृति में जल, जंगल और जमीन का अहम् योगदान है। जल की बर्बादी रोकने के लिए छोटे-छोटे स्तर पर प्रयास होना चाहिएं। भूगोलविद् प्रो. वाई.जी. जोशी ने कहा है, 'अंतर्राष्ट्रीय मानक के अनुसार यदि किसी देश में सतही जल की उपलब्धि 1700 घनमीटर से कम हो तो उसे जल की कमी वाला और एक घनमीटर से कम होने पर जल समस्या ग्रस्त की श्रेणी में रखा जाता है। बादल भी मौसम बदलाव को नियंत्रित करते हैं। टेक्सास ए. एंड एम. यूनिवर्सिटी की प्रो. शाइमा नासरी का कहना है कि मध्य-स्तर के बादल आकाश में कम प्रभावी होते हैं, लेकिन मध्य स्तर के बादल वातावरण में हो रहे परिवर्तन को बहुत हद तक प्रभावित करते हैं। इसलिए मध्य-स्तर के बादलों पर काफी रिसर्च की जरूरत है। एक नई सेटेलाइट टेक्नोलॉजी से आशातीत सफलता मिल सकती है।

इस प्रकार प्राकृतिक आपदा में भारत के लिए चुनौती भरा कार्य सामने है। इन चुनौतियों से जूझने के लिए निम्न कदम उठाए जा सकते हैं–

- विद्यालय से विश्वविद्यालय तक कारगर रूप से विषय के रूप में अनिवार्य करना।
- निगरानी एवं बचाव दल को समुचित प्रशिक्षण देना।
- पर्यावरण संबंधी कानून लगभग 200 से अधिक हैं, जिनमें से प्रमुख कानून हैं–
  खान एवं खनिज संपत्ति (विनियम एवं विकास) अधिनियम, 1947; नदी मंडल अधिनियम, 1956; वन्य-जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972; जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1977-78; वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980; वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981; कीटनाशक अधिनियम, 1979; मोटर वाहन अधिनियम, 1938 तथा संशोधन, 1988, फैक्ट्री अधिनियम, 1881 एवं 1984; भारतीय वन अधिनियम, 1927; भू-संरक्षण अधिनियम, 1955; राष्ट्रीय वनस्पति अधिनियम, 1988 आदि। इनका अक्षरशः कठोरता से पालन हो।
- सभी टी.वी., रेडियो चैनलों पर प्राकृतिक आपदा एवं बचाव से संबंधित विज्ञापनों को आवश्यक रूप से दिखाया जाए।
- बच्चों बचपन से ही साहस एवं कठिन वचनबद्धता के प्रति प्रेरित किया जाए।
- इसरो ने (12/01/11/ हितावदा) एक नए ट्रांसमीटर का विकास किया है, जो आपात स्थिति में मछुआरों की मदद करेगा।
- इटालियन कंपनी ने एक सिस्टम बेवी (Webby) का विकास किया है, जो मौसम की जानकारी देने में अद्भुत है।
- हिमालयी पारिस्थितिकी-तंत्र को स्थिर रखना।
- ग्रीन इंडिया प्लान।
- जलवायु, मौसम पर रणनीतिक ज्ञान।

- कृषि का विकास एवं वृक्षारोपण।
- दुनिया के सभी देश, क्वोटो समझौते की शर्तों के अनुसार अपने-अपने यहां CO_2 एवं अन्य हानिकारक गैसों का उत्सर्जन वर्ष 2012 तक 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत के औसत पर लाएं।
- पूर्व चेतावनी प्रणाली का विकास करना।
- आपदा प्रबंधन का विकास करना।
- मौसम विभाग को आम समुदाय से जुड़ने की तकनीक का विकास करना।
- राष्ट्रीय आपदा कोष एवं मिशन को अमलीजामा पहनाना।
- IIFM की तर्ज पर छोटे स्तर पर पर्यावरण एवं जीवन से संबंधित विषय पर जोर दिया जाए।
- आपदा-कीट की व्यवस्था से सुसज्जित रहना।
- सोलर पॉवर का ज्यादा इस्तेमाल किया जाए (छ.ग./ उ.प्र.)।
- ISRO, CSIR, DRDO, NPL, Research Centre, मौसमी केंद्र, आदि में गुणात्मक विकास किया जाए।
- पर्यावरण से जुड़े कानूनों का सख्ती से पालन किया जाए।

इसके अतिरिक्त भारत के मानचित्र पर एक नजर डालने पर ऐसा आभास होता है कि हमारा देश हमेशा प्राकृतिक आपदा के चंगुल में फंसा रहता है। उदाहरण के तौर पर उत्तर भारत में हिमस्खलन, राजस्थान में तूफान, गुजरात में भूकंप, महाराष्ट्र में लैला एवं भूकंप, ओडिशा, तमिलनाडु, केरल, आंध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल में भीषण चक्रवात एवं समुद्री तूफान, तटीय प्रदेश में सुनामी, उत्तर-पूर्व भारत में अतिवृष्टि, बिहार, उत्तर प्रदेश में बाढ़, छत्तीसगढ़ में स्वाइन-फ्लू आदि अपनी-अपनी दस्तक देकर पहचान बना चुके हैं। भारत में सर्वप्रथम आपदा से संबंधित साइक्लोन रिस्क स्कीम लागू की गई है, जो 1496,71 करोड़ रु. की है। इससे उड़ीसा और आंध्र प्रदेश को मुक्ति मिलेगी। इस तरह यह प्रोजेक्ट (NCRMP), 13 तटीय प्रदेशों—आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, गुजरात, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, केरल, दमन दीव, पांडिचेरी, लक्षद्वीप एवं अंडमान निकोबार में भी लागू की जाएगी। यह प्रोजेक्ट चक्रवात की भविष्यवाणी, चेतावनी प्रणाली पर केंद्रित रहेगा, पृथ्वी के अंदर, खदानों का धंसना एवं जहरीली गैसों के प्रकोप से हजारों जानें चली जाती हैं। सन् 2010 के अंतिम माह में अंजना हील्स खदान में जहरीली गैस के प्रकोप से अनेक कुशल कर्मचारी अपनी जान गंवा बैठे।

अंत में यह कहा जा सकता है कि हमें प्राकृतिक आपदा के प्रति काफी सजग रहने की जरूरत है। प्राकृतिक आपदा के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण के प्रयास स्टाकहोम (स्वीडन) 1972 से कोपनहेगेन (डेनमार्क) 2010 तक किए गए अनेक सुझाव शामिल हैं। भारत में बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, असम में बाढ़ का प्रकोप, जम्मू, हिमाचल में हिमस्खलन, राजस्थान में तूफान, गुजरात, महाराष्ट्र में भूकंप एवं समुद्री तूफान, गोवा, केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र में टोरनेडो एवं लैला, ओडिशा, पश्चिम बंगाल में चक्रवात शामिल हैं। विगत समय में दक्षिण भारत में सुनामी, उत्तर भारत में बादल फटना, पश्चिमी भारत में टोरनेडो एवं लैला, पूर्वी भारत में चक्रवात, उत्तर-पूर्व में बाढ़ एवं

अतिवृष्टि ने विनाश के अपने-अपने मंजर दिखा चुके हैं। प्राकृतिक आपदा की सचेतता की राह में मालदीव के राष्ट्राध्यक्ष ने सागर के अंदर, नेपाल के राष्ट्राध्यक्ष ने ग्लेश्यिर पर तथा बिहार के मुख्यमंत्री श्री नितीश कुमार राजगीर की पहाड़ी पर बैठक कर एक अग्रणी भूमिका निभाई है। अतः प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य बनता है कि इस दिशा में कार्य करके एवं ठोस पहल करे। अंत में राष्ट्रकवि दिनकर की निम्न पंक्तियां हैं–

सच है विपत्ति जब आती है,
कायरों को ही दहलाती है,
सूरमा नहीं विचलित होते,
क्षण एक नहीं, धीरज खोते।
विघ्नों को गले लगाते हैं,
कांटों में राह बनाते हैं।

डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय,
करगी रोड, कोटा,
बिलासपुर-495113 (छ.ग.)

प्राकृतिक संसाधन : विकास की सीढ़ी

श्रीमती अंतिमा कौशिक

प्रकृति मनुष्य की सहचरी है। उसके सान्निध्य में रहकर मनुष्य जीवन-यापन तो करता ही है, उससे प्राप्त अनमोल चीजों का उपयोग कर अपने जीवन को विकासमान बनाता है। प्रकृतिजनित संसाधन पर्यावरण के लिए जरूरी होते हैं, उतने ही उनके बचाव और संरक्षण की आवश्यकता है। संसाधन की असमानता आर्थिक जगत् में विशेष महत्व रखती है। संसाधन दो प्रकार के होते हैं–

नव्यकरणीय संसाधन

वे संसाधन होते हैं, जिन्हें उपयोग में आने के पश्चात् पुनःउत्पादित किया जा सकता है। इनके निर्माण में मनुष्य की कोई भूमिका नहीं होती, क्योंकि ये संसाधन प्रकृति द्वारा प्राप्त होते हैं और यह संसाधन मानव-जाति के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। वैज्ञानिक उपयोग से इन्हें दीर्घकालिक या सतत् बनाया जा सकता है। जैसे–वन, कृषि-क्षेत्र, मृदा, जीव-जंतु, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि। ये संसाधन मानव को प्रकृति की तरफ से सहज रूप में प्राप्त होते हैं। सही मायनों में कहा जाए तो यह प्रकृति का एक अनमोल उपहार है। समस्त मानव-जाति के लिए और उन जीव-जंतुओं के लिए, जो इस सृष्टि में जीवन-यापन करते हैं। इनमें से कुछ संसाधन प्राचीन समय से मानव की सेवा करते आ रहे हैं और टिकाऊ भी हैं। जैसे–मिट्टी, वायु, जल। संसाधन एक-दूसरे से कहीं-न-कहीं जुड़े रहते हैं। एक साधन की अनुपस्थिति दूसरे को अधूरा करती है और दूसरे साधन की उपस्थिति एक नया साधन बनाती है, साथ ही दूसरे साधन की पूर्ति करती है। जैसे–हाइड्रोजन (H) और वायु (O_2) (रसायनिक नाम) जल (H_2O) का निर्माण करते हैं। यह तत्व टिकाऊ भी होते हैं और जीवन के लिए सवार्धिक महत्वपूर्ण भी। इनके बिना मानव-जीवन संभव ही नहीं है। यह जीवन का दूसरा नाम है।

संसाधन दो शब्दों से मिलकर बना है–Re + Sources, जिसमें Re का अर्थ 'दीर्घ अवधि' से और Sources का अर्थ 'साधन' से है। अतः ये वे स्रोत हैं, जिनकोउपयोग मानव दीर्घ अवधि तक कर सकता है।

अनव्यकरणीय संसाधन

वे संसाधन होते हैं, जिनका उपयोग करने के पश्चात् वे पुनः उपयोग में नहीं लाए जा सकते। एक बार उपयोग होने के पश्चात् ये संसाधन समाप्त हो जाते हैं और इनका

निर्माण पुनः संभव नहीं है, क्योंकि इन संसाधनों का निर्माण पृथ्वी की भीतरी सतह में करोड़ों वर्षों के बाद होता है। पृथ्वी पर इनकी मात्रा सीमित है और तीव्र गति से उपयोग में आने पर ये संसाधन नष्ट हो सकते हैं। जैसे—पेट्रोलियम, कोयला, लोहा, तांबा आदि। समस्त धात्विक व अधात्विक खनिज इसी श्रेणी में आते हैं। ये संसाधन प्रकृति की गोद में करोड़ों वर्षों तक छिपने के बाद अपना स्वरूप बदलकर प्राप्त होते हैं। जैसे—जली हुई लकड़ी बाद में कोयले का रूप प्राप्त कर लेती है। यह संसाधन समस्त मानव-जाति के लिए अति महत्वपूर्ण है और इनकी महत्ता के साथ इनका उपयोग भी अत्यंत आवश्यक है।

नव्यकरणीय संसाधन जिसके अंतर्गत जल, मृदा, कृषि क्षेत्र, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, वन, वायु, ऊर्जा स्रोत आदि आते हैं तथा जो प्रकृति का उपहार कहे गए हैं और एक बार उपयोग में आने के पश्चात् पुनः उपयोग में आते हैं। पृथ्वी पर समस्त जीवधारियों के अस्तित्व के लिए वायु आवश्यक है। पेड़-पौधे, जीव-जंतु, मनुष्य, जीवाणु, विषाणु, कीड़े-मकौड़े सभी के जीवन के लिए वायु जीवनदायिनी है। वायु में अनेक प्रकार की गैसें—ऑक्सीजन (O_2), नाइट्रोजन (N_2), कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) आदि उपस्थित होती हैं। वायुमंडल में ऑक्सीजन (O_2) गैस का महत्व है, क्योंकि यह समस्त जीव-जंतुओं और मनुष्य में जीने के लिए स्रोत जैसी है। कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) गैस का उपयोग पेड़-पौधे करते हैं। यह सूर्य के प्रकाश में अपनी क्रिया पूर्ण करते हैं और दिन में ऑक्सीजन (O_2) उत्सर्जित कर हमें जीवन प्रदान करते हैं और कार्बन डाईऑक्साइड ग्रहण करते हैं, जिससे मानव जीवन सुरक्षित व पूर्ण होता है। रात के समय पेड़-पौधे कार्बन-डाईऑक्साइड छोड़ते हैं। इसी कारण रात में पेड़ के नीचे सोना हानिकारक होता है। वायु धरातल को गर्म करने, जल-वाष्प व आर्द्रता को प्रवाहित करने तथा विभिन्न प्रकार की मौसमी व जलधायविक घटनाओं को जन्म देने में सहायक है।

जल, पर्यावरण का जीवनदायी तत्व है। मानव जीवन के अस्तित्व के लिए वायु के बाद जल दूसरा नितांत आवश्यक प्राकृतिक तत्व है। इसके अभाव में पृथ्वी पर जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। पृथ्वी पर जल—ठोस, द्रव और वाष्प तीनों रूपों में विद्यमान है। इसका उपयोग मनुष्य के जीवन में अत्यंत आवश्यक है। ऐसे देखा जाए तो पृथ्वी का 70.8 प्रतिशत भाग जल-मंडल एवं मात्र 29.2 प्रतिशत भाग ही स्थल-मंडल है, लेकिन कुल उपलब्ध जल का 97 प्रतिशत महासागरों में खारे जल के रूप में, 2 प्रतिशत स्थायी हिम जल के रूप में व मात्र 1 प्रतिशत जल पृष्ठीय जल, भौम जल और वायुमंडल में आर्द्रता के रूप में उपलब्ध मीठा जल है, जिसे हम उपयोग के योग्य जल की श्रेणी में रखते हैं। इस जल की मांग में असाधारण रूप से वृद्धि हो रही है तथा इसकी आपूर्ति असीमित है। किसी स्थान पर जल की अधिकता है तो किसी स्थान पर जल का अभाव। इसके साथ ही इसके अत्यधिक उपयोग, प्रदूषण प्रबंधन की लापरवाही के कारण उपयोग के अयोग्य होने की भी संभावना बनी रहती है। अतः जल की मांग और आपूर्ति के साथ-साथ जल संसाधनों के स्रोत के बीच में समन्वय रखना भी अनिवार्य है। उपभोग योग्य जल हमें वर्षा से प्राप्त होता है। देश में कुल वार्षिक वर्षा का औसत 117 सेमी. है, जो विश्व के औसत 100 सेमी. से 17 सेमी. अधिक है।

मृदा संसाधन आधारभूत प्राकृतिक संसाधन है। मृदा पर कृषि करके मनुष्य अनाज पैदा करता है। अनेक औद्योगिक कच्चे माल भी भूमि से प्राप्त होते हैं। जैसे—कपास, जूट, गन्ना, रबड़, कहवा, चाय, चावल, गेहूं, दाल, सब्जी आदि का उत्पादन विभिन्न प्रकार की मिट्टी का उपयोग करके किया जाता है। जिस देश की मृदा अनुर्वर होती जाती है, उस देश की अर्थव्यवस्था व संस्कृति को नष्ट होने में अधिक समय नहीं लगता। मिट्टी भूमि के ऊपर पाई जाती है। यह असंगठित पदार्थों की वह ऊपरी परत है, जो मूल चट्टानों व वनस्पति के योग से प्राप्त हुई है। मृदा से संबंधित विज्ञान की शाखा को मृदा विज्ञान कहते हैं। मृदा किसी भी देश की अमूल्य संपदा होती है। UNEP के अनुसार 50 से 70 लाख हेक्टेयर भूमि प्रति वर्ष बंजर हो रही है। भारत में ही कृषि-योग्य भूमि का 60 प्रतिशत तथा अकृषित भूमि का 75 प्रतिशत गुणात्मक ह्रास में परिवर्तित हो रहा है। यद्यपि मृदा नव्यकरणीय संसाधन है, फिर भी हमें इसका बचाव करना चाहिए। भूमि मानव के लिए महत्वपूर्ण संसाधन है। यह निम्न कारणों से मानव के लिए उपयोगी है—

पृथ्वी पर या इसके अंदर उपस्थित प्रत्येक पदार्थ मानव के लिए उपयोगी है। मानव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से रोटी, कपड़ा व मकान के लिए भूमि पर आश्रित होता है। मृदा जो अत्यधिक उपजाऊ होती है और जिससे हर एक खाने योग्य पदार्थ की प्राप्ति संभव है। वह भी भूमि पर आश्रित होती है और यह संसाधन भी नव्यकरणीय संसाधन के अंतर्गत आता है।

सौर ऊर्जा, ऊर्जा का अनंत स्रोत है। सूर्य के पास निरंतर हाइड्रोजन (H), अणु, हीलियम अणु (He) में परिवर्तित होते रहते हैं। इसमें से कुछ द्रव्यमान ऊर्जा में बदल जाते हैं। सामान्यतः 4 हाइड्रोजन (H) (प्रत्येक अणु का द्रव्यमान 1.008) अणु से एक हीलियम अणु (He) (द्रव्यमान 4.003) बनता है, अतः इस परिवर्तन में 0.029 द्रव्यमान ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। सूर्य ऊर्जा से सोलर कुकर, सोलर हीटर, सोलर पॉवर प्लांट, सोलर भट्टी व प्रकाश वोल्टीय सेल (सोलर सेल) का निर्माण किया गया है। पवन ऊर्जा, जिन स्थानों में प्रायः तेज हवा चलती है, वहां वायु-शक्ति का प्रयोग पवन मिलें लगाकर किया जाता है। यहां अब तक 220 मेगावॉट विद्युत उत्पादन की पवन चक्कियां लग चुकी हैं। पवन उत्पादन में लगी दो निजी कंपनियों सुजोल व उनरकोन से 200 से अधिक पवन चक्कियों से उत्पादित विद्युत भी 220 किलोवाट GSS पर डालने को कहा गया है। जैसलमेर पवन ऊर्जा उत्पादन की दृष्टि से आशा से कहीं अधिक कारगर सिद्ध हुआ है।

ऊर्जा के विभिन्न वैकल्पिक स्रोत निम्न हैं—सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा, जलशक्ति ऊर्जा, ज्वार-भाटा, लकड़ी का कोयला, गोबर गैस, बायोगैस, खनिज कोयला, पशुओं एवं कृषि के अपशिष्ट और वन प्रकृति की अनमोल धरोहर हैं। मनुष्य प्राचीनकाल से ही वनों का उपयोग करता आ रहा है और आज भी कर रहा है तथा भविष्य में भी करता रहेगा।

वनों से वातावरण स्वच्छ व सुंदर रहता है। वन जलवायु को सम करते हैं और वर्षा में सहायक होते हैं। वन वायु की गति को रोककर भयानक आंधी से होने वाले नुकसान को कम करते हैं। मिट्टी कटाव में वनों का महत्वपूर्ण योगदान है। वनों द्वारा जल का स्तर उच्च होता है, जिसे कुआं बनाकर सिंचाई की सुविधा प्राप्त होती है। वनों में पेड़ से टूटकर गिरने वाली पत्तियां सड़-गलकर मिट्टी में जीवाश्व की वृद्धि करती है, जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है।

खनिज संसाधन आधुनिक यांत्रिक युग के आधार हैं। औद्योगिक एवं व्यापारिक अर्थव्यवस्था इन्हीं पदार्थों पर निर्भर है। अभी तक खनन विशेषज्ञों की सूची में लगभग 1600 से अधिक खनिज पदार्थ हैं। इनमें से लगभग 200 खनिजों का उत्पादन व्यावसायिक एवं औद्योगिक उपयोग के लिए विश्व के विभिन्न देशों में किया जाता है। कुछ खनिज पदार्थ ऐसे होते हैं, जिनकी युद्ध सामग्री के निर्माण में अत्यधिक आवश्यकता होती है। क्रोमियम (Cr), मैगनीज (Mn), मर्करी (Hg), निकिल (Ni) आदि सामरिक महत्व के खनिज हैं। विश्व में उपलब्ध खनिजों का वितरण बहुत असमान है। कुछ देश अपने निजी स्वार्थ के लिए इन खनिज संसाधनों का दुरुपयोग कर रहे हैं, जिसे आने वाले समय में संपूर्ण मानवता को इनकी कमी प्रभावित करेगी। आज भी समस्त खनिज किसी भी देश के पास नहीं हैं। हर एक देश किसी-न-किसी खनिज के लिए एक-दूसरे पर आश्रित हैं। पृथ्वी पर उपलब्ध समस्त खनिज संसाधन न केवल यत्र-तंत्र बिखरे पड़े हैं, बल्कि इनकी मात्रा भी अत्यधिक सीमित है। इसीलिए इनके दोहन और एकत्रण में भारी खर्च आता है। अतः यह आवश्यक है कि न केवल इनका उपयोग सावधानीपूर्वक किया जाए, बल्कि इनका प्रयोग इस तरह किया जाए, जिससे यह नष्ट होने से बचे रहें।

कोयले की उत्पत्ति लगभग 280 से 350 मिलियन वर्ष पूर्व (परमियन काल) मानी जाती है। वनस्पति जनित पदार्थों से एक जटिल क्रिया के फलस्वरूप कोयला बनता है। इसकी गुणवत्ता के आधार पर इसे 4 भागों में बांटा गया है, जो कार्बन की प्रतिशत मात्रा के आधार पर होती है, पीट 35-39 प्रतिशत, लिग्नाइट 70 प्रतिशत, बिटुमिनस 85 प्रतिशत, एंथ्रासाइट 100 प्रतिशत (लगभग)। कोयले में कार्बन की मात्रा जितनी अधिक होगी, उसकी गुणवत्ता उतनी अधिक होगी।

देश की बढ़ती जनसंख्या के कारण कोयला, पेट्रोल एवं अन्य संसाधन निरंतर घटते जा रहे हैं, ऐसी परिस्थिति में नाभिकीय ऊर्जा, ऊर्जा स्रोत के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है। रेडियोधर्मी पदार्थ की सूक्ष्म मात्रा से बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा और भी ऐसे अन्य संसाधन हैं, जो हमें प्रकृति से प्राप्त होते हैं और उसमें से कुछ संसाधन पुनः प्रयोग में लाए जाते हैं और कुछ संसाधन एक बार प्रयोग में आने पर या तो नष्ट हो जाते हैं या फिर अपना स्वरूप त्याग कर दूसरे स्वरूप को प्राप्त होते हैं। ये संसाधन ही नव्यकरणीय संसाधन और अनव्यकरणीय संसाधन कहे जाते हैं। हमें इन दोनों की उपलब्धता, उपयोगिता और उनके महत्व को समझकर न केवल उनका प्रयोग करना चाहिए, बल्कि पूरी मानव-जाति को एक-दूसरे के हित को समझकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इन संसाधनों के बचाव, संरक्षण और उनके महत्व को उजागर करते हेतु सेमिनार, गोष्ठी और विचार-विमर्श करके जन-जागृति भी लानी चाहिए, इसी में मानव का कल्याण निहित है।

एम.एस-सी. (बायोटेकनोलॉजी)
रिसर्च स्कॉलर,
ई-28, लाजपतनगर, साहिबाबाद,
गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.)

चीन्हे-अनचीन्हे : दुश्मन कणों से लड़ाई

डॉ. दशरथ अग्रवाल

ईश्वर ने जब सृष्टि की रचना की तो इंसान ही उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति थी। उसके लिए उसने मनोरम प्रकृति, वातावरण, वायुमंडल और नीले आकाश से पृथ्वी को सजाया। मनुष्य प्रकृति की गोद में स्वच्छ श्वास लेता हुआ जीवन के सपने को साकार करता रहा। धीरे-धीरे मनुष्यों की संख्या के साथ उनकी आवश्यकताएं भी बढ़ने लगीं। आज इंसान अपनी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किस सीमा तक औद्योगिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के विराट् कृत्रिम आवरण में बंध चुका है, यह कल्पना से परे है। आज से 50 वर्ष पूर्व मृत व्यक्ति को यदि चिकित्सीय चमत्कार से पुनर्जीवित किया जा सके तो आज की दुनिया के स्वरूप को देखकर वह चमत्कृत हो जाएगा कि यह कौन-सी महानगरी है। बटन दबाते ही विश्व में कहीं भी संदेश भेजना या प्राप्त करना (मोबाइल), विश्व के किसी भी स्थान के समाचार चित्र सहित, चलती-फिरती घटनाएं (टेलीविजन), घर बैठे कोई भी कार्यालयीन कार्य के लिए परस्पर संपर्क कर मीटिंग आयोजित करना (टेली-कांफ्रेसिंग), कठिन-से-कठिन बीमारियों का उच्चतम् तकनीक वाले सर्जिकल एवं डिजिटल उपकरणों से त्वरित चिकित्सीय उपचार आदि अकल्पनीय उपलब्धियां हैं। इंटरनेट और लैपटॉप में तो सारे विश्व का ज्ञान समाया हुआ है। अमेरिका आदि देशों में धनाढ्य धन-कुबेरों ने 'द्रव नाइट्रोजन' में अपने मृत शरीर को सुरक्षित रखवाया है कि जब विज्ञान इतनी उन्नति कर सकेगा कि मृत शरीर में प्राण डाल सके तो वे भी पुनः जिंदा हो जाएंगे, परंतु आज के युग की झलक पाकर उनकी क्या दशा होगी, भगवान् ही जाने।

इस प्रकार भगवान् ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति के लिए स्वस्थ वातावरण का भी निर्माण किया, पर हम इंसान स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। हमने अपने चतुर्दिक वायुमंडल को, अपनी उन्नत एवं वैज्ञानिक जीवन-पद्धति के आडंबर में, इतना दूषित कर दिया है कि अब हमें सांस लेना भी दूभर होता जा रहा है। आइए, हम कुछ वायुमंडलीय प्रदूषण में विद्यमान दुश्मन कणों को पहचानने की कोशिश करें।

आज के वायुमंडलीय वातावरण में हमारी सांस के साथ अनेक विषैले तत्व शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। यही तत्व असाध्य रोगों एवं कैंसर के कारण बनते हैं। सांस लेने के लिए हमें शुद्ध वायु (ऑक्सीजन) मिल ही नहीं पाती। हमने अपनी आवश्यकता एवं सुविधा के लिए ऐसे बहुत से कल-कारखानों, उद्योगों एवं वाहनों का निर्माण किया है, जो हमें संपन्नता, सुविधा, ऐशोआराम तो प्रदान करते हैं, बदले में इतनी अधिक मात्रा में कार्बन

डाईऑक्साइड एवं मोनोऑक्साइड, सल्फर डाई-ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है और सांस लेना भी मुश्किल हो जाता है, जो विषैली गैसें हमारे फेफड़ों के अंदर जाती हैं, वे निश्चित ही बहुविध व्याधियों का कारण बनती हैं। प्रतिदिन मनुष्य द्वारा ग्रहण की गई वस्तुओं में 80 प्रतिशत मात्रा वायु की होती है, जो शुद्ध नहीं होती। हम एक दिन में लगभग 22 हजार बार सांस लेते हैं।

21वीं सदी में हम रासायनिक क्रांति ला रहे हैं। इसी का प्रतिफल है कि हमें खाद्य पदार्थों में मिलावट मिल रही है। हवा से लेकर खाने की चीजें मूल रूप में मिलनी मुश्किल हैं। सब्जियां, फल, दूध, मिष्ठान्न सभी वस्तुएं 'सिंथेटिक' मिल रही हैं।

परिवहन के साधनों को इंसान ने अपने आराम एवं सुविधा के लिए आधुनिक रूप दिया है, पर इन वाहनों की बढ़ती संख्या और इनसे निकलने वाली जहरीली गैसें मानव-जीवन पर जो बुरा प्रभाव डाल रही हैं, उसकी सीमा नहीं है।

हमारे वायुमंडल में पृथ्वी के ऊपर जो ओजोन गैस की सुरक्षात्मक कवच है, वह हमें आकाशीय प्रदूषणों एवं घातक पराबैंगनी किरणों से बचाती है। यह प्रकृति-प्रदत्त वरदान है, पर हम मनुष्यगण अपने कर्मों से इसे अभिशाप के रूप में बदल रहे हैं।

कल-कारखानों एवं वाहनों से उत्पन्न अधिक गर्मी एवं विषैली गैसें इस ओजोन कवच को जीर्ण-शीर्ण कर विदीर्ण कर रही हैं। इसके कारण इन ओजोन परत के छिद्रों से आने वाली पराबैंगनी किरणें हमारी त्वचा को नुकसान पहुंचाती हैं और बीमारियां बढ़ाती हैं।

विश्व की प्रगतिशीलता के लिए विद्युत अत्यंत आवश्यक साधन है। कुछ देर भी यदि बिजली न रहे तो हमारे जीवन का चक्र थम जाता है, पर इन्हीं विद्युत उत्पादन गृहों से उत्सर्जित भीषण ऊष्मा एवं विकिरण वातावरण के ताप में वृद्धि करते हैं और 'ग्लोबल वार्मिंग' के कारण बनते हैं। हजार मेगावॉट वाला तापविद्युत गृह प्रति मिनट 15 से 20 टन कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ता है। कोयले के जलने से भी अत्यधिक मात्रा में सल्फर डाईऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। चिमनी से निकलने वाली विषैली गैसों के साथ महीन कण भी हमारे फेफड़ों में जाते हैं। इसी तरह परमाणु बिजलीघरों द्वारा भी आणविक-विखंडन से रेडियोधर्मिता के फलस्वरूप घातक विकिरण किरणें वायुमंडल में फैलती हैं। ये दिखाई नहीं देतीं, पर मानव-स्वास्थ्य एवं वातावरण को प्रदूषित करती हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों में अमेरिका द्वा बरसाए बमों से निःसृत विकिरण आज भी वहां की जनता को अपंग और पंगु बना रहा है।

'प्लास्टिक युग' के नाम से जाना जाने वाले प्राकृतिक जैव पदार्थों एवं धातुओं का स्थान आधुनिक युग में प्लास्टिक ने ले लिया है। ये सुविधाजनक, किफायती और बहु-उपयोगी जरूर होते हैं, पर खराब होने पर इनका शीघ्र क्षरण नहीं होता। लंबी अवधि तक ये अपना अस्तित्व बनाए रखकर वातावरण को प्रदूषित करते हैं। यदि प्लास्टिक के अपशिष्ट को जलाया भी जाए, तो धुएं के रूप में रासायनिक गैसें उत्सर्जित होती हैं। इसके दुष्प्रभाव से चर्मरोग, श्वसन-तंत्र, फेफड़े एवं आंखों अनेक व्याधियां जीव को घेर लेती हैं।

इस प्रकार विकसित होती सभ्यता ने हमारे जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन एवं विकास तो किया है, पर बढ़ते उद्योग, अधुनातम होते वाहन, संचार-प्रणाली एवं ऐशोआराम के साधनों ने हमारे वातावरण को भी किस प्रकार दूषित एवं हानिप्रद किया है, यह अत्यंत विचारणीय समस्या है।

दुश्मन कणों के साथ लड़ाई में हमने ध्वनि एवं प्रकाश प्रदूषण पर अभी तक चर्चा नहीं की है। इन पर भी हमें ध्यान देना आवश्यक है।

वातावरण को ये दोनों तत्व यानी ध्वनि एवं प्रकाश इस तरह प्रभावित करते हैं कि कुछ खास अवसरों को छोड़कर बाकी समय में हम या कुछ लोग ही इनके प्रभावों को महसूस कर पाते हैं। हमारे कर्ण एवं मस्तिष्क को सभी आवाजें अच्छी लगती हैं, ऐसा नहीं है। ध्वनि को ग्रहण करने के बाद उसके प्रभाव से या तो हम Relax होते हैं या Tension में आ जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है संगीत की किसी ताल, लय, स्वर या शब्दों से हमें सुखद अनुभूति होती है और परेशानी की स्थिति में भी हम शांतिपूर्वक सो जाते हैं। कभी-कभी किसी संगीत की ध्वनि या गीत के शब्द ऐसे होते हैं, जो हमें शांति प्रदान करने के बदले गुस्सा दिलाकर उत्तेजित करते हैं। जी करता है कि ध्वनि उत्पादक यंत्र को पटक कर तोड़ दें। कभी हमने सोचा है, ऐसा क्यों होता है? भिन्न-भिन्न मानसिक स्थितियों में ध्वनि के कण हमारे ऊपर कभी शांत, कभी उद्विग्न प्रभाव डालते हैं।

ध्वनि के कण जिस तीव्रता से हमारे कर्ण-प्रदेश में प्रवेश करते हैं, उसे हम जिस मापक से नापते हैं, उसे 'डेसिबल' कहते हैं। साधारण बोल-चाल की भाषा की तीव्रता 30-40 डेसिबल होती है। इससे कुछ अधिक तीव्रता भी किन्हीं खास परिस्थितियों में कर्णप्रिय हो सकती है। जैसे आजकल के लड़के-लड़कियां डिस्को-क्लब में जिस तेज ध्वनि से संगीत का आनंद लेकर घंटों थिरकते हैं, वह सामान्यजन के लिए कष्टदायक होता है। मोटरसाइकिल की आवाज की तीव्रता 70-75 डेसिबल के आस-पास होती है। पटाखों की आवाज को दीपावली या अन्य अवसरों पर हम कुछ सेकिंड ही बर्दाश्त कर पाते हैं, क्योंकि इनकी तीव्रता 95-100 डेसिबल होती हैं। एटम बम के विस्फोट की तीव्रता की चर्चा करें तो हमारे कान के पर्दे हमारा साथ नहीं देंगे। आवाज के तीव्र एवं विध्वंसक कणों के भुक्तभोगी आज भी हिरोशिमा और नागासाकी में मौजूद हैं।

मैंने तीव्र प्रकाश कणों को भी दुश्मन कण आरोपित किया है। कुछ लोगों को लग सकता है कि प्रकाश कैसे हमारा दुश्मन हो गया? प्रकाश हमारा दुश्मन नहीं, बहुत बड़ा दोस्त है। कुछ मिनटों के लिए भी बिजली चली जाती है तो हम तेल के दीये, मोमबत्ती या अन्य कोई साधन उजाला करने के लिए ढूंढते हैं। सोते समय पूर्ण अंधेरा या मद्धिम रोशनी ही पसंद करते हैं। कुछ विशेष समारोहों में हम प्रकाश की तीव्र रंगीनियों का उपयोग करते हैं, पर गाड़ी चलाते समय जब सामने से आंखों में पड़ने वाले हेडलाइट के तीव्र प्रकाश से हम लगभग दृष्टिहीन हो जाते हैं, तब वे तीव्र प्रकाश कण हमें दुश्मन नजर आते हैं। जब बिजली चमकती है तो हमारी आंखें चौंधियां जाती हैं। पढ़ने के लिए भी हमें निश्चित तीव्रता का प्रकाश चाहिए, अन्यथा हमारी आंखें खराब हो जाती हैं। प्रकाश की तीव्रता को 'Lumen' (ल्यूमेन) मापक से नापा जाता है। प्रकाश मापने की एक इकाई और है जिसे 'लक्स' (Lux) कहा जाता है। यह सौंदर्य और सौंदर्य-प्रसाधनों की चमक या निखार को नापने के लिए प्रयुक्त होता है। हम यहां पर एक ऐसे प्रदूषण की चर्चा करना चाहेंगे हैं, जिसे 'प्रकाश प्रदूषण' या 'Night Pollution' कहा जाता है। आधुनिक होते जीवन में नव-सभ्यता में पलती आज की पीढ़ी इसी प्रकाश प्रदूषण को अपना रही है। डिस्को में तीव्र प्रकाश, उसका तीव्र गति से जलना-बुझना, अत्यधिक शोरमय संगीत, युवा पीढ़ी का बेझिझक आपस में लिपटकर थिरकना, ध्वनि और प्रकाश प्रदूषण का सम्मिलित नजारा

है, जिसे किसी भी स्थिति में उचित नहीं ठहराया जा सकता। आजकल शादी, जन्मदिन या अन्य उत्सवों में भी तीव्र प्रकाश मरकरी, हेलोजन, सोडियम लैंपों का बेझिझक उपयोग किया जाता है। इस प्रकाश के तीव कणों से सिर भारी हो जाता है, चिंतन विकृत होता है और मनुष्य बेचैन हो उठता है। प्रकाश प्रदूषण के बारे पर अभी सजगता और चर्चा कम है।

जागरुक और विज्ञानी लोग हमें यह जानकारी देकर डराते रहते हैं कि विश्व के ये भाग, ये देश, ये पहाड़, ये शहर कुछ सालों में डूब जाएंगे, पर इन बातों को हम गंभीरता से नहीं लेते, क्योंकि इसका प्रत्यक्ष अनुभव हम नहीं कर पा रहे हैं। क्या ध्रुवीय प्रदेशों के आर्कटिक और अंटार्कटिक के बर्फ को पिघलते हमने देखा है, और क्या हम इस घटना को देखने की स्थिति में हैं। अज्ञानता किसी सच को झुठला नहीं सकती। 'ग्लोबल वार्मिंग' शब्द बहु प्रचलित है। वाहनों, कल-कारखानों, रासायनों, प्लास्टिक वेस्ट से उत्सर्जित हुई गैसों के कारण वातावरण एवं पृथ्वी-आकाश के बीच का वायुमंडल गर्म होता जा रहा है, जिसके कारण तापक्रम में वृद्धि हो रही है। यही गर्म गैसें हमारी रक्षा-कवच ओजोन-परत में भी छेद कर रही हैं, जिससे सूर्य की पराबैंगनी किरणें हमें नुकसान पहुंचा रही हैं। इन गैसों को ग्रीनहाउस गैसें भी कहते हैं, जिसके कारण वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है, ऋतु-चक्र में भी परिवर्तन हो रहा है। हमारी पथ्वी पर ठंड और वर्षा की अवधि कम हो गई है। गर्मी का समय अधिक लंबा हो रहा है। ग्रीनहाउस गैसों के कारण ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है और समुद्र का जल-स्तर बढ़ता जा रहा है। इसके कारण समुद्री जीव-जंतुओं, मछलियों एवं ध्रुवीय भालुओं की संख्या पर भी असर पड़ रहा है। शोधकर्ताओं की अंतर्राष्ट्रीय टीम के प्रमुख स्टीवन एम्सट्रथ ने बताया कि ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव के कारण विश्व में ध्रुवीय भालुओं की संख्या एक-तिहाई ही बच जाएगी। ध्रुवीय भालुओं का आवास और भोजन इन्हीं ध्रुवीय प्रदेशों में मिलता है।

वैश्विक जलवायु प्रदूषण तो अपनी जगह है ही। यदि हम स्थानीय स्तर पर भी वायवीय, जलीय, ध्वनि एवं प्रकाश प्रदूषण के बारे में जनसाधारण, बुद्धिजीवियों एवं उद्योगपतियों को जागरुक कर सकें तो विश्व कल्याण में हमारा महान् योगदान होगा।

यदि हमें उपर्युक्त प्रदूषकों एवं चीन्हे-अनचीन्हे कणों के प्रहार से अपने को बचाना है तो हमें फिर से प्रकृति का सहारा लेना पड़ेगा। अधिक-से-अधिक प्रकृति आधारित वस्तुओं का अपने जीवन में हम उपयोग करें। हरित-क्रांति अत्यंत आवश्यक है। वृक्षों से अन्य उपयोगी चीजों के अतिरिक्त शुद्ध ऑक्सीजन भी मिलता है। एक पेड़ हमें इतनी जीवनदायिनी वायु देता है, जिसको कृत्रिम रूप से प्राप्त करने के लिए हजारों-लाखों रुपये खर्च करने पड़ते हैं। हमें अधिक-से-अधिक वृक्ष लगाने चाहिएं। प्रदूषण उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का न्यूनतम उपयोग करना चाहिए। आधुनिक बनने और आधुनिकता की दौड़ में शामिल होने के चक्कर में पृथ्वी में प्रदूषण के भार में वृद्धि करने के लिए हमें ईश्वर एवं प्रकृति कभी क्षमा नहीं करेंगे।

बी-17, नेहरूनगर,
बिलासपुर

आधुनिक शिक्षा में पर्यावरण : वर्तमान संदर्भ

सत्यप्रकाश शर्मा

आजादी के बाद देश में शिक्षा-सुधार के लिए विभिन्न आयोगों का गठन किया गया। इन सभी आयोगों ने शिक्षा में सुधार के लिए विभिन्न प्रकार के सुझाव दिए, परंतु पर्यावरण शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया। आज दुनिया के विकसित और विकासशील देशों को तीव्र विकास की रफ्तार ने जन-जीवन को उन्नत बनाया है। किंतु इस विकास के साथ प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया गया है। इस कारण से जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संकट पैदा हो रहा है।

वर्तमान पर्यावरण संकट के लिए विभिन्न कारक उत्तरदायी हैं। जैसे वनों का काटना, अत्यधिक खनन, कीटनाशकों का प्रयोग, परमाणु प्रयोग, अत्यधिक वाहन, औद्योगिक कारखानों का जहरीला धुआं, अपशिष्ट व प्रदूषित पदार्थ, हानिकारक रसायनों का प्रयोग, भूमिगत जल की अधिक निकासी, वन्य-जीवों के शिकार बहित मल आदि के कारण पर्यावरण संकट पैदा हो गया है। यदि दुनिया के विभिन्न देशों ने मिलकर तुरंत इसका उपाय नहीं किया व ध्यान नहीं दिया तो यह पृथ्वी एक मृत्यु का घर बन जाएगी। जीव-जंतु एवं वनस्पतियों की प्रजातियां विलुप्त हो जाएंगी। अभी तक हजारों प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं।

वर्तमान के विभिन्न प्रकार के प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है। बढ़ती जनसंख्या। जनसंख्या की यह वृद्धि प्रति वर्ष औसतन 2 करोड़ व्यक्तियों की होती है। यहां इस पृथ्वी पर इस तीव्र जनसंख्या वृद्धि के सापेक्ष प्राकृतिक संसाधनों का विकास नहीं हो पा रहा है। इसी कारण मानव ने प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ाने में रुचि नहीं दिखाई। की जनसंख्या तथा उपलब्ध संसाधनों के मध्य असंतुलन पैदा होने से पर्यावरण संकट पैदा गया।

मानव व पर्यावरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्राचीनकाल में हमारे देश में मानव-पर्यावरण के मैत्रीपूर्ण संबंधों के कारण प्राकृतिक वातावरण स्वस्थ था। रामायण में विभिन्न अध्यायों के नाम पर्वतों व वनों के नाम से रखे गए। वनों की सुंदरता का बहुत ही मनोहारी वर्णन किया व बताया गया है कि किस प्रकार से नदियों, वनों का मानव के जीवन में महत्व है। नदियों का जल कितना शुद्ध व पवित्र है। नदियों को गंगा माता व यमुना माता आदि की संज्ञा दी गई। इसका कारण नदियों को मां के समान महत्व देना व शुद्ध रखना था। रामायण में पंचवटी का वर्णन आता है। यह पंचवटी पांच विशेष औषधि वाले वृक्ष थे। प्राचीन सभ्यताएं नदी किनारे विकसित हुईं, जैसे मोहनजोदड़ो,

सिंधु घाटी व मेसोपोटिमिया की सभ्यता। प्राचीन भारत में वृक्षों को देवता के रूप में पूज्य मानते थे, जैसे—पीपल, बरगद, आम आदि। इन सभी वृक्षों की पूजा करने का कारण अंधविश्वास नहीं, वरन् इनसे प्राप्त होने वाले लाभ थे। पीपल के वृक्ष के नीचे घी का दीपक जलाते थे, क्योंकि 24 घंटे ऑक्सीजन देता है, जो मानव के लिए प्राणदायिनी गैस है। इस प्रकार के विभिन्न प्रसंग हमारे प्राचीन ग्रंथों में वर्णित हैं। महाकवि कालिदास ने प्राकृतिक वातावरण का बड़ा ही सुंदर एवं मनोहारी वर्णन किया है। इसमें आधुनिक भारत के प्राकृतिक कवि सुमित्रानंदन भी पीछे नहीं हैं, इसका कारण प्राचीनकाल में मनुष्य का प्रकृति प्रेम था।

इस प्राकृतिक असंतुलन के कारण विभिन्न प्रकार की समस्याओं जैसे—गरीबी, कुपोषण, बेरोजगारी, निरक्षरता, रहन-सहन का गिरता स्तर, खाद्यान्न संकट, अस्वच्छता, भयंकर बीमारियां, सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, तलाक, मानसिक तनाव, हिंसा, पारिवारिक विघटन, मूल्यों का पतन आदि का आविर्भाव हुआ है।। इन सभी के लिए प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण असंतुलन जिम्मेदार है।

इस पर्यावरण असंतुलन के कारण विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाएं आ रही हैं। जैसे—सुनामी, भूकंप, बाढ़, वनाग्नि, वन्य-जीवों का विनाश, घातक गैसों का बढ़ना व घातक बीमारियां पैदा होना। भारत में भोपाल गैस घटना एक त्रासदी बन गई थी। इस घटना में घातक गैस के रिसाव के द्वारा 1984 से लेकर आज तक वहां पर रहने वाले लोगों पर घातक प्रभाव पड़ा व उनकी आगे आने वाली पीढ़ी पर जन्म से ही इसका प्रभाव दिखाई दे रहा है। भारत में सुनामी के कारण कई राज्यों में धन-जन की अपार हानि हुई। अभी भूकंप के कारण जो सुनामी आई, उसमें अधिक धन-जन की हानि हुई। जापान देश के फुकुशिमा परमाणु संयंत्र से बड़ी मात्रा में रेडियोधर्मी विकिरण व रेडियोधर्मी पदार्थों का रिसाव होने के कारण सब्जी, फल, जल, वायु सभी प्रदूषित हो गए। ताजा आंकड़ों के अनुसार इस घटना में 28 मार्च, 2011 तक मरने वालों की संख्या लगभग 10489 हो गई व 16600 लोग आज भी लापता हैं। यह घटना प्राकृतिक है, जिसने मानव-जीवन को कई रूप में प्रभावित किया। पूरा देश संकट में पड़ गया और इसके परिणाम आने वाली पीढ़ी को भोगने पड़ेंगे।

आज पर्यावरण की समस्या किसी एक देश की समस्या नहीं, अपितु विश्व की एक प्रमुख समस्या है। इसके कारण ही जलवायु परिवर्तन हो रहा है। इसके लिए कोई एक विकासशील या विकसित देश जिम्मेदार नहीं, बल्कि सभी देश समान रूप से जिम्मेदार हैं। देखा जाए तो पर्यावरण को अधिक नुकसान पहुंचाने में विकसित देशों का अधिक योगदान रहा है। इन विकसित देशों ने विकास की दौड़ में आगे बढ़ने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया। आज विकासशील देश विकसित देशों के कदमों पर चलकर पर्यावरण असंतुलन बढ़ा रहे हैं।

वर्तमान शिक्षा-पुस्तकों में 'पर्यावरण' पर एक या दो अध्याय पढ़कर या पढ़ाने से काम चलने वाला नहीं है। हम विकसित देशों की विकास की झूठी दौड़ में शामिल हो रहे हैं। यह हमारे जीवन के लिए एक अभिशाप बन जाएगी। यह विकास की अंधी दौड़, मानव-जीवन के साथ प्राकृतिक वातावरण के विनाश की दौड़ है। आज की शिक्षा में जरूरत

है कि वर्तमान व आने वाले भविष्य को पर्यावरण संरक्षण के प्रति बालक को जागरूक करने की व खुद जागरूक होने से काम चलेगा। और इसे बताना होगा कि विश्व की सभी नदी का जल कितना साफ था। आज पीने लायक ही नहीं। पहले घातक बीमारियां कम थीं, आज पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा हैं। पर्यावरण के प्रति जागरूक करने व इसके प्रदूषित करने से रोकने के उपायों पर गंभीरता से अपनाने की जरूरत है। समाज के सभी लोगों को इस कार्य के लिए जागरूक करना होगा, साथ ही वैज्ञानिकों, भूगोल वेत्ताओं, पर्यावरणविद्, समाजशास्त्री व राजनीतिज्ञयों, अर्थशास्त्रियों तथा प्रशासक व नीति नियोक्ताओं आदि सभी को इस दिशा में सहयोग करना होगा।

पर्यावरण संरक्षण के लिए व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से कार्य करने, समाज में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने व समाज के लोगों की भागीदारी तय करने की, सेमिनार, प्रतियोगी परीक्षाएं, पोस्टर्स, लेखन कार्यक्रम, नाटकों व रैलियों के माध्यम से लोगों में पर्यावरण के प्रति चेतना पैदा की तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाए जाएं। जो लोग पर्यावरण को नुकसान पहुंचाते हैं, उन्हें दंडित किया जाए व जो लोग पर्यावरण के संरक्षण में सहयोग कर रहे हैं, उन्हें पुरस्कृत किया जाए। नगर-निगम द्वारा उन कॉलोनियों का अधिक विकास किया जाए, जो कॉलोनीवासी अधिक वृक्ष लगाने व पर्यावरण की सुरक्षा पर ध्यान दें रहे हैं। प्रत्येक घर के सामने दो वृक्ष अवश्य लगाए जाएं। हरी-भरी ग्राम पंचायत को पुरस्कार दिया जाए। जो व्यक्ति पर्यावरण में विशेष योगदान दे, उसे राज्य/राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित किया जाए। इसके लिए स्थानीय लोगों की सहभागिता सुनिश्चित की जाए व पर्यावरण के प्रति जन-चेतना पैदा की जाए, तभी पर्यावरण संरक्षण योजनाओं का कार्यन्वयन संभव है। पर्यावरण को सुधारने के लिए औपचारिक चेतना से काम चलने वाला नहीं है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में शैक्षिणक परिवर्तन होने के साथ पर्यावरण समस्याओं के बारे बालक को सम्यक् ज्ञान होना चाहिए। समाज के सभी वर्गों व विश्व के सभी देशों को इस कार्य के प्रति रुचि दिखानी होगी व इस दिशा में सुधारात्मक कदम बढ़ाने होंगे।

इस दुनिया को सुंदर बनाने व भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए हमें आज से ही बच्चों को पर्यावरण की ऐसी शिक्षा देनी होगी कि वे भविष्य में पर्यावरण को अधिक संरक्षित कर सकें, जिससे दुनिया में एक सुखद व स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण हो, सभी वन्य-जीव विचरण करें। जल, वायु शुद्ध हो, प्राकृतिक आपदाएं कम आएं। पर्यावरण संरक्षण की सोच सभी के अंदर विकसित हो। यही सोच हमारी सच्ची जीत होगी तथा एक सुंदर पर्यावरण के साथ सुंदर दुनिया का निर्माण होगा।

संदर्भ

पत्रिकाएं, समाचार-पत्र आदि।

सहा. प्रोफेसर, बी.एड. विभाग
गांधी स्मारक, पी.जी. कॉलेज,
सुरजननगर, जयनगर (मुरादाबाद)

जलवायु परिवर्तन (ग्लोबल वार्मिंग) : एक विश्लेषण

डॉ. वृंदा सेनगुप्ता/ डॉ. अर्चना सेठी

प्रकृति एक ऐसी अनमोल धरोहर है, जिसने हर समय मानव की हर संभव जरूरत का ध्यान रखा एवं मानव हित के लिए अपने संसाधनों का असीमित खजाना खोल दिया। किंतु मानव द्वारा जिस प्रकार से इन प्राकृतिक संसाधनों का अनियमित व अतिरेक दोहन किया जा रहा है, वह चिंतनीय है, जो भविष्य में भयंकर परिणाम के रूप में पुनः मानव व पृथ्वी के अन्य जीवों को उपहार स्वरूप लौटा दिया जाएगा। शायद प्रकृति भी मानव के इस असीमित संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को रोकने के लिए एक संकेत या चेतावनी दे रही है, जो कि पर्यावरण में हुए परिवर्तन के रूप में है, वैसे तो प्रकृति प्रतिपल परिवर्तित हो रही है, किंतु यह परिवर्तन पेड़-पौधों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसे कि पलाश और आम के पेड़ पर असमय पुष्पन होना, सामान्यतः इन पेड़ों पर पुष्पन फरवरी-मार्च माह (बसंत ऋतु) के बाद होता है। किंतु इन्हीं पौधों में यह पुष्पन नवंबर-दिसंबर माह (शरद ऋतु) से ही देखा गया है, जिनको समय-समय पर हमारे द्वारा विषय विशेषज्ञ की हैसियत से कुछ राष्ट्रीय स्तर के समाचार-पत्रों के माध्यम से आम लोगों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की गई है। इन पौधों में पुष्पन के लिए कई कारक जिम्मेदार हो सकते हैं, जैसे बढ़ता तापमान, दिनों की आपेक्षिक लंबाई, घटता जलस्तर, वातावरण में नमी का प्रतिशत घटना तथा आनुवांशिक लक्षण आदि हैं। प्रकृति में हुए इन असमय परिवर्तनों से आज भी सचेत नहीं हुए तो आने वाले समय में पर्यावरण के विनाश की भयावहता को रोका नहीं जा सकता है।

पर्यावरण जैव मंडल का आधार है, लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद से विकास की जो तीव्र-प्रक्रिया अपनाई गई है, उसमें पर्यावरण के आधारभूत नियमों की अवहेलना की गई है, जिसका परिणाम पारिस्थितिक असंतुलन एवं पर्यावरणीय निम्नीकरण के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। ऐसे ही कुछ कारक हमारे सामने उपस्थित हैं, जिन्होंने पर्यावरण को परिवर्तित करने में विशेष योगदान दिया है और सभी जीवों, पेड़-पौधों इत्यादि की दैनिक दिनचर्या एवं रहन-सहन के ढंग को बदल दिया। यह पर्यावरण परिवर्तन के ही लक्षण हैं कि कई जीव-जातियां एवं वनस्पति विलुप्त हो गई हैं और कई विलुप्त होने की कगार पर हैं। मानव जाति यदि अभी भी सचेत नहीं हुई तो इसे भयंकर परिणाम भुगतने होंगे और यह सब वातावरण में परिवर्तन के कारण ही होगा है।

प्रकृति का कण-कण तथा तृण-तृण स्वयं को अनुकूलित का अपना सामंजस्य स्थापित कर केवल स्वयं अपनी ही रक्षा नहीं करता, वरना संपूर्ण जीव-जगत् का वन पोषण कर उनकी भी रक्षा करता है, परंतु औद्योगिक क्रांति के बाद से विकास की जो तीव्र प्रक्रिया अपनाई गई, उसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन एवं पर्यावरणीय निम्नीकरण की स्थिति हमारे समक्ष उपस्थित हो गई। इसके परिणामस्वरूप कहीं तापमान बढ़ रहा है तो कहीं बर्फ पिघल रही है; कहीं भारी वर्षा हो रही है तो कहीं मरुभूमि का निर्माण हो रहा है। जो जीवन या वनस्पति-प्रजातियां स्वयं को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल नहीं बना पाते, वे धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।

तीव्र औद्योगीकरण एवं वाहनों के प्रदूषण के कारण धरती दिन-प्रतिदिन गरमाती जा रही है। इससे फसल-चक्र भी अनियमित हो रहा है तथा कृषि उत्पादकता भी प्रभावित हो रही है।

कुछ साल पहले पर्यावरण कार्यकर्ता प्रो. बांगाख एम मथाई पर्यावरण के प्रति समर्पण को शांति का नोबल पुरस्कार दिया गया। पुरस्कार संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गठित अंतर्राष्ट्रीय समिति और अमेरिका के उपराष्ट्रपति अल गैर को संयुक्त रूप दिया गया। इससे यह स्पष्ट है कि जलवायु परिवर्तन खासकर वैश्विक गर्माहट (ग्लोबल वार्मिंग) में बढ़ोतरी को लेकर विश्व में चिंता बढ़ती ही जा रही है। जलवायु परिवर्तन मानव निर्मित समस्या है, इसलिए दुनिया भर में इसके लिए सामूहिक प्रयास किए जाने बेहद जरूरी हैं। इसमें ग्रीन हाउस गैसों में कटौती और स्वच्छ ऊर्जा के विकल्पों की खोज प्रमुख है।

IPPC के लगभग 3000 वैज्ञानिकों ने कड़ी मेहनत कर विश्वभर में जलवायु परिवर्तन से संबंधित वैज्ञानिक आंकड़ों का संग्रह और मिलान किया। इस रिपोर्ट में यह दर्शाया गया कि किस प्रकार पृथ्वी के तापमान और समुद्र के जल-स्तर में लगातार वृद्धि हो रही है, जिसके दुष्परिणाम अकाल, समुद्री तूफान, आदि के रूप में देखने को मिलेंगे। IPPC को संस्थागत स्तर पर प्रयास करने के लिए पुरस्कृत किया गया। भारत के लिए यह गौरव की बात है कि इस संगठन के अध्यक्ष के रूप में एक भारतीय श्री आर.के. पचौरी जुड़े हुए हैं। श्री पचौरी ने जलवायु परिवर्तन के लिए निम्न कारकों को उत्तरदायी बताया है—

1. औद्योगीकरण (1880) से पूर्व CO_2 की मात्रा 180 पी.पी.एम. थी, जो अब बढ़कर 380 पी.पी.एम. हो गई है।

2. औद्योगीकरण से पूर्व मीथेन की मात्रा 715 पाटर्स पर बिलियन थी, जो वर्तमान में बढ़कर 1734 पी.पी.बी. हो गई है।

3. मीथेन की सांद्रता में वृद्धि के लिए कृषि एवं जीवाश्म ईंधन को उत्तरदायी माना गया है।

4. नाइट्स ऑक्साइड की सांद्रता क्रमशः 270 पी.पी.बी. से बढ़कर 319 पी.पी.बी. हो गई है।

5. समुद्री तापमान में भी वृद्धि हुई है।

6. समुद्र जल में वृद्धि 1961 के मुकाबले 2050 तक 1 मीटर से अधिक हो जाएगी।

7. पिछले 100 वर्षों में अंटार्कटिक तापमान में दो गुनी वृद्धि हुई है, जिससे जहां एक ओर बर्फीले क्षेत्र कम होते जा रहे हैं, वहीं सागरीय तटों के डूबने की संभावना बढ़ती जा रही है।

8. उत्तरी अंटालांटिक से उत्पन्न चक्रवातों की संख्या में वृद्धि हुई है।

9. मध्य अक्षांशों में वायु प्रवाह में तीव्रता आई है।

10. मध्य एशिया, उत्तरी यूरोप, दक्षिणी अमेरिका आदि में वर्षा की मात्रा में वृद्धि हुई है तथा भूमध्य सागर, दक्षिण एशिया और अफ्रीका में सूखे की वृद्धि दर्ज की गई है।

तालिका क्रमांक 1

विश्व के विभिन्न देशों में CO_2 की मात्रा

क्र.	देश	CO_2 की मात्रा (बिलियन टन प्रतिवर्ष)	प्रति व्यक्ति (प्रतिवर्ष)
1.	भारत	1.1	1.2 टन
2.	जापान	1.3	12 टन
3.	रूस	1.7	4.7 टन
4.	चीन	4.7	1 टन
5.	अमेरिका	5.9	23.6 टन

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि CO_2 की मात्रा को बढ़ाने में विश्व के विकसित देशों का सर्वाधिक योगदान है।

तालिका क्रमांक 2

ग्लोबल वार्मिंग में विभिन्न देशों का योगदान (प्रतिवर्ष में)

क्र.	देश	प्रतिवर्ष योगदान
1.	अमेरिका	30.3
2.	यूरोप	27.7
3.	सोवियत संघ	14.7
4.	भारत, चीन एवं विकासशील देश	12.2
5.	दक्षिण और मध्य अमेरिका	3.8
6.	जापान	3.7
7.	पश्चिमी एशिया	2.6
8.	अफ्रीका	2.5
9.	ऑस्ट्रेलिया	1.1
10.	कनाडा	2.3

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि विश्व की विभिन्न विकसित अर्थव्यवस्थाओं का संपूर्ण धरातल को गर्माहट प्रदान करने में कितना महत्वपूर्ण योगदान है।

तापमान में तीव्र गति से हो रही बढ़ोतरी, जहां हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रही है, वहीं हमारी रोग-प्रतिरोधक क्षमता को भी कम कर रही है। मानव-समाज नयी-नयी बीमारियों का शिकार होता जा रहा है।

ग्लेशियर पिघलने से बढ़ने वाला समुद्री जल-स्तर कई छोटे-छोटे द्वीपों को लील लेगा। इसके चलते करीब 40 लाख लोग भारत की ओर पलायन कर सकते हैं, जिससे

भारत की विस्थापन की समस्या का सामना करना पड़ सकता है। समुद्री जल-स्तर बढ़ने से विनाशकारी तूफान और कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ आने जैसी प्राकृतिक आपदाओं की आशंका बढ़ जाएगी। जलवायु परिवर्तन से पैदा हुई संक्रामक बीमारियां व स्वास्थ्य अन्य परेशानियों के चलते लाखों जानें जा सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन के कारण रोजगार के लाखों अवसर खत्म हो सकते हैं, इसका सबसे ज्यादा असर मत्स्य उद्योग व पर्यटन उद्योग पर पड़ेगा। मत्स्य उद्योग से विश्व के करीब 40 करोड़ लोगों की आजीविका चलती है तथा दुनिया में उपलब्ध 75 प्रतिशत मत्स्य सामग्री का दोहन किया जा रहा है, वातावरण की गर्माहट जहां एक जल-स्तर में वृद्धि की समस्या खड़ी कर रही है, वहीं दूसरी ओर बड़ी मात्रा में जल संकट की स्थिति भी निर्मित हो रही है। पेयजल की समस्या से दुनिया के करोड़ों लोग जूझ रहे हैं। कहीं-कहीं क्लोराइड की अधिकता के कारण घेंघा रोग भी फैल रहा है।

वातावरण की गर्माहट (ग्लोबल वार्मिंग) को कम करने के लिए हमें विभिन्न माध्यमों से उत्पन्न कूड़े-कचरे की मात्रा को कम करना होगा।

बिजली के उपयोग को सीमित करना होगा ताकि इसके उत्पादन के लिए बनने वाली होने वाले परमाणु भट्टी की गर्मी को सीमित किया जा सके एवं कोयले की राख को कम किया जा सके।

CH_4 (मीथेन), CFC (क्लोरो-फ्लोरो कार्बन), NO_2 (सोडियम डाइऑक्साइड), O_3 (ट्रायऑक्साइड), CO (कार्बन मोनोऑक्सइड) आदि गैसों की मात्रा को नियंत्रित करना होगा। नियंत्रण या इसके मित्र पदार्थों के उपयोग को बढ़कर ही किया जाना संभव होगा।

वनों का संरक्षण करना होगा, क्योंकि वनों के माध्यम से ही जलवायु को नियंत्रित किया जा सकेगा, वर्षा के जल को आकर्षित किया जा सकेगा, प्रकृति में फैल रही विभिन्न हानिकारक गैसों की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकेगा। ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ाया जा सकेगा। उक्त लाभों को प्राप्त करने के लिए वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाया जाना सर्वाधिक हितकारी होगा।

जलवायु परिवर्तन का जो क्रम प्रारंभ हो चुका है, उसे पूर्णतया रोक पाना तो संभव नहीं है, किंतु सावधानी रखकर उसे और परिवर्तित होने से रोका जा सकता है।

जैव विविधता का महत्व एवं संरक्षण

किसी प्राकृतिक प्रदेश में पाई जाने वाली जंगली तथा पालतू जीव-जंतुओं एवं पादपों की प्रजातियों की बहुलता को जैव विविधता कहते हैं।

प्राकृतिक संपदा के रूप में मानव का अस्तित्व निर्भर है। मानव प्राचीनकाल में जिन जीवों से भयग्रस्त रहता था, आज उन पर उसने विजय प्राप्त कर ली है, लेकिन यह विजय मानव एवं वन्य जीवों के मध्य एक छंद का रूप ले चुकी है, जब मानव ने तीव्रता से इनके प्राकृतिक आवासों को नष्ट कर दिया तथा इनकी संख्या में तीव्रता से कमी कर दी है। अनेक वन्य जीव विलुप्त हो रहे हैं, जिसके कारण जैव-विविधता के संरक्षण की आवश्यकता महसूस की गई है।

प्रकृति में पाए जाने वाले जीव एवं वनस्पति हमारे लिए अनेक रूपों में लाभदायक हैं। मानव-जाति प्रागैतिहासिककाल से जैव विविधता का शोषण करती आई है, अनेक प्रजातियां तो मानव की पहचान के पूर्व ही विलुप्त हो चुकी थी। वर्तमान में दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाली अनेक वस्तुएं जीव-जगत् पर निर्भर करती हैं। जैव विविधता हमारे लिए खाद्य पदार्थ, दवाइयों, सौंदर्यात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ पारिस्थितिकीय दृष्टि से भी लाभदायक है। अतः हर स्थिति में जैव विविधता का संरक्षण आवश्यक है। इसके लिए कृत्रिम संरक्षण, आवासस्थल में सुधार, प्रतिबंधित आखेट एवं वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम, राष्ट्रीय उद्यान एवं वन्य अभयारण्यों की स्थापना, लाभदायक सिद्ध होगा।

पारिस्थितिकी-कृषि

भारत की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। पर्यावरण संरक्षण के लिए कृषि पारिस्थितिकी प्रदेश एक अनुकूल विकल्प है। इसमें पर्यावरण संतुलन एवं पारिस्थितिकी-तंत्र को ध्यान में रखकर कृषि की जाती है। पारिस्थितिकी-कृषि मानव जीवनदायिनी कृषि भी कहलाती है, जो प्राचीनतम कृषि-प्रणाली द्वारा की जाती है, जिसमें पशु, पेड़-पौधे और जैव विविधता आदि के दीर्घकालीन संरक्षण पर बल दिया है। कृषि पारिस्थितिकी का उद्देश्य है रासायनिक उर्वरक तथा अधिक रसायनों के प्रयोग को रोकना। कृषि हेतु लकड़ी, लोहे के हल, कल्टीवेटर, थ्रेसिंग मशीन, स्पेयर एवं उन्नतशील बुआई एवं सिंचाई हेतु नलकूपों एवं पंपों की सहायता ली जाती है, जिससे पारिस्थितिकी संतुलन बना रहे, इसे बनाए रखने के लिए पर्यावरण शुद्धता एवं मानव जीवन को स्वास्थ्य के ध्यान में रखते हुए पारिस्थितिकी-कृषि पर ध्यान देना होगा।

वायुमंडल, पर्यावरण संरक्षण, मानव जीवन एवं जीव-जगत् और पेड़-पौधों के लिए पारिस्थि तिकी-कृषि जीवनदायिनी के रूप में सदा विद्यमान रहे। भारत के संदर्भ में यह पारिस्थितिकीय दृष्टि से अनुकूल, आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ और सामाजिक दृष्टि से न्यायपूर्ण एवं कल्याणकारी है।

अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर कटौती के मामले में विश्वव्यापी सहमति कायम करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में वैश्विक सम्मेलन इंडोनेशिया की घाटी द्वीप नूसा दुआ में 3-14 दिसंबर, 2007 को संपन्न हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1997 में बनी क्योटो संधि से आगे की रणनीति के लिए इस सम्मेलन का आयोजन किया गया। विश्व के 36 औद्योगिक देशों पर लागू क्योटो संधि की अवधि 2012 में समाप्त हो रही है। इस संधि के तहत इन 36 औद्योगिक देशों को 2008 तक ग्रीन हाउस गैसों में उत्सर्जन का स्तर क्रमशः घटाते हुए 1990 के स्तर तक लाने की जिम्मेदारी थी।

पृथ्वी को बचाने के लिए आगे आने के आह्वान के साथ जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर अब तक का सबसे बड़ा सम्मेलन 7 दिसंबर, 2009 को डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में आरंभ हुआ। क्योटो प्रोटोकाल के अंतर्गत निर्धारित उत्सर्जन कटौती के

लक्ष्यों के नवीनीकरण और वर्ष 2012 के बाद वार्ता की रूप-रेखा तय करने के लिए सम्मेलन में 192 देशों के 15 हजार से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

कोपेनहेगन में जलवायु परिवर्तन पर विश्वभर के देशों के बीच की वार्ता कार्बन उत्सर्जन घटाने के लिए महत्वाकांक्षी एवं कानूनी रूप में बाध्यकारी-कार्य योजना तैयार नहीं कर पाई। किंतु इससे कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धि अवश्य प्राप्त हुई। इस वार्ता के माध्यम से चीन, भारत, ब्राजील एवं दक्षिणी अफ्रीका में जलवायु संकट का समाधान निकालने के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में राजनीतिक वचनबद्धता की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई। भविष्य में अंतर्राष्ट्रीय वार्ताएं अब इन राजनीतिक वचनबद्धताओं के आधार पर होंगी।

उपसंहार

पर्यावरण हमारे सामने एक ज्वलंत समस्या बन गई है। यह संपूर्ण विश्व के लिए समान रूप से खतरनाक होती जा रही है। पर्यावरण के नष्ट होने से करीब 800 करोड़ से ऊपर प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं। यदि यह सिलसिला जारी रहा तो करीब 11,000 प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा बढ़ जाएगा। सबसे बड़ा सवाल यह है कि हम मानवों के विकास की कीमत बेजुबान प्राणी तथा हरी-भरी वनस्पतियां अपनी जान देकर क्यों दे? क्या यह सही होगा? नहीं बिल्कुल नहीं। कुछ सार्थक व सकारात्मक करें, जो पर्यावरण के संरक्षण, पोषण व संवर्धन में सहायक हो। पर्यावरण ऐसी समस्या है, जो सब पर प्रभाव डालेगी। कोई भी देश या व्यक्ति इसके दुष्प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता। यह एक ऐसी समस्या है, जो देश की सीमाओं को नहीं मानती। अतः इस खतरे से निपटने के लिए साझे प्रयासों की जरूरत होगी, ताकि हम अपने अगली पीढ़ियों को विरासत में एक साफ, स्वच्छ पर्यावरण दे सकें।

संदर्भ

1. रिसर्च लिंक, अजय कुमार शर्मा/ प्रतिभा सावरिया, वर्ष-VII(3), मई, 2008, पृ. 78-80
2. रिसर्च लिंक, के.के. साधव, वर्ष-VII(3), मई, 2008, पृ. 17-18
3. शोध प्रकल्प, नवनीत द्विवेदी, अंक-47, संख्या-2, अप्रैल-जून, 2009, पृ. 63
4. अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, अजय, खान, सरिया व निषाद, 7 अक्टूबर, 2009, पृ. 129-130

सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र)
महात्मा गांधी शासकीय महाविद्यालय,
खरसिया, रायगढ़ (छ.ग.)

सहायक प्राध्यापक
शासकीय टी.सी.एल. महाविद्यालय,
जांजगीर (छ.ग.)

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006 : एक अध्ययन

डॉ. उमेश प्रसाद साहू

हमारे जैसे बहुविध व प्रगतिशील समाज में आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा पर्यावरणीय क्षेत्रों से संबंधित अनेक चुनौतियां होती हैं। विकास से वंचित रहे लोगों की आजीविका की सुरक्षा, स्वास्थ्य संबंधी देख-रेख, शिक्षा तथा उनके सशक्तिकरण जैसे उपायों द्वारा व्यापक स्तर पर फैली गरीबी को कम करने और लैंगिक असमानताओं को दूर करने की प्रमुख अनिवार्यता के मार्ग में ये सभी चुनौतियां वृहद् रूप में सामने आती हैं।

पर्यावरण प्रबंधन संबंधी, वर्तमान राष्ट्रीय वन नीति 1988, राष्ट्रीय संरक्षण कार्य नीति तथा पर्यावरण एवं विकास पर वक्तव्य, 1992 और प्रदूषण उपशमन संबंधी वक्तव्य, 1992 में निहित हैं। कुछ सेक्टर नीतियों जैसे—राष्ट्रीय कृषि नीति, 2000, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 और राष्ट्रीय जल नीति 2002 ने भी पर्यावरण प्रबंधन के क्षेत्र में अपना योगदान दिया है। इन सभी नीतियों के अंतर्गत संबंधित सेक्टरों के विशिष्ट संदर्भों में अविच्छिन्न विकास की आवश्यकता को मान्यता दी गई है तथा इस तरह के विकास कार्यों के संबंध में कार्य नीतियों को अंगीकार किया गया है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति का उद्देश्य मौजूदा जानकारी तथा संचित अनुभवों के आधार पर इसके कार्यक्षेत्र में वृद्धि करना तथा अभी जो कमियां हैं, उन्हें दूर करना हैं। यह नीति पूर्व की नीतियों को हटाने की बजाय उन्हें और पुख्ता करती हैं।

देश के समूचे राजनीतिक परिदृश्य में प्राकृतिक संसाधनों द्वारा अनेक पारिस्थितिकीय सेवाएं प्रदान करने के साथ-साथ आजीविका उपलब्ध कराने में निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को भी पहचान मिली है। विभिन्न सेक्टोरेल और क्रॉस पर्यावरणीय प्रबंधन के संबंध में साझे दृष्टिकोण के लिए एक व्यापक नीतिगत वक्तव्य तैयार करने की आवश्यकता कुछ समय से महसूस की जा रही है। जैसा कि हमारे सामने विकास संबंधी नयी चुनौतियां आई हैं तथा विकास प्रक्रिया में पर्यावरणीय सरोकारों की केंद्रीय भूमिका के बारे में हमारी समझ बढ़ी है, इसलिए पूर्व के उद्देश्यों, नीतिगत तथा कार्य-नीतियों की पुनरीक्षा किए जाने की आवश्यकता है।

इस गत्यात्मकता के लिए एक विकासशील तथा लचीले नीतिगत ढांचे की आवश्यकता है, जिसमें मॉनीटरिंग व पुनरीक्षा के साथ-साथ जहां कहीं आवश्यक हो, इसमें संशोधन करने के लिए एक अंतर्निहित प्रणाली हो। मानव कल्याण की वृद्धि के संदर्भ में अविच्छिन्न विकास संबंधी सरोकारों की मोटेतौर पर जिन अर्थों में संकल्पना की गई है,

उन्हें भारतीय विकास दर्शन के एक विषय के रूप में बार-बार प्रयोग किया जाता रहा है। आज के समय में तीन बुनियादी आकांक्षाओं के संबंध में आम राय है, प्रथमतया, सभी मानव उत्तमकोटि का जीवन जीने के योग्य बनें, दूसरा यह कि सभी लोग जैवमंडल की परिमितता का सम्मान करने में सक्षम बनें तथा तीसरा यह कि न तो अच्छे जीवन की अभिलाषा और न ही जैव भौतिक सीमाओं को मान्यता विश्व में बेहतर न्याय की तलाश में आड़े आए।

इसके लिए देश की आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय आवश्यकताओं के मध्य संतुलन तथा सामंजस्य की आवश्यकता है। पर्यावरण संबंधी कई महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय पहलों में भारत भी उल्लेखनीय भूमिका अदा करता है। वह प्रमुख बहुपक्षीय समझौतों में एक पक्षकार है तथा अनेक पर्यावरणीय समस्याओं की परस्पर अंतर-संबद्धताओं और सीमापारीय विशेषता को मान्यता प्रदान करता है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति को अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों में सकारात्मक योगदान देने के प्रति भारत की वचनबद्धता संबंधी एक वक्तव्य बनाए जाने की भी मंशा है।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति संविधान के अनुच्छेद 47क तथा 51क (छ) में अधिदेशित तथा अनुच्छेद 21 की न्यायिक विवेचना द्वारा पुष्ट की गई स्वच्छ पर्यावरण के प्रतिक्रिया है। यह स्वीकार किया गया है कि स्वस्थ पर्यावरण बनाए रखना केवल सरकार की ही जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि प्रत्येक नागरिक की भी जिम्मेदारी है। अतः देशभर में पर्यावरण प्रबंधन के क्षेत्र में एक सहभागिता की भावना महसूस की जानी चाहिए। हालांकि सरकार को अपने प्रयत्नों को बढ़ावा देना चाहिए, लेकिन इसके साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति को प्राकृतिक और सांस्थानिक, पर्यावरणीय गुणवत्ता को बनाए रखने तथा उसमें बढ़ोतरी के प्रति अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करना चाहिए।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति उपर्युक्त विचारों/तथ्यों से अभिप्रेरित है तथा इसका उद्‌देश्य सभी विकासात्मक गतिविधियों में पर्यावरणीय विषयों को मुख्यधारा में शामिल करना है। इसमें देश के समक्ष मौजूदा तथा भविष्य में आने वाली प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों, पर्यावरण नीति के उद्‌देश्यों, नीतिगत कार्यवाही को रेखांकित करते हुए मानक सिद्धांतों, हस्तक्षेप संबंधी कार्यनीतिक थीमों, कार्यनीतिक थीमों को पूरा करने के लिए जरूरी वैधानिक व संस्थागत विकास के सामान्य संकेतों तथा कार्यान्वयन और समीक्षा संबंधी कार्य-तंत्रों आदि का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। विशेषज्ञों तथा विविध स्टेक-होल्डरों के साथ विस्तारपूर्वक परामर्श करके इसे तैयार किया गया है और इस प्रक्रिया का प्रलेखन भी किया गया है।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति को नियामक सुधारों, पर्यावरणीय संरक्षण से संबंधित कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं और केंद्र, राज्य एवं स्थानीय सरकारों की एजेंसियों द्वारा कानून बनाने तथा उसकी पुनरीक्षा करने के कार्य में एक निर्देशिका के रूप में बनाए जाने की मंशा है। इस नीति की प्रमुख थीम यह है कि यद्यपि पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करना सभी की आजीविका की सुरक्षा तथा बेहतरी के लिए आवश्यक है, तथापि संरक्षण के लिए सबसे सुरक्षित आधार यह सुनिश्चित करना है कि लोग उन संसाधनों के अवक्रमण की बजाय उनके संरक्षण द्वारा अपनी बेहतर आजीविका प्राप्त कर सकें। इस नीति का

उद्देश्य विभिन्न स्टेक-होल्डरों अर्थात् सार्वजनिक एजेंसियों, स्थानीय समुदायों, शैक्षणिक और वैज्ञानिक संस्थानों, निवेशक समुदाय, अंतर्राष्ट्रीय विकास भागीदारों के मध्य पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए उनके अपने-अपने संसाधन और क्षमताओं के नियंत्रण व उपयोग के मामले में सहभागिता विकसित करना भी है।

मुख्य पर्यावरणीय चुनौतियां : कारण एवं प्रभाव

देश के समक्ष जो प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियां हैं, वे पर्यावरणीय अवक्रमण तथा विभिन्न आयामों में मौजूद गरीबी तथा आर्थिक प्रगति के गठजोड़ से संबंधित हैं। ये चुनौतियां आंतरिक तौर पर पर्यवरणीय स्रोतों जैसे भूमि, जल, वायु तथा उनकी वनस्पतिजात और प्राणिजात की स्थिति से जुड़ी हुई हैं। पर्यावरण अवक्रमण के आसन्न कारकों में जनसंख्या वृद्धि, अनुपयुक्त प्रौद्योगिकी एवं उपभोग संबंधी विकल्प का चयन तथा गरीबी, जिससे लोगों और पारि-प्रणालियों के बीच के संबंध प्रभावित होते हैं, के साथ-साथ विकास-गतिविधियों जैसे गहन-कृषि, प्रदूषक उद्योग तथा अनियोजित शहरीकरण आदि शामिल हैं। तथापि, ये कारक केवल गंभीर कारण संबंधों के माध्यम से पर्यावरणीय अवक्रमण, विशेषकर संस्थागत विफलताओं को जन्म देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय स्रोतों की प्राप्ति और उनके प्रयोग संबंधी अधिकारों के प्रवर्तन संबंधी पारदर्शिता में कमी आने के साथ-साथ पर्यावरणीय संरक्षण को हतोत्साहित करने वाली नीतियां (और जिनका उद्गम राजस्व व्यवस्था में हो सकता है), बाजार असफलता (जिसे विनियामक कार्य-क्षेत्रों में कमियों के साथ जोड़ा जा सकता है) तथा संचालन संबंधी बाधाएं पैदा हो सकती हैं।

पर्यावरणीय अवक्रमण विशेषकर निर्धन ग्रामीणों में गरीबी को बढ़ावा देने वाला एक प्रमुख कारक है। इस प्रकार का अवक्रमण मृदा की उपजाऊ शक्ति, स्वच्छ जल की मात्रा और गुणवत्ता, वायु गुणवत्ता, वनों, वन्य-जीवन तथा मत्स्य-पालन को प्रभावित करता है। प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर जैव विविधता पर ग्रामीण निर्धनों, मुख्यतया आदिवासी समाज की निर्भरता स्वतः सिद्ध है। विशेष रूप से महिलाओं पर प्राकृतिक संसाधनों के अवक्रमण का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वह इन संसाधनों को एकत्र करने और इनके उपयोग के लिए तो सीधे रूप से उत्तरदायी है, लेकिन इनके प्रबंधन में उनका उत्तरदायित्व नगण्य है। ग्रामीण महिलाओं द्वारा इन संसाधनों को एकत्र करने में लगाए गए समय और श्रम के कारण उनके द्वारा अपने बच्चों के पालन-पोषण, उनकी शिक्षा-व्यवस्था, अपनी आय बढ़ाने के कौशल में वृद्धि करने अथवा लाभकारी आजीविका के अवसरों में हिस्सा लेने के लिए समय दे पाने की उनकी कार्यक्षमता पर सीधा असर पड़ता है।

पारिप्रणालियों की क्षमता के नुकसान से गरीब लोग ज्यादा प्रभावित होते हैं। क्षमताओं में अधिक कमी से पारिप्रणालियां, जो आजीविका का आधार हैं, कमजोर हो सकती हैं, जिसकी वजह से परेशानी पैदा हो सकती है। पर्यावरणीय स्रोतों के आधार पर गिरावट के परिणामस्वरूप यहां तक कि अर्थव्यवस्था की स्थिति बेहतर दिखाई देने के बावजूद, कतिपय जन-समूह निराश्रय हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त अपशिष्ट शोधन तथा स्वच्छता में कमी, उद्योग तथा यातायातजनित प्रदूषण के कारण शहरी पर्यावरण के

अवक्रमण से वायु, जल एवं मृदा की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के साथ-साथ विभिन्न तरीकों से शहरी निर्धनों के स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप उनकी रोजगार ढूंढने, उसे बनाए रखने तथा स्कूल जाने की क्षमता प्रभावित होती है। इन सभी कारणों से गरीबी की स्थिति बनी रहती है।

यदि संस्थागत विफलताएं निरंतर बनी रहें तो गरीबी स्वयं पर्यावरणीय अवक्रमण को बढ़ावा दे सकती है। गरीब व्यक्तियों के लिए अनेक पर्यावरणीय संसाधन, उत्पादन तथा उपभोग के मामले में अन्य वस्तुओं (जैसे—कृषि उत्पादों के मामले में जल, खाद्य पदार्थों के उपभोग के मामले में ईंधन लकड़ी) के पूरक हैं, जबकि कई पर्यावरणीय संसाधन आय अथवा खाद्य पदार्थों (जैसे—मत्स्यन, गैर-काष्ठ वनोत्पाद) के स्रोत हैं। यह अकसर एकत्रित कारणों का एक स्रोत है, इससे बार-बार नये कारण संचित होते रहते हैं, जहां गरीबी, लिंग असमानताएं तथा पर्यावरणीय अवक्रमण परस्पर एक-दूसरे को बल प्रदान करते हैं। गरीबी तथा पर्यावरणीय अवक्रमण को जनसंख्या वृद्धि के कारण भी बल मिलता है, जो बदले में विविध कारकों की जटिल अन्योन्य-क्रिया तथा विकास अवस्थाओं पर निर्भर करती हैं। जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक व आर्थिक संदर्भ का उल्लेख राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 में स्पष्ट रूप से किया गया है, जिसमें इस बात को स्वीकार किया गया है कि सतत् विकास के लिए जनसंख्या स्थिरीकरण एक अनिवार्य शर्त है।

इसके बदले में आर्थिक प्रगति तथा पर्यावरणीय अवक्रमण के बीच एक द्विभाजक संबंध रहता है। एक ओर यह प्रगति प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के कारण अत्यधिक पर्यावरणीय अवक्रमण को जन्म दे सकती है तथा दूसरी ओर संस्थागत असफलताओं द्वारा होने वाले प्रदूषण उत्सर्जन की स्थिति को और खराब कर सकती है। यदि पर्यावरणीय स्रोत आधार पर पड़ने वाले प्रभावों की अनदेखी की जाती है तो इससे राष्ट्रीय आय से संबंधित परंपरागत वित्तीय अनुमानों से गलत जानकारी प्राप्त होती है। दूसरी ओर आर्थिक प्रगति द्वारा पर्यावरणीय निवेशों के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराकर, उन्नत पर्यावरणीय आचरण के लिए सामाजिक दबाव बनाकर और संस्थागत व नीतिगत परिवर्तन लाकर पर्यावरणीय गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। विशेषकर औद्योगिक देशों में उपभोग संबंधी असतत् पैटर्नों के कारण भी स्थानीय तथा भौगोलिक दोनों स्तरों पर पर्यावरण पर गंभीर दुष्परिणाम पड़ा है। भौगोलिक प्रभाव विकासशील देशों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं, जो कि गरीबी की ओर बढ़ा रहे हैं।

यह बात निरंतर स्पष्ट होती जा रही है कि पर्यावरण की खराब गुणवत्ता ने मानव-स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। ऐसा अनुमान है कि भारत में कुछ मामलों में लगभग 20 प्रतिशत बीमारियों के लिए पर्यावरणीय कारक जिम्मेदार हैं तथा अनेक पर्यावरण स्वास्थ्यकारक गरीबी के विभिन्न आयामों (अर्थात् कुपोषण, स्वच्छ ऊर्जा एवं जल की अनुपलब्धता) के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। यह दर्शाया गया है कि भीतरी वायु प्रदूषण को कम करने, सुरक्षित पेयजल के स्रोतों की सुरक्षा, मृदा को संदूषित होने से बचाना, उन्नत सफाई उपाय और बेहतर जन-स्वास्थ्य प्रणाली जैसे हस्तक्षेपों की सहायता से स्वास्थ्य संबंधी कई गंभीर समस्याओं को कम करने के प्रभावी अवसर प्राप्त हो सकते हैं। यह भी स्पष्ट हो चुका है कि सार्वजनिक और निजी व्यवहार से संबंधित बेहतर

पद्धतियों के संबंध में व्यापक जागरूकता फैलाए व शिक्षा दिए बिना पर्यावरण सुरक्षा संबंधी इन उपायों से अपेक्षित परिणाम प्राप्त करना कठिन होगा।

पर्यावरणीय संसाधनों तथा उनके प्राप्ति प्रयोग के मामलों में अस्पष्ट या अपर्याप्त रूप से प्रवर्तित किए गए अधिकारों के संबंध में संस्थागत विफलता के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय अवक्रमण होता है, क्योंकि तीसरे पक्षकार ही मुख्य रूप से इस तरह के अवक्रमण का अनुभव करते हैं और इस क्षति के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को कोई कीमत नहीं चुकानी पड़ती। सामुदायिक तथा वैयक्तिक, दोनों स्तरों के इस तरह के अधिकार महत्वपूर्ण संस्थाएं हैं, जो मानव तथा पर्यावरण के प्रयोग के संबंध में मध्यस्थता का कार्य करते हैं। पारंपरिक तौर पर गांवों के साझे जल के स्रोतों, चराई भूमि, स्थानीय वनों तथा मत्स्य उद्योग आदि को स्थानीय समुदायों द्वारा विभिन्न मानदंडों, जिसमें गैर-अनुमत आचरण के लिए शास्तियां भी शामिल हैं, के माध्यम से शोषण के प्रति सुरक्षा प्रदान की गई है। तथापि, विकास प्रक्रिया, शहरीकरण तथा मुत्यु दर में तेजी से गिरावट के परिणामस्वरूप जनसंख्या में बढ़ोतरी हो रही है तथापि सरकारी कार्यवाइयों के कारण व्यक्तिगत अधिकारों के सामुदायिक अधिकारों से अधिक सुदृढ़ होने के हालात बनने और ऐसा होने पर, बाजार ताकतों को इस तरह के परिवर्तनों के लिए दबाव की अनुमति मिलने, जिनसे प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभाव पड़ने की संभावना होने से भी इन मानकों के स्तर में गिरावट आ सकती है। यदि कमजोर मानदंडों की वजह से सामुदायिक संसाधनों तक इस प्रकार दखल जारी रहा तो इससे संसाधनों का अवक्रमण होने के साथ-साथ समुदाय की आजीविका भी प्रभावित होगी।

नीति की विफलता विभिन्न स्रोतों, जिनमें राजकोषीय साधनों का प्रयोग जैसे प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक प्रयोग को प्रोत्साहन प्रदान करने वाले विभिन्न संसाधनों के प्रयोग हेतु बाह्य तथा आंतरिक आर्थिक रियायतें आदि शामिल हैं, से हो सकती है। अनुचित नीति साझे तौर पर प्रबंधन की गई प्रणालियों में परिवर्तन के कारण बन सकती है, जिसके पर्यावरणीय परिणाम प्रतिकूल हो सकते हैं।

अन्य प्रमुख चुनौतियां, उभरते भूमंडलीय पर्यावरणीय सरोकारों जैसे जलवायु परिवर्तन, समताप मंडलीय ओजोन ह्रास तथा जैव विविधता की हानि से उत्पन्न होती हैं। इसका हल इन समस्याओं के संबंध में देशों के साझे, लेकिन अलग-अलग उत्तरदायित्व के सिद्धांत में प्रचालन में लाने से हो सकता है। इन भूमंडलीय पर्यावरणीय मुद्दों की अनुक्रिया में बहुपक्षीय शासन-पद्धतियों तथा कार्यक्रमों से विकासशील देशों के विकास के अवसरों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। इसके अतिरिक्त भूमंडलीय प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सेदारी आवश्यक रूप से सभी देशों में समान प्रति आय की हिस्सेदारी आधार पर होनी चाहिए।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के उद्देश्य

इस नीति के मुख्य उद्देश्यों का विवरण नीचे दिया गया है। ये उद्देश्य प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों की वर्तमान अवधारणाओं से संबंधित हैं, तद्नुसार ये समय के साथ क्रमिक रूप से निर्धारित किए जा सकते हैं—

1. महत्वपूर्ण पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण–उन महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय प्रणालियों, संसाधनों तथा प्राकृतिक व मानव निर्मित मूल्यवान धरोहरों की सुरक्षा तथा संरक्षण करना, जो जीवन-रक्षक आजीविका/ आर्थिक तथा मानव कल्याण की व्यापक संकल्पना के लिए अनिवार्य है।

2. वर्तमान पीढ़ी में समता : गरीबों के लिए आजीविका सुरक्षा–समाज के सभी तबकों के लिए पर्यावरणीय संसाधनों तक पहुंच तथा गुणवत्ता की समानता सुनिश्चित करना, विशेष तौर पर यह सुनिश्चित करना कि निर्धन समुदाय जो आजीविका के लिए पर्यावरणीय संसाधनों पर सर्वाधिक निर्भर है, उन्हें ये संसाधन अवश्य मिलें।

3. पीढ़ियों में समता–वर्तमान और भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए पर्यावरणीय संसाधनों का न्यायोचित प्रयोग सुनिश्चित करना।

4. आर्थिक तथा सामाजिक विकास में पर्यावरणीय सरोकारों का एकीकरण– आर्थिक तथा सामाजिक विकास के उद्‌देश्य से पर्यावरणीय सरोकारों को योजनाओं, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के रूप में एकीकृत करना।

5. पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग में दक्षता–प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों के न्यूनीकरण के लिए आर्थिक उत्पादन की प्रति इकाई में प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग में कमी करके उनका सही प्रयोग सुनिश्चित करना।

6. पर्यावरणीय संचालन–पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग के प्रबंधन तथा विनियमन के संबंध में बेहतर संचालन (पारदर्शिता, न्यायोचितता, जवाबदेही, समय तथा लागत में कमी, सहभागिता तथा नियंत्रण की स्वतंत्रता) के सिद्धांत को लागू करना।

7. पर्यावरण संरक्षण के लिए संसाधनों में बढ़ोतरी–स्थानीय समुदायों, सार्वजनिक एजेंसियों, शैक्षणिक और अनुसंधान समुदाय, निवेशकों और बहुपक्षीय और द्विपक्षीय विकास पार्टनरों के मध्य परस्पर लाभकारी बहुहितधारक सहभागिताओं के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण हेतु वित्त, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन कौशल, पारंपरिक ज्ञान तथा सामाजिक पूंजी आदि को शामिल करते हुए अधिक संसाधन प्राप्ति सुनिश्चित करना।

सिद्धांत

यह नीति इस तथ्य को सामने रखकर तैयार की गई है कि केवल वही विकास अविच्छिन्न हो सकता है, जिसमें पारिस्थितिकीय दबावों और न्याय की अनिवार्यताओं पर भी ध्यान दिया गया हो। उपरोक्त उद्‌देश्यों को केंद्र, राज्य तथा स्थानीय सरकार के स्तरों पर विभिन्न सार्वजनिक प्राधिकरणों के विभिन्न कुशल कार्यनीति हस्तक्षेपों द्वारा प्राप्त किया जाना है। ये उद्‌देश्य विभिन्न साझेदारियों के भी आधार रूप होंगे। उपर्युक्त उद्‌देश्यों की प्राप्ति के लिए वैधानिक व्यवस्था और कानूनी सिद्धांत विकसित करने के अलावा, इन कार्यनीतिक हस्तक्षेपों का निर्धारण स्पष्ट रूप से उल्लिखित सिद्धांतों तथा उनके अनुप्रयोग की लागतों, तकनीकों और प्रशासनिक पहलुओं की तुलना में उनकी प्रासंगिकता और व्यावहार्यता के अनुसार आधारित होना चाहिए। तद्‌नुसार, निम्न सिद्धांत नीति संबंधी विभिन्न कारकों की गति-विधियों में मार्गदर्शन कर सकते हैं। इनमें से प्रत्येक सिद्धांत में नीति उद्‌घोषणाओं, विधिशास्त्र, अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय कानून या अंतर्राष्ट्रीय सरकारी

पद्धतियों से सुस्थापित वंश-परंपरा विद्यमान है।

1. सभी मानव अविच्छिन्न विकास सरोकारों के केंद्र बिंदु हैं–सभी मानव अविच्छिन्न विकास सरोकारों के केंद्र बिंदु हैं। उन्हें प्रकृति के साथ तालमेल रखते हुए स्वस्थ और गतिशील जीवन जीने का हक है।

2. विकास का अधिकार–वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों की विकासात्मक तथा पर्यावरणीय आवश्यकताओं की समान रूप से पूर्ति के लिए विकास का अधिकार अवश्य का दिया जाना चाहिए।

3. पर्यावरणीय सुरक्षा विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग–अविच्छिन्न विकास के लिए पर्यावरणीय सुरक्षा विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग होगी तथा इसे इससे अलग करके नहीं रखा जा सकता।

4. एहतियाती दृष्टिकोण–जहां प्रमुख पर्यावरणीय संसाधनों को गंभीर अथवा अपूरणीय क्षति के वास्तविक्र खतरा हो, वहां पर्यावरणीय अवक्रमण के निवारण के लिए लागत-प्रभावी उपायों के आस्थगम के लिए पूर्ण वैज्ञानिक सुनिश्चितता की कमी को कारण नहीं बनाया जाएगा।

5. आर्थिक क्षमता–पर्यावरणीय संरक्षण से संबंधित विभिन्न सार्वजनिक कार्यों में आर्थिक क्षमता प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा।

इस सिद्धांत के लिए आवश्यक है कि पर्यावरणीय संसाधनों की सेवाओं को आर्थिक महत्व प्रदान किया जाए तथा वैकल्पिक कार्यविधियों का विश्लेषण करते समय इसे अन्य वस्तुओं और सेवाओं के आर्थिक महत्व के बराबर महत्व दिया जाए। इस सिद्धांत के अन्य प्रभाव निम्न प्रकार हैं–

(क) **प्रदूषणकर्ता द्वारा क्षतिपूर्ति**–किसी एक पक्ष की उत्पाद तथा उपयोग संबंधी गतिविधियों का प्रभाव उस तीसरे पक्ष पर हो सकता है, जिसका मूल गतिविधि के साथ प्रत्यक्ष तौर पर आर्थिक संबंध नहीं है। ऐसे प्रभाव को बहिर्भाविता कहते हैं। यदि बहिर्भाविता की लागतों (या लाभों) का दायित्व मूल क्रिया के लिए उत्तरदायी पक्ष पर नहीं पड़ता तो उत्पादन अथवा उपभोग तथा गहिर्भाविता के संपूर्ण-क्रम का परिणामी स्तर अपर्याप्त होगा। इस प्रकार की स्थिति में बहिर्भाविता के दोषी को इसकी लागत (या लाभ) के वहन के लिए उत्तरदायी बनाकर आर्थिक क्षमता को पुनः बहाल किया जाना चाहिए। तद्नुसार इस नीति के अंतर्गत प्रोत्साहन आधारित नीतिगत साधनों का उपयोग करते हुए पर्यावरणीय लागतों के आंतरिकीकरण को बढ़ावा दिया जाएगा, जिसमें इस विचार को ध्यान में रखा जाएगा कि प्रदूषणकर्ता सार्वजनिक हितों का पूरा ध्यान रखते हुए तथा अंतर्राष्टीय व्यापार और निवेश के स्वरूप के बिगाड़े बिना सिद्धांत तौर पर प्रदूषण की लागत को स्वयं वहन करेगा।

(ख) **लागत न्यूनीकरण**–जहां कहीं किसी प्रक्रिया के पर्यावरणीय लाभों को विधियों या अवधारणात्मक कारणों की वजह से आर्थिक मूल्य के लिए आरोपित नहीं किया जा सकता हो, वहां (जैसा कि 'अतुलनीय हस्तियां' के मामलों में (नीचे लिखे) किसी भी मामलों में लाभ प्राप्त करने की आर्थिक लागतें की जानी चाहिए।)

संसाधन उपयोग में दक्षता ऐसे नीतिगत साधनों का प्रयोग करके भी हासिल की जा सकती है, जो प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक उपयोग व उपभोग को न्यूनतम

करने के लिए प्रोत्साहित करने वाले हों। दक्षता का यह सिद्धांत लागतों और देरियों को न्यूनतम करने हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं और क्रियाविधियों को स्ट्रीमलाइन करते हुए पर्यावरणीय संचालन से जुड़े मामलों पर भी लागू होता है।

6. अतुल्य महत्व की हस्तियां–कतिपय अन्य बेजोड़ प्राकृतिक व मानव निर्मित हस्तियों के अलावा, मानव स्वास्थ्य, जीवन तथा पर्यावरण की दृष्टि से जीवन-रक्षक प्रणालियों को होने वाले जोखिमों को, जो बड़ी संख्या में व्यक्ति के जीवन को प्रभावित कर सकती हैं, अतुल्य माना जा सकता है। वह इस अर्थ में कि कोई व्यक्ति अथवा समाज इन जोखिमों को किसी तरह का धन अथवा परंपरागत वस्तुओं और सेवाओं के बदले में स्वीकार नहीं करेगा। तदनुसार एक परंपरागत लागत लाभ का संगणन इनके मामले में लागू नहीं होगा और ऐसी एंटिटीज को उनके संरक्षण के लिए सामाजिक संसाधनों के आबंटन में प्रत्यक्ष अथवा तात्कालिक आर्थिक लाभों पर विचार किए बिना प्राथमिकता दी जाएगी।

7. समता–समता अथवा न्याय के मुख्य सिद्धांत में यह अपेक्षा की गई है कि मानवों के बीच असंगत मतभेदों के आधार पर उनके साथ अलग-अलग तरह से व्यवहार नहीं किया जा सकता। समानता संबंधी मानकों में अंतर संदर्भ अर्थात् हकदारियों और बाध्यताओं के निर्धारण के लिए निष्पक्ष नियमों से संबंधित प्रक्रियात्मक समता और हकदारियों और बाध्यताओं के विभाजन के संदर्भों, निष्पक्ष परिणामों से संबंधित अंतिम परिणाम के मामले में समता के अनुसार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक संदर्भ विभेद समाजों के भीतर न्याय से संबंधित पीढ़ीगत समता के आधार पर और विशेष रूप से अभावग्रस्त लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करते हुए तथा पीढ़ियों के बीच न्याय-प्रक्रिया से संबंधित पीढ़ीगत समता के अनुसार होना चाहिए। इस नीति के संदर्भ में समता का आशय हकदारियों से संबंधित तथा पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग के संबंध में निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में संबंधित जनता की भागीदारी से है।

इस नीति के संदर्भ में समता का तात्पर्य संबंधित जन-समुदाय को पर्यावरणीय संसाधनों के उपयोग तथा निर्णय प्रक्रिया में भाग लेने हेतु समान हकदारी देने से है।

8. वैधानिक उत्तरदायित्व–मौजूदा पर्यावरणीय शिकायत निस्तारण-तंत्र प्रमुख रूप से आपराधिक उत्तरदायित्व सिद्धांतों पर आधारित है, जो कि पूरी तरह प्रभावी साबित नहीं हुआ है। इसमें सुधार की आवश्यकता है।

पर्यावरणीय क्षति से संबंधित नागरिक उत्तरदायिता पर्यावरण की दृष्टि से हानिप्रद क्रियाकलापों को रोकेगी और पर्यावरण क्षति के शिकार लोगों की प्रतिपूर्ति करेगी। अवधारणात्मक रूप से विधिक उत्तरदायिता को प्रदूषण करने वाला ही चुकाएगा भी। नीति का विधिक सिद्धांत, जो आर्थिक कार्यक्षमता के सिद्धांत से लिया गया है, के एक प्रतिरूप के रूप में देखे जा सकते हैं। नागरिक उत्तरदायिता के स्थान पर निम्नलिखित वैकल्पिक दृष्टिकोण लागू हो सकते हैं–

(क) **दोष आधारित उत्तरदायिता**–दोष आधारित उत्तरदायिता व्यवस्था में यदि कोई पक्ष पूर्व निर्धारित किसी कानूनीय कर्तव्य का उल्लंघन करता है तो उसे इसके लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। उदाहरण के लिए पर्यावरीण मानक।

(ख) **कठोर उत्तरदायिता**–कठोर उत्तरदायिता के अंतर्गत किन्हीं क्रियाकलापों अथवा कार्यवाही न कर पाने, जिसमें आवश्यक नहीं कि किसी कानून अथवा सुरक्षा कर्तव्य

का उल्लंघन हुआ हो, के परिणामस्वरूप होने वाली क्षति से पीड़ित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने की बाध्यता है।

9. सार्वजनिक न्याय (पब्लिक ट्रस्ट) का सिद्धांत—राज्य को सभी प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त नहीं है, बल्कि वह मात्र उन संसाधनों का एक ट्रस्टी है। ये संसाधन सार्वजनिक उपयोग और मनोरंजन के लिए हैं, लेकिन इनका उपयोग बड़ी संख्या में लोगों के न्यायसंगत हितों की रक्षा अथवा रणनीतिक राष्ट्रीय हितों के मामलों के लिए आवश्यक शर्तों को पूरा करने के अधीन है।

10. विकेंद्रीकरण—विकेंद्रीकरण के अंतर्गत केंद्रीय प्राधिकरणों से राज्य और स्थानीय प्राधिकरणों को सत्ता का हस्तांतरण होता है, ताकि स्थानीय स्तर पर क्षेत्राधिकार संपन्न सार्वजनिक प्राधिकरणों को विशिष्ट पर्यावरणीय मामलों को देखने हेतु शक्तियां प्रदान की जा सकें।

11. एकीकरण—एकीकरण का आशय पर्यावरणीय मामलों को सैक्टोरल नीति निर्माण प्रक्रिया में शामिल करने, सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञान को पर्यावरण से जुड़े नीतिगत अनुसंधान कार्य के साथ जोड़ने तथा पर्यावरण नीतियों के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी केंद्रीय, राज्य और स्थानीय स्वशासन स्तर की सरकारों की विभिन्न एजेंसियों के बीच संगत संबंधों को सुदृढ़ बनाने से है।

12. पर्यावरण मानकों का निर्धारण—पर्यावरणीय मानक जहां लागू हों, वहां उन्हें आर्थिक और सामाजिक विकास की स्थिति को परिलक्षित करने में सक्षम होना चाहिए। किसी एक समाज या संदर्भ में अपनाए गए मानक आर्थिक और सामाजिक रूप से अस्वीकार्य हो सकते हैं, यदि उन्हें अन्य समाज या संदर्भ में विभेद किए बिना लागू किया जाए। पर्यावरणीय मानकों को निर्धारित करने में अनेक बातों पर ध्यान देना होगा। जैसे मानव स्वास्थ्य के लिए जोखिम, अन्य पर्यावरणीय हस्तियों को जोखिम, तकनीकी व्यवहार्यता, अनुपालन की लागत तथा रणनीतिक मामले आदि।

13. निवारक कार्यवाही—अवक्रमित पर्यावरणीय संसाधनों को बहाल करने की कोशिश करने की अपेक्षा सबसे पहले पर्यावरणीय नुकसान की घटनाओं को होने से रोकना अधिक महत्वपूर्ण है।

14. पर्यावरणीय प्रतिकार—संकटापन्न अथवा खतरे में पड़ी प्रजातियां और प्राकृतिक प्रणालियां जो जीवन को सतत् बनाए रखने, आजीविका प्रदान करने अथवा आम जनता की भलाई के लिए विशेष महत्व रखती हैं, का बचाव करने के लिए सभी का साझा दायित्व है। यदि किसी हालत में ऐसे समुचित सार्वजनिक हित में कुछ विशिष्ट मामलों में संरक्षण नहीं प्रदान किया जा सके तो ऐसी परिस्थिति में ऐसे कार्यों के प्रस्तावकों द्वारा लागत प्रभावी प्रतिकारात्मक उपाय किए जाएं ताकि संबंधित लोगों के लिए खोई हुई, पर्यावरणीय सेवाएं यथाशीघ्र बहाल की जा सकें।

व्याख्याता—डाइट
एम-18, पंपहाउस कॉलोनी,
एसईसीएल, पोस्ट व जिला कोरबा-495677

पर्यावरण के प्रति जागरुकता और हमारा भविष्य

तरुणधर दीवान

पर्यावरण एवं प्रकृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जनसामान्य के लिए जो प्रकृति है, उसे ही विज्ञान में पर्यावरण कहा जाता है। 'परि+आवरण' यानी हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं हैं, शक्तियां, जो हमारे जीवन को प्रभावित करती हैं, वे सभी पर्यावरण बनाती हैं। मोटे तौर पर जल, हवा, जंगल, जमीन, सूर्य का प्रकाश, रात का अंधकार और अन्य जीव-जंतु सभी हमारे पर्यावरण के भिन्न तथा अभिन्न अंग हैं। जीवित और मृत को जोड़ने का काम सूर्य की शक्ति करती है। प्रकृति जो हमें जीने के लिए स्वच्छ वायु, पीने के लिए साफ-शीतल जल और खाने के लिए कंद-मूल-फल उपलब्ध कराती रही है, वही अब संकट में है। आज उसकी सुरक्षा का सवाल उठ खड़ा हुआ है। यह धरती माता आज तरह-तरह के खतरों से जूझ रही है।

लगभग 100-150 साल पहले धरती पर घने जंगल थे, कल-कल बहती स्वच्छ सरिताएं थीं। निर्मल झील एवं पावन झरने थे। हमारे जंगल तरह-तरह के जीव-जंतुओं से आबाद थे। और तो और जंगल का राजा शेर भी तब इनमें निवास करता था। आज ये सब ढूंढे नहीं मिलते, नदियां प्रदूषित कर दी गई हैं। राष्ट्रीय नदी का दर्जा प्राप्त गंगा भी इससे अछूती नहीं है। झील-झरने सूख रहे हैं। जंगलों से पेड़ और वन्य-जीव गायब होते जा रहे हैं। चीता तथा शेर हमारे देश से देखते-ही-देखते विलुप्त हो चुके हैं। अभी वर्तमान में उनकी संख्या अत्यंत ही कम है। सिंह भी गिर के जंगलों में ही बचे हैं। इसी तरह राष्ट्रीय पक्षी मोर, हंस, कौए और घरेलू चिड़ियों पर भी संकट के बादल मंडरा रहे हैं। यही हाल हवा का है। शहरों की हवा तो बहुत ही प्रदूषित कर दी गई है, जिसमें हम सभी का योगदान है।

महानगरों की बात तो दूर हम छत्तीसगढ़ में ही देखें तो रायगढ़, कोरबा, रायपुर जैसे मध्यम आकार के शहरों की हवा भी सांस लेने लायक नहीं है। आंकड़े बताते हैं कि वायु में कणीय पदार्थ की मात्रा जिसे आर.एस.पी.एम. (R.S.P.M.) कहते हैं, में रायगढ़ का पूरे एशिया में तीसरा स्थान पर आना चिंता की बात है। इस सूची में कोरबा और रायपुर भी शामिल हैं। शहरी हवा में सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी जहरीली गैसें घुली रहती हैं। कार्बन मोनोऑक्साइड और कार्बन डाई-ऑक्साइड जैसी गैसों की मात्रा हाइड्रो कार्बन के साथ बढ़ रही है। वहीं खतरनाक ओजोन के भी वायुमंडल में बढ़ने के संकेत हैं। विकास की आंधी में मिट्‌टी की भी मिट्‌टी-पलीद हो चुकी है। जिस मिट्‌टी

में हम सब खेले हैं, जो मिट्टी खेत और खलिहान में है, खेल का मैदान है, वह तरह-तरह के कीटनाशकों को एवं अन्य रसायनों के अनियंत्रित प्रयोग से प्रदूषित हो चुकी है।

खेतों से ज्यादा-से-ज्यादा उपज लेने की चाह में किए गए रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध उपयोग के कारण वर्तमान में पंजाब एवं हरियाणा की हजारों हेक्टेयर जमीन बंजर हो चुकी है। हमारे कई सांस्कृतिक त्योहार एवं रीति-रिवाज भी पर्यावरण हितैषी नहीं हैं। दीपावली और विवाह के मौकों पर की जाने वाली आतिशबाजी हवा को बहुत ज्यादा प्रदूषित करती है। होली भी हर गली-मोहल्ले की अलग-अलग न जलाकर एक कॉलोनी या कुछ कॉलोनियां मिलकर एक सामूहिक होली जलाएं तो इससे ईंधन भी बचेगा और पर्यावरण भी कम प्रदूषित होगा। जब हम स्वचालित वाहन चलाते हैं, तब यह नहीं सोचते कि इससे निकलने वाला धुआं हमारे स्वास्थ्य को भी खराब करता है। इससे निकली गैसें अम्लीय वर्षा के रूप में हम पर ही बरसेगी व हमारी मिट्टी फसलों को खराब करेगी। यूरोपीय देशों की अधिकांश झीलें अम्लीय वर्षा के कारण मर चुकी हैं। उनमें न तो मछली जिंदा बचती हैं, न पेड़-पौधे।

सवाल यह है कि इन पर्यावरणीय समस्याओं का क्या कोई हल है? क्या हमारी सोच में बदलाव की जरूरत है? दरअसल प्रकृति को लेकर हमारी सोच में ही खोट है। तमाम प्राकृतिक संसाधनों को हम धन के स्रोत के रूप में देखते हैं और अपने स्वार्थ की खातिर उनका अंधाधुंध दोहन करते हैं। हम यह नहीं सोचते है कि हमारे बच्चों को स्वच्छ व शांत पर्यावरण मिलेगा या नहीं। वर्तमान स्थितियों के लिए मुख्य रूप से हमारी कथनी और करनी का कर्म ही जिम्मेदार है। एक ओर हम पेड़ों की पूजा करते हैं तो वहीं उन्हें काटने से जरा भी नहीं हिचकते। हमारी संस्कृति में नदियों को मां कहा गया है, परंतु उन्हीं मां स्वरूपा गंगा-जमुना, महानदी की हालत किसी से छिपी नहीं है। इनमें हम शहर का सारा जल-मल, कूड़ा-कचरा, हार-फूल यहां तक कि शवों को भी बहा देते हैं। नतीजतन अब देश की सारी प्रमुख नदियां गंदे नालों में बदल चुकी हैं। पेड़ों को पूजने के साथ उनकी रक्षा का संकल्प भी हमें उठाना होगा। पर्यावरण रक्षा के लिए कई नियम भी बनाए गए हैं। जैसे खुले में कचरा नहीं जलाने एवं प्रेशर हॉर्न नहीं बजाने का नियम है, परंतु इनका सम्मान नहीं किया जाता। हमें यह सोच भी बदलनी होगी कि नियम तो बनाए ही तोड़ने के लिए जाते हैं। पर्यावरणीय नियम का न्यायालय या पुलिस के डंडे के डर से नहीं, बल्कि दिल से सम्मान करना होगा। सच पूछिए तो पर्यावरण की सुरक्षा से बढ़कर आज कोई पूजा नहीं है। प्रकृति का सम्मान ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा होगी। कहा भी जाता है कि प्रकृति ही ईश्वर है। अगर आप सच्चे ईश्वर भक्त हैं तो भगवान की बनाई इस दुनिया की हवा, पानी, जंगल और जमीन को प्रदूषित होने से बचाएं। वर्तमान संदर्भों में इससे बढ़कर कोई पूजा नहीं है। जरूरत हमें स्वयं सुधरने की है, साथ ही हमें अपनी आदतों में पर्यावरण की खातिर बदलाव लाना होगा। याद रहे हम प्रकृति से हैं, प्रकृति हमसे नहीं।

तमाम सख्ती व कोर्ट के आदेश के बावजूद राज्य में अनेक फैक्ट्रियां अवैध रूप से चलाई जा रही हैं। इनमें से हर रोज निकलने वाली खतरनाक रसायन व धुआं हवा में जहर घोल रहा है। ''तालाब, पोखर, गढ़ही, नदी, नहर, पर्वत, जंगल और पहाड़ियां आदि सभी जलस्रोत पारिस्थितिकी में संतुलन बनाए रखते हैं। इसलिए परिस्थितिकीय संकटों से

उबरने और स्वस्थ पर्यावरण के लिए इन प्राकृतिक देनों की सुरक्षा करना आवश्यक है, ताकि सभी संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा दिए गए अधिकारों का आनंद ले सकें।''

पर्यावरण बदलने से भुखमरी का खतरा मंडराने लगा है। दुनिया की जानी-मानी संस्था ऑक्स्फैम का कहना है कि पर्यावरण में हो रहे बदलावों के कारण ऐसी भुखमरी फैल सकती है, जो इस सदी की सबसे बड़ी मानवीय त्रासदी साबित होगी। इस अंतर्राष्ट्रीय चैरिटी संस्था की नयी रिपोर्ट के अनुसार पर्यावरण में बदलाव गरीबी और विकास से जुड़े हर मुद्दे पर प्रभाव डाल रहा है।

बदलती जलवायु के प्रमुख कारण कार्बन डाईऑक्साइड की अधिक मात्रा से गरमाती धरती का कहर बढ़ते तापमान के रूप में अब स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है। तापमान का बदलता स्वरूप मानव द्वारा प्रकृति के साथ किए गए निर्मम तथा निर्दयी व्यवहार का सूचक है। अपने ही स्वार्थ में अंधे मानव ने अपने ही जीवन-प्राण वनों का सफाया कर प्रकृति के प्रमुख घटकों—जल, वायु तथा मृदा से स्वयं को वंचित कर दिया है। बढ़ते कार्बन डाईऑक्साइड ने वायुमंडल में ऑक्सीजन को कम कर दिया है। वायु मंडलीय परिवर्तन को 'ग्लोबल वार्मिंग' का नाम दिया गया है। इसने संसार के सभी देशों को अपनी चपेट में लेकर प्राकृतिक आपदाओं का तोहफा देना प्रारंभ कर दिया है। भारत और चीन सहित कई देशों में भूमि कंपन, बाढ़, तूफान, भूस्खलन, सूखा, अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि, भूमि की धड़कन के साथ ग्लेशियरों का पिघलना आदि प्राकृतिक आपदाओं के संकेत के रूप में भविष्य दर्शन है। गरमाती धरती का प्रत्यक्ष प्रभाव समुद्र जल तथा नदियों के जल के तापमान में वृद्धि होना है, जिसके कारण जलचरों के अस्तित्व पर सीधा खतरा मंडरा रहा है। यह प्रत्यक्ष खतरा मानव पर अप्रत्यक्ष रूप से उसकी क्षुधापूर्ति से जुड़ा है। पानी के अभाव में कृषि व्यवस्था का जब दम टूटेगा तो शाकाहारियों को भोजन का अभाव झेलना एक विवशता होगी तो मरती मछलियों प्रास (झींगा) तथा अन्य भोजन जलचरों के अभाव में मांसाहारियों को कष्ट उठाना होगा। उक्त दोनों प्रक्रियाओं से आजीविका पर सीधा असर होगा तथा काम के अभाव में शिथिल होते मानव अंग अब बीमारी की जकड़ में आ जाएंगे। वैश्विक जलवायु मानव को गरीबी की ओर धकेलते हुए आपराधिक दुनिया की राह दिखाएगा, जिसमें पर्यावरणीय आतंकवाद को बढ़ावा मिलेगा तथा दुनिया में पर्यावरण शरणार्थियों को शरण देने वाला कोई नहीं होगा। बढ़ता तापक्रम विश्व के देशों की वर्तमान तापक्रम प्रक्रिया में जबरदस्त बदलाव लाएगा, जिसके कारण ठंडे देश गर्मी की मार झेलेंगे तो गर्म उष्ण कटिबंधीय देशों में बेतहाशा गर्मी से जल संकट गहरा जाएगा और वृक्षों के अभाव में मानव-जीवन संकट में पड़ जाएगा। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम फलस्वरूप कृषि-'तंत्र प्रभावित होकर हमें कई सुलभ खाद्य पदार्थों की सहज उपलब्धि से वंचित कर सकता है। अंगूर, संतरा, स्ट्रॉबेरी, लीची, चैरी आदि फल ख्वाब में परिवर्तित हो सकते हैं। इसी प्रकार घोंघे, यूनियों, छोटी मछलियां, प्रास, बाइल्ड पेसिफिक सेलमान, स्कोलियो डोने जैसे कई जलचर तथा समुद्री खाद्य शैवाल मांसाहारियों के भोजन मीनू से बाहर हो सकते हैं। तापक्रम में वृद्धि के कारण वर्षा वनों में रहने वाले प्राणी तथा वनस्पति विलुप्त हो सकते हैं। हमारी सांस्कृतिक ऐतिहासिक धरोहरों को नुकसान पहुंच सकता है और हम पर्यटन के रूप में विकसित स्थलों से वंचित हो सकते हैं। वर्षों तक ठोस बर्फ

के रूप में जमे पहाड़ों की ढलानों पर स्कीइंग खेल का आनंद बर्फ के अभाव में स्वप्न हो सकता है। हॉकी, बेसबॉल, क्रिकेट, बैडमिंटन, टेनिस, गोल्फ आदि खेलों पर जंगलों में उपयुक्त लकड़ी का अभाव तथा खेल के मैदानों पर सूखे का दुष्प्रभाव देखने को मिल सकता है। विभिन्न खेलों में कार्यरत युवतियों की आजीविका छिनने से व्यभिचार और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिल सकता है। तापक्रम परिवर्तन के कारण अलग-थलग पड़े समुद्री जलचर अपनी सीमा लांघ सकते हैं तथा समुद्री सीमाओं को लांघकर अन्य जलचरों को हानि पहुंचा सकते हैं। वैश्विक तापक्रम वृद्धि के फलस्वरूप जंगली जीवों की प्रवृत्ति तथा व्यवहार में परिवर्तन होकर उनकी नस्लों की समाप्ति हो सकती है। प्रवजन पक्षी (माइग्रेटरी बर्ड्स) अपना रास्ता बदलकर भूख और प्यास से बदहाल हो सकते हैं। चिड़ियों की आवाजों से हम वंचित हो सकते हैं। सांप, मेढक तथा सरीसर्प प्रजाति के जीवों को जमीन के अंदर से निकलकर बाहर आने को बाध्य होना पड़ सकता है। पिघलते ध्रुवों पर रहने वाले स्लोथ बीयर जैसे बर्फीले प्रदेश के जीवों को नयी परिस्थितियों और पारिस्थितिकी से अनुकूलनता न होने के कारण अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ सकता है। बढ़ते तापमान के कारण उत्पन्न लू के थपेड़ों से जन-जीवन असामान्य रूप से परिवर्तित होकर हमारे पूर्वजों की दूरदर्शिता की याद के रूप में गहरे कुओं व बावड़ियों, कुइयों आदि के निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने हाल ही में जारी अपनी रिपोर्ट में वैश्विक जलवायु परिवर्तन के भावी परिदृश्य के रूप में बढ़ते तापमान के साथ बढ़ते प्रदूषण से बीमारियों विशेषतः हार्ट अटैक, मलेरिया, डेंगू, हैजा, एलर्जी तथा त्वचीय रोगों में वृद्धि के संकेत देकर विश्व की सरकारों को अपने स्वास्थ्य बजट में कम-से-कम 20 प्रतिशत वृद्धि करने की सलाह दी है। विभिन्न देशों के विदेश मंत्रालयों तथा सैन्य मुख्यालयों द्वारा जारी सूचनाओं में वैश्विक तापमान वृद्धि से विश्व के देशों की राष्ट्रीय सुरक्षा पर खतरे के मंडराने का संकेत दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ महासचिव (वान की मून) ने इसी वर्ष अपने प्रमुख भाषण में वैश्विक तापमान वृद्धि पर चिंता व्यक्त करते हुए इसे 'युद्ध' से भी अधिक खतरनाक बताया है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के भविष्य दर्शन के क्रम में यह स्पष्ट है कि पर्यावरण के प्रमुख जीवी घटकों हेतु अजीवीय घटकों वायु, जल और मृदा हेतु प्रमुख जनक वनों को तुरंत प्रभाव से काटे जाने से संपूर्ण संवैधानिक शक्ति के साथ मानवीय हित के लिए रोका जाए, ताकि बदलती जलवायु पर थोड़ा ही सही अंकुश तो लगाया जा सके। अन्यथा सुखते जलस्रोत, नमी मुक्त सूखती धरती, घटती ऑक्सीजन के साथ घटते धरती के प्रमुख तत्व, बढ़ता प्रदूषण, बढ़ती व्याधियां, पिघलते ग्लेशियरों के कारण बिन बुलाए मेहमान की तरह प्रकट होती प्राकृतिक आपदाएं मानव सभ्यता को कब विलुप्त कर देंगी, पता ही नहीं चल पाएगा। आवश्यकता है वैश्विक स्तर पर पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण के साथ प्रस्फुटित संतुलन का एकनिष्ट.भाव निहित हो।

राजेंद्र नगर,
बिलासपुर (छ.ग.)

मानव और पर्यावरण में अंतःक्रियात्मक संबंध

श्रीमती रेखा दुबे

सृष्टि के जीवों में मानव एकमात्र प्राणी है, जिसे यह योग्यता प्राप्त है कि वह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी क्रिया के द्वारा पर्यावरण के भौतिक परिवेश में परिवर्तन करके सांस्कृतिक परिवेश की रचना करता रहा है। मानव इतिहास के प्रारंभ से ही अपने चारों ओर के पर्यावरण में रुचि रखता आया है। आदिम समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अस्तित्व हेतु अपने पर्यावरण का समुचित ज्ञान आवश्यक होता था। मनुष्य ने अग्नि तथा अन्य यंत्रों का प्रयोग पर्यावरण को परिवर्तित करने के लिए सीखा। जांच और भूल विधि द्वारा मानव अपने पर्यावरणीय ज्ञान में वृद्धि करता रहा है। धीरे-धीरे पर्यावरण में संबंधित ज्ञान का भंडार इतना विस्तृत एवं वृहद् हो गया कि इसे विज्ञान का रूप दिया जा सकने की स्थिति आ गई और पर्यावरण अध्ययन के व्यवस्थित रूप 'पर्यावरण विज्ञान' का जन्म हुआ।

विगत सौ वर्षों में मानव ने आर्थिक, भौतिक तथा सामाजिक जीवन की प्रत्येक दिशा में प्रगति के लंबे-लंबे कदम उठाए हैं। उसका इन क्षेत्रों में प्रगति का मात्र एक उद्देश्य था—इससे उसका स्वयं का हित हो। उसने इस प्रगति के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। जीवों के चारों ओर की वस्तुएं जो उनकी जीवन-क्रियाओं को प्रभावित करती हैं, वातावरण का निर्माण करती हैं। यथार्थ में जीव और पर्यावरण अन्योन्याश्रित हैं। एक की दूसरे से पृथक् सत्ता की कल्पना करना असंभव है। सभी जीवों का अस्तित्व चारों ओर के पर्यावरण पर निर्भर करता है। पर्यावरण जीवों को आधार ही प्रदान नहीं करता, वरन् उनकी विभिन्न क्रियाओं के संचालन के लिए एक माध्यम का भी कार्य करता है।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति का मूल्य स्वयं मानव ने पर्यावरण की वृहद् समस्याएं उत्पन्न करके चुकाया है, जो जल-प्रदूषण, धुएं द्वारा प्रदूषण, घटते वन्य जीवन, पर्यावरण के पेस्टनाशियों द्वारा विषकरण, विकिरण के जैवीय दुष्प्रभावों, अस्थिर पारिस्थितिक तंत्रों, प्राकृतिक संपदा के दुरुपयोग, जनसंख्या में असामान्य वृद्धि, शहरीकरण, लोगों की छोटे-छोटे क्षेत्रों में बढ़ती भीड़ के रूप में दिखाई देती है। यह सब व्यक्तिगत तथा सामाजिक पर्यावरण को न समझ पाने तथा मानव एवं पर्यावरण की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया को न समझ पाने के फलस्वरूप ही हुआ है।

मानव और पर्यावरण की अन्योन्य क्रिया का अध्ययन करने के लिए इन्हें दो वर्गों में बांट सकते हैं—1. मानव और पर्यावरण-अन्योन्य क्रिया का कालिक पक्ष, 2. मानव और पर्यावरण-अन्योन्य क्रिया का स्थानिक पक्ष।

1. मानव और पर्यावरण अंतर्क्रिया का कालिक पक्ष

मानव और जीवमंडल के अंतर्संबंधों का कालिक पक्ष विविधतापूर्ण है। मनुष्य के अभ्युदय से लेकर आज तक की घटनाएं इंगित करती हैं कि इस सृष्टि के रचयिता ने संघर्ष टालने के उद्‌देश्य से सर्वाधिक जैविक गुण मानव में आरोपित कर उसे सर्वश्रेष्ठ जीव बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। यही कारण है कि मानव पर्यावरण का घटक और कारक बन गया। उसने अपने पौरुष, ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी, उद्यम और कल्पना-शक्ति के बल पर भौतिक परिवेश के साथ सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण किया है।

यह सांस्कृतिक भू-दृश्य की रचना क्रमिक विज्ञान को इंगित करती है। आखेट युग की तुलना में पशु-पालन का सांस्कृतिक स्वरूप भिन्न था। इसी प्रकार कृषि-युग की तुलना में प्रौद्योगिकी युग ने एक नये मोड़ पर खड़ा कर दिया है। झोपड़ी, घर और अट्टालिकाएं आवासीय उन्नति की प्रतीक हैं। आज जो समाज झोपड़ी से आगे नहीं बढ़ पाया है, उसे पिछड़ा, जो घर बनाकर कृषि और पशु-पालन करता है, वह अर्ध-विकसित तथा जो वस्तु निर्माण कर अट्टालिकाओं में रहता है, वह विकसित समाज कहलाता है। इन तीनों मानव-समाजों का संबंध प्रकृति के साथ समान नहीं है। पिछड़ा समाज प्रकृतिवादी है। उसकी आवश्यकताएं उतनी ही हैं, जितनी उसके परिवेश से पूरी हो सकें, लेकिन अर्ध-विकसित समाज प्रकृति को रिझाकर कुछ अधिक प्राप्त कर लेता है। इनकी तुलना में विकसित मानव प्रकृति से छीना-झपटी कर अपनी असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वह इतना संवेदनशील हो गया है कि प्रकृति उसके लिए उपभोग की वस्तु बन गई है। इसी अवधारणा के चलते आज मानव के सामने अपना ही अस्तित्व बचाने का प्रश्न आ खड़ा हुआ है, जो आगे चलकर एक गंभीर समस्या का रूप धारण करता जाएगा।

2. मानव और जीवमंडल अंतर्क्रिया का स्थानिक पक्ष

मानव सामाजिक प्राणी है। समाज अपने सदस्यों की जिम्मेदारी से आबद्ध होने के कारण सामूहिक कर्तव्य और दायित्व का निर्वाह करता है। इसके लिए वह अनुकूल क्षेत्रों का चयन करता है और संपूर्ण समाज की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्यावरण पर प्रभाव डालता है। चूंकि मनुष्य अपने ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी उपकरणों से सुसज्जित होता है, अतः वह प्रकृति के साधनों का मनोनुकूल उपयोग करता है और प्रकृति और समाज की यह अंतर्प्रक्रिया सामाजिक पारिस्थितिकी कहलाती है। सामाजिक पारिस्थितिकी संपूर्ण भौतिक और सामाजिक नियमों और व्यवस्थाओं का समुच्चय है। यह विश्वव्यापी सिद्धांत है।

इन समस्त बातों से पता चलता है कि मानव समाज की अंतर्प्रक्रिया में जनसंख्या, विकास का स्तर, सांस्कृतिक विरासत, रीति-रिवाज, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक विचार, ज्ञान-विज्ञान और तकनीक उपलब्धियां आधारभूत कारक हैं, जिनके अनुसार मानव समाज-क्षेत्रीय

आधार पर सांस्कृतिक-स्तर का निर्माण करता है। अतः मानव समाज अपनी उपलब्धियों के सहारे भौतिक परिवेश में अंतर्प्रक्रिया कर सांस्कृतिक परिवेश या सांस्कृतिक भू-दृश्य की रचना करता है। यही उसकी पहचान का आधार है। फलतः वह अपने द्वारा परिसीमित क्षेत्र को बहुउपयोगी, अतिसुंदर, स्वस्थ और श्रेष्ठतम् बनाने का प्रयास करता है। इसके लिए वह अपनी तकनीकी उपलब्धि से संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग कर लाभदायक उत्पादन करता है ताकि समाज स्वस्थ और सुखी रह सके। जो समाज अपने क्षेत्र के संसाधनों के उपयोग में पिछड़ जाता है, वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अन्य समाज पर निर्भर रहता है या भुखमरी, अज्ञानता, अस्वस्थता और परतंत्रता में उलझ जाता है। इस प्रकार पर मानव समाज क्षेत्रीय स्तर विकसित, विकासशील और अविकसित स्तरों में बंट जाने से सांस्कृतिक परिमंडलों की विशिष्टताएं मानव-पर्यावरण अंतर्संबंधों पर आधारित होती हैं। विश्व आज अनेक सांस्कृतिक परिमंडलों में विभक्त है, जैसे—आंग्ल-अमेरिकी परिमंडल, अफ्रीकी परिमंडल, अरब परिमंडल, पश्चिमी यूरोपीय परिमंडल, पूर्वी एशियाई परिमंडल, ऑस्ट्रेलियाई परिमंडल, दक्षिण-पूर्वी एशियाई परिमंडल। इन सभी सांस्कृतिक परिमंडलों में मानव समाज के स्वरूप में आधारभूत अंतर देखने को मिलता है। इसी अंतर के कारण मानव समाज विकसित, विकासशील और अविकसित वर्गों में बंट गया है। विकसित समाज को आर्थिक समाज कहा जा सकता है। ऐसे समाज में आर्थिक मानव और तकनीकी मानव का प्राधान्य है, जो प्रकृति को भोग्या के रूप में उपयोग करते हैं। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए किसी सीमा को स्वीकार नहीं करते। परिणामतः ऐसे समाज में बिगड़ते संबंध पर्यावरण के ह्रास का कारण बनते जा रहे हैं। इसके लिए भौतिक सुख-सुविधा का संचयन जीवन का परम् लक्ष्य है, भले इसके कारण पर्यावरण नष्ट हो जाए, विकसित समाज ने सबसे अधिक संसाधनों का दोहन किया है और प्रकृति के रूप को विकृत किया है। आज औद्योगिक देशों में अम्ल वर्षा, नयी-नयी बीमारियां, पुरानी बीमारियों की गहनता, ऊर्जा संकट, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, स्थल प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण और संसाधन भंडारों का तेजी से घटाव सामान्य चर्चा के विषय बन गए हैं। मौसम का बिगड़ता स्वरूप, विविध प्राकृतिक प्रकोप और जीवन के आधार तत्वों की गुणवत्ता में ह्रास के सामने घुटना टेकने ही एकमात्र उसका उपाय रह गया है।

प्रकृति मानव की सहचरी है। प्रकृति स्वभावतः संतुलित पर्यावरण के द्वारा मानव को स्वस्थ-जीवन प्रदान करती है। हमारे ऋषि-मुनि प्रकृति की सुरक्षा और विकास के लिए प्रतिबद्ध थे। यज्ञ द्वारा वायु प्रदूषण को समाप्त करके पर्यावरण को शुद्ध किए जाने की वैज्ञानिक विधि से वे विज्ञ थे। उन्हें यह भी ज्ञात था कि प्रकृति, स्वाभाविक रूप से जो कुछ अतिरिक्त या अपच है, उसे बाहर करके अपने आपको संतुलित कर लेती है। ज्वालामुखी द्वारा यह धरती हमें जो कुछ भी प्रदान करती है, उसी के उपभोग के हम अधिकारी होते हैं। ऋषि-मुनियों के इस परिज्ञान से पृथक् आज मानव स्वार्थ की अंधी दौड़ में प्रकृति को विनष्ट करने में तुला है। उसका दोहन करके वह सारी उपलब्धियां तत्काल प्राप्त कर लेना चाहता है। प्रकृति की इस छेड़छाड़ से पर्यावरण बिगड़ता है, तदनुरूप नाना-प्रकार के विकार प्रकट होते हैं। मनुष्य को इस भौतिकवादी दृष्टि और अतिरिक्त वृत्ति को छोड़ना होगा। दुर्भाग्य है कि आज न वन बचे हैं, न वन्यजीवन सुरक्षित

बचा है। ग्रामों में चरागाह, भूखंड की अनुपलब्धि से, गौपालन का एक महत्वपूर्ण उद्योग, अब संकट की स्थिति में आ गया है। उद्योग-उद्योगों के उत्सर्जित रासायनिक पदार्थ धूल, धुआं एक ओर जहां पृथ्वी की उर्वरता को समाप्त कर रहे हैं, वहीं उपयोगी जल को भी विषाक्त कर रहे हैं। धूल और धुएं से जो प्रदूषण विकसित हो रहे हैं, वे नानाविध संक्रामक रोगों को जन्म देकर मनुष्य के जीवन को नारकीय बना रहे हैं। इन सबके प्रति जागरूकता आज के समय की मांग है।

(मिनी हॉस्टल की बगल में),
पुराना सरकंडा,
बिलासपुर-495001 (छ.ग.)

पर्यावरण अध्ययन की अनुशासनात्मक प्रकृति, क्षेत्र तथा महत्व

कु. अश्मिका तिवारी

'प्रदूषण' का शाब्दिक अर्थ है मालिन्य या दूषित करना। प्रदूषण की सही मायने में परिभाषा उसके शाब्दिक अर्थ से अधिक गहरी तथा विचारणीय है। प्रदूषण एक मानव निर्मित कृत्य है, न केवल उसके परिवेश, बल्कि स्वयं उसकी अंतरात्मा को दूषित करता है। प्रदूषण इसलिए एक ऐसा अहम् मुद्दा है, जिस पर पर्याप्त अध्ययन एवं चिंतन की आवश्यकता है।

प्रतिदिन अखबारों में, किताबों में, पुस्तिकाओं में हम, पर्यावरण संबंधी विशेष सामग्री तथा प्रदूषण से जुड़ा बेहद संगीन लेख पढ़ते रहते हैं, परंतु हर मनुष्य यह अवश्य जानता है कि वह जिन आंकड़ों तथा प्रभावों को पढ़ रहा है, वे सिर्फ असलियत का एक हिस्सा हैं। मनुष्य एक ऐसा जीव है, जिस पर उसके आस-पास हो रहे बदलाव से असर तो पड़ता है, परंतु वह अपने विचारों को सकुंचित कर आगे बढ़ने में विश्वास रखता है। इसलिए कह सकते हैं कि प्रदूषण मानव के मस्तिष्क की उपज है, जिसकी रचना करके वह अपने जीवन के भविष्य की तरफ गतिमान हो चुका है। धरती स्वयं वर्तुलाकार है और सूर्य के चारों ओर एक चक्राकार पथ पर घूमती है, परंतु इस गति के साथ-साथ वह मानव-निर्मित चक्रव्यूह में फंसती चली जा रही है। इस चक्रव्यूह में धरती माता को न केवल शारीरिक किंतु आत्मिक विपदाओं से भी युद्ध करना पड़ रहा है, क्योंकि एक मां का स्वयं के पुत्रों को एक प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखना आंतरिक आघात है।

इस लेख में भी आंकड़ों, विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे विभिन्न प्रकार के प्रदूषण, प्रदूषण से उत्पन्न हो रही जटिल समस्याएं और व्यवधान, प्रदूषण से हो रही बीमारियों इत्यादि अनेक प्रकार की चीजों का व्याख्यान किया जा सकता है, परंतु अहम् विषय-वस्तु प्रदूषण है, जो केवल मनुष्य के आस-पास हो रहे प्रदूषण से ही नहीं, बल्कि हृदय से जुड़े तारों से भी संबंध रखती है। मनुष्य का जीवन तीन अहम् भूमिकाओं से बना है—आस्था, निष्ठा और प्रतिष्ठा, जिसके लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है।

'आस्था' इंसान के जीवन में लयबद्धता लाती है। उसे जिस कार्य पर पूर्णतः विश्वास रहता है, वह उस कार्य को पूरी जीवटता से करता है। आस्था मनुष्य के विश्वास को प्रतिबिंबित करता है, चाहे वह परमपिता पर ही क्यों न हो। आस्तिकता का प्रतीक हो या अन्य कोई और वस्तु हो, परंतु मनुष्य यह भूल जाता है कि क्या आस्था अंधी तो नहीं? वह उसे एक ऐसे अंधकार में तो नहीं डाल रही, जहां रोशनी की उम्मीद भी नहीं? यह

एक राक्षसी हंसी तो नहीं, जो अधर्मी बोलों से उसे आकर्षित तो नहीं कर रही? क्या वह आस्था के नाम पर प्रदूषण के सागर में गोते तो नहीं लगा रहा? दैविक भक्ति मनुष्य जाति की एक तरह की आस्था है, परंतु इसी ईश्वरीय भक्ति से वह पर्यावरण को हानि पहुंचा रहा है। अखंड विश्व में भक्ति का आवरण है ही। वह जन्म से मृत्यु तक का सफर परमात्मा के समक्ष शीश झुकाकर प्रारंभ तथा अंत तक किया करता है। परंतु इस यात्रा में यात्रीगण अवश्य ही भूल जाते हैं कि वह प्राकृतिक संपदाओं को नष्ट कर रहे हैं, जैसे शिशु के इस धरती पर जन्म लेते ही माता-पिता की सारी आकांक्षाएं उससे जुड़ जाती हैं, वे दोनों उसकी हर इच्छा सम्माननीय रूप से पूरा करना चाहते हैं, जिसमें हर उम्र के अनुरूप उसे हर वह चीज का उपभोग कराया जाता है, जो उसके लिए आवश्यक भी नहीं है। जैसे खेल-कूद की उम्र में नन्हें हाथों में वीडियो गेम, इलेक्ट्रॉनिक साइकिल पकड़ा दी जाती है, जो ऊर्जा को नष्ट कर रही है। मनुष्य के मस्तिष्क में अनेक न्यूट्रान कोशिकाएं हैं, जिनका क्षय होता है। इसके कारण दादी की कहानी से जो ऊर्जा प्राप्त होती है, इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के कारण न्यूट्रॉन बढ़ने की बजाय घटते जाते हैं, जिससे याददाश्त कम होती जाती है। बारह-तेरह वर्ष की उम्र में बच्चों को मोटर साइकिल दे दी जाती है, जो न केवल दूषित धुएं का स्रोत है तथा हादसों का एक कारण भी है। खैर, यह सब माता-पिता की इच्छाएं एवं आस्था को तो नहीं दर्शाती, परंतु अवश्य ही प्रदूषण के विभिन्न कारणों में से एक हैं। आस्था को ईश्वरीय भक्ति का नाम देकर ऐसे उपभोग किया जाता है, जैसे शिशु के जन्म के उपरांत माता-पिता यज्ञ तथा हवन करने में विश्वास रखते, दिखावे के स्वरूप वृहद् मात्रा में भोजन कराने हेतु सैकड़ों लोगों को आमंत्रित करते हैं। हवन में पेड़ों की काटी हुई लकड़ियों तथा भोजन में व्यर्थ का अनाज नष्ट होता है। क्या यह एक तरह का प्रदूषण नहीं, जो आस्था के नाम पर शिशु के कोमल भावों से नाता बताकर धरती को दूषित कर रहा है? क्या यह अंतरात्मा का प्रदूषण नहीं, जो यह चीख-चीखकर कह रहा है कि इस दिखावे के आंडबर को रोको।

क्या हमने सोचा है कि 'बफे' प्रक्रिया में भोजन कैसे किया जाता है? क्या मनुष्य अपनी इस पातकी सोच का प्रदूषण नहीं बना रहा? शिशु जन्म की तो अपनी ही एक आस्था है, परंतु मृत्यु तो दुःख का प्रतिरूप है, परंतु मानव इस पर भी आस्था का रंग लगाकर एक अद्भुत तस्वीर बनाकर नीलामी के लिए पेश कर देता है। भारतीय समाज में पुत्र का पिता की मृत्यु के पश्चात् संपत्ति पर अधिकार होता है। परंतु उस संपत्ति का अधिकार पाने हेतु वह कोर्ट-कचहरी के इतने चक्कर लगाता है मानों स्वयं का जीवन में लक्ष्य ही नहीं कि स्वयं वह अपने खर्चे उठा सके, लेकिन कोर्ट-कचहरी की फीस चुकाना अनिवार्य है। क्या यह एक आंतरिक प्रदूषण नहीं, जो पिता-पुत्र के पवित्र संबंधों को दूषित कर रहा है? मृत्यु भी पर्यावरण को प्रदूषित करने में पूर्ण सहभागी है। हिंदुओं के विभिन्न धर्म ग्रंथों में यह लिखित रूप से मौजूद है कि मृतक की चिता जलाकर उसकी अस्थियों को गंगा के पवित्र जल में विसर्जित किया जाए। आज भारत देश की जीवन गंगा मैया का नीर जो अतृप्त आत्मा को पवित्र कर स्वर्ग का पथ-प्रदर्शक है, इतना विषैला हो चुका है कि स्वयं मनुष्य ही उसके प्रयोग से स्वर्ग का आधा रास्ता तय कर लेता है। नवरात्रि के पावन पर्व पर जहां आस्था हर मनुष्य के हृदय में बहती रहती है, वह प्रदूषण का साक्षी

बना रही है। हजारों की संख्या में ज्योति जलाकर देवी मां को अर्पित की जाती हैं। इन दीयों में क्या सचमुच शुद्ध तेल का उपयोग किया जाता है, जिससे पर्यावरण को स्वच्छ किया जाए। यदि एक बार मान भी लिया जाए कि दीयों से हुई रोशनी में शुद्ध तेल का उपयोग किया जाता है, परंतु क्या वह तेल जो आम आदमी में वितरित किया जाता है, भोजन बनाने हेतु, वह दीपों में इस्तेमाल किए गए हजारों लीटर तेल की ही भांति अस्वच्छ व विषैला नहीं है। कहां से आता है इतनी कम उपज तैलीय पदार्थों से हजारों लीटर तेल? क्या यह विचारणीय प्रश्न नहीं है कि जिस देश में कुछ जीवन दो वक्त की रोटी को तरसते हैं, वहां इंसान आस्था का सहारा लेकर हजारों की संख्या में खाद्य पदार्थों का नाश कर दिया जाता है? क्या यह प्रदूषण को प्रतिबिंबित करत एक दर्पण नहीं है। भगवान् पर चढ़ाए गए आस्था के फूल जब मुरझाकर खराब हो जाते हैं तो उन्हें भी पवित्र नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। ऐसी आस्था का क्या लाभ जो पर्यावरण को हानि के गर्त में पहुंचा रही हो। क्या इस अंधी आस्था के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेदार नहीं? क्या उसे सदियों से चली आ रही व्यर्थ की परंपराओं और दिखावे के बंधन से उत्पन्न हुए प्रदूषण को दूर नहीं करना चाहिए। क्या पर्यावरण से प्रदूषण दूर करने से पहले इस आस्था के नाम पर अपने हृदय में बसे प्रदूषण को मनुष्य को स्वच्छ नहीं करना चाहिए? ऐसे अनेक प्रश्न हमें मनुष्य जीवन की दूसरी भूमिका के समक्ष लाकर खड़ा करते हैं।

मनुष्य-जीवन की दूसरी भूमिका है 'निष्ठा'। निष्ठा मानव को कर्मठ बनाती है। अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठा रखने वाला व्यक्ति हमेशा अपने जीवन में अग्रसर रहता है। परंतु प्रश्न यह है कि कर्तव्य निष्ठा सच के प्रति है या झूठ के प्रति? यह निष्ठा पर एक प्रश्नचिह्न लगा देता है। प्रदूषण के हाथ निष्ठा तक भी पहुंच चुके हैं और निष्ठा भी अछूती नहीं रही है। मनुष्य हमेशा अपनी कल्पनाओं की उड़ान भरना चाहता है तथा अपनी कर्मठता तथा कर्तव्यनिष्ठा उसी दिशा में, और पूरी शक्ति के साथ लगाना चाहता है। परंतु हमेशा वह संभव नहीं है। पथ में आई कठिनाइयों से मनुष्य अपने सच के पथ पर से दिग्भ्रमित हो जाता है और प्रदूषण के आगोश में चला जाता है। अनेक कार्य हैं जहां मानव अपनी गतिमान बुद्धि तथा तंदुरुस्त शरीर का पूरा उपयोग करता है, परंतु आज के इस भागमभाग जीवन में जहां सांस लेने को इंसान को फुर्सत नहीं, वहां कर्तव्यनिष्ठा का भाषण महज एक चुटकुला लगता है। समय का इतनी तेज गति से चलना मनुष्य जीवन की सच्चाई, प्रेम, विश्वास से जुड़ी इच्छाओं और सपनों को रौंदता चला जा रहा है। और इन्हीं कारणों से मनुष्य को स्वार्थ लोलुपता, बाह्य आडंबर, असत्य, क्रोध, चिंता और आलस्य से बने प्रदूषण की शरण में जाना पड़ रहा है। आज के इस समाज में कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को जीवन में क्या मिला है? सिर्फ कार्यभार का बोझ, जो उसकी कमर पर लाद दिया गया है, जिसे उसकी कमजोर पीठ उठा भी नहीं पा रही। सरकारी मेजों पर सालों से बंद पड़ी फाइलें जो कर्तव्यनिष्ठ अफसरों की पदोन्नति की सूची रखतीं, आज धूल खा रही हैं। लोग फाइलों में नियमानुसार कार्य करने के बदले कवि-लेखक बन गए हैं। बिलासपुर जिले में एक श्रम न्यायालय के मजिस्ट्रेट एवं एक कमिश्नर ऐसे हुआ करते थे, जो न्याय-कार्य में कम समय देतेमें कम, किताबें ज्यादा लिखते थे। संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत सामान्य से कम ईमानदार तथा नौसिखिए अफसर आरक्षण के नाम पर पदोन्नति के उपहार को

ग्रहण करते जा रहे हैं। क्या यह प्रदूषण का एक हिस्सा नहीं? मूलतः प्रदूषण जो फैला हुआ है, वह मुद्राओं का एक घिनौना खेल है, जहां मनुष्य धन के वजन से, सामने वाले मनुष्य के मन को तौल सकता है, वहां काम निकालकर आगे बढ़ सकता है। अब तो ऐसी स्थिति आ चुकी है कि यदि कोई मनुष्य राजनीतिज्ञों के शरीर पर स्वर्ण की परत चढ़ाने की क्षमता रखता है, तभी वह सुखमय जीवन जीने की परिकल्पना कर सकता है। चाहे वह अपना कार्य पूर्णनिष्ठा से क्यों न करे। इस प्रदूषण को केवल सरकारी महकमें में गिनना गलत होगा, क्योंकि आज लगभग सारे क्षेत्र इस प्रदूषण से अछूते नहीं हैं। सामर्थ्यवान व्यक्ति को भी अपनी योग्यता के अनुरूप फल प्राप्त नहीं होता, क्योंकि आज 'निष्ठा' चाटुकारिता करने में तथा चापलूसी करने की साक्षरता मांगती है। केवल भारत को ही लोकतांत्रिक व्यवस्था से प्रदूषित हुए इस निष्ठा के प्रदूषण का भागीदार नहीं गिना जा सकता, चीन, पाकिस्तान, थाईलैंड इत्यादि भी इस प्रदूषण को फैलाने के उतने ही जिम्मेदार हैं। चीन में हड़ताल एवं बंद की सख्त मनाही है, इसलिए वहां के मजदूर किसी भी वस्तु का इतना निर्माण करते हैं कि जिसको रखने तक की भूमि की कमी पड़ जाती है। इलेक्ट्रॉनिक सामान इतने घटिया, जिसे उत्तमता का बनाकर भारतीय बाजार में बेचते हैं कि न वह इस्तेमाल किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है। ऐसी कर्तव्यनिष्ठा भी किस काम की, जो प्रदूषण के लिए जिम्मेदार है। निष्ठा की कोख में प्रदूषण का पनपना मनुष्य जाति के कर्मों का ही फल है। अन्य देशों में हो रहे प्रदूषण को एक दरकिनार कर भारत की आंतरिक परिस्थिति को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के पेशे पर हमेशा धर्म और समाज की बेड़िया पहना दी जाती हैं (नाई का बेटा नाई, बढ़ई का बेटा बढ़ई)। इसका उदाहरण दिया जा सकता है कि कुछ समय पूर्व 'बाबा रामदेव' पर यह आरोप लगाए गए कि पतंजलि योगपीठ में बनी औषधियों में मानव-हड्डी का उपयोग होकर 'हड्डी भस्म' बनाई जा रही है, इस आरोप से पर्यावरण प्रेमीजन विचलित हुए होंगे, लेकिन सोचा गया कि गाय को माता के रूप में देखते हुए जिसका हर अंग (विसर्जित भी) स्वयं में एक औषधि है। गाय की हड्डियां कैल्शियम की अच्छी स्रोत मानी गई हैं तो मानव हड्डी भी तो कैल्शियम का अच्छा स्रोत हो सकती हैं, लेकिन मानव द्वारा मानव को खा जाने की प्रक्रिया में देखा गया। उल्लेखनीय है कि राख से अच्छा सुपरफास्फेट बनता है। एक बहुत बड़े राजनेता द्वारा अपनी अंतिम इच्छा में व्यक्त किया गया था, उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शरीर की राख भारत के दूर-दूर के खेतों में डाली जाए, जहां भारत माता निर्वासित है। स्व. प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल मृत्यु उपरांत भी जन-कल्याण के बारे में सोचते थे। पिछले दिनों समाचार-पत्रों में पढ़ा कि एक प्रोफेसर, जो राजनीति में प्रवेश कर मंत्री पद पर आसीन रहे, के द्वारा अपना मृत शरीर मेडिकल कॉलेज में अध्ययन हेतु दान कर दिया गया है। क्या मानव-कल्याण के लिए मृत शरीर का उपयोग नहीं करना चाहिए? क्या देश/ मानव जाति के लिए इस निष्ठा का हमें सम्मान नहीं करना चाहिए? पक्ष-विपक्ष, धर्म-अधर्म के नाम पर मनुष्य सामाजिक हितों को भूलकर केवल स्वार्थलिप्सा का सौंदर्यीकरण करेगा तो क्या प्रदूषण को दूर कर सकेगा? अतः यह कहा जा सकता है कि निष्ठा का बेहद गहरा संबंध धन से है, चाहे वह बनाने में उपयोग हो या बिगाड़ने में। क्या निष्ठा का सहारा लेकर यह हरी पत्ती की बेल प्रदूषण

तक का रास्ता नहीं बना रही है? क्या मनुष्य का अपने कर्म के प्रति परित्याग व्यर्थ है? क्योंकि वह देश के रखवाले कहलाने वाले छलियों की तिजोरी भरने में अक्षम्य है? क्या अंतरात्मा के प्रदूषण का प्रकोप निष्ठा पर उतना ही पड़ रहा है, जितना आकाशीय बिजली का प्रकोप धरती पर रखी एक लौह वस्तु पर पड़ता है, इस तरह मनुष्य की आखिरी भूमिका के कपाट यहां खुलते हैं।

तीसरी तथा अंत की भूमिका है 'प्रतिष्ठा'। प्रतिष्ठा मानव-जीवन की गरिमा को दर्शाती है। वह जितना गरिमामय जीवन जीना चाहता है, वह उतना ही अपनी सुख की गठरी भरता जाता है। एक समय तो ऐसा लगता है कि प्रतिष्ठा का प्रदूषण से दूर-दूर तक नाता नहीं है, परंतु यह पंक्ति अपनी जगह सही व गलत दोनों है। प्रतिष्ठा मनुष्य का स्वयं के लिए भाव है, जो उसके आंतरिक मन में स्वयं ही पल्लवित होती है। इसी एक प्रतिष्ठा की तुलना वह सिर्फ स्वयं के मान-सम्मान से करता है और यही वजह है कि प्रतिष्ठा भी प्रदूषण की उतनी ही भागीदार बनती है, जितनी की 'आस्था' और 'निष्ठा'। किसी भी परिवेश में मनुष्य का पालन-पोषण हुआ हो, परंतु वह अपनी प्रतिष्ठा के लिए हमेशा सक्रिय रहता है। वह हमेशा मान-सम्मान के तीखे व्यंजन को चखने की चेष्टा जरूर करता है, इसी वजह से वह प्रदूषण की ओर कदम बढ़ाने लगता है। इसके अनेक उदाहरण। जैसे, भारतीय परिवेश में गृह-निर्माण, गृहस्थाश्रम की महत्वपूर्ण उपयोगिता भी है और प्रतिष्ठा का प्रश्न भी है। भारतीय निवासी अनुपयोगिता के अनुरूप गृह-निर्माण किया करते हैं, रहना दो लोगों को, परंतु गृह इतना बड़ा कि पूरी फौज समा जाए। क्या यह भूमि, मजदूरी तथा निर्माण वस्तु का व्यर्थ का नाश नहीं है। खैर, गृह निर्माण में कम-से-कम रहने का तो एक आसरा मिल जाता है, परंतु प्रतिष्ठा के नाम पर अनेक गाड़ियां खरीदी जा रही हैं, जिनमें पेट्रोल की खपत भी ज्यादा तथा धुएं से प्रदूषण सो अलग। प्रतिष्ठा के नाम पर गरीब पिता की पुत्री के विवाह को भी बाहरी आडंबरों से सजाना पड़ता है। झूठी प्रतिष्ठा के नाम पर दूल्हा लाखों के खर्चे की सूची बनवा लेता है, जिसको एक सरल नाम प्रदान किया जा चुका है 'दहेज'। प्रतिष्ठा के नाम पर एक नेता अपनी आमदनी से कई गुना अधिक दर्जनों कारों की सवारी करता है तथा चुनाव में करोड़ों का गोरखधंधा करके कुर्सी के लालच से स्वयं को बचा नहीं पाता। 'प्रतिष्ठा' तो आजकल शायद शिशु मां की कोख से ही मन के भीतर उपजा कर आता है। दुधमुंहे बच्चे भी आजकल महंगी टॉफी, महंगी चॉकलेट इत्यादि की जिद अपने माता-पिता के समक्ष चाय-नाश्ते-सी परोस देते हैं। प्रतिष्ठा तो आजकल परिधानों से भी टपकती है। ब्रांड के नाम पर युवक-युवतियां अपने कपड़ों पर हजारों रुपये बर्बाद कर देते हैं, जबकि सस्ते से भी काम चलाया जा सकता है। प्रतिष्ठा भी इसी वजह से उतने ही अंक प्राप्त करती है, जितने प्रदूषण की परीक्षा में उत्तीर्ण होने हेतु आवश्यक हैं। यह तो दिनचर्या की प्रतिष्ठा है, जिसे मनुष्य ने आत्मसात् कर लिया है। प्रतिष्ठा से उत्पन्न प्रदूषण सिर्फ भारत में नहीं, परंतु अमेरिका, इंग्लैंड इत्यादि देशों को भी अपनी पोटली भरता है। अमेरिका सिर्फ अपनी प्रतिष्ठा के कारण ही तो आज 9/11 के दुःख को झेल रहा है। सिर्फ इस झूठी शान के कारण आतंकवादियों का निशाना अमेरिका की ओर है। विभिन्न बम धमाके, मानव का मानव से बैर, परमाणु हस्तक्षेप, अफगानिस्तान से युद्ध, ईराक से युद्ध आदि यह सब प्रतिष्ठा के नाम पर तानाशाही सोच का नतीजा है।

इस असत्य प्राण-प्रतिष्ठा से हुए दो विश्वयुद्ध तथा अनेक गृहयुद्धों से पर्यावरण का इतना नाश हुआ, जिसकी भरपाई आज तक हिरोशिमा और नागासाकीवासियों को करनी पड़ रही है। क्या यह प्रदूषण सागर में बोझिल हो रही डूबते सूर्य की लालिमा को दर्शाता है? क्या यह प्रदूषण धरती की अश्रुपूरित जीवन की व्याख्या नहीं करता? क्या प्रतिष्ठा का बोझ एक मासूम पुत्री और उसके निर्मल पिता पर सदियों तक रहेगा? क्या प्रतिष्ठा के नाम पर हुई निर्मम हत्याएं शहीदी का इंतजार करती रहेंगी? यह सब प्रदूषण से हाथ मिलाए मनुष्य के विभिन्न चेहरे हैं।

अंततः प्रदूषण पर्यावरण का नहीं, परंतु मनुष्य के मस्तिष्क से निकला आग का गोला है, जो अपनी गर्माहट से प्यारी धरती की प्यास बढ़ा रहा है। जरूरत है, मनुष्य को अपने विचारों में बदलाव लाने की। जीवन तो चल ही रहा है और आगे भी चल ही जाएगा, परंतु लक्ष्य होना चाहिए कि आगे की पीढ़ी को स्वच्छ सृष्टि दी जाए, न कि प्रदूषण की गोद, जिससे वह चाहे भी तो न उबर पाए। अगर हर मनुष्य अपने हिस्से का कार्य पूर्ण आस्था, निष्ठा और प्रतिष्ठा के साथ करे तो वह धरती में प्रदूषण से बढ़ी प्यास को अपनी सोच की बारिश से बुझा सकता है। जरूरत है सिर्फ एक नेक कदम की, जो परम् पिता के बंदों को परम् पिता के दिखाए पथ पर आगे बढ़ा सके। अगर मनुष्य ही घबराकर भयग्रसित हो जाएगा तो प्रदूषण रूपी हैवान से युद्ध कैसे करेगा? अंततः सिर्फ विश्वास की नींव पर मनुष्य को स्वच्छ जीवन का निर्माण करना चाहिए जिसमें वह यह प्रतिज्ञा ले कि वह प्रदूषण की परछाईं भी अपने जीवन में नहीं पड़ने देगा तथा ईश्वरीय आराधना के साथ सुखमय जीवन की मजबूत बस्ती बनाएगा।

बी-14, नेहरू नगर,
बिलासपुर (छ.ग.)

गौपालन कर्म से विमुखता : पर्यावरण-नाश का कारण

डॉ. बृजेश सिंह

भारतवर्ष आदिकाल से ही कृषि-प्रधान देश रहा है। वैदिक आर्य-ग्रंथों में अनेकशः तत्संबंधी वर्णन मिलते हैं। राष्ट्र की संपूर्ण जनसंख्या के लगभग अस्सी प्रतिशत भाग की जीविका के उपार्जन का साधन पूर्णरूपेण कृषि पर आधारित है। अतः कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के सुदृढ़िकरण व युक्तियुक्त व्यवस्थापन से ही देश समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा। यह सुनिश्चित है कि राष्ट्र की संपूर्ण जनसंख्या का अधिकांश, जो कृषि पर निर्भर है, को स्वावलंबी बनाए बगैर भारतवर्ष की समग्र प्रगति की परिकल्पना हास्यास्पद होगी।

हरित-क्रांति के नाम पर जिस प्रकार मनमाने ढंग से रासायनिक खादों का प्रयोग किया गया, उसका दुष्परिणाम प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होने लगा है तथा खेतों की उर्वराशक्ति दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। यदि यह क्रम अनवरत् जारी रहा तो वह दिन दूर नहीं, जब अधिकांश खेत बंजर प्रायः होकर निर्जीव हो जाएंगे। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् शासन स्तर पर कृषि-कार्य संपादित करने के लिए ट्रैक्टरों की खरीद पर उल्लेखनीय छूट प्रदान कर किसानों को प्रोत्साहित किया गया। ट्रैक्टर से कृषि कार्य संपादित करने के अतिवाद में गौवंश की उपेक्षा की जाने लगी। गांव-गांव में बड़ी संख्या में ट्रैक्टर चलने लगे। अत्यधिक संख्या में तथा सहज उपलब्ध होने के कारण किसानों को बैल पालना अहितकारी महसूस होने लगा।

ट्रैक्टर से कृषि-कार्य संचालित होने के कारण निश्चित रूप से बड़े जोत के किसानों को सामयिक ही सही, पर लाभ प्राप्त हुआ। परंतु मध्यम व छोटी जोत के किसानों को अनेक दुश्वारियों का सामना करना पड़ रहा है। स्वयं के दम पर ट्रैक्टर खरीदना उनके वश की बात नहीं है। अतः अधिकांश छोटे किसान किराए पर ट्रैक्टर लेकर कृषि-कार्य संपादित कर रहे हैं। श्रम से बचने तथा संक्षिप्त मार्ग पर चलने की हड़बड़ी में छोटे व मध्यम जोत के किसानों ने अपने पांव पर कुल्हाड़ी मार ली। गौपालन के प्रति उदासीनता ने कृषि जैसे महत्वपूर्ण कार्य को पंगु बना दिया। इसका दुष्परिणाम यह रहा कि गोबर खाद के अभाव में खेत की उपजाऊ शक्ति दिन-प्रतिदन नष्ट होती जा रही है। रासायनिक खाद के अनियंत्रित एवं अंधाधुंध प्रयोग से खेत बंजर होने के कगार पर पहुंच रहे हैं। अत्यधिक उत्पादन लेने के प्रलोभन में रासायनिक खादों की मात्रा बढ़ा दी जाती है, जिसके फलस्वरूप

उत्पादित अन्न, फल व सब्जियां मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। वर्तमान समय में मानव की अधिकांश बीमारियों का कारण खतरनाक कीटनाशकों व रासायनिक खाद के प्रयोग से उत्पन्न उत्पादों के सेवन को कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। देर-सवेर कभी-न-कभी लोगों की तंद्रा समाप्त होगी तथा गोबर से बनी खाद हमारी कृषि-क्रांति का प्रमुख आधार बनेगी। कृषि-कार्य में प्रयुक्त जहरीले कीटनाशकों का वास्तविक विकल्प गोमूत्र के साथ नीम पत्ती का सही अनुपात में बनाया घोल ही हो सकता है। इस संबंध में अनेक सफल प्रयोग किए जाते रहे हैं। इसी प्रकार रासायनिक खाद की जगह गोबर की खाद का प्रयोग कर अनेक बीमारियों से बचा जा सकता है, खेत की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। यह परखा हुआ सर्वश्रेष्ठ व सस्ता उपाय है।

आने वाले समय में ऊर्जा की समस्या भयावह रूप धारण करने वाली है। भारत के अधिकांश ग्रामीण अंचल में विद्युत अत्यल्प समय तक उपलब्ध हो पाती है। विद्युत उत्पादन का बहुत बड़ा भाग औद्योगिक संस्थानों व नगरीय क्षेत्रों में ही खप जाता है। भविष्य में केवल शहरों की संपूर्ण मांग की विद्युत आपूर्ति करना संभव नहीं हो सकेगा, अतएव वैकल्पिक रास्तों की तलाश अपरिहार्यता है।

वर्तमान समय या कुछ समय पूर्व तक कृषि कार्य-पद्धति में सामान्यतया बैल का उपयोग साल में 60-70 दिन ही किया जाता रहा है। भोपाल स्थित अनुसंधानशाला में एक ऐसे उपकरण का आविष्कार किया गया है, जिसमें बैलों को वृत्ताकार मार्ग में चलाकर 800-1000 चक्कर की गति प्रति घंटे मिल जाती है। संपूर्ण भारतवर्ष में यदि योजनाबद्ध ढंग से कार्य किया जाए तो इस उपकरण से विपुल मात्रा में विद्युत उत्पादन किया जा सकता है। निश्चित ही इस पर्याप्त मात्रा की विद्युत से ग्रामीण कुटीर उद्योग, लघु उद्योग इत्यादि सरलता से संचालित किए जा सकते हैं। इसी प्रकार नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर ट्रेनिंग इन इंडस्ट्रियल इंजीनियरिंग (नाइटी), मुंबई ने एक ऐसा यंत्र अविष्कृत किया है, जिसमें रहट से पानी निकालने के लिए बैल के घूमने पर बिजली पैदा होती है। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस उपकरण से मात्र दो बैल एक हॉर्स पॉवर की विद्युत ऊर्जा दिन-रात मिलाकर 8-9 घंटे में पैदा कर सकते हैं। देश के करोड़ों किसान इस पद्धति से विद्युत उत्पादन करने की ठान लें तो जहां उन्हें पर्याप्त धन मिलेगा, वहीं विद्युत ऊर्जा की समस्या का समाधान निकल आएगा। इस कार्य को मंजिल तक पहुंचाने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति व सरकार के सहयोग की आवश्यकता है।

गोबर गैस प्लांट की स्थापना से ग्रामीण अंचलों के घरेलू प्रकाश एवं भोजन पकाने की समस्या का समाधान हो सकता है। इसके लिए महज योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है। वर्तमान में एल.पी.जी. गैस पर निर्भरता ने भारतीय किसानों का आर्थिक बोझ बढ़ाया है। देश की आवश्यकता के अनुरूप एल.पी.जी. की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में न होने के कारण विदेशों से आयात की जाती है। गोबर गैस संयंत्र स्थापना से जहां विदेशी मुद्रा की बचत होगी, वहीं प्रकाश के रूप में उपयोग कर विद्युत की भी बचत की जा सकती है। ट्रैक्टरों में खर्च होने वाला डीजल व रसोई के लिए उपयोग में लाई जाने वाली एल.पी.जी. के आयात में अरबों-खरबों की विदेशी मुद्रा खर्च हो जाती है, जिसके कारण देश की अर्थव्यवस्था चरमरा गई है।

हमारा यह कहने का आशय कतई नहीं है कि खेत जोतने के लिए ट्रैक्टरों का उपयोग बिल्कुल ही बंद कर दिया जाए, अपितु कथ्य है कि छोटे जोत के किसानों को बैल तथा बैल से चलने वाले आधुनिक यंत्र उपलब्ध कराने में यथासंभव सरकारी मदद दी जाए। एक प्रयोग के अनुसार एक गाय या बैल के गोबर से औसतन एक व्यक्ति के लिए आवश्यकतानुसार बायोगैस की आपूर्ति हो सकती है। इस प्रकार चार-पांच सदस्यों वाले परिवार के लिए चार गौवंश पर्याप्त होंगे। अच्छे देशी नस्ल के पशुपालन से दूध की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। दूध के व्यवसाय में लगे लाखों लोगों का परिवार अपेक्षाकृत संपन्नता का जीवन जी रहा है। इस क्षेत्र में यदि व्यवस्थित श्रम किया जाए तो लगभग दस करोड़ लोगों की आर्थिक स्थिति सुधर सकती है। आचार्य श्रीराम शर्मा ने निर्दिष्ट किया है कि गौ-आधारित अर्थव्यवस्था के सुदृढ़िकरण से ही भारत के ग्रामीणों का कल्याण होगा, साथ ही शहरी जनजीवन पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ेगा। खेती का मशीनीकरण अर्थात् ट्रैक्टर पर पूर्णतया आश्रित हो जाना भविष्य के खतरे का संकेत है। इससे विपुल मात्रा में प्रर्युक्त होने वाले डीजल के आयात में खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा ने भारतीयों की दुश्वारियां बढ़ा दी हैं। भविष्य में पेट्रोल, डीजल का स्रोत घटता ही जाना है, अतः इसका भाव बढ़ते जाना स्वाभाविक है।

पशुधन से प्राप्त गोबर से जहां गोबर गैस का उत्पादन कर ऊर्जा के क्षेत्र में क्रांति लाई जा सकती है, वहीं ग्रामीण अंचलों में गोबर गैस के प्रयोग से ईंधन व प्रकाश की समस्या का काफी हद तक समाधान किया जा सकता है। गोबर गैस प्लांट से निकला अवशेष उत्तम जैविक खाद के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। गोबर गैस संयंत्र से जेनरेटर चलाकर 80 प्रतिशत डीजल की बचत की जा सकती है तथा आवश्यकतानुसार विद्युत पैदा की जा सकती है। डीजल का यथासंभव कम उपयोग करने से प्रदूषण में कुछ हद तक कमी की जा सकती है। गौपालन के साथ उससे जुड़े छोटे संयंत्रों से कई प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है, जो प्रकारांतर से विद्युत उत्पादन का ही स्वरूप है तथा बिजली की कमी की विकराल समस्या से काफी हद तक निजात दिला सकती है।

कृषि अनिश्चितता का व्यवसाय है। फसल काटकर अनाज के घर तक आने में अनेक प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करना पड़ता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, कीटों का प्रकोप, बीमारियों का प्रकोप इत्यादि अनेक समस्याओं से किसान को जूझना पड़ता है। इस परिस्थिति में खेती के साथ गौपालन व्यवसाय एक सशक्त सहारा बन सकता है। इस प्रेरक व्यवसाय के माध्यम से आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार किया जा सकता है। जो भी किसान कृषि के साथ दुग्ध उत्पादन व्यवसाय में संलग्न, उनकी आर्थिक स्थिति में चमत्कारिक रूप से सुधार हुआ है, वहीं गौपालन से विमुख रहने वालों में से अधिकांश आर्थिक-विपन्नता में अपना जीवन जैसे-तैसे गुजार रहे हैं।

कृषि कार्य के साथ गौपालन व्यवसाय अत्यंत सहजतापूर्वक संपादित किया जा सकता है। चारे के लिए बहुत कम जमीन की आवश्यकता पड़ती है। खेतों से निकले खर-पतवार, फसलों से प्राप्त भूसा-पैरा, सरसों के पके पत्ते, सब्जियों में कड़े हो गए गाजर, मूली, गोभी, शलजम इत्यादि वनस्पतियों को चारे के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। भोजन के बाद का जूठन तक इसमें खप जाता है।

गौवंश से प्राप्त दूध जहां संतुलित आहार की प्रतिपूर्ति करता है, वहीं गोबर की तुलना में गौमूत्र भी कम लाभदायक नहीं है। गोबर-गौमूत्र आधारित औषधियों का निर्माण कर आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। अगरबत्ती, धूपबत्ती का निर्माण कुटीर उद्योग के रूप में किया जा सकता है। गोबर व गोमूत्र को पवित्र व कीटनाशक माना गया है, इस संबंध में शास्त्रों में वर्णन मिलता है। गोबर से बने उपलों का ग्रामीण जन-जीवन में अत्यधिक महत्व है। दाह-संस्कार से लेकर ठंड से बचने के लिए सेंक, पूजा, यज्ञ तथा आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण के लिए ईंधन के रूप में के प्रयोग में लाया जाता है। गौवंश के गोबर से बने उपलों के जलाने पर पर्यावरण में कोई उल्लेखनीय क्षति नहीं पहुंचती, यह अनेक वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है। ग्रामीण अंचलों में अधिकांश स्थानों पर उपलों का धुआं मच्छर भगाने के लिए प्रयुक्त होता है। पेड़ों को बचाने में उपलों (कंडा) का महत्वपूर्ण योगदान है। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जलाऊ ईंधन के रूप में गोबर से बने उपलों का महत्व स्वयंसिद्ध है।

गौवंश के गोबर से बने उपलों से प्राप्त राख भी कम चमत्कारिक नहीं है। यह गंधरहित कीटाणुनाशक मानी गई है। देश के करोड़ों लोग बर्तनों की सफाई में इसका प्रयोग आदिकाल से करते आ रहे हैं। यद्यपि आज फैशन में बर्तनों की सफाई डिटर्जेंट इत्यादि से की जाती है। सामान्यतया देखा गया है कि कितनी भी सावधानी से सफाई की जाए, डिटर्जेंट पाउडर का कुछ-न-कुछ अंश बर्तनों में रह जाता है तथा शरीर में पहुंचकर अनेक रोगों का जन्मदाता बनता है। मुफ्त में मिली राख की उपयोगिता सबको चमत्कृत कर देती है। गांवों में नाली के किनारे या गंदगी पर उपलों की राख डालने की परंपरा है, यह कीटाणुओं के संक्रमण से बचने का देशी उपाय है। कंडे (उपले) पर सिकी रोटियों का स्वाद व स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्व का मुकाबला कभी भी एल.पी.जी. गैस नहीं कर सकती। देर-सवेर हमें गौपालन के महत्व को स्वीकारना ही होगा। ग्रामीण अंचल की अधिकांश आबादी की गरीबी का एकमात्र कारण गौवंश पालन की उपेक्षा है। किसानों की माली दशा सुधारने के लिए यदि प्रशासन संकल्पित है तो निश्चित ही गौपालन एकमात्र प्रथम और अंतिम विकल्प है, इसमें संशय का कोई कारण नहीं होना चाहिए। कृषि एवं गौपालन दोनों ही कर्म एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों के समन्वित व योजनाबद्ध संचालन से गरीबी जैसी विकराल समस्या पर काफी हद तक काबू पाया जा सकेगा।

प्रसन्नता का विषय यह है कि देश के अनेक संस्थान बैलों द्वारा संचालित हो सकने वाले अनेक उपकरणों का आविष्कार कर रहे हैं, जिसके कारण कई गुना अधिक कार्यक्रम श्रम में किया जाना संभव हो सकेगा। बैल द्वारा चालित ट्रैक्टरनुमा छोटा यंत्र ईजाद किया गया है, जिसे सफलतापूर्वक प्रयोग कर, किसानों के लिए अनुशंसित किया गया है। इसमें चालक के लिए बैठने की व्यवस्था की गई है तथा अल्प श्रम में ज्यादा जुताई का कार्य संभव हो पा रहा है। ग्रामीण अंचलों में इस आधुनिक युग में भी माल ढोने का सर्वोत्तम साधन बैलगाड़ी ही है। किसान लोग प्रयोग करते हैं। व्यावहारिक विज्ञान संस्थान, सांगली (महाराष्ट्र) ने 'बलवान' नाम से बैलगाड़ी की डिजायन तैयार की है, जिसमें माल रखने के लिए लगभग 30 वर्गफुट जगह है, जबकि सामान्य बैलगाड़ी में 10 वर्गफुट की ही व्यवस्था रहती है। इसी प्रकार बेंगलुरु के किसान मेले में 'ग्राम-लक्ष्मी' बैलगाड़ी का प्रदर्शन किया

गया था, इसमें भी कम श्रम में अधिक माल ढोने की विशेषता है। पंचर रहित टायर की बैलगाड़ियां कम श्रम एवं कम खर्च में अधिक कार्य कर सकती हैं, यह ग्रामीणों के लिए वरदान हो सकती हैं। शहरों में भी भवन सामग्री व माल ढोने में इसका प्रयोग हो सकता है।

गौपालन से प्राप्त आय से लोग समृद्ध होंगे, इसके साथ ही दुग्ध के सेवन से गर्भवती माताओं, बच्चों, वृद्धों सहित संपूर्ण परिवार के स्वास्थ्य की रक्षा हो सकेगी। देश के विकास के लिए लघु, मध्यम तथा बड़े उद्योगों की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता, परंतु यदि व्यवस्थित तरीके से गौपालन को सरकार द्वारा संरक्षण दिया जाए तो यह सबसे बड़ा उद्योग प्रमाणित हो सकता है। आज गौपालन व्यवसाय औद्योगीकरण के बराबर महत्वपूर्ण प्रणाली या व्यवसाय बनने हेतु हम सबको आमंत्रित कर रहा है। डेनमार्क जैसा कम साधन का देश दुग्ध उत्पादन के बल पर संसार के संपन्न व विकसित देशों की सूची में अपना नाम दर्ज करा चुका है, फिर भारतवर्ष जैसे साधन-संपन्न देश को किस बात का इंतजार है? भारतीय अध्यात्म में गौ को पवित्र माना गया है तथा निर्दिष्ट किया गया है कि इसमें समस्त देवी-देवताओं का वास होता है।

गौपालन के महत्व को दर्शाते हुए, गौपालन एवं कृषि विषय पर आधिकारिक चर्चा की आवश्यकता है। इसे जन-जन तक पहुंचाने के लिए एक सघन अभियान की जरूरत है। इस महती कार्य में समाजसेवी संस्थाएं अपना सक्रिय योगदान करें। जिला स्तर पर, जनपद स्पर पर, ब्लॉक स्तर पर, शहरों, कस्बों एवं ग्रामीण क्षेत्रों के बाजारों तथा अन्य सार्वजनिक स्थलों पर, किसी विशेष पर्व पर, सरकार से सहयोग प्राप्त प्रदर्शनी व मेलों का आयोजन कर समाजसेवी संस्थाएं लोगों को जागरूक कर सकती हैं। प्रदर्शनी में उन यंत्रों का प्रदर्शन आवश्यक है, जो बैलों से संचालित हो रहे हैं और कृषि के विकास में सहायक भी हैं। लोगों के आकर्षण के लिए मनोरंजन के अन्य साधन भी हों। गोबर व गोमूत्र से बनी औषधियों तथा अन्य उपयोगी जानकारियों को किसानों एवं ग्रामीणों को देना आवश्यक है ताकि देश में गौपालन क्रांति का स्वरूप ग्रहण कर ले। इस विषय पर संगोष्ठियां भी आयोजित की जाएं। इसे धर्म से जोड़कर जो वर्गभेद पैदा किया जाता है, वह समाप्त होना चाहिए।

अतः समाजसेवी संस्थाओं को इस पवित्र कार्य के लिए आगे आना चाहिए। इस क्षेत्र में यद्यपि अनेक संस्थाएं सराहनीय कार्य कर रही हैं तथापि बहुत कुछ किया जाना शेष है।

अशक्त होने पर गौवंश को कसाइयों के हाथ सौंपना एक जघन्य व क्रूर कार्य है। दूध देने में अक्षम गाएं एवं अशक्त बैलों के लिए गौशालाओं की व्यवस्था करना कोई कठिन कार्य नहीं होगा। इनके द्वारा दिए गए गोबर से गैस प्लांट तथा समृद्ध खाद बनाया जा सकता है। चारे-भूसे की व्यवस्था जन-सहयोग से की जा सकती है। अशक्त व अन्य किसी कारण से परित्यक्त किए गए गौवंश के संरक्षण में कार्य करने वाली गौशालाएं जन सहयोग से संचालित होकर इस दिशा में अनुकरणीय पहल कर सकती हैं। गोबर गैस प्लांट से ऊर्जा, उच्च-स्तरीय खाद इत्यादि की सहज प्राप्ति, गौशालाओं के लिए आय का साधन बन सकती है। स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त जानवरों से प्राप्त अहिंसक चर्म, हड्डी,

सींग इत्यादि से कुटीर उद्योग खड़े हो सकते हैं तथा यह भी एक आय का स्रोत बन सकता है। आशय यह है कि जन-सहयोग के बिना गौवंश को कसाइयों के कत्लखाने में जाने से रोकना असंभव होगा, चाहे कितने ही नियम कानून बना दिए जाएं। महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी, आचार्य विनोबा भावे, वेदमूर्ति पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे मनीषियों ने गौवंश की हत्या को मानवता के विरुद्ध बताया है। गौपालन के महत्व को इस तथ्य से भलीभांति समझा जा सकता है। भगवान् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण ने गौपालन व गाय चराने का कार्य संपादित कर गौवंश के महत्व को प्रतिपादित किया था। वेद-शास्त्रों में गौ के महात्म्य के विषय में अनेकशः प्रसंग मिलते हैं। गौ में समस्त देवी-देवताओं का वास माना जाता है। प्रायश्चित में प्रयोग होने वाले पंचगव्य में दूध, दही, घृत तथा गोबर व गोमूत्र भी इसके घटक हैं। भारतीय अध्यात्म में गोबर को पवित्र वस्तु माना गया है। इसी कारण इसे गौमल नहीं कहा जाता। यह वरण के योग्य होता है, अतः इसका नाम गोबर है। पूजन, यज्ञ इत्यादि धार्मिक कार्यों में गोबर से स्थान लेपन के बिना शुद्धि नहीं मानी जाती। दीपावली में लक्ष्मी पूजन के समय घर को गोबर से लीपा जाता है। महाभारत में निर्दिष्ट किया गया है कि गौ के गोबर में सभी प्रकार की ऐश्वर्य प्रदान करने वाली लक्ष्मी का वास होता है—

'अष्टैश्वर्य लक्ष्मी बसते गौमये सदा'।

भगवान श्रीकृष्ण का बहुप्रचलित नाम गोपाल है ओर स्पष्टतया गौवंश के महत्व की रेखांकित करता है। गौपालन से लोक-परलोक दोनों ही सुधरता है, इसमें जरा-सा भी संशय नहीं होना चाहिए।

एल-3, विद्यानगर
बिलासपुर (छ.ग.)

पर्यावरण समस्या और हमारा नैतिक दायित्व

शशिकांत द्विवेदी

पर्यावरण की समस्या विकासशील राष्ट्रों की ही नहीं, अपितु पूरे विश्व की समस्या बन गई है। नभचर, जलचर, थलचर—सभी जीवधारी पर्यावरण के कुप्रभाव व प्रदूषण से प्रभावित हुए हैं। सभी ऋतुएं अपने अस्तित्व को खोती नजर आ रही हैं। समय पर ठंड नहीं पड़ना, गर्मी में अति गर्मी तथा वर्षा का समय पर नहीं आना या कहीं-कहीं बेमौसम अधिक वर्षा होना, कहीं अकाल की स्थिति निर्मित होना, यह सब पर्यावरणीय बदलाव का ही नतीजा है। इन सबके पीछे उद्योगवादी संस्कृति और उपभोगवादी संस्कृति को ही प्रमुख कारण माना जाता है। प्रकृति को विकृत करने का दोष हमारी अतिभौतिकतावादी व अतिअदूरदर्शी सभ्यता को है, जिसने पूरे विश्व को प्रभावित किया है। कारण कि अतिभौतिकता की चाह ने प्रकृति के नियमों के विरुद्ध अप्रत्यक्ष रूप से अभियान छेड़ दिया है। वनों का विनाश, कल-कारखानों की अंधाधुंध स्थापना, मनुष्य द्वारा जंगलों में अतिक्रमण, मोटर गाड़ी में वृद्धि आदि ऐसे औद्योगिक कारण बने जिनसे प्रदूषण में गुणोत्तर वृद्धि हुई। उद्योगों/ हवाई जहाजों से निकलते धुओं ने वायु, जल में जहर घोल दिया है। भूमंडल का तापमान भी धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। यदि तापमान में 3 से 5 डिग्री की वृद्धि हो गई तो ध्रुवों की बर्फ को पिघलने से कोई नहीं रोक सकता। तब महासागर अपनी मर्यादा छोड़ देंगे। जल-प्लावन की भयावह स्थिति निर्मित हो जाएगी। सभी को ऊर्जा व सुंदर स्वास्थ्य देने वाली प्रकृति बढ़ते प्रदूषण के कारण उसी प्रकार असहाय हो जाएगी, जैसे किसी अनाड़ी बालक ने मां के दूध पीते स्तन को इतना काट लिया कि वहां फोड़े निकल आए और मां ही बीमार हो गई। इस प्रकार अनाड़ी बालक रूपी वर्तमान मानव को अपनी सीमाएं समझनी होगीं अन्यथा निरंतर उपेक्षा व राक्षसी दोहन से समूल पर्यावरण व प्रकृति का सर्वनाश अवश्यंभावी है।

पर्यावरण को बिगाड़ने का काम वनों की कटाई से हुआ है तो पर्यावरण का संरक्षण हम पौध-रोपण से कर सकते हैं। यह सच है कि सन् 1980 में हमारे देश में भी बिगड़ते पर्यावरण पर चिंता कर इससे संबंधित विभाग केंद्र में खोले गए। तीस साल के लंबे अंतराल में वृक्षारोपण पर ध्यान कम धन ज्यादा खर्च किया गया। पर्यावरण को बचाने में आशातीत सफलता इसीलिए नहीं मिली कि सामाजिक वानिकी विभाग कागजी वृक्षारोपण और औपचारिक खानापूर्ति का अड्डा बन गया। वन कटते गए, धरा संतुलन में खड़े पहाड़ों का अस्तित्व समाप्त होता गया। रत्नगर्भा कहलाने वाली धरती के अंदर हजारों मीटर गहरे

गड्ढे खोदकर लोभियों ने उपभोगवादी व अति भौतिकवादी सभ्यता के चलते लोभ संवरण तो कर लिया, किंतु सद्यःप्रसूता जननीरूपी धरती को उसके हाल पर क्यों छोड़ दिया गया? उन सैकड़ों वर्ग किलोमीटर गड्ढों को भरने का दायित्व क्या हमारा नहीं बनता। हमने एक साथ एक समय में लाखों पौधे रोपण कर गिनीज बुक में नाम दर्ज कराने का भरसक प्रयास किया, किंतु उनके संरक्षण में हमने कोताही बरती, लापरवाही बरती जिसका दुष्परिणाम है कि तीस साल में वृक्षारोपण से जहां पुनः नया जंगल खड़ा हो जाना था, वहां कटे हुए वृक्षों के ठूंठ भी नजर नहीं आते। आज वृक्षारोपण के नाम पर सूबबूल, कनेर, छातिम, यूकिलिप्टस जैसे कम कद काठी वाले वृक्षों का रोपण किया जा रहा है, जबकि पहले बरगद, पीपल, नीम, आम, महुवा, कौहा, करंज जैसे दीर्घजीवी वृक्ष बिना विशेष देखभाल के ही शतायु पूरी करते थे। ऐसे वृक्षों से प्रत्यक्ष रूप से फल व ईंधन तो मिलता ही है, वहीं अप्रत्यक्ष रूप से वे कार्बन डाईऑक्साइड का शोषण कर हमें ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। सही ही है कि पूरे परिधान व साजो-शृंगार में अच्छी लगने वाली मां को अर्ध-लिबास में रहना हमारी संस्कृति इजाजत नहीं देती।

पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त रखना अब हमारी अनिवार्यता हो गई है। पहले हम प्रकृति में दैवीय स्वरूप देखते थे। प्रकृति को अपना स्वामी मानकर आंवला नवमी, वट सावित्री जैसे पर्वों पर पूजा-अर्चना कर नीम में माता का वास, पीपल में वासुदेव, तुलसी को साक्षात् देवी, रुद्राक्ष में शिव, बिल्व-पत्र यहां तक की मदार व धतूरा जैसे जहरीले पौधों के फल व फूल को भी शिव अर्चना में चढ़ाए जाने के कारण हम स्वप्न में भी इन्हें काटने की कल्पना नहीं करते हैं, किंतु आज हम प्रकृति को भोग्या समझ बैठे हैं। उनकी संतान नहीं, बल्कि अपने आपको प्रकृति का स्वामी समझ बैठे हैं। प्रकृति को उपभोग करने का भ्रम पाल लिया हमने। इसके दुष्परिणामों की लेशमात्र चिंता नहीं की। आज टेक्नोलॉजी से पैदा हुई सभ्यता उपभोगवादी संस्कृति की कायल है। यही उपभोग का भ्रम ही परेशानी का सबसे बड़ा कारण है। पर्यावरणीय बदलाव के कई कारक हैं यथा औद्योगीकरण, ऊर्जा का असंतुलित उपयोग, प्रदूषण व धरती के संसाधनों का अंधाधुंध दोहन—ये ऐसे कारक हैं, जिनसे पर्यावरण में बदलाव हुआ। आज अमेरिका की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की 7 प्रतिशत है, किंतु ऊर्जा खपत 32 प्रतिशत है, वहीं भारत की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की 20 प्रतिशत है, किंतु ऊर्जा खपत मात्र 1 प्रतिशत। इस प्रकार का असंतुलन हर क्षेत्र में विद्यमान है। कल-कारखानों की वृद्धि से वायुमंडल में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा में तेजी से बढ़ोतरी हुई है, किंतु वृक्ष नहीं रहेंगे तो कार्बन-डाई-ऑक्साइड का शोषण कैसे संभव है? माना कि उद्योग लगाना हमारी प्राथमिकताओं में होना चाहिए था, किंतु उसके साथ उद्योगों से निकलने वाले धुएं, राख से बचने के लिए पौधा-रोपण कर हरित पट्टी की अनिवार्यता को तिलांजलि क्यों दे दी गई? इसी उद्योगवादी संस्कृति के कारण पर्यावरण में असंतुलन बढ़ने लगा।

आपको जानकार आश्चर्य होगा कि हवाई जहाज से सर्वाधिक प्रदूषण होता है। 46 हजार हेक्टेयर के वनीकरण से जितना ऑक्सीजन निकलता है, उतना एक दिन में एक हवाई जहाज द्वारा कार्बन-डाई-ऑक्साइड का फैलाव वायुमंडल में हो जाता है। कोयला, डीजल, पेट्रोल के जलने से कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा में दिनोंदिन वृद्धि हो रही है,

जिसके कारण रोज एक प्रजाति लुप्त हो रही है। कार्बन-डाईऑक्साइड को पौधे अवशोषित करते हैं और ऑक्सीजन को विमुक्त करते हैं। पर विनाश व औद्योगीकरण तथा शहरीकरण ने प्रकृति की व्यवस्था में बाधा डाल दी है। बढ़ रहे प्रदूषण के कारकों में अन्न उत्पादन की अत्यधिक ललक ने रासायनिक उवर्रकों के, जीवनाशी दवाइयों (पेस्टीसाइड) के, अंधाधुंध उपयोग से भी मृदा-प्रदूषण बढ़ने के कारण धरती कहीं क्षारीय, कहीं अम्लीय होती जा रही है, जिससे जल धारण की क्षमता का ह्रास धरती में हो रहा है। जल-स्तर शनैः-शनैः नीचे खिसकता जा रहा है, परिणाम कम वर्षा, ग्लोबल वार्मिंग का होना। हमें आने वाली पीढ़ी को पीने के लिए स्वच्छ जल और जीने के लिए स्वच्छ वायु मुहैया कराना सबसे बड़ी चुनौती होगी। इसके लिए हमें एकमात्र उपाय वृक्षारोपण व वन-महोत्सव को शासकीय स्तर पर ही नहीं, बल्कि अपने तिथि-त्यौहारों की तरह समाज की मान्यताओं का हिस्सा बनाना चाहिए। वृक्षारोपण स्वस्फूर्त अभियान होना चाहिए, किंतु आज भागती-दौड़ती जिंदगी में कल की किसे चिंता? इसलिए आने वाली पीढ़ी को प्रदूषणमुक्त प्राणवायु देने के लिए तथा प्रकृति के संरक्षण हेतु अब आवश्यक हो गया है कि वृक्षारोपण अभियान शासन-प्रशासन की ओर से जनता-जनार्दन का अभियान बने।

आज आवश्यकता है कि बेटी और बेटे के जन्मदिवस को वृक्षारोपण से जोड़ने की शासकीय पहल होनी चाहिए। बेटी के पैदा होने पर पांच इमारती वृक्ष यथा– सागौन, शीशम, साल आदि का वृक्षारोपण खुद की जमीन में अथवा वृक्षारोपण हेतु संरक्षित शासकीय जमीन में कर उसकी देखभाल व परवरिश पालक की ओर से हो। लड़की के विवाह योग्य होने पर 20 वर्षों के उक्त इमारती वृक्ष को शासन-अधीन कर देने पर कन्या के विवाह के लिए शासन की ओर से 2 लाख रुपये देय हों। बेटे के जन्म पर पांच फलदार पौधे लगाए जाने चाहिएं। इसके लिए शासकीय नौकरी के समय साक्षात्कार में पांच अंक उसे बोनस के रूप में दिए जाने की व्यवस्था हो। यदि इस तरह अभिनव पहल शासन की ओर से की जाए तो मेरा मानना है कि प्रकृति को प्रदूषणरूपी कैंसर से बचाने का यह अपने आपमें एक दूरगामी सुखद परिणाम होगा। वरना प्रदूषण बम विस्फोट से भी ज्यादा खतरनाक होगा। अतः बेटी और बेटे के जन्मोत्सव पर इमारती और फलदार पौधारोपण कर बच्चों की दीर्घायु की कामना करनी चाहिए। हरियर छत्तीसगढ़ की कल्पना साकार करने में स्व-सहायता समूहों, सेवा-भावी संस्थाओं, वृक्ष-प्रेमी सहकारिताओं, संगठनों और कृषक क्लबों को प्रयोग के तौर पर कुछेक सड़कों पर वृक्षारोपण करना चाहिए। वृक्षारोपण का दायित्व शासकीय तौर पर सौंपना चाहिए। इससे लोगों व संगठनों में प्रतिस्पर्धा का वातावरण निर्मित होगा। वहीं शासन की अपेक्षा कम लागत में वृक्षारोपण के साथ संवर्धन का भी दायित्व पूरा हो सकेगा।

हमें प्रदूषण के दुष्परिणामों से बचने के लिए आज से ही नयी नीति बनानी होगी, वरन् ओजोन के रक्षा कवच में छेद, अपक्षय के कारण पराबैंगनी किरणों से तेजाबी वर्षा और काली वर्षा का होना प्रायः हर जगह देखा जाने लगेगा। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रदूषण रहित टेक्नोलॉजी का निर्माण करना होगा। पौधा-रोपण के साथ-साथ पौधा-संरक्षण करना भी निहायत जरूरी है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति पर नये सिरे से विचार करने की जरूरत है। पर्यावरण को केंद्र बिंदु बनाकर राष्ट्रीय स्तर पर विकास कार्यक्रम

चलाए जाने चाहिएं। इन सबका ईमानदारीपूर्वक प्रयास आज से ही किया जाएं, तब जाकर कहीं 20-30 वर्षों के पश्चात् ग्लोबल वार्मिंग के कहर से बचा जा सकेगा, वरना आने वाले दिनों में बहुत जल्दी पेट्रोल पंपों और गैस रिफिलिंग केंद्रों की तरह मानव को शुद्ध प्राणवायु के लिए जगह-जगह पर बने ऑक्सीजन बूथों पर जाना होगा। उन्मुक्त वातावरण में पूर्वजों के घूमने वाली बात तब शायद कहावत हो जाएगी। वृक्ष हैं तो जल है, जल है तो कल है और जल से ही जीवन है।

अध्यक्ष, जिला सहकारी केंद्रीय बैंक मर्यादित,
राजनांदगांव

छत्तीसगढ़ में विकास और पर्यावरण समस्या और संभावना

डॉ. हेमलाल वर्मा

प्रकृति की अनुपम रचना है हमारी पृथ्वी और पृथ्वी की श्रेष्ठ कृति है मानव। मानव द्वारा किए जा रहे नित नये अनुसंधानों एवं आविष्कारों, उसकी बढ़ती भौतिक सुख-सुविधाओं की लालसा एवं स्वार्थ, जनसंख्या का तीव्र विकास, तेजी से बढ़ता औद्योगीकरण एवं नगरीकरण, प्राकृतिक संसाधनों का अति एवं असंतुलित दोहन आदि ने समग्र पर्यावरणीय कारकों यथा—जल, वायु, मृदा, वन, प्राकृतिक संसाधनों, सूक्ष्म जैविक संसाधनों आदि को भारी क्षति पहुंचाई है। विकास किसी भी देश एवं मानव की चाहत होती है। छत्तीसगढ़ एक नया राज्य है, जहां सभी क्षेत्रों में तेजी से विकास हो रहा है। विकास की इस अंधी दौड़ ने पर्यावरण को भारी क्षति पहुंचाई है। इस शोध द्वारा विकास और पर्यावरण को समझने का प्रयास करेंगे।

छत्तीसगढ़ में कृषि विकास एवं पर्यावरण

छत्तीसगढ़ की मुख्य आबादी गांवों में बसती है, जहां की अपनी जीवन-शैली है। यहां का मुख्य व्यवसाय कृषि है। कृषि के लिए गांव के बाहर प्रायः सभी छोटे-बड़े किसानों का 'घुरवा' होता है, जिसमें गाय और भैंस का गोबर डाला जाता है। भविष्य में यही उत्तम खाद बन जाती है और बरसात के पहले उसे खेतों में डाला जाता है, जिससे खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है और पैदावार अच्छी होती है। इससे पैदा हुए दुबराज चावल की खुश्बू से पूरा घर महक जाता था। आज गांवों में ऐसा कुछ नहीं होता, क्योंकि आज हल की जगह ट्रैक्टर, गोबर खाद की जगह यूरिया खाद ने ले ली है। पानी नहीं बरसा तो नहर से लिया जाता है, जब नहर से पानी नहीं मिला तो ट्यूबवैल खोदकर पानी खींचकर सिंचाई की जाती है। भले ही अब दुबराज चावल में खुश्बू नहीं है, लेकिन सरकार द्वारा कम समय में अधिक पैदावार देने वाले धान के बीज उपलब्ध करा दिए जाते हैं, कर्ज के बोझ में घर भले ही डूब जाए, इससे किसी को कुछ लेना-देना नहीं होता। लोगों का मानना है कि कर्ज में हम जन्म लेते हैं, कर्ज में जीते हैं और क़र्ज के लिए मर जाते हैं।

कहने का आशय है कि अब गांव के सीधे-सादे किसानों की जीवन-शैली कथित विकास से अछूती नहीं है, जिसके कारण आज कृषि-भूमि की उर्वरता खत्म हो रही है, रासायनिक दवाओं के प्रभाव से मित्र कीट मर रहे हैं। सरकार की विकास योजनाओं जैसे मनरेगा एवं एक रुपया और दो रुपया किलो में चावल मिलने के कारण कृषि के लिए

समय पर मजदूर नहीं मिल पाते। इससे धंधा करने वालों की बन आई है, लोग हार्वेस्टर खरीदकर किराए पर चलाने लगे हैं। लाचार किसान पहले तो ठेके पर काम करवाकर किसी तरह अनाज पैदा करता है और फसल काटने के लिए मजदूर नहीं मिलने पर हार्वेस्टर वाले की ओर दौड़ता है। हार्वेस्टर फसल काटता है, तब लगभग एक से सवा फुट तक डंठल खेत में छोड़ जाता है। इसे ही जब किसान हाथ से काटता है, तब चार से छह इंच तक की नरई खेत में छूटती है। हार्वेस्टर से फसल काटने से किसान के पास पैरा की कमी हो जाती है। उसे पैरा खरीदने को बाध्य होना पड़ता है, क्योंकि छत्तीसगढ़ में पैरा ही पशुओं का प्रमुख भोजन है। हार्वेस्टर द्वारा कटाई से प्राप्त पैरा को पशु-प्रेम से नहीं खाते। इससे पशुओं का पोषण प्रभावित होता है। इस कारण किसान आज इन खेतों में खरीब के बाद रबी की फसल नहीं ले पा रहा है।

जरा विचार कीजिए आज किसान की स्थिति क्या है? कृषि विकास और विपुल उत्पादन के नाम से कहीं हम कृषि भूमि का पर्यावरण ही तो नहीं बिगाड़ रहे?

छत्तीसगढ़ में औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण

छत्तीसगढ़ में नदी-नालों के किनारे वाले गांवों में उद्योग लगते जा रहे हैं। इससे लोगों को उम्मीद है कि इन कारखानों में उन्हें रोजगार मिल जाएगा। व्यापारियों का व्यापार बढ़ जाएगा, मकान मालिकों को किराएदार मिल जाएंगे और इससे उसका विकास होगा। छत्तीसगढ़ शासन उद्योगपतियों को प्रतिष्ठान (कारखाना) लगाने के लिए आमंत्रित कर रही है, उन्हें भूमि मुहैया करा रही है। अकेले रायगढ़ जिले के आस-पास लगभग 150 आयरन और पॉवर प्लांट लग चुके हैं। छत्तीसगढ़ का सबसे बड़ा जिंदल स्पंज और स्टील प्लांट यहां लग चुका है और जल्द ही उनका पॉवर प्लांट केलो नदी में लगने वाला है। इन कारखानों को पानी की पूर्ति नदियों के ऊपर बांधों से की जा रही है। बांध बनने से नदियों में पानी ही नहीं है और है भी तो इन कारखानों से निकला रसायनयुक्त गंदा पानी है, जिससे नदियां प्रदूषित हो रही हैं।

छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर से लगा उरला-सिलतरा औद्योगिक क्षेत्र है। कभी यहां के खेतों में धान की फसल लहलहाती थी, आज बेतरतीब उगे हुए सैकड़ों चिमनियों से अनवरत् काला जहर निकल रहा है। इसके कारण रायपुर देश के सबसे प्रदूषित शहरों में तीसरे स्थान पर आ चुका है और यदि इन कारखानों से उगलते धुएं पर अंकुश नहीं लगाया गया तो शीघ्र ही प्रथम स्थान प्राप्त कर छत्तीसगढ़ का नाम बदनाम करेगा।

रायपुर जब छत्तीसगढ़ की राजधानी बना, तब लोग कल्पना किए हुए थे कि अब सब तरफ उच्चतम सुविधाएं होंगी, सब कुछ उजला, सब कुछ चकाचक होगा। परंतु हकीकत यह है कि राजधानी के सिलतरा के तरफ खेत काले, फसल काली, मकान काले, सड़कें काली, पशु-पक्षी काले, पेड़-पौधे काले, पानी काला, हवा काली, फेफड़ा काला और मरने वाले का कफन काला है, कहने का मतलब सब कुछ काला-ही-काला नजर आता है। इस प्रदूषण से छुटकारा पाने में उद्योगपति थोड़ा उदार हो जाएं, नेता ईमानदार और जनता सतर्क हो जाए तो इसका हल निकल जाएगा। सभी कारखानों में नियमतः प्रदूषण नियंत्रण प्रणालियां लगी हुई हैं। बैग फिल्टर एवं ईएसपी लगे हुए हैं, जरूरत है इन्हें निरंतर

चालू रखवाने की। उद्योगपति बिजली बिल के चंद रुपये बचाने के लिए इसे घंटों बंद रखते हैं और सारा काला धुआं बेखौफ होकर वातावरण में छोड़ दिया जाता है। यह बहुत सोच-समझकर और षड्यंत्र पूर्वक किया जा रहा है।

एक तरफ रायपुर के सिलतारा को देखें और दूसरी तरफ भिलाई को, जहां का संयंत्र पूरे बारह किलोमीटर के लंबे-चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। वहां भी सैकड़ों चिमनियां मुंहबाये खड़ी हैं, लेकिन प्रदूषण का नामोनिशान नहीं है। भिलाई की गिनती भारत के पांच सर्वाधिक स्वच्छ एवं प्रदूषण मुक्त शहरों में होती है।

देश में छत्तीसगढ़ कोयला और सीमेंट कारखाने के क्षेत्र में भी अग्रणी है। बलौदा बाजार क्षेत्र में सीमेंट के छोटे-बड़े बहुत से कारखाने हैं तथा कुछ बन भी रहे हैं। सरकार किसानों की कृषि-भूमि अधिग्रहीत कर उद्योगपतियों को दे रही है। इससे छत्तीसगढ़ में खेती की जोत का रकबा सिकुड़ता जा रहा है। किसान अपने ही घर में भूमिपति से भूमिहीन होकर मजदूर बनता जा रहा है। सरकार को इस औद्योगिक विकास के नाम पर किसान एवं उसके परिवारों पर पड़ने वाले दूरगामी दुष्प्रभावों पर भी चिंतन करना चाहिए। साथ ही उत्खनन से जो जमीन गड्ढों में बदल रही है, उसका पर्यावरण पर क्या असर होगा, सरकार को सोचना होगा।

छत्तीसगढ़ में वन-विकास एवं पर्यावरण

छत्तीसगढ़ वनाच्छादित राज्य है, यहां के लगभग 40 प्रतिशत भाग में वन हैं। आदिकाल से यहां के निवासी इन वनों एवं वनोपज पर ही आश्रित रहे हैं। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण राज्य में वनों का प्राकृतिक क्षेत्र सिकुड़ता जा रहा है। मानव स्वार्थ एवं लालच इसमें आग में घी का काम रहा है। सरकार, ठेकेदार और इन क्षेत्रों के निवासियों के कारण जंगल कटते जा रहे हैं, जिसके कारण वन्य जीव-जंतुओं के लिए खतरा पैदा हो गया है। आखिर जंगल क्यों जरूरी हैं? पेड़ हमें क्या देता है, क्यों उन्हें बचाना जरूरी है?

वनों से हमें बहुत फायदा है, जंगल किसी भी जीव के जीवन का आधार है। पेड़-पौधे धरती को हरा-भरा बनाते हैं, इनकी जड़ें मिट्टी को बांधे रखती हैं, जिससे मिट्टी का कटाव रुकता है। घने जंगलों से भाप बनाकर उड़ा पानी वर्षा बनकर वापस आता है और धरती को हरा-भरा बनाता है, इस कारण से जंगल को बचाना जरूरी है।

जंगल के कटने से वन्य जीव आबादी की ओर आने लगे हैं। सरगुजा में जंगली हाथियों का कहर जारी है। आज छत्तीसगढ़ में गांव-का-गांव बंदरों के उत्पात से परेशान है। जंगल के कटने से भोजन की तलाश में ये बंदर झुंड-के-झुंड गांवों में वास करने लगे हैं, जिसके कारण गांव का पर्यावरण ही बदलने लगा है। बंदरों के आतंक से घर, बाड़ी एवं खलिहानों में लगाए मौसमी पेड़ यथा—अमरूद, मुनगा, जामुन, इमली, सीतापेड़, बोहार, बेर, बेल आदि को लोग काटने को मजबूर हैं। गांव वालों के अनुसार—इन पेड़ों एवं घर-बाड़ी में जरूरत की सब्जी-भाजी उगाने के कारण ये बंदर गांवों की ओर आकर्षित होते हैं। इनके उनके कच्चे मकान (खपरैल) को भारी नुकसान हो रहा है, इस कारण गरीब गांववालों को आर्थिक हानि का दोहरा भार सहन करना पड़ रहा है। अब गांव के लोग

भी पक्के मकान बनाने लगे हैं। आज गांव का नजारा ही बदल गया है। गांव की प्रत्येक गली, मोहल्लों, चौपालों का कांक्रीटीकरण हो गया है। घर का आंगन, दीवार, छत कांक्रीट के बनने लगे हैं। गांवों का पर्यावरण प्रदूषित होने लगा है, फिर भी जंगल बेरहमी से काटे जा रहे हैं।

धरती हमारी मां है। इससे हमें न्यूनतम व अत्यावश्यक ही लेना चाहिए तथा इसकी निरंतर देखभाल करते रहना चाहिए। महात्मा गांधी ने कहा था, "धरती सभी मनुष्यों एवं प्राणियों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम है, परंतु किसी की तृष्णा को शांत नहीं कर सकती।" विकास एवं पर्यावरण में एक बात साफ है कि जितने उद्योग लगेंगे, उतनी ही जल, जंगल और जमीन कम होगी। छत्तीसगढ़ में प्रचुर मात्रा में खनिज हैं, पर उनके दोहन और पर्यावरण की सुरक्षा का मापदंड निर्धारित करना होगा। छत्तीसगढ़ में विकास और पर्यावरण का सबसे बड़ा मुद्दा आदिवासियों से जुड़ा है। बस्तर और अन्य क्षेत्र नक्सलवाद की गिरफ्त में इसलिए आए, क्योंकि यहां अपेक्षा और आवश्यकता के अनुरूप विकास नहीं हो पाया। सरकार को यह भी स्वीकार करना चाहिए कि छत्तीसगढ़ में खेती का रकबा कम हो रहा है। इसके बावजूद देश में सर्वाधिक धान उत्पादन करने वाले राज्य के लिए महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल ने रमन सरकार को सम्मानित किया। जंगल कट रहा है और जल संकट भी कगार पर है। सिंचाई की कोई बड़ी योजना सामने नहीं है। पर्यावरण की समस्याएं, गरीबी और अज्ञानता से जुड़ी हुई हैं। अतः अधिक-से-अधिक जन-जागरुकता लानी होगी, तभी छत्तीसगढ़ में विकास भी होगा और पर्यावरण सुरक्षित भी रहेगा।

संदर्भ

1. यूनिफाइड राजनीति विज्ञान लोक प्रशासन, डॉ. जे. श्यामसुंदरम्, पर्यावरणविद।
2. दैनिक नवभारत, रायपुर, दिनांक 11 सितंबर, 2011
3. दैनिक हरिभूमि, रायपुर, दिनांक 3 अगस्त, 2008
4. दैनिक नवभारत, रायपुर, दिनांक 22 मई, 2008

सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
शासकीय महाविद्यालय, गुंडरदेही,
दुर्ग (छत्तीसगढ़)

पर्यावरण : व्यक्तिगत और पारिवारिक उत्तरदायित्व

आरज़ू राईन

पर्यावरण को प्रदूषण रहित बनाने के लिए भारत सरकार भरसक प्रयास कर रही है। अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं भी इस समस्या को दूर करने में प्रयासरत हैं। लेकिन इन सबसे अधिक पर्यावरण के प्रति हम सबकी जिम्मेदारी है। पर्यावरण की दुर्दशा के लिए हम और हमारी बढ़ती जनसंख्या उत्तरदायी है, फलतः इसे बेहतर बनाना भी हमारा कर्तव्य है। यहां कुछ ऐसे उपाय सुझाए गए हैं, जिन पर आचरण करना हम सब नागरिकों का परम् कर्तव्य है। इन उपायों का पालन करने में थोड़ी असुविधा अवश्य हो सकती है, लेकिन निश्चय ही इनके द्वारा हम पर्यावरण को आने वाले कल के लिए बेहतर बना सकेंगे और आने वाली पीढ़ियों को विरासत में स्वच्छ पर्यावरण दे सकेंगे—

1. यदि आपके घर के किसी नल से पानी रिसता है तो उसे तुरंत ठीक करा लेना चाहिए, क्योंकि बूंद-बूंद करके इस नल से 60 गैलन पानी प्रतिदिन व्यर्थ में बह जाएगा।
2. पीने के लिए पानी से भरी बोतलें अपने फ्रिज में रखनी चाहिएं। ठंडे पानी के लिए बार-बार जीवनदायी जल व्यर्थ ही बहता रहता है।
3. प्रातःकाल दंत मंजन करते समय नल को लगातार खुला नहीं रखना चाहिए।
4. जहां तक हो सके नहाते समय फव्वारे का प्रयोग करना चाहिए।
5. कपड़े धोने की मशीन में उन डिटर्जेंटों का प्रयोग करना अधिक उपयोगी है, जिनमें फास्फेट की मात्रा कम होती है।
6. शौचालय और मूत्रालय में रंगीन टॉयलेट पेपर प्रयोग नहीं करने चाहिएं, क्योंकि इनके रंगों से पानी प्रदूषित हो जाता है।
7. शौचालय की नालियों में कागज तथा दूसरे चीथड़े नहीं डालने चाहिएं, इन वस्तुओं को कूड़े-कचरे में ही डालना चाहिए।
8. यदि आप कुएं का पानी पी रहे हैं तो उसका दो बार परीक्षण करवाना अतिआवश्यक है।
9. दवाइयां, रासायनिक पदार्थ, घरेलू विष, कीटाणुनाशक औषधियां आदि सिंक और संडासों में नहीं डालने चाहिएं। इससे सीवेज प्लांटों पर अधिक जोर पड़ता है। ऐसी वस्तुओं को कूड़े के ढेर में ही डालना चाहिए।
10. शैंपू, लोशन, तेल और दूसरी वस्तुओं को कांच की बोतलों की पैकिंग में ही खरीदना चाहिए, क्योंकि कांच से बनी बोतलों को दोबारा प्रयोग किया जा सकता है।

11. घरेलू वस्तुओं पर स्प्रे द्वारा पेंट नहीं करना चाहिए। क्योंकि स्प्रे की वाष्प सांस संबंधी रोगों को जन्म दे सकती है।
12. घरों में छोटे-छोटे पौधे लगाना और छोटा-सा चिड़ियाघर बनाना अत्यंत उपयोगी है। पौधे ऑक्सीजन पैदा करते हैं और पक्षी कीड़ों के शत्रु हैं।
13. कागजों और पेड़-पौधों की पत्तियों को जलाना नहीं, बल्कि उनको ढेर के रूप में जमा कर लेना चाहिए। वे बाद में अच्छी प्रकार की खाद का काम दे सकते हैं।
14. कार का पेट्रोल सीसा धातु से मुक्त होना चाहिए, ताकि वायु में कम-से-कम सीसा-प्रदूषण हो।
15. जिन स्थानों पर बर्फ पड़ती है, वहां बर्फ को हटाने के लिए नमक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। नमक के अधिक प्रयोग से जल प्रदूषित हो जाता है।
16. चीनी मिट्टी से बने प्लेट-प्यालियों का प्रयोग अधिक-से-अधिक करना चाहिए। कागज से बनी प्लेट-प्यालियां कम-से-कम प्रयोग करनी चाहिएं, क्योंकि ये भूमि प्रदूषण पैदा करती हैं। कागज के नैपकिनों की जगह तौलिया प्रयोग करना चाहिए।
17. छोटी दूरियों के लिए कारों के स्थान पर साइकिल का प्रयोग करना चाहिए। अंतर्दहन इंजनों वाले वाहन का जितना कम-से-कम प्रयोग हो, उतना ही उत्तम है।
18. एक ही क्षेत्र में रहने वाले तथा एक ही कार्यालय में काम करने वाले लोगों का कर्तव्य है कि वे कारों और स्कूटर का प्रयोग संयुक्त रूप से करें। ऐसा करने से धन की बचत तो है ही साथ-साथ वायु प्रदूषण भी कम होता है।
19. भीड़ वाले व्यस्त मार्ग में वाहनों का प्रयोग कम-से-कम करना चाहिए और चौराहों पर यातायात नियमों का पालन करना चाहिए।
20. लालबत्ती पर गाड़ी को बंद कर देना चाहिए। ऐसा करने से आप उस क्षेत्र में वायु प्रदूषण की मात्रा कम करते हैं।
21. यदि आप कई मंजिला के मकान में रह रहे हैं तो छत पर और उसकी छोटी छोटी खिड़कियों पर पौधे लगाना अत्यंत उपयोगी है। ये केवल मकान की सुंदरता ही नहीं बढ़ाते, बल्कि वायु में ऑक्सीजन की मात्रा भी बढ़ाते हैं।
22. विद्यालय की कॉपियों पर या दूसरे कामों के कागज के दोनों ओर लिखना चाहिए।
23. प्लास्टिक की थैलियों का कम-से-कम प्रयोग करना चाहिए। यदि प्रयोग करना ही है तो उन्हें बार-बार प्रयोग करें।
24. प्लास्टिक थैलियों को इधर-उधर नहीं फेंकना चाहिए, क्योंकि ये भूमि प्रदूषण फैलाती हैं। जब भी बाजार जाएं अपना घरेलू थैला ले जाएं और इसी में सामान खरीदकर लाएं।
25. फ्रिज के अंदर प्लास्टिक थैली या मोमी कागज का कम-से-कम प्रयोग करना चाहिए।
26. अपने घर के कूड़े-कचरे को सड़क पर इधर-उधर नहीं फेंकना चाहिए, बल्कि कूड़ेदान में डालना चाहिए। इस प्रकार आप पर्यावरण को स्वच्छ रखने में योगदान देते हैं।
27. अपने पालतू पशुओं को खुली जगह पर नहीं छोड़ना चाहिए। ये गंदी वस्तुएं खाते रहते हैं। सड़कों पर ये गोबर करते हैं, जिससे बदबू आती है। फलस्वरूप अनेक

रोग उत्पन्न होते हैं। सड़कों पर घूमती गाएं वाहन दुर्घटनाओं के लिए भी उत्तरदायी हैं। नगरों एवं महानगरों में गाय खुली सड़कों पर अधिक घूमती रहती हैं।

28. छिपकली आदि तथा अन्य गैर विषैले जंतुओं को नहीं मारना चाहिए, क्योंकि ये दूसरे कीड़े-मकोड़ों को खाकर प्रकृति में संतुलन बनाए रखते हैं।
29. डी.डी.टी. का प्रयोग करना अत्यंत घातक है। कीड़े-मकोड़े मारने के लिए इसका प्रयोग कुछ देशों ने बंद कर दिया है। इसके स्थान पर दूसरे कीटनाशी प्रयोग करने चाहिएं।
30. अपने पालतू कुत्तों को सड़क पर नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि उनके काटने से किसी की जान जा सकती है। पालतू बिल्लियों के गले में घंटी बांध दी जाए, ताकि उसके आने का पक्षियों को पता लग जाए और वे उड़कर अपनी जान बचा सकें।
31. जंगली जानवरों के फर और चमड़े से बनी वस्तुओं को कम ही प्रयोग में लाना चाहिए, क्योंकि मांग की अधिकता के कारण कुछ लोग जंगली जानवरों का शिकार करते हैं, फलस्वरूप उनके विलुप्त होने का खतरा पैदा हो गया है।
32. अपने टी.वी., स्टीरियो और रेडियो को कम आवाज में बजाना चाहिए। ऐसा करने से हम शोर-प्रदूषण रोकने में सहायक हो सकते हैं।
33. विद्युत का प्रयोग कम-से-कम करना चाहिए। विशेषरूप से उस समय जब विद्युत का अधिकतम प्रयोग कारखानों (फैक्ट्ररियों) में अधिकतम किया जा रहा हो। घर छोड़ते समय बिजली के स्विच बंद होने चाहिएं। राजकीय/ अराजकीय (निजी) कार्यालयों में आपका कर्तव्य है कि कमरे से बाहर जाते समय ट्यूबलाइट और पंखे बंद कर देने चाहिएं।
34. मोटर-गाड़ियों, बसों, कारों और स्कूटरों के हॉर्न केवल आवश्यकता पड़ने पर ही बजाने चाहिएं। इनको अनावश्यक रूप से बजाने से आप पर्यावरण में शोर-प्रदूषण पैदा करते हैं। सभी मोटर वाहनों के साइलेंसर ठीक स्थिति में होने चाहिएं, ताकि उनसे शोर-गुल पैदा न हो।
35. बल्ब के स्थान पर सी.एफ.एल. का प्रयोग करना चाहिए।
36. एयरकंडीशनर के फिल्टर को समय-समय पर साफ करना एवं बदलनां चाहिए।
37. भोजन बनाने हेतु कम एनर्जी लगने वाली वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए।
38. भोजन हमेशा ढक कर बनाना चाहिए।
39. स्टैंड बाय मोड में किसी भी इलेक्ट्रॉनिक यंत्र को नहीं रखना चाहिए।
40. फ्रिज को समय-समय पर डिफ्रास करते रहना चाहिए।
41. वॉशिंग मशीन का प्रयोग कपड़े सुखाने में नहीं करना चाहिए।
42. गर्म पानी का कम-से-कम प्रयोग करना चाहिए।
43. घर हमेशा हवादार एवं रोशनी युक्त बनाना चाहिए।
44. समय-समय पर घर की रि-साइक्लिंग करनी चाहिए।
45. पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए खरीदारी करनी चाहिए।
46. ताजे फल एवं ताजे भोजन का प्रयोग करना चाहिए।
47. पेड़-पौधे अधिक-से-अधिक लगाने चाहिएं।

48. वाहन चलाते समय चक्के की हवा के स्तर की जांच करना चाहिए।
49. दूरसंचार व्यवस्था का प्रयोग करना चाहिए।
50. शहर को हरा-भरा एवं शीतल रखने का हर किसी व्यक्ति को प्रयास करना चाहिए।

स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा करणीय (कर्तव्य)

युवा स्वयंसेवी संस्थाएं, बालचर (स्काउट) तथा दूसरे कुछ समूह अपने कार्यों द्वारा पर्यावरण को बेहतर बना सकते हैं। विद्यार्थी वर्ग पर्यावरण प्रदूषण रोकने में काफी सहायक हो सकता है। ऐसी संस्थाओं के लिए निम्न कार्य निर्धारित किए जा सकते हैं–

1. यदि आप विद्यार्थी हैं तो अपने विद्यालय के प्रधान से निवेदन करें कि पर्यावरण संबंधी शिक्षा का उचित कार्यक्रम संस्था में प्रारंभ करें।
2. पर्यावरण समस्याओं से संबंधित पुस्तक-पुस्तिकाएं और पुस्तकें खरीदकर अपने क्षेत्र के पुस्तकालय को दान करें।
3. आप अपने मोहल्ले में एक ऐसी संस्था बनाइए, जो पार्कों, सड़कों, नालियों की सफाई पर ध्यान दे साथ-ही-साथ लोगों को पर्यावरण स्वच्छता के विषय में शिक्षा दें।
4. स्वयंसेवी संस्था के रूप में आप अपने गली-मोहल्लों की नालियों आदि का निरीक्षण करें और अनुचित व्यवस्था के लिए संबंधित अधिकारी को लिखें। गली-मोहल्ले के लोगों का कर्तव्य है कि वे अपने चारों ओर सफाई का ध्यान रखें और सड़क पर डिब्बे, बोतल, कागज आदि न फेंकें। केले तथा मूंगफली के छिलके यथास्थान फेंकें अन्यथा केले के छिलके से फिसलकर कभी-कभी हड्डियां क्षतिग्रस्त हो सकती हैं।
5. हमें कारखानों में जाकर वहां के अधिकारियों से प्रदूषण कम करने के लिए अनुरोध करना चाहिए।
6. संस्थाओं तथा फैक्ट्रियों के व्यवस्थापकों का यह कर्तव्य है कि वे सड़कों के किनारे छोटे-छोटे पौधे और फूल वाले पौधे लगाएं, ताकि वायु प्रदूषण न हो।
7. स्वयंसेवी संस्थाओं को चाहिए कि वे अपने क्षेत्र में वाहनों की आने-जाने की रूप-रेखा पर ध्यान दें और किसी गलत कार्य की सूचना संबंधित जानकारी अधिकारी को दें।
8. स्वयंसेवी संस्थाओं को चाहिए कि वे अपने क्षेत्र की जल टंकियों का निरीक्षण करें और कोई शिकायत होने पर जल आपूर्ति विभाग को सूचित करें।
9. स्वयंसेवी संस्थाएं पौधारोपण का कार्य भी अभियान के रूप में चला सकती हैं।
10. यदि आप अधिक कोलाहल (शोर) वाले क्षेत्र में रह रहे हैं तो संस्था के रूप में घर-घर जाकर शोर से होने वाले प्रतिकूल प्रभावों के विषय में लोगों को जानकारी दें और उनसे रेडियो, दूरदर्शन आदि कम आवाज में बजाने के लिए आग्रह करें।

बी.एड. छात्रा
स्वामी स्वरूपानंद इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन
आमदीनगर, हुडको, भिलाई (छ.ग.)

मानवीय भावों का उद्दीपक : पर्यावरण

डॉ. फिरोजा जाफरअली

पर्यावरण अपने बाह्य उपादनों के साथ स्वयं एक साध्य के रूप में साहित्य में अहम् भूमिका निर्वहन करता है। कविता के बाहरी और भीतरी दोनों ही स्तरों में पर्यावरण सौंदर्य की खोज में रत् संयोग और वियोग को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास करता है। जहां एक ओर भाव प्रकृति के साथ प्रेम और आत्मउद्बोधन बनकर सौंदर्य सृष्टि का साधन बनते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रेम और आत्मउद्बोधन प्रकृति के साथ अंतर्संबंधित होकर रमणीय चित्रमयता को साकार करते हैं।

पर्यावरणीय अवधारणा प्रकृति शब्द की व्यंजना को चरितार्थ करती है। कवियों ने प्रकृति को कल्पना शक्ति के अलौकिक, अद्भुत, अपराजित सृष्टि विधायनी अस्त्र के रूप में अपना हथियार बनाया। इसी हथियार के माध्यम से अनेक अनगढ़ शिल्पों को गढ़ा। प्रकृति को अनुभूति प्रकाशन का माध्यम बनाकर प्रेम, पीड़ा, दर्द, अवसाद, दुःख, विरह, वेदना का अंकन किया। प्रकृति चित्रण द्वारा प्रेम वेदना की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति की। संयोग सुखों की मादक स्मृति को प्रकृति के माध्यम से मनोदशा चित्रण का साधन बनाया। वैयक्तिक भाव-भूमि से परे प्रकृति में ही कवियों ने व्यथित विश्व के प्रति सहानुभूति की हार्दिक भावाभिव्यंजना की। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने साहित्य में प्रकृति का अनुपम चित्रण किया है। वे कहते हैं, "एक अंकुर को देखकर जो प्रसन्नता का अनुभव होता है, उसकी तुलना और किसी खुशी से नहीं की जा सकती।" उन्होंने इसे सृष्टि सृजन के परमानंद की संज्ञा दी है। मनुष्य समस्त सुख-दुःख का स्पर्श प्रकृति में ही करता है, प्रकृति ही उसका आलंबन है, संयोग के क्षणों में प्रकृति उल्लसित नजर आती है। लगता है जैसे टहनियां पेड़ों के गले में बांहें डालकर झूम रही हैं। भौंरे फूलों का चुंबन करके मधुर तान छेड़ते हैं। भौरों की मादक ध्वनि सुनकर कलियां मुस्कराती हैं। इसके विपरीत जब मन शोक, विरह एवं व्यथा से व्यथित होता है तो प्रकृति भी आह, टीस, वेदना, आंसू से परिपूर्ण नजर आती है। प्रकृति मानव समाज में व्याप्त विषमता का भी चित्रण करती है—जैसे कोई व्यक्ति सुखी है तो अपार सुख का उपभोग कर रहा है, कोई दुःखी है तो रात-दिन व्यथा से तड़प रहा है। विषमता प्रकृति में भी विद्यमान है। आकाश असीम सुखों का उपभोग करता हुआ उल्लसित होकर रात्रि में अपने नक्षत्र-समाज के साथ अठखेलियां करता है, वहीं पृथ्वी विभिन्न प्रकार के दुःखों को वहन करती हुई विषमतामूलक कारुणिक जीवन जीती है। ऐसे प्राकृतिक सौंदर्य एवं प्राकृतिक विडंबनाओं को चित्रमय रूप देने में जयशंकर

प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', नागार्जुन, गिरिजाकुमार माथुर आदि अग्रणी पंक्ति में शामिल हैं।

प्रकृति स्मृतिजन्य वेदना का मनोवैज्ञानिक निरूपण करती है। कवि प्रकृति के मादक वातावरण में प्यार की कल्पना करता है तो प्रकृति की नीरवता में स्वयं को अकेला पाता है। इस भौतिकवादी संसार के संघर्ष और अंतर्द्वंद्व के बीच असहाय मनुष्य छल-कपट, मिथ्या वैभव, अहंकार, आडंबर कोलाहल से भरी तनावग्रस्त धरती को छोड़कर प्रकृति के ऐसे मनोरम वातावरण में जाने की इच्छा करता है, जहां समुद्र की लहरें आकाश के कानों में निश्छल प्रेम निवेदन कर रही हों, जहां धरती और आकाश का मिलन हो रहा हो। वर्तमान आधुनिक जीवन की देन अवसाद को दूर करने में भी प्रकृति अहम् भूमिका निभाती है। छायावादी कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण कर प्रकृति के अचेतन एवं जड़ अवयवों को सचेतना से जोड़ा है। प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत ने कविता करने की प्रेरणा का स्रोत प्रकृति को ही बताया है। आधुनिक युग में काव्यों में प्रकृति चित्रण उन रूपों में चित्रित हुई है, जिसमें आलंबन, उद्दीपन, संवेदनात्मक वातावरण निर्माण, रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक अलंकार योजना, मानवीकरण, लोकशिक्षा और दूती के रूप में प्रकृति चित्रित की जाती है। समस्त पर्यावरणीय बाह्य वृत्तियों के अध्ययन के साथ-साथ पर्यावरणीय अंतवृत्तियों का अध्ययन भी आवश्यक है, जो साहित्य में ही संभव है।

पर्यावरण मनुष्य के जीवन को संतुलित एवं नियंत्रित रखता है। प्रकृति प्रदत्त समस्त उपादानों के साथ खेलकर मनुष्य आनंद ले रहा है, वह भूलकर कि हमारे इस अन्याय के लिए प्रकृति हमें क्या दंड देगी, हमारे बाह्य एवं आंतरिक भाव के वातावरण को प्रकृति ही संतुलित करती है। वनस्पति, जीव-जंतुओं, धरती, पानी, हवा, प्रकाश का दोहन अंधाधुंध हो रहा है। साथ ही मानवीय भाव, प्रेम, संवेदना, उदात्तता का भी दोहन दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण मानवजाति के अस्तित्व के लिए जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी मानवीय भाव और संवेदना भी है। कवियों ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर मानवीय भाव-भूमि के पर्यावरणीय उद्बोधनों को नया आयाम प्रदान किया है। धरती को मां स्वरूप मानकर सुमित्रानंदन पंत प्रकृति में ही अपनी ममतामयी मां का स्नेह ढूंढते हुए घोंसला नामक कविता में कहते हैं—

यहां मिली,
मां के आंचल की छांव
शाश्वत् स्नेह, निश्छल प्यार
देवकी नहीं मिली तो क्या?
प्रकृति रही सदा उनके साथ
यशोदा बनकर
बांहों के हिंडोले पर
झुलाती रही उनका बालपन
सहलाती रही उनके कोमल गात,
आहत मन को देती रही सहारा,
बहलाती रही उनका बालपन

दूर भगाती रही अकेलापन
प्रकृति को तन-मन कर अर्पण
जिए सदा प्रकृति दर्पण बन।[1]

पंतजी की अनुभूति का दायरा प्रकृति के इर्द-गिर्द ही था। आरंभिक कवि जीवन की शुरुआत की प्रेरणा भी प्रकृति ही रही। प्रकृति निर्मित पर्यावरणीय भावनाओं को छायावादी कवियों ने कोमल भावनाओं के साथ विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। जहां प्रकृति अपने पारिभाषिक रूप में वायु, जल, मृदा, पादप तथा प्राणी को समेटकर संपूर्ण जैविक परिस्थितियों को जोड़कर जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करती हं, वहीं प्रकृति मानसिक अनुक्रियाओं को संपूर्ण भावों के साथ भी प्रभावित करती है। इन्हीं प्रभावों को कवियों ने कल्पना सुंदर भावनाओं के साथ संवेदना के उच्चतम स्तर पर उद्दीपक के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत की कल्पनाशक्ति के विषय पर आचार्य नंददुलारे वाजपेयी कहते हैं "कल्पना ही पंतजी की कविता की विशेषता, उसके आकर्षण का रहस्य है। ...कल्पना पंतजी की कविता का मेरुदंड है और न उसकी काव्य सृष्टि का मापदंड है। कोरी कल्पना की बाल्य-सुलभ रंगीन उड़ानों से लेकर अत्यंत तल्लीन और गहन कल्पना-अनुभूतियों के चित्रण में पंतजी का विकास-क्रम देखा जा सकता है।"[2]

कल्पना तत्व प्रकृति प्रेमी कवियों को जैविक परिस्थितियां प्रदान करता है। पंतजी ने प्रकृति के संवेदनात्मक रूप का चित्रण मनुष्य के उल्लास, मनोरंजन, ह्रास के समय उल्लसित रूप में किया है। इस समय प्रकृति स्वयं उल्लसित नजर आती है। कवि अपनी कविता 'मिलन' में आनंद-उल्लास में निमग्न प्रकृति का अंकन करते हुए लिखते हैं—

जब मिलते मौन नयन पल भर, खिल-खिल अपलक कलियां निर्भर,
देखती मुग्ध, विस्मित, नभ पर, तुम मदिराधर पर मधुर अधर।[3]

इसके ठीक विपरीत प्रकृति शोक, विषाद, रुदन एवं अवसाद के क्षणों में स्वयं अश्रुपात करती अथवा शोकमग्न रुदन करती हुई दिखाई देती है।

खोलता इधर जन्म लोचन, मूंदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण,
अभी उत्सव और हास-हुलास, अभी अवसाद, अश्रु उच्छवास।[4]

अवसाद और उल्लास मानव-जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया है। विभिन्न सकारात्मक तथा नकारात्मक परिस्थितियां संवेदना के स्तरों के निर्माण में सहायक होती हैं। पर्यावरणीय समस्याएं संवेदनात्मक वातावरण के लिए प्रेरक का कार्य करती हैं।

छायावादी कवियों का प्रकृति से गहरा नाता रहा है। छायावादी कवि जगत् के अणु-अणु एवं कण-कण में एक अलौकिक सौंदर्य की छटा देखता है। जयशंकर प्रसाद अपनी कालजयी रचना 'कामायनी' में समस्त प्रकृतिप्रदत्त शक्तियों का भौतिकवादी मानवों द्वारा शोषण का वर्णन करते हुए कहते हैं—

प्रकृत शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी,
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।[5]

भावात्मक संवेदना और भावात्मक वृत्तियों के योग को मानव-जीवन के विकास में संघर्ष और कल्पना को, प्रसादजी ने कामायनी में सर्वत्र प्रकृति सुंदरी की सचेतन झांकी के रूप में अंकित किया है। इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं,

"कामायनी में उन्होंने नर-जीवन के विकास में भिन्न-भिन्न भावात्मक वृत्तियों का योग और संघर्ष बड़ी प्रगल्भ और रमणीय कल्पना द्वारा चित्रित करके मानवता का रसात्मक इतिहास प्रस्तुत किया है।"[6]

कवि प्रसाद ने आंसू काव्य में वियोग-जन्य पीड़ा, उत्कट वेदना, असीम संताप के साथ संयोग के क्षणों में भी आनंद और विषाद दोनों ही रूप में प्रकृति के सचेतन रूप का वर्णन किया है। आंसू की प्रकृति का मानसिक पर्यावरणीय रूप का दोहन तथा दूषण दोनों ही मानवीय भावों को प्रभावित करती है। आचार्य विनय मोहन शर्मा आंसू पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, "यदि आंसू का प्रकाश न होता तो छायावाद की भूमि ही अनिर्दिष्ट रह जाती। अंतर्भावनाओं की उन भावनाओं की जो यौवन को झकझोरा करती हैं, अभिव्यक्ति स्पष्ट न हो पाती।"[7]

प्रकृति और मानव का गहरा संबंध है। प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। जन्म लेते ही मानव प्रकृति की गोद में क्रीड़ा करता है। आरंभ से ही मानव प्रकृति के प्रति अद्भुत आकर्षण एवं अलौकिक अपनत्व का भाव रखता है। यही अपनत्व संवेदना के रूप में जाहिर होता है। महादेवी वर्मा ने अपने काव्य चित्र में प्रकृति को संवेदनात्मक रूप में अधिक देखा है। महादेवी की प्रकृति मानव की गहन पीड़ा को देखकर आंसू बहाती है तो साथ में तारे भी आंसू बहाते हैं।

आंसू बन-बन तारक आते, सुमन हृदय में सेज बिछाते।

प्रिय के आगमन की हर्ष बेला में आकाश, सागर सभी मुस्कराते हैं, सभी ओर प्रकृति में हर्षोल्लास दिखाई देता है।

मुस्कराता संकेत भरा नभ, अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?

मानवीय संवेदनाओं से हृदय के भाव उद्दीप्त होते हैं और प्रकृति भावों की पर्यावरणीय भूमि को संवेदना के स्तर पर उद्दीप्त करती है। महादेवी ने प्रकृति की भावोद्दीपक एवं मार्मिक व्यंजना की है—

कोकिल गान ऐसा राग! मधु की चिर प्रिया यह राग!
उठता मचल सिंधु अतीत, लेकर सुप्त सुधि का ज्वर।

कोकिल के इस गीत में मादकता, सरसता के साथ भावोद्दीपकता भी भरी हुई है।

कवि अज्ञेय ने प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम एवं अनन्य आस्था प्रकट करते हुए उसके विविध रूपों की झांकियां अंकित की हैं। कवि प्रकृति के सचेतन रूप का चित्रण करते हुए उद्दीप्त भावों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए कहते हैं—

मैं सोते के साथ बहता हूं
पक्षी के साथ गाता हूं।

कवि नागार्जुन ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का सुंदर चित्रण करते हुए प्रकृति के चेतन एवं अचेतन दोनों रूपों का वर्णन किया है। कवि गिरिजाकुमार माथुर ने प्रकृति को विविध रूपों में देखा है। मिट्टी, वन, सुंदर दृश्य का वर्णन 'ढाकवनी' कविता में बुंदेलखंड की प्रकृति का जीता-जागता चित्र अंकित किया है।

उद्दीपन के रूप में प्रकृति कभी सुखद क्षणों में अथवा संयोग के अवसर पर भावों को उद्दीप्त करती है तो कभी वियोग के क्षणों में भावों को उद्दीप्त कर उद्दीपन का

कार्य करती है। कवि दोनों ही रूपों में प्रकृति चित्रण करता है। कविवर पंत ने मधुस्मिति, मधुवन, गृह-काज, गुंजन, मिलन, प्रथम मिलन आदि कविताओं में प्रकृति की उन्मद छवि का अंकन किया है। मधुवन कविता में संयोग के क्षणों में भावों को उद्दीप्त करती हुई प्रकृति का मनोरम चित्र अंकित करते हुए कवि कहते हैं—

डोलने लगी मधुर मधुवात, हिला तृण व्रतति कुंज तरुपात
डोलने लगी प्रिये! मृदुवात गुंज-मधु गंध-धूल हिमगात।

वियोग के क्षणों में प्रकृति विरही हृदय को और अधिक व्याकुल बना देती है, तब प्रकृति निर्मम एवं निष्ठुर गति से निष्ठुर प्रतीत होती है। प्रकृति विरह में मानव के संपूर्ण अस्तित्व में समाहित हो जाती है। निष्ठुर प्रियतम के वियोग में जलकर नागमती की दशा चिंतनीय हो गई है। नागमती के इस कातर विरह और विलाप से घोंसलों में बैठे पक्षी भी व्याकुल हैं, प्रकृति पर विरह की व्यापकता का इस कदर प्रभाव है कि नागमती के विरह-व्यथित हृदय का भाव सूर्य, चंद्रमा, पेड़, पक्षी सब में दिखाई देता है।

सूरुज बूड़ि उठा होई ताता। और मजीठ टेसू बन राता॥
नागमती के आंसुओं से सारी प्रकृति भीग जाती है।
कुहकि-कुहकि जस कोइल रोई। रकत आंसू धुंधुची बन बोई।
तेहि दुःख भये परास निपाते। लोह बूड़ि उठे होई राते।

प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने से वर्णन में सजीवता और संवेदनशीलता का समावेश सहज ही हो जाता है। विरह को और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हेतु कवि ने बारहमासा का वर्णन किया है। वर्ष के बारह महीने विरहणी नायिका के विप्रलंभ शृंगार के उद्दीपन रूप में हैं, जिसमें प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का सजीव वर्णन है। प्रकृति के साथ विरह, दुःख के अनेक रूपों के साथ पाठक के समक्ष चित्रित होता है। कार्तिक का शरतचंद्र सारे संसार को शीतलता देता है, किंतु वह नागमती को और जलाता है—

कार्तिक सरदचंद्र उजियारी। जग सीतल हौ विरहै जारी।
चौदह करा चांद परगासा। जनहुं जरै सब धरति अकासा।

प्रकृति के साथ गहरी आत्मीयता के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने "नागमती विरह वर्णन को हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु कहा है।"[8]

कविजन प्रकृति का प्रयोग कर प्रकृति की विविध गतिविधियों द्वारा जनसाधारण को शिक्षा दिया करते हैं, वहां पर प्रकृति चित्रण का लोकशिक्षा रूप दृष्टिगोचर होता है। प्रायः प्राचीनकाल से ही कवि जन-मानवों को प्रकृति द्वारा शिक्षा देते आए हैं। आधुनिक कवियों में पंतजी ने अपनी कितनी ही कविताओं में प्रकृति के परिवर्तनों के द्वारा उपदेश देने का कार्य किया है। जीवन और जगत् की अस्थिरता, अचिरता एवं क्षण-भंगुरता का उपदेश परिवर्तन नामक कविता में दिया है। वहीं पतझर कविता में पुराने पत्तों के निरंतर झड़ने तथा नूतन पत्तों के आगमन की बात कहकर संसार के आवागमन, आत्मा की अमरता का शिक्षाप्रद उपदेश दिया। प्रकृति निर्मित पर्यावरण को कवियों ने सचेतन रूप में देखा। पंतजी ने प्रकृति सचेतना का मन, आत्मा तथा हृदय से अनन्य संबंध स्थापित किया।

श्री विश्वंभरनाथ मानव के ये शब्द समीचीन हैं कि "पंतजी ने प्रकृति की एक-एक वस्तु में चेतना पहचानी है। प्रकृति का उन्होंने शरीर ही नहीं देखा, मन भी देखा है और

देखी है उस मन की भावनाएं भी। सरिता, सुमन, नक्षत्र, बादल आदि के संपर्क में वे आते हैं तो उनके रूप निहारने की अपेक्षा उन्हें उनके हृदय की बात सुनना अधिक भाता है।"[9]

प्रकृति निर्मित पर्यावरण का उद्दीपक, संवेदनात्मक, उपदेशात्मक रूपों का चित्रण आधुनिक कवियों ने चेतना के स्तर पर किया है। उन्होंने प्राकृतिक पर्यावरण का भौतिक रूप देखने के साथ-साथ उसके मन के तहों को भी टटोला है। पर्यावरण में भावनाओं का आरोपण करके मानव के लिए प्रकृति और पर्यावरण के महत्व को स्पष्ट किया है। प्राकृतिक पर्यावरण के सीमित दृष्टिकोण जिसमें प्रकृति के बाह्य रूपों का ही अध्ययन अध्यापन आवश्यक है, को साहित्य व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। साहित्य दर्पण का कार्य करते हुए ये बताता है कि पर्यावरण का स्वच्छ, निर्मल रूप मानव के लिए कितना आवश्यक है।

साहित्य आईना दिखाता है कि आज का भोगवादी, मानव समुदाय, जो सिर्फ और सिर्फ प्रकृति का उपभोग कर रहा है, मन की आंखों से, आत्मा की गहराई से देखने पर, महसूस करने पर, प्रकृति के चेतन रूप को समझकर प्रकृति के साथ मानवोचित व्यवहार कर सकता है। जरूरत है अपने अंदर के जड़-तत्वों को बाहर निकाल फेंकने की। प्रकृति में निहित जीवन-दर्शन को समझने के लिए साहित्य के करीब आना आवश्यक है। आवश्यकता है प्रकृति के मन को देखने की। जिस दिन मानव प्रकृति में अपनी भावनाओं का अक्स देखेगा, उस दिन पर्यावरण स्वमेव परिष्कृत और परिशोधित हो जाएगा।

संदर्भ

1. घोंसला, सुमित्रानंदन पंत।
2. हिंदी साहित्य 20वीं शताब्दी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ. 145
3. मिलन, सुमित्रानंदन पंत।
4. परिवर्तन, सुमित्रानंदन पंत।
5. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, पृ. 299
6. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 977-978
7. आंसू तथा अन्य कृतियां, कवि प्रसाद, पृ. 76-77
8. जायसी ग्रंथावली, भूमिका, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 44
9. सुमित्रानंदन पंत, श्री विश्वंभरनाथ मानव, पृ. 158

सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
भिलाई (छ.ग.)

प्लास्टिक की उपयोगिता एवं पर्यावरणीय प्रभाव

डॉ. संध्या वर्मा

मानव जीवन जल, वायु तथा मृदा पर आधारित है और ये तीनों मिलकर जीवन के लिए संपूर्ण पारिस्थितिकी-तंत्र का निर्माण करते हैं, किंतु मानव के लिए, किसी भी कीमत पर सफलता अर्जित करना ही एकमात्र उद्देश्य बन गया है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह जीवन के आधारभूत मूल तत्वों से खिलवाड़ करने लगा है, जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी तंत्र में ऐसे तत्वों का प्रवेश हो गया है, जो एक दिन मानव जीवन को ही नष्ट कर देंगे।

आधुनिक समाज में प्लास्टिक मानव-शत्रु के रूप में उभर रहा है। समाज में फैले आतंकवाद से तो छुटकारा पाया जा सकता है, किंतु प्लास्टिक से छुटकारा पाना अत्यंत कठिन है, क्योंकि आज यह हमारे दैनिक उपयोग की वस्तु बन गया है। गृहोपयोगी वस्तुओं से लेकर कृषि, चिकित्सा, भवन-निर्माण, विज्ञान, सेना, शिक्षा, मनोरंजन, अंतरिक्ष, अंतरिक्ष कार्यक्रमों और सूचना प्रौद्योगिकी आदि में प्लास्टिक का उपयोग हो रहा है।

प्लास्टिक एक ग्रीक शब्द प्लास्टीकोस से बना है, जिसका सीधा तात्पर्य है आसानो से नमनीय पदार्थ जो किसी आकार में ढाला जा सके। 1970 के दशक में इसका उपयोग औद्योगिक तथा घरेलू क्षेत्र में अप्रत्याशित रूप से बढ़ा। सस्ता, हल्का, ताप-विद्युत, कंपन-शोर प्रतिरोधी तथा कम जगह घेरने वाला पदार्थ होने के कारण औद्योगिक कार्यों में धातुओं की जगह इसने ले ली। साथ ही, वाहन, इलेक्ट्रॉनिक्स, दूरसंचार, कृषि उपकरण तथा अन्यान्य आवश्यक कार्यों में भी प्लास्टिक को प्रतिनिधित्व मिला। विश्व में औसतन प्लास्टिक की खपत 15 किलो/ प्रतिव्यक्ति की तुलना में भारत में यह खपत लगभग प्रति व्यक्ति लगभग 1 किलो है। इस तरह विश्व की तुलना में यह खपत भारत में प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत है। इलेक्ट्रॉनिक अपशिष्ट जिसमें Epoxy, प्रिंटेड सर्किट बोर्ड, चप्पल, टी.वी., कैबिनेट, टेपरिकॉर्डर के गियरबॉक्स, प्रकाश करने वाले स्रोत, बटन इत्यादि शामिल हैं। भारत में प्रतिवर्ष करीब 700 टन निकलता है, जबकि ऐसे प्लास्टिक अपशिष्ट की मात्रा विश्व में 7000 टन है।

अपनी विविध विशेषताओं के कारण प्लास्टिक आधुनिक युग का अत्यंत महत्वपूर्ण पदार्थ बन गया है। टिकाऊपन, मनभावन रंगों में उपलब्धता और विविध आकार-प्रकारों में मिलने के कारण प्लास्टिक का प्रयोग आज जीवन के हर क्षेत्र में हो रहा है। बाजार में खरीदारी के लिए रंग-बिरंगे कैरी बैग से लेकर रसोई घर के बर्तन, कृषि के उपकरण,

परिवहन वाहन, जल-वितरण, भवन, रक्षा उपकरण एवं इलेक्ट्रॉनिक्स सहित अनेक क्षेत्रों में आज प्लास्टिक का बोलबाला है। यही नहीं वैज्ञानिकों ने मनुष्य का जो कृत्रिम हृदय बनाया है, वह भी प्लास्टिक से ही बनाया गया है।

तमाम खूबियों वाला यही प्लास्टिक जब उपयोग के बाद फेंक दिया जाता है तो यह अन्य कचरों की तरह आसानी से नष्ट नहीं होता। एक लंबे समय तक अपघटित न होने के कारण यह लगातार एकत्रित होता जाता है और अनेक समस्याओं को जन्म देता है। जिन देशों में जितना अधिक प्लास्टिक का उपयोग होता है, वहां यह समस्या उतनी ही जटिल है। चिंता की बात तो यह है कि प्लास्टिक का उपयोग लतागार बढ़ता जा रहा है। जबकि पिछले वर्षों में जो प्लास्टिक कचरे में फेंका गया, वह ज्यों-का-त्यों धरती पर यत्र-तत्र बिखरकर प्रदूषण फैला रहा है। भारत में अभी भी प्लास्टिक का उपयोग विकसित देशों की अपेक्षा काफी कम है, लेकिन इसका प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है। सन् 2001-02 में भारत में प्लास्टिक की मांग 4.3 मिलटन थी, जो प्रतिवर्ष बढ़ने की संभावना है। वर्तमान में भारत में प्लास्टिक का बाजार 25,000 करोड़ रुपये है। एक सर्वेक्षण में पाया गया है कि हमारे देश के शहरों के कूड़े में 10 प्रतिशत प्लास्टिक की वस्तुएं, 5 प्रतिशत रेशे के टुकड़े होते हैं। प्लास्टिक की वस्तुओं में अनेक टूटे-फूटे बर्तन एवं घरेलू उपकरण होते हैं। कुछ दशकों पूर्व तक शहरों से निकलने वाले कूड़े में प्लास्टिक बहुत कम होता था। कूड़े में अधिकांश कार्बनिक पदार्थ ही हुआ करते थे, जो जल्दी ही नष्ट हो जाते थे या खाद के रूप में बदल जाते थे।

प्लास्टिक मुख्यतः पैट्रोलियम पदार्थों से निकलने वाले कृत्रिम रेजिन से बनाया जाता है। रेजिन में अमोनिया एवं बेंजीन को मिलाकर प्लास्टिक के मोनोमर बनाए जाते हैं। इसमें क्लोरीन, फ्लुओरीन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन एवं सल्फर के अणु होते हैं। लंबे समय तक अपघटित न होने के अलावा भी प्लास्टिक अनेक अन्य प्रभाव छोड़ता है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। उदाहरणस्वरूप पाइपों, खिड़कियों और दरवाजों के निर्माण में प्रयुक्त पी.वी.सी. प्लास्टिक विनाइल क्लोराइड के बहुलकीकरण से बनाया जाता है। यह रसायन मस्तिष्क एवं यकृत में कैंसर पैदा कर सकता है। मशीनों की पैकिंग बनाने के लिए अत्यंत कठोर पॉलीकार्बोनेट प्लास्टिक फॉस्जीन बिसफीनॉल यौगिकों के बहुलकीकरण से प्राप्त किए जाते हैं। इनमें एक अवयव फॉस्जीन अत्यंत विषैली व दमघोटू गैस है। फार्मेल्डीहाइड अनेक प्रकार के प्लास्टिक के निर्माण में प्रयुक्त होता है। यह रसायन त्वचा पर दाने उत्पन्न कर सकता है। कई दिनों तक इसके संपर्क में बने रहने से दमा तथा सांस संबंधी बीमारियां हो सकती हैं। प्लास्टिक में लचीलापन पैदा करने के लिए प्लास्टि-साइजर वर्ग के कार्बनिक यौगिक मिलाए जाते हैं। थैलट, एसीसेट, इस्टर तथा कई प्रकार के पॉलिइथीलीन ग्यायकान यौगिक कैंसरकारी होते हैं। प्लास्टिक में मिले हुए ये जहरीले पदार्थ प्लास्टिक के निर्माण के समय प्रयोग किए जाते हैं। तैयार (ठोस) प्लास्टिक के बर्तनों में यदि लंबे समय तक खाद्य सामग्री रखी रहे या शरीर की त्वचा लंबे समय तक प्लास्टिक के संपर्क में रहे तो प्लास्टिक के जहरीले रसायनों का असर हो सकता है। इसी प्रकार जो प्लास्टिक कचरे में फेंक दिया जाता है, उसका कचरे में लंबे समय तक पड़ा रहना वातावरण में अनेक विषैले प्रभाव छोड़ सकता है।

प्लास्टिक कचरे को ठिकाने लगाने के लिए अब तक तीन उपाय अपनाए जाते रहे हैं। आमतौर पर प्लास्टिक के न सड़ने की प्रवृत्ति को देखते हुए इसे गड्ढों में भर दिया जाता है। दूसरे उपाय के रूप में इसे जलाया जाता है, लेकिन यह तरीका बहुत प्रदूषणकारी है। प्लास्टिक जलाने से आमतौर पर कार्बन डाईऑक्साइड गैस निकलती है। उदाहरणस्वरूप, पॉलिस्टीरीन प्लास्टिक को जलाने पर क्लोरो-फ्लोरो कार्बन निकलते हैं, जो वायमुंडल की ओजोन परत के लिए नुकसानदायक हैं। इसी प्रकार पॉलिविनायल क्लोराइड को जलाने पर क्लोरीन, नायलान और पॉलियूरेथीन को जलाने पर नाइट्रिक ऑक्साइड जैसी विषाक्त गैसें निकलती हैं।

प्लास्टिक के निपटान का तीसरा और सर्वाधिक चर्चित तरीका प्लास्टिक का पुनःचक्रण है। पुनःचक्रण का मतलब प्लास्टिक अपशिष्ट से पुनः प्लास्टिक प्राप्त करके प्लास्टिक की नयी चीजें बनाना। प्लास्टिक पुनःचक्रण की शुरुआत सर्वप्रथम सन् 1970 में कैलीफोर्निया की एक फर्म ने की। इस फर्म ने प्लास्टिक की खर्चन और दूध की प्लास्टिक बोतलों से नालियों के लिए टाइल्स तैयार किए। प्लास्टिक के पुनःचक्रण का काम बहुत कम किया जाता है। इसका मुख्य कारण पुनःचक्रण प्रक्रिया का महंगा होना है।

प्लास्टिक जनित प्रदूषण को रोकने के लिए केंद्र सरकार सहित विभिन्न राज्य सरकारें भी प्रयासरत् हैं और इसे रोकने के लिए कई राज्यों में अधिनियम बनाए जा चुके हैं तो कई राज्यों में इन्हें बनाने की प्रक्रिया चल रही है। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली क्षेत्र में भी इस संदर्भ में दो अधिनियम बनाए जा चुके हैं। दिल्ली प्लास्टिक थैलियां (विनिर्माण, बिक्री एवं प्रयोग) तथा गैर-जैव अवक्रमित कचरा-करकट (नियंत्रण) अधिनियम, 2001। ये अधिनियम 2 अक्टूबर, 2001 से राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में लागू हो चुका है और इसके अनुसार 20 माइक्रॉन से कम मोटाई की प्लास्टिक या पॉलीथिन की थैलियों का उत्पादन दिल्ली में नहीं किया जा सकता। उपरोक्त अधिनियमों का उल्लंघन करने पर 3 महीने से एक वर्ष तक की कैद अथवा 25,000 रुपये तक का जुर्माना अथवा दोनों (कैद व जुर्माना) एक साथ दंड स्वरूप दिए जा सकते हैं। ये अधिनियम मुख्यतः पॉलीथिन व प्लास्टिक की थैलियों का उत्पादन करने वाले निर्माताओं पर लागू होते हैं। हमारे देश में कानूनों की तो कमी नहीं है, कमी है तो बस उन्हें सख्ती से लागू करने की।

विभागाध्यक्ष गृहविज्ञान
कला एवं वाणिज्य कन्या महाविद्यालय
देवेंद्रनगर, रायपुर ***(छ.ग.)***

भारत में जलवायु परिवर्तन

डॉ. बीना सिंह

वायुमंडलीय परिसंचरण में परिवर्तन होने तथा पृथ्वी वायुमंडल सिस्टम के पांच संघटकों जैसे—वायुमंडल, जलमंडल, स्थलमंडल, जीवमंडल तथा हिममंडल में, धरातल पर प्राप्त सौर्य ऊर्जा तथा सौर्य ऊर्जा के वितरण, पुनर्वितरण एवं अवशोषण के संदर्भ में होने वाली अंतःक्रियाओं में परिवर्तन के कारण जलवायु में परिवर्तन होते हैं। जलवायु परिवर्तन करने वाली इस तरह की अंतःक्रियाओं के कारणों के मुख्य रूप से तीन स्रोत होते हैं– 1. बाह्य स्रोत या पृथ्वीतर स्रोत, 2. आंतरिक स्रोत या पार्थिव स्रोत तथा 3. मानव-जनित स्रोत।

जलवायु परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। जलवायु शास्त्रियों और मौसम वैज्ञानिकों में अतीत के ऐसे अनेक जलवायु परिवर्तनों के प्रभाव ढूंढ निकाले हैं। भारत में भी अतीत के जलवायु परिवर्तनों के अनेक संकेत पाए गए हैं। सिकंदर के आक्रमण के पहले तक राजस्थान का क्षेत्र आर्द और हरा-भरा था। तभी यहां सिंधु घाटी की समृद्ध संस्कृति का विकास हो पाया था। दामोदर, सोना आदि नदियों के क्षेत्र घने, सदाबहार विषुवतीय वनों से आवृत थे, जिन जमीन के अंदर दब जाने से ही इन क्षेत्रों में कोयले का निर्माण हुआ है। समुद्र तटों के अध्ययन से अनेक बार सागर तल के ऊपर उठने एवं नीचे गिरने के साक्ष्य मिलते हैं। महाभारतकालीन द्वारका ऐसे ही जल-प्लावन से सागर में डूब गई थी।

भारत के लिए जलवायु परिवर्तन का मुद्दा मुख्यतः चार कारणों से महत्वपूर्ण है–

1. पहला, यहां की अर्थव्यवस्था पूर्णतः कृषि पर निर्भर है। कृषि के लिए जल का महत्व स्वयंसिद्ध है। पहले ही मानसून की अनिश्चितता की वजह से भारतीय कृषि उसका शिकार रही है। तेजी से बदलते मौसम के मिजाज और पिघलते ग्लेशियरों ने इस समस्या को और भी बढ़ाया है। देश का अन्नदाता किसान जलवायु परिवर्तन की वजह से फसल के नष्ट होने से आत्महत्या करने को विवश है। इसलिए हमें ऐसी आधारभूत संरचना पर फोकस करना होगा, जो बदलते मौसम और सूखा तथा बाढ़ के कारण फसलों के पैटर्न में बदलाव के लिए तैयार रहे।

2. दूसरा, भारत का काफी बड़ा क्षेत्र समुद्र तट से लगा है। इसलिए समुद्र तट वाले मुंबई, चेन्नई जैसे शहरों में इसका व्यापक प्रभाव पड़ने की पूरी संभावना है।

3. तीसरा, जलवायु परिवर्तन का स्वास्थ्य सुरक्षा से भी अमिट संबंध है। लू, तूफान, बाढ़ और सूखे जैसी आपदाओं के बढ़ने से लोगों के जानमाल की हानि तो होती ही है। ओजोन

परत में छेद के बढ़ते जाने से अल्ट्रावायलेट किरणों की मात्रा बढ़ने से मोतियाबिंद, इंफेक्शन, सांस की बीमारियां बढ़ती हैं। साथ ही पेचिश, हैजा, मलेरिया, डेंगू, चिकनगुनिया, फाइलेरिया और कुपोषण से भी प्रतिवर्ष हजारों लोग असमय में काल-कवलित हो जाते हैं।

4. सूचना क्रांति के दौर में ई-कचरा भी भारत के लिए गंभीर चिंता का विषय है। एक अनुमान के अनुसार लगभग 20,000 टन कचरा विदेशों से राजधानी में आ रहा है। अकेले भारत में लगभग 3.80 लाख टन ई-वेस्ट सालाना निकल रहा है और इसके आगामी 5 वर्षों में 41 लाख टन हो जाने की उम्मीद है। ई-कचरे में सीसा, कैडमियम, पारा, निकल, लिथियम, प्लास्टिक, एल्यूमीनियम आदि धातुएं शामिल होती हैं, जो पर्यावरण के साथ ही स्वास्थ्य के लिए भी खतरा हैं। इसलिए रिसाइक्लिंग की टेक्नोलॉजी में सुधार और इस बाबत कठोर नियमों और कानूनों की सख्त जरूरत है।

जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने हेतु 8 मिशन निम्नानुसार हैं–

1. राष्ट्रीय सौर ऊर्जा मिशन–भारत में वर्ष भर 250-300 दिन धूप खिली रहती है, इसलिए सौर-ऊर्जा से बिजली उत्पादन की अपार संभावनाएं हैं, लेकिन अभी इसकी लागत प्रति मेगावॉट 20-22 करोड़ है, जबकि कोयले से बिजली बनाने में यह खर्च लगभग 5 करोड़ रुपये आता है, इसलिए इस मिशन के अंतर्गत सौर बिजली सस्ती बनाने पर जोर है।

2. ऊर्जा क्षमता बढ़ाने से संबद्ध मिशन–इसके तहत ऐसी टेक्नोलॉजी को बढ़ावा दिया जाएगा, जो कम ऊर्जा खर्च करेगी। 42 फीसदी ऊर्जा उद्योगों में खर्च होती है और 31 फीसदी कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन उद्योगों से होता है।

3. रहन-सहन के लिए मिशन–घरों में 13.3 फीसदी ऊर्जा की खपत होती है। कम ऊर्जा खपत करने वालों आवासों का विकास किया जाएगा। कचरे की रि-साइक्लिंग से ऊर्जा पैदा की जाएगी। सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था को बेहतर किया जाएगा।

4. जल संरक्षण मिशन–भारत में प्रतिवर्ष 4000 अरब क्यूबिक मीटर पानी बरसता है, लेकिन सतह पर भू-जल रिचार्ज के रूप में इसमें से सिर्फ 1000 अरब क्यूबिक मीटर का ही इस्तेमाल हो पाता है। मिशन के तहत इस पानी के संरक्षण तथा जरूरी तकनीकों के विकास पर ध्यान दिया जाएगा।

5. हिमालय के लिए मिशन–हिमालय के ग्लेशियरों की भूमिका महत्वपूर्ण है, नदियों की खातिर ग्लेशियरों को पिघलने से बचाना आवश्यक है।

6. ग्रीन इंडिया मिशन–इस मिशन के अंतर्गत वनों के विकास पर जोर दिया जाएगा। राष्ट्रीय वन नीति में 33 फीसदी भू-भाग को वनाच्छादित बनाने का लक्ष्य है। दूसरा लक्ष्य जैव-विविधता को बढ़ावा देना है।

7. टिकाऊ कृषि मिशन–जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव कृषि पर पड़ेगा। इससे लगभग 60 फीसदी लोगों को रोजगार मिला हुआ है और एक अरब से ज्यादा लोगों के लिए भोजन जुटाया जा रहा है, इसलिए मिशन में टिकाऊ कृषि पर जोर दिया गया है।

8. ज्ञान का राजनीतिक मिशन–इसके तहत जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर उनके खतरों का आकलन किया जाएगा। इनकी सूचनाओं को आम लोगों तक पहुंचाने के लिए तंत्र की स्थापना की जाएगी।

अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत की प्रस्थिति

जी-20 सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए पश्चिमी देश स्वच्छ पर्यावरण के नाम पर शुल्कों की दीवार खड़ी कर रहे हैं। इसके तहत आयात पर भी टैक्स लगाने का जोड़-घटाव किया जाएगा। सन् 2019 तक जलवायु परिवर्तन पर कोई ग्लोबल समझौता होता नहीं दिखता। ऐसे में अमेरिका वैसे देशों के आयात पर इकतरफा सीमा शुल्क लगाने की तैयारी कर रहा है, जिन्होंने अभी तक उत्सर्जन कम करने के लिए कदम नहीं उठाए हैं।

यद्यपि डब्ल्यू.टी.ओ. के तहत पूंजी का प्रवाह पूरी दुनिया में खुला हो गया है, लेकिन श्रम के मुक्त-प्रवाह पर विकसित देशों द्वारा तरह-तरह के प्रतिबंध लगाए जा रहे हैं। कई वर्षों से कई विकसित देश भारतीय श्रम-प्रधान उद्योग में बालश्रम के उपयोग की बात कहकर भारत से निर्यात को रोक रहे हैं। अब विकासशील देशों से आयात पर कार्बन कर लगाकर विकासशील देशों के निर्यात को हतोत्साहित करने का प्रयास किया जा रहा है। इन सबसे भारत सहित विकासशील देशों को काफी नुकसान होना संभावित है।

चूंकि भारत में सन् 2025 तक कार्बन उत्सर्जन में 20 प्रतिशत कटौती का वादा किया है, अतः अमेरिका और यूरोपीय संघ को कार्बन उत्सर्जन में कटौती की आड़ में भारत के निर्यात पर कार्बन कर लगाने से बचना चाहिए।

संदर्भ

1. पर्यावरण भूगोल, सविंद्र सिंह, प्रयाग पुस्तक भवन, 20-ए, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद-211002
2. भारत का भूगोल, रामचंद्र तिवारी, प्रयाग पुस्तक भवन, 20-ए, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद-211002
3. प्रतियोगिता दर्पण, जनवरी, 2010
4. प्रतियोगिता दर्पण, दिसंबर, 2010

सहायक प्राध्यापक, शिक्षा संकाय,
कल्याण पी.जी. कॉलेज,
भिलाई नगर (छ.ग.)

विश्व तापमान में वृद्धि : समस्या और समाधान

डॉ. ज्योति व्यास

मानव और प्रकृति का अभिन्न संबंध है। धरती पर आंख खोलते ही उसे प्रथम दर्शन प्रकृति का ही होता है। जन्म के बाद पहली सांस से ही मनुष्य पर प्रकृति का ऋण चढ़ना आरंभ हो जाता है और जैसे-जैसे वह विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे प्रकृति का और अधिक ऋणी होता जाता है। अपने जीवन को सुख-समृद्धि से पूर्ण बनाने के लिए वह प्रकृति से नित्य ही दान लेता रहता है। यही नहीं, बल्कि अपनी बाह्य और आंतरिक संपन्नता के लिए भी वह प्रकृति के प्रांगण में आश्रय पाता है। मनुष्य और प्रकृति के संबंधों को परिभाषित करना हो तो यह कहा जा सकता है कि जैसे बच्चा पहले अपनी मां की कोख में और फिर उसकी गोद में सुरक्षा पाता है, उसी तरह मनुष्य प्रकृति के क्रोड़ में सुरक्षित होता है। उसके विभिन्न घटकों से संतुलन बनाकर वह समन्वय सीख जाता है।

परिवर्तन-सृष्टि का नियम है। परिवर्तन को सहज रूप से लेकर मनुष्य सदैव अपने अस्तित्व को बनाए रखने का प्रयास करता है। यह परिवर्तन यदि प्राकृतिक रूप से हुए तो विभिन्न जीव और मनुष्य स्वयं को परिवर्तन के अनुरूप ढाल लेते है, परंतु कई परिवर्तन प्राकृतिक न होकर मानव निर्मित होते हैं तो उसकी गति अस्वाभाविक हो जाती है। जीव एवं कुछ प्राकृतिक घटकों को उस गति से अपने गुणों का विकास करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्रकृति अपना संतुलन नहीं रख पाती, जिसका परिणाम समस्त भूमंडल को भोगना पड़ सकता है।

भारतीय समाज में प्रत्येक मनुष्य के लिए तीन आवश्यकताएं मानी गई हैं—अन्न, वस्त्र और मकान। ये हमारी मूलभूत आवश्यकताएं हैं, लेकिन आज आधुनिकता के दौर में और वैश्विक होड़ में अपनी प्रभुसत्ता बनाए रखने के लिए प्रकृति का बड़ी मात्रा में दोहन और शोषण दोनों हो रहा है। तीव्र गति से हो रहा औद्योगीकरण, बढ़ती जनसंख्या, परमाणु अस्त्रों का अनियंत्रित परीक्षण एवं निर्माण, यातायात के साधनों की भरमार, अकृत्रिम साधनों का दैनंदिन जीवन में प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है, जिसकी आपूर्ति करने तथा व्यवसाय को और बढ़ाने के लिए जंगलों की कटाई, पहाड़ों तथा छोटी-बड़ी टेकड़ियों को ध्वंस किया जा रहा है। कल-कारखानों के निर्माण में लगने वाली रेत के लिए नदी किनारों का उत्खनन, नदी के स्वाभाविक प्रवाह को रोकना, इस प्रकार प्राकृतिक संपदा को नष्ट कर रहा है। परिणामस्वरूप आज हम वायुमंडलीय परिवर्तन तथा विश्व तापमान की वृद्धि से चिंतित हैं।

पृथ्वी का वायुमंडल सूर्य, वातावरण, सागरीय पृष्ठभाग, धरती और जैव विविधता इन तत्वों की परस्पर क्रिया का होने वाला परिणाम है। प्राचीन युग से आधुनिक युग तक

इसमें अनेक परिवर्तन हुए हैं। हिम युग से लेकर आज तक पृथ्वी का तापमान किस प्रकार बढ़ता गया, इसका विस्तृत अध्ययन भूगर्भशास्त्री करते आ रहे हैं। इस परिवर्तन के लिए प्राकृतिक घटक और मानवीय घटक दोनों जिम्मेदार होते हैं। आज तो यह परिवर्तन चरमसीमा पर है, जिससे हमारे अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है, 'भू-वैज्ञानिकों के अनुसार सन् 2050 में पृथ्वी के तापमान में लगभग 1.5 सेंटीग्रेड से लेकर 4.5 सेंटीग्रेड तक वृद्धि होने का अनुमान है।' यदि ऐसा हुआ तो पृथ्वी पर मानव-जीवन ही नष्ट हो जाएगा।[1]

विश्व तापमान में वृद्धि हो रही, के कारण इस प्रकार बताए जाते हैं—

1. हरित गृह प्रभाव—ग्रीन हाउस अथवा पौधा घर नाम से जाना जाने वाला यह प्रभाव वायुमंडल का तापमान बढ़ाने का एक प्रमुख कारण है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् पृथ्वी के वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, ओजोन, क्लोरो-फ्लोरो कार्बन और हेलोजेंस आदि कृत्रिम गैसों की मात्रा बढ़ गई है। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी का वातावरण ग्रीन हाउस के समान है। सूर्य का प्रकाश, सूक्ष्म किरणों के विकिरण के लिए पारदर्शी होता है। सूर्य की विकिरणों का कुछ भाग वायुमंडल की परतों द्वारा अवशोषित हो जाता है और कुछ भाग पृथ्वी से परिवर्तित होकर वापस लौट जाता है। परंतु अत्यधिक औद्योगीकरण से कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, मोनोक्लोराइड आदि का उत्सर्जन अधिक मात्रा में होता है तथा वायुमंडल में इसका जमाव हो जाता है। यह प्रभाव एक कांच के पर्दे के समान होता है, जिसमें से सूर्य किरणें आ तो सकती है, पर लौट नहीं सकतीं, इसे ही हरित गृह प्रभाव कहते हैं। इस प्रभाव के कारण धरती एक सौर कुकर में परिवर्तित हो रही है, जो घातक है।

2. कार्बन डाईऑक्साइड—धरती के तापमान को संतुलित बनाए रखने में इस गैस की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सूर्य की गर्म किरणें वायुमंडल को भेदकर पृथ्वी तक पहुंचती हैं, जो पृथ्वी को गर्म कर देती हैं। कुछ गरमी धरती द्वारा सोख ली जाती है तो कुछ वायुमंडल में वापस चली जाती है, लेकिन गर्मी उत्पन्न करने वाली अवरक्त किरणें कार्बन डाईऑक्साइड को नहीं भेद पातीं और धरती के वातावरण को गर्म कर देती हैं। यद्यपि कार्बन डाईऑक्साइड को संतुलित बनाए रखने में समुद्र, ज्वालामुखी और वनस्पति अपनी शक्ति का उपयोग करते हैं, ये हर संभव उपाय से इस गैस को सोखने में अपनी ऊर्जा खर्च करते हैं, परंतु तीव्र औद्योगीकरण, ईंधन के रूप में लकड़ी जलाने और वनों की लगातार हो रही कटाई के कारण वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में लगातार वृद्धि हो रही है।

3. मीथेन—पर्यावरण में दलदली क्षेत्र तथा चावल के खेतों के आस-पास ऑक्सीजन का अभाव होता है, जिससे वातावरण में जीवाणु उत्पन्न होते हैं जो वनस्पतियों का ह्रास करते हैं। इस कारण मीथेन गैस का निर्माण होता है। लकड़ी को खाने वाले छोटे जीव-जंतु जैसे दीमक आदि इस गैस का निर्माण करते हैं। पशुओं की आंतों से भी यह गैस निकलती है और वायुमंडल में मिलती है।

4. क्लोरो-फ्लोरो कार्बन—ग्रीन हाउस प्रभाव के लिए यह भी एक कारण है, जो क्लोरीन और कार्बन के संयोग से बनता है। इसका प्रयोग रेफ्रिजरेटरों, एयर-कंडीशनर, सोफा और सीट के लिए काम आने वाले फोम, रेक्सीन, खुशबूदार कॉस्मेटिक स्प्रे के निर्माण में किया जाता

है। अब तो इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की सफाई में भी इसका प्रयोग होने लगा है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस गैस का प्रभाव इतना है कि ग्रीन हाउस के लिए यह 90 प्रतिशत कारणीभूत हो सकता है। ये गैस वायुमंडल में स्थित प्राणरक्षक ओजोन को नष्ट कर रही है। क्लोरो-फ्लोरो कार्बन का एक परमाणु कार्बन डाईऑक्साइड के एक अणु की तुलना में 20 हजार गुणा अधिक गर्मी उत्पन्न करता है और क्लोरो-फ्लोरो कार्बन का एक अणु ओजोन के एक लाख अणुओं को तोड़ सकता है। विशेष बात यह है कि यह गैस दीर्घजीवी है।[2] इसकी मात्रा यदि यूं ही बढ़ती रही तो वायुमंडल से ओजोन परत गायब हो जाएगी।

वायुमंडल में बढ़ता ताप आज विश्वव्यापी पर्यावरणीय समस्या है। भविष्य में इस खतरे से कोई भी सुरक्षित नहीं रह पाएगा। आज ही ग्रीन हाउस प्रभाव को कम करने के उपायों पर हम सबको गंभीरता से सोचना चाहिए। मनुष्य की सेहत पर भी इसका घातक परिणाम हम देख रहे हैं। त्वचारोग, कैंसर तथा अन्य विकृतियों का महत्वपूर्ण कारण ग्रीन हाउस प्रभाव भी है। वर्षा चक्र पर प्रभाव, उत्पादन पर प्रभाव, वायुदाब पर प्रभाव, हिमनद पर प्रभाव, समुद्री जल-स्तर पर प्रभाव तथा अन्य प्रभाव हम सबको आने वाले संकट की ओर संकेत कर रहे हैं। इसलिए हमें इसके उपायों पर गंभीरता से चिंतन करना चाहिए और व्यक्तिगत सक्रियता दिखानी चाहिए। इसके लिए–

1. जीवाश्म ईंधनों के दहन में कमी लानी चाहिए।

2. वनों की ओर लौटना चाहिए, वन कटाई करके जो नुकसान हमने किया है, उसकी भरपाई भी हम करें।

3. जिस प्रकार आधुनिकता के नाम पर हम धरती का उपयोग कर रहे हैं, उसके घटकों का बेजा उपयोग कर रहे हैं, उस पर कानूनन रोक लगाई जाए। जैसे आज की सम्राट अशोक ने वृक्ष कटाई को दंडनीय अपराध घोषित किया था, वही प्रावधान सरकार भी करे। केवल प्रावधान नहीं बल्कि उसे अमली जामा भी पहनाए।

4. परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के उपयोग को बढ़ावा दे।

1990 से पृथ्वी दिवस मनाने का संकल्प इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है, पर मंजिल अभी दूर है। आज की युवा पीढ़ी को यह सोचना होगा कि हमारे पूर्वजों ने वेदों में जो प्रकृति की आराधना की है, स्मृतियों और ऋचाओं में वनों का महत्व प्रतिपादित किया, वृक्षारोपण को सीधे धर्म से जोड़ दिया, वह क्यों? क्योंकि वे जानते थे कि यदि मनुष्य ने पर्यावरण की चिंता नहीं की तो एक दिन पर्यावरण भी मनुष्य की चिंता करना छोड़ देगा।

संदर्भ

1. पर्यावरणीय प्रदूषण, हरीश खत्री, पृ. 104
2. पर्यावरण प्रदूषण, विजय तिवारी, पृ. 42

विभाग प्रमुख/ रीडर/ शोध-निर्देशिका
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
श्रीमती केशरबाई लाहोटी महाविद्यालय,
अमरावती (महाराष्ट्र)

सामाजिक-आर्थिक पर्यावरण संवर्धन विकास का आधार

डॉ. हंसा शुक्ल

मानव का अस्तित्व वनस्पति और जीव-जंतु के अस्तित्व पर निर्भर है। हमारे आस-पास के वृक्ष, जल और वायु एवं विभिन्न प्राकृतिक कारकों को हम 'पर्यावरण' के रूप में जानते हैं। मनुष्य इन प्राकृतिक कारकों का उपयोग अपने विकास हेतु करता आया है। लेकिन आज मनुष्य विकास की राह में आंख मूंदकर इस तरह आगे बढ़ रहा है कि पर्यावरण की क्षति को नजरअंदाज कर रहा है। देश में पर्यावरण की साज-संभाल की कोशिशें इतनी कम हैं कि हमारे देश का नहीं, बल्कि विश्व का पर्यावरण प्रदूषण भी उस कगार पर जा पहुंचा है कि वह निकट भविष्य में अपनी क्षति का बदला विनाशरूपी ऐसे ताडंव के रूप में लेगा, जिसका नियंत्रण मानवीय शक्ति द्वारा किए गए किसी भी तकनीकी विकास से असंभव होगा।

पिछले तीस साल का अनुभव तो साफतौर पर यही बताता है कि पर्यावरण संवर्धन के बिना संतुलित आर्थिक विकास नहीं हो सकता। पर्यावरण का अर्थ केवल जमीन, हवा या पानी भर नहीं है, बल्कि पर्यावरण में वे समस्त प्राकृतिक संसाधन हैं, जिन पर हमारा जीवन टिका हुआ है और आगे बढ़ रहा है। बिगड़ता पर्यावरण सीधे-सीधे आर्थिक असमानता की खाई को और अधिक बढ़ाता है और इसकी सीधी चोट सबसे ज्यादा गरीब पर पड़ती है। बिगड़ता पर्यावरण और सामाजिक अन्याय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वास्तव में हम आर्थिक और सामाजिक विकास का कैसा रूप चुनते हैं, यह इसी पर निर्भर करेगा कि हमने विकास हेतु पर्यावरण का दोहन किस रूप में किया है? लोगों के लिए पर्यावरण का मतलब कुछ सुहावनी प्राकृतिक चीजों का शौकिया संरक्षण है, जबकि वह एक ऐसा विस्तृत संसाधन है, जिस पर उनकी रोजमर्रा की आर्थिक जिंदगी, सामाजिक उन्नति और आध्यात्मिक प्रेरणा टिकी हुई है।

भारत के संदर्भ में कहा जाता है कि 'वह प्राकृतिक संसाधनों से धनी, लेकिन गरीबों का देश है।' भारत जैसे घनी आबादी वाले देश में पर्यावरण के हर अंग पर न जाने कितनी तरह से लोगों और समूहों का अस्तित्व टिका है। जब भी पर्यावरण का कोई एक अंग बर्बाद होता है तो समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को अपूरणीय क्षति होती है और दूसरा धनाढ्य वर्ग उस पर अपना आधिपत्य जमा लेता है। उदाहरण के लिए तेजी से नष्ट होते जा रहे हैं—वन, चरागाह, नदियां और समुद्र के तटवर्ती हिस्सों के प्रदूषण से न सिर्फ लाखों आदिवासियों, घुमंतु लोगों, बंजारों और मछुआरों की आर्थिक स्थिति बिगड़ी है, बल्कि उनकी सामाजिक-संस्कृति मृत्यु के कगार पर खड़ी हो गई है।

भारत के दक्षिण प्रदेश तमिलनाडु और कर्नाटक में एक बहुत बड़ी जनसंख्या बांस की टोकरी बनाकर गुजारा करती थी, लेकिन आधुनिक तकनीकी विकास और बांसों के व्यावसायिक प्रयोग ने न केवल बसोड़ परिवार पर कहर ढाया, अपितु उनकी संस्कृति को ही नष्ट कर दिया। देश की वन नीति का आदिवासियों के जीवन और संस्कृति पर अत्यंत बुरा प्रभाव पड़ा है। चरागाह के समापन ने डेरा की घुमंतु जातियों को समापन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। मछली पकड़ने के आधुनिक यंत्रों और जालों के कारण परंपरागत मछुआरे पलायन करने को मजबूर हो गए हैं।

राष्ट्रीय वन-नीति के अनुसार देश का एक-तिहाई भौगोलिक क्षेत्र वनाच्छादित होना चाहिए। वन विनाश के कारण पर्यावरण में गिरावट, बाढ़, भू-स्खलन, सूखा, भू-क्षरण, बेरोजगारी एवं वनवासियों की गरीबी की समस्या का हमें एक साथ सामना करना पड़ रहा है। परंपरागत मछुआरों को पर्यावरण रचना का इतना समग्र और वैज्ञानिक ज्ञान था कि वे पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित कर अपना कार्य करते थे, लेकिन यांत्रिकी जाल ने उन मछुआरों को बेकार और पलायनवादी बना दिया, जहां और यंत्रों के प्रदूषण के लपेट में समुद्री जीव-जंतु, वनस्पतियों को खतरा उत्पन्न हो गया है, वहीं लाखों लोगों की जीविका भी छिन गई है।

घुमंतु चरवाहों में गूजरों द्वारा पाले जाने वाले पशुओं में इतनी विविधता है कि सारे संसार में इस मामले में भारत का स्थान विशिष्ट था। घुमंतु लोगों में कुछ लोग राजस्थान और गुजरात में ऊंट, लद्दाख में याक, आंध्र प्रदेश में सूअर पालते हैं, शेष घुमंतु सूखे और अधसूखे इलाकों तथा हिमालय क्षेत्र में भेड़, बकरी, भैंस और गाय पालते हैं। घुमंतु की लगभग 200 जातियां भारत में पाई जाती हैं, जो कुल जनसंख्या का 6 प्रतिशत हैं, लेकिन विकास योजनाओं में कभी इनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। लगातार समाप्त होते जा रहे चरागाह ने इन्हें लाचार और पलायनवादी बना दिया है। परिणामस्वरूप पर्यावरण की दृष्टि से सीमांत इलाकों में घुमंतु प्रजाति द्वारा उत्पादन की एक सटीक पद्धति के साथ उनसे होने वाली आय का स्रोत भी समाप्त हो जाएगा।

भारत में लगभग पांच करोड़ से अधिक आदिवासी हैं, जो एक समय संमूचे भारत में फैले हुए थे और आज एकांत कोनों में अपनी जिंदगी जी रहे हैं। पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक विकास योजनाएं भारतीयों के जीवन की मुख्य धारा में थोड़ी अस्त-व्यस्तता पैदा करके रह जाती होंगी, परंतु आदिवासियों की संस्कृति और समाज-व्यवस्था के लिए तो वे मृत्यु-समान हैं। तेज औद्योगिक विकास, नगरीयकरण, सड़क निर्माण आदि के कारण भारत ने तीव्र औद्योगिक विकास तो किया, लेकिन इससे प्रदूषण बढ़ा है, वनों का नाश हुआ है और देश का पर्यावरण संतुलन बिगड़ा है। भारत के आदिवासी जो पर्यावरण के इस परिवर्तन को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर पाए। इस प्रगति के लिए भारी मूल्य चुका रहे हैं।

वर्तमान विकास की प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग का यह ढांचा न केवल पर्यावरण पर हमला कर वन्य जीवों, वनों, मछलियों आदि को तो बर्बाद कर ही रहा है, साथ में इसकी चपेट में समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग (गरीब एवं कमजोर) भी आता है। विकास की इस अंधी दौड़ में जब आदमी आदमी की चिंता नहीं करता तो उससे

पर्यावरण की चिंता की उम्मीद रखना बेकार है। दुनिया की सांस्कृतिक विविधता का मूल आधार पर्यावरण ही है। आज इन दोनों पर ख़तरा मंडरा रहा है और कारण एक है, उपभोगवादी प्रवृत्ति।

पर्यावरण को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्षति पहुंचाने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण कारक है—आवास। वर्तमान में जब गांव की जनसंख्या शहर की ओर पलायन कर रही है, तब नयी तकनीक द्वारा कम खर्च में मकान बनाने की जद्दोजहद में आवास निर्माण के दौरान पर्यावरण को गहरी क्षति पहुंचाई जा रही है। किसी भी वास्तुकार ने तथाकथित आधुनिक निर्माण की तकनीकों और मकानों की रचनाओं का पर्यावरण के प्रभाव के संदर्भ में विचार किया ही नहीं है। उदाहरण के लिए भारत में खुले आंगन वाले मकान, विशेषतः शहरों में और अब धीरे-धीरे गांवों से भी गायब होते जा रहे हैं। खुले आंगन के कारण घर की हवा शुद्ध रहती थी और गर्मियों में घर ठंडे रहते थे। नयी तरह के मकान गर्मियों में खूब गर्म और जाड़ों में खूब ठंडे हो जाते हैं और उष्णकटिबंध के भू-भाग में ऐसे मकानों में रहना मुश्किल हो जाता है। इस कारण बिजली के पंखे, वातानुकूलन और हीटर आदि कृत्रिम और गैर जरूरी चीजों का उपयोग अनिवार्य हो रहा है।

एक प्रमुख हिंदी दैनिक 'नयी दुनिया' ने बड़े दुःख के साथ लिखा है कि आधुनिक लिबास की तरह आधुनिक मकान भी एक फैशन बन गया है। 'केवल आहार एक ऐसा मामला रह गया है, जिसमें हमने अभी तक भारतीयता कायम रखी है।' हमारे सिविल इंजीनियरों के सारे अध्ययन का एक विषय यही है कि इस्पात से सीमेंट को कैसे मजबूत बनाया जाए, लेकिन बांस के उपयोग से मिट्टी की दीवारें भी मजबूत बन सकती हैं। इस बारे में कभी नहीं सोचा। यह ऐसा विषय है, जिसे केवल ग्रामीण लोग ही जानते हैं। यदि स्कीमो लोग आर्कटिक टुंड्रा में बर्फ के ऐसे मकान बना सकते हैं, जो उनको गर्म रख सकते हैं तो हम ऐसे मकान क्यों नहीं बना सकते जो हमारे मौसम के अनुकूल हों।

आज की विकासशैली में उपभोग का ढांचा कुछ ऐसा है कि वह लोगों को उसके आस-पास के पर्यावरण से तोड़ता जा रहा है। यह टूटन ऐसा भयानक रूप ले चुकी है, जिसमें मां द्वारा बच्चों को स्तनपान कराने जैसी निहायत सहज और प्राकृतिक आदत एवं मौलिक जरूरत बहुराष्ट्रीय कंपनी के डिब्बे बंद दूध पाउडर के कुचक्र में फंसकर समाप्त होते जा रही है। विज्ञान और तकनीकी के विकास में आज हम बाकी दुनिया के साथ बराबरी की हैसियत में बैठे हैं, लेकिन यह कहीं हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को ही नष्ट करने का आधार न बन जाए।

विकास वह प्रक्रिया है, जो हर व्यक्ति को स्वावलंबी बनाता है, जिसमें समाज और राष्ट्र स्वावलंबी बनता है। यह स्वावलंबन तब तक पूर्ण नहीं होता, जब तक व्यक्ति और व्यक्ति एवं पर्यावरण के बीच संबंध मधुर एवं मजबूत नहीं होंगे।

आज भारत के योग और आयुर्वेद का लोहा संपूर्ण विश्व मान रहा है। भारत की मेधाओं ने राष्ट्र की सीमा लांघकर दूसरे देशों में अपनी प्रतिभा का झंडा गाड़ा है। इसलिए स्व-विकास के लिए हमें पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी या दक्षिणी देशों पर निर्भर न होकर स्वयं इस ओर कदम बढ़ाना होगा और भारत के विकास के लिए एक ऐसा रास्ता निकालना होगा, जिसमें पर्यावरण के साथ सामंजस्य कर, प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का उचित

प्रयोग विभिन्न संस्कृतियों और जीवन-शैली के प्रति आदर-भाव के साथ किया जाए, जो चिर-स्थायी एवं न्यायपूर्ण हो। यदि हम महात्मा गांधी के इस कथन को ध्यान में रखें, "यह धरती हरेक की जरूरत को पूरा कर सकती है, लेकिन किसी एक के लालच को नहीं।"

संदर्भ

1. वन आदिवासी एवं पर्यावरण, डॉ. डी.एन. तिवारी, संस्करण 2002
2. पर्यावरणीय मनोविज्ञान, प्रेमसागर नाथ तिवारी, संस्करण 1997
3. पर्यावरण : प्रदूषण, वेद प्रकाश, संस्करण 2002
4. पर्यावरण व जैव प्रौद्योगिकी, डॉ. प्रवीण चंद्र त्रिवेदी/ डॉ. मंजु शर्मा, संस्करण 2007

प्राचार्या,
स्वामी स्वरूपानंद इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन,
हुडको, भिलाई

पर्यावरण एवं सूचना तकनीक

कृष्णकांत दुबे

सूचना तकनीक एक अधिग्रहण, संग्रहण, मौखिक, चित्रमय, मूल पाठ तथा संख्यात्मक सूचनाओं का प्रक्रम है, जो कम्प्यूटर तथा दूरसंचार के मिश्रण पर आधारित है। यह प्रबंधन तकनीकी का एक ऐसा क्षेत्र है, जिसके अंतर्गत प्रक्रिया, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर तथा हार्डवेयर, कार्यक्रम, सूचना तंत्र एवं ज्ञात आंकड़े आते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सूचना तकनीक, बहुमाध्यम वितरण क्रिया-विधि की सहायता से दृष्टि की रूप-रेखा में लिए गए आंकड़े, सूचनाएं, ज्ञान आदि का अनुभव है। विस्तार में सूचना तकनीक हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर दोनों है, जो सूचनाओं को संग्रहित करने में सहायक है। भारत में सूचना तकनीक 1967 में सर्वप्रथम मुंबई में टाटा समूह उद्योग द्वारा स्थापित हुई। सूचना तकनीक के आने से आधुनिक युग में विकास को गति प्राप्त हुई, जो अब मानव जीवन का एक आवश्यक हिस्सा बन चुकी है। जीवन को निर्मित करने में पर्यावरण मानव अहम् भूमिका निभाता है। पर्यावरण मानव-जीवन को आधार प्रदान करता है। पर्यावरण के तत्वों की विद्यमानता से ही पृथ्वी पर जीवन संभव हुआ है। मानव के चारों ओर का वह क्षेत्र, जो उसे घेरे रहता है, उसके जीवन तथा क्रियाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, पर्यावरण कहलाता है। आधुनिक युग में पर्यावरण के अध्ययन के बढ़ते महत्व को कई बिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे—नवीनतम आधुनिक तकनीक का प्रयोग, अधिक संसाधनों संदोहन, बढ़ती जनसंख्या का भार, नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के दोष आदि के कारण, परिणाम एवं निवारण के उपाय खोजने के लिए पर्यावरण का अध्ययन आवश्यक है। प्रकृति स्वतः पर्यावरणीय घटकों में निश्चित अनुपात सदैव बनाए रखने का प्रयास करती है, किंतु मानव की प्रकृति-रोधी गतिविधियों से इसकी मूल-संरचना में अभूतपूर्व परिवर्तन आ रहे हैं। फलस्वरूप पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति को देखकर समस्त पर्यावरणविद् तथा अन्य ज्ञानी समाज इसके प्रति चिंतन-मनन कर रहे हैं।

पर्यावरण जागरूकता में सूचना तकनीक की भूमिका

आधुनिक सूचना तकनीक ने फ्रैंसिस बेकन के कथन 'Knowledge is Power' को सच साबित कर दिखाया। सूचना तकनीक एक ऐसी तकनीक है, जो दुनिया में किसी भी व्यक्ति को, किसी भी समय, कहीं भी घटने वाली घटना या प्रसंग के बारे में संपूर्ण

जानकारी उपलब्ध कराती है। सूचना तकनीक के जरिए घर बैठे ही पर्यावरण से संबंधित सभी जानकारियां आज जैसे किस क्षेत्र में कितना प्रदूषण है, वन्य जीवों की सुरक्षा के क्या इंतजाम हैं, देश-विदेश में पर्यावरण संरक्षण हेतु क्या शोध किए जा रहे हैं, आदि प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ ही इन संवेदी उपग्रहों की सहायता से दुनिया भर में हो रही पर्यावरणीय घटनाओं जैसे—ओजोन क्षरण, प्राकृतिक प्रकोप, वन-विनाश इत्यादि से संबंधित सूचनाएं तुरंत ही संसार के विभिन्न भागों में पहुंच जाती हैं। इसके अलावा बहुत-सी छोटी-छोटी घटनाओं की पूर्व सूचना भी विश्व के कोने-कोने में पहुंचाई जा सकती है। आज एक आम व्यक्ति इंटरनेट और ई-मेल के जरिए किसी भी क्षेत्र की जानकारी प्राप्त कर सकता है। वर्तमान में पर्यावरण प्रबंधन में भी सूचना तकनीक अहम् भूमिका निभा रही है। आज जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन संबंधी जानकारियां सूचना तकनीक जैसे—रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट आदि के माध्यम से प्रसारित पर्यावरण नाटक, विज्ञापन आदि पर्यावरण के संबंध में जन-जागरूकता पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय तथा भारत सरकार ने एक तंत्र की स्थापना की है, जिसे पर्यावरण सूचना-तंत्र कहा जाता है। इसका मुख्यालय राजधानी दिल्ली में स्थापित किया गया है। पर्यावरण सूचना-तंत्र के द्वारा पर्यावरण संबंधी सभी जानकारियां जैसे—प्रदूषण के उपाय, नवीनीकरण ऊर्जा, मरुस्थलीकरण, जैव विविधता आदि के बारे में जानकारियों को हमेशा के लिए कम्प्यूटर में संग्रहित किया जा सकता है। अतः वर्तमान युग में सूचना तकनीक इतनी विकसित हो गई है कि मानव-जीवन का कोई पहलू अब सूचना तकनीक से पृथक् नहीं है तथा सूचना तकनीक आधुनिक युग की सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में सूचना तकनीक द्वारा पर्यावरण जागरूकता

पर्यावरण के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता प्रत्येक नागरिक को है, क्योंकि पर्यावरण हमारे जीवन का आधार है। शहरी इलाकों में औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकता आने से पर्यावरण को क्षति तथा पर्यावरण में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। साथ ही इन इलाकों में सूचना तकनीक का विकास तेजी से हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप यहां के लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता देखने को मिलती है। हमें आवश्यकता है पर्यावरण जागरूकता की उन ग्रामीण क्षेत्रों में, जो समाज में रहते हुए भी सामाजिक तौर से प्राप्त होने वाली कई सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। प्रस्तुत शोध के दौरान दुर्ग जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वे किया गया। दुर्ग जिला शिवनाथ महानदी घाटी के दक्षिण-पश्चिमी भाग में स्थित है। यहां की कुल जनसंख्या 28,10,436 (2001 सेंसस के अनुसार) है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल कुल 8,702 वर्ग किमी है। दुर्ग जिले में कुल 1,821 ग्राम हैं जिनमें से विद्युतिकृत ग्रामों की संख्या 1,775 है। सर्वे में ग्रामीण क्षेत्र के लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता के साथ-साथ पर्यावरण शिक्षा भी अपेक्षाकृत कम देखने को मिली। कोई भी राज्य पूर्णतः विकसित तभी हो पाएगा, जब उस राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों का विकास होगा। शिक्षा तथा जागरूकता ग्रामीणों के पूर्ण विकास की प्राथमिक शर्तें हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा न केवल पर्यावरण के प्रति अपितु सभी क्षेत्रों में जागरूकता विकास की अतिआवश्यक

मूल धारा है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए सूचना तकनीक के माध्यम से ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में पर्यावरण शिक्षा एवं पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाना आवश्यक हो गया है। कोई भी क्षेत्र इसकी उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता।

ग्रामीण क्षेत्र में पर्यावरण संबंधी नयी-नयी जानकारियां उपलब्ध करानी चाहिएं। इसके लिए इन क्षेत्रों में सूचना तकनीक का विकास किया जाना चाहिए। दूरस्त शिक्षा पद्धति एवं कम्प्यूटर शिक्षा द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को शिक्षित किया जा सकता है। इंटरनेट के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों को जोड़कर देश और विदेश में होने वाली पर्यावरण संबंधी नयी-नयी खोजों की जानकारी दी जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना तकनीक पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाने एवं पर्यावरण शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ ऊर्जा उत्पादन, कृषि में उन्नति, भूमि में सुधार आदि में भी लाभकारी साबित हो सकती है। वैसे नव-निर्मित छत्तीसगढ़ राज्य में सरकार एवं गैर-सरकारी संगठनों द्वारा ऐसी कई योजनाएं लागू की जा रही हैं, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में विकास हो सके और इन योजनाओं के माध्यम से सूचना तकनीक पर्यावरण जागरूकता में अपनी अहम् भूमिका निभा रहा है।

आज पर्यावरण की दशा इतनी दयनीय हो चुकी है कि प्रत्येक नागरिक को पर्यावरण के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है। सूचना तकनीक के माध्यम से वर्तमान में संसार के सभी क्षेत्र में विकास एवं उन्नति संभव हो पाई है। सूचना तकनीक को समाज के विकास का मूल स्रोत कहा जा सकता है। वर्तमान में शिक्षा, विज्ञान, चिकित्सा, पर्यावरण के प्रति परिवहन, संचार आदि सभी क्षेत्रों में सूचना तकनीक का विकास हो रहा है। सूचना तकनीक पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण के प्रति जागरूकता में भी अहम् भूमिका निभा रही है। इसलिए आज के समाज को सूचना समाज कहा जाता है। यदि किसी प्रकार सूचना तकनीक के माध्यम से लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता एवं पर्यावरण शिक्षा का विकास होता रहा तो हम पर्यावरण, जो मानव जीवन का आधार है, को संरक्षित कर आने वाली पीढ़ियों को इसके लाभ एवं महत्व से अवगत करा सकते हैं।

सहायक प्राध्यापक कम्प्यूटर विभाग
स्वामी स्वरूपानंद शिक्षण संस्थान,
हुडको, भिलाई

पर्यावरण : सामाजिक मुद्दे

कल्पना त्रिवेदी/ निशा राजपूत

मानव जीव-जगत् का विकसित सदस्य है। प्राचीनकाल से ही मानव और प्रकृति का घनिष्ठ संबंध रहा है। आदिकाल से ही सभ्यता के विकास में प्रकृति ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पर्यावरण बाहरी प्रभावों की वह संपूर्ण श्रेणी है, जो किसी जीव को प्रभावित करती है। वह स्थान जहां कोई जीव रहता है, उसे आवास कहा जाता है। जहां पर्यावरणीय अवस्थाओं का विशेष समुदाय पाया जाता है, उसे पर्यावरणीय संकुल कहा जाता है। पर्यावरण उन समस्त भौतिक एवं जैविक दशाओं का योग है, जो किसी जीव की अनुक्रियाओं के लिए उत्तरदायी होता है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि वायुमंडल के चारों ओर फैले हुए वातावरण को हम पर्यावरण कहते हैं।

मनुष्य द्वारा ही प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है। मनुष्य ने ही प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए अनेक बेहतर प्रयास किए हैं। अब ये प्रयास धीरे-धीरे प्रकृति में परिवर्तन का कारण बन गए है। मनुष्य ही प्रकृति को संवारता है और उसे नष्ट भी करता है, जिससे वह जाने-अनजाने में स्वयं प्रभावित होता है। आधुनिकता के नाम पर आज मनुष्य प्रकृति का स्वामी बनने के प्रयास में लगा हुआ है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु क्रूरता से वनों को नष्ट कर दिन-प्रतिदिन नयी-नयी इमारतें, सड़कें, भवन, कारखानें आदि बनाता जा रहा है, जिससे पर्यावरण में असंतुलन का स्तर बढ़ता जा रहा है, जिसे हम आज 'ग्लोबल वार्मिंग' के नाम से जानते हैं। जनसंख्या में निरंतर असाधारण वृद्धि एवं औद्योगिक व कृषि विकास के कारण अनेक तरह की पर्यावरणीय समस्याओं ने जन्म लिया है। औद्योगिक उत्पादन बढ़ने के साथ ग्रीन टेक्नोलॉजी पर भी जोर दिया जा रहा है, जिससे पर्यावरण के विकास को बढ़ावा मिला है। वर्तमान में यह आवश्यक हो गया है कि मनुष्य को आर्थिक उपलब्धि के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण पर भी ध्यान देना चाहिए। मनुष्य के अंदर यह अवधारणा होनी चाहिए कि बिना पर्यावरण को क्षति पहुंचाए आर्थिक उन्नति को प्राप्त करना चाहिए, जिससे विकास की गति में भी अवरोध न हो और प्राकृतिक संतुलन भी बनाया जा सके। यह तभी संभव हो पाएगा जब मनुष्य स्वयं इसके प्रति जागरूक हो और पर्यावरण की महत्ता को समझे।

पर्यावरणीय समस्याओं के अनेक कारणों ने जीवन-यापन की निर्भरता के अन्य आयामों को उजागर कर दिया है, जिससे समस्त नागरिकों को जीवन-यापन हेतु सुविधाएं

उपलब्ध कराई जा सकें। पर्यावरण जीव-जंतुओं, मनुष्य आदि को प्रभावित करता आया है। इसमें असंतुलन होने पर यह विकराल रूप धारण कर लेता है, जैसे गंभीर बीमारियां, प्राकृतिक आपदाएं (बाढ़, सूखा, भूकंप, सुनामी, गर्म हवा, ठंडी हवा, भूस्खलन, भू-क्षरण, मरुस्थलीयकरण इत्यादि) यह ओजोन परत को भी प्रभावित कर रहा है, जिसमें सामान्य प्राणी के समक्ष गंभीर संकट रहा है। वर्तमान में यह सामाजिक समस्या का रूप ले रहा है।

- जनसंख्या में निरंतर की समस्या बात देश की प्रगति में अवरोध की भांति खड़ी है, क्योंकि इससे निरंतर नगरों का विस्तार होने से मांग की तुलना में ऊर्जा की आपूर्ति नहीं हो रही है।
- तीव्र औद्योगीकरण के कारण प्रतिदिन नयी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना हो रही है, जिनके लिए वनों को तीव्र गति से नष्ट किया जा रहा है। इससे कहीं बाढ़ एवं कहीं अकाल की समस्या सामान्य हो गई है। परिणामस्वरूप हजारों की संख्या में लोग शरणार्थी का जीवन जीने के लिए मजबूर हैं।
- पारंपरिक ऊर्जा के साधन कोयला, पेट्रोल, अन्य जीवाश्म, ईंधन आदि के भंडार निरंतर कम होते जा रहे हैं।
- प्राकृतिक आपदाओं तथा बहुउद्देश्यीय बांध-निर्माण योजनाओं के कारण पुनर्वास की समस्या महत्वपूर्ण होती है। इसमें व्यक्तियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापित किया जाता है, जिससे उनकी संस्कृति और जीवन-शैली में परिवर्तन हो जाता है।
- गरम होती धरती, पर्यावरण को निरंतर प्रभावित कर रही है, जिससे समुद्र व वनों पर जीवन बसर करने वाली विश्व की अधिकांश जनसंख्या को अत्यधिक कष्टों का सामना करना पड़ रहा है, इससे उनके कार्यों में शिथिलता आ गई है।
- पर्यावरण में असंतुलन के कारण नहरों के जल में लवण की मात्रा बढ़ती जा रही है, जिससे धरती बंजर होकर अनुपयोगी होती जा रही है, जिसके कारण कृषकों को अपने मूल निवास स्थान से पलायन करना पड़ रहा है।
- औद्योगिक देशों में अम्लीय वर्षा सबसे बड़ी समस्या है। अम्लीय वर्षा या तेजाबी वर्षा वायु प्रदूषण का एक विनाशकारी प्रभाव है। पर्यावरण पर अम्लीय वर्षा के प्रभाव अत्यंत घातक व दूरगामी होते हैं। इसका जल मनुष्य, जंतु, वनस्पति व मृदा के लिए हानिकारक होता है।
- पर्यावरण प्रदूषण के कारण वायुमंडल में ओजोन गैस की कमी हो जाती है। ओजोन गैस ही ऑक्सीजन गैस के रूप में मानवीय श्वास के रूप में प्रयोग होती है। ओजोन परत में क्षरण पृथ्वी पर जीवन के लिए खतरे की घंटी है। ओजोन के क्षरण से भयावह परिणाम पृथ्वीवासियों को भुगतने होंगे। सूर्य की पराबैंगनी किरणों के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ जाता है, जिससे वनस्पति व जीव-जंतु झुलस जाते हैं। आंखों को नुकसान तथा त्वचा के कैंसर की संभावना बढ़ रही हैं। जन-सामान्य में ओजोन संरक्षण के प्रति जागरुकता लाने के लिए प्रतिवर्ष 16 सितंबर को ओजोन परत संरक्षण दिवस मनाया जाता है।

• ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि के कारण वातावरण में अनेक दुष्प्रभावों की आशंका है। इनमें भूमंडल के तापमान में वृद्धि, समुद्रों के जलस्तर में वृद्धि, वनस्पति तथा प्राणियों के जीवन पर संकट, कृषि पर प्रभाव, मानव जीवन पर प्रभाव पड़ रहा है।

• भारत कृषि मानसून पर आधारित होता है और मानसून अनिश्चित है। पर्यावरण में असंतुलन के कारण ऋतु-चक्र बदलता रहता है। इसका सर्वाधिक प्रभाव कृषि पर पड़ सकता है। इस हेतु मानसून संरचनाओं का नव-निर्माण कर कृषि की प्रणालियों में परिवर्तन किया जा सकता है।

पर्यावरण और मनुष्य के मध्य आदिकाल से ही घनिष्ठ संबंध रहा है। अतः पर्यावरण मानव को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। आधुनिक मानव समाज के वैज्ञानिक प्रयोगों के उत्पादों से मानव स्वयं को अलग रखने की कल्पना भी नहीं कर सकता, लेकिन वैज्ञानिक प्रयोगों से पर्यावरण पर पड़ने वाले व्यापक प्रभावों की भी अनदेखी नहीं कर सकते, क्योंकि मानव जीवन के अस्तित्व को बनाए रखना आवश्यक है। युद्धकालिक या सामाजिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत शरणार्थियों को थोड़ी-बहुत सहायता फिर भी मिल जाती है, परंतु पर्यावरण शरणार्थियों को पूरे संसार में किसी भी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। साथ-ही-साथ मनुष्य को स्वयं पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूक होना चाहिए। इसके लिए स्कूलों और महाविद्यालयों में भी पर्यावरण शिक्षा दी जा रही है, ताकि बच्चे पर्यावरण के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकें।

संदर्भ

1. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. रतन जोशी
2. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. नरेंद्र गल सुराणा, डॉ. राजकुमारी सुराणा
3. पर्यावरण विज्ञान, डॉ. विजय कुमार तिवारी
4. पर्यावरण, डॉ. शिवेशप्रताप सिंह

सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य)
कल्याण पी.जी. कॉलेज, भिलाई

आर्थिक लाभ और पर्यावरण संरक्षण

कु. सीमा दोल्हे

हमारे पूर्वजों ने आचरण का मंत्र दिया था—'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' अर्थात् धर्म के लिए अर्थ को त्याग दो, अर्थ के लिए काम को त्याग दो। यहां धर्म का अर्थ हिंदू, मुस्लिम एवं ईसाई धर्मों से नहीं है, बल्कि पर्यावरण, शांति एवं सौहार्द से लेना चाहिए। अर्थात् यह मंत्र बताता है कि पर्यावरण की रक्षा करने के लिए आर्थिक लाभ को त्याग देना चाहिए। जैसे घर के आंगन में नीम का पेड़ हो तो पर्यावरण शुद्ध रहता है। पेड़ को बचाए रखने से आय लंबे समय तक होती है। पर्यावरण शुद्ध रहता है, बीमारी कम होती है और कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों में संभवतः यह सबसे मुश्किल लक्ष्य है, क्योंकि यह मुद्दा इतना सरल नहीं है, जितना दिखता है। टिकाऊ पर्यावरण के बारे में जिस अवधारणा के साथ लक्ष्य सुनिश्चित किया गया है, सिर्फ उस अवधारणा के अनुकूल परिस्थितियां ही तय सीमा में तैयार हो जाएं तो उपलब्धि ही मानी जाएगी। यद्यपि यह माना जाए कि विकास की राष्ट्रीय नीतियों एवं कार्यक्रमों के बीच समन्वय एवं उनमें व्यवस्थित रूप से एकीकरण किया जाए, पर यह संभव नहीं दिखता।

इस लक्ष्य के मुख्य रूप से तीन भाग हैं, पहला है प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण को कम करना, यानी अब तक प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न राज्यों को अगली पंक्ति में शुमार किया जाता रहा है, पर राज्य में अवैध तरीके से प्राकृतिक संसाधनों का जितना अधिक दोहन हुआ है, उससे कुछ कम ही वैध तरीकों से भी हुआ है। राज्य की औद्योगिक नीति के तहत जिन बुहराष्ट्रीय कंपनियों को प्रदेश में आमंत्रित किया गया, उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों का बंटाधार कर दिया। जंगल माफियाओं ने अधिकारियों की मिली-भगत से लाखों पेड़ काट लिए हैं। नदियों के किनारे स्थित कारखाने अपने अवशिष्टों को यूं ही फेंक रहे हैं, जिससे आस-पास के खेतों की उर्वरता खत्म हो रही है और भू-जल के साथ-साथ नदियां भी प्रदूषित हो रही हैं। उन पर कोई अंकुश नहीं है। जानवरों की अवैध तस्करी अभी भी जारी है। वन संरक्षण हो या वन्य प्राणी संरक्षण, दोनों को संरक्षित रख पाना मुश्किल हो रहा है।

आर्थिक विकास के इस दौर में सभी मान रहे हैं कि अमीरी एवं गरीबी के बीच खाई बढ़ रही है। आर्थिक विकास का लाभ चंद लोगों को मिल रहा है, तब गरीबों के लिए स्वच्छ पेयजल तो सपना ही रहेगा, उन्हें अस्वच्छ पानी भी मिल पाएगा या नहीं, कह पाना

कठिन है। हालात तो ऐसे हैं कि राज्य में पानी को लेकर अक्सर हिंसक झड़प की खबर आती है। भू-जल स्तर गिर जाने से, पानी में कारखानों के अवशिष्ट पदार्थों एवं रसायनों के घुल जाने से, भू-जल में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ रही है। मध्य प्रदेश में फ्लोरोसिस रोग से पीड़ितों की संख्या बढ़ रही है।

अपने पर्यावरण को समझें

हमारे देश में लंबे समय से नीतिगत निर्णयों अंतर्गत के समग्र विकास के नाम पर पर्यावरण संरक्षण के तकाजे की बलि दी जाती रही है। आर्थिक वृद्धि के नाम पर पर्यावरण को जमकर नुकसान पहुंचाया गया। इसी का नतीजा है कि हालिया सालों में पर्यावरण संबंधी विवाद खूब उभरकर आए। इस पर विराम लगाने के लिए आखिरकार हमारी सरकार संजीदा हुई है। औद्योगिक और खनन परियोजनाओं में पर्यावरण संबंधी विवादों पर लगाम लगाने के लिए सरकार ही एक स्वतंत्र नियामक 'राष्ट्रीय पर्यावरण आकलन और निगरानी प्राधिकरण' का गठन करेगी। यह प्राधिकरण देश में विकास की तमाम परियोजनाओं को पर्यावरण संबंधी मंजूरी देने के लिए एक स्वतंत्र नियामक के तौर पर कार्य करेगा।

यह प्राधिकरण यदि अस्तित्व में आया तो न सिर्फ परियोजनाओं द्वारा पर्यावरण मंजूरी लेने की प्रक्रिया में पूरी तरह से बदलाव आ जाएगा, बल्कि परियोजनाओं पर पर्यावरण संबंधी मुद्दों के चलते होने वाली मुकदमेबाजी पर भी रोक लगेगी। बीते कुछ सालों में मुल्क में चल रही कई बड़ी औद्योगिक और खनन परियोजनाओं पर सवाल उठते रहे हैं। जो मुख्यतः पर्यावरण संबंधी हैं। इन परियोजनाओं में सभी कायदे-कानूनों को ताक पर रखकर बड़े पैमाने पर पर्यावरण व वन-संबंधी नियमों का उल्लंघन किया गया। कई परियोजनाओं की तो मंजूरी देने से भी पर्यावरण मंत्रालय ने इनकार कर दिया। स्टील क्षेत्र की दिग्गज दक्षिण कोरियाई कंपनी पास्को व अनिल अग्रवाल की वेदांत से लेकर रियल्टी कंपनी लवासा कॉर्पोरेशन की परियोजनाओं पर पर्यावरण कानून के उल्लंघन के इलजाम लगे और मंत्रालय व अदालतों ने बार-बार काम रोका।

उड़ीसा स्थित बेडाबहल अल्ट्रा मेगा बिजली परियोजना (यूएमपीपी) जैसी कुछ परियोजनाओं और उससे जुड़े कोयला ब्लॉक के उत्खनन को लेकर भी तमाम एतराज उठे, जिसके चलते बिजली और पर्यावरण मंत्रालय आमने-सामने आ गए। पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश के कार्यकाल में एवं पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर पर्यावरण मंत्रालय का दूसरे मंत्रालयों से कई बार टकराव हुआ। पर्यावरण मंत्रालय और कोयला मंत्रालय के बीच यह तकरार काफी दिनों तक चली। जयराम रमेश ने 203 नये कोयला क्षेत्रों में खनन की मंजूरी देने से साफ इनकार कर दिया था। प्रधानमंत्री ने विकसित देशों को लक्ष्य कर एक बात और दो-टूक शब्दों में कही कि भारत पर्यावरण संरक्षण के मकसद से कदम उठाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आम सहमति होने तक इंतजार नहीं करेगा।

यह बात सच भी है। बीते कुछ सालों में सरकार ने पर्यावरण संरक्षण और आपदा प्रबंधन के लिए कई उल्लेखनीय कदम उठाए हैं। चार साल से केंद्र सरकार पर्यावरण संरक्षण और आपदा प्रबंधन की चुनौतियों से निपटने के लिए एक राष्ट्रीय एजेंडे पर काम कर रही है। कुल मिलाकर, आज बढ़ते वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के चलते

पर्यावरण सुरक्षा और संरक्षण एक बड़ा मुद्दा बनकर उभरा है। विकसित-विकासशील देश कोशिश कर रहे हैं कि पर्यावरण सुरक्षा और भी बेहतर हो और पर्यावरण नुकसान कम-से-कम हो, यह उनका महत्वपूर्ण एजेंडा है और बदलते वक्त की दरकार भी है।

भारत सरकार द्वारा जारी स्टेट ऑफ द एनवायरमेंट रिपोर्ट, 2009 में कहा गया है कि देश का पर्यावरण बुरी तरह से बिगड़ रहा है। हवा, पानी और जमीन तीनों ही खतरनाक रूप से प्रदूषित हो रहे हैं। यह रिपोर्ट बताती है कि देश की कुल जमीन में 45 प्रतिशत जमीन खराब (डिग्रेडे) हो चुकी है। देश के सभी शहरों में हवा का प्रदूषण बढ़ रहा है और वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों की प्रजातियां भी तेजी से विलुप्त हो रही हैं। यही नहीं, शहरों में बढ़ती झुग्गी-बस्तियों के कारण पर्यावरण की नयी तरह की समस्या पैदा हो रही है। रिपोर्ट कहती है कि भारत अपने कुल जल-संसाधन का जितना पानी प्रयोग कर सकता है, उसका 75 प्रतिशत इस्तेमाल कर रहा है।

गैर-सरकारी संस्था डेवलपमेंट आल्टरनेटिव्ज के सहयोग से तैयार की गई रिपोर्ट में कहा गया है कि देश की माटी में क्षारीय तत्व तेजी से बढ़ रहा है और बंजर जमीन का दायरा भी बड़ा हो रहा है। रही-सही कसर जगह-जगह होने वाले जल-भराव के कारण पूरी हो रही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि देश की 45 फीसदी भूमि अनुत्पादक और अनुपजाऊ हो गई है। भूमि की इस बिगड़ी दशा का मुख्य कारण यह बताया गया है कि जिस तरह वनों का विनाश हो रहा है, खदान और पानी का अनियमित दोहन किया जा रहा है तथा गलत तरीके से खेती की पद्धतियों का इस्तेमाल किया जा रहा है, उससे भूमि को सबसे अधिक नुकसान पहुंच रहा है। हालांकि रिपोर्ट में इस बात की संभावना जताई गई है कि अगर थोड़ी सावधानी बरती जाए और कुछ प्रयास किया जाएं तो खराब हो चुकी 14.7 करोड़ हेक्टेयर जमीन को दोबारा ठीक करके माटी की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है।

दिल्ली के पत्र सूचना कार्यालय द्वारा रिपोर्ट जारी करने के बाद पत्रकारों से बात करते हुए पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने कहा, "इस बात की उम्मीद करना कि आने वाले दिनों में वन क्षेत्रों में हम तेजी से वृद्धि कर लेंगे, जो थोड़ी अव्यावहारिक सोच होगी।" उन्होंने कहा कि "हमारी योजना है कि आने वाले 10 सालों में हम वर्तमान 21 प्रतिशत वन क्षेत्र को और अधिक सघन कर सकें।" वर्तमान में देश में केवल 2 प्रतिशत वन क्षेत्र ऐसा है, जो उच्च सघनता वाले क्षेत्र में आता है, जबकि मध्यम सघनता वाला वन क्षेत्र कुल भू-क्षेत्र का 10 प्रतिशत है। पर्यावरण के संबंध में क्या महज यह कह देने भर से हमारे कर्तव्यों की इतिश्री हो जाएगी कि यह ग्लोबल वार्मिंग या जलवायु परिवर्तन का असर है? भारत एक विशाल क्षेत्रफल वाला देश है, जहां पैदावार अच्छी होगी अथवा सूखा पड़ेगा, इसका पूरा दारोमदार गैर भरोसेमंद वर्षा पर निर्भर करता है। देश की कृषि-योग्य जमीन का 85 प्रतिशत हिस्सा सिंचाई के लिए या तो प्रत्यक्ष रूप से वर्षा जल पर निर्भर है या भू-जल पर। भू-जल का स्तर प्रतिवर्ष होने वाली बारिश से ही तय होता है।

बिगड़ते पर्यावरण के कारण बरसात की स्थिति हर साल अनियमित होती जा रही है, जबकि घरेलू जरूरतों के साथ ही सिंचाई का पानी हमें बेहतर मौसमी बारिश से ही मिलता है। पशुओं की परवरिश का भी यह सबसे महत्वपूर्ण जरिया है, लेकिन लंबे समय

से भू-जल के दोहन से स्थितियां बेकाबू हुई हैं। ऐसे में सवाल उठना लाजमी है कि जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा में उत्पन्न अनिश्चितता से लोग कैसे जूझ पाएंगे? साथ ही जिस तरह किसानों द्वारा गन्ना, गेहूं तथा चावल की फसलों की सिंचाई के लिए ट्यूबवैल के रूप में भू-जल का दोहन किया जा रहा है तो इस बात की क्या गारंटी है कि जल-स्तर भयावह स्थिति तक नहीं पहुंच जाएगा?

पर्यावरण संरक्षण एवं इसकी जागरूकता के लिए सरकार द्वारा काफी योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है, लेकिन इसके अपेक्षाकृत परिणाम नहीं निकलते। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जब तक लोग व्यक्तिगत तौर पर जिम्मेदारी नहीं लेंगे, तब तक हालात नहीं सुधरेंगे। उदाहरण के तौर पर महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के हिवारे बाजार गांव का जिक्र करना बेहतर होगा। यहां 'चोर के हाथ में चाबी देने' वाली कहावत चरितार्थ होती प्रतीत दिखाई देती है। 15 साल पहले तक सूखाग्रस्त इस गांव में सिवाय पलायन के लोगों के पास कोई दूसरा चारा नहीं था, लेकिन 90 के दशक में वैज्ञानिक सोच और सरकारी योजनाओं के सही कार्यान्वयन के बाद बदलाव की बयार आई तो यह गांव आज समृद्ध दिखने लगा है।

सिंचाई के मामले में कहीं-न-कहीं सरकार की गलत नीतियां जिम्मेदार हैं और राज्य सरकारों ने नदियों पर बांध, नहरें वगैरह बनाकर सतह के पानी का प्रबंधन अपने पास रखा है। आज भी लोग सिंचाई के लिए सबसे ज्यादा भू-जल का ही दोहन करते हैं। किसी की व्यक्तिगत जमीन का भू-जल उसी की मिल्कियत माना जाता है। आज भी लगभग तीन-चौथाई हिस्से की सिंचाई भू-जल से की जाती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में लगभग 1.9 करोड़ ट्यूबवैल, कुएं जैसे भू-जल के स्रोत हैं। सरकार को अपनी इस नीति पर पुनर्विचार करके सोचना चाहिए कि क्यों उसके प्रबंधन से केवल 35-40 प्रतिशत भू-भाग की सिंचाई हो पाती है, जबकि ग्राउंड वॉटर से 65-70 प्रतिशत भू-भाग की। जब हमने वर्षा जल-संचयन के पारंपरिक तरीकों को छोड़कर नयी तकनीकें अपना लीं तो उनकी कोई वैकल्पिक व्यवस्था क्यों नहीं की गई?

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के खतरों से निपटने के लिए जब तक कोई वैश्विक नीति नहीं तैयार की जाती, तब तक इस समस्या से निपटना नामुमकिन होगा। कहने को तो पिछले 17 सालों से बड़ी-बड़ी संधियां होती हैं और वादे किए जाते हैं, लेकिन रहती सब बेनतीजा ही हैं। इन सत्रह सालों में हमने इस मामले में एक इंच भी प्रगति नहीं की और आज भी वहीं खड़े हैं, जहां उस समय थे। इसकी सबसे बड़ी वजह शायद यह है कि ग्रीन हाउस गैसों तथा प्रदूषण नियंत्रण के वादे तो सब करते हैं, मगर कोई पैमाना नहीं तय किया जाता कि कौन किस हद तक नियंत्रण करेगा? अमेरिका, जापान, कनाडा तथा न्यूजीलैंड जैसे कई विकसित देश यह कहकर पल्ला झाड़ लेते हैं कि वे तब तक कुछ नहीं करेंगे, जब तक चीन, भारत, ब्राजील तथा दक्षिण अफ्रीका जैसे विकासशील देश प्रदूषण नियंत्रण के उपाय नहीं करते।

Research Scholar
Pt. RSU, Riapur

वृहद् मार्ग परियोजनाओं से पर्यावरण क्षति

इं. सतोष प्रकाश माथुर

मार्ग निर्माण अथवा विस्तार वृहद् परियोजनाओं को तैयार करने एवं उनके क्रियान्वयन काल में, क्षेत्र के पर्यावरण एवं प्राकृतिक संपदा पर होने वाले विपरीत प्रभाव तथा उसके बचाव एवं समाधान पर अब योजनाकारों तथा निर्माण एजेंसियों का ध्यान गया है। विशेष रूप से विश्व बैंक सहायता प्राप्त एवं अन्य बाह्य वित्त-पोषित परियोजनाओं में इसके लिए कड़े मानदंड एवं विस्तृत विशिष्टियां निर्धारित की गई हैं, जिनका अनुपालन योजना की स्वीकृति एवं क्रियान्वयन के समय अनिवार्य है।

मार्ग निर्माण के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव

एक सामान्य मार्ग निर्माण अथवा मार्ग विस्तार (चौड़ीकरण आदि) की परियोजना से स्थानीय पर्यावरण पर निम्न प्रभाव पड़ने स्वाभाविक है–

1. वृक्षों की कटान–यदि नया मार्ग निर्माण कार्य है तो अधिगृहीत भूमि पर स्थित पेड़ काटने होंगे। वर्तमान मार्ग के विस्तार अथवा चौड़ीकरण के मामले में सड़क के किनारे लगे वर्तमान वृक्षों में से कम-से-कम एक ओर के वृक्षों की पूरी पंक्ति ही काटनी आवश्यक हो जाती है। हरे पेड़ों की कटान अपने में पर्यावरण की क्षति है।

2. उपजाऊ मिट्टी की क्षति–जितनी भूमि परियोजना हेतु अधिगृहीत की जाती है, उसमें से कृषि-योग्य भूमि के क्षेत्रफल की उत्पादकता की क्षति होती है।

3. वायु प्रदूषण–नये अथवा विस्तारित मार्ग पर बढ़े हुए एवं तीव्रगामी यातायात के फलस्वरूप तथा निर्माण की गतिविधियों के कारण भी कई स्थानों पर वायु प्रदूषण का स्तर मानक से अधिक होने की संभावना रहती है।

4. ध्वनि प्रदूषण–बढ़े हुए यातायात के कारण एवं निर्माणकाल में संयंत्रों के संचालन से शोर का स्तर निर्धारित सीमा से अधिक हो सकता है।

5. पानी का निकास, रुकना अथवा जल भराव–मार्ग निर्माण में उस क्षेत्र का स्वाभाविक जल निकास प्रभावित हो सकता है अथवा बाढ़ एवं जल भराव की समस्या हो सकती है।

6. सामूहिक उपयोग के जल-स्रोत एवं अन्य सांस्कृतिक व धार्मिक संपत्तियों पर प्रभाव–मार्ग निर्माण अथवा विस्तार हेतु स्थायी रूप से अधिगृहीत भूमि में पड़ने वाले कुएं, हैंडपंप अथवा मंदिर, स्कूल, धर्मशाला व मजार आदि हटाने से पूर्व उनके स्थान पर आपसी सहमति से किसी अन्य स्थल पर वैकल्पिक व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है।

पर्यावरण सरंक्षण हेतु उपाय

पर्यावरण पर पड़ने वाले उपरोक्त विपरीत प्रभावों को कम करने अथवा उनकी प्रतिपूर्ति के लिए परियोजना के विभिन्न चरणों में विभिन्न उपाय एवं कार्यवाही की जाती है। संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

1. निर्माण से पूर्व–परियोजना पर कार्य प्रारंभ करने से पूर्व कुछ चयनित वृक्षों को जड़ सहित उखाड़कर विशेष प्रक्रिया द्वारा नये स्थानों पर लगाना, अधिग्रहीत भूमि के काटे जाने वाले वृक्षों के बदले में उचित संख्या में नये पेड़ लगाए जाने आदि की कार्यवाही वन विभाग के माध्यम से की जाती है। मार्ग में पड़ने वाले सार्वजनिक हैंडपंप अथवा कुओं के स्थान पर अन्य स्थल पर हैंडपंप लगाने की व्यवस्था एवं मंदिर, स्कूल, मजार आदि को भी नये चयनित स्थानों पर स्थापित करने का कार्य भी पहले ही कर लिया जाता है।

2. निर्माण अवधि में–इस अवधि में ही पर्यावरण संरक्षण का सर्वाधिक महत्व है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक होता है कि निर्माण प्रक्रिया के कारण पर्यावरण (वायु, जल, भूमि आदि) पर निर्धारित सीमा से अधिक हानिकारक प्रभाव न पड़े। पर्यावरण सुधार की दृष्टि से कुछ ऐसी सार्वजनिक उपयोग की सांस्कृतिक एवं सामाजिक संपत्तियों (यथा–तालाब, मंदिर, पिकनिक स्थल आदि) का जो सड़क के निकट ही स्थित हों, उच्चीकरण एवं सुधार भी योजनांतर्गत किया जाता है। परियोजना के प्रावधान के अनुसार, जिस क्षेत्र से सड़क निर्माण हेतु मिट्टी ली जाती है, उसको तदुपरांत पुनः सदुपयोग हेतु (यथा–धान की खेती अथवा जल संचय हेतु या मछली पालन हेतु तालाब के रूप में) सुयोग्य बनाया जाता है। इसी अवधि में निर्माण गतिविधियों के कारण संभावित पर्यावरण को प्रभावित करने वाले मुद्दों का एक संतुलित मूल्यांकन भी लगातार आवश्यक होता है। इस श्रेणी के अंतर्गत, सामग्री ले जाने वाले भारी वाहनों एवं संयंत्रों के परिचालन के फलस्वरूप धूल का प्रभाव, तेल व ईंधन के रिसाव अथवा उसके छलकने से प्रदूषण, निर्माण के बड़े संयंत्र तथा क्रशर, हॉट-मिक्स प्लांट आदि से निकलने वाले धुएं से प्रदूषण तथा मजदूर बस्तियों से उत्पन्न अपशिष्ट के कारण हुआ प्रदूषण सम्मिलित है।

इन सभी कुप्रभावों को नियंत्रित करने हेतु नियमित पानी का छिड़काव, मरम्मत वर्कशॉप आदि शोर के स्थानों के चारों ओर अस्थायी दीवार का प्रावधान, बड़े संयंत्रों से धुआं-शोधन यंत्र का प्रावधान तथा मजदूर बस्तियों की उचित सफाई-व्यवस्था एवं अपशिष्ट के निस्तारण की व्यवस्था की जाती है। उपरोक्त सभी उपायों को निरंतर, साप्ताहिक एवं मासिक समीक्षा एवं मूल्यांकन सभी स्तर पर किया जाता है।

3. परियोजना की उपयोग अवधि में–परियोजना को यातायात हेतु खोलने के उपरांत इस बात का सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन आवश्यक होता है कि पर्यावरण संरक्षण के जो उपाय योजना की परिकल्पना एवं निर्माण अवधि में किए गए, उनकी वास्तविक उपलब्धि क्या रही।

इसके अंतर्गत विभिन्न पूर्व चिह्नित स्थानों पर वायु, जल एवं ध्वनि प्रदूषण के स्तर का आंकलन एवं यातायात सुरक्षा हेतु किए गए प्रावधानों की उपयोगिता का मूल्यांकन एवं समीक्षा आदि सम्मिलित है।

पर्यावरण सुरक्षा हेतु दायित्व

पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण के उपरोक्त सभी कार्यकलापों हेतु मुख्यतया चार घटक उत्तरदायी होते हैं–

1. परियोजना का राजकीय विभाग अथवा स्वामित्व अधिकार प्राप्त एजेंसी– इसका यह उत्तरदायित्व होता है कि योजना बनाते समय उसमें यातायात एवं पर्यावरण सुरक्षा के विभिन्न उपायों का समावेश किया जाए। पर्यावरण संरक्षण के मानकों का निर्धारण भी इसी का उत्तरदायित्व है। योजना निर्माण के अनुबंध में इन सभी मानकों एवं प्रक्रियाओं का प्रावधान भी इसी स्तर पर आवश्यक है।

2. परियोजना की क्रियान्वयन इकाई (पी.आई.यू.)–यह उपरोक्त विभाग अथवा स्वामित्व अधिकार प्राप्त एजेंसी का ही अंग है। इसका यह दायित्व होता है कि पर्यावरण संरक्षण आदि के विभिन्न प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करें।

3. परियोजना की निर्माण एजेंसी (ठेकेदार)–परियोजना में परिभाषित एवं अनुबंध में सम्मिलित पर्यावरण सुरक्षा के प्राविधानों का निर्माण अवधि में स्थल पर अनुपालन इसका दायित्व है। इसके अतिरिक्त निर्माणकाल में प्रदूषण स्तरों का समयानुसार लगातार मानकों के अनुसार मापन भी इसी के दायित्व में सम्मिलित है। इस हेतु स्थल पर एक पर्यावरण अभियंता/ विशेषज्ञ एजेंसी की नियुक्ति अनिवार्य होती है।

4. परियोजना की पर्यवेक्षण सलाहकार एजेंसी (सुपरवीजन कंसल्टेंट)–निर्माण कार्य की गुणवत्ता के साथ-साथ, पर्यावरण एवं यातायात सुरक्षा के सभी प्रावधानों का ठेकेदार द्वारा समुचित एवं समयानुसार अनुपालन सुनिश्चित करना इसका उत्तरदायित्व है। पर्यावरण प्रदूषण-स्तर की ठेकेदार द्वारा की गई जांच एवं मापन को सत्यापन करके समय-समय पर क्रियान्वन इकाई को उपलब्ध कराना भी इसी के दायित्वों में आता है। इस कार्य हेतु इस टीम में भी एक पर्यावरण अभियंता/ विशेषज्ञ की नियुक्ति का प्रावधान है।

इस प्रकार यह विदित होता है कि विश्वबैंक अथवा अन्य बाह्य वित्त-पोषित, वृहद् मार्ग परियोजनाओं में, योजनाकाल से लेकर निर्माण एवं उपयोग काल तक, पर्यावरण संरक्षण एवं यातायात सुरक्षा के विभिन्न उपायों एवं प्रावधानों का समावेश करके, पर्यावरण को होने वाली क्षति को बहुत कुछ नियंत्रित किया जा रहा है तथा उसकी क्षति-पूर्ति का भी प्रयास किया जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि मार्ग निर्माण की अन्य राज्य-स्तरीय योजनाओं में भी साधनों की सीमा के अंतर्गत ही, पर्यावरण संरक्षण के उपायों का प्रावधान किया जाए, जिससे प्रदूषण एवं पर्यावरण के निरंतर होने वाले ह्रास के भयावह परिणामों से समय रहते बचा जा सके।

नोट : यह आलेख इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स (इंडिया) वाराणसी, लोकल सेंटर द्वारा आयोजित विश्वेश्वरैया दिवस, 2004 के अवसर पर विषय प्रवर्तन के रूप में पढ़ा व सराहा गया था।

पूर्व संयुक्त प्रबंध निदेशक,
उ.प्र. राज्य सेतु निगम लि.
संप्रति : विश्व बैंक पोषित
मार्ग योजना में सलाहकार

(इ)

प्रदूषण

सांस्कृतिक प्रदूषण और लोकसंस्कृति

डॉ. विमलकुमार पाठक

हमारी अपनी विशिष्ट संस्कृति रही है—भारतीय संस्कृति। हमारी अपनी अलग पहचान रही है, अलग सभ्यता रही है और अलग खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, कलात्मक अभिव्यक्ति तथा आनंद-उत्साह व्यक्त करने के तौर-तरीके भी। समूचे संसार में भारतीयता की अलग पहचान रही है। विगत सौ-सवा सौ वर्षों से विदेशों में जाकर मजदूरी से लेकर डॉक्टर, इंजीनियरी करने वालों, उद्योग-धंधे लगाकर उद्यमी बने लोगों, व्यवसायियों की भी अपनी भारतीयता के प्रति ललक, रुझान और भारतीय संस्कृति पर सौ जान फिदा लोगों के कारण विदेशों में भी भारतीयता की अच्छी पूछ-परख रही और भारतीय लोग वहां आकर्षण के केंद्र रहे। भारतीय महिलाएं जब अपने भारतीय परिधान—साड़ी और ब्लाउज में, सलवार-सूट में—विदेशों के बाजारों में जातीं, रेलगाड़ियों, विमानों में यात्राएं करतीं तो लोग सुखद आश्चर्य से, हर्षमिश्रित निगाहों से उन्हें देखते और सर्वांग ढके परिधानों में सज्जित भारतीय नारियां उन्हें आदर्श और अनुकरणीय महिलाएं लगतीं। यही स्थिति पुरुषों की भी थी। भारतीय पुरुष आम विदेशियों की अपेक्षा अपने सरल, सहज परिधान और अच्छी आदतों के कारण उन विदेशियों को मोह लेते और भारतीय अस्मिता के प्रति उन्हें नत-मस्तक होने को प्रेरित करते।

ऊपर वर्णित स्थिति स्वतंत्रता प्राप्ति के पच्चीस-तीस वर्षों के बाद तक थी। संयोगवश हमारे देश में सिनेमा ने विभिन्न क्षेत्रों की तरह विदेशियों की नकल करना प्रारंभ किया। कहानी में, नृत्य में, गीत में और तदनुसार परिधान में भी विदेशियों की नकल की जाने लगी और ढके तन की जगह खुले बदन की नायिकाएं, हास्य कलाकार, नर्तकियां, नर्तक आदि फिल्मों में आने लगे और भारतीय परिधान की शालीनता को ठेंगा (अंगूठा) दिखाने लगे। फिल्मों से फैशन का प्रसार-प्रचार तीव्रता से होने लगा और पहले देश के महानगरों में विदेशी रीति-रिवाज, तौर-तरीके, परिधान, खान-पान उच्च और मध्यमवर्गीय समाज में फैले तत्पश्चात् बड़े नगरों में फैशन की फैलने लगीं। सिनेमाई फैशन ने न केवल भारतीय खान-पान, परिधान को बर्बाद किया, बल्कि भारतीय गायन, वाद्य वादन, रंग कर्म, लोककला, लोकनृत्य, लोकगीत और लोकजीवन को भी दूषित करने का जघन्य अपराध किया।

भारतीय रंगमंच के शानदार पाक्षिक या नौ-दिवसीय रामलीला, रासलीला और धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित नाटकों, एकांकियों, तमाशा, गम्मत,

नाच, नौटंकी आदि को भी सिनेमाई अतिआधुनिक प्रदर्शन ने निगलना आरंभ किया और धीरे-धीरे उसके जहरीले प्रभाव से हमारी नागर और ग्रामीण कलाएं प्रभावित होने लगीं। रही-सही कसर सन् 1970-75 के बीच टेलीविजन ने देशभर में फैलाव के साथ पूरी कर दी। फिल्मी विदेशी संस्कृति, जिसे मुंबइया संस्कृति, महानगरीय दिल्ली, कोलकाता, तमिलनाडु की संस्कृति भी कह सकते हैं, ने पूरे देश को अतिआधुनिकता की चपेट में ले लिया और उसी तड़क-भड़क, चकाचौंध में टी.वी. प्रभावित श्रोता-दर्शक झूमने लगे, ढलने लगे और पगलाने लगे।

मुझे ख्याल आता है कि देश के प्रसिद्ध नाटककार और कहानीकार डॉ. शंकर शेष सन् 1980 के आस-पास जब रायपुर में देश का संभवतः दसवां दूरदर्शन केंद्र उद्घाटित हुआ था, तब अपने गृह-नगर बिलासपुर में दीपावली की छुट्टी मनाने मुंबई से आए हुए थे, तब मैं और अनुज डॉ. विनय पाठक भी दीपावली पर बिलासपुर में थे। हम लोग शंकरभैया के घर मुलाकात करने गए। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा था, ''रायपुर में दूरदर्शन का आना छत्तीसगढ़ के लिए दुर्भाग्यजनक है।'' मुझे यह सुनकर दुःख हुआ था। मैंने कहा भी कि केंद्रीय सूचना प्रसारण मंत्री विद्या चरण शुक्ल के कारण सौभाग्यवश यह केंद्र यहां खुला है। देश के अनेक प्रसिद्ध नगरों से पहले रायपुर में इसका खुलना तो गौरव की बात है। हंसते हुए उन्होंने कहा था, ''तुम दोनों भाई छत्तीसगढ़ लोकसाहित्य, संस्कृति और कला से करीब से जुड़े हुए हो। ये दूरदर्शन केंद्र इस छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक गरिमा को, लोकनृत्य, लोकगीतों को, यहां के पहनावे, शृंगार के आभूषणों को, छत्तीसगढ़ी बोली को, गम्मत नाचा को धीरे-धीरे निगल जाएगा और मुंबइया फिल्मी असर से समूचा छत्तीसगढ़ प्रभावित होकर अपनी खासियत, अपने अपनेपन, अपनी 'चिन्हारी' को खो देगा।'' तब मुझे डॉ. शंकर शेष की यह बात अच्छी नहीं लगी थी, लेकिन आज उनकी कही बात जब पचहत्तर-अस्सी प्रतिशत सच साबित हो चुकी है, तब मुझे भी लगता है कि इस टेलीविजन ने छत्तीसगढ़ से उसका अपनापन, उसकी 'चिन्हारी' को छीन लिया है।

अब न कहीं रामलीलाएं होतीं हैं, न कृष्णलीलाएं। रासलीलाओं की अपनी विशिष्टताएं समाप्त हो गई हैं। दस-बारह फुट की भीम, हनुमानजी, शंकरजी, गरुपाजी, अर्जुन आदि की मिट्टी की मूर्तियां अब सपनों में भी नहीं दिखलाई देतीं। ग्रामीण परिवेश में विवाह के अवसर पर गंड़वाबाजा की जगह बैंडबाजा, विवाह गीतों की जगह वाहियात फिल्मी गीतों की रिकॉर्डिंग, साड़ी, लुगरा की जगह महानगरीय कन्याओं, महिलाओं के अजीबोगरीब वस्त्र, पुरुषों, बच्चों के फैशनेबल जींस, शर्ट, दूल्हे-दुल्हन के मौर की जगह राजस्थानी या पंजाबी चलन की पगड़ी, हल्की झालर वाली झूल दिखलाई देती हैं।

अब शहरों में तो होती ही नहीं, ग्रामों में भी न पंडवानी की कथा होती, न भरथरी, न चनैनी की गाथा सुनी जाती हैं, न राऊत होता और न आदिवासी नृत्यों की छटा दिखलाई देती। गम्मत-नाचा को तो सर्प सूंघ गया है। गरीब डंगजघा नाच वाले, विविध शारीरिक करतब दिखलाने वाले, बंदर, भालू का नाच दिखलाने वाले, देवार कलाकार आदि अब कहीं दिखलाई नहीं देते। दरअसल अब टेलीविजन ने लोगों को ऐसा मोह लिया है कि समूचा परिवार उसके मोहपाश में गिरफ्त है। सच्ची कथाओं के नाम पर अश्लील और आपराधिक रिपोर्ट, हत्या, बलात्कार, चोरी, डकैती, दहेज प्रकरण, बहुओं को प्रताड़ित करने,

जलाने, मारने की घटनाओं से लदे-फदे सीरियल, पारिवारिक गाथाओं के नाम पर परिवार को तोड़ने वाले धारावाहिकों, वाहियात नृत्यों, गीतों के कारण भावी पीढ़ी बर्बादी के कगार पर है। 'लिव इन रिलेशनशिप' को महत्ता प्रदान करने, प्रतिष्ठा की रक्षा की खातिर बेटी या बेटे या प्रेमी की हत्या जैसी घटनाओं के किस्सों को मिर्च-मसाला लगाकर प्रस्तुत करने की आजादी ने टेलीविजन के विभिन्न चैनलों को तो सोना काटने की आजादी दे दी है, लेकिन दर्शकों के वैचारिक धरातल को कुंद करने की उनकी गंदी नीति भारत को भारत नहीं रहने देगी, यह स्पष्ट दिखलाई दे रहा है।

अंधानुकरण की यह प्रवृत्ति बढ़ती पर है, फलतः लोकसंस्कृति, भारतीय प्राचीन सभ्यता, देशभर की मातृभाषाएं और प्रदर्शनकारी लोककलाएं खतरे में हैं। अगर भारतीयता की रक्षा को जरूरी समझने की थोड़ी भी ललक हो तो जिम्मेवार लोगों को सही समय में सही निर्णय लेना जरूरी प्रतीत होता है।

खुर्सीपार, जोन-1 मार्केट,
सेक्टर-11, भिलाई-490011

समस्त पर्यावरण प्रदूषण की जड़ मानसिक प्रदूषण

डॉ. वीर अभिमन्यु सिंह

आज धरती की जीवन रक्षा के लिए इसके सुचेता अतिसंवेदनशील हो रहे हैं कि पर्यावरण प्रदूषण के कारण पृथ्वी की घटती जा रही उम्र पर कैसे रोकथाम लगाई जाए। सचमुच आज रत्नगर्भा वसुंधरा को पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से मुक्त कराना अति आवश्यक हो गया है, वरना इस पर रहने वाले मानव अथवा अन्य जंतुओं का भी जीवन खतरे में पड़ सकता है। कुछ जीवों की प्रजातियां तो लुप्तप्रायः हो चुकी हैं और कुछ के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। अतः समय रहते यदि कोई ठोस और कारगर कदम नहीं उठाया गया तो धरती का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है।

प्रश्न उठता है कि इस पर्यावरण प्रदूषण की समस्या की जड़ कहां पर है, जिसे उखाड़ फेंकना संभव नहीं हो पा रहा है? तो इसका सीधा-सा जवाब जो सामान्यतौर पर सबको पता है, वह है तीव्रगति से बढ़ता औद्योगीकरण, बेरोक-टोक जंगलों की कटाई, पर्वतों का उत्खनन, नदियों की धाराप्रवाह के साथ छेड़छाड़ आदि। इन्हीं कारणों से नाना प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न होते हैं, चाहे वह वायु प्रदूषण हो, जल प्रदूषण हो, मृदा प्रदूषण हो अथवा आर्थिक या सामाजिक प्रदूषण। तो क्या विकास के इस युग विशेष में प्रदूषण के उक्त कारणों को पूरी तरह से समाप्त करना उचित होगा? मैं समझता हूं कि नहीं, क्योंकि समस्या के वास्तविक कारण ये सब हैं ही नहीं। अतः न तो उक्त कारणों को पूरी तरह से समाप्त करना संभव है और न ही इनके समाप्त हो जाने से समस्या का समाधान ही संभव है, क्योंकि पर्यावरण समस्या की मुख्य जड़ तो हमारा 'मानसिक प्रदूषण' है। जब तक हमारा मन-मस्तिष्क स्वस्थ एवं पवित्र नहीं होगा, तब तक हम समस्याओं को रोकने की बजाय पर्यावरण प्रदूषण की नयी-नयी समस्याओं को बढ़ाते जाएंगे।

ऐसी बात नहीं है कि पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के उपाय नहीं किए जा रहे हैं, बल्कि विश्व स्तर पर विधिवत कानून एवं अंतःसरकारी समिति (आई.पी.सी.सी.) का गठन करके ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। Inter-Government Pannel on Climate Change (IPCC) के अध्यक्ष पर्यावरण विशेषज्ञ डॉ. राजेंद्र पचौरी को पर्यावरण सुरक्षा के विशेष योगदान के लिए सन् 2007 में नोबेल पुरस्कार भी दिया जा चुका है। किंतु अभी हाल ही में उनका बयान आया है कि ग्लोबल वार्मिंग की समस्या इस कदर बढ़ रही है कि संसार को नये-नये खतरों के लिए तैयार रहना पड़ेगा। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुनामी जैसी समस्याएं तो आम बात हो जाएंगी। जिस तरह से ग्लेशियर पिघल रहे हैं और समुद्र

का जलस्तर बढ़ रहा है, दुनिया के समुद्र तटीय देशों को अपने-अपने तटीय क्षेत्रों की रक्षा के विषय में सोचना आवश्यक हो गया है। जिस स्तर से धरती का तापमान बढ़ रहा है, जलवायु में परिवर्तन हो रहा है, समुद्रतटीय इलाकों का समुद्र में डूब जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। इतना ही नहीं, ओजोन गैस की परत का पतला होना या फट जाना एक अलग समस्या है। इन सबके लिए लाखों डॉलर अथवा अरबों रुपयों की परियोजनाएं देश एवं विदेश स्तर पर बनाई जाती हैं, फिर भी समस्या जैसी की तैसी बनी हुई है।

अब नहीं, पर प्रश्न यह उठता है कि आखिर क्यों हमारी योजनाएं पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में कारगर सिद्ध नहीं हो पा रही हैं? हमारी गंगा एक्शन प्लान (जी.ए.पी.) 1985, जिसमें पवित्र गंगा नदी की अपवित्रता को दूर करने के लिए 1400 करोड़ रुपये की परियोजना बनाई गई थी, क्यों विफल हो रहा है?

इसका मूल कारण है हमारा मानसिक प्रदूषण, जिसके कारण हम विनाश के बढ़ते चरणों की आहट नहीं समझ पा रहे हैं, बल्कि इसे विकास की संज्ञा देकर विनाश की होड़ में आगे बढ़ने के लिए एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगे हैं।

व्यापार साम्राज्यवाद का ऐसा प्रदूषण विकसित देशों ने फैला रखा है कि इसकी चपेट में अविकसित एवं विकासशील देश इस कदर आ गए हैं कि उन्हें उबर पाना मुश्किल हो गया है। तब 16वें वैश्विक सम्मेलन में इन्हीं विकसित देशों खासकर अमेरिका ने ताप साम्राज्यवाद का दूसरा मानसिक प्रदूषण फैलाना प्रारंभ कर दिया है, जिसका दुष्प्रभाव यह है कि तथाकथित विकसित देश अपने ऊपर कार्बन डाई-ऑक्साइड कम करने का बंधन स्वीकार नहीं करते, यद्यपि क्योटो प्रोटोकाल के तहत दुनिया के 40 देशों के सन् 2008-12 तक ग्रीन हाउस गैस का स्तर कम करके जलवायु के ताप में कमी करने की सहमति बनी, किंतु यह सहमति विकासशील देशों पर थोप दी गई। पर पश्चिमी देश अपने लिए ढुलमुल रवैया अपनाते रहे। यह उनका मानसिक प्रदूषण नहीं तो और क्या है?

गौरतलब है कि सन् 2008 में जलवायु परिवर्तन पर विकसित राष्ट्रों ने नेतृत्व प्रदान करते हुए सन् 2050 तक कार्बन उत्सर्जन में 50 प्रतिशत कमी करने का लक्ष्य रखा था, लेकिन उसे भी तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने अनदेखा कर दिया। हैरत की बात यह है कि यूरोपीय देश उपदेश दे रहे हैं कि यदि भारत, चीन और ब्राजील गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित कर ले, तब वे अपना उत्सर्जन कम करेंगे।

ऐसे में भारत का यह तर्क उचित है कि वह अभी विकासशील है, अतः उसे अभी औद्योगिक विकास की आवश्यकता है। हां, विकसित देशों को गैस के उत्सर्जन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। किंतु बाजार पर कब्जा करने की होड़ में विकसित देशों के ताप साम्राज्यवाद ने पृथ्वी को जीने लायक नहीं छोड़ा। अतः जब तक ये मुल्क मानसिक प्रदूषण से मुक्त होकर अपनी जीवन-शैली में परिवर्तन नहीं करते, अपनी उपभोक्तावादी सोच का परित्याग नहीं करते, तब तक विकासशील देश केवल तकनीक से पर्यावरण प्रदूषण से धरती को मुक्त नहीं कर सकेंगे।

हम समझते हैं हमें इतना हताश-निराश होने की आवश्यकता नहीं होगी, यदि भारतवर्ष पर्यावरण सुरक्षा की अगुआई करे और दुनिया के विकसित देश इसका अनुसरण करें, क्योंकि भारत के अलावा और किसी के पास इसका स्थायी समाधान नहीं है। यह

समाधान है भारतीय वैदिक जीवन-पद्धति, जिसमें त्याग की वृत्ति के साथ सौ साल तक सुखपूर्वक जीने की विद्या है। इस संदर्भ में सामवेद की एक ऋचा का उद्धरण देना उचित जान पड़ता है–

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्चजगत्यां जगत्,
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधःकस्यस्विदधनम्।

अर्थात इस संसार में जो कुछ भी उपलब्ध है, उसके जर्रे-जर्रे में ईश्वरीय सत्ता की शक्ति परिव्याप्त है। उसी परम् पिता परमेश्वर ने समस्त जड़-चेतन को उनके अनुरूप गति और अवस्था प्रदान कर उन्हें अपनी अवस्था से मुक्त हो जाने का भी विधान रचा है, किंतु किसी को भी अपनी मर्यादा तोड़ने की छूट नहीं दी है।

मंत्र कहता है कि इस धरा पर उपलब्ध संसाधनों का उपभोग त्याग की वृत्ति के साथ किया जाए, न कि संग्रह-भाव से, क्योंकि आज जो कुछ भी हमारे पास है, कल किसी और का हो जाने वाला है। अतः अति संग्रह की वृत्ति से दूसरे का धन हड़प लेना अथवा हड़पने का उपाय सोचना, एक प्रकार का मानसिक प्रदूषण है, जिसके लिए भारतीय वैदिक जीवन-दर्शन में कोई स्थान नहीं है, किंतु अति खेदजनक बात यह है कि

अयं निजः परोवेत्ति गड़ना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानाम् वसुधैव कुटुंबकम्।

जैसे मंत्र का जाप करने वाला भारत खुद ही दूषित मानसिकता का शिकार हो गया है तो वह दुनिया को क्या राह दिखाएगा।

आज भारत में धन, दौलत और शोहरत बटोरने की ऐसी होड़ मची है कि व्यक्ति अपने मां-बाप, भाई-बहन, सगे-संबंधी सब कुछ भूलकर अति-संग्रह की वृत्ति से ग्रसित हो गया है। इसके कारण वह खुद तो दुःखी है ही, दूसरों को भी दुःखी कर रहा है। उसे देश-काल, समाज एवं पर्यावरण जैसी बातों से क्या मतलब? कॉमनवेल्थ गेम्स का घोटाला, स्पेक्ट्रम घोटाला, आदर्श घोटाला क्या हमारी दूषित मानसिकता और अति-संग्रह की वृत्ति का परिणाम नहीं है? निश्चित रूप से इस प्रश्न का उत्तर इस देश के प्रत्येक नागरिक को ढूंढना चाहिए।

प्रश्न उठता है, मानसिक प्रदूषण प्रारंभ कहां से होता है? इस प्रदूषण का बीजारोपण हमारे बच्चों में किया जाता है। बचपन में ही हमारे बच्चों को दूरदर्शन के विविध चैनलों के माध्यम से भड़काऊ और चिड़चिड़े चटखारे कार्यक्रमों की शृंखलाएं आदि दिखलाई जाती हैं। उनके ऊपर जीवन की काल्पनिक चुनौतियां थोपी जाती हैं। परिणाम यह निकलता है कि वे अपने माता-पिता, दादा-दादी, विद्वानों, लेखकों, वैज्ञानिकों, शहीदों, अध्यापकों को भूलकर नाच-गान करने वाले नटविदवों को अपना आदर्श मान बैठते हैं। तथाकथित विकसित समाज के लोग भी देश में मानसिक प्रदूषण फैलाने का अति घिनौना खेल, खेल रहे हैं। टी.वी. चैनल पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रम जैसे—घर बैठे लखपति बनिए, फोन घुमाइए लाखों कमाइए, कौन बनेगा करोड़पति, बिग बॉस आदि-आदि कार्यक्रम यदि हमारे देश में सफल हो रहे हैं तो यह हमारे मानसिक प्रदूषण का लक्षण है, क्योंकि हमारी सभ्यता बैठे-बैठे धन बटोरने की नहीं है बल्कि परिश्रम से धन कमाने की है। हमने 'श्रमेव जयते' का नारा स्वीकार किया है। इतना ही नहीं–

विद्या ददाति विनयम, विनयात यातिपात्रत
पात्रत्वा धनमाप्नोति धनत् धर्मः ततः सुख।

इन सब बातों को तो हम भूल ही गए हैं। हम तो येन-केन-प्रकारेण धन-संग्रह करने में ऐसे उलझे-फंसे हैं कि जो कुछ हमारे पास सहजता से उपलब्ध है, उसका सुख भी नहीं ले पा रहे हैं।

यद्यपि यह भोगवादी मानसिक प्रदूषण हमने विकसित देशों से आयात किया है, किंतु इसके दुष्परिणामों का दोष हम उन पर थोपकर अपनी जिम्मेदारी से मुख नहीं मोड़ सकते।

हमारे ऋषियों-महर्षियों ने हमें प्रकृति का पोषण करना भी सिखाया है, मात्र इसका दोहन करना नहीं और दुनिया भी इस बात को स्वीकार करेगी तभी यह धरा पर्यावरण प्रदूषण से मुक्त हो पाएगी। वन अरण्य में सुंदर लताओं से घिरी कुटिया में बैठे हमारे ऋषि-महर्षि जब यह कहते हुए यज्ञ जैसे पवित्र कार्य का संपादन करते थे कि

ओऽम् द्यौः शांतिः अंतरिक्षं शांतिः
पृथ्वी शांति रापः शांति रोषधयः शांतिः
वनस्पतयः शांतिर्विश्वेदेवाः शांतिः।

तो मानों कुटिया के समीप खग-मृग आनंद से झूमने-गाने लगते थे, प्रकृति में शांति व्याप्त हो जाती थी। कितने उच्च जीवन आदर्श थे हमारे कि पृथ्वी, अंतरिक्ष, अग्नि, जल, औषधि, वनस्पति सबकी शांति का गान एवं ध्यान करते थे हम।

इतना ही नहीं, यावत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे जैसे आत्मसुखदायी भाव के साथ जीने वाला भारत आज भोगवादी वृत्ति का शिकार हो, अति-संग्रह के मानसिक प्रदूषण से ग्रसित होकर रोग, दुःख, भय, आशंका एवं बेहोशी में जी रहा है। आज क्या बच्चे, क्या जवान, क्या बूढ़े, क्या विद्वान्, क्या नेता, क्या जन-सामान्य सभी भोगवादी मानसिकता से ग्रसित हो चुके हैं। तभी तो कभी विश्वगुरु के रूप में सम्मान पाने वाला भारतवर्ष आज चोर, लुटेरा और भ्रष्ट देश के रूप में जाना जाता है।

यह बात लिखते ही हमारा ध्यान अपने प्राचीन ऋषियों-महर्षियों की जीवन-शैली की ओर चला जाता है, जो समस्त सुख-सुविधाओं का त्याग कर वनों में एकांत जीवन साधना करते थे, किंतु समाज का हित, चिंतन एवं मार्गदर्शन किया करते थे। राजा-महाराजा उनके आदेशों के अनुरूप राज्य संचालन करते थे। अपने उपदेश एवं प्रवचन से लोगों के मन एवं हृदय की सफाई किया करते थे। किंतु आज के तथाकथित, लोग जिनकी संख्या बढ़ती जा रही है, इनके विषय में लिखने में संकोच हो रहा है, किंतु इनके साथ बढ़ते इनके चेलों की संख्या और उसी गति में बढ़ते मानसिक प्रदूषण के कारण लिखना आवश्यक जान पड़ता है कि कहीं-न-कहीं से ज्ञान प्रवाह की मानस गंगा दूषित हो रही है, इसीलिए आज हमारे बाबाओं का अधिकतम ध्यान अनुयायियों की संख्या बढ़ाने पर रहता है। चाहे इसके लिए इन्हें अपने आश्रम की पत्रिका, अपने प्रवचन की सी.डी. या कोई उत्पाद ही क्यों न बेचना पड़े।

अतः पर्यावरण की रक्षा के लिए आवश्यक है कि हमारे पथ-प्रदर्शक, समाज सुधारक, अध्यापक एवं नेतृत्व शुद्ध एवं पवित्र हो, तभी पर्यावरण सुधार संबंधी उपायों को सभी लोग सही ढंग से अपना सकेंगे, अन्यथा हम दवा देते जाएंगे, किंतु रोग बढ़ता

ही जाएगा और हम पर्यावरण संरक्षण पर संगोष्ठी, वाद-विवाद, प्रतियोगिता, वृक्षारोपण, स्टिकर आदि कार्यक्रमों पर खर्चे दिखाकर वर्ष-दर-वर्ष बजट बढ़ाते रहेंगे और भरते रहेंगे अपनी-अपनी झोली। आज मानसिक प्रदूषण का स्तर यहां तक बढ़ गया है कि जो जितना बड़ा चोर जितना भ्रष्ट है, वही अधिक योग्य माना जाने लगा है। वह पर्यावरण संबंधी अथवा अन्य कोई भी नियम-कानून तोड़ने में ही अपना बड़प्पन समझता है और सामान्य जनता भी इन्हीं का अनुसरण करते हुए 'महाजनो येन गता सपन्था' की तर्ज पर चलने लगी है और बहने लगी है विकास की उल्टी धारा, जो हमें विनाश के गर्त में बहाकर ढकेल रही है।

इस विनाश से बचने के सभी उपाय हमारे पास हैं, यदि हम पश्चिमी देशों से आयातित भोगवादी जीवन-शैली को छोड़कर अपने त्याग, तपस्या एवं सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे शंतु निरामया के भाव से पोषित भारतीय जीवनधारा की वैदिक शैली का अनुपालन करें और दुनिया को इसी मार्ग पर चलने के लिए अनुप्ररित करें। हमारा मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक प्रदूषण दूर होते ही पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने के लिए उठाए गए सारे कदम, सही दिशा में उठने लगेंगे और तब धरती पर एक-न-एक दिन खुशहाली का, न्याय का, वातावरण तैयार हो जाएगा, जिसमें मानव-मात्र ही नहीं, वरन् इस धरा पर पलने वाला समस्त जड़-चेतन अपने-अपने समान अधिकारभाव से जी सकेंगे।

अध्यक्ष, मातृभूमि सेवा समिति,
सोनभद्र (उ.प्र.)

पर्यावरण और अपशिष्ट-प्रबंधन

अश्विनी कुमार आलोक

यह भयावह भविष्य का खतरनाक संदेश है कि भारत जैसे वृक्षों का आदर और पूजा करने वाले देश में वर्षा और पेयजल की लगातार कमी हो रही है। यह तो और भी विचित्र बात है कि सामाजिक और सरकारी दोनों ही स्तरों पर उपलब्ध पेयजल का असामान्य दोहन होता है। अपशिष्ट पदार्थों का असुरक्षित निपटान और उससे होने वाले वायु-प्रदूषण के अतिरिक्त जल-प्रदूषण के प्रति असावधानी विनाशकारी है। भारत ही नहीं, प्रदूषण का विस्तृत दुष्प्रभाव संसार पर पड़ रहा है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कूड़ा-प्रबंधन के प्रति असावधानी को गंभीरता से लिया गया है और इससे वातावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति चिंता प्रकट की गई है। वायुमंडल में तापमान की असामान्य वृद्धि और उपयुक्त भू-जल के विषैले होते जाने की एक अलग ही समस्या दिखाई पड़ने लगी है। तापमान बढ़ने से ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ पिघल रही है। इससे पृथ्वी के जलमग्न होने की आशंका इधर के दिनों में अधिक गंभीरता से व्यक्त की गई है। समुद्रों के जलस्तर में भी वृद्धि हुई है, छोटे द्वीपों का अस्तित्व खतरे में पड़ता दिखाई पड़े रहा है। कूड़े के असुरक्षित निपटान से स्थिति इतनी भयावह होती देती है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों का तापमान लगातार जीवन के विरुद्ध होता जा रहा है।

छोटे एवं बड़े शहरों में दैनिक जीवन के उपयोग से निकलने वाले कूड़े का उपयोग प्रायः गड्ढों को भरने के लिए किया जाता है, परंतु इसकी समुचित व्यवस्था नहीं हो पाती। पेयजल के रूप में उपयोग में लाए जाने वाले भू-जल के आर्सेनिक आदि हानिकारक तत्वों से विषाक्त होने का मुख्य कारण यही है। देश के महानगरों की स्थिति तो और भी बुरी है। कूड़े के निपटान के लिए उपयुक्त स्थानों का अभाव है। भारत में कुल 5161 नगर हैं, जिनमें 35 को महानगर का दर्जा प्राप्त है। 393 प्रथम श्रेणी और 401 द्वितीय श्रेणी के नगरों के अतिरिक्त कई और 20000 से 50000 की आबादी वाले छोटे नगर भी हैं। भारत में इन नगरों से प्रतिदिन लगभग एक लाख टन अपशिष्ट पदार्थ निकलते हैं। छोटे नगरों में निकलने वाले कूड़े की प्रति व्यक्ति औसत मात्रा 0.1 कि.ग्रा. है, जबकि बड़े नगरों में कूड़े व्यक्ति 0.4 से 0.6 कि.ग्रा. औसत कूड़ा निकलता है।

भारत में नगरों के सौंदर्य को बिगाड़ने में ये कूड़ा अहम् भूमिका निभाता है। नगरीय सभ्यता की ओर आकर्षित होते मध्यवर्गीय ग्रामीणों की बढ़त से नगरों की आबादी में वृद्धि होती है तो ये नये नगर कूड़े के प्रबंधन के प्रति स्वाभाविक रूप से लापरवाह भी होते हैं। नगरों के विकास के लिए बनाए गए स्थानीय शासन के प्राधिकारणों के कर्मचारियों

एवं पदाधिकारियों में कुशलता का अभाव तो है ही, निष्ठा भी कम न है। कर्मचारियों को कूड़े के पर्यावरणीय दुष्प्रभाव का सैद्धांतिक ज्ञान न होने के कारण व्यावहारिक तौर पर परेशानी होती है। नगर प्राधिकरणों में कर्मचारियों का अभाव अलग है और जो कर्मचारी हैं वे भी काम के अनुपात में कम हैं। सरकार उनके नियमित वेतन और दूसरे भत्तों के समुचित तथा ससमय भुगतान का पुख्ता प्रबंध भी नहीं कर पा रहीं। नगरों में कूड़ों के साथ मानव मल मिश्रित होता है। कम अथवा निम्नवर्गीय आबादी वाला क्षेत्र ही प्रायः कूड़े को फेंकने की जगह की रूप में किया जाता है। उन क्षेत्रों के लोग अपने व्यक्तिगत जीवन से निःसृत कूड़े के प्रबंधन के लिए अपेक्षाकृत अधिक उदासीन होते हैं। अमूमन शहरों के निम्नवर्गीय लोग तो कूड़ों वाले अर्थात् उपेक्षित सरकारी क्षेत्रों में ही अपनी झोंपड़ियां खड़ी करते हैं, जिन्हें स्लम क्षेत्र कहा जाता है। वर्षा के दिनों में इन क्षेत्रों में पसरी गंदगी शहर की समूची आबोहवा पर प्रतिकूल असर डालती है। शहरों में पांव फैलाती संक्रमणजनित नयी बीमारियों का जन्म भी प्रायः यहीं से होता है। वृक्षों का अभाव, वाहनों एवं कल-कारखानों से निकलने वाला धुआं, ध्वनि आदि के प्रति पर्यावरणविदों का ध्यान तो लंबे समय से जाता रहा, पर इस कूड़े के निपटान से संबंधित न तो कोई तकनीकी ज्ञान सृजित किया गया और न ही इसके प्रति अपेक्षित ध्यान दिया गया। नगरों से मुख्य मार्गों एवं गलियों के कूड़ों का निपटान किए जाने के प्रबंध गैर-मुनासिब हैं। सिर्फ 72.5 प्रतिशत कूड़ा ही हटाया जाता है। उनमें भी अधिकांश कूड़े का उपयोग खाली गड्ढों को भरने, सड़क किनारे फेंक देने आदि में होता है। कूड़े को खुले में फेंकने और खुला छोड़ देने का और भी खतरनाक परिणाम दिखाई पड़ रहा है। कूड़े का निष्पादन जैविक खाद बनाने या उसके बंद निपटान के लिए किया जाना चाहिए, जो महज उठाए गए कूड़े में से दस प्रतिशत भाग का ही हो पा रहा है। शहरों के पास खाली भूमि का अभाव है। कूड़ा फेंकने के लिए सरकारीतौर पर जिन क्षेत्रों का चयन किया जाना चाहिए, वे जनसंख्यारहित हों। यदि इस दृष्टि से क्षेत्रों का चयन होता भी है तो वे शहरों से दूर होने के कारण व्यय साध्य होते हैं। सरकारी कर्मचारियों एवं ठेकेदारों की उदासीनता अथवा अधिक लाभ अर्जित करने की इच्छा के कारण ये कूड़ा वहां तक पहुंच ही नहीं पाता। यदि पहुंच भी पाता है तो उसके खुले निपटान के कारण स्थानीय प्रदूषण का नया खतरा उत्पन्न हो जाता है।

पश्चिमी देशों में भारत की अपेक्षा अधिक सुचिंतित और सावधान नागर-जीवन सुलभ है। वे कूड़े के निपटान के लिए उचित प्रबंध करते हैं। वहां सेनेटरी लैंडफिल में कूड़ा डालने के बाद ऊपर से निश्चितप्रायः मिट्टी डाल दी जाती है, लैंडफिल के चारों तरफ चिकनी मिट्टी भी डालने का प्रावधान है। इससे दुर्गंध और जीवाणुओं के प्रसार को रोका जाना संभव हो पाता है। यह एक प्रकार की कंपोस्टिंग की भी व्यवस्था होती है और इससे नये पौधों के पोषण को तो बल मिलता ही है, खाली पड़े गड्ढों को लैंडफिलिंग के बाद उपयोग में लाने की संभावना भी बढ़ जाती है। कूड़े में मानव मल और फलों-सब्जियों के सड़े हुए अंश मिले रहते हैं। मिट्टी या बालू की तुलना में इनकी मात्रा अधिक ही रहती है। सड़न से दुर्गंध आती है और वातावरण के तापमान को तेजी से बढ़ने वाली मीथेन गैस की मात्रा भी वातावरण में तेजी से फैलती जाती है।

पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से ऑक्सीजन के अभाव और कल-कारखानों के धुएं से बढ़ते कार्बन डाइऑक्साइड एवं कार्बन मोनोऑक्साइड को लेकर की गईं चिंता तो

विद्यालयी पाठ्यक्रमों में भी शामिल है, परंतु कार्बन डाइऑक्साइड की तुलना में इक्कीस गुणा अधिक हानिकारक मीथेन गैस के प्रति पर्यावरणविदों की चेतना अपेक्षाकृत बिलंब से जागृत हो रही है। अब जाकर भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन-मंत्रालय ने इससे संबंधित एक आदेश जारी किया है। 25 सितंबर, 2000 को जारी हुए इस आदेश का क्रमांक 908(बी) है, जिसमें सेनेटरी लैंडफिल के लिए कुशल कर्मियों को लगाए जाने पर विशेष बल दिया गया है। इसमें लैंडफिल वाली सेनेटरियों का क्षेत्रफल तय करने की बात कही गई है कि वह कम-से-कम तीन से चार दशकों का समय देख सकें। इसके अंतर्गत तीन लाख से कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों को चिह्नित करने का प्रावधान है। ऐसे दो-तीन नगरों को मिलाकर एक क्षेत्रीय समिति को गठन के निर्णय लिया गया है, जिससे साधन एवं खाली क्षेत्रों के अभाव को कम व्यय से इस कार्य में आड़े आने से रोका जा सके। इस प्रकार निस्तारण की लागत प्रति टन कम हो सकेगी। छोटे नगरों में कोष की कमी अथवा अनुपयुक्तता के कारण प्रबंधन होने में कठिनाई होती है, ठेकेदारों का अभाव होता है, उनके ससमय भुगतान के प्रति सचेष्ट नहीं होने के कारण भी यह समस्या उत्पन्न होती है। क्षेत्रीय समिति के गठन के बाद सेनेटरी लैंडफिल के लिए भूमि क्रय का बंदोबस्त आसानी से संभव है। स्थानीयता के कारण न सिर्फ ठेकेदारों की सुलभता संभव है, बल्कि संयंत्रों और स्थानीय लोगों का सहयोग लेना आसान हो सकता है। स्थानीय लोगों को अपने-अपने क्षेत्रों से निस्तारित कूड़े के निपटान और उसके चक्रीय उपयोग से संबंधित प्रशिक्षण की व्यवस्था कम लागत में की जा सकती है। पॉलीथिन, शीशा, पत्थर के टुकड़ों को अलग कर कूड़े से जैविक खाद बनाने का सस्ता और आवश्यक प्रबंधन विकसित करना अधिक आसान है। रासायनिक खादों के बढ़ते दुष्प्रभाव, अनुपलब्धता एवं महंगाई के विकल्प-स्वरूप जैविक खाद पर अवलंबित होना अधिक प्राकृतिक और उपयुक्त होगा। इन क्षेत्रीय समितियों को यह भार सौंपा गया है कि वे कूड़े के ढेर की ऊंचाई तीस मीटर से अधिक न बढ़ने दें। छोटे नगरों में उसे 5 मीटर तक ऊंचे कूड़े के ढेरों को एकत्रित कर 30 मीटर तक ऊंचाई सीमा में जमा करना अधिक मुश्किल नहीं। इस प्रकार की लैंडफिलिंग के नियंत्रित प्रबंधन से जहरीली मीथेन गैस को उपयोगी बनाया जा सकता है। इससे विद्युत का उत्पादन संभव है।

अभी तक कूड़े के निपटान का सबसे उपयुक्त तरीका लैंडफिलिंग रहा है, परंतु इसीनरेटर और कंपोस्टिंग की अन्य दो विधियां भी सृजित की गई हैं। इसीनरेटर की विधि अधिक व्यापक नहीं हो पाई और इससे वायु प्रदूषण की अतिरिक्त क्षति होती देखी गई, परंतु प्लास्टिक के थैलों, अस्पतालों से निकले दवाओं के खाली पत्तों, ऑपरेशन थिएटर में उपयोग में लाने के बाद फेंके जाने वाले सामानों के निस्तारण की कोई अन्य तरकीब इसीनरेटर के अतिरिक्त फिलहाल आविष्कृत नहीं की जा सकी है। इसीनरेटर खर्चीली प्रणाली भी है। कृत्रिम वस्तुओं के निपटान के लिए यह प्रणाली उपयोग में लाई जाती है। कृत्रिम वस्तुएं कम-से-कम उपयोग में लाई जाएं, कम साधनों का उपयोग हो और एक ही साधन का कई कार्यों में उपयोग हो। यदि कूड़ा फेंका जाए तो उसे फेंकने से पूर्व वर्गीकृत कर दिया जाए। कृत्रिम वस्तुओं यथा पॉलीथिन, प्लास्टिक, लोहे के टुकड़ों, शीशों और दूसरे पदार्थों को फेंकने से पूर्व अलग-अलग टोकरियों में एकत्रित करते जाना चाहिए। इससे उन्हें पुनर्चक्रण में लगाया जा सकता है। उन्हें कबाड़ियों को बेचकर कुछ भी कमाया

जा सकता है, जो पदार्थ हमारे लिए उपयोगी नहीं हों, उन्हें अन्य परिवारों तक हस्तांतरित कर देना चाहिए। प्रायः यह निर्णय लेना चाहिए कि हमारे द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले पदार्थ डिस्पोजेबल कम हों। उनकी जगह टिकाऊ और कीमती सामानों के उपयोग से यह संभव हो सकता है कि वे अपेक्षाकृत कूड़ों में तत्काल तब्दील न हों। प्लास्टिक भू-मृदा के लिए सर्वाधिक हानिकारक है। निकट के वर्षों में यह अलग समस्या बन गई है। प्लास्टिक के थैलों की जगह टिकाऊ और बार-बार उपयोग में लाए जा सकने वाले कपड़ों के थैलों का इस्तेमाल अधिक हो।

छोटे आंगनों में कंपोस्ट पिट का निर्माण किया जाना चाहिए, जिनमें जैविक अपशिष्टों का निपटान हो, अजैविक अपशिष्टों के निस्तारण की अलग से व्यवस्था आवश्यक है। जैविक कूड़े से बने जैविक खाद को बागवानी आदि में उपयोग में लाया जा सकता है, अथवा छोटे और मंझोले किसानों को बेचकर मुनाफा भी कमाया जा सकता है।

कूड़े से लैंडफिलिंग के उचित प्रबंध के अंतर्गत कई प्रयोग किए गए। कूड़े वाली भूमि को मिट्टी से ढक दिया जाता था अथवा ऐशफॉल्ट से बना वाटरप्रूफ आवरण दे दिया जाता था। इससे भू-जल और वर्षा के जल से उसका संपर्क रोक दिया जाता था। लाभ यह होता था कि पेयजल संक्रमित नहीं होता था और वातावरण भी जीवाणुओं के दुष्प्रभाव से मुक्त रहता था। इससे कूड़ा न तो फैलता था और न ही इसकी सूखी धूल वातावरण को अपशिष्ट करती थी। बाद में कूड़े से पटे क्षेत्रों को मिट्टी डालकर सामान्य कर दिया जाता था और उन पर आबादी के बढ़ते घनत्व के कारण इमारतें बना दी जाती थीं। परंतु कूड़े से बाद में गैस रिसने की कई घटनाओं ने नगर-जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। कुछ समय पूर्व मुंबई में एक ऐसी ही डंपिंग को बंद किया गया है। प्रयास किया जा रहा है कि उसका उपयोग विद्युत निर्माण के रूप में किया जाए। मुंबई हाईकोर्ट ने ऐसी डंपिंगों-कैंपिंगों की अपेक्षा बायोस्टेबिलाइजेशन को श्रेयस्कर माना है। इसमें लागत भी कम आती है तथा क्षेत्र को बाद में खेत के खुले मैदान के रूप में विकसित किया जा सकता है। इससे कूड़े के आयतन को भी कम किया जा सकता है और वातावरण में गैस का फैलाव भी नहीं हो सकता। ऐसे प्रबंधनों से मुंबई के अतिरिक्त नासिक, मदुरै और कोलकाता में कई मैदान विकसित भी किए जा चुके हैं।

अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया आदि में कूड़े के प्रबंधन से संबंधित शोध और प्रयोग किए जा रहे हैं। अमेरिका में मिट्टी से कैंपिंग असफल रही और शुष्कता के कारण दरार आ गई। ऑस्ट्रेलिया में मीथेन गैस का उपयोग महंगा सिद्ध हुआ। फाइटो कैंपिंग से कूड़े वाले क्षेत्र पर वृक्षारोपण कर सफलता पाई गई।

कूड़े का प्रबंधन व्यक्तिगत सावधानी से संभव है। यह न सिर्फ सामाजिक कर्तव्य है, बल्कि जीवन और पर्यावरण के अन्योन्याश्रय संबंध का निर्धारक जैविक कर्तव्य भी।

पत्रकार कॉलोनी,
महनार वैशाली (बिहार)

पर्यावरण प्रदूषण कानून : उनका क्रियान्वयन

डॉ. शीला दानी

पर्यावरण का क्षय या ह्रास एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या है। जनसंख्या विस्फोट, नगरीकरण, जल-प्रदूषण, धुआं, शोर-गुल, रासायनिक प्रवाह, विज्ञान और तकनीक का अप्रत्याशित प्रसार आदि ऐसे कारण हैं, जिनकी वजह से पर्यावरण का दिन-प्रतिदन होता जा रहा है। विश्व के अधिकांश भागों में पर्यावरण की समस्याएं अब भी निर्धनता और अज्ञान से संबंधित हैं। परंपरागत अंतर्राष्ट्रीय कानून में प्रदूषण और पर्यावरण ह्रास की समस्याओं पर बहुत ज्यादा चिंतन-मनन नहीं किया गया है बावजूद इसके यह माना जाता है कि किसी राज्य के कार्यकलापों की एक सीमा यह है कि उससे अन्य राज्यों के क्षेत्र पर किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि अंतर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत प्रत्येक राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने राज्य क्षेत्र में ऐसा कोई कार्य न करे, जिससे उस क्षेत्र के बाहर पर्यावरण संबंधी नुकसान या हानि की समस्या उत्पन्न हो।

इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र के आरंभिक दशकों में पर्यावरणीय चिंताएं यदा-कदा ही अंतर्राष्ट्रीय एजेंडा सूची पर आती थीं। सन् 1960 के दशक में समुद्री-प्रदूषण, विशेषकर तेल के बहाव-बिखराव से संबंधित कुछ समझौते हुए थे, लेकिन वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के क्षय के बढ़ते प्रमाण के कारण सन् 1970 के दशक से अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने इसकी पारिस्थितिकी एवं मनुष्य समाज पर विकास के प्रभाव पर उत्तरोत्तर चिंता व्यक्त की। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरणीय चिंताओं का एक प्रमुख पैरोकार और 'टिकाऊ विकास' का मुख्य प्रतिपादक रहा है।

आर्थिक विकास एवं पर्यावरणीय क्षय के बीच संबंध को सर्वप्रथम सन् 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के एजेंडा में रखा गया था। सम्मेलन के पश्चात् सरकारों ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी. —यूनाइटेड नेशन्स एनवायरमेंट प्रोग्रेस) स्थापित किया, जो एक प्रमुख वैश्विक पर्यावरणीय एजेंसी के रूप में कार्य कर रहा है।

सन् 1973 में संयुक्त राष्ट्र ने पश्चिमी अफ्रीका में मरुस्थलीकरण विस्तार को घटाने के प्रयासों को बढ़ाने के लिए 'सूडानो-सहेलियन ऑफिस' (यू.एन.एस.ओ.) की स्थापना की, तथापि राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन एवं निर्णय प्रक्रिया में पर्यावरणीय चिंताओं को सम्मिलित करने का कार्य भी धीमी गति से चलता रहा।

1980 का दशक पर्यावरणीय विषयों पर समस्त राज्यों के मध्य उल्लेखनीय वार्ताओं का साक्षी रहा। इनमें 'ओजोन परत' को सुरक्षित रखने एवं विषैले उत्सर्जन की गति को नियंत्रित करने वाली संधियों का समावेश था। सन् 1983 में महासभा द्वारा स्थापित पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग ने एक नये प्रकार की समझ-बूझ और एक नये प्रकार के विकास की जरूरत के प्रति तात्कालिकता की भावना की वृद्धि की। साथ ही, आर्थिक कल्याण को सुनिश्चित करने के साथ-साथ पर्यावरणीय संसाधनों को, जिन पर सारा विकास अवलंबित है, को संरक्षित रखने की पहल भी सम्मिलित की गई। महासभा को प्रस्तुत आयोग की सन् 1987 की रिपोर्ट में टिकाऊ विकास की अवधारणा सम्मुख रखी गई।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन में यह सहमति हुई कि एजेंडा 21 के लिए अधिकांश धन प्रत्येक देश के सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र से आएगा। सन् 1991 में प्रारंभ एवं 1994 में पुनर्गठित वैश्विक पर्यावरण सुविधा (ग्लोबल एनवायरमेंट फेसिलिटी 'जी.ई.एफ.' जेफ) को इन विधियों को व्यवस्थित ढंग देने का कार्य दो बार सौंपा गया। यू.एन.ई.पी. द्वारा प्रायोजित वार्ताओं के फलस्वरूप सन् 1993 में 110 सरकारों द्वारा एक वैश्विक कार्यक्रम की स्वीकृति संभव हुई। यह है 'धरती आधारित गतिविधियों से समुद्री पर्यावरण को बचाने के लिए वैश्विक कार्य योजना'।

पर्यावरण संरक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय कानून की व्यवस्था की गई है, जिसके अंतर्गत लेकसेक्स सम्मेलन (1949) के अंतर्गत इस बात पर बल दिया गया है कि प्रकृति के उपकरण एक नैसर्गिक बपौती के रूप में हैं, जिन्हें शीघ्रता से नष्ट नहीं करना चाहिए। इसी तारतम्य में मानवीय पर्यावरण पर स्टॉकहोम सम्मेलन सन् (1968-1972) आयोजित हुआ, जिसमें मानव पर्यावरण की क्षति को सीमित करने तथा मानव की प्राकृतिक परिस्थितियों के संरक्षण और सुधार के लिए योजनाएं बनाई गईं। जीव रक्षण मानव निर्मित प्रदूषकों से प्रदूषण नियंत्रण और नगरों तथा मानव बस्तियों के लिए सरकारों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा किए जाने वाले उपायों की 100 से अधिक सिफारिशों वाली कार्यवाही योजना की भी इसमें स्वीकृति प्रदान की गई। पर्यावरण संबंधी अंतर्राष्ट्रीय कानून के विकास की आवश्यकता आज सबसे अधिक अनुभव की जा रही है। स्टॉकहोम सम्मेलन ने पर्यावरण संबंधी अंतर्राष्ट्रीय विधि के विकास की नींव डाली और रिओ पृथ्वी सम्मेलन के निर्णयों के आधार पर पर्यावरण और विकास के साथ सामान्य जीवन भी प्रभावित होने की संभावना है।

भारत ने पर्यावरणीय प्रश्नों के समाधान के लिए समाजवादी मार्ग अपनाया है। इस कार्य के लिए जनता की भागीदारी, उसकी दिलचस्पी तथा उसकी सजग चेतना को अधिक प्राथमिकता दी गई है। भारत में पर्यावरण को ओर गंभीरता से ध्यान आकर्षित करने का श्रेय संजय गांधी को जाता है। युवक कांग्रेस के पांच सूत्रों में से एक सूत्र 'पेड़ लगाओ' था। पहले पहल इस बात को सतही तौर पर लिया गया, लेकिन सरकार के हस्तक्षेप तथा जन-जागृति, स्कूल तथा महाविद्यालयों की कार्य-कुशलता से इसे गति दी गई। भारत में प्रकृति की रक्षा का दायित्व जनश्रुतियों में दीर्घकाल से चला आ रहा है। उदाहरणार्थ 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में स्पष्ट कहा गया है कि मानव को पौधों और जानवरों की रक्षा करनी चाहिए।

स्वतंत्रता पूर्व भी भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक कानून बनाए गए। आजादी से पूर्व पहली बार वन अधिनियम, 1927 द्वारा पर्यावरण संरक्षण की बात कही गई थी। इसके पश्चात् क्रमशः इंडियन फिशरीज एक्ट, 1897; विषय अधिनियम 1919, इंडियन बॉयलर्स एक्ट 1923, मैसूर डेस्ट्रक्टिव एंड पोस्ट एक्ट 1917 तथा बिहार वेस्ट लैंड्स एक्ट 1946 पारित किए गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न उपबंधों को संविधान में स्थान दिया गया। इसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में संविधान की प्रस्तावना, मूलाधिकारों, राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों तथा मूल कर्तव्यों में देखा जा सकता है।

संविधान का अनुच्छेद 51 A(G) कहता है, प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे, प्राकृतिक पर्यावरण का संवर्द्धन करे, जीव व प्राणियों के प्रति दया भाव रखे।

उपरोक्त में प्राकृतिक तथा कृत्रिम दोनों को सम्मिलित किया गया है। इस अनुच्छेद में जिस कर्तव्य का उल्लेख किया गया है, उसकी पूर्ति तभी संभव है, जब पर्यावरण सुरक्षित रहे। उसमें किसी प्रकार का प्रदूषण न रहे। संसद इस कर्तव्य का पालन करने के लिए उपयुक्त विधान की व्यवस्था कर सकती है। संसद ने इसी भावना से प्रेरित होकर अनुच्छेद 253 की शक्ति से वायु प्रदूषण अधिनियम 1981, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 अधिनियमित किए।

भारतीय दंड संहिता 1860 के अध्याय 14 लोकस्वास्थ्य क्षेत्र की सुविधा, शिष्टता और सदाचार पर प्रभाव डालने वाले अपराधों के विषय में उपलब्ध किया गया है। इसके अंतर्गत छह मास का कारावास एवं जुर्माना तथा दोनों की व्यवस्था की गई है।

दंड प्रक्रिया संहिता 1973 का अध्याय 10 लोक व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए उपबंध करता है। इसमें धारा 133 से 144 तक लोक न्यूसेंस का उल्लेख है, जो पर्यावरण से संबंधित है।

सन् 1980 में स्थापित 'भारतीय वानस्पति सर्वेक्षण' देश के वानस्पतिक संसाधनों का सर्वेक्षण और उनकी पहचान करता है। इसका मुख्यालय कोलकाता में स्थित है।

सन् 1916 में 'भारतीय प्राणी विज्ञान सर्वेक्षण' का गठन किया गया, जिसमें देश के जीव-जंतुओं से संबंधित सर्वेक्षण एवं सूचीकरण संबद्ध है। इसका मुख्यालय भी कोलकाता में स्थापित है।

सन् 1981 में 'भारतीय वन सर्वेक्षण' स्थापित किया गया। यह संगठन देश के लिए विषय-केंद्रित नक्शे पर हर दस वर्ष बाद तथा पेड़-पौधों पर केंद्रित नक्शे दो वर्ष में बना है। इसका मुख्यालय देहरादून में स्थित है तथा बेंगलुरु, कोलकाता, नागपुर एवं शिमला में क्षेत्रीय कार्यालय बनाए गए हैं। वन रिपोर्ट के अनुसार सन् 2003 में देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 23 प्रतिशत वनाच्छादित था।

भारत की वन नीति एवं अन्य कानून को प्रथम बार सन् 1894 में संशोधित किया गया। साथ ही, संशोधित वन नीति 1988 ही वनों की सुरक्षा, संरक्षण और विकास का आधार है। इसे पुनः सन् 1990 तथा 1998 में संशोधित किया गया।

राष्ट्रीय 'वन जीवन कार्य योजना' : यह वन्य जीव संरक्षण के लिए कार्यनीति एवं कार्यक्रम की रूप-रेखा प्रस्तुत करती है।

'भारतीय वन्य जीवन बोर्ड' : वन्य जीवन संरक्षण की अनेक योजनाओं के क्रियान्वयन, निगरानी एवं निर्देश करने वाला शीर्ष सलाहकारी निकाय है। प्रधानमंत्री भारतीय वन्य जीवन बोर्ड के पदेन अध्यक्ष होते हैं।

'ईको मार्क' : ऐसे उपभोक्ता उपाय, जो पर्यावरण के अनुकूल होते हैं, उन्हें सन् 1992 से 'ईको मार्क' से चिह्नित किया जा रहा है।

यदि पर्यावरणीय कानून की बात की जाए तो हम निम्न निष्कर्ष पर पहुंचते हैं—

1. सन् 1972 में देश में वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम लागू किया गया।

2. भारत में जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम सन् 1981 में बनाया गया।

3. वन संरक्षण अधिनियम का आरंभ सन् 1980 में किया गया।

4. वायु प्रदूषण अधिनियम (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) सन् 1981 में बनाया गया।

5. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम का गठन सन् 1986 में चार अध्याय तथा 26 धाराओं में विभाजित कर बनाया गया।

6. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम के अंतर्गत अधिनियम की किसी भी व्यवस्था को प्रथम बार तोड़ने पर पांच वर्ष की कैद अथवा एक लाख रुपया जुर्माना अथवा दोनों का प्रावधान है।

7. उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय में भारतीय नागरिक सीधे ही पर्यावरण संबंधी वाद दायर कर सकते हैं।

8. 42वें संविधान संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण संबंधी प्रावधान जोड़े गए।

9. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 किसी व्यक्ति की उस गतिविधि से सुरक्षा करता है, जिससे उसकी जीव, स्वास्थ्य और शरीर की हानि पहुंचती है।

10. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48A में सरकार पर्यावरण संरक्षण और सुधार करने हेतु बाध्य है।

11. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 अ(G) के तहत पर्यावरण का संरक्षण हर नागरिक का मूल कर्तव्य माना गया है।

12. अंतर्राष्ट्रीय कानून का नाम नहीं है (CITTES) लुप्त हो रही प्रजातियों से संबंधित है।

13. जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) उपकर (संशोधन) बिल 1991 द्वारा पिछले बने अधिनियम में उद्योगों द्वारा जल उपयोग पर अधिक उपकर की व्यवस्था की गई है।

14. भारत में जल प्रदूषण संबंधी प्रथम अधिनियम और न्यूसेंस (मुंबई एवं कोलकाता) अधिनियम 1853 में बना।

15. जन हितवाद के अंतर्गत पारिस्थितिकी असंतुलन के दूनधारी खनन केस का भारत के उच्चतम न्यायालय ने जनता के हित में निर्णय दिया था।

16. जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 का संशोधन 1978 में किया गया।

17. लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991 की परिसंकटमय रसायन उद्योगों के कारण दुर्घटनाओं का शिकार होने वाले लोगों को तत्काल राहत प्रदान करने के लिए पारित किया गया।

उपरोक्त पर्यावरणीय कानूनों का शत-प्रतिशत पालन किया जाए तो देश में पर्यावरण संकट की समस्या को सरलतापूर्वक सुलझाया जा सकता है।

संदर्भ

1. भूगोल, डॉ. चतुर्भुज ममोरिया, डॉ. बी.एल. शर्मा, 2009, साहित्य भवन पब्लिकेशंस।
2. राजनीति विज्ञान, डॉ. बी.एल. कड़िया, 2004, साहित्य भवन पब्लिकेशंस।
3. पर्यावरण प्रदूषण और प्रबंधन, अशोक प्रधान, नीलकंठ प्रकाशन, महरौली, नयी दिल्ली।
4. भौतिक भूगोल, डॉ. सविंद्र सिंह, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।

सहायक प्राध्यापक हिंदी
कला एवं वाणिज्य कन्या महाविद्यालय,
देवेंद्रनगर, रायपुर (छ.ग.)

पर्यावरण प्रदूषण : प्रकार, नियंत्रण एवं उपाय

डॉ. सविता मिश्रा

प्रकृति और मनुष्य का संबंध पुराना है। पर्यावरण और जीवन की अभिन्नता से सभी परिचित हैं। पर्यावरण की स्वच्छता, निर्मलता और संतुलन से ही संसार को बचाया जा सकता है। कोई भी कविता प्रकृति के बिना संभव नहीं है। प्राचीन साहित्य में कवियों की कविताओं में प्रकृति भरी पड़ी है। तुलसीदासजी की यह पंक्ति निरक्षरों तक को याद है—

बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे
खल के बचन संत सहे जैसे।

प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों की जीवन में क्या उपयोगिता है? इसका ज्ञान वैदिककाल में ही हो गया था। उपनिषदों की एक कथा के अनुसार, ज्ञान-विज्ञान एवं विकसित संसाधनों के होने पर भी मनुष्य का चिंतित और दुःखी रहना तथा ज्ञान-विज्ञान संसाधनों के नितांत अभाव में मनुष्येतर जीवों का निश्चिंत एवं मस्त रहना एक ऐसा तथ्य था, जिसकी ओर ऋषियों का ध्यान आकृष्ट हुआ और उन्होंने इस पर गंभीरतापूर्वक चिंतन कर जो निष्कर्ष निकाले, उनका सार इस प्रकार है—

"धरती हमें मां के समान सुविधा एवं सुरक्षा देती है। अतः धरती मेरी मां है और मैं उसका पुत्र हूं।"

—*अथर्ववेद*

"अग्नि, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा, औषधि एवं वनस्पति आदि सब देवता हैं। जो प्रत्युपकार की इच्छा के बिना सदा हमारी सहायता कर है, वह देवता होता है। इन सभी देवताओं के साथ हमें भावनात्मक संबंध रखना चाहिए।"

—*यजुर्वेद*

"इस ब्रह्मांड में प्रकृति सबसे शक्तिशाली है, क्योंकि यही सृजन एवं विकास और यही ह्रास तथा नाश करती है। अतः प्रकृति के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए।"

—*ऋग्वेद*

प्राचीनकाल से हम यह चिंतन के अनुसार सुनते आए हैं कि जीव पंचभूतों (जल, पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि) का सम्मिश्रण है। इस एक में से किसी की भी सत्ता डगमगा गई तो इसका हश्र क्या होगा, यह सभी जानते हैं। फिर यह अज्ञानता क्यों? पढ़-लिखकर भी मनुष्य अज्ञानी बनकर स्वार्थ तक सिमट गया है। वह इन तत्वों के प्रति छेड़छाड़ को गंभीरता से क्यों नहीं ले रहा है। जहां हम कहते जा रहे हैं कि हम भौतिक सुख-संपदा में

आगे बढ़ रहे हैं, वहां उसके कुत्सित परिणाम का दमन क्यों भूल रहे हैं। जब तक किसी भी वस्तु, आविष्कार, खोज के गुण-दोष को नहीं टटोलेंगे, तब तक आगे बढ़ना हमारे लिए पीछे हटने के बराबर है। पर्यावरण का ध्यान रखते हुए हम आगे बढ़े, तभी वह हमारे लिए सही अर्थों में आगे बढ़ना है।

वैदिक ज्योतिष के प्रवर्तक महर्षि पाराशर के अनुसार, 'मनुष्य और उसके जीवन में स्वार्थ की भूमिका होती है, किंतु व्यक्ति का स्वार्थ तभी कल्याणकारी होता है, जब वह सर्वार्थ का साधन बनकर उसमें विलीन हो जाए। स्वार्थ का सर्वार्थ में विलय होते ही रामराज्य का सपना साकार हो जाता है। इस भू-मंडल और मानव जाति को प्रदूषण से बचाने के लिए हमें अपने क्षुद्र स्वार्थ को छोड़कर सर्वार्थ की बांह थामनी होगी।

वैदिक चिंतनधारा के अनुसार भी हम पर्यावरण संरक्षण भौतिक या अजैविक एवं जैविक सीख पाते हैं। पर्यावरण के प्रकार को हम इस तरह अलग कर पाते हैं–

1. भौतिक या अजैविक–इसके अंतर्गत भौतिक शक्तियां आती हैं। जैसे–मिट्टी, पानी, रोशनी, तापक्रम, वायु, आर्द्रता, वर्षा आदि। भौतिक पर्यावरण की शक्तियां जीवों में बाह्य परिवर्तन करती हैं। मिट्टी, पानी, वायु अजैविक माध्यम के घटक हैं, जिनमें जीव रहते हैं। वायु, तापमान, रोशनी की अवधि, आर्द्रता, वर्षा, बर्फ आदि किसी भी स्थान की जलवायु, उसकी भौगोलिक स्थिति का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यही भौतिक पर्यावरण है। सोचने का विषय है कि इन सबमें किसी भी प्रकार का प्रदूषण पर्यावरण को प्रदूषित कर देता है, जो संपूर्ण प्राणीजगत् यहां तक कि वनस्पतियों के लिए भी हानिकारक सिद्ध होता है।

2. जैविक पर्यावरण–जैविक पर्यावरण के अंतर्गत अनेक जीव आते हैं। जो भौतिक पर्यावरण में रहते हैं। जीवों का आंतरिक वातावरण भी इसके अंतर्गत आता है। जैविक पर्यावरण का प्रारंभ प्रत्येक कोशिका की रासायनिक व आनुवांशिक संरचना से होता है। वृद्धि, विकास, प्रजनन आदि क्रियाएं जीव द्वारा नियंत्रित रहती हैं। इस आंतरिक वातावरण में कोई भी रूपांतरण अंतिम रूप से जीव की क्रियाओं को परिवर्तित करता है। सभी जीव तथा उनकी अंतरसंबंधी क्रियाएं एवं प्रतिक्रियाएं, जो प्रत्येक जीव एक-दूसरे पर अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करते हैं, जैविक पर्यावरण के अंतर्गत आते हैं।

"पृथ्वी का अस्तित्व बचाने के लिए जल तथा पर्यावरण प्रदूषण को हर तरह से रोकना होगा, नहीं तो लोगों के सामने इसका भयावह परिणाम आ सकता है। यह निष्कर्ष सिहावा भवन में हुई स्वयंसेवी संस्थाओं की विचार संगोष्ठी में निकला जो सन् 2007 में आयोजित की गई थी।"[1]

भारतवर्ष में कभी गाय के दूध की नदियां बहा करती थीं या 'गंगा तेरा पानी अमृत' ये पौराणिक आख्यान दशकों से मुंबइया फिल्मों का स्थायी भाव बने हुए हैं, जबकि गत 25 वर्षों में हरिद्वार पहुंचते ही गंगा का जल जहरीले रसायन में बदल चुका है तो कानपुर तक आते-आते गंगा किसी भी शहर के गंदे नाले का रूप धारण कर चुकी है। और गऊ माता कूड़े के ढेर में मुंह मार रही है। कभी जहां उसे खाने को प्रकृति की देन यानी दोने-पत्तल या फल-सब्जियों के छिलके मिल जाया करते थे, उन ढेरों से अब उसे पॉलीथिन में भरा सामान खाने को मिल रहा है, जो अंतड़ियों में फंसकर उसे तड़प-तड़पकर मरने को मजबूर कर रहा है।

पर्यावरण विशेषज्ञ डॉ. अविनाश वोरा के मुताबिक, ''जापान में हिरोशिमा और नागासाकी परमाणु दुर्घटना के बाद वहां के पर्यावरण से न केवल कीटों की, बल्कि पेड़-पौधों की सैकड़ों प्रजातियां लुप्त हो गईं। परमाणु बम परीक्षण या विस्फोट से पृथ्वी के तापमान में हजारों डिग्री तापमान का अंतर आ जाता है। जिस तरह इतने तापमान में मनुष्य और पशु-पक्षी अपना अस्तित्व नहीं बचा सकते, उसी तरह पेड़-पौधों पर भी इसका बहुत बुरा असर पड़ता है। उन्होंने बताया कि पेड़-पौधों पर भी इसका बुरा असर पड़ता है। हालांकि इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाता, लेकिन यह सच है कि जापान की त्रासदी के बाद वहां पेड़-पौधों की हजारों प्रजातियां लुप्त हो गई हैं।''[2]

5 नवंबर, 2001 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने हर साल 6 नवंबर को 'इंटरनेशनल डे फॉर प्रिवेंटिंग द एक्सप्लॉयटेशन ऑफ द एनवायरमेंट इन वार एंड आर्म्ड कंफ्लिक्ट' के रूप में मनाने की घोषणा की थी। इसका उद्‌देश्य युद्ध और सशस्त्र संघर्ष के दौरान पर्यावरण को होने वाले नुकसान को रोकना था।

विकास के पथ पर मानव जैसे-जैसे आगे बढ़ा है, सीख की बहुत-सी बातों को पीछे छोड़ता गया है। पर्यावरण के जितने भी प्रकार हैं, उनको कैसे बचाया जाए, यह समस्या आज ज्वलंत है। पृथ्वी का अस्तित्व बचाने के लिए जल-प्रदूषण को हर तरह से रोकना होगा। नहीं तो लोगों के सामने इसका भयावह परिणाम आ सकता है। पर्यावरण के लाभ और उसके महत्व को ध्यान में रखकर वनों के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया है। यह राष्ट्रीय संपदा का मूल स्रोत है। साथ ही देश की अर्थव्यवस्था वनों से प्राप्त कच्चे माल पर निर्भर होती है। उनसे इमारती लकड़ी, आयुर्वेदिक औषधियां, पशुओं के लिए चारा, भूमि के कटाव पर रोक, शुद्ध व ताजी हवा, प्राकृतिक सुंदरता, वर्षा में सहायक एवं अतिवृष्टि के कारण नदियों में आई भयानक बाढ़ वनाच्छादित क्षेत्रों से होकर गुजरती है, उनका प्रलय वेग कम हो जाता है। हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हम एकजुट होकर पर्यावरण का संरक्षण करें। पर्यावरण की समृद्धि में वृहद् वृक्षारोपण करना होगा। इसके लिए नागरिकों को आर्थिक व तकनीकी सहायता दी जानी चाहिए।

आचार्य रजनीश ने कहा था, ''मानव जीवन प्रकृति पर आश्रित है। प्रकृति के साथ दुश्मन की तरह नहीं, वरन् दोस्त की तरह काम करना शुरू करो। और पर्यावरण फिर से सावयव एकता की भांति काम करने लगेगा।''[3] हम दिनोंदिन पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति लापरवाह होते जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप भविष्य में घातक परिणाम हो सकते हैं। पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होकर अगर ध्यान न दें तो जन-जीवन के लिए परिणाम घातक हो सकते हैं। इसके लिए निम्न कार्य किए जाने आवश्यक है—

1. वृक्षारोपण कार्यक्रम—वृक्षारोपण कार्यक्रम युद्धस्तर पर चलाना चाहिए। परती भूमि, पहाड़ी क्षेत्र, ढलान क्षेत्र सभी जगह पौधा रोपण जरूरी करना है। तभी लगातार जंगल कट रहे है, जिससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ा है, वह संतुलन बनेगा। तभी वनस्पति सुरक्षित रह सकती है। वन-संपदा पर्यावरण के लिए आवश्यक है—

बूढ़े वृक्ष कट रहे हैं,
हमें काटो या छांटों,

लेकिन समूल नष्ट मत करो,
यूं बिखर जाएगी सृष्टि तुम्हारी
हमसे ही है जीवन तुम्हारा,
क्षणिक इस पर विचार करो।

2. प्रयोग की वस्तु दोबारा इस्तेमाल करें–डिस्पोजल, ग्लास, नैपकिन, रेजर आदि का उपयोग दुबारा किया जाना चाहिए, क्योंकि इसका दुष्परिणाम पर्यावरण पर पड़ता है। जहां तक संभव हो हम ऐसी वस्तु का प्रयोग न करें, जिसका बुरा प्रभाव जैविक हो। जिसके परिणामस्वरूप अनेक जीव-जंतु नष्ट हो जाए एवं अनेक रोगाणु पनप जाएं।

3. भू-जल संबंधी उपयोगिता का मापदंड–नगर विकास, औद्योगिक शहरी विकास के चलते पिछले कुछ समय से नगर में भू-जल स्रोतों का तेजी से दोहन हुआ। एक ओर जहां उपलब्ध भू-जल स्तर में गिरावट आई है, वहीं उसमें गुणवत्ता की दृष्टि से भी अनेक हानिकारक अवयवों की मात्रा बढ़ी है।

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि सिसक रहे हैं सभी
चहुं ओर प्रदूषण है, दैत्याकार पर्यावरण अभी।

शहर के अधिकतर क्षेत्रों के भू-जल में विभिन्न अवयवों की मात्रा, मानक मात्रा से अधिक देखी गई है। 35.5 प्रतिशत नमूनों में कुल घुलनशील पदार्थों की मात्रा से अधिक देखी गई, इसकी मात्रा 900 मि.ग्रा. प्रति लीटर अधिक देखी गई। इसमें 23.5 प्रतिशत क्लोराइड की मात्रा 250 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक थी। 50 प्रतिशत नमूनों में नाइट्रेट, 96.6 प्रतिशत नमूनों में अत्यधिक कठोरता विद्यमान थी।[4]

4. पॉलीथिन का बहिष्कार करें–पर्यावरण संरक्षण के लिए पॉलीथिन का बहिष्कार आवश्यक है। दुकानदारों से पॉलीथिन पैकिंग में सामान न लें। आस-पास के लोगों को पॉलीथिन से उत्पन्न खतरों से अवगत कराएं।

5. कूड़ा-कचरा जलाएं–कूड़ा-कचरा एक जगह पर फेंके। ग्रामीण-जन के समान सब्जी, छिलके, अवशेष, सड़ी-गली चीजों को एक जगह एकत्र करके वानस्पतिक खाद तैयार करते थे। उसी तरह पेड़ की पत्तियों को जलाकर उर्वरक तैयार किया जा सकता है।

6. गंदगी न फैलाएं–रास्ते में कूड़ा-कचरा न फैलाएं। घर की स्वच्छता की तरह बाहर रास्ते की सफाई को भी अभिन्न अंग मानते हुए सफाई करें। प्रति सप्ताह सफाई अभियान को ध्यान में रखते हुए माहौल को साफ रखें।

7. कागज की कम खपत–रद्दी कागज को रफ कार्य करने, लिफाफे बनाने, पुनः कागज तैयार करने के काम में प्रयोग करें। अखबारों को रंगकर गिफ्ट पैक बना लें।

'जैसे-जैसे विकास की रफ्तार बढ़ रही है, जीवन-यापन भी कठिन होता जा रहा है, लेकिन फिर भी शरीर से नित नयी व्याधियां जन्म ले रही हैं। आश्चर्य तो यह है कि पुराने समय में जब सुबह से शाम तक लोग प्रत्येक काम अपने हाथों में करते थे, तब वातावरण कुछ और था, पर्यावरण संरक्षित था। इसी को हमें ध्यान में रखना होगा।'[5]

प्रदूषण की मात्रा इतनी अधिक बढ़ती जा रही है कि इंसान चंद सांसें भी सुकून से लेने को तरसने लगा है।

संदर्भ

1. दैनिक भास्कर, 22 अप्रैल, 2007
2. हरिभूमि, 8 नवंबर, 2010
3. नवभारत, 20 अक्टूबर, 1992
4. पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स, सितंबर, 2000, पृ. 431
5. पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स, मार्च, 1999, पृ. 37

प्राध्यापक (हिंदी)
शा.दू.ब. महिला महाविद्यालय,
रायपुर, (छ.ग.)

पर्यावरण-प्रदूषण : नियंत्रण के उपाय

डॉ. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर

प्रकृति में उपस्थित सभी प्रकार के जीवधारी अपनी वृद्धि, विकास तथा सुव्यवस्थित एवं सुचारू जीवन-चक्र को चलाते हैं। इसके लिए उन्हें 'संतुलित वातावरण' पर निर्भर रहना पड़ता है। वातावरण का एक निश्चित संगठन होता है तथा उसमें सभी प्रकार के जैविक एवं अजैविक पदार्थ एक निश्चित अनुपात में पाए जाते हैं। ऐसे वातावरण को 'संतुलित वातावरण' कहते हैं। कभी-कभी वातावरण में एक या अनेक घटकों की प्रतिशत मात्रा किसी कारणवश या तो कम हो जाती है अथवा बढ़ जाती है अथवा वातावरण में अन्य हानिकारक घटकों का प्रवेश हो जाता है, जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण हो जाता है। यह प्रदूषित पर्यावरण जीवधारियों के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है। यह हवा, पानी, मिट्टी, वायुमंडल आदि को प्रभावित करता है। इसे ही 'पर्यावरण प्रदूषण' कहते हैं।

'इस प्रकार पर्यावरण प्रदूषण, वायु, जल एवं स्थल की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में होने वाला वह अवांछनीय परिवर्तन है, जो मानव एवं उसके लिए लाभकारी तथा अन्य जंतुओं, पेड़-पौधों, औद्योगिक तथा दूसरे कच्चे माल इत्यादि को किसी भी रूप में हानि पहुंचाता है।'

दूसरे शब्दों में, 'पर्यावरण के जैविक एवं अजैविक घटकों में होने वाला किसी भी प्रकार का परिवर्तन 'पर्यावरण प्रदूषण' कहलाता है।'

'प्रदूषण एक प्रकार का अत्यंत धीमा जहर है, जो हवा, पानी, धूल आदि के माध्यम से न केवल मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उसे रुग्ण बना देता है, वरन् जीव-जंतुओं, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और वनस्पतियों को भी सड़ा-गलाकर नष्ट कर देता है। आज अर्थात् प्रदूषण के कारण ही विश्व में प्राणियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। इसी कारण बहुत से प्राणी, जीव-जंतु, पशु-पक्षी, वन्य प्राणी इस संसार से विलुप्त हो गए हैं, उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। यही नहीं प्रदूषण अनेक भयानक बीमारियों को जन्म देता है। कैंसर, तपेदिक, रक्तचाप, शुगर, एंसीफिलायटिस, स्नोलिया, दमा, हैजा, मलेरिया, चर्मरोग, नेत्ररोग और स्वाइन फ्लू, जिससे सारा विश्व भयाक्रांत है, इसी प्रदूषण का प्रतिफल है। आज पूरा पर्यावरण बीमार है। हम आज बीमार पर्यावरण में जी रहे हैं, अर्थात् हम सब किसी-न-किसी बीमारी से ग्रसित हैं। आज सारे संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो बीमार न हो। प्रदूषण के कारण आज बहुत बड़ा संकट उपस्थित हो गया है। यूरोप के यंत्र-प्रधान देशों में तो वैज्ञानिकों ने बहुत पहले ही इसके विरुद्ध चेतावनी देनी शुरू

कर दी थी, परंतु उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। फलतः आज सारा विश्व इसके कारण चिंतित है। सन् 1972 में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, इस समस्या के निदान के लिए विश्व के अनेक देशों ने मिलकर विचार किया, जिसमें भारत भी सम्मिलित था।

विज्ञान का उपयोग, प्रकृति का अंधाधुंध दोहन, अवैध खनन, गलत निर्माण तथा विनाशकारी पदार्थों के लिए किया जा रहा है। इससे वातावरण प्रदूषित होता जा रहा है। प्रकृति और प्राणीमात्र का जीवन संकट में पड़ गया है। पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले अनेक प्रमुख प्रदूषक हैं, इन पर चर्चा करने से पहले हम यह जान लें कि प्रदूषक पदार्थ किसे कहते हैं?

प्रदूषक पदार्थ (Pollutants)

प्रदूषण के लिए उत्तरदायी पदार्थों को प्रदूषक (Pollutants) पदार्थ कहते हैं। प्रदूषक वे पदार्थ हैं, जिन्हें मनुष्य बनाता है, उपयोग करता है और अंत में शेष भाग को या शेष सामग्री को जैवमंडल या पर्यावरण में फेंक देता है। इसके अंतर्गत रासायनिक पदार्थ, धूल, अवसाद (Sediment) तथा ग्रिट (Grit) पदार्थ, जैविक घटक तथा उनके उत्पाद, भौतिक कारक जैसे ताप (Heat) आदि सम्मिलित हैं, जो पर्यावरण पर कुप्रभाव डालते हैं।

परिभाषा–कोई ठोस, तरल या गैसीय पदार्थ, जो इतनी अधिक सांद्रता (Concentration) में उपस्थित हो कि पर्यावरण के लिए क्षतिपूर्ण कारक (Injurious) हो, प्रदूषक कहलाता है। जिन वस्तुओं का हम उपयोग कर एवं निर्माण पश्चात् शेष को फेंक देते हैं, अर्थात् फेंके हुए अवशेष (Residue) प्रदूषक कहलाते हैं।

पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले प्रमुख पदार्थ हैं–

1. **जमा हुए पदार्थ जैसे**–धुआं, धूल, ग्रिट, घर आदि।
2. **रासायनिक पदार्थ जैसे**–डिटर्जेंट्स, आर्सीन्स, हाइड्रोजन, फ्लुओराइड्स, फॉस्जीन आदि।
3. **धातुएं जैसे**–लोहा, पारा, जिंक, सीसा।
4. **गैसें जैसे**–कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, अमोनिया, क्लोरीन, फ्लोरीन आदि।
5. **उर्वरक जैसे**–यूरिया, पोटाश एवं अन्य।
6. **वाहित मल जैसे**–गंदा पानी।
7. **पेस्टीसाइड्स जैसे**–डी.डी.टी., कवकनाशी, कीटनाशी।
8. ध्वनि।
9. ऊष्मा।
10. रेडियोएक्टिव पदार्थ।

प्रदूषकों के प्रकार (Types of Pollutants)

प्रदूषक मुख्य दो प्रकार हैं–

1. अक्षयकारी प्रदूषक (Non-Degradable Pollutants)–इनके अंतर्गत वे प्रदूषक आते हैं, जो या तो अपघटित नहीं होते या प्रकृति में इनका निम्नीकरण

(Degradation) बहुत धीमी गति से होता है। जैसे—एल्यूमीनियम, मरक्यूरिक लवण, लंबी शृंखला वाले फेनोसिक्स तथा D.D.T. आदि।

2. जैव निम्नीकरण या क्षयकारी योग्य प्रदूषक (Biodegradable Pollutants)—यह घरेलू उपार्जक पदार्थ होते हैं, जिनका विघटन प्रकृति में आसानी से हो जाता है। जब ये पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं, तब अनेक समस्याएं उत्पन्न करते हैं।

प्रदूषण के प्रकार (Types of Pollutions)

प्रदूषण निम्न प्रकार के होते हैं—1. वायु प्रदूषण, 2. जल प्रदूषण, 3. ध्वनि प्रदूषण, 4. मृदा प्रदूषण, 5. रेडियोधर्मी प्रदूषण, 6. तापीय प्रदूषण, 7. समुद्री प्रदूषण।

1. वायु प्रदूषण (Air Pollution)

वायुमंडल में विभिन्न प्रकार की गैसें एक निश्चित अनुपात में पाई जाती हैं। वायुमंडल में विभिन्न घटकों में मौलिक, रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाले अवांछनीय परिवर्तन, जो जैवमंडल को किसी-न-किसी रूप में दुष्प्रभावित करते हैं, संयुक्त रूप से वायु प्रदूषक कहलाते हैं तथा वायु के प्रदूषित होने की यह घटना वायु प्रदूषण कहलाती है।

वायु प्रदूषण के कारण एवं स्रोत (Causes and Sources & Air Pollution)—वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण तथा उसके स्रोत निम्नानुसार हैं—

1. **स्वचालित वाहन एवं मशीनें (Automobiles and Machines)**—स्वचालित वाहनों जैसे—मोटर, ट्रक, बस, विमान, ट्रैक्टर तथा अन्य प्रकार की अनेक मशीनों में डीजल, पेट्रोल, मिट्टी का तेल आदि के जलने से कार्बन डाई ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन, अदग्ध हाइड्रोकार्बन, सीसा व अन्य विषैली गैसें वायु में मिलकर उसे प्रदूषित करती हैं। विषैले वाहक निर्वात (Vehicular Exhausts) वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं।
2. **औद्योगिक कल-कारखानें (Industrial Factories)**—कारखानों की चिमनियों से निकले धुएं में सीसा, पारा, जिंक, कॉपर, कैडमियम, आर्सेनिक एवं एस्बेस्टस आदि के सूक्ष्मकण तथा कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, हाइड्रोजन-फ्लोराइड जैसी गैसें होती हैं, जो जीवधारियों के लिए अत्यधिक हानिकारक होती हैं। पेट्रोलियम रिफाइनरी वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं, जिनमें SO_2 (सल्फर डाइऑक्साइड) तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड (CO_2) प्रमुख हैं।
3. **धुआं एवं ग्रिट (Smoke and Grit)**—ताप बिजलीघरों, कारखानों की चिमनियों एवं घरेलू ईंधन को जलाने से धुआं निकलता है। धुएं में अदग्ध कारखानों के सूक्ष्मकण, विषैली गैसें, जैसे—हाइड्रोकार्बन, कार्बन डाई ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड होते हैं, जो विषैली होती हैं, जो कई प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।
4. **धूल (Dust)**—औद्योगिक इकाइयों से संबंधित खदानों जैसे—लौह-अयस्क तथा कोयले के खदानों की धूल से पर्यावरण प्रदूषित होता है तथा रोग उत्पन्न होते हैं।

वायुमंडल में उत्सर्जित विभिन्न प्रकार के प्रदूषक (Various Polltutants)–विभिन्न प्रकार के प्रमुख प्रदूषक जो अनेक क्षेत्रों से वायुमंडल में उत्सर्जित किए जाते हैं, उनमें निम्नलिखित प्रदूषक हैं–

1. **कार्बन यौगिक (Carbon Compounds)**–इसमें कार्बन मोनो ऑक्साइड तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड प्रमुख हैं।
2. **सल्फर यौगिक (Sulpher Compounds)**–ये सल्फर डाइ ऑक्साइड (SO_2), हाइड्रोजन (H_2) तथा (H_2SO_4) आदि प्रमुख हैं।
3. **नाइट्रोजन ऑक्साइड (Nitrogen Oxides)**–इसमें मुख्य रूप से नाइट्रोजन ऑक्साइड ही रहते हैं, जैसे–NO, NO_2 or HNO_3
4. **ओजोन (O_3)**–इसका स्तर मानव क्रियाओं द्वारा बढ़ सकता है।
5. **फ्लोरो कार्बन (Fluo Carbons)**–ये गैसें विभिन्न उद्योगों द्वारा कीटनाशकों के छिड़काव द्वारा हवा में मिलते हैं।
6. **हाइड्रोकार्बन (Hydrocarbons)**–यह मुख्य रूप से बेन्जीन, बेन्जीपायरीन आदि होते हैं, जो विभिन्न उद्योगों द्वारा एवं स्वचालित वाहनों द्वारा वायु में छोड़े जाते हैं।
7. **धातुएं (Metals)**–कुछ धातुएं, जैसे–सीसा, निकल, आर्सेनिक, बेरीलियम, टिन, बेनेडियन, टिटेनियम तथा कैडमियम के ठोस कण, द्रव की बूंदें या गैसें हवा में मिल जाते हैं।
8. **प्रकाश, रासायनिक पदार्थ (Photo Chemical Produce)**–यह स्वचालित वाहनों से उत्सर्जित होकर वायु में मिलते हैं। जैसे–धुआं (smog), PAN, PB_2N आदि।
9. **विशिष्ट पदार्थ (Particular Matter)**–यह पदार्थ पॉवर प्लांट्स, स्टोन क्रशर्स तथा उद्योगों द्वारा उड़ाए जाने वाली धूल, ग्रिट आदि होते हैं, जो वायु में मिल जाते हैं और प्रदूषित करते हैं।
10. **टोक्सीकेंट्स (Toxicants)**–यह रासायनिक पदार्थ अन्य वस्तुओं के साथ वायु में मिल जाते हैं और वायु को प्रदूषित कर देते हैं।

वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय (Controlling Measures of Air Pollution)–वायु प्रदूषण की रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए निम्नलिखित विधियां अपनाई जाती हैं–

1. मानव जनसंख्या वृद्धि को रोकने का प्रयास करना चाहिए।
2. नागरिकों या आम जनता को वायु प्रदूषण के कुप्रभावों का ज्ञान कराना चाहिए।
3. धूमपान पर नियंत्रण लगा देना चाहिए।
4. कारखानों के चिमनियों की ऊंचाई अधिक रखनी चाहिए।
5. कारखानों के चिमनियों में फिल्टरों का उपयोग करना चाहिए।
6. मोटरकारों और स्वचालित वाहनों को ट्यूनिंग करवाना चाहिए ताकि अधजला धुआं बाहर नहीं निकल सकें।
7. अधिक-से-अधिक वृक्षारोपण करना चाहिए।
8. उद्योगों की स्थापना शहरों एवं गांवों से दूर करनी चाहिए।

9. अधिक धुआं देने वाले स्वचालितों पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए।
10. सरकार द्वारा प्रतिबंधात्मक कानून बनाकर उल्लंघन करने वालों पर कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए।

2. जल प्रदूषण (Water Pollution)

जल ही जीवन है। जल है तो कल है। जल जीवधारियों के लिए प्रकृति में उपलब्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण यौगिक है। हमारे शरीर का लगभग 60 से 80 प्रतिशत भाग जल का बना होता है। हम इस जल को प्रकृति से शुद्ध रूप में प्राप्त करते हैं। आज विश्व की जनसंख्या में लगातार वृद्धि, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण आदि के कारण शहरों एवं औद्योगिक इकाइयों द्वारा कई प्रकार के हानिकारक पदार्थ जल के साथ बहा दिए जाते हैं, जो नदी, नाले, झरने, तालाब, बांध, झील और समुद्र में पहुंचकर वहां पर उपस्थित जल को प्रदूषित कर देते हैं।

इस प्रकार के भौतिक एवं रासायनिक संगठन में परिवर्तन हो जाता है और वह जीवधारियों के लिए अनुपयोगी हो जाता है। इसे ही जल प्रदूषण कहते हैं।

जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत, कारण एवं प्रभाव (Main Sources Cause and Effects of Water Pollution)– जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत अधोभांति हैं–

1. **वाहित मल (Domestic Water and Sewage)**–हमारे घरों में बहुत से अपशिष्ट एवं अनुपयोगी पदार्थ होते हैं, जो जल में छोड़ दिए जाते हैं, जैसे– मानव मल, कागज, डिटरजेंट्स, साबुन, कपड़ा एवं बर्तन धोया हुआ पानी आदि। ये भूमिगत नालियों द्वारा नदियों, झीलों और तालाबों में पहुंच जाते हैं, जिससे वहां का जल प्रदूषित हो जाता है, जो अनेक प्रकार के बीमारियों को जन्म देते हैं, जैसे–हैजा, टायफाइड, चर्मरोग आदि। इसके साथ-ही-साथ जलवीय जीव भी रोग ग्रस्त होकर मर जाते हैं। जैसे–मछली, मगरमच्छ आदि।
2. **औद्योगिक बहिस्रावी पदार्थ (Industrial Effluents)**–औद्योगिक इकाइयों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ, वार्निस, तेल, ग्रीस अम्ल आदि पदार्थ बहा दिए जाते हैं, जो नदी, तालाब, झील आदि में पहुंचकर वहां के जल को प्रदूषित कर देते हैं। इनमें मुख्य प्रदूषक तेल, ग्रीस, प्लास्टिक, प्लास्टीसाइजर्स, धात्विक अपशिष्ट, निलंबित ठोस, फीनोलस, टोक्सिंस, अम्ल, लवण, रंग, सायनाइड तथा डी.डी.टी. आदि हैं। कोयले की खानों से निकला H_2SO_4 भयंकर प्रदूषक होता है। साथ में अन्य धातुएं भी जल में मिलकर उसे प्रदूषित करते हैं, जैसे–तांबा, शीशा, सोडियम, पारा आदि।
3. **कृषि विसर्जित पदार्थ (Agricultural Discharge)**–कृषि के लिए अनेक प्रकार के उर्वरक तथा कीटनाशक पदार्थों का उपयोग किया जाता है, जो जल में मिलकर उसे प्रदूषित करते हैं।
4. **कार्बनिक पदार्थ एवं कीटनाशी (Organic Matter and Pesticides)**– इसके अंतर्गत कीटनाशी (Pesticides) अनेक औद्योगिक अपशिष्ट, तेल अथवा अन्य कार्बनिक अपघटित पदार्थ आते हैं। ये जल में पहुंचकर विषैला प्रभाव डालते हैं।

कीटनाशकों में डी.डी.टी. डीलड्रीन, वी.एच.सी., वी.सी.बी.एस. तथा बेंजिन यौगिक आदि हैं। ये भूमि की उपजाऊ शक्ति को कम कर देते हैं तथा पौधों, पत्तियों, फलों, सब्जियों द्वारा मनुष्य तथा जानवर तक पहुंचकर भोजन द्वारा उनके शरीर में पहुंचते हैं तथा उन्हें रोगी बना देते हैं।

5. **रासायनिक उद्योगों, ताप विद्युत-गृहों एवं नाभिकीय ऊर्जा केंद्रों के अपशिष्ट पदार्थ (Wastage)**–इनमें से निकले हुए अपशिष्ट पदार्थ, अकार्बनिक रासायनिक पदार्थ, जल में मिलकर मानव के साथ-साथ जलीय जीवों को हानि पहुंचाते हैं।

   इसके अतिरिक्त ताप (Heat) रेडियोएक्टिव पदार्थ भी प्रमुख प्रदूषक होते हैं। थर्मल एवं न्यूक्लियर पॉवर स्टेशनों से छोड़े गए पानी नदी और झीलों में पहुंचकर जलीय जीवों एवं मनुष्यों को रोगी बनाते हैं। इसे 'तापीय प्रदूषण' (Thermal Pollution) कहते हैं।

जल प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Water Pollution)–जल प्रदूषण पर निम्नलिखित उपायों से नियंत्रण किया जा सकता है–

1. वाहित मल को नदियों में छोड़ने के पूर्व कृत्रिम तालाबों में रासायनिक विधि द्वारा उपचारित करना चाहिए।
2. अपमार्जनों का कम-से-कम उपयोग होना चाहिए। केवल साबुन का उपयोग ठीक होता है।
3. कारखानों से निकले हुए अपशिष्ट पदार्थों को नदी, झील एसवं तालाबों में नहीं डालना चाहिए।
4. घरेलू अपमार्जकों को आबादी वाले भागों से दूर जलाशयों में डालना चाहिए।
5. जिन तालाबों का जल पीने का काम आता है, उसमें कपड़े, जानवर आदि नहीं धोने चाहिए।
6. नगरों व कस्बों के सीवेज में मल-मूत्र, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ तथा जीवाणु होते हैं। इसे आबादी से दूर खुले स्थान में सीवेज को निकाला जा सकता है या फिर इसे सेप्टिक टैंक, ऑक्सीकरण ताल तथा फिल्टर बैड आदि काम में लाए जा सकते हैं।
7. बिजली या ताप गृहों से निकले हुए पानी को स्प्रे पाण्ड या अन्य स्थानों से ठंडा करके पुनः उपयोग में लाया जा सकता है।

वायु जल प्रदूषण नियंत्रण करने में संशोधन (Amendments in Air and Water Acts)–वायु प्रदूषण का निवारण तथा नियंत्रण एक्ट 1981 में संशोधन किया गया है। 1987 में क्रियान्वयन के दौरान आने वाली परेशानियों को हटाने के लिए कार्यान्वित करने वाली एजेंसियों को अधिक अधिकार देने तथा कानून तोड़ने वालों को सख्त जुर्माना लगाने की व्यवस्था की गई है। मुख्य बिंदु यह भी था कि वायु प्रदूषण को परिभाषा संशोधित करके इसे भी शामिल किया जाए। इसमें वायु प्रदूषण का निवारण तथा नियंत्रण संशोधन एक्त 1987 भी है।

जल प्रदूषण का निवारण तथा नियंत्रण एक्ट 1974 भी 1988 में संशोधित किया गया। महत्वपूर्ण संशोधन कर जल प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण के लिए केंद्रीय/ राज्य

बोर्ड को पुनः नाम देना केंद्रीय/ राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, क्योंकि बोर्ड वायु प्रदूषण से भी संबंध रखते हैं। बोर्ड को दोषपूर्ण संस्थाओं की जल तथा विद्युत आपूर्ति बंद या रोकने का अधिकार दिया गया। दोषियों के विरुद्ध बोर्ड ने 60 दिनों का नोटिस देने के पश्चात् नागरिक अपराधी केस दर्ज करा सकते हैं। उद्योग की स्थापना के समय भी व्यक्ति को बोर्ड से स्वीकृति लेनी होगी। इस प्रकार जल प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण संशोधन एक्ट 1988 भी बना।

3. ध्वनि प्रदूषण (Sound Pollution)

इसे शोर प्रदूषण भी कहते हैं। अवांछित ध्वनि (Unwanted Sound) को शोर कहते हैं। आजकल वैज्ञानिक प्रगति के कारण मोटर गाड़ियों, स्वचालित वाहनों, लाउडस्पीकरों, ट्रैक्टरों, कल-कारखानों एवं मशीनों का उपयोग काफी अधिक होने लगा है। ये सभी उपकरण एवं मशीनें काफी आवाज (शोर) करते उत्पन्न करती हैं। मनुष्य की श्रवण क्षमता 80 डेसिबल होती है।

शोर की तीव्रता (Intensity of Noise)–शोर की तीव्रता का मापन डेसिबल की इकाई में किया जाता है। (1 डेसिबल = 1/10 बेल)।

शोर ध्वनि का वह रूप होता है, जिसे हम सहन नहीं कर पाते। मनुष्य 0 डेसिबल तीव्रता की आवाज को सुनने में सक्षम होता है। 25 डेसिबल पर शांति का वातावरण होता है। 80 डेसिबल से अधिक शोर होने पर मनुष्य में अस्वस्थता आ जाती है या बेचैनी होने लगती है तथा 130-140 डेसिबल का शोर अत्यंत पीड़ादायक होता है। इससे अधिक शोर होने पर मनुष्य में बहरा होने का खतरा होता है। ध्वनि प्रदूषण के कारण व्यक्ति अनिद्रा, सिरदर्द, थकान, हृदय रोग, रक्तचाप आदि का शिकार हो जाता है। किसी व्यक्ति के लगातार 8 घंटे तक 80-90 डेसिबल की ध्वनि में रहने से उसमें बहरापन शुरू हो जाता है।

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत (Sources of Noise Pollution)–ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्रोत निम्न हैं–

1. सभी स्वचालित वाहन जैसे–बस, ट्रक, स्कूटर, मोटर साइकिल, ट्रेन आदि।
2. स्वचालित कारखानें–इनमें काम करने वाले कर्मचारी ध्वनि प्रदूषण के शिकार हो जाते हैं। इनमें प्रमुख प्रदूषक–कपड़ा, इस्पात, स्कूटर, मोटर कार, सीमेंट बनाने के कारखाने आदि।
3. वायुयान, राकेट, हेलीकॉप्टर, हवाई जहाज, जेट विमान आदि। इनकी उड़ान के समय अत्यधिक ध्वनि उत्पन्न होती है, जिससे जन-जीवन ध्वनि प्रदूषण के शिकार हो जाते हैं।
4. एटम बमों, डायनामाइटों, आतिशबाजी, पटाखे, बंदूकों के चलने एवं युद्ध के दौरान हुए विस्फोटों से ध्वनि प्रदूषण होता है।
5. लाउडस्पीकर, टेलीविजन, अन्य ध्वनि विस्तारक यंत्र भी ध्वनि प्रदूषण के स्रोत हैं।
6. स्वचालित वाहनों में विभिन्न प्रकार के हॉर्न।
7. आटा चक्की, कूलर, एक्जॉस्ट पंखे, राइस मील, मिक्सी, ग्राइंडर आदि भी ध्वनि प्रदूषण के स्रोत हैं।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Noise Pollution)–ध्वनि प्रदूषण से हमारे शरीर में निम्नलिखित प्रभाव दिखाई देते हैं–

1. अधिक शोर के कारण सिरदर्द, थकान, अनिद्रा, श्रवण क्षमता में कमजोरी, चिड़चिड़ापन, उत्तेजना, आक्रोश आदि रोग उत्पन्न होने लगते हैं।
2. शोर प्रदूषण के कारण उपापचयी प्रक्रियाएं प्रभावी होती हैं। संवेदी एवं तंत्रिका तंत्र कमजोर हो जाता है। मस्तिष्क तनाव ग्रस्त हो जाता है तथा हृदय की धड़कन और रक्तचाप बढ़ जाता है। पाचन क्रिया कमजोर हो जाती है।
3. एड्रीनल हार्मोन का स्राव भी बढ़ जाता है। धमनियों में कोलेस्ट्रोल का जमाव होने लगता है। जनन क्षमता कम हो जाती है आदि।
4. अत्यधिक तेज ध्वनि से मकानों में दरार आने की संभावना बढ़ जाती है।

ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण (Controlling of Noise Pollution)–ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय हैं–

1. लोगों में ध्वनि प्रदूषण से होने वाले रोगों से परिचित करा उन्हें जागरूक बनाना चाहिए।
2. कम शोर करने वाले मशीनों उपकरणों का निर्माण एवं उपयोग किए जाने पर बल देना चाहिए।
3. अधिक ध्वनि उत्पन्न करने वाले मशीनों को ध्वनिरोधी कमरों में लगाना चाहिए तथा कर्मचारियों को ध्वनि अवशोषक तत्वों एवं कर्ण बंदकों का उपयोग करना चाहिए।
4. उद्योगों एवं कारखानों को शहरों या आबादी से दूर स्थापित करना ाहिए।
5. वाहनों में लगे हॉर्नों को तेज बजाने से रोका जाना चाहिए।
6. शहरों, औद्योगिक इकाइयों एवं सड़कों के किनारे वृक्षारोपण करना चाहिए। ये पौधे भी ध्वनि शोषक का कार्य करके ध्वनि प्रदूषण को कम करते हैं।
7. मशीनों का रख-रखाव सही ढंग से करना चाहिए।

4. मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी उपजाऊ परत होती है, जिस पर पौधे उगते हैं। पौधों के लिए यह मृदा अत्यधिक आवश्यक होती है, क्योंकि पौधे मृदा से ही जल एवं खनिज लवणों का अवशोषक करते हैं। शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण इनके अनुपयोगी पदार्थों ने मृदा को प्रदूषित कर दिया है। इनके कारण मृदा की उपजाऊ शक्ति कम होती जा रही है तथा उसमें रहने वाले जीव-जंतुओं पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। विभिन्न प्रकार के उर्वरक एवं कीटनाशक दवाइयां मृदा को प्रदूषित कर रहे हैं।

मृदा प्रदूषण के प्रमुख स्रोत (Main Sources of Soil Pollution)–मृदा को प्रदूषित करने वाले प्रमुख स्रोत निम्नानुसार हैं–

1. घरेलू एवं औद्योगिक कूड़ा-करकट एवं अपशिष्ट पदार्थ।
2. उर्वरक, कीटनाशक दवाइयां, खरपतवारनाशक, अम्लीय जल वर्षा, खानों से प्राप्त जल आदि।

3. भारी धातुएं जैसे—कैडेमियम, जिंक, निकिल, आरसेनिक कारखानों से मृदा में मिल जाते हैं।
4. अस्थियां, कागज, पोलीथिन, सड़ा-गला मांस, सड़ा हुआ भोजन, लोहा, लैंड, तांबा, पारा आदि भी मृदा को प्रदूषित करते हैं।
5. खेतों में मल-मूत्र त्यागने के कारण भी मृदा प्रदूषित हो जाती है।

मृदा प्रदूषण पर नियंत्रण (Control Soil Pollution)—मृदा को प्रदूषित होने से बचाने के लिए हमें निम्नलिखित उपाय करने चाहिए—

1. मृत प्राणियों, घर के कूड़ा-करकट, गोबर आदि को दूर गड्ढे में डालकर ढक देना चाहिए। हमें चाहिए कि खेत आदि में शौच कार्य न करें।
2. मकान व भवन को सड़क से कुछ दूरी पर बनाना चाहिए। मृदा अपरदन को रोकने के लिए आस-पास घास एवं छोटे-छोटे पौधे लगाना चाहिए। घरों में साग-सब्जी को उपयोग करने के पहले धो लेना चाहिए।
3. गांवों में गोबर गैस संयंत्र अर्थात् गोबर द्वारा गैस बनाने को प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे ईंधन के लिए गैस भी मिलेगी तथा गोबर खाद।
4. ठोस पदार्थ अर्थात् टिन, तांबा, लोहा, कांच आदि को मृदा में नहीं दबाना चाहिए।

5. रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radioactive Pollution)

ऐसे विशेष गुण वाले तत्व जिन्हें आइसोटोप कहते हैं और रेडियोधर्मिता विकसित करते हैं, का वातावरण में फैल जाना, जिससे मानव जीव-जंतु वनस्पतियों एवं अन्य पर्यावरणीय घटकों के हानि होने की संभावना रहती है, को नाभिकीय प्रदूषण या 'रेडियोधर्मी प्रदूषण' कहते हैं।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्रोत (Sources of Radioactive Pollution)—रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्रोत को हम दो भागों में बांट सकते हैं—

1. प्राकृतिक स्रोत (Natural Sources)—प्राकृतिक स्रोत के अंतर्गत निम्नलिखित स्रोत आते हैं—

1. आंतरिक किरणें,
2. पर्यावरण (जल, वायु एवं शैल),
3. जीव-जंतु (आंतरिक)।

2. मनुष्य निर्मित स्रोत (Man Made Sources)—मानव निर्मित स्रोत के अंतर्गत निम्नलिखित स्रोत आते हैं—

1. रेडियो डायग्नोसिस (Radio Diagnosis) एवं रेडियोथेरेपिक (Radio Therepeutic) उपकरण,
2. नाभिकीय परीक्षण (Nuclear Text)
3. नाभिकीय अपशिष्ट (Nuclear Waste)
4. नाभिकीय पदार्थों का अनुसंधान औषधि एवं उद्योग में उपयोग (Use of Radioactive Substances in Research, Medicine and Industry)

रेडियोधर्मी प्रदूषण का प्रभाव–डॉ. रामन्ना (1988) भामा अनुसंधान केंद्र ने कहा था कि आण्विक ऊर्जा का सदुपयोग किया जाए। ऊर्जा का दुरुपयोग नागासाकी और हिरोशिमा की घटनाएं हैं। रेडियोधर्मी प्रदूषण का प्रभाव तुरंत और दूरगामी होते हैं। तुरंत में तुरंत मृत्यु हो जाती है तथा दूरगामी में आनुवंशिक प्रभाव पड़ते हैं, जिससे असामान्य बच्चों का जन्म तथा विकलांगता होने की संभावना रहती है। इसके प्रभाव से हड्डी के कैंसर भी हो सकते हैं। इसका प्रभाव पेड़-पौधे तथा वनस्पतियों में भी पड़ता है। इसके साथ-ही-साथ समुद्री जीवों पर भी प्रभाव पड़ता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Radioactive Pollution)–रेडियोधर्मी प्रदूषण को रोकने के निम्नलिखित उपाय हैं–

1. परमाणु ऊर्जा उत्पादक यंत्रों की सुरक्षा करनी चाहिए।
2. परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।
3. गाय के गोबर से दीवारों पर पुताई करनी चाहिए।
4. गाय के दूध के उपयोग से रेडियोधर्मी प्रदूषण से बचा जा सकता है।
5. सरकारी संगठनों एवं गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से जनजागरण करना चाहिए।
6. वृक्षारोपण करके रेडियोधर्मिता के प्रभाव से बचा जा सकता है।
7. रेडियोधर्मी पदार्थों का रिसाव सीमा में हो तथा वातावरण में विकिरण की मात्रा कम करनी चाहिए।

6. तापीय प्रदूषण (Thermal Pollution)

ऊर्जा के प्रमुख साधनों में एक ऊर्जा है ताप–ऊर्जा। ताप ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए सामान्यतः कोयले को जलाया जाता है, जिससे उत्पन्न ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदल दिया जाता है। लेकिन इस प्रक्रिया में जब कोयले को जलाया जाता है तो इससे बहुत-सी ऐसी गैसें निकलती हैं, जो वातावरण को प्रदूषित करती हैं। ये गैसें प्रमुख रूप से कार्बन मोनोऑक्साइड, फ्लाइऐश, सल्फर एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन इत्यादि होते हैं। इनका सांद्रण वातावरण में बढ़ता है और प्रदूषण फैलाते हैं, इसे ही ताप प्रदूषण कहते हैं।

ताप प्रदूषण हमारे वातावरण में उपयोग के पश्चात् कुछ पदार्थों से ऊष्मा उत्पन्न होती है, जिसके कारण पर्यावरण का ताप बढ़ जाता है, इसे ही तापीय प्रदूषण कहते हैं। ताप विद्युत संयंत्र सामान्यतः तापीय प्रदूषण के प्रमुख कारण होते हैं।

विद्युत केंद्रों से कोयले की खपत से निकलने वाले प्रदूषण कारक पदार्थ–

1. **कार्बन मोनोऑक्साइड**–तापीय प्रदूषण के कारण कार्बन मोनोऑक्साइड वायुमंडल में पहुंचकर हानिकारक प्रभाव छोड़ता है, जिसके कारण हाइपोक्सिया (Hypoxia) नामक रोग उत्पन्न होता है।
2. **हाइड्रोकार्बन**–विभिन्न वाहकों में ईंधन के रूप में उपयोग किए जाने वाले सभी पदार्थों में हाइड्रोकार्बन होते हैं। इनके जलने से वातावरण में गर्म गैसें निकलती हैं, जिससे वातावरण का तापमान बढ़ जाता है। इसका प्रभाव त्वचा पर पड़ता है, जिससे त्वचा रोग एवं त्वचा कैंसर होने का भय रहता है।

3. **प्लाई ऐश**–औद्योगिक संस्थानों से निकली हुई गैसों के साथ जले हुए ईंधन इत्यादि के कण होते हैं, जो वायु में उड़ते रहते हैं, इन्हें प्लाई ऐश कहते हैं। ये गर्म होते हैं तथा वातावरण के तापमान को बढ़ा देते हैं, जिससे पेड़-पौधे वनस्पति आदि पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
4. **सल्फर एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइड**–कोयले के जलने से सल्फर डाइ ऑक्साइड नामक गैस निकलती है। यह गैस कुल उत्सर्जित गैस का 75 प्रतिशत होती है। एक अनुमान के अनुसार पूरे विश्व में प्रतिवर्ष 10^9 मिलियन टन सल्फर डाइ ऑक्साइड वातावरण में पहुंचती है। हमारे देश में एन.टी.पी.सी. ने कोयले का उपयोग बहुत तेजी से बढ़ाया है। सन् 1950 में 35 मिलियन मिट्रिक टन कोयला उपयोग होता था, जो 2000 में बढ़कर 240 मिलियन टन हो गया। सल्फर डाइ ऑक्साइड का प्रभाव आंखों एवं श्वसन तंत्र पर पड़ता है, इसके साथ-ही-साथ पुरातात्विक महत्व के अवशेषों को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है।
5. **एल्डिहाइड्स**–तापरहित विद्युत केंद्रों में नाइट्रोजन के ऑक्साइड का भी उत्सर्जन होता है, इनमें नाइट्रस ऑक्साइड, नाइट्रिक ऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड प्रमुख हैं। ये वातावरण को प्रभावित कर विभिन्न रोगों को जन्म देते हैं।

प्रभाव–ताप प्रदूषण से पर्यावरण, पौधे, जीव-जंतु की जैविक क्रियाएं, मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ताप प्रदूषण को रोकने के उपाय (Measures to Control of Thermel Pollution)–ताप प्रदूषण को रोकने के निम्न उपाय हैं–

1. तापशक्ति केंद्रों से निकलने वाले अनुपयोगी पदार्थों का समुचित उपयोग होना चाहिए।
2. तापशक्ति केंद्रों की गैसों का पुनः अन्य कार्यों में उपयोग होना चाहिए।
3. इन केंद्रों में कार्यरत कर्मचारियों को प्रदूषण की जानकारी देते हुए उससे बचने के उपाय बताना चाहिए।
4. वाहनों में उचित मापदंड के अनुसार ईंधन भरना चाहिए।

7. समुद्रीय प्रदूषण (Marine Pollution)

पृथ्वी का 71 प्रतिशत भाग जल है। कुल जल का 97.25 प्रतिशत भाग समुद्र के रूप में पाया जाता है। इसमें 3.5 प्रतिशत घुलित पदार्थ पाए जाते हैं।

परिभाषा–समुद्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे पदार्थों का मिलना, जिसके कारण हानिकारक प्रभाव उत्पन्न हो सके, जिससे मनुष्य, जीव-जंतु पर संकट उत्पन्न हो और समुद्र की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़े तो इसे समुद्रीय प्रदूषण कहते हैं।

नदियों द्वारा लाए गए अधिक मात्रा में वाहित मल, कूड़ा-कचरा, कृषिजन्य कचरा, भारी धातुएं, प्लास्टिक पदार्थ, पीड़कनाशी, रेडियोधर्मी पदार्थ, पेट्रोलियम पदार्थ इत्यादि के समुद्र में आने से समुद्रीय वातावरण (Marine Atmospher) प्रदूषित हो जाता है, इसी को हम समुद्रीय प्रदूषण (Marine Pollution) कहते हैं।

समुद्रीय प्रदूषण के स्रोत (Source of Marine Pollution)–समुद्रीय प्रदूषण के निम्नलिखित स्रोत हैं–

1. **घरेलू अपशिष्ट**–नदी, नालों के द्वारा घरेलू अपशिष्ट समुद्र तक पहुंच जाते हैं।
2. **औद्योगिक बहिःस्राव**–प्रायः सभी उद्योग कार्बनिक या अकार्बनिक पदार्थ, अनुपयोगी डिटरजेंट्स, पेट्रोलियम, कार्बोनेट्स, सायनाइड्स आर्सेनिक, कॉपर, फर्टीडाइजर आदि नदी में छोड़ दिए जाते हैं, जो समुद्र में पहुंच जाते हैं।
3. **रेडियोधर्मी कचरा**–जहां-जहां रेडियोधर्मी स्टेशन हैं, वहां के आस-पास के समुद्र में अनुपयोगी रेडियोधर्मी पदार्थ छोड़ दिए जाते हैं।
4. **तेल प्रदूषक**–कभी-कभी लापरवाहीवश तेलीय पदार्थ समुद्री रास्ते से ले जाते समय समुद्र तट में आ जाते हैं। कभी-कभी कारखानों से भी अनुपयोगी तेल समुद्र में डाल दिए जाते हैं।
5. **कृषिजन्य कचरा**–बहुत से कीटनाशक वर्षा के कारण खेतों से नदी में तथा नदी से समुद्र में आ जाते हैं।

समुद्री प्रदूषण से होने वाले प्रभाव–समुद्री प्रदूषण से होने वाले प्रभाव निम्न प्रकार हैं–

1. समुद्री प्रदूषण से समुद्र के जीव-जंतु, समुद्रीय वनस्पतियां प्रभावित होती हैं।
2. कीटनाशकों के समुद्र में आ जाने से जलीय जंतु तथा उनके अंडे प्रभावित होते हैं।
3. तेल के कारण प्रकाश और ऑक्सीजन की कमी से जीव-जंतु, वनस्पतियों में बुरा असर पड़ता है। ऐसा अनुमान है कि 50000 से 200000 समुद्री जंतु तेल के कारण मर जाते हैं।

समुद्रीय प्रदूषण की रोकथाम–समुद्री प्रदूषण की रोकथाम के निम्न उपाय हैं–

1. घरेलू अपशिष्ट, औद्योगिक बहिःस्राव, रेडियोधर्मी पदार्थ आदि को किसी भी प्रकार से समुद्र में नहीं जाना चाहिए। इनकी व्यवस्था पास ही किसी दूरी पर कर देनी चाहिए।
2. टैंकरों, पाइपलाइनों, तेल परिवहनों आदि से रिसाव को रोकना चाहिए।
3. कृषिजन्य कचरा जो रासायनिक पदार्थ होते हैं, उन्हें नदी के बहाव के पूर्व रोक देना चाहिए, ताकि वे समुद्र तक न पहुंच सकें आदि।

औद्योगीकरण, शहरीकरण, अवैध खनन, विभिन्न स्वचालित वाहनों, कल-कारखानों, परमाणु परीक्षणों आदि के कारण आज पूरा पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। इसका इतना बुरा प्रभाव पड़ा है कि संपूर्ण विश्व बीमार है। पर्यावरण की सुरक्षा आज की बड़ी समस्या है। इसे सुलझाना हम सब की जिम्मेदारी है। इसे हमें प्रथम प्राथमिकता प्रदान करना चाहिए तथा पर्यावरण की सुरक्षा में सहयोग देना चाहिए।

''स्वच्छ पर्यावरण आज की जरूरत है, पर्यावरण निरोग तो हम निरोग।''

राष्ट्रपति पुरस्कृत शिक्षक (सेवानिवृत्त)
एम.ए. (अर्थशास्त्र, हिंदी),
पी-एच.डी. (हिंदी), डी.लिट्. (विद्यासागर हिंदी)
गनियारी, बिलासपुर (छ.ग.)

पर्यावरण विनाश : आजादी की असफलता

ललित कुमार सिंघानिया

पिछले 1-2 दशकों के अंतर्गत व्यक्तियों के व्यवहार में तथा व्यक्तियों के प्रति समाज की भूमिका में गंभीर अंतर आया है। किसी भी एक पहलू को विश्लेषण करने के बहुत सारे दृष्टिकोण हो सकते हैं और हरेक पहलू के अनेक आयाम होते हैं, किंतु मैं एक पर्यावरणविद् होने के नाते सदैव इस उलझन से अपने आपको मुक्त करने की कोशिश करता रहता हूं कि यह पृथ्वी ज़ो करोड़ों वर्षों से मानव एवं जीवों के लिए सुरक्षित घर थी, अब एकाएक क्यों पिछले 50 सालों में असुरक्षित हो गई एवं उस पर करोड़ों वर्ष से सुरक्षित जी रहे जीव-जंतु बहुत ज्यादा असुरक्षित हो गए।

वैज्ञानिकों में यह बात बहुधा कही जाती है कि 'सर्वाइवल ऑफ फिटेस्ट' अर्थात् जो सक्षम होगा या समर्थ होगा, वही जीवित रहेगा। लेमार्क ने जैविक विकास के मार्ग के लिए इसी सिद्धांत को प्रतिपादित किया।

बचपन में प्रारंभिक जीव वि

ज्ञान के विद्यार्थी के रूप में जे.वी. लेमार्क की यह अवधारणा मुझे भी बिलकुल ठीक लगती थी और ऐसा लगता था कि प्रकृति के अनुकूल जो अपने आपको ढाल सकता है, वही बचा होगा। बाकी जो लोग अनुकूल नहीं थे, वे डायनासोर की तरह लुप्त हो गए होंगे, पर जीवन के अंतिम हो रहे पड़ाव तक यह बात आज के परिप्रेक्ष्य में सही नहीं लगती। चूंकि इस अर्थव्यवस्था के युग में बाजार ने प्रकृति पर इतना अधिक अतिक्रमण किया है कि जो जीव प्राकृतिक रूप से इतने अधिक शक्तिशाली एवं सक्षम थे कि वे किसी भी विभीषिका को पार कर लाखों-करोड़ों वर्ष तक पृथ्वी पर अपना अस्तित्व संभव बनाए रखें, पर पर्यावरण पर इस आर्थिक अतिक्रमण ने उन जीवों के लिए अनुकूल पर्यावरण को प्रतिकूल कर दिया और वे परास्त होकर लुप्त होने लगे। फलस्वरूप, वे पूरी तरह से सक्षम एवं समर्थ होने के बावजूद भी इस पृथ्वी से सदा-सदा के लिए लुप्त हो गए। कितने ही जीव, कितने ही जंतु, कितने ही वृक्ष, कितनी ही वनस्पतियां, कुछेक पर्वत श्रृंखलाएं लुप्त हो गईं तो लगभग सारी-की-सारी नदियां इस बाजार के आक्रमण से गंभीर रूप से पीड़ित और दूषित हैं। परिणाम यह है कि भारत शासन के पर्यावरण मंत्री श्री जयराम रमेश को पर्यावरण को बचाने के लिए नित्य नये कानून बनाने पड़ रहे हैं या फिर ऐसे औद्योगिक प्रस्तावों की पर्यावरणीय स्वीकृति को निरस्त करना पड़ रहा है, चूंकि ये उद्योग पर्यावरण के लिए आत्मघाती ही हैं। परिणामस्वरूप उनको अपने ही दल से बेदखल करने की भी

बात करत पाए जाते हैं, पर सौभाग्य है कि ऐसे किसी एक निर्भीक एवं साहसिक व्यक्ति पर माननीय प्रधानमंत्री ने इस विभाग को जन्म दिया।

इस लेख में मेरी लेखनी बारंबार बाजार को यूं ही दोषी नहीं ठहरा रही है और न ही सोच में कोई भूल है, न किसी प्रकार की अज्ञानता। किंतु हो सकता है कि मैं बाजार के उन दूषित भावों को सही शब्दों में प्रकट न कर पाऊं, जिसके परिणमस्वरूप धन-पिपासु लोगों ने पृथ्वी के सुरम्य पर्यावरण को चांदी एवं सोने के कुछ सिक्कों के लालच में कानूनी अमली-जामा पहनाकर नीलाम कर दिया और पृथ्वी से ऐसे बहुत सारे मनोहारी दृश्यों को सदा-सदा के लिए समाप्त कर दिया, जिसे शायद हुसैन जैसे विश्व विख्यात चित्रकार भी अपनी कल्पनाओं की, रंग भरी तूलिकाओं से शायद ही चित्रों में भी या कल्पनाओं में भी साकार कर पाए? बचपन के दिनों की यादों में बसे, वसंत ऋतु के आगमन पर साल के फूलों से सोलह श्रृंगार से ज्यादा, अधिक जेवरों से लदी हुई दुल्हन से ज्यादा, श्रृंगारमयी फूलों से लदे साल के वृक्ष, रक्ताभ पुष्पों से आभूषित पलास के वृक्ष और सेमल के वृक्ष इनके जादुई सुगंध और टेशू के फूलों से फैली आग की लपटों-सी लालिमा, साल और आम के बौरों से बौराए हुए जंगल, अब कल्पनाओं में भी अतीत की बातें हो गई हैं। प्रकृति के उस सौंदर्य की सुरक्षा की बात को पुनः स्थापित करने की चर्चा करना तो जैसे पूर्णतया मूर्खता ही होगी। चूंकि वर्तमान में जब कभी पर्यावरण के संदर्भ में बात होती है तो स्थानीय प्रदूषण से लेकर भौगोलिक मौसम परिवर्तन तक ही चर्चा सीमित हो जाती है और स्वाभाविक रूप से जिस विज्ञान एवं तकनीकी के विकास से यह संकट उत्पन्न हुआ, समाधान भी उसी विज्ञान एवं तकनीकी के मार्ग से ढूंढने की कोशिश की जा रही है। पर दुर्भाग्य यह है कि जिस बाजार के षड्यंत्र के कारण यह विनाश हुआ, उसी बाजार को उपाय में लाया जा रहा है, पर्यावरण को बचाने। यद्यपि विज्ञान एवं तकनीकी का भी मार्ग निश्चित रूप से उचित है, पर सबसे बड़ा दोष जो उस मार्ग में शामिल है, वह यह है कि प्रारंभिक औद्योगिक क्रांति के दौर से लेकर आज तक पश्चिमी राष्ट्रों ने इस विज्ञान एवं तकनीकी को बाजार में आर्थिक शासन का अस्त्र बनाकर, विकासशील देशों को विकास के सपने दिखाकर इतना लूट लिया (पर्यावरणीय दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से) कि अब इन (विकासशील) देशों में वह ताकत ही नहीं बची है कि पश्चिमी देशों द्वारा विज्ञान एवं तकनीकी के समृध्दि से उत्पन्न लूट को खर्च कर जितना पर्यावरण बरबाद किया है, उस पर्यावरण को बचाने के लिए आवश्यक विज्ञान एवं तकनीकी को पश्चिमी देशों के बाजार से ये विकासशील देश या अविकसित देश कभी खरीद पाएं। इसीलिए तो लगभग सभी अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय समझौतों पर इस बात पर बारंबार बल दिया जाता है कि विकसित देश पर्यावरणीय संरक्षण तथा ऊर्जा संरक्षण का ज्ञान एवं तकनीकी विकासशील देशों को मुफ्त में उपलब्ध कराएं। पर क्योटो के कानकुन तक के लगभग 15 वर्ष के सफर में हासिल पाई लगभग शून्य ही है।

दुर्भाग्य यह है कि न केवल भारत, बल्कि लगभग सभी विकासशील देश एवं अविकसित देशों के सत्ता प्रमुख विज्ञान एवं तकनीकी के मार्ग से संपन्नता के सपने दिखाकर लूट मचा रहे पश्चिमी देशों के न तो षड्यंत्र को समझ पाए और न कभी इस बात का एहसास कर पाए कि उनके देश का पर्यावरण किसी भी हालत में विकास के उस

स्तर को पाकर सुरक्षित एवं निरापद रह ही नहीं सकता, जिनके सपने दिखाए जा रहे हैं। अपितु, विकास का वह स्तर हमारे देश के लिए वह त्रासदी ला सकता है, जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की है। विकास के कुछेक पायदान अवश्य हमारे समक्ष उदाहरण हैं। लोगों को मेरी सोच बहुधा अटपटी लगती है, पर उस दिन से पहले जब पहली बार यह स्वीकारा गया क़ि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नही घूमता, बल्कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, तब तक ऐसी बातों को कहने वाले लोगों को मूर्ख या सिरफिरा ही कहा जाता था। खैर, उस बात की परवाह किए बिना मैं भी इस लेख के पाठकों से आग्रह करना चाहता हूं कि वे इस बात का आंकलन करने की कृपा करें कि भारत में कार्यशील हजारों देशी एवं विदेशी कंपनियों द्वारा प्रतिवर्ष अर्जित कुल लाभ कितना है और प्रति भारतीय व्यक्ति के सिर पर इस लाभ का कितना बोझ आता है। उदाहरण के स्वरूप यदि मोटे तौर पर छत्तीसगढ़ राज्य में ही मान लें कि नेशनल मिनरल डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लगभग 6000 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष लाभ अर्जन करता है, भिलाई स्टील प्लांट शायद 15 हजार करोड़ रुपये प्रतिवर्ष अर्जन करता है, दक्षिणी-पूर्वी रेलवे भी कुछ हजार करोड़ रुपये लाभ अर्जित करना होगा और दक्षिण-पूर्वी कोयला खदानें भी कुछ हजार करोड़ का लाभ अर्जन करती होंगी। भारतीय एल्यूमीनियम कंपनी एवं एनटीपीसी तथा ऐसे निजी क्षेत्र के अनेक बड़े-बड़े स्टील प्लांट एवं पॉवर प्लांट छत्तीसगढ़ राज्य में ढेर सारा लाभ कमाते हुए कार्यरत हैं। इस राज्य में 2 करोड़ लोगों की जनसंख्या में लगभग 1 करोड़, 32 लाख लोगों को (34 लाख परिवारों को) गरीबी रेखा के नीचे पाया गया है, अर्थात् उनकी प्रति व्यक्ति आय 12000 रुपये प्रति वर्ष से कम है। यदि हम गणना की सहजता के लिए यह मान लें कि छत्तीसगढ़ राज्य में काम करने वाले सभी शासकीय एवं अशासकीय निगम एवं उपक्रम से कुल लाभ प्रतिवर्ष एक लाख करोड़ रुपये है तो इसके सीधे-सीधे मायने यह हुआ कि निगमीय लाभ का भार प्रति छत्तीसगढ़ी व्यक्ति पर 50 हजार रुपये प्रतिवर्ष है, जबकि उस व्यक्ति की आय ही केवल 12000 रुपये प्रति वर्ष है। इसी प्रकार यदि हम इन औद्योगिक एवं अन्य गतिविधियों द्वारा पर्यावरण को हो रहे क्षति के मूल्य के आधार पर राज्य पर पड़ने वाले पर्यावरणीय क्षय लागत का अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार आंकलन करें तो शायद इसका मूल्य लगभग 4.5 लाख से 5 लाख करोड़ रुपये होगा। अर्थात् प्रति व्यक्ति पर्यावरण क्षय या पर्यावरण हलास का बोझ प्रतिवर्ष 2 लाख रुपये होगा, जबकि उसकी आमदनी मात्र 12000 रुपये है। यानी की विकास के मार्ग पर देश को चलाने वाले लोग यदि प्रति भारतीय से 5000 रुपये लाभ प्रतिवर्ष वसूल रहे हैं और 2 लाख रुपये प्रति वर्ष का पर्यावरणीय क्षय मूल्य भार डाल रहे हैं तो भी आमदनी प्रतिवर्ष यदि 12000 रुपये ही प्रति व्यक्ति है तो फिर, यह कैसा विकास? किसका विकास? किसका विनाश? और यदि निगमीय जगत् के लोग कहीं एक छोटा-सा अस्पताल खोल दिए या एक 'आई कैंप' लगा दिए, जो उसके लिए प्रशंसा के अथाह शब्द बांधे जाने की क्या जरूरत? सब्बल लूटकर सुई दान देने वालों को दानदाता कहाने का क्या अधिकार है?

प्रश्न यह है कि पूंजीवादी विकास के इस मॉडल पर जब से हमने आश्रय लिया है, तब से सब कुछ बाजारू हो गया है। अर्थात् सब कुछ बिकाऊ हो गया है। कितने ही लोग ऐसे विजिटिंग कार्ड लेकर घूमते हैं, जो कहते हैं कि ज्योतिष की भांति वे लोग प्रत्येक

व्यक्ति की मस्तक-रेखा पढ़कर उसके मस्तिष्क पर लिखे हुए उसके विक्रय मूल्य का अनुमान लगा लेते हैं, चाहे वह मंत्री हो या सांसद, विधायक हो या अधिकारी या कर्मचारी। और इसी का परिणाम है कि 'राडिया' जैसी महिला इस देश में पौने तीन लाख करोड़ रुपये के भयंकर लूट के बावजूद भी सुरक्षित है (चूंकि उसे सबके माथे पर लिखे कलंक के मूल्यों को पढ़ने की भाषा जो आती है) और कानूनी दंगल में अपने किसी-न-किसी दांव के द्वारा अपने को बचाए हुए है, पर सबसे दुर्भाग्य की बात यह है कि पर्यावरण जैसे बिंदु पर पर्यावरण के पक्ष में उसकी लूट को रोकने के लिए खड़े होने वाले गरीब, आदिवासियों, ग्रामवासियों, भारतवासियों लोगों के पास न तो भाषा है, न जबान है, न कानून है, न संसाधन हैं। है तो केवल कुछ जज्बे, जिसके द्वारा वे लोग 'विश्नोईयों' की तरह पेड़ों से लिपटकर अपना बलिदान देना जानते हैं, सिर कटाना आता है, भूखे मर सकते हैं, पर संविधान के किस कानून के अंतर्गत किस व्यक्ति को क्या सजा दी जा सकती है, इसकी बहस न तो गांव के न्यायालय में वे कर सकते हैं और न ही उच्चतम न्यायालय में। इसलिए ग्रामसभा से लेकर राष्ट्र के सदन तक के बीच कहीं भी पर्यावरण के प्रति इतना न्याय नहीं मिल पाता कि वह बाजार में बिकने वाली वस्तु न बन पाए।

सांख्यिकीय को पढ़ने और पढ़ाने वाले अर्थव्यवस्था को निरूपित करने वाले तमाम विद्वान् उन पश्चिमी राष्ट्रों से हैं, जिनके पूर्वज समुद्री लुटेरे हुआ करते थे और धरती के भिन्न-भिन्न देशों को लूटने के मकसद से ही आक्रमण करने, नौकाओं में सवार होकर निकलते थे। उनकी आनुवांशिक भावना और संस्कार ही हमेशा लूट की ही रही। सारे कानून उन्होंने लूट को विधि सम्मत करने एवं विकासशील एवं विकसित देशों के पर्यावरण को तबाह कर बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों को लूटने के लिए ही निरुपित किए थे। भारतवर्ष यूं तो आज एक अत्यंत शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरता हुआ दिखाया जा रहा है, किंतु इस भ्रम में लोगों को बहुत नहीं जीना चाहिए। चूंकि इस देश के अंदर तेजी से तबाह हो रहा पर्यावरण एवं विस्फोटक हो रही जनसंख्या और उन सबसे भी अधिक खतरनाक भयावह रूप से पनप रहा भ्रष्टाचार तीनों मिलकर ऐसी विस्फोटक परिस्थितियां पैदा कर सकते हैं, जिससे कि हमारे हजारों, लाखों साल की संस्कृति भी तबाह हो जाए और हमारी सामाजिक समरसता खत्म हो जाए, देश का पर्यावरण पूरी तरह तबाह हो जाए और देश फिर से गुलामी के दलदल में फंस जाए।

इसलिए एक स्वस्थ एवं सुरक्षित भारत के लिए यह बहुत जरूरी है कि हम देश को भ्रष्टाचार से मुक्त करें, बाजार से मुक्त करें, पूंजीवाद से मुक्त करें। बेतहाशा बढ़ रही जनसंख्या पर नियंत्रण करें और देश को बाजार के चंगुल से मुक्त कर अपने संस्कारों की ओर लौटें, जहां 'वसुधैव कुटुंबकम' की परिकल्पना है, जहां 'रूखा-सूखा खाय कर ठंडा पानी पीव, देख पराई चूपड़ी क्यों ललचावे जीव' जैसी अवधारणाएं प्रचलित रही हैं एवं संचालित रखी जा सकती हैं।

हमें हमारे संविधान के प्रावधानों के अनुरूप अपने सामाजिक एवं सार्वजनिक चिंतन को विकसित करना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 15 में जहां समानता के अधिकार दिए हैं, वहीं अनुच्छेद 13 पार्ट-III में उन सभी कानूनों एवं नियमों को अवैध बताया है, जो कि किसी भी नागरिक के मूलभूत अधिकार की अवहेलना करते हों। जहां अनुच्छेद

38(2) के अनुसार आय में असमानता को दूर करना अनिवार्य किया है तो अनुच्छेद 38(1) में आर्थिक एवं सामाजिक कल्याणकारी कार्यों को प्रोत्साहित करना शासन के लिए अनिवार्य किया है। जहां 39(a) में आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराना अनिवार्य किया है तो अनुच्छेद 39(b) में सार्वजनिक प्राकृतिक संसाधनों (यथा—खनिज, कोयला, पानी आदि) पर नियंत्रण एवं वितरण इस प्रकार से हो कि जनसामान्य के हितों के लिए सर्वाधिक हितकारी हो। अनुच्छेद 39(c) के अनुसार शासन द्वारा अर्थव्यवस्था का संचालन इस तरह किया जाना आवश्यक है, ताकि परिणामतः धन कुछ हाथों में सकेंद्रित न हो जाए और जन-सामान्य के लिए घातक न सिद्ध हो।

इतने स्पष्ट संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भी कोई कानून उपरोक्त बातों की रक्षा नहीं कर पा रहा है, न पर्यावरण की, न पर्वतों की, न पानी की, न पशुओं की, न पक्षियों की, न गरीबों की, न लघु उद्योगों की, न लघु व्यापारियों की, न किसानों की और न मजदूरों की, तो फिर क्या हम केवल एक किताब को जिम्मेदार ठहराकर अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों से मुक्त हो सकते हैं। जीवन का सच्चा सुख उसके ही साथ है, जो आज भी इस आजादी को आजादी बनाए रखने के लिए अपने-अपने ढंग से सत्य का साथ देते हुए संघर्षरत हैं। पर्यावरण विनाश आजादी की असफलता का सबसे बुरा लक्षण है। या यूं कहें कि यह बीमारी का आखिरी लक्षण है। सभ्यता एवं संस्कार की मौत के अंतिम लक्षणों के रूप में पर्यावरण महाविनाश के अतिरिक्त कुछ और देखने और दिखाने की जरूरत ही नहीं है। तो आइए, हम अपनी-अपनी कोशिश तो जरूर करें, इस त्रासदीग्रस्त पर्यावरण को संभालने, बचाने, संवारने, बाकी तो राम ही राखे।

संपादक, पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स,
205, मेनरोड, समता कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.)

प्रदूषण-मुक्त पर्यावरण और कर्तव्य-बोध

डॉ. हरीराम निर्मलकर

प्रदूषण मुक्त पर्यावरण का अर्थ है—स्वस्थ स्पंदनयुक्त जीवन। पर्यावरण का सीधा-साधा अर्थ है—परिवेश। परिवेश, जो हम आस-पास देखते हैं, जिसके संसर्ग में हमारा जीवन-चक्र चलायमान है, जो कुछ हमारे आस-पास घटित हो रहा है, वे स्थितियां, जो हमारे जीवन को अनवरत् प्रभावित करती रहती हैं, इन्हें ही समग्र रूप से पर्यावरण के अंतर्गत रखा जाता है। जब पर्यावरण की धारणा हमारे मानस-पटल पर उभरती है? तब हमारे सम्मुख सर्वप्रथम हमारा परिवेश और द्वितीय प्रकृति का परिदृश्य उभरता है। परिवेश से तात्पर्य हमारी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और ऐतिहासिक स्थितियों से है। प्रकृति में क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा के सूत्र में हमारी पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल और वायु समाहित है।

आज के युग में जीवन के स्पंदन को गतिशील बनाए रखने के लिए आर्थिक समस्याओं का निराकरण मानव की मूलभूत आवश्यकता है। भोजन, वस्त्र और विश्रांति के लिए छत की उपलब्धता सुनिश्चित करना, श्रम-साध्य और दुष्कर कार्य है। पशु, पौधे, फसल, बाग-बगीचे, जंगल, नदी-तालाब, झील-समुद्र के संरक्षण का उचित ज्ञान हमारी जीवनचर्या को सुंदर और सुखद बनाने में अहम् भूमिका निभा कर सकते हैं। आवश्यकता हमें सतर्क और सचेत रहने की है। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम अज्ञानतावश इन तत्वों का आवश्यकता से अधिक अंधाधुंध दोहन कर रहे हैं, क्योंकि इनके दोहन का उपयोग आवश्यकतानुसार मितव्ययता से होगा तो ये तत्व स्वमेव अपनी क्षमता में वृद्धि के साथ हमारे लिए भी जीवन-नियामक सिद्ध होंगे, अन्यथा इनका दुरुपयोग और विवेकहीन दोहन हमारे लिए घातक और विनाशकारी हो सकता है। उदाहरण के लिए हम वन-संपदा को ही लेते हैं तो हमारा अनुभव बताता है कि वनों की अंधाधुंध कटाई मौसम और जलवायु में आई असंतुलित परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण है। ग्लोवल वार्मिंग, वैश्विक ताप की समस्या से क्या हम नहीं जूझ रहे हैं। पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि भारत ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए चिंताजनक है। आज शीतल-मंद, सुगंध पवन कवि की कल्पना होकर रह गई है। वनों की छाया की सुखद अनुभूति तपते मौसम में जन्म-जन्मांतर के शत्रुओं में भी मित्रता का भाव पल्लवित कर देती है। रीतिकालीन महाकवि बिहारी ने 'कहलाने एकत बसत अहि-मयूर, मृग-बाघ' जैसी शंका का समाधान 'जगत् तपोवन जस किया' में देखते हैं, जहां अंगार-सी तपती हुई सृष्टि वनों की शीतल छाया में तपोवन-सा

ऋषियों की मोहक शांत तप-स्थली का स्वरूप धारण कर लेती है। फलस्वरूप सर्प-मयूर और मृग-बाघ साधुवत निर्विकार भाव से विश्रांति में दीख पड़ते हैं।

वनों की अनवरत कटाई ने जल-वर्षा पर भी अपना दुष्प्रभाव छोड़ना प्रारंभ कर दिया है। आज नदियों की धारा से कल-कल ध्वनि विलुप्त हो गई है। झरने का झर-झर संगीत न जाने कहां खो गया है? सूखती झीलों में अब नीली सुंदर गहरी आंखों की आभा नहीं दिखाई देती है। प्रातः-संध्या अब पक्षियों का कलरव-गान मानसिक विश्रांति से दूर हो गया है। पर्यावरण और पर्यटन दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रदूषण मुक्त पर्यावरण के बिना पर्यटन की कल्पना बेमानी लगती है। पर्यटन व्यक्तित्व के विकास की एक निर्विवाद कड़ी है। पर्यटन के माध्यम से मानसलोक में जिन बिंबों का सृजन होता है, वे अनुभवजन्य और यथार्थ के करीब हुआ करते हैं, किंतु प्रकृति की सुरम्य वादियों से पर्यटन का आनंद विलोपित हो गया है। बड़ी तीव्र गति से गिरता भू-जल स्तर निम्नतर होता चला जा रहा है। जब हम 'जल ही जीवन है' की उक्ति को अकाट्य सत्य स्वीकारते हैं, जैसा कि कविवर रहीम ने भी कहा है, 'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून' तब क्या हमारा दायित्व नहीं बनता कि हम इनके संरक्षण की चिंता को बुद्धि-विलास और ज्ञान-पिपाशा का एक अंग स्वीकार करें और इनके संरक्षण के उपाय के प्रति जन-जागरण अभियान का एक हिस्सा बनें।

प्रदूषण-रहित जल और शुद्ध वायु के बिना स्वस्थ जीवन की कल्पना व्यर्थ है। कल-कारखानों से प्रदूषित करने वाले रासायनिक तत्व जहां जल स्रोतों, नदियों, तालाबों और झीलों को प्रभावित कर रहे हैं, वही इनकी विशालकाय चिमनियों से उगलता विषयुक्त धुआं, गैस और रसायन वायुमंडल को प्रदूषित कर रहे हैं। वैश्विक ताप का खतरा मुंह बाये खड़ा है। ओजोन परत गर्म से गर्मतर होते जा रहा हैं। परिणामस्वरूप मानव, पशु और अन्य जीवधारी प्राणियों के अस्तित्व और इनके स्वस्थ जीवन की अपेक्षाओं पर तुषारापात हो रहा है, किंतु विवशतावश हमें और उन्हें इन भयावह स्थितियों को स्वीकारना पड़ रहा है। इन समस्याओं का हल, शासन, वैज्ञानिक एवं बुद्धिजीवियों द्वारा निकाला जा चुका है। आवश्यकता इन्हें ईमानदारी पूर्वक अपनाने की है।

पर्यावरण शुचिता-संरक्षण और प्रदूषण रोकने की गंभीर समस्या और समाधान की चिंता के अतिरिक्त हमें सामाजिक प्रदूषण के बढ़ते प्रभाव पर भी विचार करना नितांत आवश्यक है। सामाजिक प्रदूषण से तात्पर्य उन सामाजिक बुराइयों से है, जो सभ्य समाज में त्याज्य और वर्जित हैं।

आज सामाजिक पर्यावरण पर प्रदूषण की दोधारी तलवार चल रही है। मानवता तथा व्यक्ति के पारिवारिक एवं आत्मीय संबंधों में लगातार विघटन और नकारात्मक भाव पल्लवित होते जा रहे हैं। समाज में भ्रष्टाचार, आतंकवाद, लूट-खसोट, व्यभिचारिता, दहेज-लोभिता, धार्मिक आडंबर, अंधविश्वास और धर्मांधता इत्यादि कुरीतियां अपने साम्राज्य में सतत् वृद्धि कर रही हैं। इन परिस्थितिजन्य परिदृश्यों से लोगों के मन में अविश्वास की भावना का पल्लवन अनवरत् हो रहा है। राजनीतिक स्वेच्छाचारिता का बोलबाला हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनसे छुटकारा पाना मरुभूमि के उस जल की भांति हैं, जो मृग-तृष्णा का पर्याय है। ऐसा कदापि नहीं है कि अधोगति की ओर अग्रसर

सामाजिक प्रदूषण को मुक्त करने का कोई रास्ता ही नहीं बचा। दुर्गम परिस्थितियों के परिमार्जन की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। सकारात्मक सोच और प्रबल इच्छाशक्ति का अस्त्र हमें इस द्विविधा से मुक्त करा सकता है। कृष्णकुमार भट्ट 'पथिक' के शब्दों में, 'इतिहास के पृष्ठ आगे बढ़ते हैं, मौसम बदलता है, आम आदमी के आस्था और विकास का परिमार्जन होता है।' सीधा और सरल तथ्य यह है कि लोग नकारात्मक लोगों की अपेक्षा उन लोगों के प्रति अपनी सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करें, जो सकारात्मक प्रवृत्ति के हैं। उन लोगों को गले लगाएं, जो अपने जीवन में दूसरों को प्रोत्साहित करने वाले, व्यक्ति की भावनाओं को समझने और सद्विचारों को उर्ध्वगति प्रदान करने वाले हों, आशावान, ऊर्जावान और उत्साही हों। आलोचक वृत्ति वाले चिड़चिड़े, व्यंग्यात्मक, निराशावादी, जीवन से ऊबे हुए, खिन्न चित्त वाले और हताश प्रवृत्ति वालों से हमें दूर रहना होगा, तभी हम सामाजिक प्रदूषण के इस महासागर को लांघकर एक सुखमय, सुरम्य और सामाजिक प्रदूषण मुक्त समाज की कल्पना कर सकते हैं।

सामाजिक पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त करने में साहित्यकारों, धर्म-रक्षकों और समाज-सेवियों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। सामाजिक पर्यावरण के विसंगति युक्त प्रदूषण की ध्वनियां हमें दुष्यंत कुमार के हिंदी गजलों में सुनाई देती हैं। उन्होंने बड़े ही मार्मिक शब्दों में सामाजिक पर्यावरण को चीथड़े में लिपटे हुए देखा और कहा है, "कल नुमाइश में मिला था वह चीथड़े पहने हुए, मैंने पूछा कौन था, कहने लगा मैं हिंदुस्तान हूं।"

अंत में यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि पर्यावरण का क्षेत्र असीमित है। पर्यावरण का उद्देश्य व्यापक है। इसके महत्व को किसी परिधि विशेष में रखकर नहीं आंका जा सकता। इनके संरक्षण के लिए विभिन्न संगठनों और पर्यावरणविदों द्वारा सुझाए गए उपायों को ग्रहण करना और अमल में लाने में ही हमारा और विश्व का कल्याण संभव है।

संजय जनरल स्टोर्स,
तारबाहर रेलवे फाटक,
बिलासपुर (छ.ग.)

जीवन-हित में पर्यावरण

डॉ. मोहनलाल साहू

आज पर्यावरण का संरक्षण जरूरी ही नहीं, बल्कि अति आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य का जीवन इसी पर्यावरण पर निर्भर है, पर्यावरण के बगैर जीवन की कल्पना कभी नहीं की जा सकती, चाहे ग्राम्य वातावरण हो या शहरी पर्यावरण संरक्षण—हम सभी को मिलकर करना है, जिस प्रकार से माता अपने पुत्र की देखभाल करते हुए पाल-पोसकर बड़ा करती है, उसी प्रकार हमें आज पर्यावरण संरक्षण के लिए बचपन से ही बच्चों में इस बात की शिक्षा देने की जरूरत है।

संसार में सूर्य की ऊर्जा को ग्रहण करके भोजन के निर्माण का कार्य केवल हरे पौधे ही कर सकते हैं। इसलिए पौधों को उत्पादक कहा जाता है, यह सारी चीजें इसलिए भी जरूरी हैं ताकि पर्यावरण से संबंधित आलेखों को पढ़कर बच्चे शिक्षा प्राप्त कर सकें। पौधों द्वारा उत्पन्न किए गए भोजन को ग्रहण करने वाले जंतु शाकाहारी होते हैं और उन्हें प्रथम श्रेणी का उपभोक्ता कहा जाता है।

जैसे गाय, भैंस, बकरी, भेड़, हाथी, ऊंट, खरगोश, बंदर ये सभी प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता कहलाते हैं। प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं को भोजन के रूप में खाने वाले जंतु मांसाहारी होते हैं और वे द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता कहलाते हैं। इसी प्रकार द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ताओं को खाने वाले जंतु तृतीय श्रेणी के उपभोक्ता कहलाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऊर्जा का प्रवाह सूर्य से हरे-भरे पौधों में, हरे पौधों से प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं में और प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं से द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ताओं में और फिर उनसे तृतीय श्रेणी के उपभोक्ताओं की ओर होता है। सभी पौधे और जंतु वे चाहे किसी भी श्रेणी के हों, मरते अवश्य हैं। मरे हुए पौधे व जंतुओं को सड़ा-गलाकर नष्ट करने का कार्य जीवाणु और कवक करते हैं। जीवाणु और कवकों को हम अपघटक कहते हैं।

ऊर्जा के प्रभाव को जब हम एक पंक्ति के क्रम में रखते हैं तो खाद्य-शृंखला बन जाती है। जैसे—हरे पौधे, कीड़े-मकोड़े, सर्प, मोर आदि एक खाद्य-शृंखला है। इसमें हरे पौधे उत्पादक कीड़े प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता, मेढ़क द्वितीय श्रेणी का उपभोक्ता, सर्प तृतीय श्रेणी का उपभोक्ता एवं मोर चतुर्थ श्रेणी का उपभोक्ता है। इसी प्रकार की बहुत-सी खाद्य शृंखलाएं विभिन्न परितंत्रों में पाई जाती हैं। जिसका प्राथमिक ज्ञान सभी वर्गों में होना जरूरी है ताकि हम प्रकृति के बनाए नियमों में चलकर इन प्रकार की खाद्य शृंखलाओं को

पढ़ें और जानें ताकि हम अपने आस-पास के वातावरण के संरक्षण में सक्रियतापूर्वक कार्य कर सकें।

प्रकृति की व्यवस्था स्वयं में पूर्ण हैं। प्रकृति के सारे कार्य एक सुनिश्चित व्यवस्था के अंतर्गत होते रहते हैं, यदि मनुष्य प्रकृति के नियमों का अनुसरण करता है तो उसे पृथ्वी पर जीवन-यापन की मूलभूत आवश्यकताओं में कोई कमी नहीं रहती है। मनुष्य का दुष्चिंतन ही है, जो अपने संकीर्ण स्वार्थ के लिए प्रकृति का अति दोहन करता है, जिसके कारण प्रकृति का संतुलन आज डगमगा-सा जाने के कारण मनुष्य का अस्तित्व खतरे में पड़ा हुआ है।

परिणामतः बाढ़, सूखा जैसी आपदाएं भारी जान-माल की हानि पहुंचाती हैं। प्रकृति के स्वाभाविक कार्य में कोई बाधा न डाली जाए और न ही छेड़छाड़ की जाए तो ही पर्यावरण को हम सुरक्षित रख सकते हैं। यदि किसी खाद्य शृंखला को तोड़ दिया जाए तो मनुष्य को हानि-ही-हानि होती है। उदाहरण के लिए एक वन में शेर भी रहते हैं और शाकाहारी हिरण भी। खाद्य शृंखला के अनुसार हिरन प्रथम श्रेणी का उपभोक्ता और शेर द्वितीय श्रेणी का उपभोक्ता है। शेर हिरण को खाता है, यदि शेरों का शिकार कर दिया जाए तो हिरण वन में बहुत अधिक संख्या में हो जाते हैं और उनके लिए वन की घास भी कम पड़ती है तो वे फसलों को हानि पहुंचाकर रौंदकर पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ देते हैं।

इसी प्रकार एक वन में से हिरणों का शिकार कर दिया जाए तो शेर को वन में भोजन न मिलने पर वह गांव की ओर आता है और नरभक्षी हो जाता है, जो खाद्य शृंखला प्राकृतिक रूप से चल रही थी, उसे तोड़ने पर पर्यावरण को सुरक्षित रखना संभव नहीं हो सकेगा।

पर्यावरण के संरक्षण में अपघटक अर्थात् जीवाणु और कवकों का बहुत अधिक योगदान है। मरे हुए जीव-जंतुओं को सड़ा-गलाकर अपघटन का कार्य ये ही करते हैं। यदि ये अपघटक न रहें तो इस पृथ्वी पर मरे हुए जीवों के ढेर लगे दिखाई देंगे और पृथ्वी मनुष्य के रहने योग्य नहीं रह जाएगी।

बहुत से जीव-जंतु हमें बिलकुल अनुपयोगी और हानिकारक प्रतीत होते हैं, लेकिन वे खाद्य शृंखला की प्रमुख कड़ी हैं और उनका पर्यावरण के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। जैसे कीड़े-मकोड़े, पौधों के तनों और पत्तियों को खाकर फसलों को बहुत अधिक हानि पहुंचाते हैं, ये पक्षियों का भोजन बनकर पक्षियों से फसल को सुरक्षित रखते हैं और पक्षी इन कीड़ों को खाकर कीड़ों से फसल की रक्षा करते हैं। इन कीड़ों के अभाव में पक्षी फसलों को अपेक्षाकृत अधिक हानि पहुंचा सकते हैं।

इसी प्रकार सांप मनुष्य को बड़ा हानिकारक और खतरनाक दिखाई देता है, लेकिन यह एक खाद्य शृंखला का महत्वपूर्ण अंग होने के कारण मानव जाति के लिए बड़ा उपयोगी है और किसानों का मित्र भी है। चूहा किसानों का शत्रु है, जो बहुत मात्रा में अन्न को खाकर बरबाद कर देता है। सांप चूहों को खाकर उनकी संख्या को नियंत्रित करता रहता है। यदि खेतों में सांप न होते तो चूहों की संख्या इतनी अधिक हो जाती कि ये सारी फसल खा जाते। घास के मैदान में फुदकने वाला मेढक व्यर्थ का जंतु प्रतीत होता है, किंतु

मक्खी-मच्छरों को खाकर पर्यावरण के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि खाद्य शृंखला को तोड़ने पर मनुष्य को हानि-ही-हानि होती है। इससे पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता है। यह तो रही वन और कृषि योग्य भूमि के परतंत्र की शैक्षिक एवं ज्ञानवर्धक बातें।

जलीय परतंत्र को देखें तो समुद्र में खाद्य शृंखला इस प्रकार रहती है--हरी शैवाल उत्पादक होती है, शैवाल को छोटी मछलियां और छोटी मछलियों को बड़ी मछलियां खा जाती हैं। इस प्रकार मछलियों की संख्या नियंत्रित रहती है, अन्यथा यदि छोटी मछली को बड़ी मछली न खाती तो मछलियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती। फलस्वयप समुद्र में मछलियों की भीड़ हो जाती और समुद्र का पर्यावरण ही गड़बड़ा जाता।

हरे वृक्ष प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में कार्बन डाई ऑक्साइड तो लेते हैं और ऑक्सीजन को निकालते हैं, इस प्रकार वातावरण को शुद्ध करते हैं। ऑक्सीजन सभी जंतुओं को सांस लेने के लिए अति आवश्यक है। मनुष्य ने अत्याधिक संख्या में वृक्षों को काटकर इस शृंखला को तोड़ा है, जिसका परिणाम बाढ़, सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं के रूप में तथा वायु प्रदूषण के कारण विभिन्न बीमारियों के रूप में मनुष्य को सहन करना पड़ रहा है। पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है कि हम स्वभाविक खाद्य शृंखलाओं में कोई व्यवधान उत्पन्न न करें।

जीवन जीवस्य भोजनम् के अनुसार कोई जीव किसी का भक्षण करता है तो कोई दूसरा जीव उसका भक्षण कर जाता है। सभी समुचित संख्या में पृथ्वी पर उत्पन्न होते रहें, ताकि खाद्य-शृंखलाएं सुचारू रूप से चलती रहे। इसके लिए समस्त जीवों का संरक्षण करना मनुष्य का कर्तव्य है, तभी मनुष्य का अस्तित्व बचा रह सकता है। मनुष्य के लिए जीव हत्या पाप माना गया है। मनुष्य अप्राकृतिक रूप से तो सर्वभक्षी है, वह सभी श्रेणी के जीव-जंतुओं को खा सकता है, लेकिन शारीरिक संरचना और प्राकृतिक स्वभाव के अनुसार वह शुद्ध शाकाहारी है। मांसाहार के लिए एवं शिकार के शौक में मनुष्य ने तमाम वन के जंतुओं का शिकार कर पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ने में अपनी भूमिका निभाई है। आज सभी मनुष्यों का यह धर्म है कि पर्यावरण के संरक्षण के लिए वे जीव-हत्या जैसे जघन्य अपराधों से बचें, सभी जंतुओं को संरक्षण प्रदान करें, अधिक-से-अधिक वृक्ष लगाएं। हरे वृक्ष, शाकाहारी और मांसाहारी जंतु सभी को यदि संरक्षण मिलता रहा तो खाद्य-शृंखलाओं में कोई व्यवधान नहीं आएगा और इसी से पृथ्वी का पर्यावरण भी सुरक्षित रह सकेगा। सरकार भी इसके लिए कृत संकल्पित एवं प्रयत्नशील है। इस प्रकार से पक्षी और अन्य जंतुओं के शिकार पर पूर्णतः कानूनी रोक लगी हुई है। कानून अपनी जगह काम करता है, लेकिन बिना जन-चेतना के किसी को कोई सफलता नहीं मिलती है।

समाज के निर्माण में लगी समाज सेवी संस्थाओं को विभिन्न प्रचार माध्यमों से जन-चेतना जागृत करने में अपने समय, धन एवं श्रम का सदुपयोग करना चाहिए। विद्यालयों में छात्रों को पर्यावरण संरक्षण हेतु अपने दैनिक कार्यों में ऐसी आदतें डालने का प्रयास करना चाहिए ताकि पृथ्वी का वातावरण सुंदर, सुरम्य एवं मनमोहक बन सके। वृक्षारोपण एवं वन्य जीव संरक्षण का महत्व जन-जन को समझाने का प्रयास किया जाना आज जरूरी है। चूंकि वृक्ष खाद्य-शृंखला की प्रथम कड़ी है, अतः पर्यावरण के संरक्षण में

वृक्षों का सबसे अधिक महत्व है। अपने जन्म दिन पर, बच्चों के जन्मदिन पर, विवाह दिवस पर, विवाह की रजत जयंती पर अथवा अन्य मांगलिक अवसरों पर, तीज-त्योहारों पर, सेमिनार के अवसरों में एवं सामाजिक विभिन्न कार्यक्रमों में स्मृति के रूप में वृक्ष लगाने की स्वस्थ परंपरा आरंभ करने की आवश्यकता है। समाज को इस दिशा में सकारात्मक पहल कर इस प्रथा को स्थायित्व प्रदान करना चाहिए।

पर्यावरण से संबंधित तथ्यात्मक जानकारी एवं संरक्षण के विभिन्न उपायों को आज प्राथमिक सहित उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में जोड़ा जाना नितांत आवश्यक है, ताकि शिक्षकों एवं छात्रों सहित पालकों की शैक्षिक सहभागिता से पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके, इस ओर समाज के हर वर्ग को ध्यान देना जरूरी है। मैदान में खड़ा वृक्ष भी आज अपनी दयनीय अंतर्व्यथा को लेकर परेशान एवं चिंतित है, पर पेड़ की कौन सुनेगा और कौन आंसू पोंछने आएगा।

ग्राम-शिवप्रसादनगर, पोस्ट-बंजा
तहसील-भैयाथान,
जिला-सरगुजा (छ.ग.)

पर्यावरण संरक्षण हेतु परियोजना

इं. एस.एन. तिवारी

परमात्मा ने मानव को पृथ्वी ग्रह पर हवा, पानी, पेड़-पौधों एवं जीव-जंतुओं के साथ पैदा किया! धीरे-धीरे मानव जाति ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप अपना विकास किया एवं जीवन जीने में आ रही समस्याओं का उपाय खोजा। मानव ने प्रकृति के प्रकोपों जैसे—तेज हवा, बरसात, आंधी, तूफानों से बचने के लिए गुफाओं में आश्रय बनाए। ठंड से बचाव के लिए पहले जानवरों की खाल के कपड़े पहने। जंगली जानवरों से बचाव के लिए पत्थर, लकड़ी, धातु आदि के हथियार बनाए। सुरक्षा एवं सामाजिकता के लिए साथ रहना सीखा। कबीले, ग्राम, नगर बसाने शुरू किए। पेट भरने के लिए शिकार करने के अलावा खेती-बाड़ी शुरू की। इन सबके लिए जमीन तैयार करना शुरू किया। साथ ही, ईंधन, औजार, साजोसामान, घरेलू उपकरणों के लिए भी लकड़ी का उपयोग किया, फलस्वरूप जंगलों से पेड़ों की कटाई और ज्यादा होने लगी।

धीरे-धीरे मानव जाति पूरी पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में बसने लगी और अपनी गुजर-बसर के लिए जंगलों का सफाया कर लकड़ी का ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग करने लगी। आवागमन के साधन लकड़ी से बनाए जाने लगे। इस प्रकार जंगलों का उत्तरोत्तर अधिक उपयोग होने लगा एवं जंगल धीरे-धीरे कम होने लगे। कबीलों से होते हुए मानव सभ्यता राज्यों, सल्तनतों, साम्राज्यों तक पहुंची और विकास की गति बढ़ती गई। फिर पृथ्वी पर वैज्ञानिक दौर शुरू हुआ और वैज्ञानिक खोजों एवं आविष्कारों से दुनिया भर गई, परंतु इस दौर में मानव ने अपनी आवश्यकता से आगे जाकर, लालच का हाथ थाम लिया। फलस्वरूप जंगलों के उपयोग के स्थान पर जंगलों का दोहन प्रारंभ हो गया और लालची मानव ने जंगलों, वातावरण, भूमि, खनिज, पानी इत्यादि प्रकृति प्रदत्त वरदानों का ऐसा दोहन किया कि आज खुद मानव सभ्यता के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। पृथ्वी पर इतना प्रदूषण फैल गया है कि पर्यावरण संरक्षण यदि अभी नहीं किया गया तो प्रलय आने से कोई रोक नहीं पाएगा।

बिना पर्यावरण संरक्षण के आज स्थिति यह है कि जंगलों की कटाई हो जाने के कारण वर्षा की स्थिति अनिश्चित हो गई है। जहां अन्य वर्षा होती थी, वहां बाढ़ आ रही है और जहां बाढ़ आती थी, वहां सूखा पड़ रहा है। वर्ष में कभी भी बरसात होने लगती है। कई जीव-जंतु विलुप्ति की कगार पर हैं। हाथी, बंदर इत्यादि जंगली जानवर अक्सर गांवों, शहरों में चले आते हैं, क्योंकि जंगली जानवरों का बसेरा 'जंगल' अब उन्हें कम

पड़ने लगा है। पूरी दुनिया में कल-कारखानों का ऐसा जाल बिछा हुआ है कि उनसे निकलने वाली ग्रीनहाउस गैसों जैसे—कार्बन मोनो ऑक्साइड, कार्बन डाइ ऑक्साइड, मीथेन इत्यादि ने न क़ेवल गांवों, शहरों के वातावरण को दमघोंटू बना दिया है, वरन् अब तो आसमान में ओजोन परत को भी क्षतिग्रस्त कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ तो सूरज की अल्ट्रा वायलेट किरणों का खतरा बढ़ गया है, दूसरी तरफ ग्लोबल वार्मिंग होने से ध्रुवों पर जमी बर्फ पिघलने का अंदेशा हो गया है। हो सकता है किसी दिन ध्रुवों की सारी बर्फ पिघल जाए और समुद्र तल इतना ऊंचा हो जाए कि पूरी धरती समुद्र में समा जाए। वाहनों से निकलने वाले धुएं से शहरों का वातावरण सांस लेने लायक नहीं रह गया है, परंतु कोई दूसरा रास्ता नहीं होने के कारण ऐसे वातावरण में रहने वाले बाशिंदे तरह-तरह की बीमारियों से ग्रस्त हो रहे हैं।

प्राकृतिक जल-धाराओं को मानव जाति ने तरह-तरह के ठोस अपशिष्टों, रसायनों आदि से इतना प्रदूषित कर दिया है कि प्राकृतिक जल किसी उपयोग के लायक नहीं रह गया है। जल प्रदूषण के कारण जलीय वनस्पति एवं जीव-जंतुओं का जीवन खतरे में पड़ गया है। जहां एक ओर प्राकृतिक जलधाराओं (नदियों) ने मानव सभ्यता को उसके किनारे बसने के लिए प्रेरित किया था (इसी कारण ज्यादातर सभ्यताएं नदी किनारे ही विकसित हुई हैं), अब स्थिति यह है कि नदियों के प्रदूषित पानी ने नदियों को गंदे नालों का रूप दे दिया है, जिनमें साल में केवल कुछ महीने पानी रहता है, शेष वर्ष में केवल गंदगी बहती है और गंदगी, बदबू किनारे के निवासियों का जीवन दुष्कर किए हुए है। मानवीय क्रियाकलापों ने धरती को भी (शहरों को भी) प्रदूषण मुक्त नहीं छोड़ा है। आज गांवों, शहरों में जहां देखो, वहां गंदगी फैली रहती है, क्योंकि ठोस अवशिष्टों का सही तरीके से निदान नहीं किया जाता है। खासकर पॉलीथिन का अत्यधिक उपयोग हो रहा है और कचरे के रूप में निकलने वाले प्लास्टिक, पॉलीथिन नष्ट नहीं होती और वातावरण को प्रदूषित करती है। कई दफा कल-कारखानों (जैसे—पेपर इंडस्ट्री, शुगर इंडस्ट्री, डिस्टीलरी) से निकलने वाले रसायनों को आस-पास की जमीन पर ही फैला दिया जाता है, जिससे इन कारखानों के आस-पास इतनी बदबू आने लगती है कि कोई प्राणी वहां गुजर-बसर नहीं कर सकता। आज खेती किसानी में रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों का अंधाधुंध उपयोग हो रहा है, जिससे पूरी कृषि भूमि प्रदूषित हो गई है और सिंचाई के पानी द्वारा ये सारे रसायन खेतों से होते हुए नदी-नालों एवं भूमिगत जल स्रोतों में मिल रहे हैं। रसायनों के उपयोग के कारण सारे कृषि उत्पाद, डेयरी उत्पाद प्रदूषित हो चुके हैं। इन प्रदूषित उत्पादों के उपयोग के कारण मानव शरीर में खतरनाक रसायनों की मात्रा खतरे की सीमा तक पहुंच रही है।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि पृथ्वी पर सभी जगह प्रदूषण का प्रभाव पड़ चुका है और अब हमें पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण मुक्ति की किसी परियोजना पर कार्य करना ही होगा। चूंकि पर्यावरण को प्रदूषित मानवों ने ही किया है, अतः इस परियोजना की शुरुआत मानवों की सोच एवं क्रियाकलापों में सुधार लाने से करना होगी। इस दिशा में 'पृथ्वी सम्मेलन' विश्व स्तर पर आयोजित किए जा रहे हैं, जिनमें यही विचार-विमर्श होता है कि पृथ्वी को कैसे बचाया जाए, परंतु अफसोस की बात है कि इन सम्मेलनों में आम

सहमति नहीं बन पाती है। विश्व के वे 10 प्रतिशत देश (जो विकसित हैं) और 90 प्रतिशत पर्यावरण प्रदूषण के लिए जिम्मेदार हैं, अपने कल-कारखानों से कार्बन उत्सर्जन की मात्रा प्रभावी रूप से कम करने को तैयार नहीं होते हैं। उनका प्रयास ये होता है कि शेष विश्व, जो अविकसित है या विकासशील है, में कल-कारखाने सीमित किए जाएं ताकि कार्बन उत्सर्जन बढ़े नहीं। परोक्ष रूप से विकसित देश यही चाहते हैं कि शेष विश्व उनपर निर्भर रहे और ज्यादा विकास न कर पाए। परंतु शेष विश्व को निरंतर प्रयास करना होगा और इसी तरह के सम्मेलनों का आयोजन जारी रखकर सारे विश्व का ध्यान इस बात पर लाना होगा कि जब तक विकसित देश अपनी महत्वाकांक्षा नहीं छोड़ते और तय नहीं करते, तब तक प्रदूषण को कम करना कठिन होगा।

कल-कारखानों से निकलने वाले ठोस, द्रव एवं गैस अवशिष्टों (Waste) को पहले कारखाने में शुद्ध करने का नियम है, तभी उन्हें वातावरण में या नदी-नालों में मिलाया जाना चाहिए। हकीकत यह है कि कारखानों के मालिक Waste Treatment पर खर्च नहीं करना चाहते। इससे कारखाने के आस-पास का वातावरण कारखाने के कचरे से प्रदूषित होता रहा है। इस प्रकार Waste Treatment के लिए बने नियम को निष्प्रभावी होते देखा जा सकता है। उपरोक्त दो उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कैसे प्रदूषण नियंत्रण एवं पर्यावरण संरक्षण के उपाय होते हुए भी उनके परिणाम देखने को नहीं मिलते। इंसानों की लापरवाही और लालच छोड़ना होगा, नहीं तो सर्वनाश सुनिश्चित है।

व्यक्तिगत तौर पर हर व्यक्ति को इस दिशा में ईमानदार प्रयास करना होगा तो ही पर्यावरण संरक्षण हो पाएगा। आज हर व्यक्ति को अपना-अपना वाहन चाहिए, जिनकी वाहन चलाने की उम्र नहीं है, उन्हें भी वाहन चाहिए। स्त्री, पुरुष, बच्चे, वृद्ध सभी को अलग वाहन चाहिए। दस कदम जाना हो तो भी वाहन चाहिए। वाहनों की ऐसी चाहत से पूरा वातावरण वाहनों के धुएं से ऐसा प्रदूषित है कि घर से बाहर निकलने को जी नहीं करता। इस समस्या का समाधान तभी संभव है, जब हर व्यक्ति कुछ त्याग करने को तैयार हो। हर घर में यथासंभव वाहनों की संख्या सीमित हो। जब तक आवश्यक न हो, वाहन का उपयोग न किया जाए। वाहनों का रख-रखाव ऐसा हो कि वे कम-से-कम प्रदूषण फैलाएं। कार्य स्थल, चाहे वह मंत्रालय हो, कलेक्ट्रेट हो, न्यायपालिका हो या कोई भी सरकारी/ गैर-सरकारी कार्यालय हो, पर भी इस बात का ध्यान रखा जाए कि वाहनों की संख्या अनावश्यक न हो। वाहनों का प्रयोग अनावश्यक न हो और वाहनों का रख-रखाव ठीक से हो। हर जगह जहां तक संभव हो, साझेदारी से वाहनों का उपयोग हो। भारी वाहनों जैसे—ट्रकों का रख-रखाव होता रहे, ताकि वे कम प्रदूषण फैलाएं। यदि उपरोक्त सब हो पाए तो ईंधन की खपत में एवं वाहनों द्वारा प्रदूषण में भारी कमी हो सकती है। देखने में आता है कि आजकल 'लेटेस्ट' का खूब प्रचलन है। चाहे वे कपड़े हो, पेन, मोबाइल, कम्प्यूटर, टी.वी., फ्रिज हो या अन्य कोई उपयोगी वस्तु हो, यदि उसमें जरा-सा भी तकनीकी सुधार होकर नया मॉडल आता है तो लोग लपककर नये मॉडल को अपनाते हैं, भले ही पुराने मॉडल से आवश्यकतापूर्ति हो रही हो। इस 'लेटेस्ट' के चक्कर में आज विश्व में इतना ज्यादा इलेक्ट्रॉनिक कचरा जमा होता जा रहा है, जिसका प्रबंधन असंभव-सा लगने लगा है। एक जमाना था, जब लोग अपनी पुरानी वस्तुओं को सहेजकर रखते थे

और सगर्व सभी को दिखाते थे और प्रशंसा पाते थे। आज जमाना उलटा है, जहां 'ओल्ड इज नो गोल्ड एंड लेटेस्ट इज फिटेस्ट' है। मैं समझता हूं कि यदि लोग नयी वस्तुएं खरीदने में उतावली न करें और पुरानी वस्तु जब तक उपयोगी हो उसका उपयोग करें तो काफी कुछ इलेक्ट्रॉनिक कचरे से मुक्ति मिल सकती है। यदि हर व्यक्ति एक पेड़ प्रतिवर्ष लगाकर उसका रख-रखाव चालू कर दे तो सामाजिक वानिकी सही अर्थों में सफल होगी। हर घर में यदि रेन हार्वेस्टिंग सिस्टम लग जाए, तो पानी की वर्ष भर कमी न हो। हर व्यक्ति को चाहिए कि सोलर एनर्जी का जहां तक संभव हो उपयोग करे, क्योंकि बिजली पैदा करने में भी बहुत पर्यावरण का नुकसान होता है। हर व्यक्ति कम-से-कम बिजली की खपत करे। वो यह तो कर ही सकता है कि काम खत्म होने के बाद जाने से पहले बिजली का स्विच ऑफ कर दे, इससे काफी बिजली की बजत की जा सकती है।

आज आवास एवं व्यवसाय के लिए मल्टी स्टोरी बिल्डिंग बनाने का चलन है, जो कि बहुत उपयोगी है। मल्टी स्टोरी बिल्डिंग में कम जगह में ज्यादा लोगों का काम चलता है, जो कि पर्यावरण के लिए अच्छी बात है। आज जरूरत इस बात की है कि संसाधनों, चाहे वह जमीन हो, पानी हो का उचित तरीके से उपयोग हो। रि-साइक्लिंग की आज महती आवश्यकता है। जिस भी चीज की (पॉलीथिन की, पानी की, इलेक्ट्रॉनिक सामान की इत्यादि) रि-साइक्लिंग संभव हो, की जानी चाहिए, इसमें काफी कुछ प्रदूषण नियंत्रण होगा। कागज के उपयोग में यदि मितव्यतता बरती जाए तो हम काफी जंगलों को बचा पाएंगे। हर जगह कागज का उपयोग होता है, साथ ही कागज की बहुत बर्बादी भी की जाती है। कागज बनाने में बहुत लकड़ी खर्च होती है। अतः यदि कागज की बर्बादी बंद हो जाए तो पर्यावरण के नुकसान को रोका जा सकता है। कम्प्यूटर का उपयोग हर जगह होता है, इसके कारण कई काम पेपर लैस भी हो गए है, अर्थात् जहां कागज के उपयोग की जरूरत ही नहीं पड़ती। आज ज्यादा आवश्यकता इस बात की है कि ज्यादा-से-ज्यादा कार्य पेपर लैस हो जाएं, यह पर्यावरण संरक्षण में बहुत सहायक होगा।

पर्यावरण संरक्षण की परियोजना के उपरोक्त समस्त उपायों का बड़े पैमाने पर इलेक्ट्रॉनिक एवं पेपर, दोनों मीडिया द्वारा प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए, ताकि जब समाज के सामने बार-बार उपायों की जानकारी दी जाएगी, तब समाज में इन उपायों को अपनाना शुरू किया जाएगा। जिस प्रकार बच्चों के टीकाकरण, पोलियो ड्रॉप्स, आयकर भरने की सूचना, जागो ग्राहक जागो के अभियान का प्रचार-प्रसार किया जाता है और उसके सुखद परिणाम भी देखने को मिलते हैं, उसी प्रकार पर्यावरण संरक्षण के उपायों का भी खूब प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए ताकि हर नागरिक पर्यावरण संरक्षण के अभियान में जुड़ सके और अपना-अपना सहयोग इस दिशा में दे सकें। फिर वह दिन दूर नहीं होगा कि पर्यावरण संरक्षण की इस योजना से हमारा वातावरण स्वच्छ होगा, स्वास्थ्यप्रद होगा और चूंकि सभी व्यक्ति इस अभियान में शामिल होंगे, सभी अपने आप पर गर्व महसूस करेंगे और बेहतर पर्यावरण का आनंद उठाएंगे।

सहायक अभियंता,
कार्यालय मुख्य अभियंता,
हसदेव कछार,. बिलासपुर

जलवायु परिवर्तन : कारण एवं प्रभाव

ललित मिश्रा

तेजी से हो रहे जलवायु परिवर्तन की समस्या 'हवा-पानी' रहित खतरनाक भविष्य का शंखनाद कर दिया है। समय रहते समाधान नहीं किया गया तो आने वाला कल अकल्पनीय होगा। यह समस्या अंतर्राष्ट्रीय समस्या का रूप ले चुकी है। विकसित या विकासशील देश ही नहीं, अपितु विश्व का पूरा देश इसकी चपेट में है। इसलिए विश्व के तमाम देश व संयुक्त राष्ट्र संघ इस समस्या से निजात पाने के लिए गंभीरता से विचार कर रहे हैं।

डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. की एक रिपोर्ट के अनुसार अगले 50 साल में दुनिया उजड़ जाएगी। यह महज किसी ज्योतिषी की भविष्यवाणी नहीं हैं, बल्कि पर्यावरण से जुड़े ख्याति के वैज्ञानिकों की है। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि जिस रफ्तार से दुनिया के संसाधनों की लूट हो रही है, उसके हिसाब से पचास साल के अंदर दुनिया की आबादी की जरूरतों को मुहैया कराने के लिए पृथ्वी जैसे कम-से-कम दो और ग्रहों पर कब्जा करने की आवश्यकता पड़ जाएगी। पर्यावरण से जुड़ी दुनिया की सबसे मशहूर संस्था वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड (डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ.) की ताजा रिपोर्ट में यह बात कही गई है। इसके लिए सबसे अधिक दोषी अमेरिका को बताया गया है। वैज्ञानिकों की इस चेतावनी को पर्यावरणविदों की एक और चेतावनी कहकर टालने का जोखिम भी नहीं उठाया जा सकता है, क्योंकि दुनिया के संसाधनों के सन् 2050 तक लुट जाने की बात पूरी तरह पुष्ट वैज्ञानिक आंकड़ों के आधार पर कही गई है। इंग्लैंड के अखबार आब्जर्वर की वेबसाइट के अनुसार वैज्ञानिकों ने कहा है कि संसाधनों के दोहन की रफ्तार अगर यही रही तो समुद्रों से मछलियां गायब हो जाएंगी और कार्बन डाई ऑक्साइड सोखने वाले सारे जंगल उजड़ जाएंगे। इसके बाद शुद्ध पानी का भयानक संकट छा जाएगा।

डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. की इस रिपोर्ट में वैज्ञानिक साफ चेतावनी देते हैं कि या तो हमें अपनी अय्याशी की लाइफ स्टाइल को बदल देना चाहिए या फिर पृथ्वी के जैसे ही दो और ग्रहों की तलाश कर उन पर कब्जे की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए, क्योंकि सन् 2050 तक तो यह पृथ्वी हमारे लिए बेकार हो जाएगी। वैज्ञानिक उत्तरी अटलांटिक सागर का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि सन् 1970 में यहां काड मछली का करीब 2 लाख 64 हजार टन भंडार था, जो कि सन् 1995 में घटकर 60 हजार टन ही रह गया है। सन् 1970 से 2002 के बीच पृथ्वी पर से जंगल का प्रतिशत 12 फीसदी कम हो गया है। ताजा पानी

का भंडार 55 फीसदी घट चुका है और समुद्री जीवन भी घटकर एक-तिहाई ही रह गया है। ये सभी तथ्य एक खतरनाक भविष्य की ओर इशारा करते हैं, जिससे अभी तक तो यह दुनिया अनजान ही नजर आती है। डब्ल्यू. डब्ल्यू.एफ. के अनुसार खतरा मनुष्यों के लिए ही नहीं, बल्कि 350 तरह के स्तनधारियों, पक्षियों, मछलियों आदि के लिए भी हैं। इनमें से कई प्रजातियों की संख्या पिछले 30 साल में ही आधी से अधिक घट गई हैं। इस रिपोर्ट में अमेरिका को सबसे अधिक लताड़ा गया है और कहा गया है कि अमेरिका का एक औसत नागरिक ब्रिटेन के नागरिक की तुलना में संसाधनों का दो गुना और कई एशियाई और अफ्रीकी नागरिकों की तुलना में 24 गुना अधिक खर्च करता है। इस रिपोर्ट में अनाज, मछली, लकड़ी और ताजा पानी के खर्च तथा उद्योगों और वाहनों द्वारा कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन के आधार पर हर देश के लिए एक आंकड़ा (फुटप्रिंट) तैयार किया गया है, जो यह बताता है कि देश-विदेश का एक व्यक्ति रहने के लिए औसतन कितनी जमीन का इस्तेमाल करता है। अमेरिका के लिए यह आंकड़ा 12.2 हेक्टेयर है तो ब्रिटेन के लिए 6.29 हेक्टेयर। दूसरी ओर गरीब अफ्रीकी देश इथियोपिया के लिए यह आंकड़ा 2 हेक्टेयर है, जबकि बुरुंडी जैसे देश के लिए सिर्फ आधा हेक्टेयर।

हाल ही में अमेरिका में सहस्राब्दी परितंत्र मूल्यांकन (मिलेनियम इकोसिस्टम इवैल्यूएशन) के निदेशक मंडल की ओर से वक्तव्य जारी किया गया है कि इस पृथ्वी के क्रियाकलापों में मानव की बढ़ती दखलंदाजी से अब यह दावा नहीं किया जा सकता है कि भावी पीढ़ी के लिए भी पृथ्वी की यही क्षमता कायम रह सकेगी। निदेशक मंडल का यह निष्कर्ष 1300 वैज्ञानिकों के चार साल के गहन विश्लेषण पर आधारित है। इन वैज्ञानिकों ने पाया है कि हमारी अर्थव्यवस्था को प्राकृतिक प्रणालियों से उपजी चौबीस प्रकार की सेवाएं चल रही हैं, जैसे पीने का पानी, जलवायु का नियमन, प्राणवायु का निमार्ण, ऊर्जा का प्रवाह, खाद्य-शृंखला आदि। इन सेवाओं में से पंद्रह को हम इनके स्थायीपन की सीमा से पीछे धकेल चुके हैं। धरती पर तापमान बढ़ रहा है, वन तेजी से सिकुड़ रहे हैं, जनसंख्या और वाहन बढ़त बनाए हुए हैं। जैव विविधता को सहेजने वाली मूंगा चट्टानों (कोरल रीफ्स) का चालीस प्रतिशत पतन हो चुका है। नदियों और झीलों से पानी का दोहन सन् 1960 के मुकाबले दो गुना बढ़ चुका है। जीवों की प्रजातियां प्राकृतिक दर से एक हजार गुना ज्यादा तेजी से विलुप्त हो रही है। 13 करोड़ टन प्रतिवर्ष की दर से मछलियां पकड़ी जा रही हैं। ग्रीन हाउस गैसों में कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन बढ़ा है। जीवाश्म ईंधन का उपयोग बढ़ा है, यही कारण है कि जलवायु परिवर्तन तेजी से हो रहा है। कार्बन डाई ऑक्साइड जैसे घातक गैस को शोषित करने वाले प्राकृतिक इकोसिस्टम का कार्य शिथिल होता दिख रहा है।

मानव सभ्यता के 10 हजार सालों में इतनी तपन कभी नहीं बढ़ी जो 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक और 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक में महसूस की गई। तापमान बढ़ने से ग्लेशियर पिघल रहे हैं। समुद्री जल स्तर बढ़ रहा है। तबाही स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। वैज्ञानिक इस ओर लगातार ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं, जिसे अनदेखा करते हुए वोट की राजनीति के चलते तात्कालिक विकास की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन निरंतर जारी है। विश्व के समस्त देश को चाहिए कि वे अपने राष्ट्रीय एजेंडे में वोट की मानसिकता

से हटकर देश, विश्व, मानव तथा जीव-जंतु की सुरक्षा के लिए 'पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण निवारण योजनाओं' को प्राथमिकता दें, ताकि जलवायु परिवर्तन पर रोक लगाई जा सके, तभी हम आने वाली पीढ़ी के भविष्य को सुरक्षित रखने के साथ ही देवतुल्य प्रकृति पर बढ़ते दबाव को संतुलित कर सकेंगे, इसी में जीवन रक्षा निहित है।

पृथ्वी का औसत तापमान 18वीं शताब्दी के बाद से अब तक 0.6 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ गया है, जो सन् 2100 तक 9.58 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ जाने की संभावना है। पिछले 20 वर्षों में तापमान केवल मानव गतिविधियों के कारण ही बढ़ा है। अतः सहज ही समझा जा सकता है कि पृथ्वी पर सन्निकट पर्यावरणीय संकट एवं जलवायु परिवर्तन के लिए अगर कोई दोषी है तो वह केवल मानव ही है।

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र महासचिव वानकी मून ने कहा है कि जलवायु परिवर्तन से दुनिया को युद्ध जितना ही खतरा है। जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर अपने पहले भाषण में वानकी मून ने कहा कि पर्यावरण में बदलाव भविष्य में युद्ध और संघर्ष की बड़ी वजहें बन सकते हैं। महासचिव ने विश्व में सबसे अधिक ग्रीन हाउस गैस छोड़ने वाले अमेरिका से अपील की कि वह ग्लोबल वार्मिंग के खिलाफ अभियान का नेतृत्व करे। उन्होंने कहा मानव युद्ध से अधिक खतरा ग्लोबल वार्मिंग से है, इसलिए पर्यावरण रक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्त राष्ट्रों के बीच बेहतर समन्वय की जरूरत है।

इस संकट का सबसे बड़ा कारण सभ्यता, विकास और औद्योगीकरण के लिए कोयले और पेट्रोलियम पदार्थों जैसे फासिल फ्यूएल्स का अंधाधुंध उपयोग, जनसंख्या वृद्धि, जल को बेहिसाब उपयोग, वनों की अंधाधुंध कटाई, वायुमंडल का सुरक्षा कवच ओजोन परत, जो सूर्य के खतरनाक रेडिएशन को रोकता है, उसका खतरे में पड़ना, जीव-जंतु का लगातार कम होना, ये सब ऐसे कारण हैं, जिससे विश्व का मानव समुदाय भयाक्रांत है। इस समस्या के समाधान के लिए पूर्व में बर्सिलोना तथा क्योटो शहर में तमाम देशों की बैठकें हो चुकी हैं। हाल ही में कोपेनहेगेन (दिसंबर 7 से 18, डेनमार्क) में भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बैठक हुई है। भारत ने भी ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में स्वेच्छा से कटौती का फैसला ले लिया है।

पर्वतों पर आच्छादित बर्फ सूर्य की किरणों को वापस अंतरिक्ष में भेजकर पृथ्वी को ठंडा रखती है। ऐसे हिम चादर के पिघलने से समुद्र तटीय दुनिया के आधी आबादी के शरण स्थल में बाढ़ से तबाही का खतरा मंडरा रहा है। पृथ्वी का तापमान 1520 सेंटीग्रेड से 1532 डिग्री सेंटीग्रेड हो चुका है। 40 वर्षों में पृथ्वी का तापमान 27 डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ जाएगा। सन् 2003 में 45 हजार लोगों की मृत्यु यूरोप में दो हफ्ते के भीतर हुई थी।

समुद्र तटों तथा बड़ी नदी के मुहानों पर बसे मुंबई, चेन्नई, देश की राजधानी दिल्ली जैसे दुनिया के बड़े शहरों के सिर पर बाढ़ का खतरनाक साया मंडराने लगा है। समुद्री जल के स्तर में बढ़ोतरी से तटीय क्षेत्र के मीठे पानी के स्रोतों में खारा पानी मिल जाने से समूचे इकोसिस्टम असंतुलित हो जाएगा। सूखा, गर्म हवाएं (लू), चक्रवात, तूफान और झंझावात जैसी आपदाएं जल्दी-जल्दी आने लगेंगी। कृषि उपज में प्रतिकूल परिवर्तन, गर्मियों में जलधारा में कमी, प्रजातियों का लोप और रोगवाही जीवाणुओं के प्रकार व मात्रा में वृद्धि हो जाएगी। मच्छरों का प्रकोप बढ़ेगा। वनों, खेतों और शहरों में नये-नये कीड़े-मकोड़ों का आतंक बढ़ सकता है, जिससे मच्छर-जनित रोग बढ़ेंगे।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के सबसे बड़े स्रोत कोयले से ऊर्जा (60 प्रतिशत), वनों का ह्रास (18 प्रतिशत), खेती (14 प्रतिशत), औद्योगिक प्रक्रियाएं (4 प्रतिशत) और अपशिष्ट (4 प्रतिशत) है। विकासशील देशों ने जहां विश्व की 80 प्रतिशत से अधिक आबादी निवास करती है। 1751 से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जित भंडार में सिर्फ 20 प्रतिशत का योगदान किया है। बड़े विकासशील देशों जैसे कि भारत, चीन, ब्राजील व दक्षिण कोरिया अभी भी प्रति व्यक्ति उत्सर्जन में विकसित देशों से कई गुना पीछे है। विश्व बैंकों के अनुसार जहां विकसित देशों में प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति उत्सर्जन 13 टन है, विकासशील देशों में यह 3 टन से भी कम है। अमेरिका में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन भारत की तुलना में 20 गुना अधिक है। विश्व में सिर्फ 15 प्रतिशत जनसंख्या के साथ अमीर देश कार्बन डाई ऑक्साइड के 47 प्रतिशत से अधिक उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार है।

भारतवर्ष ओजोन परत को सुरक्षित रखते हुए मानवता के रक्षा के लिए पूर्णतः प्रतिबद्ध है। भारत मांट्रियल संघ (1987) में इंग्लैंड संशोधन के साथ सन् 1992 में शामिल हुआ और हमारे यहां ओजोन प्रकोष्ठ एक राष्ट्रीय संस्थान के रूप में उसी समय से काम कर रहा है। ओजोन प्रकोष्ठ की स्थापना ही ओजोन परत को नष्ट होने से बचाने के लिए की गई है। इसके अतिरिक्त हमारा देश पर्यावरण परिवर्तन के विषय में संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन का भी सदस्य है। इस संबंध में ग्रीनिंग इंडिया के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं में अनुदान देकर सहायता भी की जा रही है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम में भारतवर्ष में भू-क्षरण पर राष्ट्रीय स्वक्षमता आवश्यकता आंकलन का कार्य भी शुरू किया है। इन सबके अलावा भारत सरकार का विशेष प्रयास पर्यावरण शिक्षा और प्रशिक्षण के विषय में जन-जागरूकता का प्रचार-प्रसार भी करना है।

250 वर्ष के विश्व इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि अत्यधिक भोग ने भूमि का दोहन अंतिम सीमा तक कर लिया है। जिस मशीनी युग का विकास व्यक्ति के सुख के लिए किया गया है, वही उसके दुःख का कारण बन गया है। प्रतिवर्ष 63000 वर्ग मील जंगल नष्ट हो रहे हैं। सन् 2030 तक ऊर्जा की मांग 50 प्रतिशत तक बढ़ सकती है, जिसमें भारत और चीन की जरूरत सबसे ज्यादा होगी। विश्व का 40 प्रतिशत मीठा पानी वर्तमान में पीने योग्य नहीं रह गया है। विश्व के दो लाख लोग प्रतिदिन गांवों या छोटे शहरों से बड़े शहरों की ओर जा रहे हैं। इससे भी पर्यावरण पर बुरा असर पड़ा रहा है।

विश्व पर्यावरण दिवस को हम भले ही सन् 1972 से मनाते आए हैं। पर, ऐसे लोग भी हुए हैं, जिन्होंने पर्यावरण दिवस मनाने का इंतजार नहीं किया और अपने ही स्तर पर वे पर्यावरण की रक्षा के लिए लड़ते रहे।

बिरसा मुंडा–छोटा नागपुर क्षेत्र में बिरसा मुंडा ने आदिवासियों को उनके जंगल के अधिकारों के संबंध में जागृत किया और उनके अधिकारों के लिए खुद भी लड़ाई लड़ी। सन् 1900 में अंग्रेजों की कैद में उनकी रहस्यमय तरीके से मौत हो गई।

चिको मेंडास–ब्राजील के चीको को मजदूरों का नेता कहा जाता था। वे रबर उत्पादक कंपनियों से मजूदरों के अधिकारों के लिए लड़ते रहे। इसी दौरान उन्हें इस बात का एहसास हुआ कि अगर लगातार पेड़ कटते रहे तो ब्राजील के रेन-फॉरेस्ट का नामोनिशान मिट

जाएगा। उन्होंने इन कंपनियों का बड़े पैमाने पर विरोध करना आरंभ कर दिया। लगातार कई वर्षों तक विरोध करने के बाद सन् 1988 में उनकी हत्या हो गई।

केनसारो वीवा–नाइजीरिया की सरकार व वहां मौजूद तेल कंपनियों ने ओगोनो क्षेत्र में पर्यावरण को काफी नुकसान पहुंचाया था। केनसारो वीवा ने इसका काफी विरोध किया था तथा अहिंसक आंदोलन भी चलाया। सन् 1995 में उन्हें फांसी दे दी गई।

रेशल कारसन–रेशल की सन् 1962 में लिखी किताब साइलेंट स्प्रिंग ने पेस्टिसाइड्स तथा इंडस्ट्रियल केमिकल्स के प्रति लोगों का नजरिया बदल दिया। इस किताब के बाद पेस्टिसाइड्स बनाने वाली कई अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों को लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा।

लुईस गिब्स–घरेलू महिला लुईस को सन् 1978 में इस बात का एहसास हुआ कि वे जिस क्षेत्र में रह रही हैं, वह जहरीले कचरे को फेंकने का स्थल था। यह अमेरिका में नियाग्रा फॉल्स के पास स्थित लव केनाल क्षेत्र था। लुईस ने इस संबंध में पहल की और काफी बड़ा विरोध आंदोलन किया जो सफल रहा।

मसानोबू फुकोओका–जापान के माइक्रोबॉयलाजिस्ट की किताब 'द वन स्ट्रा रिवोल्युशन 1978' ने छोटे किसानों की आवाज उठाई। उनकी इस किताब के बाद ही कई किसान आर्गेनिक खेती करने के लिए प्रेरित हुए।

जलवायु परिवर्तन ठीक करना वैश्विक जिम्मेदारी है। हम इसें नहीं निभा रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण में बढ़ोतरी के लिए धनी और औद्योगिक देश जिम्मेदार हैं तो अन्य देश भी आंशिक रूप से इसमें शामिल हैं, वहीं संपूर्ण मानव समाज भी इसके लिए दोषी है। आज पर्यावरण जितना बिगड़ चुका है, उसका पैसे से हिसाब लगाया जाए तो उस पैसे से पूरी धरती यानी दुनिया भर के वंचित समाजों की गरीबी दूर की जा सकती है। ऐसा हो जाए, तब वास्तव में धरती को बेचने की कोशिशें ईमानदारी से फलीभूत हो सकती हैं।

प्रदेश संयोजक, चेतना साहित्य एवं कला परिषद्
प्रदेश महासचिव, विकास संस्कृति साहित्य परिषद्
छत्तीसगढ़ सदन, कैलाशपुरी, रायपुर (छ.ग.)

पारिस्थितिक तंत्र एवं पर्यावरण प्रदूषण

श्रीमती कुसुम वर्मा

अंतरिक्ष से सुदूर ग्रह में करोड़ों वर्षों से मानव जीवन का संधारण और संवर्धन हुआ है, परंतु आज की परिवर्तनशील परिस्थिति में पर्यावरण पर हुए घटनाओं ने मानव जीवन को ही अस्तित्वहीन बनाने की स्थिति में ला खड़ी कर ली है।

आज 'विकास' और 'बिगड़ता पर्यावरण' दोनों ही समस्याएं गंभीर से गंभीरतम होती जा रही है। ये दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं।

सच ही में पर्यावरण में वायु, जल, पौधे और जंतु तो आते ही हैं, साथ ही इन सभी गुण-धर्मों के साथ-साथ और भी अनेक तत्वों का समावेश है। इसके अंतर्गत प्राकृतिक और मानवीय प्रक्रियाओं द्वारा परिवर्धित घटनाओं का संपूर्ण आधार बन जाता है। अतः यह स्पष्ट रूप से पर्यावरण में जैविक, अजैविक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक तत्व आ जाते हैं। जैविक तत्व में पेड़-पौधे और जंतु शामिल हैं। वायु, जल, मृदा और ऐसे ही अन्य अजीवित पदार्थ अनैतिक घटक के अंतर्गत आते हैं।

पर्यावरण के अध्ययन के तहत जीवों और उनके पर्यावरण का अध्ययन किया जाता है। संपूर्ण ग्रह को आधार मानकर देखा जाए तो पर्यावरण का अध्ययन करने से ही संपूर्ण जैव मंडल का अध्ययन हो जाता है। जैव मंडल में, जहां किसी-न-किसी तरह का जीवन विद्यमान है। यद्यपि समुद्र की अनंत गहराइयों से आरंभ होकर, पर्वतों के शिखरों तक संपूर्ण जगह पर विस्तारित है, तथापि अधिकांश जीवन पृथ्वी की सतह के नीचे और कुछ मीटर ऊपर तक व्याप्त है। जैव मंडल का विस्तार पृथ्वी की सतह से अनुमानित 10,000 मीटर ऊंचाई तक, समुद्र में लगभग 8,000 मीटर की गहराई तक और पृथ्वी की सतह के नीचे 250 मीटर तक इसका विस्तार है।

जीवन के अधिकांश रूप, सामान्य जीवन परिस्थितियों और भोजन स्रोतों में सीमित रहते हैं, साथ-ही-साथ किसी जाति विशेष के जीवों का पोषण समस्त जैव मंडल के परिप्रेक्ष्य में संतुलित होता है। इस प्रकार जैव मंडल वास्तविक में एक प्रकार का विश्व जैव तंत्र है, जो ऊर्जा और पोषक तत्वों के चक्रीय प्रवाह पर आश्रित है। जैव मंडल को सामान्यतः तीन बड़े तंत्रों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **लियास्फीअर**—इसके अंतर्गत पृथ्वी का ठोस भाग उदाहरण के रूप में चट्टानें, मृदा और अवसादी तत्वों को लिया जा सकता है।

2. **हाइड्रोस्फीअर**—इसके अंतर्गत समुद्र और अलवणीय जल आता है।

3. एटमांस्फीअर—इसके अंतर्गत गैसीय भाग आता है जिसमें वायुमंडल सम्मिलित है।

उपरोक्त तीनों तंत्र आपस में और इनमें से प्रत्येक जीवन के विभिन्न रूपों से सभी प्रकार से जुड़े हुए हैं।

पारिस्थितिक तंत्र

जैव-मंडल में वनस्पतियों और जंतुओं की असंख्य जातियां सम्मिलित हैं। जीवन-तंत्र सभी प्रकार से आत्मनिर्भर है। फिर भी कोई पौधा या जंतु अकेला ही जीवन बिता नहीं सकता, वह अपने पर्यावरण पर निर्भर रहता है। सभी प्राणियों को विशेषतः भोजन, जल और खनिज ग्रहण करना और अनुपयोगी पदार्थों को त्याग देना पड़ता है अपने शरीर का एक अनुकूल तापमान बनाए रखना होता है। जीवों और उनके पर्यावरण की परस्पर क्रियाओं का अध्ययन पारिस्थितिकी जिसे इकोलॉजी कहते हैं, कहलाता है। जीव अपने पर्यावरण के अजीवित तत्वों से क्रिया के परिणामस्वरूप सम्मिलित रूप से एक तंत्र का निर्माण करता है, इसे ही पारिस्थितिक तंत्र कहा जाता है।

इकोतंत्र जीवित (कार्बनिक या जैविक) और अजीवित (अकार्बनिक या अजैविक) तत्वों की पारस्परिक अंतःक्रियाओं और उनकी परस्पर निर्भरता का समुच्चय है। अतः स्पष्ट रूप से इस ग्रह पर उपस्थित समस्त इकोतंत्र को संयुक्त रूप से जैव मंडल की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

'इकोतंत्र' शब्द विभिन्न आवृत्ति के सभी स्थानों के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे—इसे पानी के छोटे से गड्ढे के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है और बड़े वन के लिए भी उपयोग में लाया जा सकता है। विभिन्न इकोतंत्रों का संगठन पृथक-पृथक होता है। ये भिन्नताएं जातियों की संख्या, अजैविक तत्वों के प्रकार और उनके सापेक्ष परिमाण और देश-काल की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की होती है। ईंधनों की महंगाई से उत्पन्न ऊर्जा संकट औद्योगिक सभ्यता के लिए एक चुनौती है। इस चुनौती से खतरा उत्पन्न हो गया है।

विकासशील देशों की पर्यावरणीय समस्याएं, समृद्ध और औद्योगिक रूप से विकासशील देशों की समस्याओं से बिल्कुल अलग-थलग है, जहां प्रदूषण की समस्या मुख्य है। विकासशील देशों की स्थिति राजा टांटालस की स्थिति जैसी ही है, जिसे देवताओं के आदेश की अवमानना के जुर्म में भूख और प्यास की त्रासदी झेलनी पड़ी थी। उसे समस्त जल और खाद्य सामग्री के होते हुए भी भूख और प्यास त्रसित था। ठीक इसी तरह इन विकासशील देशों के पास पर्याप्त प्राकृतिक संपदा तो है, परंतु इन संपदाओं का सामान्य उपयोग इन देशों की पहुंच से बस थोड़ा-सा ही दूरी है।

भारत की कई पर्यावरणीय समस्याएं दूसरे देशों के समान ही है, किंतु उसकी समस्याएं भी हैं। तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि, अनियोजित शहरी और औद्योगिक विकास, सीमांत भूमि पर कृषि का विस्तार और उस पर अतिक्रमण, वनों तथा प्राकृतिक संपदा का अंधाधुंध दोहन करना आता है। भूमि के कटाव में वृद्धि, जल स्रोतों में गाद या तलछट का जमाव, भूस्खलन, नदियों के क्षेत्रों की अनियमितताएं, जलस्तर में गिरावट, प्रदूषण और गिरावट और जीवन की गुणवत्ता में गिरावट भी परिलक्षित स्पष्ट है।

प्रदूषण के विभिन्न स्रोत

प्रदूषण के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं–

1. मानव बस्तियां–जनसंख्या में वृद्धि होती जा रही है। समूहों में लोग रह रहे हैं, उनके आकार तथा संख्या में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। बस्ती की निवासियों की कुछ आधारभूत मांग होती है, जैसे—आवास, भोजन, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, संरक्षण, परिवहन आदि-आदि, जिससे मांग तथा पूर्ति का संतुलन बिगड़ा है। जनसंख्या के अनुपात में नागरिक सेवाओं में पर्याप्त पूर्ति कर पाना संभव नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप गांवों में गंदगी, कस्बों में भीड़-भाड़, नगरों में शोर-गुल तथा अव्यवस्था का प्रसार हुआ है, औद्योगीकरण भी बढ़ा है। उद्योग प्रायः शहरों में और उसके आस-पास ही स्थापित किए जाते हैं। रोजगार के लिए लोगों का जत्था गांवों से शहरों की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जिससे शहरों की आबादी तबदील हो रही है। इन सभी उद्योगों के आस-पास झोपड़-पट्टियों के विस्तार के साथ-साथ गंदगी और अव्यवस्था होने लगी है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उद्योगों की स्थापना सुनियोजित ढंग से हो।

2. उद्योग--बड़े प्रदूषण के प्रमुख कारण उद्योग-धंधे ही हैं, विभिन्न औद्योगिक प्रक्रमों के अंतर्गत कई प्रदूषक तत्व उप-उत्पाद के रूप में निकलते हैं। अधिकांश औद्योगिक उप-उत्पाद बिना उपचार किए ही नदी-तालाबों में विसर्जित कर दिए जाते हैं या फिर उन्हें खाली भूमि पर वैसे ही बहा दिया जाता है। इससे पर्यावरण का गंभीर प्रदूषण होना संभव है। कई औद्योगिक अवशेष अति विषैले होते हैं, जिनका पर्यावरण में आकर मिल जाना खूब घातक सिद्ध होता है। प्रदूषण की समस्या से बचने के लिए अति आवश्यक होगा कि नये उद्योग नियोजित रूप से शहर तथा आवासीय बस्तियों से दूर निर्मित किए जाएं।

3. कृषि--कृषि के आधुनिकीकरण के साथ-ही-साथ कीटनाशी, पेस्टनाशी उर्वरकों के समुचित जानकारी के अभाव, कृषक फसलों पर इन पदार्थों का पर्याप्त से अधिक छिड़काव करते हैं। खेतों में पड़े अतिरिक्त उर्वरक या अन्य पदार्थ वर्षा के समय जल में बहकर नदियों तथा तालाब में मिल जाता है तथा कीटनाशी दवाओं तथा खरपतवार नाशी दवाओं के फलों तथा सब्जियों के साथ हमारे शरीर में पहुंचने की भी संभावना बनी रहती है।

4. ऊर्जा उत्पादन प्रक्रियाएं–मानव के दैनिक जीवन में समस्त कार्यों के लिए ऊर्जा एक आवश्यक घटक है। यह ऊर्जा लकड़ी, कोयला, मिट्टी का तेल, पेट्रोल इत्यादि ईंधनों के दहन से मिलती है। विविध दहन प्रक्रमों के दौरान धुआं, गैसें तथा कोयला कण निकलते हैं, जो वायुमंडल में मिलकर उसके प्रदूषण होने का कारक बने हैं।

ताप विद्युत घरों में कोयला, ईंधन के रूप में दहन किया जाता है। इससे बड़ी मात्रा में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, कोयला कण तथा अन्य प्रदूषक तत्व उत्पन्न होते हैं। बड़ी तादात में कोयले की राख निकलती है, जिसे विसर्जित करना एक समस्या होती है। विसर्जन व्यवस्था का अभाव होने से इन पदार्थों से पर्यावरण प्रदूषित होना संभव है।

परमाणविक विद्युत घरों में निकले अवशिष्टों में रेडियो-धर्मी तत्व विद्यमान होते हैं, जो गंभीर प्रदूषण को निमंत्रण देते हैं।

जल-प्रदूषण

जल, जीवन के लिए प्रथम सोपान है। बिना जल के जीवन नहीं जिया जा सकता। मानव शरीर में दो-तिहाई भाग जल ही है। जल शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्वों के संवहन का कार्य भी करता है, इसीलिए मानव स्वास्थ्य के लिए शुद्ध जल आवश्यक है।

जल-प्रदूषण के कारण

सामान्यतः जल प्रदूषण निम्न कारणों से होता हैं–

1. घरेलू अपजल (Domestic Effluents)
2. वाहित मल (Sewage)
3. औद्योगिक उपजल (Industrial Effluents)
4. कृषि बर्हिस्राव (Agricultural Effluents)
5. उष्मीय या तापीय प्रदूषण (Thermal Pollution)
6. रेडियोएक्टिव अपशिष्ट तथा अवपात (Radio Active Waste and Fallouts)
7. तेल प्रदूषण (Oil Pollution)

नियंत्रण के उपाय

1. जहां तक संभव हो किसी भी प्रकार के अपशिष्ट या अपशिष्टयुक्त जल को जलाशयों में मिलने नहीं दिया जाना चाहिए।
2. पेय जल के स्रोतों के आस-पास कूड़ा-कचरा अथवा अन्य अनावश्यक पदार्थ एकत्र नहीं किए जाने चाहिएं।
3. नदी तथा तालाबों में पशुओं को नहलाने पर भी पाबंदी होनी चाहिए।
4. जलाशयों में नहाने, कपड़ा धोने इत्यादि को रोका जाना चाहिए।
5. उद्योगों के निकलने वाले अपशिष्ट जल को शुद्ध करने के बाद ही जल स्रोतों में मिलाना चाहिए।

वायु प्रदूषण

वर्तमान में औद्योगिक चिमनियों से उत्सर्जित धुआं एवं धूल कण, मोटर गाड़ियों से निकला धुआं तथा विविध मानवीय क्रिया-कलापों से उड़ने वाली धूल इत्यादि हमारे आस-पास की वायु को निरंतर प्रदूषित कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर दहन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप वायुमंडल की मात्रा में कमी आ रही है।

औद्योगिक क्षेत्रों में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के हाइड्रोजन, क्लोरीन, नाइट्रोजन के ऑक्साइड, अमोनिया, बेरीलियम, सीसा, आर्सेनिक, केडमियम, एस्बेस्टास, बेंजोपाइरिन एवं मुख्य रूप से रेडियो एक्टिव पदार्थ हैं, जिनके कारण दमा, श्वसनी-शोथ, गले का दर्द आदि रोग होते हैं। अति प्रदूषित वायु में अधिक समय तक रहने से फेफड़े का कैंसर जैसे घातक रोग होने की संभावना रहती है।

यह निश्चित है कि विकासशील देशों में बढ़ती आबादी जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकास करना जरूरी है। प्रत्येक प्रकार की विकास प्रक्रिया का एक आधार होना आवश्यक है और वह एक दिए गए सामाजिक, आर्थिक पर्यावरण की पृष्ठभूमि में संभाव्य है।

विकसित और विकासशील देशों के बीच एक घना असंतुलन बना हुआ है। इसके सुधार के लिए यह जरूरी है कि अहितकारी और हानिकारक, आंतरिक और बाहृय तत्वों द्वारा विकासशील देशों के स्रोतों के उपयोग पर रोक लगे। आज भारत के साथ अनेक देश आर्थिक और सामाजिक उत्थान के लिए नये विकल्प ढूंढने की प्रक्रिया में हैं। विकास का प्रथम लक्ष्य तो आखिर मानव का हित संरक्षण ही है और यही पर्यावरणीय गुणवत्ता के लिए भी आवश्यक है और जरूरी भी है।

171/1, मैत्रीकुंज,
रिसाली, भिलाई (छ.ग.)

पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं उपाय

मनीला

बढ़ता प्रदूषण वर्तमान समय की एक सबसे बड़ी समस्या है, जो आधुनिक और तकनीकी रूप से उन्नत समाज में तेजी से बढ़ रहा है। इस समस्या से समस्त विश्व अवगत तथा चिंतित है। प्रदूषण के कारण मनुष्य जिस वातावरण या पर्यावरण में रहा है, वह दिन-ब-दिन खराब होता जा रहा है। कहीं अत्यधिक गर्मी सहन करनी पड़ रही है तो कहीं अत्यधिक ठंड। इतना ही नहीं, समस्त जीवधारियों को विभिन्न प्रकार की बीमारियों का भी सामना करना पड़ रहा है। प्रकृति और उसका पर्यावरण अपने स्वभाव से शुद्ध, निर्मल और समस्त जीवधारियों के लिए स्वास्थ्य-वर्द्धक होता है, परंतु किसी कारणवश यदि वह प्रदूषित हो जाता है तो पर्यावरण में मौजूद समस्त जीवधारियों के लिए वह विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न करता है।

ज्यों-ज्यों मानव सभ्यता का विकास हो रहा है, त्यों-त्यों पर्यावरण में प्रदूषण की मात्रा बढ़ती ही जा रही है। इसे बढ़ाने में मनुष्य के क्रियाकलाप और उनकी जीवन-शैली काफी हद तक जिम्मेवार है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने कई नये आविष्कार किए हैं, जिससे औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण मनुष्य दिन-प्रतिदिन वनों की कटाई करते हुए खेती और घर के लिए जमीन पर कब्जा कर रहा है। खाद्य पदार्थों की आपूर्ति के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग किया जा रहा है, जिससे न केवल भूमि, बल्कि जल भी प्रदूषित हो रहा है। यातायात के विभिन्न नवीन साधनों के प्रयोग के कारण ध्वनि एवं वायु प्रदूषित हो रहे हैं। गौर किया जाए तो प्रदूषण वृद्धि का मुख्य कारण मानव की अवांछित गतिविधियां हैं, जो प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करते हुए इस पृथ्वी को कूड़े-कचरे का ढेर बना रही हैं। कूड़ा-कचरा इधर-उधर फेंकने से जल, वायु और भूमि प्रदूषित हो रहे, जो संपूर्ण प्राणी-जगत् के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

पर्यावरण प्रदूषण चार प्रकार का होता है–

1. जल प्रदूषण,
2. वायु प्रदूषण,
3. भूमि प्रदूषण और
4. ध्वनि प्रदूषण।

जल प्रदूषण

जल समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है। आधुनिक मानव सभ्यता के विकास के साथ जल प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है। औद्योगीकरण के कारण

शहरीकरण की प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। जो पहले गांव हुआ करते थे, वे अब विभिन्न उद्योगों की स्थापना के बाद शहरों में तब्दील हो रहे हैं। शहरों में अत्यधिक आबादी होने के कारण फ्लैट निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ रही है, ताकि एक फ्लैट में तीन से छह परिवार आसानी से रह सकें। इन फ्लैटों में कम स्थान पर पानी की आवश्यकता अधिक होती है और वहां के भूमिगत जल भंडार पर दबाव बढ़ रहा है। डीप बोरिंग निर्माण करते हुए वहां के भूमिगत जल का दोहन किया जा रहा है।

उद्योगों के अत्यधिक निर्माण से उनसे निकलने वाले दूषित जल, बचे हुए रसायन, कचरा आदि को नालियों के रास्ते नदी में बहा दिया जाता है। फ्लैट में रहने वाले लोगों के दैनिक क्रियाकलापों से उत्पन्न कचरे को नदी किनारे फेंका जाता है, जिससे नदियों का जल प्रदूषित होता है। शहर के समीप रहने वाली बस्तियों में उचित शौचालय की व्यवस्था नहीं होती, या होती भी है तो वह सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाती है, जिससे वहां के लोग प्रायः नदी या तालाब किनारे की जमीन या नालियों का प्रयोग शौच के लिए करते हैं। बारिश में यह सारी गंदगी नदियों या तालाबों में जा मिलती है। बस्तियों में कचरे की निकासी की उचित व्यवस्था न होने पर प्रायः लोग कचरे को तालाब या नदी के पानी में डाल देते हैं। तालाबों एवं नदियों के पानी का इस्तेमाल नहाने एवं कपड़े धोने के अलावा पशुओं को नहलाने के लिए भी किया जाता है, जिससे उनके शरीर की गंदगी पानी में घुल जाती है। कपड़े धोए जाते हैं, कचरा, मल-मूत्र डाला जाता है, पुराने कपड़े, शवों की राख, सड़े-गले पदार्थ डाले जाते हैं, इतना ही नहीं कभी-कभी शवों को नदियों में बहा दिया जाता है।

नदियों, तालाबों के जल एवं भूमिगत जल को तो मनुष्यों ने प्रदूषित किया ही है। प्रदूषित करने में इसने सागर के जल को भी नहीं छोड़ा। सागर किनारे कई स्थलों पर पर्यटकों का आना-जाना लगा रहता है, जिससे सागर किनारे कई छोटी-बड़ी बस्तियां बस गई हैं। वहां के लोगों का जीवन-यापन पर्यटकों को विभिन्न प्रकार की सामग्रियां बेचकर होता है। उन बस्तियों में किसी प्रकार के शौचालय की व्यवस्था नहीं है, अगर है भी तो वे सुचारू रूप से कार्यरत नहीं हैं, जिसके कारण बस्ती के लोग सागर के पानी में ही शौच करते हैं तथा घर के कूड़े-कचरे को भी सागर के जल में बहा देते हैं, जिससे सागर का जल प्रदूषित होता है। विभिन्न तकनीकों के विकास के कारण सागर के जल में बड़े-बड़े जहाज चलते हैं, जो यात्रियों के आवागमन एवं सामग्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का काम करते हैं। जहाज अपनी साफ़-सफाई के पश्चात् गंदगी को प्रायः समुद्र के पानी में डाल देते हैं। कभी-कभी किसी दुर्घटनावश जहाज डूब जाता है तो उसमें मौजूद रासायनिक पदार्थ, तेल आदि समुद्र के पानी में मिल जाते हैं और लंबे समय तक उसमें रहने वाले जीव-जंतुओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते रहते हैं। जल दूषित हो जाने के कारण कुछ जीव तत्काल मर जाते हैं और जल को और अधिक प्रदूषित कर देते हैं। दूषित जल में रहने वाले जलीय जीवों का सेवन करने से मनुष्य भी बीमार पड़ते हैं। विकसित देश प्रायः अपने देश की गंदगी व ई-कचरा को समुद्र में डाल देते हैं, जिससे जल बुरी तरह से दूषित होता है।

प्रारंभ में जब तकनीक का विकास नहीं हुआ था, तब लोग प्रकृति व पर्यावरण से सामंजस्य बैठाकर जीवन-यापन करते थे, परंतु तकनीकी विकास एवं औद्योगीकरण के कारण आधुनिक मनुष्य में आगे बढ़ने की होड़ उत्पन्न हो गई। इस होड़ में मनुष्य को केवल अपना स्वार्थ दिखाई पड़ रहा है। वह यह भूल गया है कि इस पृथ्वी पर उसका

वजूद प्रकृति एवं पर्यावरण के कारण ही है। यह भी पर्यावरण प्रदूषण का एक मुख्य कारण है। प्राकृतिक रूप से जल में जीवों के मरने व जीव-जंतुओं के नहाने से ही जल प्रदूषित हो सकता है, परंतु मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए न केवल जल का प्रयोग नहाने व पीने के लिए करता है, बल्कि उसमें घर का कचरा, उद्योगों का कचरा भी डालता है। किसान खेतों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं, ताकि उनकी फसल अच्छी हो, फसल में कीड़े न लगें, इसलिए कीटनाशकों का भी छिड़काव किया जाता है। वर्षा के पानी के साथ ये सभी रासायनिक तत्व तालाब और नदी-नालों में चले जाते हैं और वहां के जल को प्रदूषित करते हैं।

उद्योग अपनी गदंगी को सीधे तौर पर नदियों-नालों में डालते ही हैं, साथ ही उनके धुएं की निकासी सही तरीके से नहीं की जाती है, जिससे धुएं का तैलीय अंश आस-पास के संचित जल भंडार के ऊपर एक काली परत के रूप में जमा रहता है और जल को प्रदूषित करता है।

वायु प्रदूषण

मनुष्य ने न केवल जल को प्रदूषित किया है, बल्कि अपने विभिन्न क्रियाकलापों एवं तकनीकी वस्तुओं के प्रयोग द्वारा वायु को भी प्रदूषित किया है। वायुमंडल में सभी प्रकार की गैसों की मात्रा निश्चित है। प्रकृति में संतुलन रहने पर इन गैसों की मात्रा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता, परंतु किसी कारणवश यदि गैसों की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है तो वायु प्रदूषण होता है। अन्य प्रदूषणों की तुलना में वायु प्रदूषण का प्रभाव तत्काल दिखाई पड़ता है। वायु में यदि जहरीली गैस घुली हो तो वह तुरंत ही अपना प्रभाव दिखाती है और आस-पास के जीव-जंतुओं एवं मनुष्यों की जान ले लेती है। भोपाल गैस कांड इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। विभिन्न तकनीकों के विकास से यातायात के विभिन्न साधनों का भी विकास हुआ है। एक ओर जहां यातायात के नवीन साधन आवागमन को सरल एवं सुगम बनाते हैं, वहीं दूसरी ओर ये पर्यावरण को प्रदूषित करने में अहम् भूमिका निभाते हैं। नगरों में प्रयोग किए जाने वाले यातायात के साधनों में पेट्रोल और डीजल ईंधन के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। पेट्रोल और डीजल के जलने से उत्पन्न धुआं वातावरण को प्रदूषित करता है।

औद्योगीकरण के युग में उद्योगों की भरमार है। विभिन्न छोटे-बड़े उद्योगों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं के कारण वायुमंडल में सल्फर डाइऑक्साइड और हाइड्रोजन सल्फाइड गैस मिल जाते हैं। ये गैस वर्षा के जल के साथ पृथ्वी पर पहुंचते हैं और गंधक का अम्ल बनाते हैं, जो पर्यावरण व उसके जीवधारियों के लिए हानिकारक होता है। चमड़ा और साबुन बनाने वाले उद्योगों से निकलने वाली दुर्गंध-युक्त गैस पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं। सीमेंट, चूना, खनिज आदि उद्योगों में अत्यधिक मात्रा में धूल उड़ती है और वायु में मिल जाती है, जिससे वायु प्रदूषित होती है। धूल मिश्रित वायु में सांस लेने से प्रायः वहां काम करने एवं रहने वालों को रक्तचाप, हृदय रोग, श्वास रोग, आंखों के रोग और टी.बी. जैसे रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।

जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होने से मनुष्य के रहने का स्थान दिन-ब-दिन छोटा पड़ता जा रहा है, इसलिए मनुष्य वनों की कटाई कर अपने रहने के लिए आवास का निर्माण कर रहा है। शहरों में एलपीजी तथा किरोसीन का प्रयोग खाना बनाने के लिए किया

जाता है, जो एक प्रकार की दुर्गंध वायु में फैलाते हैं। कुछ लोग जलावन के लिए लकड़ी या कोयले का इस्तेमाल करते हैं, जिससे अत्यधिक धुआं निकलता है और वायु में मिल जाता है। स्थान एवं जलावन के लिए मनुष्य वनों की कटाई करते हैं। वनों की कटाई से वायुमंडल में ऑक्सीजन की मात्रा घट रही है और कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है और वायु प्रदूषित हो रही है। मनुष्य द्वारा विभिन्न प्रकार के तकनीकी उपकरणों का सहारा लेकर विस्फोट, गोलाबारी, युद्ध आदि किए जाते हैं। विस्फोट होने से अत्यधिक मात्रा में धूलकण वायुमंडल में मिल जाते हैं और वायु को प्रदूषित करते हैं। बंदूक का प्रयोग एवं अत्यधिक गोलीबारी से बारूद की दुर्गंध वायुमंडल में फैलती है। संप्रति मनुष्य अपने आराम के लिए प्लास्टिक की वस्तुओं का इस्तेमाल करते हैं और टूटने या फटने की स्थिति में उन्हें इधर-उधर फेंक देता है। सफाई कर्मचारी प्रायः सभी प्रकार के कचरे के साथ प्लास्टिक को भी जला देते हैं, जिससे वायुमंडल में दुर्गंध फैलती है। तकनीक संबंधी नवीन प्रयोग करने के क्रम में कई प्रकार के विस्फोट किए जाते हैं तथा गैसों का परीक्षण किया जाता है। इस दरम्यान कई प्रकार की गैस वायुमंडल में घुलकर उसे प्रदूषित करती है। हानिकारक गैसों के अत्यधिक उत्सर्जन के कारण 'एसिड रेन' होती है, जो मानव के साथ-साथ अन्य जीवित प्राणियों तथा कृषि—संबंधी कार्यों के लिए घातक होती है। दफ्तर एवं घरेलू उपयोग में लाए जाने वाले फ्रिज और एयरकंडीशनरों के कारण क्लोरो-फ्लोरो कार्बन का निर्माण होता है, जो सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों से हमारी त्वचा की रक्षा करने वाली ओजोन परत को क्षति पहुंचाती है। विभिन्न उत्सवों के अवसर पर अत्यधिक पटाखेबाजी से भी वायु प्रदूषित होती है। वायु प्रदूषण से पर्यावरण अत्यधिक प्रभावित होता है।

भूमि प्रदूषण

भूमि समस्त जीवों को रहने का आधार प्रदान करती है। यह भी प्रदूषण से अछूती नहीं है। जनसंख्या वृद्धि के कारण मनुष्य के रहने का स्थान कम पड़ता जा रहा है, जिससे वह वनों की कटाई करते हुए अपनी जरूरत को पूरा कर रहा है। वनों की निरंतर कटाई से न केवल वायुमंडल में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है और ऑक्सीजन की मात्रा घट रही है, बल्कि जमीन में रहने वाले जीव-जंतुओं का भी संतुलन बिगड़ रहा है। पेड़, भूमि की ऊपरी परत को तेज वायु से उड़ने तथा पानी में बहने से बचाते हैं और भूमि उर्वर बनी रहती है। पेड़ों की निरंतर कटाई से भूमि के बंजर बनने एवं रेगिस्तान बनने की संभावनाएं बढ़ रही हैं। इस प्रकार वनों की कटाई से प्रकृति का संतुलन बिगड़ता है। प्रकृति के संतुलन में परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण है। जनसंख्या वृद्धि से अनाज की मांग भी बढ़ गई है। कृषक अत्यधिक फसल उत्पादन के लिए रासायनिक खादों का इस्तेमाल करते हैं एवं फसल को कीड़ों से बचाने के लिए कीटनाशकों का भी छिड़काव करते हैं, जिससे भूमि प्रदूषित होती है। भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन किया जा रहा है तथा कचरे का ढेर यहां-वहां बिखेरा जा रहा है। भूमिगत जल के अलावा भूमि में मौजूद खनिज पदार्थों का अत्यधिक दोहन करने से भूस्खलन की समस्या उत्पन्न होती है। कचरे के रूप में प्लास्टिक का क्षय नहीं होता। वह जिस स्थान पर अत्यधिक मात्रा में होता है, वहां के पेड़-पौधों में उचित वृद्धि नहीं हो पाती, जिससे भूमि दूषित होती है।

तकनीकी युग में आधुनिक मानव ने कई नये हथियारों का आविष्कार कर लिया है, ताकि सरलतापूर्वक शत्रु का नाश किया जा सके। युद्ध में इन हथियारों का प्रयोग किए जाने से युद्धभूमि में तो अत्यधिक लोग मारे ही जाते हैं, साथ ही आस-पास के इलाकों में भी जीव-जंतु मारे जाते हैं, जिससे भूमि प्रदूषित होती है।

शहरीकरण की प्रवृत्ति ने दिखावे की संस्कृति को जन्म दिया है। इस कारण लोग अत्यधिक मात्रा में प्लास्टिक में पैक साम्रगी का इस्तेमाल करना पसंद करते हैं। 'घर का खाना' के स्थान पर डिब्बे में बंद खाना लोगों को अधिक प्रिय लगता है, जिससे भूमि में कूड़े-कचरे का अत्यधिक ढेर लगता है और भूमि प्रदूषित होती है।

ध्वनि प्रदूषण

मानव सभ्यता के विकास के प्रारंभिक चरण में ध्वनि प्रदूषण गंभीर समस्या नहीं थी, परंतु मानव सभ्यता ज्यों-ज्यों विकसित होती गई और आधुनिक उपकरणों से लैस होती गई, त्यों-त्यों ध्वनि प्रदूषण की समस्या विकराल व गंभीर हो गई है। संप्रति यह प्रदूषण मानव जीवन को तनावपूर्ण बनाने में अहम् भूमिका निभाता है। तेज आवाज न केवल हमारी श्रवण शक्ति को प्रभावित करती है, बल्कि यह रक्तचाप, हृदय रोग, सिर दर्द, अनिद्रा एवं मानसिक रोगों का भी कारण है। औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में देश के कोने-कोने में विविध प्रकार के उद्योगों की स्थापना हुई है। इन उद्योगों में चलने वाले विविध उपकरणों से उत्पन्न आवाज से ध्वनि प्रदूषित होती है। विभिन्न मार्गों चाहे वह जलमार्ग हो, वायुमार्ग हो या फिर भू-मार्ग, सभी तेज ध्वनि उत्पन्न करते हैं। वायुमार्ग में चलने वाले हवाई जहाज, रॉकेट एवं हेलीकॉप्टर की भीषण गर्जन ध्वनि प्रदूषण बढ़ाने में सहायक होती है। जलमार्ग में चलने वाले जहाजों का शोर एवं भू-मार्ग में चलने वाले वाहनों के इंजन की आवाज के साथ उनके हॉर्न ध्वनि-प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। मनोरंजन एवं जन-संचार के विभिन्न माध्यमों द्वारा तेज आवाज में ध्वनि प्रेषित की जाती हैं। लाउडस्पीकरों द्वारा सभा एवं जलसों में बोलकर सभा को संबोधित किया जाता है एवं सूचना प्रेषित की जाती है। विभिन्न उत्सवों के अवसर पर जोर-जोर से गाने बजाए जाते हैं। जन-संपर्क अभियान चलाने के लिए भी लाउडस्पीकर का प्रयोग किया जाता है और जनता तक सूचना प्रेषित की जाती है। विज्ञापन दाता भी कभी-कभी अपने उत्पादों का प्रचार तेज आवाज में करते हैं। डीप बोरिंग करवाने के क्रम में, क्रशर मशीन चलाने, डोजर से खुदाई करवाने के क्रम में अत्यधिक शोर होता है। शादी-विवाह या धार्मिक अनुष्ठान के अवसर पर वाद्य यंत्रों का अत्यधिक शोर ध्वनि को प्रदूषित करता है। इसके अलावा यह अनावश्यक, असुविधाजनक और अनुपयोगी ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण

पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण पाने के लिए सर्वप्रथम जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगानी होगी, ताकि आवास के लिए वनों की कटाई न हो। खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि हो, इसके लिए रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के स्थान पर जैविक खाद का इस्तेमाल करना होगा। कूड़े-कचरे को पुनः प्रयोग करना होगा, जिससे यह पृथ्वी कूड़े-कचरे का ढेर बनने से बच जाएगी। कारखानों से निकलने वाले गंदे पानी को सीधे नदी-नाले में न डालकर, उनकी सफाई करते हुए नदियों में बहाना होगा। यातायात के विभिन्न

साधनों का प्रयोग जागरूकता के साथ करना होगा। अनावश्यक रूप से हॉर्न का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जब जरूरत न हो तब इंजन को बंद करना एवं नियमित रूप से गाड़ी के साइलेंसर की जांच करवानी होगी, ताकि धुएं के अत्यधिक प्रसार को नियंत्रित किया जा सके। उद्योगपतियों को अपने स्वार्थ को छोड़ उद्योगों की चिमनियों को ऊंचा करना होगा तथा उद्योगों को प्रदूषण नियंत्रण के नियमों का पालन करना होगा। हिंसक क्रियाकलापों पर रोक लगानी होगी। सबसे जरूरी बात यह कि लोगों को पर्यावरण संबंधी संपूर्ण जानकारी प्रदान करते हुए जागरुक बनाना होगा, तभी प्रदूषण पर नियंत्रण पाया जा सकता है। आम लोगों को जागरुक बनाने के लिए उन्हें पर्यावरण के लाभ और उसके प्रदूषित होने पर उससे होने वाली समस्याओं की विस्तृत जानकारी देनी होगी। लोगों को जागरूक करने के लिए उनके मनोरंजन के माध्यमों द्वारा उन्हें आकर्षक रूप में जागरूक करना होगा। यह काम समस्त पृथ्वीवासियों को मिलकर करना होगा, ताकि हम अपने उस पर्यावरण को और प्रदूषित होने से बचा सकें, जो हमें जीने का आधार प्रदान करता है। अत्यधिक शोर उत्पन्न करने वाले वाहनों पर रोक लगानी होगी।

प्रदूषण चाहे किसी भी प्रकार का क्यों न हो, हर हाल में मानव एवं समस्त जीवधारियों के अलावा जड़-पदार्थों को भी नुकसान पहुंचाती हैं।

पर्यावरण प्रदूषण रोकने के उपाय

पर्यावरण की सुरक्षा से ही प्रदूषण की समस्या को सुलझाया जा सकता है। पर्यावरण शब्द दो शब्दों के मेल से बना है—परि और आवरण। 'परि' शब्द का अर्थ है बाहरी तथा आवरण का अर्थ है कवच अर्थात् पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है बाहरी कवच, जो नुकसानदायक तत्वों से वातावरण की रक्षा करता है। यदि हम अपने पर्यावरण को ही असुरक्षित कर दें तो हमारी रक्षा कौन करेगा? इस समस्या पर यदि हम आज मंथन नहीं करेंगे तो प्रकृति संतुलन स्थापित करने के लिए स्वयं कोई भयंकर कदम उठाएगी और हम मनुष्यों को प्रदूषण का भयंकर परिणाम भुगतना होगा। प्रदूषण से बचने के लिए हमें अत्यधिक पेड़ लगाने होंगे। प्रकृति में मौजूद प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करने से बचना होगा। हमें प्लास्टिक की चीजों के इस्तेमाल से परहेज करना होगा। कूड़े-कचरे को इधर-उधर नहीं फेंकना होगा। वर्षा के जल का संचय करते हुए भूमिगत जल को संरक्षित करने का प्रयास करना होगा। पेट्रोल, डीजल, बिजली के अलावा हमें ऊर्जा के अन्य स्रोतों से भी ऊर्जा के विकल्प ढूंढने होंगे। सौर ऊर्जा व पवन ऊर्जा के प्रयोग पर बल देना होगा। अनावश्यक एवं अनुपयोगी ध्वनियों पर रोक लगानी होगी। तकनीक के क्षेत्र में नित्य नये-नये प्रयोग व परीक्षण हो रहे हैं। हमें ऐसी तकनीक का विकास करना होगा, जिससे यातायात के साधनों द्वारा प्रदूषण न फैले। सबसे अहम बात यह है कि हम मनुष्यों को अपनी पृथ्वी को बचाने के लिए सकारात्मक सोच रखनी होगी तथा निःस्वार्थ होकर पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए कार्य करना होगा। हमें मन में यह ध्येय रखकर कार्य करना होगा कि हम स्वयं अपने आपको, अपने परिवार को, देश को और इस पृथ्वी को सुरक्षित कर रहे हैं।

जमशेदपुर, झारखंड

प्राकृतिक स्रोतों का संरक्षण एवं पर्यावरण

डॉ. क्रांति कुमार सिन्हा

मनुष्य अपनी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पृथ्वी पर ही निर्भर है। जीवन के लिए आवश्यक समस्त तत्व पृथ्वी पर ही विद्यमान हैं, अतः समग्र मानव जाति का विकास इन्हीं तत्वों पर आधारित है। इनके अभाव में मानव जाति व अन्य जीव-जंतुओं के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पृथ्वी पर ये समस्त आवश्यक तत्व प्राकृतिक स्रोत कहलाते हैं। वायु, जल, भूमि, पेड़-पौधे, खनिज पदार्थ तथा सूर्य का प्रकाश आदि महत्वपूर्ण प्राकृतिक स्रोत हैं।

प्राकृतिक स्रोत के अंतर्गत दो प्रकार की संपदाएं आती हैं–

1. **नवीनीकृत प्राकृतिक संपदाएं (Renewable Natural Resources)**–जल, वायु, वन, सूर्य का प्रकाश।
2. **अनवीनीकृत प्राकृतिक संपदाएं (Non-Renewable Natural Resources)**– कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस व कीमती धातुएं।

नवीनीकृत संपदाओं से तात्पर्य है जिनका पुनः चक्रण किया जा सके व अनवीनीकृत संपदाएं वे हैं जिनका पुनः चक्रण नहीं किया जा सकता। अतः स्पष्ट है कि प्रकृति में विद्यमान अनवीनीकृत संपदाओं का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

पर्यावरण से तात्पर्य जीवधारियों के आस-पास के वातावरण से है, जिसमें वह निवास करते हैं। इसके अंतर्गत वायु, जल, प्रकाश, मृदा, पेड़-पौधे, समुद्र एवं समस्त जीव-जंतु आ जाते हैं। पर्यावरण पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व पृथ्वी के पारिस्थितिकी-तंत्र की संक्षिप्त चर्चा करना अनिवार्य है, जिससे पर्यावरण पर व्यापक प्रकाश डाला जा सके।

पारिस्थितिकी-तंत्र के दो महत्वपूर्ण घटक हैं–

1. जैविक घटक (Biotic Components)
2. अजैविक घटक (Abiotic Components)

भू-मंडल का समस्त जैविक समुदाय जैसे–जीव-जंतु या पेड़-पौधे अजैविक घटकों (अकार्बनिक व कार्बनिक) से क्रियात्मक रूप से संबद्ध रहते हैं।

जैविक समुदाय तथा अजैविक समुदाय (निर्जीव परिस्थितियां) में पारस्परिक क्रिया व पदार्थों का आदान-प्रदान होता रहता है। इनमें पारस्परिक निर्भरता बनी रहती है। सरल शब्दों में कहा जाए तो दोनों मिलकर एक ऐसा स्थायी तंत्र बनाते हैं, जो मशीन की तरह

कार्य करता रहता है। इसे ही पारिस्थितिकी-तंत्र (Eco-system) कहते हैं। Eco-system शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम टेन्सले (Tensley) नामक वैज्ञानिक ने सन् 1935 में किया। टेन्सले के अनुसार, 'प्रकृति में उपस्थित सजीवों (पेड़-पौधें एवं जीव-जंतु) एवं निर्जीवों की परस्पर या आपस की क्रियाओं के परिणामस्वरूप बनने वाला तंत्र पारिस्थितिकी-तंत्र (Ecosystem) कहलाता है।'

इस प्रकार किसी स्थान विशेष के जैविक घटक (Biotic Components) व अजैविक घटक (Abiotic Components) की परिस्थितियों का योग पर्यावरण कहलाता है।

किसी भी पारिस्थितिकी-तंत्र में जैविक व अजैविक घटक के अलावा अपघटक (मृतोपजीवी) (Decomposers or Saprophytes) का कार्य भी महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि ये मृत जीवों के शरीर का अपघटन करके अपना पोषण करते हैं तथा जटिल कार्बनिक यौगिकों को सरल यौगिकों में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार ये किसी भी पारिस्थितिकी-तंत्र के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं।

(क) अजैविक घटक (Abiotic Components)–इसके अंतर्गत–

1. **अकार्बनिक घटक (Inorganic Components)**–मृदा, जल, वायु, प्रकाश, खनिज तत्व आदि।
2. **कार्बनिक घटक (Organic Components)**–कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन्स, लिपिड्स, अमीनो अम्ल आदि।
3. **भौतिक घटक (Physical Components)**–जलवायु, ताप, प्रकाश, सौर ऊर्जा।

पृथ्वी पर मुख्यतः दो प्रकार के पारिस्थितिकी-तंत्र पाए जाते हैं–

1. स्थलीय, 2. जलीय।

सभी पारिस्थितिकी-तंत्रों की ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत सूर्य है–

(ख) जैविक घटक (Biotic Components)–के अंतर्गत–

1. **उत्पादक (Producers)**–हरे पौधे, शैवाल।
2. **उपभोक्ता (Consumers)**–जीव-जंतु।
3. **अपघटक (Decomposers)**–जीवाणु (Bacteria), कवक (Fungi) आदि।

जैसा कि हम सभी जानते हैं पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग में जल व 29 प्रतिशत भाग में स्थल है। स्थल का कुछ भाग पर्वत, पठार, हिमाच्छादित व वनाच्छिादित है तो कुछ भाग मरुस्थल का भी है। सभी स्थलों का अपना-अपना पारिस्थितिकी-तंत्र है। साथ ही समुद्र व अन्य जलीय भागों का पारिस्थितिकी-तंत्र भी है, जो स्थलीय पारिस्थितिकी-तंत्र से पृथक है।

यदि वायुमंडल में उपस्थित गैसों की प्रतिशत मात्रा पर नजर डालें तो हमें ज्ञात होता है कि नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, ऑक्सीजन 21 प्रतिशत व कार्बन-डाई-ऑक्साइड 0.03 प्रतिशत व अक्रिय गैसों की मात्रा लगभग 1 प्रतिशत है। पर्यावरण में जैविक घटक के अंतर्गत आने वाले उत्पादक–हरे पौधे प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में CO_2 और H_2O की सहायता से कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं। इस प्रक्रिया में जीवनदायिनी ऑक्सीजन गैस बाहर निकलती है, जो मानव जीवन के लिए अत्यंत

आवश्यक है। इस प्रकार पेड़-पौधे पृथ्वी मंडल से CO_2 गैस ग्रहण कर प्रकृति में गैसों का संतुलन बनाए रखने में हमारी मदद करते हैं। मनुष्य अपनी तमाम भोजन संबंधी आवश्यकताओं के लिए पेड़-पौधों पर आश्रित है। पेड़-पौधे मनुष्य की खाद्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ ऑक्सीजन चक्र, कार्बन डाई ऑक्साइड चक्र व नाइट्रोजन चक्र का संतुलन बनाए रखने में सहायता करते हैं व जल-चक्र को सतत् बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

पारिस्थितिकी-तंत्र में जहां एक ओर जल, वायु, पेड़-पौधे व सूर्य का प्रकाश, नवीनीकृत प्राकृतिक संसाधन (Renewable Resources) हैं, वहीं दूसरी ओर कोयला, प्राकृतिक गैसें तथा पेट्रोलियम एवं खनिज आदि अनवीनीकृत प्राकृतिक ससांधन (Non-renewable Resources) भी हैं।

स्वच्छ व स्वस्थ पर्यावरण के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पारिस्थितिक तंत्र के प्रत्येक घटक का संतुलन बना रहे। यदि प्रकृति के किसी भी घटक में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है, वह पर्यावरण के लिए घातक हो सकती है। प्रत्येक नवीनीकृत संपदा स्वयं के नवीनीकरण हेतु एक निश्चित प्राकृतिक चक्र पर निर्भर रहती है, इसकी भी कुछ सीमाएं होती हैं, यदि इसके संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो यह भविष्य में समाप्त भी हो सकती हैं।

जल संसाधन (Water Resources)

जैसा हम सभी जानते हैं जल ही जीवन है। इसके अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज पर्यावरणीय असंतुलन के कारण विश्व के कई देशों में खतरा उत्पन्न हो गया है। कहीं अतिवृद्धि के परिणामस्वरूप भीषण बाढ़ जैसे हालात उत्पन्न हो गए हैं तो कहीं अनावृष्टि से अकाल जैसे हालात हैं। तमाम वैज्ञानिक शोध इस ओर इशारा कर रही है कि यदि मनुष्य ने समय रहते जल संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया तो आने वाले वर्षों में मीठे जल (पीने योग्य पानी) के लिए संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। आज भूमिगत जल स्रोत का स्तर बड़ी तेजी से नीचे जा रहा है। अतः इसके संरक्षण की ओर ध्यान देने की जरूरत ज्यादा है। इसके लिए मानव द्वारा निम्न उपाय किए जा सकते हैं–

1. वर्षा के जल को पोखर तथा तालाब इत्यादि के माध्यमों से अथवा बांध आदि द्वारा एकत्र कर रखा जाना चाहिए।
2. जल प्रदूषण को रोकने हेतु ठोस व कारगर कदम उठाए जाने चाहिएं।

वायु संसाधन (Air Resources)

वायु एक ऐसा संसाधन है, जिसके अभाव में मनुष्य व कोई भी जीव-जंतु जीवित नहीं रह सकता। पेड़-पौधे O_2 तथा CO_2 गैसों की प्रकृति में संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। अतः वायु के संरक्षण हेतु हमें ज्यादा-से-ज्यादा पेड़-पौधे लगाने चाहिएं। इसके साथ ही वायु संरक्षण हेतु निम्न उपाय किए जाने चाहिएं–

1. प्रदूषण मुक्त वाहनों का प्रयोग।
2. ऐसे कल-कारखानों की स्थापना, जो कम-से-कम वायु प्रदूषण करें।
3. कारखानों की चिमनियां ऊंची बनाई जाएं।
4. वायु प्रदूषण फैलाने वालों के विरुद्ध कठोर कानूनी कार्यवाही की जाए।

वन संसाधन (Forest Resources)

मनुष्य को स्वस्थ वातावरण प्रदान करने में वनों का महत्वपूर्ण योगदान है। जैसा पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है पेड़-पौधे प्रकृति में गैसों का संतुलन बनाए रखने के साथ-साथ वर्षा कराने में भी सहायक होते हैं। इसके साथ ही वे दुर्लभ जीव-जंतुओं का आवास भी होते हैं। अतः इनका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य अपने जीवन की खाद्य आवश्यकताओं के अलावा इमारती लकड़ियां, औषधि तथा ईंधन आदि के लिए वनों पर ही निर्भर रहता है। अतः वनों के संरक्षण हेतु इनकी अंधाधुंध कटाई पर रोक लगाई जानी चाहिए और ज्यादा-से-ज्यादा वन लगाए जाने चाहिएं तथा जनता को इसके संरक्षण हेतु प्रेरित व प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

मृदा संसाधन (Soil Resources)

पृथ्वी की ऊपरी उपजाऊ सतह को मृदा या मिट्टी कहते हैं। वनों के कटाव तथा अत्यधिक वर्षा तथा पशुओं की अनियंत्रित चराई आदि से इसका ह्रास होता है। मृदा संरक्षण हेतु यह आवश्यक है कि वनों के कटाव को रोका जाए, क्योंकि पेड़-पौधों की जड़ें मृदा को बांधकर रखती हैं। मृदा संरक्षण हेतु पशुओं की चराई पर नियंत्रण किया जाना चाहिए। मृदा को विषाक्त होने से बचाने हेतु कम-से-कम कीटनाशकों व उर्वरकों आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए, ताकि मृदा कम-से-कम प्रदूषित हो। रासायनिक उर्वरकों के ...न पर कम्पोस्ट खाद आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

पृथ्वी पर उपस्थित अनवीनीकृत प्राकृतिक संपदा की बात की जाए तो खनिज के साथ इसके अंतर्गत ऊर्जा प्राप्ति के स्रोत कोयला, पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैसें इत्यादि आती हैं। इन्हें जीवाश्म ईंधन भी कहा जाता है, क्योंकि इनका निर्माण पादप एवं जंतुओं के अवशेष से हुआ है। इनके निर्माण में हजारों वर्ष लग जाते हैं। अतः इन प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग सूझ-बूझ व बुद्धिमानी से किया जाना चाहिए। इसी प्रकार पृथ्वी में उपस्थित खनिज भंडार तथा कीमती धातुओं का नवीनीकरण भी नहीं होता, प्रयोग के साथ-साथ इनके भंडार समाप्त होते जा रहे हैं। अतः अत्यंत सावधानीपूर्वक इनका उपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि खनिजों के निर्माण की प्रक्रिया बहुत धीमी है। अतः इसके संरक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो भविष्य में ये भंडार समाप्त हो जाएंगे।

पर्यावरणीय प्रदूषण हेतु सर्वाधिक जिम्मेदार मानव ही है। इसका महत्वपूर्ण कारण तेजी से बढ़ता नगरीकरण व औद्योगीकरण है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तेजी से वनों का विनाश करता जा रहा है। जिस तेजी से वनों का ह्रास हो रहा है, उसकी तुलना में वृक्षारोपण कम हो रहा है। पारिस्थितिकी-तंत्र के महत्वपूर्ण घटक पेड़-पौधों के

ह्रास के कारण वायुमंडल में गैसीय असंतुलन की स्थिति पैदा हो रही है, जिससे CO_2 की प्रतिशत मात्रा बढ़ने के कारण ग्लोबल वार्मिंग जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ पिघलने से समुद्री जल-स्तर में बढ़ोतरी देखी गई है, परिणामस्वरूप सुनामी जैसे हालात पैदा हुए हैं। अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि भी पर्यावरणीय असंतुलन का एक महत्वपूर्ण कारण है। संसाधन सीमित होने व जनसंख्या बढ़ने के कारण भी पर्यावरण में असंतुलन जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः इसके नियंत्रण हेतु ठोस उपाय किए जाने चाहिएं।

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं स्वस्थ व स्वच्छ पर्यावरण निर्माण हेतु हम सभी को अपनी-अपनी जिम्मेदारियां ईमानदारी से निभानी चाहिएं। यद्यपि इसके संरक्षण हेतु सरकारी प्रयास किए जा रहे हैं व कानून भी बनाए गए हैं, फिर भी हमें नैतिक रूप से इसमें अपना सहयोग प्रदान करना चाहिए। यदि समय रहते इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो आने वाली पीढ़ियों के लिए गंभीर संकट पैदा हो जाएगा।

शासकीय उ.मा. विद्यालय हरदीकला, टोना,
विकासखंड-बिल्हा, जिला-बिलासपुर (छ.ग.)

पर्यावरण प्रदूषण एवं उद्योग

श्रीमती अनीता सिंह

प्रदूषण एवं उद्योग दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। जहां उद्योग होगा, वहां प्रदूषण तो होगा ही। उद्योगों की स्थापना स्वयं में एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। प्रत्येक देश में उद्योग अर्थव्यवस्था के मूल आधार होते हैं। यह जीवन की सुख-सुविधाओं, रहन-सहन, शिक्षा-चिकित्सा से सीधे जुड़ा हुआ है। इन सुविधाओं की खातिर मनुष्य नित नये वैज्ञानिक आविष्कारों एवं नये उद्योग-धंधों को बढ़ाने में जुटा हुआ है। औद्योगीकरण ऐसा ही एक चरण है, जिससे देश को आत्मनिर्भरता मिलती है और व्यक्तियों में समृद्धि की भावना को जागृत करती है। भारत इसका अपवाद नहीं है। सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने हमें कुछ नहीं दिया। कुशल कारीगरों की मेहनत ने भी अपने देश को उन्नति के चरण पर नहीं पहुंचाया। सन् 1947 में आजाद देश ने इस दिशा में सोचा और अपने देश की क्रमबद्ध प्रगति के लिए चरणबद्ध पंचवर्षीय योजनाएं बनाई। द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में देश में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ, जो निरंतर बढ़ता ही रहा (आर्थिक मंदी के कारण इसमें शिथिलता भी आई)। एक सर्वेक्षण के अनुसार सत्रह समूहों में विभाजित हजारों बड़े उद्योग (सही संख्या उपलब्ध नहीं) और 31 लाख लघु एवं मध्यम उद्योग वर्तमान में देश में कार्यरत हैं।[1]

संसार में उद्योगों की प्रगति के साथ ही प्रदूषण की भी प्रगति हुई, जो वास्तव में सामान्य प्रदूषण से भी भयावह एवं जानलेवा है।

उद्योगों द्वारा होने वाले प्रदूषण

यह औद्योगिक क्रांति ही थी, जिसने पर्यावरण प्रदूषण को जन्म दिया। बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों के विकास और कोयला और अन्य जीवाश्म ईंधन के बहुत अधिक मात्रा में उपभोग के कारण अप्रत्याशित रूप से प्रदूषण बढ़ा है। किसी भी उद्योग के क्रियाशील होने पर प्रदूषण तो होगा ही। एक उद्योग से संबंधित कम-से-कम निम्न प्रक्रिया तो होती ही है—

1. विषैली गैसों का चिमनियों से उत्सर्जन,
2. चिमनियों में एकत्रित हो जाने वाले सूक्ष्म कण,
3. उद्योगों में कार्य आने के बाद शेष,
4. चिमनियों में प्रयुक्त ईंधन के अवशेष एवं

5. उद्योगों में काम में आए हुए जल का बहिस्रॉव।

ये सभी दृष्टिकोण औद्योगिक प्रदूषण के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण हैं। उद्योगों से होने वाले प्रदूषण हैं—वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, औद्योगिक उत्सर्ग, बहिस्रॉव से पेड़ और फसलों की बर्बादी, जन हानि। उद्योगों से प्रदूषण के अंतर्गत, प्रदूषण के दुष्प्रभाव एवं नियंत्रण पर क्रमवार चिंतन यहां प्रस्तुत है।

वायु-प्रदूषण

किसी भी उद्योग की मशीनों को चलाने के लिए ऊर्जा उत्पादन तथा कच्चे माल की निर्धारित क्रियाविधि के फलस्वरूप जो भी उत्सर्जन होता है, उसका गैसीय भाग चिमनियों से निकलता है। इन चिमनियों से हानिकारक पदार्थ जब वायुमंडल में विसर्जित होते हैं तो प्रदूषण फैलता है।[2]

वैज्ञानिक युग में मनुष्य एक-दूसरे से आगे निकलने की प्रतिस्पर्धा में अनेक उद्योग स्थापित कर रहा है। विभिन्न प्रकार के इन उद्योगों की उत्पादन इकाइयों से प्रतिदिन उत्पन्न विषैली गैसें जैसे—कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन, नाइट्रोजन के विभिन्न ऑक्साइड, पार्टिकुलेट पदार्थ, लेड, एस्बैस्टास, पारा, कीटनाशक तथा अन्य अपशिष्ट पदार्थों के कण वायुमंडल को प्रदूषित कर रहे हैं।

गैसीय वायु-प्रदूषण तत्व गैस के समान व्यवहार करते हैं व एक स्थान पर इकट्ठे न होकर वायुमंडल में फैल जाते हैं। गैसीय प्रदूषक औद्योगिक एवं घरेलू कार्यों में ईंधन जलाने पर बनते हैं। विभिन्न गैसीय प्रदूषकों के प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

(अ) **सल्फर डाईऑक्साइड**—शरीर में उपलब्ध द्रव घुलनशील होता है, इसके कारण ऊतकों में उत्तेजना पैदा होती है, ऊपरी श्वसन-पथ में जलन व उत्तेजना होती है।

(ब) **नाइट्रोजन के आठ ऑक्साइड**—ये वायु-प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। ये हाइड्रोकार्बन से मिलकर घना धुआं तथा ओजोन पैदा करते हैं। इसके कारण आंखों में जलन व श्वसन क्रिया में अवरोध उत्पन्न होता है।

(स) **कार्बन मोनोऑक्साइड**—मूलतः वाहनों में अपूर्ण ज्वलन से बनने वाली एक अदृश्य गैस है। यदि यह रक्त में मिल जाए तो चक्कर आने लगते हैं, विभिन्न शारीरिक अंगों की सक्रियता में कमी आती है व मृत्यु की भी संभावना बनी रहती है।

वायु-प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

उद्योगों द्वारा समय-समय पर अनेक योजनाएं बनाई जाती हैं, जिससे वायु-प्रदूषण में कमी हो सके। 'भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई' ने वायु प्रदूषण रोकने में रुचि दिखाई। सन् 1989 में हिंदी दिवस के अवसर पर उस केंद्र में एक संगोष्ठी हुई, जिसका विषय था 'पर्यावरण प्रदूषण और उद्योग'। इसमें विभिन्न स्रोतों से हुए वायु प्रदूषण को रोकने के अनेक तरीके सुझाए गए। जैसे—

1. उद्योगों द्वारा उत्पन्न वायु प्रदूषकों का निरंतर मॉनीटर तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्रों की वायु का प्रेक्षण।

2. ऐसी प्रक्रियाओं और तकनीकों का विकास, जो कम विषैले पदार्थों का इस्तेमाल करें और जो स्रोत से निकलने वाले प्रदूषकों की मात्रा को कम कर सकें।
3. उद्योगों में प्रदूषक-नियंत्रक संयंत्रों का लगाना।
4. उद्योग को किसी विशेष स्थान पर स्थापित न करके देश के अलग-अलग क्षेत्रों में स्थापित करना।
5. उद्योगों के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का निर्धारण।
6. लोगों को पर्यावरण, पर्यावरण असंतुलन तथा पारिस्थितिकी संतुलन के प्रति जागरूक बनाना।[3]

जल प्रदूषण

उद्योगों में उपयोग के बाद जो जल बाहर निकलता है, उसमें अनेक प्रकार के विषैले पदार्थ मिले रहते हैं। यदि यह सीधे नदियों या जलाशयों में डाल दिए जाते हैं तो उनका पानी पीने योग्य नहीं रह जाता। जल में रहने वाले जीव-जंतु अकाल मृत्यु पाते हैं। उस पानी का उपयोग करने वाले पशु और मानव अनेक असाध्य रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। सन् 1981 में केंद्रीय तथा 14 राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों ने एक सर्वेक्षण किया था। उसके अनुसार देश में चल रहे 27,000 में मध्यम और भारी उद्योगों से 1700 उद्योग जल प्रदूषण वाले शिनाख्त किए गए। निष्कासित जल को ठीक करने के लिए मात्र 460 उद्योगों में व्यवस्था थी। निश्चित ही शेष उद्योग अपने बहिर्स्राव को यूं ही सीधे कहीं निकाल देते थे। अगर भूमि-भाग इस जल का आधार बनता है तो वहां की मिट्टी विषैली हो जाती है अथवा जल-क्षेत्र में जहर घुलने लगता है। जिन उद्योगों में जल की खपत अधिक है, जैसे—कागज उद्योग, वहां से तो निष्कासन की मात्रा भी अपेक्षाकृत अधिक है।[4]

सतही जल की कमी के कारण उद्योगों द्वारा अब भूमिगत जल का दोहन भी इतनी तीव्र गति से हो रहा है कि पानी का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। वहां भी जल अनेक प्रकार के विषैले रसायनों से मिश्रित है, जिसके कारण पानी पीने योग्य नहीं बचा है। भारी उद्योग द्वारा यूं ही जल-निस्तारण की प्रक्रिया इसके लिए दोषी है। गुजरात की स्वयंसेवी संस्था, पर्यावरण सुरक्षा समिति, बडोदरा ने एक अध्ययन में पता लगाया है कि राज्य में भूमिगत जल भारी तत्व कैडमियम, कॉपर, लैड, मरकरी को समेटे हुए है, जो अत्यंत विषैले भी हैं।[5]

आधुनिकीकरण के युग में अधिकांश उद्योग जल की उपलब्धता के कारण नदियों, झीलों एवं सागरों के किनारे लगाए गए हैं। औद्योगिक क्षेत्र में जहां बड़े उद्योग स्थापित हैं, उनके कारखानों से निकलने वाले गंदे अपशिष्ट जल, ठोस एवं घुले रासायनिक प्रदूषक तथा अनेक प्रकार के धात्विक पदार्थ नदियों, झीलों एवं तटीय सागर के जल को प्रदूषित करते हैं। प्रदूषण फैलाने वाले प्रमुख उद्योग वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, औषधि उद्योग आदि हैं। इन अशुद्धियों से जल के पी.एच. मान में परिवर्तन के साथ-साथ पौधों एवं जंतुओं में विषैला प्रभाव होता है।

औद्योगिक उत्सर्ग एवं सामान्य म्युनिसिपिल क्रियाएं जल-प्रदूषण उत्पन्न करती हैं। जल प्रदूषण का प्रभाव वनस्पतियों, जीव-जंतुओं एवं मनुष्यों पर पड़ता है। जल प्रदूषण

के कारण जल के तापमान में वृद्धि हो जाती है, जिससे पौधों में रसाकर्षण न होने के कारण वे सूखकर मर जाते हैं। उद्योग द्वारा निस्तारित प्रदूषित जल के नदियों में विसर्जन के कारण शैवाल की वृद्धि हो जाती है, जिससे श्वसन के लिए ऑक्सीजन की मांग बढ़ जाती है और जलीय जीव-जंतु विशेषकर मछलियों पर इसका सर्वाधिक कुप्रभाव पड़ता है।

जल-प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

हम औद्योगीकरण की ओर बढ़ते हुए जल-प्रदूषण की समस्या को और गंभीर बना रहे हैं। भारत सरकार ने जल प्रदूषण की समस्या को हल करने के लिए कुछ प्रयास किए हैं, जिनमें प्रमुख रूप से वातावरण-नियोजन एवं समन्वय की राष्ट्रीय समिति का गठन है, जो वर्तमान जल-प्रदूषण की समस्या को गंभीरता तथा भविष्य में स्थापित होने वाली औद्योगिक इकाइयों की स्थिति का निर्धारण करेगी। 'प्रदूषण नियंत्रण' की इन आवश्यकताओं के मद्देनजर भारत सरकार ने सन् 1974 में जल प्रदूषण नियंत्रण एवं निवारण अधिनियम के अंतर्गत 'केंद्रीय जल प्रदूषण मंडल' का गठन किया। इस मंडल के दायित्व हैं—

1. जलाशयों और नदियों से प्रदूषण के स्तर की निगरानी।
2. अपशिष्ट विसर्जन की निगरानी।
3. अपशिष्ट उपचार की सस्ती विधियों पर अनसुंधान सहयोग।
4. उद्योगों और नगरपालिकाओं को प्रदूषण नियंत्रण पर तकनीकी राय उपलब्ध कराना।
5. पर्यावरण के प्रति सार्वजनिक सजगता लाना।

लेकिन नगरपालिकाओं की तरह केंद्रीय व राज्य जल प्रदूषण मंडल भी प्रदूषण द्वारा हो रहे स्थानीय पर्यावरण अवनयन को प्रभावशाली ढंग से नहीं रोक पाए। इसका एक कारण नागरिक सजगता का अभाव भी है। जिस गति से औद्योगिक और मानवीय कारक प्रदूषण को निरंतर गंभीर से गंभीरतम समस्या बना रहे हैं, यह आवश्यक हो जाता है कि प्रदूषण नियंत्रण मंडल एक निर्णायक हस्तक्षेप करे।[6]

जल को प्रदूषित होने से बचाने के लिए हम सबको दृढ़संकल्प लेना होगा, क्योंकि जल अतिमहत्वपूर्ण है, जिसके बगैर मानव और वनस्पति जगत् जीवित नहीं रह सकता। जहां उद्योगों द्वारा जल-प्रदूषण नियंत्रण की बात है, वहां उद्योगों के रसायन और गंदे अपशिष्ट-युक्त जल को नदियों, सागरों, नहरों, झीलों आदि में उपचारित किए बिना न डाला जाए। औद्योगिक गैसों के उत्सर्जन पर भी नियंत्रण कठोर किए जाने चाहिएं ताकि वायुमंडल अनुकूल बना रह सके। जल प्रदूषण पर नियंत्रण उत्सर्ग जलोपचार से किया जाता है। इसके अंतर्गत उत्सर्ग का वर्गीकरण, उत्सर्ग का संरक्षण, उत्पादन-प्रक्रिया में परिवर्तन, पुनः प्रयोग आदि क्रियाएं शामिल है।

'उत्सर्ग जल-उपचार की भौतिक विधियों में स्क्रीनिंग, मिश्रण फ्लाई कलेक्शन, सेडिमेंटेशन, तैराना, निर्वात फिल्ट्रेशन, सुखाना आदि आते हैं। रासायनिक विधियां जमाना, अवक्षेपण, आयन विनियम, अवकरण, ऑक्सीकण, क्लोरीनीकरण आदि हैं। जैविक विधियां, सामान्यतः दूसरे उपचार के रूप में म्यूनिसिर्पि उत्सर्ग पर संपादित की जाती हैं व ऑक्सीजन के उपयोग से संपन्न होती हैं।[7]

ध्वनि प्रदूषण

औद्योगिक मशीनों की अधिक तीव्रता वाली ध्वनि तथा एमक्राफ्ट की मशीनों का शोर, मानव की साधारण या दैनिक दिनचर्या में बाधा तो डालता ही है, अधिक समय तक तीव्र ध्वनि में रहने से, सुनने की क्षमता का ह्रास होता है।

उद्योगों और वर्कशॉप में ध्वनि का अनुकूलतम स्तर 90 डेसिबेल तय किया गया है, लेकिन वास्तविकता यह है कि यह स्तर कई जगह 120 डेसिबेल पाया गया है। ऐसा शोर श्रमिकों की सिर्फ श्रवण-शक्ति को ही हानि नहीं पहुंचाता, बल्कि उनकी उत्पादकता भी कम करता है।

नियंत्रण के उपाय

उद्योगों से उत्पन्न होने वाले ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए फैक्ट्रियों के जिस भाग में शोर वाली मशीनें चलती हैं, वे ध्वनिरोधी हों या उनमें ध्वनि-अवशोषक लगे हों। मशीनों के जिस भाग पर घर्षण होता है, वहां स्नेहक (Lubricants) जैसे--ग्रीस और तेल वगैरह अच्छी तरह लगा देना चाहिए, जिससे ध्वनि कम उत्पन्न होगी।

तेज ध्वनि उत्पन्न करने वाले कारखानों में काम करने वाले को कर्णावरण (Ear Muffs) लगाकर कार्य करना चाहिए।

यातायात के साधनों के शोर से बचने के लिए हेलमेट का प्रयोग करना चाहिए तथा मोटरवाहनों में बहु ध्वनि वाले हॉर्न बजाने पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।

हवाई अड्डों पर शोर के लिए अवशोषकों का प्रयोग करना चाहिए। ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण कानून बनाना चाहिए। ध्वनि प्रदूषण रोकने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किया जाना चाहिए।

मृदा प्रदूषण

उद्योगों, मानव, प्रकृति, मृदा की गुणवत्ता में हुआ ह्रास, मृदा प्रदूषण के अंतर्गत आता है। फैक्ट्रियों से निकले जहरीले अपशिष्ट पदार्थ तरल अवस्था में बहकर जल में मिल जाते हैं और जब यही प्रदूषित जल मिट्टी में मिल जाता है तो मृदा प्रदूषण फैलता है। कुछ प्रदूषणकारी पदार्थ जैसे नाइट्रोजन और सल्फर के ऑक्साइड पहले वायुमंडल में जाते हैं, फिर वर्षा के समय नाइट्रिक अम्ल (HNO_3) तथा सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) के रूप में जमीन पर गिरकर मृदा में अम्लीयता बढ़ाते हैं। मृदा में अम्लीयता की अधिक मात्रा फसलों के लिए बहुत हानिकारक होती है। तांबा गलाने की फैक्ट्रियों से निकला अपशिष्ट पदार्थ मृदा को इतना प्रदूषित कर देता है कि उसमें कोई वनस्पति पनप ही नहीं सकती। कोयला, चूना और अभ्रक आदि की खानों से निकले पदार्थ का परिवहन करते समय तमाम कणिकीय पदार्थ उड़कर जमीन में पहुंचते हैं और मृदा को प्रदूषित करते हैं।

मृदा प्रदूषण से जैव समुदाय पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। प्रदूषण के कारण मृदा की उर्वरता में कमी आ जाती है तथा वह कृषि कार्य के लिए अनुपयुक्त होने लगती है। मृदा प्रदूषण से मानव, पेड़-पौधे, सूक्ष्मजीव आदि प्रभावित होते हैं। इससे मिट्टी अनपुजाऊ हो जाती है, जिससे कृषि उत्पादन में कमी आती है।

मृदा प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

औद्योगिक इकाइयों को पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए औद्योगिक अपशिष्ट के निस्तारण के लिए राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर योजनाएं बनाई गईं, लेकिन विकसित राष्ट्र अपने नाभिकीय अपशिष्ट को ठिकाने लगाने के लिए उन नियमों को तोड़ रहे हैं। भारतीय उद्योग भी प्रदूषण के नियमों का उल्लंघन अपने तात्कालिक लाभ के लिए कर रहे हैं, जो उचित नहीं है। मृदा-प्रदूषण का मुख्य कारण उद्योगों के अलावा मानव का दैनिक उपभोग और उसकी सामाजिक-आर्थिक गतिविधियां हैं। इसलिए इसके नियंत्रण के लिए मानव-समुदाय को निम्न कार्य करने चाहिएं—

1. शोधन के पश्चात् औद्योगिक बहिर्स्राव का उपयोग सिंचाई के लिए करना चाहिए।
2. रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर कम्पोस्ट तथा हरी खाद का उपयोग करना चाहिए।
3. डी.डी.टी. के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।
4. औद्योगिक अपशिष्ट, द्रव, ठोस अथवा गैस के निस्तारण की योजना बनाते समय हर उद्योगपति को पर्यावरण के प्रति सजग एवं संवेदनशील उत्तरदायित्व दिखाना होगा। पर्यावरण मानदंडों के उल्लंघन पर कठोर जुर्माने या सजा के प्रावधान लागू किए जाने चाहिएं।
5. कृषि में फसल-चक्र अपनाकर मिट्टी की गुणवत्ता में वृद्धि कर मिट्टी प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है।

तापीय प्रदूषण

उद्योगों में किसी-न-किसी प्रकार के हाइड्रोकार्बन ईंधन का दहन होता है। इस दहन से सिर्फ विषैली गैसें ही नहीं बनतीं, बल्कि ताप ऊर्जा के उत्सर्जन से तापमान में वृद्धि होती है। विद्युत उत्पादन में कोयले अथवा किसी अन्य ईंधन जैसे नाभिकीय ऊर्जा आदि का उपयोग करने पर अत्यधिक उष्मा उत्पन्न होती है। इसको 'वेस्ट उष्मा' कहा जाता है। इसे शीतलक जल द्वारा कम करने का प्रयास किया जाता है। इस क्रिया में शीतलक से बाहर आने वाले जल का ताप अधिक हो जाता है। यह ताप प्रदूषण है। इस जल से जलीय पारिस्थितिकी-तंत्र में उत्सर्ग होने पर जलीय जीव एवं वनस्पतियां मर जाती हैं। सामान्यतः अधिक हानि मछली-पालन में होती है। इसके अतिरिक्त यदि बिजली बनाने वाला पॉवर प्लांट एकाएक बंद हो जाए तो जल का ताप एक साथ कम हो जाता है। इसे ताप शॉक कहते हैं। सामान्यतः मछलियां इसे सहन नहीं कर पातीं।[8] इससे उस जल के जलीय जंतुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अनेक जीवन समाप्त हो जाते हैं और मछलियां तथा अन्य जानवरों के लिए यह शून्य स्थल बन जाते हैं। उसकी चिमनी से निकलने वाली राख, जो अधिक ताप के कारण हानिकारक है और जहां बरसती है, वहां की वनस्पति पेड़-पौधों और फसलों को नष्ट कर देती है।

तापमान बढ़ने से जल में घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा कम होने लगती है, जिससे जीवन के लिए परिस्थितियां प्रतिकूल होने लगती हैं। तापमान वृद्धि के प्रमुख उद्योगों के अलावा हरितगृह-प्रभाव, ओजोन-क्षरण, वैश्विक उष्णता एवं जलवायु प्रभाव भी हैं।

(अ) **हरितगृह प्रभाव**–जब हम तापमान वृद्धि में हरितगृह की बात कर रहे हैं तो यहां यह जानना आवश्यक है कि 'हरितगृह' आखिर है क्या? 'ग्रीन हाउस' एक पुराना शब्द है, जिसमें शीशे की दीवारें और छत होती है तथा जिसमें उन पौधों को उगाया जाता है, जिन्हें अधिक ताप की आवश्यकता होती है। इसमें शीशे इस तरह के होते हैं कि सौर्यिक विकिरण को अंदर तो आने देते हैं, परंतु अंदर से ऊष्मा बाहर नहीं जाने देते। इस कारण 'हरितगृह' में ऊष्मा का संचय होता रहता है। पृथ्वी के संदर्भ में कार्बन-डाईऑक्साइड तथा जल वाष्प, हैलोजनित गैसें जिन्हें 'हरितगृह' कहते हैं, 'हरितगृह' की तरह व्यवहार करती हैं। ये गैसें सूर्य के विकिरण को पृथ्वी तक पहुंचने में बाधा उत्पन्न नहीं करतीं, बल्कि पृथ्वी से होने वाले बहिर्गामी दीर्घ तरंगों, खासकर अवरक्त किरणों (Infrared-rays) को अवशोषित कर उन्हें भू-तल पर पुनः प्रत्यावर्तित कर देती हैं, जिस कारण धरातलीय सतह निरंतर गर्म होती रहती है उसके तापमान में वृद्धि होने की संभावना बढ़ जाती है।[9]

(ब) **वैश्विक तापमान**–ग्रीनहाउस प्रभाव और अन्य कई कारणों से संपूर्ण विश्व में देखी जा रही ताप-वृद्धि को वैश्विक तापमान (Global Warming) कहा जाता है। लगातार बढ़ती औद्योगिक गतिविधियां, शहरीकरण, आधुनिक रहन-सहन, धुआं उगलती चिमनियां, निरंतर बढ़ते वाहनों एवं ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव से पृथ्वी के औसत तापमान में जो निरंतर वृद्धि हो रही है, यह वैश्विक उष्णता एक ऐसी पर्यावरण समस्या है, जिससे संपूर्ण विश्व प्रभावित हो रहा है।

हरितगृह गैसों का उत्सर्जन, धरती के तापमान में वृद्धि के कारण आने वाले संकट का अंदाजा पर्यावरणविदों व वैज्ञानिकों को तो है, परंतु आम आदमी इसे गंभीरता से नहीं ले रहा है। विश्व-पटल पर ग्लोबल वार्मिंग को लेकर गंभीर चिंतन के दौर चल रहे हैं। वैश्विक तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है। बीसवीं सदी का अंतिम दशक अब तक सर्वाधिक गर्म दशक रहा। पृथ्वी के बढ़ते औसत ताप के चलते कल तक की कपोल-कल्पित संभावनाएं आज सच होने लगी हैं। 'वैश्विक तापमान के कारण ग्लेशियर पिघल रहे हैं। एक अध्ययन के अनुसार गंगा के जल का स्रोत गंगोत्री हिमनद सहित हिमालय के ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। तापमान बढ़ने के कारण दक्षिणी ध्रुव में महासागरों के आकार के हिमखंड टूटकर अलग हो रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व अंटार्कटिक के लार्सन हिमक्षेत्र का 500 अरब टन का एक हिमशैल टूटकर अलग हो गया। अनुमान लगाया जा रहा है यदि तापवृद्धि का वर्तमान दौर जारी रहा तो 21वीं सदी के अंत तक पृथ्वी के तापमान में 5.8 डिग्री सेंटीग्रेट तक वृद्धि हो सकती है। इससे ध्रुवों पर जमीं बर्फ तथा हिमनदों के पिघलने से समुद्र का जल-स्तर 5 मीटर तक बढ़ सकता है। परिणामस्वरूप मालदीव तथा जापान के अनेक द्वीपों सहित भारत व यूरोप के कई देशों के तटीय क्षेत्र पानी में डूब जाएंगे।[10]

(स) **ओजोन क्षरण**–पिछले दो दशकों से ओजोन की परत में क्षय करने की मुख्य भूमिका क्लोरो-फ्लोरो कार्बन (C.F.C.) एवं फ्रीऑन गैस (Fr.G.) की है। ये सभी मानव निर्मित रसायनों के समूह हैं, जो वातानुकूलनों तथा रेफ्रीजरेटरों में शीतलन एजेंट की भांति प्रयुक्त होते हैं। सबसे पहले सन् 1930 के दशक में सी.एफ.सी. का प्रयोग आरंभ हुआ। सन् 1980 के दशक में यह निश्चित हुआ कि ओजोन कवच को क्षति पहुंचाने में क्लोरीन

गैस का एक अणु ओजोन के एक लाख परमाणुओं को नष्ट कर सकता है। सन् 1985 में वैज्ञानिकों को ओजोन की परत में छिद्र का पता चला। दक्षिण ध्रुव के ऊपर ओजोन गैस की सांद्रता में बहुत कमी आई है। सन् 1989 में देखा गया कि अंटार्कटिक के ऊपर ओजोन की परत में 40 कि.मी. व्यास का छिद्र हो गया है। ओजोन मंडल में ताप की वृद्धि तेजी से होती है, जो 50 डिग्री से बढ़कर 70 डिग्री सेंटीग्रेट तक हो जाती है। प्रकृति में ओजोन, ऑक्सीजन से बनता है। इन दोनों गैसों के बीच एक संतुलन बना रहता है। सी.एफ.सी. के क्लोरीन गैस द्वारा उत्पन्न प्रदूषण से अब यह संतुलन बिगड़ने लगा है, जिससे धरती पर कैंसर जैसा भयानक रोग, त्वचा के अनेक रोग, पेड़-पौधे तथा दूसरे जीवों के लिए प्राणघाती स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं। आवश्यकता है, ऐसे उपाय की, जिससे क्लोरो-फ्लोरो कार्बन का वायुमंडल में जाना रुक जाएं।"[11]

तापीय प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

वायुमंडल में तापीय प्रदूषण के तीन प्रमुख कारण हैं—1. दहन क्रिया, 2. कार्बन-डाई-ऑक्साइड की बढ़ती मात्रा, 3. ओजोन क्षरण के कारण प्राप्त सूर्यताप की अधिकता।

औद्योगिक विकास और जीवाश्म ईंधन के बढ़ते उपभोग के कारण वायुमंडल में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा खतरनाक स्तर तक बढ़कर ग्रीनहाउस प्रभाव पैदा कर रही है। इसका समाधान बड़े-से-बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण द्वारा किया जा सकता है, जिससे कार्बन-डाई-ऑक्साइड जनित ताप वृद्धि पर काफी हद तक नियंत्रण जा सके।

ओजोन क्षय केवल एक देश की समस्या नहीं, बल्कि विश्वव्यापी समस्या है। ओजोन का क्षय करने वाले क्लोरो-फ्लोरो कार्बन तथा हैलोनजनित गैसों के उत्पादन व उपभोग पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।

संयंत्र से निकलने वाले उच्च ताप को जल के फव्वारे के रूप में अधिक क्षेत्र में फैलने दिया जाए। जब ताप सहन स्तर तक आ जाए, तभी उसे पुनः स्रोत में मिलने दें।

राख का प्रयोग अब ईंट बनाने के लिए किया जा रहा है, जो सफल रहा। इससे प्रदूषण समस्या भी कम होगी और प्रदूषक का अच्छा उपयोग भी होगा। राख को अधिक क्षेत्रों में बिखरने से रोकने के लिए कुछ कृत्रिम साधन अपनाने होंगे।

औद्योगिक उत्सर्ग प्रदूषण

सभी उद्योग किसी-न-किसी प्रकार का उत्सर्ग पैदा करते हैं, जो प्रदूषण का कारण बनता है। साधारणतः उत्सर्ग निम्न में से एक या अधिक होते हैं—

(अ) उत्सर्ग जल—विभिन्न उद्योग-धंधों से विभिन्न प्रकार के उत्सर्ग जल निकलते हैं। सामान्य गुणों के आधार पर उत्सर्ग जल तीन प्रकार के होते हैं—

1. वे उत्सर्ग जल, जिसमें ठोस निलंबित अवस्था में हो।
2. वे उत्सर्ग जल, जिसमें ठोस विलयन के रूप में हो।
3. अधिक सांद्रण के विलियन वाले उत्सर्ग जल।

उत्सर्ग जल की प्रकृति व संगठन, उद्योग पर आधारित रहता है। साधारणतः निम्न प्रकार के संगठन वाले उत्सर्ग जल विभिन्न उद्योगों से निर्गत होते हैं—

1. कार्बोहाइड्रेट की अधिकता वाला उत्सर्ग जल—पेपर बोर्ड, स्टार्च आदि।
2. सायनाइड, क्रोमियम, निकिल की अधिकता वाला उत्सर्ग जल—इलेक्ट्रोप्लेटिंग उद्योग।
3. विभिन्न रसायनों की अधिकता वाला उत्सर्ग जल—डिटरजेंट, कीटनाशक, उवर्रक, प्लास्टिक, पेट्रोलियम उद्योग।
4. नाइट्रोजन की अधिकता वाला उत्सर्ग जल—डेयरी उद्योग।

अधिकांश उद्योगों में उत्सर्ग-जल के उपचार की उपयुक्त सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं, जो प्रदूषण की दृष्टि से खतरनाक है।

विभिन्न उद्योगों के उत्सर्ग चाहे वह जल हो अथवा ठोस, को क्रमानुसार सूचीबद्ध किया जा रहा है। साथ ही प्रदूषण के प्रभाव व उपचार-विधि भी सूक्ष्म रूप में विवेच्य है—

1. **आयल रिफाइनरी उद्योग**—उत्सर्ग जल में तेल, क्षार, अमोनिया, फिनाइल, हाइड्रोजन, सल्फाइड एवं कार्बनिक रसायन होते हैं। यह जलीय जीवों के लिए हानिकारक हैं। इसके कारण गंध व स्वाद भी खराब हो जाता है।
2. **टेनरी उद्योग**—उत्सर्ग जल में हानिकारक रसायनों के अतिरिक्त क्रोमियम बाल, मांस आदि कोलायड अवस्था में रहते हैं।
3. **स्टील मिल उद्योग**—उत्सर्ग जल में अमोनिया, फिनाइल, कार्बनिक एसिड, सायनाइड आदि रहते हैं। ठोस भी इस उत्सर्ग में काफी बड़ी मात्रा में निलंबित अवस्था में रहते हैं।
4. **डिस्टलरी उद्योग**—उत्सर्ग जल में मुख्यतः कार्बनिक पदार्थ विलयन के रूप में रहते हैं। यह भारत का सबसे अधिक प्रदूषण कारक उद्योग है, क्योंकि इसमें उत्सर्ग जल प्रचुर मात्रा में होता है।
5. **इलेक्ट्रोप्लेटिंग उद्योग**—उत्सर्ग जल की प्रकृति अम्लीय होती है व रसायनों का विलयन भी होता है। इस उत्सर्ग जल में निलंबित ठोस बहुत कम होते हैं।[12]

उद्योगों के बहिर्स्राव से पेड़ और फसलों की बर्बादी

कई प्रकार के उद्योग, जिनमें जल का अधिक मात्रा में उपयोग होता है, वह अपने कारखाने के बहिर्स्राव को बिना उपचार के ही नदियों में, खाली जमीन पर, खेतों में निकाल देते हैं। जब बिना उपचार किया जल खेतों में पहुंचता है, वह वहां की फसल को नष्ट कर देता है और किसान असहाय होकर रह जाता है। 'मुरादनगर' (गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश) में हजारों पेड़ तथा वहां की फसलों की बर्बादी का कारण पास में ही चल रही कागज मिल के कारण है। शीशम और जामुन के पेड़ों की मानों निशानदेही बची है। किसान कहते हैं, धान की फसल आठ दिन में सूख जाती है। पानी में अधिक देर तक खड़े हों तो पैरों में जलन होने लग जाती है।[13]

उद्योगों से जन-हानि

आज सिर्फ भारत में ही नहीं, वरन् पूरे विश्व में उद्योगों की संख्या लाखों में है और इसमें कार्यरत् लोगों की संख्या करोड़ों में होगी। अलग-अलग उद्योगों से निकलने वाले

उत्सर्जन विभिन्न प्रकार के रोग फैलाते हैं और उसमें न जाने कितने लोगों के जीवन का अंत हो जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की 1992 द्वारा में प्रसारित (Health and Environment) संबंधी रिपोर्ट में बताया गया है कि पूरे विश्व में एक वर्ष में लगभग 3.27 करोड़ औद्योगिक क्षेत्र की दुर्घटनाएं होती हैं। इनमें 1,46,000 व्यक्ति मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। यह भी अनुमान लगाया गया है कि जिन रोगों से औद्योगिक कारीगर ग्रस्त होते हैं, वह निम्न प्रकार हैं–

1. सिलीकोसिस (Silicosis)	3.5 से 43.2 प्रतिशत
2. न्यूमोकोनिओसिस (Pneumoconiosis) (कोयला खदान संबंधी)	8.3 से 43.8 प्रतिशत
3. बाइसिनोसिस (Byssinosis)	5.0 से 30 प्रतिशत
4. लैड पाइजनिंग (Lead Posioning)	1.7 से 10000 प्रतिशत
5. मरकरी पाइजनिंग (Mercury Posioning)	2.6 से 37 प्रतिशत
6. श्रवण शक्ति का ह्रास (Hearing Loss)	1.7 से 70 प्रतिशत
7. त्वचा रोग (Skin Diseases)	1.7 से 86 प्रतिशत
8. पीठ दर्द (Low Back pain)	2.5 प्रतिशत

यह सूची अपने आप में पूरी नहीं है, क्योंकि भारत जैसे देश में–अनीमिया, आंखों के रोग, हड्डियों के रोग, वायुजनित रोग, श्वसन संबंधी रोग आदि बहुतायत से होते हैं। अतः उद्योगों में कार्य करने वाले लोग सदैव अस्वस्थ ही रहते हैं।[14]

प्रदूषण वाले उद्योगों की पहचान

देश में अनेक उद्योग चलाए जाते हैं, पर उनमें से वे उद्योग जो अधिक प्रदूषण फैलाते हैं, उनकी पहचान कर भारत सरकार ने 19 नवंबर, 1986 के गजट में प्रकाशित की है, जो इस प्रकार है–

1. कास्टिक सोडा (Caustic Soda)
2. हस्तनिर्मित धागा (सिन्थेटिक) (Manmade Fibres [Synthetic])
3. तेल शोधक (Oil Refinery)
4. चीनी (Sugar)
5. तापीय ऊर्जा संयंत्र (Thermal Power Plants)
6. सूती उद्योग (Cotton Textile)
7. ऊनी कपड़ा (Woollen Cloth)
8. रंगाई व छपाई (Dying and Printing)
9. इलेक्ट्रोप्लेटिंग (Electroplating)
10. सीमेंट उद्योग (Cement Plants)
11. पत्थर तोड़ना (Stone Crushing)
12. कोयले की भट्ठियां (Coke Ovens)
13. सिंथेटिक रबड़ (Synthetic Rubber)
14. कागज एवं लुगदी (Pulp and Paper)

15. शराब की भट्ठियां (Distilleries)
16. चमड़ा उद्योग (Leather Tanneries)
17. खाद (Fertilizers)
18. एल्युमीनियम (Aluminium)
19. कैल्शियम कार्बाइड (Calcium Carbide)
20. कार्बन ब्लैक (Carbon Black)
21. कॉपर, लैड और जिंक स्मैल्टिंग (Copper, Lead and Zinc Smelting)
22. नाइट्रिक एसिड (Nitric Acid)
23. सल्फ्यूरिक एसिड (Sulphuric Acid)
24. आयरन एंड स्टील (Iron and Steel)

इनके मानक केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण मंडल (Central Pollution Control Board) ने प्रसारित किए हैं।[15]

विभिन्न उद्योगों से उत्सर्जित तत्व

1. तेल शोषक	SO_2, NOx, HC, CO, NH_3, SPM कई गंधें।
2. पत्थर खदान	सूक्ष्म कण रेत
3. शराब भट्ठियां	CO, HC, NOx तथा सूक्ष्म कण
4. खाद (नाइट्रेट)	अमोनिया, नाइट्रिक ऑक्साइड्स
5. खाद (फास्फेट)	CO, SOx, सिलिकॉन, टेट्राफ्लोराइड्स
6. कॉपर स्मैल्टिंग	SOx, सूक्ष्म कण, धूल
7. लैड स्मैल्टिंग	सूक्ष्म कण, लैड, ऑक्साइड्स, CO
8. जिंक स्मैल्टिंग	रेत, SO_2, धुआं
9. सल्फ्यूरिक एसिड	तेजाबी धुंध
10. नाइट्रिक एसिड	नाइट्रिक ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड
11. सिंथेटिक धागा	कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, HC, धुंध
12. चीनी	CO, HC, NOx तथा सूक्ष्म कण
13. सूती उद्योग	कास्टिक सोडा, सोडियम सिलीकेट
14. चमड़ा उद्योग	NOx, SOx, एल्डीहाइड्स, धुआं और रेत हाइड्रोजन, सल्फाइड
15. एल्युमीनियम	सूक्ष्म कण, फ्लोराइड्स, गैसीय क्लोराइड्स
16. कार्बन-ब्लैक	CO, HC, NOx
17. सीमेंट उद्योग	सूक्ष्म कण
18. ऑयरन एंड स्टील	मैगनीज ऑक्साइड, NOx, SO_2 क्लोरीन गैस सूक्ष्म कण।[16]

उद्योगों से प्रदूषण कम करने के उपाय

उद्योगों से प्रदूषण कम हो सके, इसके लिए कुछ उपाय इस प्रकार हैं–

1. उद्योगों के स्थान का चयन बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। वहां न तो अधिकृत वन क्षेत्र हों, न ही कृषि एवं आवासीय भूमि। वह क्षेत्र इतना विस्तृत हो कि वहां वृक्षारोपण किया जा सके, ताकि वहां का वातावरण प्रदूषित न हो। अच्छे वातावरण के लिए वहां ऐसे वृक्षों को लगाया जाए, जो विशेष विषैली गैसों का अवशोषण कर सकें। वृक्षों की सघन पट्टियां ध्वनि-अवशोधक भी होती हैं।

2. फैक्ट्रियों की चिमनियों में 'बैग फिल्टर' लगा होना चाहिए। जब धुआं इस फिल्टर से होकर गुजरता है, तब उसे फिल्टर के सिलेंडर से होकर गुजरना होता है, जिससे धुएं के कणिकीय पदार्थ नीचे बैठ जाते हैं, जबकि गैस बेलनाकार बैग से होकर बाहर निकलती है। यह गैस कणिकीय पदार्थों से मुक्त होती है। अतः वातावरण कम प्रदूषित होता है।

3. उद्योगों में कार्य कर रहे ऊर्जा-संयंत्र तथा गैसों व सूक्ष्मकणों को उत्सर्जित करने वाली चिमनियों से प्रदूषकों की मात्रा कम हो, इस हेतु प्रचलन में आ रहे स्क्रबर्स अवशोषक, साइक्लोन्स, इलेक्ट्रोस्टेटिक प्रेसीपिटेटर्स, बैग फिल्टर्स, संयंत्रों का भरपूर उपयोग किया जाए।

4. ओजोन क्षयकारी रसायनों के स्थान पर वैकल्पिक रासायनिक यौगिकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

5. उद्योगों से संबंधित होने वाली घटनाओं के विषय में सभी श्रमिकों को जानकारी देनी चाहिए।

6. जलीय तथा ठोस अपशिष्टों की जितनी भी उपचारात्मक संक्रिया संभव हो, उसके बाद ही अपने क्षेत्र में विसर्जित करना चाहिए।

संदर्भ

1. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. एम.के. गोयल, पृ. 220
2. वही, पृ 221
3. पर्यावरण अध्ययन, आर.के. जैन व डॉ. सुरेंद्र कुमावत, पृ. 100
4. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. एम.के. गोयल, पृ. 222
5. Times of India (Ahmedabad) : 20 February, 2002. Quoted from Green File : Issue No. 173, CSE, New Delhi.
6. पर्यावरण अध्ययन की रूप-रेखा, मेधातिथि जोशी, राकेश पारीक, पृ. 142
7. इंडस्ट्रियल इंजीनियरी सुरक्षा एवं प्रदूषण, डॉ. हेमेंद्र दत्त शर्मा, पृ. 236
8. वही, पृ. 236
9. पर्यावरण शिक्षा एवं भारतीय संदर्भ, प्रो. के.पी. पांडेय व डॉ. सरला पांडेय, पृ. 31-32
10. पर्यावरण अध्ययन, आर.के. जैन व डॉ. सुरेंद्र कुमावत, पृ. 153
11. पर्यावरण शिक्षा एवं भारतीय संदर्भ, प्रो. के.पी. पांडेय व डॉ. सरला पांडेय, पृ. 30-31

12. इंडस्ट्रियल इंजीनियरी सुरक्षा एवं प्रदूषण, डॉ. हेमेंद्र दत्त शर्मा, पृ. 239-240
13. Times of India (New Delhi) : 15 January, 1999. Quoted from Green File : Issue No. 133, CSE, New Delhi.
14. Our Planet, Our Health, WHO, Geneva, 1992.
15. Published in Gazzette of India, Ext. Ord, Part-II, vide Mot. Section No. S.O. (844)(E), dated 19 November, 1986 G.3 (ii) dated 18 November, 1986, p. 15-16. Quoted from the publication of Rajasthan Pollution Prevention & Central Board, Environmental Preservation and Protection, An Integrated Secenero, 1990.
16. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. एम.के. गोयल, पृ. 220

शोधछात्रा (हिंदी)
राजीव विहार, सीपत रोड,
(गणेश स्वीट्स के सामने)
बिलासपुर (छ.ग.)

ध्वनि-प्रदूषण

श्रीमती करुणा सिंह

मनुष्य या जीव-जंतु जब भी कोई काम करता है या किसी भी प्रकार की कोई अभिव्यक्ति करता है तो उससे वायुमंडल पर दबाव पड़ता है और वायु तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं, इन्हें ही ध्वनि कहते हैं। ऐसा ही प्राकृतिक रूप से किसी वस्तु के गिरने, सरकने से, चाहे बादल की गड़गड़ाहट से, ऊंचे से गिरते पानी की ध्वनि से, वायु वेग से उत्पन्न होने वाली आंधी या तूफान से होने के कारण भी हो सकता है। मनुष्य द्वारा बनाए गए उपकरण भी जब काम करते हैं तो वेह सभी आवाज करते हैं।

ध्वनि कम या अधिक हो सकती है। इसे ध्वनि की 'तीव्रता' कहते हैं। किसी वस्तु से उत्पन्न आवाज, जब कानों की सहन-सीमा से अधिक हो जाती है तो वह अप्रिय लगने लगती है, इसे ही शोर कहते हैं। अन्य शब्दों में, 'वह अवांछित आवाज जिससे कानों में दर्द व कष्ट हो, ध्वनि प्रदूषण कहलाता है।'[1] जो ध्वनि हमारी श्रवण शक्ति से परे अर्थात् असहनीय होती है, उसे ध्वनि प्रदूषक की श्रेणी में रखते हैं। अन्य प्रदूषकों के समान ध्वनि प्रदूषण भी औद्योगिक उन्नति एवं भौतिक सभ्यता का फल है। अनेक प्रकार के वाहन जैसे—मोटरकार, बस, जेट विमान, टैक्ट्रर, रेलवे इंजन, टेलीविजन, डी.जे., मोबाइल, रेडियो आदि ध्वनि प्रदूषण फैलाने में सहायक होते हैं।

ध्वनि-प्रदूषण से उत्पन्न होने वाली समस्याएं

ध्वनि-प्रदूषण से शारीरिक, मानसिक व जंतु-वनसपति संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं—

(अ) **शारीरिक समस्याएं**—ध्वनि प्रदूषण के कारण कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिनके कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण के कारण कान का पर्दा फट जाता है या फटने का भय बना रहता है।

इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार की शारीरिक समस्याएं भी हो जाती हैं। शोर के कारण हृदय, पाचन-तंत्र तथा तंत्रिका-तंत्र पर भी प्रभाव पड़ता है। अधिक शोर में रहने वाले व्यक्ति में रक्तचाप का बढ़ना, हृदयगति तेज होना और दिल का दौरा पड़ने की संभावना बनी रहती है। पाचन-तंत्र के गड़बड़ा जाने से अल्सर हो जाता है। 'इंडियल काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च' द्वारा किए गए अध्ययन का एक उल्लेख है, जिसमें कहा गया है कि ''बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों यथा वस्त्र, औजार, वाहन, खाद्य, तेल मिल तथा रासायनिक खाद—इन सभी उद्योगों में ध्वनि-स्तर स्वीकृत सीमा से ऊपर होता है। इनके कर्मचारी यदि

श्रवण संबंधी किसी प्रकार के रक्षा उपाय नहीं अपनाते तो श्रवण सामर्थ्य में क्षीणता आने लगती है।"[2] ध्वनि प्रदूषण से कानों के साथ-साथ आंखों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। आंखों की पुतली का आकार छोटा हो जाता है। रंग पहचानने की क्षमता में कमी आ जाती है। शरीर की बाहरी त्वचा में रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम होने तथा बारीक चर्म परत उतरने की आशंका भी बनी रहती हैं।

(ब) **मानसिक समस्याएं**–ध्वनि प्रदूषण से शारीरिक समस्या के साथ-साथ मानसिक समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। शोर-गुल, सामाजिक तनाव, लड़ाई-झगड़े, मानसिक अस्थिरता, कुंठा, पागलपन आदि दोषों का कारण माना जाता है। शोर के कारण मनुष्य समय से पहले ही वृद्ध लगने लगता है और अनेक बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। गर्भ में पल रहे शिशु पर भी तीव्र ध्वनि का बुरा असर पड़ता है। इसी कारण बड़े-बड़े और व्यस्त हवाई अड्डों के निकट रहने वाले लोगों के बच्चे प्रायः कई शारीरिक व मानसिक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।

(स) **जंतुओं व वनस्पतियों की समस्याएं**–ध्वनि प्रदूषण केवल मनुष्य के लिए समस्या उत्पन्न नहीं करता, वरन् जंतुओं व वनस्पतियों के लिए भी समस्या उत्पन्न करता है। ध्वनि प्रदूषण के कारण पशु-पक्षी अपना आवास छोड़कर अन्य स्थानों पर चले जाते हैं। तीव्र ध्वनि व शोर से पेड़-पौधों के शारीरिक विकास पर भी प्रभाव पड़ता है।

(द) **अन्य समस्याएं**–तीव्र ध्वनि तरंगों के कारण भवनों की छतें हिल जाती हैं। इसके अलावा खनन विस्फोटों, युद्ध में विस्फोटों से चट्टानें तक खिसक जाती हैं, जिसके कारण भूस्खलन हो जाता है।

समाधान

शोर का निश्चित निवारण एक अत्यंत जटिल समस्या है, क्योंकि इसके निवारण में हमें आधुनिक प्रगति के फलस्वरूप प्राप्त सुख-सुविधाओं के साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि नियंत्रण की प्रक्रिया से औद्योगिक उपलब्धि भी प्रवाहित न हो। इस प्रकार शोर का समूल निवारण तो असंभव है, परंतु कुछ कारगर उपाय अपनाकर इस पर नियंत्रण अवश्य किया जा सकता है–

1. **शोर के स्रोतों पर नियंत्रण**–जिन वाहनों व उपकरणों से शोर बढ़ता है, उन्हें इस प्रकार डिजाइन किया जाना चाहिए कि कम शोर उत्पन्न हो, जैसे–वायुयान, मोटर साइकिल, ट्रक, औद्योगिक मशीनों को शोर-नियंत्रक कवच से ढक देना चाहिए और हमेशा उद्योगों को आबादी से दूर ही लगाना चाहिए।

2. **शोर फैलने से रोकना**–कमरों, कारखानों की दीवारों में ध्वनि अवशोषक पदार्थों का उपयोग करके शोर को फैलने से रोका जा सकता है। जो व्यक्ति अधिक शोर वाले स्थानों में काम करते हों, उन्हें कानों के लिए 'ईयर प्लग्स' की सुविधा दी जानी चाहिए। ऐसी अवस्था भी शोर के प्रभाव को कम कर सकती है।

3. **व्यवस्थाओं में अपेक्षित परिवर्तन**–शोर का हानिकारक प्रभाव वहां के रहने वाले लोगों पर अवश्य पड़ता है, किंतु हम सभी लोग मिलकर प्रयास करें तो ध्वनि प्रदूषण के असर को कम कर सकते हैं, जैसे–

(क) अपने घरों में रेडियो, टी.वी., टेप या अन्य मनोरंजन के साधनों को धीमी आवाज में बजाएं। सामूहिक कार्यक्रम, पूजा-पाठ, शादी जैसे कार्यक्रमों में ऊंची आवाज में लाउडस्पीकार, डी.जे. का उपयोग न करें। स्वयं घर में धीमा बोलें और अपने बच्चों को भी धीमा बोलने के लिए कहें।

(ख) ट्रकों व अन्य भारी वाहनों के यथासंभव आबादी वाले भागों से निकलने पर रोक लगानी चाहिए। दुपहिया, स्वचालित वाहन एवं अन्य कारों, बसों आदि के साइलेंसरों की नियमित जांच हो, जिससे तेज आवाज से बचा जा सके।

(ग) अस्पताल, विद्यालय, अधिक आबादी वाले क्षेत्रों को 'साइलेंस जोन' बना दिया जाए। इस प्रकार सब मिलकर ध्वनि प्रदूषण को कम कर सकते हैं।

4. ध्वनि प्रदूषण के बारे में लोगों को शिक्षित करना–शोर सभी के लिए कितना हानिकारक है, इसका ज्ञान जन-जन को होना चाहिए। पर्यावरण-शिक्षा पर जोर देना चाहिए। समाचार-पत्रों, टी.वी., सिनेमा के माध्यम से शोर के संबंध में समझाया जाना चाहिए और शोर-प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों से अवगत भी कराना चाहिए।

5. ध्वनि प्रदूषण और कानून–किसी भी समस्या का समाधान कानून द्वारा ही किया जाता है। ठीक उसी प्रकार ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए भी कानून बनाए जाने की आवश्यकता है। इंग्लैंड में शोर रोकथाम अधिनियम, 1960 बना है, जिसमें रात 9 बजे से प्रातः 8 बजे तक ध्वनि विस्तारक यंत्रों पर रोक है। अमेरिका में ध्वनि प्रदूषण की रोकथाम के लिए शोर नियंत्रण अधिनियम, 1972 बनाया गया है। जापान में मूल कानून में प्रदूषण नियंत्रण के संदर्भ में पर्यावरणीय जागृति व नियंत्रण हेतु प्रावधान है। लेकिन भारत में शोर नियंत्रण के लिए अलग से कोई केंद्रीय कानून नहीं है। अभी हाल ही में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 में ऐसी व्यवस्था रखी गई है, जिसमें किसी भी प्रकार के प्रदूषण के संदर्भ में नियम बनाए जा सकते हैं और उन पर विधिसंगत कठोरता से पालन किया जा सकता है। इस अधिनियम के तहत इसके सेक्शन 15 में नियमों का पालन न करने पर कड़ी सजा प्रस्तावित है। कानून की अवहेलना करने वाले दोषी व्यक्ति को 5 वर्ष तक सजा या एक लाख रुपये तक का आर्थिक दंड या दोनों दी जा सकती हैं। पहली सजा के बाद भी यदि प्रदूषण जारी रहता है तो दोषी व्यक्ति को और आर्थिक दंड दिया जा सकता है, जो पांच हजार रुपये प्रतिदिन तक हो सकता है। यदि प्रदूषण एक वर्ष तक की अवधि से आगे भी चलता है तो दोषी को 7 वर्ष तक की कैद की सजा दी जा सकती है। इस अधिनियम के तहत ध्वनि प्रदूषण के संदर्भ में नियम बनाकर उन्हें संसद में पारित करवाने की अत्यंत आवश्यकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्वनि प्रदूषण दो कारणों से होता है–प्राकृतिक एवं मानवीय।

प्राकृतिक कारणों के अंतर्गत बादलों की गड़गड़ाहट, बिजली की कड़क, तूफानी हवाएं, भूकंप तथा ज्वालामुखी के विस्फोट से उत्पन्न ध्वनि तथा वन्य जीवों की आवाजें शामिल हैं। प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न शोर क्षणिक तथा यदा-कदा होने वाला होता है, अतः इसका प्रभाव कुछ क्षण के लिए ही होता है।

किंतु मानवीय कारणों से जो ध्वनि प्रदूषण होता है, उनमें परिवहन के साधनों में रेलगाड़ी, हवाई जहाज, मोटर प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। मानवीय कारणों से जो ध्वनि प्रदूषण होता है, वह हम सब के लिए हानिकारक है। पूर्व नोबल पुरस्कार विजेता रॉबर्ट क्रांच के अनुसार, "एक दिन ऐसा आएगा, जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बड़े शत्रु के रूप में शोर से संघर्ष करना पड़ेगा।"[3] यदि ध्वनि-प्रदूषण इसी प्रकार अपनी वर्तमान दर से बढ़ता रहा तो आने वाले समय में यह संपूर्ण मानव-जाति के लिए खतरनाक हो सकता है।

जीवन के संतुलित विकास के लिए बाहरी वातावरण का स्तर भी संतुलित होना चाहिए। हम सबको मिलकर प्रयास करना होगा कि ध्वनि प्रदूषण की समस्याओं से हम सभी छुटकारा पा सकें।

संदर्भ

1. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. विमल कानूनगो व एन.बी. सिंह, प्रथम संस्करण, 2007, पृ. 46
2. युग निर्माण योजना, सं. द्वारका प्रसाद चैतन्य, संस्करण, 2007, पृ. 14
3. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. जे.पी. शर्मा, पृ. 98
4. द्रष्टव्य—अपना पर्यावरण, डॉ. एम.के. गोयल, पृ. 233

सी-3, शोध छात्रा,
शासकीय इंजीनियरिंग महाविद्यालय,
परिसर कोनी, बिलासपुर (छ.ग.)

पर्यावरण प्रदूषण : कानून और क्रियान्वयन

श्रीमती रेखा पालेश्वर

भारत ही नहीं पूरा विश्व पर्यावरण के इस बिगड़ते स्वरूप से प्रभावित है। विकासशील व अविकसित देश इस समस्या से अधिक प्रभावित हुए, क्योंकि एक तो उनकी अपेक्षाकृत भारी जनसंख्या, दूसरा आर्थिक अभाव, तीसरे अशिक्षा अथवा कम शिक्षा उन्हें इस संकट से सहज छुटकारा नहीं दिला सकती। आम जनता ने पहले प्रगति के नाम पर प्रशासन से और फिर कानून से संरक्षण चाहा। प्रगति के नाम पर प्रशासन स्वयं भी कहीं इस समस्या के उत्पन्न करने के कारणों से जुड़ा था। अतः वह कुछ कर न सका। हां, कानून ने राहत दी। विद्वान् न्यायाधीशों और विधिवेत्ताओं ने आम नागरिक के लाभ के लिए जहां भी कानून में कुछ मिला, उसी से जनता को लाभ पहुंचाया। यहां तक कि भारत के संविधान की धाराओं में उनके हित में बहुत खोजकर उनका उपयोग किया।

पर्यावरण में कानून की आवश्यकता वस्तुतः आम नागरिक को दैनिक जीवन के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति, उनकी शुद्धता, प्रदूषण को रोकने तथा आगे न होने देने और विकृत पर्यावरण को सुधारने के लिए ही महसूस हुई। अतः पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण रोकने हेतु अनेक पिछले वर्षों में बने।

पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करने के लिए ब्रिटिशकाल में भी कुछ कानून बने थे, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण संबधी 40वां संविधान संशोधन इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। इसके अनुच्छेद 48ए के अनुसार सरकार 'देश के पर्यावरण संरक्षण और सुधार तथा वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगी।' 42वें संविधान के अनुच्छेद 51ए (जी) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह 'प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उनका सुधार करें तथा प्राणीमात्र के प्रति दया-भाव रखें।' भारत सरकार द्वारा सन् 1980 में पर्यावरण मंत्रालय की स्थापना की गई।

जून, 1972 संपन्न मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ के स्टॉक होम में अधिवेशन के अनुसार, 'मनुष्य अपने पर्यावरण का निर्माता एवं शिल्पकार दोनों ही है, जिससे उसे भौतिक स्थिरता मिलती है तथा बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास का सुअवसर प्राप्त होता है।' इस ग्रह पर मनुष्य जाति की एक लंबी तथा पीड़ादायक उत्क्रमण यात्रा में एक ऐसी स्थिति आ गई है, जब विज्ञान तथा तकनीक के तीव्र विस्तार द्वारा मनुष्य ने एक प्रकार से अपने पर्यावरण की कायापलट करने की क्षमता

प्राप्त कर ली है। पर्यावरण प्रबंधन के लिए अनेक कानूनी प्रावधान बनाए गए हैं, जिनकी मुख्य भूमिकाएं है–

1. कानून पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले व्यक्ति को दंडित करता है।
2. कानून पीड़ित को क्षतिपूर्ति दिलवाता है।
3. कानून व्यक्ति को पर्यावरण पर दबाव बढ़ाने से वर्जित करता है।
4. कानून पर्यावरण संरक्षण नीति को कार्य रूप में परिणत करता है।
5. कानून विकास नीति को भी कार्य रूप में परिणत करता है।

भारत में पर्यावरण कानून का इतिहास 125 वर्ष पुराना है। प्रथम कानून सन् 1894 में पास हुआ था, जिसमें वायु प्रदूषण नियंत्रणकारी कानून थे। वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण एक जटिल समस्या है तथा वह संपूर्ण विश्व के लिए चुनौती है। आज का बढ़ता हुआ प्रदूषण संपूर्ण मानव-जाति के लिए अभिशाप बन गया है। मानव के अतिरिक्त वन एवं वन्य जीव प्रदूषण से त्रस्त हैं। इसी कारण संविधान में पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया जा रहा है तथा इस समस्या से निपटने के लिए समय-समय पर कई कानून भी बनाए गए हैं।

कानूनी स्थिति (Legal Status)

प्रदूषण से पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए संसार के कई देशों ने कानून को विनियमित करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रदूषण के साथ ही प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए कानून बनाए हैं। पर्यावरण कानून का प्रमुख उद्देश्य वातावरण के प्रमुख उपहार को प्रदूषण से मुक्त रखना है। भारतीय समाज धार्मिक प्रवृत्ति का होने के कारण यहां प्राकृतिक संसाधन (पौधे, जंतु, नदियां) पूजे जाते हैं। इसी कारण प्राचीनकाल में पर्यावरण रक्षा के लिए कानून नहीं बना था, लेकिन पिछली सदी से पर्यावरण को बचाने के लिए बड़ी संख्या में कानून बनाए गए। ये सभी कानून तीन श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं–

1. सामान्य कानून,
2. विनियामक कानून और
3. विशेष विधान।

1. सामान्य कानून (Common Laws)–सामान्य कानून इंग्लैंड के परंपरागत कानून की व्याख्या है। यह न्यायिक निर्णयों पर आधारित है और अभी तक लागू है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 372 कॉमन लॉ पर आधारित है। इस कानून के अंतर्गत किसी भी कार्य के विरुद्ध जो किसी संपत्ति या व्यक्ति की हानि का कारण बना हो, प्रभावित पक्ष क्षतिपूर्ति या निषेधाज्ञा या दोनों का दावा कर सकता है।

पर्यावरण प्रदूषण के लिए निम्न तीन कारक जिम्मेवार हैं–

(क) व्यवधान,
(ख) अतिक्रमण,
(ग) लापरवाही।

2. विशेष विधान (Specific Legislations)–जल एवं वायु प्रदूषण।

संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions)–भारतीय संविधान विश्व का पहला संविधान है, जिसमें पर्यावरण के लिए विशिष्ट प्रावधान है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना यह सुनिश्चित करती है कि हमारा देश समाजवादी समाज की अवधारणा पर आधारित है, जहां राज्य व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक समस्याओं को प्राथमिकता देता है। समाजवाद का मूल लक्ष्य है, सभी को जीवन का सुखद स्तर उपलब्ध करवाना, जो केवल एक प्रदूषणमुक्त वातावरण में ही संभव है।

3. प्रदूषण नियंत्रण कानून (Pollution Control Legislation)–भारत में प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए निम्न कानून बनाए गए हैं–

जल प्रदूषण अधिनियम (The Water [Prevention and Control of Pollution] Amendment Act)

1. यह अधिनियम जल प्रदूषण की रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए बनाया गया है। इसके माध्यम से बोर्डों का गठन किया गया है, जो जल प्रदूषण की रोकथाम व नियंत्रण करते हैं। अधिनियम द्वारा बोर्डों को अधिकार एवं कर्तव्य प्रदत्त किए गए हैं।
2. प्रदूषण से तात्पर्य जल का अशुद्धिकरण अथवा उसमें भौतिक, रासायनिक या जीव विज्ञानी परिवर्तन करना है अथवा सीवेज (Sewage) या कोई अन्य औद्योगिक, कृषि या किसी अन्य न्यायसंगत कार्य के लिए अयोग्य या पशु-पक्षी अथवा जलीय वनस्पति के लिए अयोग्य कर दें।
3. केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड में एक पूर्णकालिक सभापति, 5 नामित अधिकारी, 5 नामित राज्य बोर्ड अधिकारी, 3 नामित गैर-सरकारी व्यक्ति, 2 नामित औद्योगिक इकाई प्रतिनिधि तथा 1 पूर्णकालिक सचिव होगा।
4. राज्य बोर्ड में एक पूर्णकालिक सभापति, 5 राज्य सरकार नामित अधिकारी, 5 नामित राज्य बोर्ड अधिकारी, 3 नामित गैर-सरकारी व्यक्ति, 2 नामित औद्योगिक इकाई प्रतिनिधि तथा 1 पूर्णकालिक सचिव होगा।
5. सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष है।
6. बोर्ड की मीटिंग 3 मास में कम-से-कम एक बार होगी।
7. केंद्र विशेष कार्यों के लिए कमेटी बना सकता है, जिसमें बोर्ड तथा बाह्य दोनों प्रकार के व्यक्ति सदस्य हो सकते हैं।
8. केंद्रीय बोर्ड के कार्य–
   - i. केंद्र सरकार को जल प्रदूषण संबंधी सलाह देना।
   - ii. राज्य बोर्डों के कार्यों का एकीकरण।
   - iii. राज्य बोर्डों को जल प्रदूषण जांच और शोध-कार्य में सहायता प्रदान करना।
   - iv. जल प्रदूषण विशेषज्ञों की ट्रेनिंग।
   - v. जल प्रदूषण संबंधी जानकारी संचार माध्यमों द्वारा जनसाधारण को प्रदान कराना।
   - vi. संबंधित तकनीकी व सांख्यिकी सूचना एकत्र, एकीकृत एवं प्रकाशित करना।
   - vii. सरकार की सहायता से जल में मानक स्थापित करना तथा समय-समय पर उन्हें पुनरीक्षित करना।

viii. जल प्रदूषण रोकने के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाना।

9. **राज्य बोर्ड के कार्य–**
   i. राज्य सरकार के जल प्रदूषण रोकने के कार्यक्रम का संचालन।
   ii. राज्य सरकार को जल प्रदूषण संबंधी सलाह देना।
   iii. जल प्रदूषण संबंधी राज्य स्तर पर सूचनाएं एकत्र, एकीकृत एवंप्रकाशित करना।
   iv. जल प्रदूषण रोकने के लिए अनुसंधान कराना।
   v. विशेषज्ञों की ट्रेनिंग में केंद्रीय बोर्ड की सहायता करना।
   vi. सीवरेज तथा उत्सर्गों का उपचार की दृष्टि से निरीक्षण करना।
   vii. जल प्रदूषण के मानक स्थापित एवं पुनरीक्षित करना।
   viii. जल उपचार के कारगर व सस्ते तरीके निकालना।
   ix. सीवरेज तथा उत्सर्ग के उपयोग प्रयोग ज्ञात करना।
   x. सीवरेज एवं उत्सर्ग हटाने के उचित तरीके निकालना।
   xi. उपचार के मानक स्थापित करना।
   xii. सरकार को उन उद्योगों की जानकारी देना, जो हानिकारक उत्सर्ग बाहर छोड़ रहे हों।

10. बोर्ड के सदस्य, अधिकारी या अधिकृत व्यक्ति किसी भी उद्योग से उत्सर्ग जल का नमूना ले सकते हैं।
11. बोर्ड के सदस्य, अधिकारी या अधिकृत व्यक्ति किसी भी उद्योग का निरीक्षण कर सकते हैं।
12. किसी व्यक्ति को जानबूझकर कोई विषाक्त नशीला पदार्थ किसी जल धारा में निर्गत करने का अधिकार नहीं है।
13. नियमों का उल्लंघन करने पर तीन मास की कैद तथा जुर्माने या दोनों का प्रावधान है।
15. कंपनियों तथा सरकारी संस्थाओं द्वारा नियमों का उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 (Environment Protection Act, 1986)

केंद्र सरकार द्वारा पारित अधिनियम के प्रावधान इस प्रकार हैं–

1. 'पर्यावरण' से तात्पर्य जल, वायु भूमि का अंतर्संबंध मनुष्य, जीव, वनस्पति, सूक्ष्मजीवी तथा वन-संपदा से है।

2. 'पर्यावरण' प्रदूषण से तात्पर्य किसी ठोस द्रव अथवा गैसीय पदार्थ से है, जो इतनी सांध्रता में हो कि पर्यावरण के लिए हानिकारक सिद्ध हो।

3. केंद्र सरकार के पर्यावरण संरक्षण संबंधी अधिकार–

i. पर्यावरण संरक्षण कार्य में राज्य सरकारों के कार्यों को नियमित करना।
ii. पर्यावरण संरक्षण के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का आयोजन एवं निष्पादन करना।

iii. पर्यावरण गुणता के मानक निर्धारित करना।
iv. विभिन्न प्रदूषण स्रोतों से निर्गत होने वाले प्रदूषकों की अधिकतम प्रदूषणकारी सीमा निर्धारित करना।
v. उन क्षेत्रों का निर्धारण करना, जिनमें सुरक्षा उपायों के साथ विभिन्न औद्योगिक संस्थान स्थापित किए जा सकते हैं।
vi. पर्यावरण प्रदूषण के कारण होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव के कारगर सुरक्षात्मक तरीके निर्धारित करना।
vii. घातक सामग्री को उठाने-रखने की सुरक्षात्मक कार्यविधि का निर्धारण।
viii. औद्योगिक प्रक्रियाओं, सामग्री आदि का पर्यावरण प्रदूषण की दृष्टि से निरीक्षण।
ix. पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम के लिए शोध कार्य करना।
x. उद्योग संस्थानों, उपकरणों, मशीनरी, औद्योगिक प्रक्रियाओं आदि का निरीक्षण।
xi. पर्यावरण प्रदूषण, शोध प्रयोगशालाओं की स्थापना/ मान्यता प्रदान करना।
xii. पर्यावरण प्रदूषण संबंधी सूचना एकत्र, एकीकत एवं प्रकाशित करना।
xiii. मैनुअल, गाइड बुक, कोड आदि तैयार करना।
xiv. पर्यावरण संरक्षण संबंधी अन्य समुचित कार्य।

4. पर्यावरण प्रदूषक उद्योगों को रोकने का आदेश देने के लिए सरकार सक्षम है।

5. केंद्र सरकार निम्न के मानक स्थापित करने के लिए सक्षम है।

i. वायु, जल तथा मृदा के मानक।
ii. विभिन्न प्रदूषकों का अधिकतम अनुमन्य सांद्रण।
iii. घातक पदार्थों के उठाने, रखने के नियम।
iv. विभिन्न स्थानों पर घातक पदार्थों के प्रयोग पर रोक।
v. विभिन्न स्थानों पर उद्योग-धंधे लगाने पर रोक।
vi. दुर्घटना की रोकथाम की कार्यविधि।

6. कोई भी व्यक्ति कोई ऐसा कार्य या उद्योग स्थापित नहीं कर सकता, जिससे निर्गत होने वाला प्रदूषक अनुमन्य से अधिक हो।

7. सरकारी संस्थानों का निरीक्षण करने, नमूने लेने तथा उद्योग कार्य रोकने के लिए सक्षम है।

8. नियमों का उल्लंघन करने पर एक लाख रुपये तक जुर्माना व 5 वर्ष की कैद का प्रावधान है।

9. कंपनियों तथा सरकारी संस्थानों द्वारा नियमों का उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान है।

भारतीय वन अधिनियम, 1927 (Indian Forest Act, 1927)

भारतीय वन अधिनियम सन् 1927 में पारित किया गया था। भारतीय वन (कंजर्वेशन) अधिनियम (Indian Forest Conservation Act, 1980) तथा वन कंजर्वेशन नियम (Forest Conservation Rules, 1981) में पारित हुआ।

इसके नियम इस प्रकार हैं–

1. सन् 1927 में पारित मूल अधिनियम में वन-पशु अधिकारी, वन संपदा, नदी, वृक्ष, लकड़ी इत्यादि की अधिकृत परिभाषा दी गई हैं।

2. सन् 1927 के अधिनियम के अनुसार सुरक्षित वन घोषित करने का अधिकार राज्य सरकारों को है।

3. सुरक्षित वनों के अंदर किसी जाति के किसी वृक्ष को राज्य सरकार सुरक्षित घोषित कर सकती है।

4. सुरक्षित वनों के नियमों का निर्धारण भी राज्य सरकारें कर सकती हैं, जो निम्न क्षेत्रों में होंगे–

i. वृक्ष तथा लकड़ी काटने संबंधी।
ii. सहवर्ती ग्रामों के वासियों को वन के भीतर उपलब्ध वन-संपदा को अपने उपयोग के लिए देने संबंधी।
iii. सहवर्ती वनों के भीतर खेती करने संबंधी।
iv. अग्निकांड संबंधी।
v. घास काटने संबंधी।
vi. वनों के प्रबंधन संबंधी।

5. वृक्षों को नुकसान पहुंचाने पर छह मास की कैद या/ और 500 रुपये तक जुर्माने का प्राविधान है।

6. राज्य सरकारें उद्घोषण द्वारा किसी भी वन का नियंत्रण सुरक्षा की दृष्टि से अपने हाथ में ले सकती हैं।

7. पालित पशुओं (Cattles) द्वारा वन सीमा का उल्लंघन (Trespass) करने पर मालिक पर आर्थिक जुर्माना किया जा सकता है तथा पशु को रोक कर रखा भी जा सकता है।

वन कंजर्वेशन अधिनियम, 1980
(Forest Conservation Act, 1980)

इस अधिनियम में सन् 1988 में संशोधन किया गया था। इसके अनुसार–

1. राज्य सरकारें सुरक्षित वनों को असुरक्षित अथवा किसी अन्य वन को सुरक्षित घोषित कर सकती है।

2. सुरक्षित वनों के कुछ भाग आवश्यकता होने पर चाय, कॉफी, मसालों, रबर आदि के उत्पादन के लिए प्रयोग कराए जा सकते हैं।

3. केंद्र सरकार एडवाइजरी कमेटी (Advisory Commitees) बना सकती है, जो केंद्र सरकार के वनों के संबंध में नियम बना सकती है।

4. केंद्र सरकारें वन संबंधी नियम बना सकती हैं।

वन कंजर्वेशन नियम, 1981
(Forest Conservation Rules, 1980)

उक्त नियम केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए हैं, जो नियमं वन कंजर्वेशन अधिनियम, 1980 द्वारा केंद्र सरकार को प्रदत्त अधिकारी के अनुरूप हैं।

1. एडवाइजरी कमेटी में निम्न सदस्य होंगे–

i. वनों का महानिरीक्षक–अध्यक्ष
ii. अतिरिक्त वन महानिरीक्षक–सदस्य
iii. संयुक्त कमिश्नर मृदा संरक्षण–सदस्य
iv. तीन प्रमुख वैज्ञानिक–सदस्य
v. उप-महानिरीक्षक वन–सचिव सदस्य

2. कमेटी के गैर-सरकारी सदस्यों का कार्यकाल 2 वर्ष होगा व उनके यात्रा एवं अन्य भत्ते सरकार द्वारा देय होंगे।

3. कमेटी निम्न प्रकार कार्य करेगी–

i. एक मास में कम-से-कम एक बार बैठक नयी दिल्ली में या आवश्यकता होने पर देश में कहीं भी की जा सकती है।
ii. अध्यक्ष के न होने पर वरिष्ठतम व्यक्ति अध्यक्षता कर सकता है।

4. राज्य सरकारों द्वारा विचार के लिए प्रस्ताव भारत सरकार के वन एवं पर्यावरण सचिव को दिए जाने चाहिएं।

5. कमेटी निम्न बिंदुओं पर केंद्र सरकार को सुझाव देगी–

i. किसी वन भूमि, जो प्राकृतिक वन, नेशनल पार्क, वन्य प्राणी पार्क आदि में आती है, के गैर वन संबंधी उपयोग के बारे में।
ii. सुरक्षित वनों का कृषि, शरणार्थी निवास आदि के उपयोग के बारे में।
iii. राज्य सरकारों द्वारा उक्त संबंध में किए गए कार्यों की समीक्षा।
iv. पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव के बारे में।
v. केंद्र सरकार कमेटी के सुझाव मान भी सकती है एवं अन्य विशेष जांच करने के लिए अधिकृत है।

वन्य प्राणी सुरक्षा अधिनियम, 1972 (Wild Life Protection Act, 1972)

उक्त अधिनियम 1972 में पारित किया गया था। इसमें 1982, 1986, 1991 तथा 1993 में संशोधन किए गए।

1. इस अधिनियम में पशु, पशु पदार्थ (Animal Article), पकड़े हुए पशु (Captive Animal) आदि की समुचित परिभाषाएं दी गई हैं।

2. इसमें अन्य प्राणी संरक्षण निदेशक, सह-निदेशक, मुख्य वन्य-प्राणी वार्डन, वन्य प्राणी वार्डन तथा अन्य अधीनस्थ कर्मियों के चुनाव और नियुक्ति के निर्देश हैं।

3. केंद्र अथवा राज्य-स्तर पर वन्य-प्राणी एडवायरी बोर्ड निम्न प्रकार गठित होगा–

i. केंद्र अथवा राज्य सरकार का वन मंत्री–अध्यक्ष
ii. संबंधित विधान सभा के दो सदस्य–सदस्य
iii. राज्य अथवा केंद्र सरकार का वन सचिव–सदस्य
iv. राज्य सरकार का मुख्य वन अधिकारी–प्रदेन सदस्य
v. निदेशक द्वारा नामित अधिकारी–सदस्य

vi. मुख्य वन्य प्राणी वार्डन--पदेन सदस्य

vii. केंद्र अथवा राज्य सरकार द्वारा नामित 10 व्यक्ति, जो वन्य प्राणी संरक्षण अथवा जन-जातियों से संबंधित हों।

4. i. बोर्ड की बैठक वर्ष में कम-से-कम दो बार होगी।

ii. बोर्ड अपनी कार्य-शैली तथा कोरम आदि स्वयं तय करेगा।

5. मुख्य वन प्राणी वार्डन द्वारा अनुमत स्थिति के अतिरिक्त किसी स्थिति में वन्य प्राणियों का शिकार करने की अनुमति नहीं है।

6. इस नियम द्वारा विशिष्ट प्रकार के पादपों (Specified Plants) को तोड़ने, झाड़ने, एकत्रित करने की अनुमति बिना केंद्र सरकार के नहीं मिल सकती।

7. बिना लाइसेंस के किन्हीं विशिष्ट प्रकार के पादपों को रोपित नहीं कर सकता।

8. इस अधिनियम में एक केंद्रीय जू अधिकरण (Central Zoo Authority) के गठन का प्रावधान किया गया है, जो जू संबंधी कार्यों की देख-रेख करेगा?

9. वन्य-प्राणी पदार्थ राष्ट्रीय संपत्ति हैं और उनका व्यापार करना दंडनीय होगा।

10. इस अधिनियम की अनुसूचियों में संरक्षित वन्य प्राणियों, पदार्थों, पादपों आदि की अनुसूची दी गई है।

11. नियमों का उल्लंघन करने पर तीन वर्ष की कैद तथा 25 हजार रुपये जुर्माने या दोनों तक का प्रावधान है।

मोटर गाड़ी अधिनियम, 1988 (Motor Vehicle Act, 1988)

भारतीय मोटर गाड़ी अधिनियम सर्वप्रथम 1914 में बनाया गया था। इसे 1939 में तथा फिर 1988 एवं 1994 में संशोधित किया गया। इस अधिनियम के 1994 तक संशोधित रूप के मुख्य तथ्य निम्न प्रकार हैं--

1. इस अधिनियम में 14 अध्याय तथा दो अनुसूचियां (Schedules) हैं।

2. प्रारंभिक अध्याय में परिभाषाएं हैं तथा अन्य अध्यायों में सिलसिलेवार ढंग से ड्राइवर लाइसेंस, बसों के कंडक्टरों का पंजीकरण, मोटर गाड़ियों का पंजीकरण, यातायात नियंत्रण संबंधी नियम एवं शर्तें दी गई हैं।

3. राज्य स्तर की परिवहन संस्थाओं के नियमन के अधिकार एवं नियम एक अलग अध्याय में दिए गए है।

4. इस अधिनियम में मोटर गाड़ियों के उत्पादन, अनुरक्षण आदि के सामान्य सीमा बंधन भी निर्धारित किए गए हैं।

5. अन्य व्यक्ति (Third Party) द्वारा दुर्घटना में मोटरगाड़ी की हुई क्षति की पूर्ति के लिए की जाने वाली बीमा योजनाओं के नियम और शर्तें मोटर गाड़ी अधिनियम द्वारा ही नियंत्रित की जाती हैं।

6. इस अधिनियम में वर्णित नियमों का उल्लंघन होने पर निर्धारित दंड की प्रक्रिया अध्याय 13 में विस्तार से दी गई है।

7. मोटर गाड़ी अधिनियम के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति को चालक लाइसेंस नहीं दिया जा सकता। 20 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति किसी यातायात

(Transport) गाड़ी का चालक लाइसेंस नहीं ले सकता।

8. पूर्ण स्थायी लाइसेंस लेने से पूर्व प्रशिक्षु लाइसेंस लेना होता है व पूर्ण स्थायी लाइसेंस 3 वर्ष के लिए मान्य होता है।

9. गाड़ियों के पंजीकरण के लिए अधिकृत पंजीकरण अधिकारी को आवेदन किया जाना चाहिए।

10. पंजीकरण 15 वर्षों के लिए मान्य होता है।

11. यातायात नियंत्रण की दृष्टि से मोटर गाड़ियों के खाली तथा भरे हुए भारों का निर्धारण कर पंजीकरण आदेश में दर्ज किया जाता है। इसका उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान है।

12. राज्य सरकारें इच्छित स्थानों पर इच्छित मोटर गाड़ियों के प्रवेश एवं चालन पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण प्रदूषण पर स्थायी अथवा अस्थायी रोक लगा सकती हैं।

13. दुर्घटना होने पर मोटर चालक को घायल व्यक्ति के उपचार में मदद करनी चाहिए, पुलिस को तुरंत सूचना देनी चाहिए तथा बीमा कंपनी को सूचना देनी चाहिए।

14. अधिकृत व्यक्तियों को अधिनियम में वर्णित सूचनाएं न देने पर 500 रुपये आर्थिक दंड का प्रावधान है।

15. अनधिकृत व्यक्ति द्वारा मोटर गाड़ी चालन करने पर तीन मास की कैद या 1000 रुपये आर्थिक दंड का प्रावधान है।

16. निर्धारित गति से अधिक गति पर मोटर चालन करने पर 1000 रुपये तक आर्थिक दंड, खतरनाक विधि से मोटर चालन पर प्रथम बार में 6 मास का कारावास या और 1000 रुपये जुर्माना, अगले अपराध पर 2 वर्ष तक की कैद या 2000 रुपये जुर्माने का प्रावधान है। शराब पीकर गाड़ी चलाने पर पहली बार पकड़े जाने पर 6 माह की कैद व दूसरी बार में 3 वर्ष तक कैद हो सकती है।

17. शोर अथवा अन्य किसी प्रकार का प्रदूषण करने वाले वाहन को चलाने पर पहली बार 500 रुपये तक व अगली बार 2000 रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है।

पर्यावरण समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने तथा पर्यावरण संरक्षण में जन भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पर्यावरण अध्ययन को अनिवार्य विषय के रूप में विश्वविद्यालयों-विद्यालयों में सम्मिलित किया गया है।

संदर्भ

1. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. एम.के. गोयल।
2. भारत का संविधान, जय नारायण पांडे, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद।
3. पर्यावरण अध्ययन, डी.पी. सिंह।
4. इंडस्ट्रियल इंजीनियरी : सुरक्षा एवं प्रदूषण, डॉ. हेमेंद्र दत्त शर्मा।
5. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. रतन जोशी, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

मंगेश भवन, विकासनगर,
27 खोली, बिलासपुर (छ.ग.)

पारिस्थितिकी-तंत्र एवं पर्यावरण प्रदूषण

कु. आस्था दीवान

विविध प्रकार के वातावरण में भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव पाए जाते हैं। सभी जीव, अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होते हैं। सभी जीव अपने वातावरण के साथ एक विशिष्ट तंत्र का निर्माण करते हैं, जिसे पारिस्थितिकी-तंत्र कहते हैं। जीवों और वातावरण के इस संबंध को पारिस्थितिकी कहा जाता है।

सन् 1965 में ओड़म ने पारिस्थितिकी के लिए प्रकृति की संरचना तथा कार्यों का अध्ययन नामक नयी परिभाषा दी। विभिन्न वैज्ञानिकों ने पारिस्थितिकी तंत्र की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं। सबसे सरल परिभाषा है, 'प्राणियों एवं वनस्पतियों के परस्पर संबंधों और इनके पर्यावरण से संबंधों का अध्ययन।'

इको-सिस्टम या पारिस्थितिक तंत्र क्या है? इसे समझने के लिए हम कल्पना करें एक तालाब की, जहां मछलियां, मेंढक, शैवाल, जलीय पुष्प और अन्य कई जलीय जीव रहते हैं। ये सभी न केवल एक-दूसरे पर आश्रित हैं, अपितु जल, वायु, भूमि जैसे अजैविक घटकों के साथ भी पारस्परिक रूप से जुड़े हुए हैं। समुदाय का यह पूर्ण तंत्र, जिसमें अजैविक घटकों तथा जैविक घटकों का पारस्परिक संबंध ही पारिस्थितिकी-तंत्र का निर्माण करता है।

पारिस्थितिकी-तंत्र की विशेषताएं

1. पारिस्थितिकी-तंत्र एक कार्यशील क्षेत्रीय इकाई होता है, जो क्षेत्र विशेष के सभी जीवधारियों एवं उनके भौतिक पर्यावरण के सकल योग का प्रतिनिधित्व करता है।
2. इसकी संरचना तीन मूलभूत संघटकों से होती है—(क) ऊर्जा संघटक, (ख) जैविक (बायोम) संघटक, (ग) अजैविक या भौतिक (निवास्य) संघटक (स्थल, जल तथा वायु)।
3. पारिस्थितिकी-तंत्र जीवमंडल में एक सुनिश्चित क्षेत्र धारण करता है।
4. किसी भी पारिस्थितिकी-तंत्र का समय इकाई के संदर्भ में पर्यवेक्षण किया जाता है।
5. ऊर्जा, जैविक तथा भौतिक संघटकों के मध्य जटिल पारिस्थितिकी अनुक्रियाएं होती हैं, साथ-ही-साथ विभिन्न जीवधारियों में भी पारस्परिक क्रियाएं होती हैं।
6. पारिस्थितिकी-तंत्र एक खुला तंत्र होता है, जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का सतत् निवेश तथा उससे बहिर्गमन होता रहता है।
7. जब तक परिस्थितिकी-तंत्र के एक या अधिक नियंत्रक कारकों में अव्यवस्था नहीं होती, पारिस्थितिकी-तंत्र अपेक्षाकृत स्थिर समस्थिति में होता है।

8. पारिस्थितिकी-तंत्र प्राकृतिक संसाधन होते हैं (अर्थात् यह प्राकृतिक संसाधनों का प्रतिनिधित्व करता है)।
9. पारिस्थितिकी-तंत्र संरचित तथा सुसंगठित तंत्र होता है।
10. प्राकृतिक पारिस्थितिकी-तंत्र में अंतर्निमित नियंत्रण की व्यवस्था होती है। अर्थात् यदि पारिस्थितिकी-तंत्र के किसी एक संघटक में प्राकृतिक कारणों से कोई परिवर्तन होता है तो तंत्र के दूसरे संघटक में परिवर्तन द्वारा उसकी भरपाई हो जाती है, परंतु यह परिवर्तन यदि प्रौद्योगिकी मानव के आर्थिक क्रियाकलापों द्वारा इतना अधिक हो जाता है कि वह पारिस्थितिकी-तंत्र के अंतर्निमित नियंत्रण की व्यवस्था की सहनशक्ति से अधिक होता है तो उक्त परिवर्तन की भरपाई नहीं हो पाती है और पारिस्थितिकी-तंत्र अव्यवस्थित तथा अंसतुलित हो जाता है एवं पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण प्रारंभ हो जाता है।

पारिस्थितिकी-तंत्र के प्रकार

1. निवास्य क्षेत्र के आधार पर वर्गीकरण—निवास्य क्षेत्र, जीव-मंडल के खास क्षेत्रीय इकाई के भौतिक पर्यावरण की दशाएं, जैविक समुदायों की प्रकृति तथा विशेषताओं को निर्धारित करता है। चूंकि भौतिक दशाओं में क्षेत्रीय विभिन्नताएं होती हैं, अतः जैविक समुदायों में भी स्थानीय विभिन्नताएं होती हैं। इस अवधारणा के आधार पर पारिस्थितिकी-तंत्रों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—

(क) **पार्थिव पारिस्थितिकी-तंत्र**—भौतिक दशाओं तथा उनके जैविक समुदायों पर प्रभाव के अनुसार पार्थिव या स्थलीय पारिस्थितिकी-तंत्रों में विभिन्नताएं होती हैं। अतः पार्थिव पारिस्थितिकी-तंत्रों को पुनः कई उपभागों में विभाजित किया जाता है यथा *(अ) उच्चस्थलीय या पर्वत पारिस्थितिकी-तंत्र, (ब) निम्न स्थलीय पारिस्थितिकी-तंत्र, (स) उष्ण रेगिस्तानी पारिस्थितिकी-तंत्र* तथा *(द) शीत रेगिस्तानी पारिस्थितिकी-तंत्र*। विशिष्ट अध्ययन एवं निश्चित उद्देश्यों के आधार पर इस पारिस्थितिकी-तंत्र को कई छोटे भागों में विभाजित किया जाता है।

(ख) **जलीय पारिस्थितिकी-तंत्र**—जलीय पारिस्थितिकी-तंत्र को दो प्रमुख उपभागों में विभाजित किया जाता है—*(अ) ताजे जल वाले*—ताजे जल वाले पारिस्थितिकी-तंत्रों को पुनः कई भागों में विभाजित किया जाता है—सरिता पारिस्थितिक तंत्र, झील पारिस्थितिकी-तंत्र, जलाशय पारिस्थितिकी-तंत्र, दलदल पारिस्थितिकी-तंत्र आदि। *(ब) सागरीय पारिस्थितिकी-तंत्र*—सागरीय पारिस्थितिकी-तंत्रों को खुले सागरीय पारिस्थितिी-तंत्र, तटीय ज्वारनद मुखी पारिस्थितिकी-तंत्र, कोरलरिफ पारिस्थितिकी-तंत्र आदि उप-प्रकारों में विभाजित किया जाता है। सागरीय पारिस्थितिकी-तंत्रों को दूसरे रूप में भी विभाजित किया जा सकता है। यथा—सागरीय पारिस्थितिकी-तंत्र तथा सागर-नितल पारिस्थितिकी-तंत्र।

2. क्षेत्रीय मापक के आधार पर वर्गीकरण—क्षेत्रीय मापक या विस्तार के आधार पर विभिन्न उद्देश्यों के लिए पारिस्थितिकी-तंत्रों को अनेक प्रकारों में विभाजित किया जाता

है। समस्त जीवमंडल वृहत्तम् पारिस्थितिकी-तंत्र होता है। इसे दो प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया जाता है–*(अ) महाद्वीपीय पारिस्थितिकी-तंत्र, (ब) महासागरीय या सागरीय पारिस्थितिकी-तंत्र*। आवश्यकता के अनुसार क्षेत्रीय मापक को घटाकर एकाकी जीव (पादप या जंतु) तक लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए जीवमंडलीय पारिस्थितिकी-तंत्र, महाद्वीपीय पारिस्थितिकी-तंत्र, पर्वत, पठार, मैदान पारिस्थितिकी-तंत्र, सरिता, झील, जलाशय पारिस्थितिकी-तंत्र, फसल क्षेत्र पारिस्थितिकी-तंत्र, गोशाला पारिस्थितिक तंत्र, एकाकी पादप पारिस्थितिकी-तंत्र, पेड़ की जड़ या ऊपरी वितान का पारिस्थितिकी-तंत्र।

3. उपयोग के आधार पर वर्गीकरण–विभिन्न उपयोगों के आधार पर पारिस्थितिकी-तंत्रों को कई प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ई.पी. ओडम (1959) ने नेट प्राथमिक उत्पादन तथा कृषि विधियों के उपयोग के आधार पर पारिस्थितिकी-तंत्रों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है–

(अ) कृषित पारिस्थितिकी-तंत्र–कृषित पारिस्थितिकी-तंत्रों को प्रमुख फसलों के आधार पर कई उप-प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। यथा–गेहूं क्षेत्र पारिस्थितिकी-तंत्र, चारा क्षेत्र पारिस्थितिक तंत्र आदि।

(ब) अकृषित पारिस्थितिकी-तंत्र–अकृषित पारिस्थितिकी-तंत्रों को वन पारिस्थितिकी-तंत्र, ऊंची घास पारिस्थितिक तंत्र, बंजर-भूमि पारिस्थितिकी-तंत्र, दलदल क्षेत्र पारिस्थितिकी-तंत्र आदि।

पर्यावरण प्रदूषण

'संरक्षण जहां असफल होता है, वहीं प्रदूषण की शुरुआत होती है।'

आधुनिक युग में विकास के नाम पर मानव प्रकृति से छेड़छाड़ करने पर तुला है, परिणामस्वरूप मृदा, जल और वायु के भौतिक और रासायनिक गुणों में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इस परिवर्तन का असर सभी जैविक घटकों पर पड़ रहा है। ये परिवर्तन ही प्रदूषण का निर्माण करते हैं।

वायु प्रदूषण–कल-कारखानों का धुआं, ईंधन का धुआं, वाहनों का धुआं, धूल के कण और जल-वाष्प आदि वायुमंडल में एकत्रित हो जाते हैं, जिससे वायु की गुणवत्ता नष्ट हो जाती है। उसे ही वायु प्रदूषण या प्रदूषित वायु कहा जाता है।

वायु प्रदूषण के कारण–

1. **धुआं**–घरेलू ईंधन से धुआं, कारखानों से निकलने वाला धुआं, कचरा जलाने से धुआं, वाहनों से निकलता धुआं। इस धुएं में हाइड्रोकार्बन, कार्बन के कण, कार्बन-डाई-ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड आदि उपस्थित रहते हैं। ये सभी कण मानव के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं। पेड़ों की पत्तियों और शाखाओं में जमकर उन्हें भी क्षतिग्रस्त करते हैं।
2. **स्वचालित वाहन**–ट्रैक्टर, ट्रक, कार, स्कूटर, टैंपो, बस आदि वाहनों में डीजल या पेट्रोल के जलने से विषैली गैस निकलकर वातावरण को प्रदूषित करती है। चलती हुई वाहन की अपेक्षा चालू वाहन में खड़े वाहन से निकलता धुआं ज्यादा खतरनाक होता है, क्योंकि इस धुएं में प्रदूषक की सांद्रता होती है।

3. **औद्योगीकरण**–बढ़ती हुई जनसंख्या ने गरीबी को और गरीबी ने प्रदूषण को जन्म दिया है। बढ़ती हुई जनसंख्या ने विकास के नाम पर औद्योगीकरण को भी जन्म दिया है। कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं में पारा, जिंक, सीसा, आर्सेनिक जैसे धातुओं के सूक्ष्म कण होते हैं, इसके अलावा प्रदूषक गैस भी होती है।
4. **कृषि क्षेत्र**–फसल को कीटों के आक्रमण से बचाने तथा अधिक उत्पादन के लिए किसान खेतों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं। ये रासायनिक पदार्थ जल में घुलकर भूमि को तथा नदी-नालों में जल को प्रदूषित करते हैं।
5. **खरपतवार**–गाजर घास और कुछ खरपतवारों के परागकण वायुमंडल में बिखरकर प्रदूषक का कार्य करते हैं। इससे दमा की बीमारी होती है। महानीम वृक्ष के पुष्पों के परागकण भी प्रदूषण फैलाते हैं।

वायु प्रदूषण के प्रभाव–वायु प्रदूषण का प्रभाव न केवल जैविक घटकों पर, अपितु इमारतों पर, कपड़ों एवं धातुओं पर भी पड़ता है। मानव में श्वास तथा त्वचा संबंधी रोग तो होते ही हैं, शरीर से हिस्टामाइन रसायन का त्वचा के माध्यम से रिसाव होने लगता है। पत्तियों का पीला पड़ जाना, जल जाना, चकत्ते पड़ जाना, कलियों का बिना खिले ही सूख जाना, फलों का धब्बेदार हो जाना, पशुओं का चारा विषाक्त हो जाना, यह सब वायु प्रदूषण का ही प्रभाव है।

वायु प्रदूषण का नियंत्रण–वायु प्रदूषण का नियंत्रण आज एक प्राथमिक आवश्यकता है। लोगों में जागरूकता उत्पन्न कर, सामाजिक चेतना द्वारा, कानूनी कार्रवाई द्वारा प्रदूषण पर नियंत्रण का प्रयास किया जा रहा है, पर उस प्रदूषण का क्या करें, जो मानव द्वारा मानव के नाश के लिए किया जा रहा है।

श्रमिकों को कारखाने के अंदर मास्क लगाकर जाना अनिवार्य होना चाहिए। वायु प्रदूषण के नियंत्रण का सबसे सहज उपाय वृक्षारोपण है। बरगद की पत्तियों में ज्यादा प्रदूषण सोखने की क्षमता होती है तथा पाइन्स के वृक्ष नाइट्रोजन के ऑक्साइड का अवशोषण करते हैं। ऐसे वृक्ष कारखानों के समीप और सड़क के किनारे लगाने चाहिएं। जिससे कार्बनडाई ऑक्साइड का अवशोषण और ऑक्सीजन का विमोचन करता है। घर में तुलसी का पौधा लगाना अच्छा माना जाता है। मदार, कनेर, वोगनवेलिया ये पौधे भी प्रदूषण को अवशोषित करते हैं।

जल प्रदूषण

जल-जीवन-अमृत जल जीवनदायिनी तत्व है। जीवन की शुरुआत ही जल से हुई है। जल बिनां जीवन का अस्तित्व ही नहीं है। जब जल के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में परिवर्तन हो जाए और इस परिवर्तन का असर समस्त जल मंडल और जीव मंडल पर पड़े, तब यह जल प्रदूषित जल कहलाता है।

जल प्रदूषण के कारण–

1. **औद्योगिक विकास**–प्रगति के नाम पर मानव नये-नये उद्योग-धंधों का विकास कर रहा है। इन उद्योग-धंधों में रासायनिक, कीटनाशी, पीड़कनाशी बनाए जाते हैं, कहीं

चमड़े का शोधन होता है तो कहीं इस्पात का कारखाना है। इन सबसे जल इतना दूषित हो जाता है कि इसमें वनस्पति नष्ट हो जाती है। इसी जल को व्यक्ति नहाने तथा पीने में उपयोग करते हैं और अनेक बीमारियों से ग्रसित होते हैं।

2. **अपमार्जक विकास**—आज हर घर में नहाने, कपड़े धोने और बर्तन धोने के लिए विभिन्न प्रकार के साबुन का उपयोग किया जाता है। सर्फ, विम, निरमा जैसे कई डिटरजेंट इनके उदाहरण हैं। धुलने के पश्चात् इन पदार्थों को जल में विसर्जित कर दिया जाता है। साबुन युक्त जल नदी-नालों और तालाब के जल को दूषित करते हैं तथा जीवधारियों को नुकसान पहुंचाते हैं।
3. **कीटनाशी**—फसलों को उन्नत बनाने के लिए कीटनाशी रसायनों का उपयोग किया जाता है। ये रसायन में घुलकर खेतों के माध्यम से नदी-तालाबों तक पहुंचते हैं और जल को प्रदूषित करते हैं।

जल प्रदूषण का प्रभाव—पृथ्वी पर जल का वितरण असमान तरीके से होता है। किसी क्षेत्र में अत्यधिक जल तो कहीं सूखा, परिणामस्वरूप वायु की अपेक्षा जल प्रदूषण गंभीर मसला है।

रासायन युक्त जल के सेवन से मानव में डायरिया, पीलिया, त्वचा रोग, फ्लूरोसिस, विकलांगता, नेत्र विकार, यूरेनिया आदि रोग हो जाते हैं। पीड़कनाशी के जल में घुलने पर खाद्य शृंखला के माध्यम से, फसलों के माध्यम से मानव व अन्य प्राणियों पर प्रदूषित जल का हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

जल प्रदूषण का नियंत्रण—पीने के पानी को फिटकरी या क्लोरीन से शुद्ध करना चाहिए। कीटनाशी का प्रयोग सावधानी से और तनु रूप में किया जाना चाहिए तथा बाजार की सब्जियों को पोटाश के जल में धोकर फिर उपयोग में लाना चाहिए। सीवेज उपचार यंत्रों तथा सेप्टिक टैंक का प्रयोग उत्तम है। सड़ी हुई या मृत वस्तुओं को जल में न बहाकर जला देना चाहिए।

भारत सरकार द्वारा जल अधिनियम, 1974 का कड़ाई से पालन करना चाहिए और इस कार्य में शासन को पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अन्य कई कारण हैं—मृदा प्रदूषण, सागरीय प्रदूषण, शोर प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, नाभिकीय प्रदूषण आदि।

संदर्भ

1. पर्यावरण प्रदूषण और प्रबंधन, अशोक प्रधान, नीलकंठ प्रकाश, महरौली, नयी दिल्ली।
2. भौतिक भूगोल, डॉ. सविंद्र सिंह, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।
3. भूगोल, डॉ. चतुर्भुज मामोरिया, डॉ. बी.एल. शर्मा, साहित्य भवन पब्लिकेशंश।
4. राजनीति विज्ञान, डॉ. बी.एल. कड़िया, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2004

कला एवं वाणिज्य कन्या महाविद्यालय,
देवेंद्रनगर, रायपुर (छ.ग.)

पर्यावरण-प्रदूषण और हमारा दायित्व

कु. सुनीता बाजपेयी

पर्यावरण-प्रदूषण एक गंभीर समस्या का रूप ले चुका है। इसके साथ मानव समाज के जीवन-मरण का महत्वपूर्ण प्रश्न जुड़ा है। हमारा दायित्व है कि समय रहते इस समस्या के समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाएं। यदि इसके लिए आवश्यक उपाए नहीं किए गए तो प्रदूषण-युक्त इस वातावरण में पूरी मानव-जाति का अस्तित्व संकट में पड़ सकता है। आज मनुष्य अपनी सुख-सुविधा के लिए प्राकृतिक संपदाओं का अनुचित रूप से दोहन कर रहा है, जिसके परिणामस्वरूप यह समस्या सामने आई है।

सबसे पहले हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रदूषण क्या है? जल, वायु व भूमि के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाला कोई भी अवांछनीय परिवर्तन प्रदूषण है। एक ओर दुनिया तेजी से विकास कर रही है, जिंदगी को सजाने-संवारने के नये-नये तरीके ढूंढ रही है, दूसरी ओर वह तेजी से प्रदूषित होती जा रही है। इस प्रदूषण के कारण जीना दूभर होता जा रहा है। आज आसमान जहरीले धुएं से भरता जा रहा है। नदियों का पानी गंदा होता जा रहा है। सारी जलवायु, सारा वातावरण दूषित हो गया है। इसी वातावरण दूषण का वैज्ञानिक नाम है—प्रदूषण या पॉल्यूशन।

हमारा पर्यावरण किन कारणों से प्रदूषित हो रहा है? आज सारे विश्व के समक्ष जनसंख्या की वृद्धि सबसे बड़ी समस्या है। पर्यावरण प्रदूषण में जनसंख्या की वृद्धि ने अहम् भूमिका का निर्वाह किया है। औद्योगीकरण के कारण आए दिन नये-नये कारखानों की स्थापना की जा रही है, इनसे निकलने वाले धुएं के कारण वायुमंडल प्रदूषित हो रहा है। साथ ही मोटरों, रेलगाड़ियों आदि से निकलने वाले धुएं से भी पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। इसके कारण सांस लेने के लिए शुद्ध वायु का मिल पाना मुश्किल है। वायु के साथ-साथ जल भी प्रदूषित हो गया है। नदियों का पानी दूषित करने में बड़े कारखानों का सबसे बड़ा हाथ है। कारखानों का सारा कूड़ा-कचरा नदी के हवाले कर दिया जाता है, बिना यह सोचे कि इनमें से बहुत कुछ पानी में इस प्रकार घुल जाएंगे कि मछलियां मर जाएंगी और मनुष्य पी नहीं सकेंगे। राइन नदी के पानी का जब विशेषज्ञों ने समुद्र में गिरने से पूर्व परीक्षण किया तो एक घन सेंटीमीटर में बीस लाख जीवन-विरोधी तत्व मिले। कबीरदास के युग में भले ही बंधा पानी ही गंदा होता हो, आज तो बहता पानी भी निर्मल नहीं रह गया है, बल्कि उसके दूषित होने की संभावना और बढ़ गई है।

पर्यावरण प्रदूषण को वायु प्रदूषण या वातावरण प्रदूषण भी कहते हैं। वातावरण दो शब्दों से मिलकर बना है—वात + आवरण अर्थात् वायु का आवरण। पृथ्वी वायु की मोटी पर्त से ढकी हुई है। एक निश्चित ऊंचाई के पश्चात् यह पर्त पतली होती गई है। वायु नाना प्रकार की गैसों से मिलकर बनती है। वायु में ये गैसें एक निश्चित अनुपात में होती हैं। यदि इसके अनुपात में संतुलन बिगड़ जाएगा तो मानव या सभी जीवों के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। हम सभी अपनी सांस में वायु से ऑक्सीजन लेते हैं तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ते हैं। मोटर गाड़ियों, कारों, स्कूटरों आदि वाहनों से निकला विषैला धुआं वायु को प्रदूषित करता है। अमेरिका में प्रत्येक तीन व्यक्ति के पीछे कार है, जिनसे प्रतिदिन ढाई लाख टन विषैला धुआं निकलता है। पेड़-पौधे इस विषैली कार्बन-डाई-ऑक्साइड को सांस के रूप में ग्रहण कर लेते हैं और ऑक्सीजन बाहर निकालते हैं। वायुमंडल में इन जहरीली गैसों का अधिक दबाव बढ़ना ही प्रदूषण कहा जाता है। कोयले आदि ईंधनों के जलाए जाने से उत्पन्न धुआं वायु प्रदूषण का मुख्य कारण है। यह अन्य सभी प्रदूषणों से अधिक भयावह है। विषैली गैसें पृथ्वी के वायुमंडल को उष्ण बना देती हैं, फलस्वरूप तापमान बढ़ जाता है। ध्रुव प्रदेशों का बर्फ पिघलने लगता है, समुद्र का स्तर ऊंचा हो जाता है। इससे समुद्र तट पर रहने वालों को खतरा उत्पन्न हो जाता है। विषैली वायु में श्वास लेने से दमा, तपेदिक और कैंसर आदि भयानक रोग हो जाते हैं, जिससे मनुष्य का जीवन संकटमय हो जाता है।

आजकल बड़ी फैक्ट्रियों और कारखानों के हजारों टन दूषित रासायनिक द्रव्य नदियों में बहाए जाते हैं, जिसके फलस्वरूप नदियों का पानी पीने योग्य नहीं रहता। मल-मूत्र तथा गंदे नाले नदियों में मिलने से जल को गंदा कर देते हैं, जिससे जल-प्रदूषण बढ़ जाता है और इससे अनेक रोग हो जाते हैं। समुद्र में मिलकर नदियों का प्रदूषित पानी जल के जीवों के लिए भी घातक सिद्ध हो रहा है। समुद्र के खारे पानी से मीठे का संतुलन बिगड़ जाता है। प्रदूषित जल का प्रयोग मानव-जीवन को अनेक बीमारियों से ग्रस्त कर देता है। इस खराब रासायनिक मिश्रित पानी से धरती की उपजाऊ शक्ति भी क्षीण हो रही है, जो अतिविचारणीय है।

भूमि पर मिट्टी में होने वाले दुष्प्रभाव को थल-प्रदूषण कहा जाता है। खाद्य पदार्थों की उपज बढ़ाने और फसलों को हानि पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़े को मारने के लिए जो डी.डी.टी. या अन्य विषैली दवाइयां भूमि पर छिड़की जाती हैं, वे दवाएं मिट्टी में मिलकर भूमि को दूषित बना देती हैं। इससे धरती की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। प्रयोग करने वालों के लिए भी यह हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

आजकल ध्वनि प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है। मोटरकार, स्कूटर, हवाई जहाज, रेडियो, लाउडस्पीकर, कारखानों के सायरनों तथा द्रुतगति से चलने वाली मशीनों की आवाज़ से ध्वनि प्रदूषण दिन दूना, रात चौगुना बढ़ रहा है। इन सबका असह्य शोर ध्वनि प्रदूषण को जन्म देकर मनुष्य की पाचन शक्ति पर भी प्रभाव डालता है। नगर के लोगों को रात्रि में नींद नहीं आती, कभी-कभी तो मानव मस्तिष्क पर इतना प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है कि मानव पागलपन के रोग से ग्रसित हो जाता है।

औद्योगिक सभ्यता ने हमें असंख्य भौतिक लाभ पहुंचाए हैं, सुख-सुविधाएं दी हैं, किंतु इन सबके लिए हमें पर्यावरण की भारी कीमत चुकानी पड़ी है। कारखानों से निकलने वाली गैसें व धुआं CO_2, CO, SO_2 ट्रेटामेथिल लेड आदि वायु प्रदूषण फैला रहे हैं, जिससे गले के रोग, दांतों व हड्डियों के रोग, आंखों में जलन, जुकाम, खांसी, दमा तथा टी.बी. (क्षय रोग) आदि हो सकते हैं। SO_2 गैस हरे-भरे पौधों को मृत कर देती हैं। वायु प्रदूषण का दुष्परिणाम भारत में 3 दिसंबर, 1984 को देखा गया, जब भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड के कारखाने से जहरीली गैस मेथिल-आइसोसायनेट का रिसाव हुआ तो 3000 लोग मारे गए और 30-40 हजार लोग आंशिक या पूर्ण रूप से विकलांग या विक्षिप्त हो गए। भोपाल गैस कांड से प्रभावित मनुष्यों की 20-25 वर्ष तक होने वाली संतानें या तो विक्षिप्त या विकृत हुईं, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। ठीक इसी प्रकार कल-कारखानों का गंदा जल, जल प्रदूषण को बढ़ावा देता है। कल-कारखानों को जल की उपलब्धता के कारण अधिकांशतः नदियों के किनारे लगाया गया है। उनके द्वारा स्रावित दूषित जल जिसे बिना उपचारित किए नदियों में बहाया जा रहा है, जिससे हमारे लिए पेयजल का संकट उत्पन्न होता जा रहा है। सिर्फ मनुष्य ही नहीं, बल्कि अनेक जीव, जो हमारी प्राकृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर हैं, वह भी लुप्तावस्था को प्राप्त होते जा रहे हैं। प्रदूषित जल से हैजा, मोतीझरा, पेचिश, क्षय इत्यादि गंभीर रोग हो जाते हैं। इसे रोकने के लिए निम्न उपाय किए जाने चाहिएं हैं—

- वनों को प्रोत्साहन देना चाहिए तथा पेड़-पौधे लगाने चाहिएं।
- वनों तथा पेड़ों की कटाई पर रोक लगानी चाहिए।
- कल-कारखानों में प्रदूषक नियंत्रण यंत्र लगाना चाहिए।
- प्रदूषित जल को नदियों, समुद्र में मिलाने से पूर्व उसका शोधन कर लेना चाहिए।

किसी भी देश की ऊर्जा की अधिक खपत उसकी औद्योगिक प्रगति, आर्थिक व सामाजिक उत्थान, जीवन-यापन की गुणवत्ता, मानव कल्याण का मापदंड बनती जा रही है। विभिन्न देशों में ऊर्जा खपत की दर में निरंतर वृद्धि हो रही है। अभी भी विश्व में ऊर्जा स्रोत—खनिज, कोयला, खनिज तेल व प्राकृतिक गैस हैं। एक अनुमान के अनुसार जिस तीव्र गति से प्रभावित स्रोतों का दोहन किया जा रहा है, इस स्थिति में ये स्रोत शायद ही सन् 2020 तक चल सकें। अतः विश्व ऊर्जा संकट के दौर से गुजर रहा है। इन परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के निरंतर उपयोग से पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या निरंतर बढ़ रही है। यदि ऊर्जा के सभी स्रोत समाप्त हो गए तो मानव के अब तक के सारे विकास कार्यक्रमों व खोजों पर पानी फिर जाएगा और मानव अपने विनाश को स्वयं देखता रहेगा। अतः ऊर्जा संकट से निपटने के लिए हमें परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का संरक्षण अर्थात् ऊर्जा की खपत को कम करना होगा और वैकल्पिक एवं नवीनीकरण योग्य ऊर्जा स्रोतों का पता लगाकर उनके उपयोग की तकनीक का विकास करना होगा।

भारत में कोयले के बाद पेट्रोलियम उत्पाद ईंधन के प्रमुख स्रोत हैं। इनकी खपत में लगातार वृद्धि हो रही है। सन् 1950-51 में जहां यह सिर्फ 35 लाख टन थी, सन् 2003-04 में बढ़कर लगभग 10.76 करोड़ टन हो गई है। भारत में पेट्रोलियम उत्पादों को

संरक्षित करने के लिए अन्य विकल्पों पर विशेष जोर दिया जा रहा है। इसके लिए इथेनॉल मिश्रित पेट्रोल की बिक्री शुरू की गई है। हाइड्रोजन के ईंधन के रूप में प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड तथा अनुसंधान एवं विकास केंद्र, जिसे पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय द्वारा इस कार्य के लिए नोडल एजेंसी निर्धारित किया गया है, द्वारा स्कूटरों, तिपहिया वाहनों एवं बसों में हाइड्रोजन के प्रयोग के लिए एक रोड मैप तैयार किया गया है। पेट्रोलियम उत्पादों को संरक्षित करने का अन्य विकल्प है, जैव-ईंधन, वनस्पति तेल, पशु वसा, जिसे परंपरागत डीजल में मिलाकर ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। अनुसंधान और विकास अध्ययन से पता चला है कि जैव-डीजल मिश्रित ईंधन से वाहन के इंजन की उम्र बढ़ती है और इससे अपेक्षाकृत कम प्रदूषण होता है। वनस्पति तेल से बायोडीजल बनाने में छत्तीसगढ़ प्रशासन देश के अन्य राज्यों की तुलना में अग्रणी भूमिका निभा रहा है।

आधुनिक विज्ञान के विकास के साथ-साथ विश्व में जनसंख्या-वृद्धि भी तीव्र गति से हुई है। वर्तमान में भारत की जनसंख्या 3.2 अरब से अधिक तथा विश्व की जनसंख्या 7 अरब से अधिक पहुंच गई है। भारत में प्रतिवर्ष एक ऑस्ट्रेलिया के बराबर जनसंख्या बढ़ती है, जिसके लिए प्रतिवर्ष लगभग 40 लाख टन खाद्यान्न व 50,000 विद्यालय चाहिएं। जनसंख्या विस्फोट के कारण भुखमरी, अकाल, प्रलय आदि आपदाएं मानव को झेलनी पड़ेगी और अंत में मनुष्य स्वयं का विनाश अपनी आंखों से देखने को विवश होगा, क्योंकि जनसंख्या विस्फोट के कारण मानव जंगलों की अंधाधुंध कटाई कर रहा है, वहां पर तरह-तरह के उद्योग एवं नये-नये शहर बसाए जा रहे हैं, जिससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है और जैसे ही संतुलन बिगड़ा कि प्रकृति का कोप मानव के विनाश का कारण बन जाता है। कुछ वर्ष पूर्व गुजरात में आए भयंकर भूकंप तथा समुद्र में आई सुनामी को इसी के उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। अतः हमें जनसंख्या विस्फोट को परिवार नियोजन अपनाकर रोकना होगा।

प्रदूषण वायुमंडल, जल एवं थल में प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यदि इस समस्या का निदान जल्दी न खोजा गया तो कहा नहीं जा सकता कि इसका अंत कितना दुःखदायी होगा?

औद्योगीकरण और जनसंख्या-वृद्धि दोनों ने ही संसार के सामने प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न कर दी है। अतः प्रदूषण को रोकने एवं पर्यावरण को स्वच्छ बनाने के लिए दोनों को नियंत्रित करना चाहिए। उद्योगों के कारण उत्पन्न होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए सरकार ने नये उद्योगों की स्थापना के लिए लाइसेंस दिए जाने के लिए कुछ नियम बनाए हैं, जिसके अंतर्गत धुएं तथा अन्य व्यर्थ पदार्थों के समुचित ढंग से निष्कासन तथा उसकी अवस्था का दायित्व उद्योगपति को लेना होता है। जनसंख्या को नियंत्रित करने में सरकार जी-जान से प्रयत्नशील है। इन सबके बावजूद पर्यावरण को स्वच्छ बनाए रखने के लिए वनों की अनियंत्रित कटाई को रोकने हेतु कठोर नियम बनाए जाएं तथा जन-साधारण को वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या आज किसी राष्ट्र विशेष की समस्या न होकर विश्व की समस्या हो गई है। स्वाभाविक है कि जमीन पर तो सीमा-रेखा खींची जा सकती है,

लेकिन आकाश में नहीं। लोगों के आवागमन को तो रोका जा सकता है, लेकिन वायु के आवागमन को कैसे रोका जा सकता है? इसलिए पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या से जहां एक ओर सभी राष्ट्र अपने-अपने स्तर पर जूझ रहे हैं, वहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रयास किए जा रहे हैं। इस समस्या को समाप्त नहीं किया जा सकता, लेकिन कम जरूर किया जा सकता है। इस दृष्टि से भारत में राज्य सरकारों ने अनेक नियम और कानून बनाए हैं। नर्मदा बांध परियोजना विवाद इसका प्रमाण है। कल-कारखानों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है।

प्रदूषण के कारणों और स्वरूपों पर विस्तार से विचार करने लगें तो सिर चकराने लगता है। सब कुछ तो दूषित है—हवा, पानी, पेड़-पौधे और अन्न। फिर क्या खाएं, क्या पिएं, कहां जाएं? प्रसिद्ध वैज्ञानिक जॉर्ज वुडवेल ने ठीक ही कहा है कि परिवेश के चक्रों के प्रदूषण के बारे में हमने जितना कुछ जाना है, वह इसका पर्याप्त प्रमाण है कि इस विराट धरती पर अब कहीं सुरक्षा और स्वच्छता नहीं है। वैज्ञानिक सभ्यता का अभिशाप प्रदूषण के रूप में ही सामने आया है। यह मानव को मृत्यु के मुंह में धकेलने की चेष्टा है, यह प्राणियों के अमंगल की कामना है। जीवन को सुरक्षित बनाए रखने के लिए प्रदूषण नियंत्रण एक मौलिक आवश्यकता है। इस समस्या के प्रति उपेक्षा एवं उदासीनता से मानव का अस्तित्व ही संकटमय हो सकता है। पर्यावरण सुरक्षा सामाजिक एवं सामूहिक उत्तरदायित्व है। प्रत्येक नागरिक को चाहिए कि वह इस दिशा में अपना योगदान दे, ताकि समस्त मानव-जीवन सुखमय हो सके।

व्याख्याता, शा.उ.मा.शा.
कुदुदंड, बिलासपुर (छ.ग.)

भारत में सांस्कृतिक मनोरंजन की परिदशा

डॉ. राजेशकुमार मानस

भारतीय सभ्यता सनातन सभ्यता है। यहां की संस्कृति अतिप्राचीन संस्कृति रही है। युगों-युगों से पाश्चात्य देश जिसके आदि-अंत का पता लगाने की कोशिश करते रहे हैं। इस बात का सबूत हमें ह्वेनसांग, फाह्यिन, ह्वांगहू की भारत यात्राओं एवं सिकंदर महान् के विश्वविजय अभियान में पढ़ने को मिलते हैं। इतिहास साक्षी रहा है कि भारतीय संस्कृति दुनिया में एक ऐसी संस्कृति रही है, जिसका विखंडन नहीं किया जा सकता। वैदिक संस्कारों ने यहां के लोगों को आपस में जोड़े रखा है, यहां 'वसुधैव कुटुंबकम्' की परंपरा सदैव से अद्वितीय रही है, यहां धर्म के प्रति आस्था और विश्वास सदैव से ही अद्भुत रहा है। प्राचीनकाल से ही ऋषि परंपराओं में ही धर्म के साथ-साथ ज्ञान और विज्ञान का विकास मानवीय समाज की भलाई के लिए एवं सामाजिक उत्थान के लिए किया जाता रहा है।

वैदिक ऋचाओं में असत्य से सत्य की ओर, पाप से पुण्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर जाने की प्रेरणा सदैव मिलती रही है, यहां का वैदिक साहित्य समाज को सन्मार्ग की ओर जाने की शिक्षा सदैव से देता रहा है। जब-जब यहां पाप का पलड़ा भारी हुआ, तब-तब पुण्य को स्थापित करने के लिए एक नये अवतार का अवतरण हुआ है, वह चाहे कृष्ण हों या राम, बुद्ध हों या परशुराम। प्रत्येक बार समाज के सही मार्गदर्शन के लिए यहां पर शांति के संवाहकों का प्रादुर्भाव हुआ है।

जब-जब संक्रमणकाल का दौर आया है, तब-तब इस दौर से निपटने के लिए कबीर, मीरा, तुलसी, नानक, रैदास, तुकाराम जैसे संतों का इस धरती पर आगमन हुआ और समाज में पुनःव्यवस्था स्थापित हुई। इनके द्वारा समाज में उभर आई वैचारिक खरपतवारों को उखाड़कर साफ-सुथरा किया गया और मानवीय-मूल्यों के होते अवमूल्यन को पुनः व्यवस्थित किया गया।

भारतीय समाज सदैव से ही धर्म की आस्थाओं पर टिका रहा है, इसीलिए यहां कर्मकांड को प्रबल माना जाता रहा है। यहां का साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी एक कर्मकांडी होता है, जो अपने नियत समय में नियत कर्मकांड जरूर पूरा करता है। इसका उदाहरण हमें अनामिल की कथा से मिल जाता है। ऐसी जटिल एवं समृद्ध तथा सुदृढ़ परंपराओं के देश विरोधी तत्वों द्वारा में वैचारिक मत भिन्नता पैदा करने की कोशिश सदैव से की जाती रही है। आज का दौर भारतीय समाज के लिए पुनः एक संक्रमणकाल का

दौर है, जहां विभिन्न प्रकार से वैचारिक प्रदूषण की उत्पत्ति होती जा रही है। रोज नये-नये विचारों के लोग, समाज पर हावी होते देखे जा सकते हैं।

आज के दौर में सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रदूषण का बोलबाला भारतीय समाज में स्पष्ट रूप से देखने को मिल जाएगा। यहां सामाजिक पर्यावरण को प्रभावित करने के लिए मीडिया और मनोरंजन दोनों जवाबदेह हैं। आज समाज में मनोरंजन के नाम पर जो भौंडापन परोसा जा रहा है, वह भारतीय समाज के लिए सुपाच्य नहीं है, वरन् पथभ्रष्टता का संकेत देता है। आज समाज में विकास की जो धारा बह रही है, वह मांसलता को बेचकर प्राप्त की जा रही है। नारी की छवि की दुर्गति जितनी ज्यादा आज हो रही है, इतनी पहले कभी नहीं हुई। आज दस में से नौ विज्ञापनों पर केवल नारी की ही शारीरिक मांसलता का उपयोग किया जाता है, इससे उसके सम्मान में गिरावट का ही स्वरूप हमें देखने को मिल रहा है।

यह देश जहां सदैव से ही 'यत्र नार्यस्तु पूजयंते, रमंते तत्र देवताः' कहा जाता रहा है, वहीं आज बाजारवाद की चकाचौंध में नारी को पूजने की बजाय बेचने का साधन बनाया गया है। इस तरह आज नारी यहां बाजारवाद की एक प्रमुख विक्रय-वस्तु बनकर रह गई है। मनोरंजन के रूप में आज समाज में जो परोसा जा रहा है, उससे यहां की सभ्यता और संस्कृति की रीढ़ पर ही वार किया जा रहा है। आज कोई भी सीरियल देखें, सभी में पारिवारिक झगड़े इतने उल-जलूल रूप में प्रस्तुतए किए जाते हैं कि जिसकी सीमा ही नहीं होती। देश में जहां कभी संयुक्त परिवार का वर्चस्व होता था, आज लोगों को एकांगी परिवार में तब्दील होते देखा जा सकता है, जिसके कारण बाल-आश्रम और वृद्ध-आश्रमों की भरमार हो गई है। इसी का एक और विकृत रूप भी पनपा है, देश में अधिकाधिक भिक्षावृत्ति का होना।

समाज में आज हम आए दिन आयातित उत्सवों, पर्वों को मनाते देखे जा सकते हैं। हम अपनी सभ्यता को भूलकर ऋचाओं एवं वैदिक संस्कारों, कर्मकांडों को भूलकर आज वेडिंग एनिवर्सरी, बर्थ-डे, किटी पार्टी, टी पार्टी, रोज डे, वेलेंटाइन डे, फ्रेंडशिप डे, न्यू ईयर पार्टी आदि मनाने लगे हैं, जबकि हमारी अपनी परंपराओं को आज वैश्विक रूप में—पाश्चात्य लोगों ने धारण करना प्रारंभ कर दिया है और हम उनकी उतरनों को स्वीकार करने में लगे हैं। इस प्रकार आज भारतीय समाज में एक नये तरह का संक्रमण देखने को मिल रहा है, जिसमें ज्यादा-से-ज्यादा युवाओं को इस ओर आकर्षित किया जा रहा है।

युवा वर्ग आने वाले समय का प्रणेता, मार्गदर्शक होता है और किसी राष्ट्र का भावी निर्माता भी है, जो राष्ट्र की रीढ़ का काम करता है। उसकी इसी रीढ़ पर जब आघात किया जाता है, तब उसकी नींव कमजोर की जा सकती है और यही षड्यंत्र भारतीय समाज के लिए लगभग वर्तमान में रचा गया है, जिसके तहत संपूर्ण युवा समाज को भिन्न प्रकार के मायाजाल में फंसाकर, इसके मोहपाश में बांधकर इस देश की सभ्यता और संस्कृति से दूर करने की कोशिश की जा रही है, जिससे आने वाले समय में यहां पुनः किसी और परिवेश का आधिपत्य हो जाए। इसीलिए यहां मनोरंजन, शिक्षा, उत्सवों-पर्वों के नाम पर

एक नयी संस्कृति को स्वीकार करने के लिए युवाओं को उत्प्रेरित किया जा रहा है। वर्तमान में इसी के चलते देश में सबसे ज्यादा अपराध युवाओं द्वारा ही किए जा रहे हैं। समाज आज नशे के चंगुल में फंसा हुआ है, जिसमें 90 प्रतिशत युवा शामिल हैं। आज युवाओं द्वारा इस तरह के कार्यों को अंजाम दिया जा रहा है, जिनसे समाज में आए दिन अव्यवस्था फैलती जा रही है। इस सामाजिक प्रदूषण से युवा वर्ग दिग्भ्रमित हो रहा है। आज सबसे ज्यादा हत्या, आत्महत्या, बलात्कार, अपहरण, लूट, डकैती आदि की घटना कोई करता है तो वह युवा वर्ग ही है, जो इन तमाम तरह के अपराध करके समाज-क्षय करने की कोशिश कर रहा है। इसका कारण वर्तमान में परोसा जा रहा मनोरंजन है, जो मीडिया द्वारा युवाओं तक पहुंच रहा है।

वर्तमान परिवेश को देखकर पुनः समाज को व्यवस्थित करने के लिए किसी कबीर, तुलसी की कल्पना की जा सकती है, जिसके द्वारा पथ-भ्रष्ट होते समाज को पुनः अपनी संस्कृति से जोड़ने का कार्य किया जा सके। आज समाज में इतनी ज्यादा असभ्यता और असंगति भर गई है कि कहीं भी, किसी भी जगह पर बड़ों को छोटे से अपमानित होता हुआ देखा जा सकता है।

समाज में वैचारिक प्रदूषण इस कदर बढ़ता जा रहा है जिसकी परिकल्पना कर पाना मुश्किल हो गया है। शिक्षा देने का संस्थान हो या कार्य करने का, हर कहीं अपराध का साया पनपता हुआ देखा जा सकता है। वर्तमान में लोग केवल और केवल 'कंचन और कामिनी' के पीछे दौड़ने लगे हैं और इस तरह समाज में शुद्ध वैचारिक पक्ष का ह्रास होने लगा है। लोगों में धार्मिक भावनाएं आज टूटने लगी हैं। लोग इसे आज व्यापार का साधन बनाए बैठे हैं। बड़े-बड़े मठों में संतों के द्वारा चंदा उगाही का कार्य धड़ल्ले से किया जा रहा है। लोगों की आस्थाओं को माध्यम बनाकर संतों ने अपने उदर-पोषण, सुखोपभोग का पूरा मायाजाल रचा हुआ है। आज भारतीय समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक प्रदूषण का अत्यधिक बढ़ता प्रभाव देखा जा सकता है। वर्तमान में समाज में लोगों को केवल और केवल स्वयं की वृद्धि ही दिखाई देती है, वह अपनी इस श्रीवृद्धि को प्राप्त करने के लिए कुछ भी कर सकता है, किसी भी हद को पार कर सकता है। इस प्रकार समाज में आज व्यक्तिवादिता का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।

सारे तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान भारतीय समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रदूषण व्यापक रूप में फैला हुआ है, जिसका मूल कारण है बढ़ता बाजारवाद, पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण, मीडिया और आज का अस्वस्थ मनोरंजन, जिसके प्रभाव से समाज में आज ऐसी स्थिति निर्मित हो रही है जिसका ज्यादा प्रभाव समाज के युवा वर्ग पर पड़ रहा है और वे इसके शिकार होते जा रहे हैं, जो आने वाले समय में भारतीय समाज के लिए एक घातक परिणाम देने वाला सिद्ध होगा, जिससे देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर एक प्रश्नचिह्न-सा लग जाएगा?

लक्ष्मी चौक, चिंगराजपारा,
बिलासपुर (छ.ग.)

प्रदूषण और प्राणी हिंसा

इं. एम.के. जैन

आज दुनिया में युद्ध की भयावहता से भी अधिक खतरा पर्यावरण-प्रदूषण का है। जिस धरती ने मनुष्य को जन्म दिया, वही मनुष्य इस धरती को खा जाना चाह रहा है। यानी जिस डाल पर वह बैठा है, उसे ही काट रहा है। धन्य है ऐसी बौद्धिकता, धन्य है ऐसा ज्ञान, ऐसा विज्ञान। दरअसल प्रकृति जो हमारी मित्र होनी चाहिए थी, उसे दुश्मन मानकर उसके विरुद्ध जाकर विकास का दंभ भरा जा रहा है।

ग्लोबल वार्मिंग, हिमयुग, जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, मिट्टी-प्रदूषण इत्यादि यानी प्रदूषण से ग्रस्त हो चुकी पृथ्वी हमारे विचार-प्रदूषण का ही नतीजा है, जिसमें सबसे बड़ा योगदान हमारी शिक्षा-पद्धति के प्रदूषित होने के कारण है। अपरिग्रह, संयम, प्रेम, दया, करुणा, अनुशासन की जगह भोग-विलास, उपभोक्तावादी संस्कृति और अहंकारी प्रवृत्ति का पाठ पढ़ाया जा रहा है। भगवान् महावीर (जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर) ने दुनिया को 'जियो और जीने दो' का संदेश देकर प्राणिमात्र के प्रति दया और करुणा का सार हमें दिया था। उनके पांच व्रतों में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य हमें सुखी, स्वस्थ और शांतिमय जीवन जीने की कला सिखाते हैं। इसके उलट हम देखते हैं कि मनुष्य का इतर प्राणियों से, वनस्पतियों से, सहयोग और समन्वय खत्म होकर उपभोक्तावादी दृष्टिकोण हो गया है। वह अपने भोगों को तृप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार से प्राणियों का वध कर रहा है।

वन्य जीवों का शिकार–मनुष्य अपनी वीरता और मनोरंजन के लिए शिकार करता है, इनमें आते हैं—शेर, चीता, तेंदुआ, रीछ, भेड़िया जैसे हिंसक जानवर, जिनको मारकर स्वयं एवं अपने परिवार की वीरता का दंभ भरता है। इन प्राणियों की खाल एवं शारीरिक अंगों को अपने ड्राइंगरूम में, भवन में सजाकर रखने में शान समझता है। आज हालात यह हो गए हैं कि पूरी दुनिया में मात्र 3200 शेर बचे हैं, भारत में यह संख्या केवल 1400 शेष है। अब सरकारें एक अभियान चलाकर इस संख्या की कमी को रोकना चाह रही हैं। विभिन्न अभयारण्य एवं नेशनल पार्कों के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च कर रही हैं। परंतु इसे रोक पाना असंभव हो गया है। यह संदेहास्पद है, क्योंकि जब तक विचारों में परिवर्तन नहीं आएगा, ऐसा होना असंभव है। दुनिया के शक्तिशाली और हिंसक प्राणी का क्या हाल मनुष्य ने कर डाला है सोचिए हम क्या हैं? कैसे हैं?

जंगलों का सफाया होने से वन के अहिंसक प्राणियों में हिरण, सांभर, हाथी, खरगोश, बंदर इत्यादि के, रहने और जीवन-यापन का जरिया खत्म हो गया है। हाथी और बंदर तो आजकल अपने दाना-पानी के लिए शहरों में भी उत्पात मचा रहे हैं, जिसके कारण रोज घटनाएं घटती रहती हैं। वहीं स्वाद के लोभियों ने इन प्राणियों को अपना शिकार बना डाला है। अब यह मात्र अभ्यारण्यों की शोभा की वस्तु बनकर रह गए हैं, जो सुरक्षा कर्मियों की दया पर जीवन-यापन करते हैं, जीवित रहते हैं। वनों के विनाश की वजह से जैव-विविधता नष्ट हो रही है, अनेक वनस्पतियों के साथ पशु-पक्षियों की, कीट-पतंगों की प्रजातियां नष्ट हो चुकी हैं। हालात यहां तक बिगड़ चुके हैं कि सुबह-सुबह कौओं की कांव-कांव और चिड़ियों की चहचहाहट गांवों में भी कम ही सुनाई पड़ती है, शहरों में तो सफाया हो चुका है। वसंत ऋतु कोयल की कूक से पहचानी जाती थी, परंतु अब इस ऋतु के स्वागत को कोयल नहीं है। इसी तरह भारत में साल-दर-साल बाजों, चीलों, गिद्धों, गौरैयों इत्यादि प्रकृति के दोस्त पक्षी दिखाई देना बंद होते जा रहे हैं। यह सब प्रकृति के सफाई परिंदे कहलाते हैं। निरंतर बढ़ते जा रहे औद्योगिक कल-कारखानों ने वनों को लीलकर वनस्पति एवं प्राणी-जगत् को हिंसा को दावानल में ढकेल दिया है एवं पर्यावरण को चौतरफा प्रदूषित करने का बीड़ा उठा रखा है। अंततः यह प्रदूषित वातावरण मानव को भी उसी तरह मौत के मुंह में ले जाएगा।

फैशन एवं सौंदर्य-प्रसाधन हेतु प्राणी हिंसा—मनुष्य अपने को खूबसूरत दिखाने के लिए जाने-अनजाने अनेक सौंदर्य-प्रसाधनों और फैशन की वस्तुओं के बनाने में भी अनेक जीवों की हत्या कर रहा है—जैसे फर की टोपी पहनते हुए मनुष्य शायद यह नहीं जानता कि यह कराकुल मेमने को भेड़ के गर्भ से जबरदस्ती निकालकर उसकी खाल से बनी है। उसी भांति, वह यह भी नहीं जानता कि कई शैंपू, आफ्टर शेव लोशन आदि सौंदर्य-प्रसाधनों की जांच के लिए खरगोशों पर क्या-क्या निर्दय प्रयोग होते हैं। अहिंसा और भारत लगभग पर्याय शब्द रहे हैं, आज की बात अलग है। प्रदूषण प्रच्छन्न हिंसा है, इसमें जो लोग भागीदार हैं, वे जाने-अनजाने हिंसक हैं। हम जो वस्त्र पहनते हैं, उनमें कहां, कौन-से निरीह प्राणी ने अपनी सांस तोड़ी, इसका एहसास हम नहीं कर पाते। रेशम के एक मीटर कपड़े में कितने रेशम-कीटों का मरघट है, इसे शायद हम नहीं जानते। हम ऐलोपैथिक दवाई लेते हैं, किंतु नहीं जानते कि कितने निरीह जीवों की जान लेकर वह अस्तित्व में आई है। यह कौन-सा न्याय है कि कईयों के प्राण लेकर हम अपने शौक पूरे करें, अपने प्राणों की रक्षा करें।

मांसाहार के लिए प्राणी हिंसा—दुनिया में सबसे अधिक प्राणी हिंसा होती है, मनुष्य के स्वाद के लिए। हम भारतीय इस बात को जानते हैं कि जीवन एक निरंतर प्रक्रिया है, हमारा चोला बदलता रहता है, परंतु आत्मतत्व वही रहता है। 'जैसी करनी, वैसी भरनी'। निश्चित ही मांसाहार ऐसा पाप है, जिसे व्यक्ति जानबूझकर करता है। वैज्ञानिक तथ्य भी है कि क्रिया की प्रतिक्रिया बराबर परिमाण में होगी ही। यदि हम आज किसी प्राणी का मांस-भक्षण करते हैं तो निश्चित मानिए इन्हीं परिस्थितियों से हमें भी गुजरना पड़ेगा और ये परिस्थितियां कितनी भयावह और दुःखदायी होंगी? यह समझा जा सकता है कि यदि आपके शरीर में एक खरोंच भी आ जाती है, तो कितनी पीड़ा का अनुभव होता है। मांसाहारी बंधुओं, आप एक बार बूचड़खाने में जाकर पशुओं को अवश्य देखें, कैसे-कैसे

त्रास और यंत्रणापूर्वक इन्हें कत्ल किया जाता है। देखें उन मूक प्राणियों के चेहरे के भावों को स्वयं की आंखों से। जो देश, पेड़-पौधों को प्रणाम करता रहा हो, अतीत में समृद्ध रहा हो, उसमें कभी दूध की नदियां बहीं हों, वही आज अनेक प्रकार की आपदाओं, व्याधियों एवं अभाव की स्थिति से त्रस्त है। अहिंसा हमारे विकास का अपरिहार्य सुफल रही है। पर्यावरण-प्रदूषण हिंसा की देन है, अहिंसा प्रदूषण मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय है।

भारत में सबसे पहला कत्लखाना कलकत्ता में अंग्रेजों ने शुरू किया था। आज भारत के लगभग 2 नगरों में आधुनिक स्तर पर पशुबंध-स्थल बनाए गए हैं, जहां प्रतिदिन लाखों पशुओं का वध किया जाता है। इससे उस नगर की नगरपालिकाओं को लाखों रुपये कर के रूप में प्राप्त होते हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में 10 करोड़ पालतू पशु प्रति वर्ष काटे जा रहे हैं। एक अनुमान के प्राप्ति अनुसार स्वतंत्रता के समय भारत का पशु-धन 80 लाख से 9 करोड़ के लगभग था। आज यह घटकर 15 लाख के आस-पास रह गया है। यह हमारे धर्म-प्रधान देश की सरकारों और नागरिकों का प्राणी हिंसा का विकास है। इसके अलावा मुर्गे-मुर्गियों, बत्तख, खरगोश, हिरण, भेड़, ऊंट, सूअर इत्यादि तथा पक्षियों की असंख्य प्रजातियों एवं मछलियों की तो गिनती करना ही संभव नहीं, असंख्यात ही कही जा सकती हैं। मजे की बात तो यह कि इन शासकीय कत्लखानों को सरकार की ओर से एक लाख करोड़ की सब्सिडी देकर देश का आर्थिक नुकसान भी किया जा रहा है। आप जानते होंगे कि सन् 1857 की क्रांति का प्रारंभ कारतूसों की कैप को गाए के चमड़े से बनाए जाने को लेकर ही मंगल पांडे के आह्वान पर हुआ था, आज वही भारत असंख्य प्राणियों के मांस का स्वाद लेने और अपने पेट को कब्रगाह बनाने को आतुर है, अत्यंत शर्मिंदगी का विषय है।

इन निरीह प्राणियों की दर्दनाक चीख-पुकार, उनकी पीड़ा कोई मायने नहीं रखती? ऐसा नहीं उनकी से संपूर्ण वातावरण प्रभावित होता है। हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्री प्रो. मदनमोहन ने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि जितने अधिक प्राणियों का कत्ल किया जाएगा, उतने अधिक भूकंप व सुनामी आएंगे। अतः जलवायु परिवर्तन में प्राणी हिंसा एक बहुत बड़ा मुद्दा हो सकता है। प्राणियों के वध व मांसाहार के कारण अनेक तरह के रोग जैसे—दिल का दौरा, कैंसर, ब्लड प्रैशर, मोटापा, गठिया, गुर्दे के रोग एवं जिगर की बीमारी जैसे असाध्य रोगों की अधिकता होती है, यहां तक कि जीव-हत्या के प्रभाव से मनुष्यों में 'विकलांगता' बढ़ी है।

दुनिया में ऐसे भी लोग हुए हैं, जो जानवरों की जगह नर-मांस पसंद करते थे। युगांडा का राष्ट्रपति इदी अमीन तो नरभक्षी के रूप में विख्यात था। चीन में तो अब मानव-भ्रूण को भूनकर खाने का रिवाज बनता जा रहा है। चीन में कौवों की प्रजाति ही समाप्त कर दी गई है। प्राणी वध का कचरा मसलन—खून, हड्डियां, चमड़ी इत्यादि को नदी-नालों में प्रवाहित कर दिया जाता है, जिससे जल प्रदूषित हो रहा है। यदि जमीन पर कचरे के रूप में फेंक दिया जाता है तो अनेक कीटाणुओं की उत्पत्ति होकर वायु एवं भूमि प्रदूषण में बढ़ोतरी सीधे तौर पर प्राणी हिंसा से जुड़ी है।

प्राणियों में समन्वय—ईश्वर ने जगत् की रचना में प्रत्येक प्राणी की उपयोगिता एवं एक-दूसरे के प्रति समन्वय व सहयोग का जामा पहनाया है, तभी तो राजस्थान के गड़रियों

के बारे में लोकोक्ति है कि ये भेड़ें पालते हैं, परंतु भेड़ें ही इन्हें पालती हैं, क्योंकि उनसे प्राप्त दूध, घी, ऊन के व्यापार से इनकी जीविका चलती है। भेड़ का दूध तो फेफड़ों के वंशानुगत रोगियों के लिए लाभप्रद है। एक गाय औसतन 10 किलो दूध रोजाना के हिसाब से वर्ष में 10 महीने दूध देती है तो वह 1 वर्ष में 3000 कि.ग्रा. दूध देकर करीब 6000 लोगों को एक बार तृप्त कर सकती है। यदि वह औसत 15 वर्ष तक दूध दे तो एक गाय अपनी कुल उम्र में 90,000 लोगों को एक बार तृप्त कर सकती है, जबकि उसकी हत्या कर उसके मांस से एक हजार लोग भी तृप्त नहीं हो सकते। इसी तरह एक बैल अपने जीवनकाल में 40,000 कि.ग्रा. अन्न उत्पन्न कर 1,60,000 लोगों को एक बार तृप्त कर सकता है, इसके अलावा अन्य सेवा में गोबर व मूत्र से ईंधन, खाद व गैस ऊर्जा की अतिरिक्त प्राप्ति। भारत में 48 करोड़ जानवर हैं, यदि जानवर कटना बंद हो जाएं तो सी. एन.जी. गैस (मीथेन गैस) जो ऊर्जा का स्रोत हैं और पेट्रोल-डीजल का विकल्प यह हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। इसी तरह मछलियां जल को साफ करने में अहम् भूमिका निभाती हैं। घोड़े, हाथी, ऊंट इत्यादि मनुष्य के वफादार सवारी व परिवहन के साथी रहे हैं। उल्लू जैसा अनावश्यक समझा जाने वाला प्राणी प्रतिदिन दो चूहे ओर फसल नष्ट करने वाले अनेक कीड़े-मकोड़ों को खा जाता है, यह कीटनाशकों की तुलना में मुफ्त और आसान उपाय है। इस तरह प्रत्येक पशु-पक्षी प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण हैं। इनकी अनुपस्थिति पर्यावरण प्रदूषण के रूप में हमें ही प्राप्त होगी।

इस तरह हम देखते हैं कि संपूर्ण प्राणी जगत् एक-दूसरे के पूरक हैं, प्रत्येक के जीवन को एक-दूसरे की जरूरत है, तभी यह सृष्टि प्राकृतिक रूप से लंबे समय तक चल सकती है। अतः प्राणी हिंसा से बचाव ही हमारे पर्यावरण को प्रदूषण से बचा सकता है। महात्मा गांधी ने तो यहां तक कहा था कि "मेरे विचार के अनुसार गौ-रक्षा का सवाल स्वराज्य के प्रश्न से छोटा नहीं है। कई बातों में मैं इसे स्वराज्य के सवाल से भी बड़ा मानता हूं। मेरे नजदीक गौ-वध व मनुष्य-वध एक चीज हैं।"

प्रसिद्ध कवि कोलेरिज ने अपनी कविता 'दी एनशिएंट मैरीनर' में जो कहा वह सभी धर्मों का निचोड़ है—

उत्तम पूजा तो उसकी है, जो प्रेम सभी से करता है,
सब छोटे-बड़े जीव जग के, जो अपनी भांति समझता है।
क्योंकि वह परम् पिता जिसने जग में सबको उपजाया है,
हर जीव से करता वही स्नेह जैसा वह हमसे करता है।

नूतन कॉलोनी,
सरकंडा, बिलासपुर (छ.ग.)

पर्यावरण प्रदूषण : अस्तित्व संकट और हम

स्वराज तिवारी

मनुष्य जहां एक ओर दुनिया का सबसे बुद्धिमान और शक्तिशाली प्राणी है, वहीं दूसरी ओर वह अपने अदूरदर्शी कृत्यों से अपने को सर्वाधिक मूर्ख साबित करने पर तुला हुआ है। वर्तमान में विश्व के मानव समुदाय की प्रवृत्ति ठीक वैसी ही है, जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति उसी डाल को काटे, जिस पर वह स्वयं बैठा है।

वस्तुतः मनुष्य मनोवैज्ञानिक रूप से इस तथ्य को मुश्किल से ही समझकर व्यवहार में प्रवृत्त होता है कि किसी कर्म (Action) के समय के आधार पर दो परिणाम (Result) हैं—

1. तात्क्षणिक परिणाम (Instant Result)
2. दूरगामी परिणाम (Distant Result)

ये परिणाम प्रियता व परमार्थ के आधार पर दो प्रकार के हैं—

1. सृजनात्मक या कल्याणकारी (Creative or Beneficial)
2. विध्वंसात्मक या हानिकर (Destructive or Harmful)

वर्तमान विश्व के विकसित और विकासशील देशों ने विकास के नाम पर जो कुछ किया है या वे जो कुछ कर रहे हैं, उससे सृजनात्मक विकास नहीं हुआ या हो रहा, बल्कि विश्व गहराते जलवायु-परिवर्तन संकट (Climate-change) और असमय प्रलय की ओर बढ़ रहा है, इसीलिए आवश्यक है कि विश्व में जीवन के अस्तित्व की रक्षा के लिए नैष्ठिक प्रयास किए जाएं स्तर पर, वे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय या वैश्विक।

इन प्रयासों का विवेचन करने से पूर्व आइए जरा प्रदूषण, उसके प्रकारों व उनके घातक परिणामों की पड़ताल कर लें—

पर्यावरण (Environment) का अर्थ

पर्यावरण शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—'परि' + 'आवरण'। 'परि' का अर्थ है—चारों ओर और 'आवरण' का अर्थ है—घेरा। वह घेरा जो हमारे चारों ओर व्याप्त है और जिसमें हम जन्मते, बढ़ते व जीवन-यापन करते हैं, पर्यावरण कहलाता है। अंग्रेजी शब्द Environment भी French भाषा से व्युत्पन्न और यौगिक शब्द (Compound Word) है— Environs = En + Virons। en = in अर्थात् अंदर तथा virons = circuit = surrounding अर्थात् घेरा। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा

2(क) के अनुसार, 'प्रभावकारी दशाओं का वह संपूर्ण योग, जिसमें जीवधारी निवास करते हैं, पर्यावरण कहलाता है।'

ये पर्यावरण दो प्रकार का होता है—

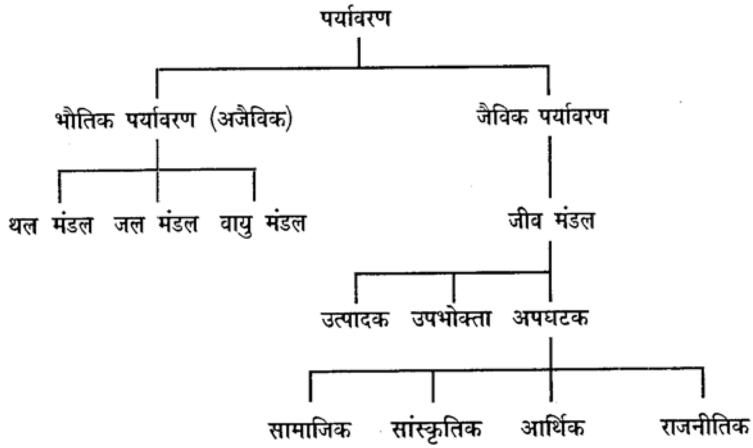
1. **भौतिक पर्यावरण**—जैसे—भूमि, जल, वायु, आकाश, पर्वत, पठार, नदी, वन, समुद्र, सूर्य, प्रकाश आदि।
2. **सांस्कृतिक पर्यावरण**—जैसे—परिवार, समाज, राष्ट्र, भाषा, कला, संस्कृति, साहित्य, शिल्प, राजनीति, अर्थव्यवस्था आदि।

पर्यावरण का क्षेत्र

मोटे तौर पर पर्यावरण को निम्न चार भागों में बांटा गया है—

1. स्थल मंडल (Lithosphere)
2. वायु मंडल (Atmosphere)
3. जल मंडल (Hydrosphere)
4. जीव मंडल (Biosphere)

पर्यावरण को तालिका से यूं समझ सकते हैं—



पारिस्थितिक-तंत्र व पारिस्थितिकी (Eco-system and Ecology)—अर्नेस्ट हिकल के अनुसार, 'जैविक और अजैविक समूह के पारस्परिक अंतर्संबंध व प्रक्रिया से निर्मित तंत्र को पारिस्थितिक-तंत्र व इसका अध्ययन करने वाले विज्ञान की शाखा को पारिस्थितिकी कहते हैं।'

पर्यावरण प्रदूषण (Environment Pollution)—ओडम के अनुसार, 'वातावरणीय जल, वायु, मिट्टी आदि के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में अवांछनीय और हानिकारक परिवर्तन ही प्रदूषण है।'

अध्ययन की सुविधा के लिए पर्यावरण प्रदूषण को निम्न छह प्रकारों में विभाजित किया गया है–

1. वायु प्रदूषण (Air Pollution)
2. जल प्रदूषण (Water Pollution)
3. मृदा प्रदूषण (Land Pollution)
4. ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)
5. रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radio-active Pollution)
6. इलेक्ट्रॉनिक प्रदूषण (Electronic Pollution)

1. वायु प्रदूषण (Air Pollution)

'पृथ्वी के चारों ओर उपस्थित गैसों के समूह के घेरे अर्थात् वायुमंडल में अवांछनीय और हानिकारक पदार्थों की उपस्थिति वायु प्रदूषण है।'

वायुमंडल की सामान्य संरचना निम्नानुसार है–

क्र.	गैस/ अवयव	प्रतिशत
1.	नाइट्रोजन	78.09
2.	ऑक्सीजन	20.95
3.	आर्गन	0.93
4.	कार्बन डाईऑक्साइड	0.03
5.	नियान, हीलियम मीथेन अन्य गैस	अत्यल्प
6.	भूमि के निकट कुछ कण जैसे– धूल, परागकण, बीजाणु आदि	अत्यल्प

प्रकृति विभिन्न चक्रों के माध्यम से इनका सांगठनिक संतुलन बनाए रखती है–

1. नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle)
2. ऑक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle)
3. कार्बन चक्र (Carbon Cycle)

इस वायुमंडल को ताप परतों या तापमंडलों में बांटा गया है–

1. क्षोभ मंडल (Troposphere 0-18 km)
2. समताप मंडल (Stratosphere 10-50 km)
3. मध्य मंडल (Mesosphere 50-80 km)
4. आयनमंडल (Ionosphere 80-400 km)
5. बर्हिमंडल (Exosphere above 400-)

वायु प्रदूषण स्रोत (Air Pollution Sources)

वायुमंडल को प्रदूषित करने वाले दो स्रोत हैं, जिनमें गैसीय या कणिक वायु प्रदूषक निकलते हैं–

(क) प्राकृतिक स्रोत–जैसे–

1. **ज्वालामुखीय उद्‌गार**–धुआं, राख, कार्बन डाईऑक्साइड व अन्य
2. **उल्का पिंड**–धरती के वायुमंडल या धरती से टकराने वाले क्षुद्रग्रह या उल्कापिंडों के जलने से निकली गैसें, धूलकण इत्यादि।
3. **पौधों द्वारा निःसृत अल्प कार्बनडाई ऑक्साइड** (हालांकि पौधे दिन में ऑक्सीजन देकर स्वयं प्रकृति को शुद्ध करते हैं)।
4. **सूक्ष्मजीव अपघटन** से भी सड़न पैदा करने वाली गैसें निकलकर वायु प्रदूषण फैलाती हैं।

(ख) मानवजनति स्रोत–

1. धुआं उगलती औद्योगिक चिमनियां
2. ऑटोमोबाइल्स, मोटर वाहन
3. घरेलू दहन
4. बढ़ती जनसंख्या
5. वन विनाश
6. कचरा निपटान
7. अनियंत्रित खनन
8. रेडियोधर्मी अपशिष्ट

कुछ प्रमुख वायु प्रदूषक निम्न प्रकार हैं–

क्र.	प्रमुख वायु प्रदूषक	स्रोत
1.	कार्बन मोनोऑक्साइड	ईंधन दहन, अपूर्ण दहन
2.	कार्बन डाईऑक्साइड	जीवाश्म ईंधन/ काष्ठ आदि दहन
3.	सल्फर के ऑक्साइड	जीवाश्म ईंधन/ काष्ठ आदि दहन
4.	मीथेन	जीवाणु अपघटन/ बायोगैस
5.	नाइट्रोजन ऑक्साइड	दहन
6.	क्लोरो-फ्लोरो कार्बन	शीतलक (एयरकंडीशनर, फ्रिज)
7.	हैलो कार्बन्स	अग्निशामक यंत्र
8.	विभिन्न धूलकण	विभिन्न उद्योग, निर्माण, विस्फोट

वायु प्रदूषण के दुष्परिणाम

1. **खराब मानव स्वास्थ्य, असमय मौतें**–किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

बंद कमरे में सांस घुटी जाती है
खिड़की खोलूं तो जहरीली हवा आती है।

वायु प्रदूषण के कारण विभिन्न श्वसन रोग, ऊतक क्षय दमा (Asthama), कैंसर, टी.बी. , अवसाद, दृष्टिदोष, कंठावरोध, नेत्रों में जलन, छींक, खांसी, उल्टी, केंद्रीय तंत्रिकातंत्र (CNS) के रोग आदि होते हैं। विभिन्न उद्योगों के सूक्ष्म धूलकण निम्न बीमारियों को जन्म देकर विभिन्न श्रमिकों, निकट रहवासियों की असमय मौत, खराब स्वास्थ्य का कारण बनते हैं। जैसे–

क्र.	धूल के प्रकार	रोग
1.	कोयले के धूल कण	एन्थ्राकोसिस (Anthracosis)
2.	रेत	सिलिकोसिस (Silicosis)
3.	लौह धूल	लौहमयता (Siderosis)
4.	एस्बेस्टास	एस्बेस्टोसिस (Asbestosis)
5.	कपास धूल	बिसिनोसिस (Byssinosis)
6.	गन्ने की धूल	बेगासोसिस (Bagassosis)
7.	अन्न धूल	कृषक फुफ्फुस (Farmer's Lung)

2. वैश्विक तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन (Global Warming & Climate Change)–पृथ्वी का औसत तापमान 15°C है, किंतु बढ़ती जनसंख्या व वायु प्रदूषण के कारण इस ताप में लगभग 1°C की वृद्धि हो गई है। यह वृद्धि 2°C होने के पर अनियंत्रित हो जाएगी। यदि यह वृद्धि 5-6°C तक हो जाए तो पृथ्वी पर–

1. ध्रुवीय बर्फ पिघलने से समुद्र के तटीय इलाके व कई द्वीप, देश डूब जाएंगे। कुछ समय पूर्व द्वीप देश मालदीव ने विश्व समुदाय का ध्यान खींचने के लिए समुद्र के भीतर अधिवेशन 'त्राहिमाम्' करके वैश्विक चेतना को झकझोरा था।
2. जीवन लुप्त हो जाएगा। जीवों की प्रजनन क्षमता, गर्भधारण शक्ति, जीवनी-शक्ति नष्ट हो जाएगी। प्रायः समस्त जीव-जंतु, पेड़-पौधे मर जाएंगे।
3. अत्यधिक ताप से तमाम जल-स्रोत सूख जाएंगे, जिससे जंल संकट गहरा जाएगा।
4. कृषि भूमि बंजर हो जाएगी, जिससे फसल पकने की प्रक्रिया पूरी तरह प्रभावित होगी।
5. बचे-खुचे मनुष्यों व प्राणियों का स्वास्थ्य बहुत खराब होगा, जीना भी दूभर हो जाएगा।
6. देश-समाज में अपराध, असंतोष, विद्रोह, गृह-कलह और गृहयुद्ध की घटनाएं भी बढ़ जाएंगी।
7. पृथ्वी जीवित ग्रह की बजाय मृत ग्रह हो जाएगी।

3. ओजोन परत क्षय (Ozone Layer Depletion)–पृथ्वी के चारों ओर स्थित वायुमंडल के समताप मंडल (10-40 कि.मी.) के एक हिस्से 15-35 कि.मी. के बीच ओजोन गैस (Ozone gas O^3) की एक परत पाई जाती है। यह गैस ऑक्सीजन गैस से ही बनती है। इसका रंग हल्का नीला व गंध सड़ी मछली की तरह होती है। यह हमारे लिए रक्षक आवरण है, क्योंकि यह सूर्य से आने वाले त्वचा कैंसरकारी, मोतियाबिंदकारी, हानिकर पराबैंगनी विकिरण (Ultra-violet Radiation) को अवशोषित कर सिर्फ लाभकारी विकिरणों अवरक्त (Infra-red) व दृश्य प्रकाश (Visible Rays) को ही धरती तक आने देती है।

परंतु ब्रिटिश वैज्ञानिक डॉ. जॉय फॉरमैन के 30-35 साल के शोध से 1950 में ज्ञात हुआ कि अंटार्कटिक क्षेत्र के ऊपर ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप से भी बड़े आकार के क्षेत्र में ओजोन परत की सांद्रता में 50-60 प्रतिशत कमी आ गई है। इसे 'ओजोन छिद्र' (Ozone Hole) का नाम दिया गया।

इससे होने वाले नुकसान को रोकने के लिए ओजोन क्षयकारी पदार्थों के उत्पादन को सीमित करने के लिए 16 सितंबर, 1987 को 33 देशों के प्रतिनिधियों ने मांट्रियल (कनाडा) प्रोटोकल पर हस्ताक्षर किए। तभी से इस दिन को 'ओजोन संरक्षण दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

ओजोन परत की क्षरण प्रक्रिया के कारण निम्न हैं–

i. **क्लोरो-फ्लोरो कार्बन (C.F.F.)**–रेफ्रिजरेटरों, एयरकंडीशनर्स एवं स्प्रे-कैन डिस्पेंसर आदि में प्रयुक्त होने वाली C.F.F. गैसें।

ii. **सल्फेट एयरोसाल**–औद्योगिक क्षेत्रों से उत्सर्जित।

iii. **नाइट्रोजन एयरोसाल**–सुपरसोनिक विमानों से निसृत।

iv. **पराबैंगनी विकिरण (UV-Rays)**–सूर्य का एक विकिरण।

4. अम्ल वर्षा (Acid Rain)–सामान्यतः वर्षा जल न तो अम्लीय होता है, न क्षारीय, बल्कि शुद्ध रूप से उदासीन होता है। उसका Ph (पीएच)7 होता है, किंतु सल्फर डाईऑक्साइड, सल्फर ट्राईऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड आदि प्रदूषक गैसों की जल वाष्प से क्रिया के कारण वह अम्लीय हो जाता है। अम्लीय वर्षा जल का गिरना ही अम्ल वर्षा है।

SO_2 सल्फर डाईऑक्साइड	+	O ऑक्सीजन	=	SO_3 सल्फर ट्राईऑक्साइड
SO_3 सल्फर ट्राईऑक्साइड	+	H_2O जल	=	H_2SO_4 सल्फ्यूरिक अम्ल (तेजाब)
NO_2 नाइट्रोजन ऑक्साइड	+	H_2O जल	=	HNO_3 नाइट्रिक अम्ल

इस तेजाबी वर्षा से निम्न हानियां हैं–1. त्वचा रोग, 2. खराब स्वास्थ्य, 3. खराब फसल, 4. भू-उर्वरता नष्ट करना, 5. वृक्षों, पर्वतों, स्मारकों, भवनों का असमय क्षरण।

5. दुर्घटनाजनित वायु प्रदूषण (Accidental Air Pollution)–इसमें बड़ी संख्या में लोग मारे जाते हैं। जैसे–

1. भोपाल गैस कांड (मेथिल आइसोसायनेट MIC + फास्जीन गैस रिसाव) (2-3 दिसंबर)

2. चेरनोबिल परमाणु दुर्घटना, रूस (26 अप्रैल, 1986)

6. जीव विलुप्तिकरण (Extinction of Various Creatures)–प्रकृति का हर जीव खाद्य-शृंखला व प्राकृतिक चक्रों की महत्वपूर्ण कड़ी होता है। ऐसे में प्रदूषण से विलुप्ति के कगार पर जाने वाले अथवा विलुप्त जीवों ने प्रकृति के समक्ष खाद्य शृंखला, प्राकृतिक चक्रीकरण एवं नियंत्रण को बुरी तरह प्रभावित किया है।

2. जल प्रदूषण/ जल संकट (Water Pollution/ Crisis)

"जल (H_2O) में सामान्यतः कुछ लाभकारी खनिज लवण संतुलित आहार के कुछ अंश के रूप में विद्यमान रहते हैं, परंतु इसमें जहरीले रसायनों, कीटाणुओं, अस्वच्छता आदि की उपस्थिति ही जल प्रदूषण है।"

पृथ्वी पर लगभग 70 प्रतिशत पानी है जिसका 3 प्रतिशत ही पेय रूप में है, बाकी अपेय/ अशुद्ध है। इस 3 प्रतिशत पेय जल का लगभग 90 प्रतिशत से भी अधिक भाग भूगर्भ जल के रूप में है, जिसका जल-स्तर अधिकाधिक और अविवेकपूर्ण दोहन, अपव्यय और संरक्षणहीनता और अपुनर्भरण के कारण खतरनाक रूप से घट रहा है और मोटरपंपों, ट्यूबवेलों से निकाला गया भूगर्भ जल तेजी से प्रदूषित हो रहा है।

नदी, तालाबों, झीलों आदि का भी जल निम्न कारणों से तेजी से प्रदूषित हो रहा है–

1. **औद्योगिक कचरा**–उद्योगों के खतरनाक विषैले रसायनों से युक्त अपशिष्ट पदार्थ बड़े पैमाने पर जल प्रदूषण फैला रहे हैं।
2. **घरेलू कचरा/ दिनचर्या**–हम जाने-अनजाने रोज सैकड़ों लीटर शुद्ध जल को अशुद्ध बनाते हैं, जैसे–फ्लोराइड युक्त टूथपेस्ट द्वारा, साबुन-सोड़ा, शैंपू द्वारा, सेप्टिक टैंक द्वारा, डिटरजेंट द्वारा, रंजकों द्वारा, कृषि-कार्य में प्रयुक्त कीटनाशकों, खरपतवार नाशकों आदि के द्वारा।

जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव–जल प्रदूशण के निम्न प्रकार हैं–

1. प्रदूषित जल के सेवन से डायरिया, पेचिश, टायफाइड, पीलिया, टी.बी., आंत्ररोग, श्वसन रोग आदि उत्पन्न होते हैं। फ्लोराइडयुक्त जल के सेवन से हड्डियां विशेषकर पैरों की हड्डियां टेढ़ी हो जाती हैं। सीसा आदि की उपस्थिति से असमय बुढ़ापा और मौत की स्थितियां बनती हैं।

2. जल संकट।

3. वनस्पति क्षय।

4. भू-उर्वरता में कमी।

5. जीव विलुप्तिकरण।

3. भूमि प्रदूषण (Land Pollution)

सामान्य स्थिति में भूमि मूल जीवनदायी है, किंतु प्रदूषण की स्थिति में भूमि में हानिकारक अवांछनीय पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है। प्रदूषित जल एवं कचरा इसके प्रमुख कारण हैं।

भूमि प्रदूषण के कारण–

1. औद्योगिक कचरा,
2. घरेलू कचरा,
3. कीटनाशक, खरपतवार नाशक,
4. नाभिकीय परीक्षण/ परमाणु विस्फोट।

प्रभाव–

1. भूमि की उर्वरता कम या नष्ट हो जाती है।
2. उत्पन्न पौधे, औषधियां विषाक्त हो जाती हैं।
3. भूमि पर प्रवाहित जल एवं उसके द्वारा भू-गर्भ तक पहुंचने वाला जल भी प्रदूषित हो जाता है।

4. ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

अप्रिय और हानिकर उच्च तीव्रता की ध्वनि की उपस्थिति ही ध्वनि प्रदूषण है। शोर/ ध्वनि को 'डेसिबल' (dB) से नापते हैं।

सामान्य श्रवण शक्ति वालों के लिए 25-30 डेसिबल की ध्वनि पर्याप्त होती है। 80 या इससे अधिक डेसिबल की ध्वनि श्रवण क्षमता पर बुरा असर डालती है। इससे स्थायी बहरापन भी हो सकता है।

ध्वनि की आवृत्ति नापने की इकाई को 'हर्ट्ज' कहते हैं। मनुष्य का श्रव्य परास 20 से 20000 हर्ट्ज है। इससे कम या अधिक हर्ट्ज आवृत्ति वाली ध्वनि को मनुष्य नहीं सुन सकता।

ध्वनि के स्रोत, उनकी तीव्रता तथा उनका स्तर (प्रकृति)

क्र.	स्रोत	तीव्रता (डेसिबल में)	स्तर प्रकृति
1.	फुसफुसाहट/ बुदबुदाहट	10-25	शांत
2.	धीमा रेडियो/ घड़ी की टिक-टिक	30-40	मधुर
3.	वार्तालाप	50-60	सामान्य
4.	हल्का यातायात	70	शोरगुल
5.	व्यस्त बस्तियां/ प्रिंटिंग प्रेस	80	शोरगुल
6.	मोटर साइकिल	90	प्रबल
7.	जेट इंजन/ स्टीरियो डिस्को संगीत	105	बहुत प्रबल
8.	जेट याद/ सायरन व हॉर्न	150	पीड़ाजनक
9.	अंतरिक्ष यान/ मिसाइल उड़ान	150-170	पीड़ाजनक

नोट : 80-90 डेसिबल से ऊपर की ध्वनि तीव्रता कष्टदायी होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार दिन में 45 डेसिबल तथा रात में 35 डेसिबल तक की ध्वनि को कर्णप्रिय और मानवीय स्वास्थ्य के लिए सर्वाधिक सुरक्षित बताया है।

स्वीकार योग्य ध्वनि सीमा

क्र.	क्षेत्र	तीव्रता डेसिबल में
1.	स्टूडियो	30-38
2.	सभा भवन	34-38
3.	विद्यालय	38-42
4.	प्रार्थना स्थल	38-42
5.	चिकित्सालय	38-42
6.	आवास	34-42
7.	रेस्टोरेंट	50
8.	स्टोर्स/ सुपरमार्केट	50-54

9.	कार्यालय	46-50
10.	स्पोर्ट्स हॉल/ जिम्नेजियम/ स्विमिंग पूल	42-46
11.	होटल	46-50
12.	वर्कशॉप्स	70

ध्वनि प्रदूषण के कारण--

1. अनेक प्रकार के वाहन जैसे—मोटरकार, बस, ट्रेन, हवाई जहाज आदि।
2. ध्वनि विस्तारण यंत्र (Loudspeaker)
3. डीजे साउंड (DJ Sound)
4. तेज बजते रेडियो/ टी.वी.
5. मशीनों की आवाजें

ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभाव–

1. श्रवणशक्ति दोष,
2. जीवों की उपापचय क्रिया में बाधा,
3. अनिद्रा,
4. चिड़चिड़ापन/ पागलपन,
5. अवसाद/ आत्महत्या की प्रवृत्ति,
6. उच्च रक्तचाप,
7. अपराध/ हिंसा की प्रवृत्ति,
8. गर्भपात/ जननक्षमता पर नकारात्मक प्रभाव

5. रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radio-active Pollution)

कुछ विशेष तत्वों से अदृश्य रेडियो-सक्रिय विकिरण निकलते रहते हैं, जिन्हें रेडियो-धर्मी पदार्थ कहते हैं। इनका उपयोग परमाणु बम बनाने, नाभिकीय विस्फोट/ परीक्षण करने, परमाणु ऊर्जा घर में बिजली पैदा करने में होता है।

इन समस्त प्रक्रियाओं में वायुमंडल में हानिकारक रेडियोधर्मी विकिरण अल्फा, बीटा, गामा, इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान कण उत्पन्न होते हैं, जिनसे उत्पन्न प्रदूषण से निम्न हानियां हैं–

1. खराब स्वास्थ्य, घटती जीवनी शक्ति,
2. अंगों की घटती कार्यक्षमता,
3. कैंसर, ट्यूमर,
4. आनुवांशिक रोग,
5. बंध्यत्व,
6. अपंगता, विकलांगता,
7. उपापचय प्रक्रिया विकृति,
8. असमय गर्भपात

6. इलेक्ट्रॉनिक-प्रदूषण (Electronic Pollution)

इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से निकलने वाली अदृश्य इलेक्ट्रॉनिक विकिरणों द्वारा इलेक्ट्रॉनिक प्रदूषण तथा प्लास्टिक को पुनःचक्रित (Re-cycle) कर पुनः प्रयुक्त (Reuse) न कर फेंक देने/ अस्वीकृत (Refuse) करने की आदत ने प्लास्टिक प्रदूषण को बढ़ाकर पर्यावरण का बहुत नुकसान किया है।

निवारण के उपाय–उपर्युक्त समस्त प्रकार के पर्यावरण प्रदूषणों, संकटों से बचने के लिए निम्न स्तरों पर विभिन्न प्रयास किए जाने चाहिएं–

1. व्यक्तिगत प्रयास–ये प्रकाश व्यक्तियों द्वारा किए जाने चाहिएं–

- हर व्यक्ति कम-से-कम 10 पेड़ लगाए।
- व्यक्तिगत स्तर पर पानी की बचत करे।
- एयरकंडीशनर से 25°C से नीचे ताप लाने से बचे।
- सामान्य बल्बों की जगह सी.एफ.एल. बल्ब का प्रयाग करें।
- मोटर वाहनों के बदले साइकिल व सामूहिक वाहन बस, ट्रेन आदि का प्रयोग बढ़ाएं।
- स्वयं पर्यावरण-साक्षर (Eco-literate) बने व बनाएं।
- पर्यावरण का संरक्षण करें। न प्रदूषित करें, न किसी को प्रदूषित करने दें।

2. सामुदायिक प्रयास–

- ग्रामों, शहरों की विभिन्न कॉलोनियों, वार्डों में रहने वाले लोग सामूहिक रूप से वृक्षारोपण करें।
- अपशिष्ट उपचार की वैज्ञानिक विधि अपनाएं।
- पेड़ों को कटने से बचाएं।
- पर्यावरण जागरूकता फैलाएं।
- पर्यावरण संबंधी बैठक, प्रतियोगिता, सम्मेलन आदि करते रहें। बच्चों को भी प्रोत्साहित और पुरस्कृत करें।
- प्लास्टिक व पॉलीथिन का विवेकपूर्ण प्रयोग करें, पुनः चक्रित Recycle करें, Reuse करें, Refuse नहीं।
- भूगर्भ जल का स्तर सुधारने, वर्षा जल संग्रहण (Rain Water Harvesting), छत जल संग्रहण (Roof Water Harvesting), वृक्षारोपण, जलडबरी निर्माण, तालाब, निर्माण तालाब, संरक्षण को अपनाएं व सघन रूप से प्रचारित-प्रसारित करें।
- जैविक खाद का प्रयोग करें, जहरीले कीटनाशकों के बदले जैविक हरित तकनीक प्रयोग करें।
- ऊर्जा का विवेकपूर्ण प्रयोग करें।
- पर्यावरण से संबंधित शास्त्रीय बातों को भी प्रचारित, प्रसारित करें। जैसे–
- *माता भूमिः पुत्रों अहं पृथ्व्याः।* —***अथर्ववेद, 12/1/12***
  (भूमि माता है, हम माता के पुत्र हैं।)
- *दशकूप समावापी–दश वापी समो हदः।*
  दश हद समापुत्रः दश पुत्र समो द्रुमः। —***मत्स्य पुराण***

(दस कुओं के बराबर एक बावली, दस बावली के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के समान एक पुत्र और दस पुत्रों के समान एक रोपित वृक्ष होता है।)

- *पवग गुरु, पाणी पिता, माता धरती महतु।* **—जपुजी साहब, 15.1**
  (पवन गुरु है, पानी पिता है, धरती माता है।)
- *छिति जल पावक गगर समीरा,*
  पंच रचित यह जीव शरीरा। **—श्रीरामचरित मानस**
- *Thy will be done on Earth.* **—Bible Matthew 6.9/10**
  (परमेश्वर तेरी ही आज्ञा का पृथ्वी पर अनुपालन हो।)
- *भूमिः आपः अनलो अनिलो खं मनो बुद्धिः एव च।*
  अहंकार इतीयं में भिन्नाः प्रकृतिः अष्टधा। **—गीता**
  (मेरी प्रकृति अष्टधा है--1. भूमि, 2. जल, 3. वायु, 4. अग्नि, 5. आकाश, 6. मन, 7. बुद्धि, 8. अंहकार।)
- *अल्लाह नुरूस्भावातिवऽलअर्दि।* **—कुरान शरीफ 24/35**
  (अल्लाह प्रकाश है, पृथ्वी और आकाश का।)
- *अश्वत्थमेकं पिचुमंदेकं न्यग्रोधमेकं दश पुष्पजाति।*
  द्वे-द्वे दाड़िमातुलुंगे पंचाम्ररोपी नरकं न याति॥
  (एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस पुष्पीय पौधे, दो अनार, दो संतरे, पांच आम के वृक्षों का रोपण करने वाला मनुष्य नरक नहीं जाता।)
- प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रों की प्रसन्नता, कृपा आदि प्राप्ति के लिए वृक्षारोपण का विधान है। उसे प्रचारित-प्रसारित करें। कितने धन्य है हमारे ऋषि-मुनि चिंतक...ग्रह-नक्षत्र को आधार बनाकर ही सही, पर पर्यावरण की चेतना जगाने का काम वर्षों पूर्व कर दिया था।
- पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न पर्व मिल-जुलकर मनाएं। प्रतियोगिताओं और कार्यक्रमों का रोचक आयोजन करें। जैसे—

तिथि समय	**पर्यावरण दिवस पर्व**
02 फरवरी	विश्व जलग्रहण दिवस (World Wetland Day)
21 मार्च	विश्व वानिकी दिवस (International Forest Day)
22 मार्च	विश्व जल दिवस (World Water Day)
08 मई	प्रवासी पक्षी दिवस (Migrating Birds Day)
22 मई	विश्व जैव-विविधता दिवस (Biodiversity Day)
01 जून	विश्व जनसंख्या दिवस (World Population Day)
05 जून	विश्व पर्यावरण दिवस (World Environment Day)
10 जून	विश्व भूगर्भ जल दिवस (Underground Water Day)
1-7 जुलाई	राष्ट्रीय वन-महोत्सव (National Forest Festival)
16 सितंबर	ओजोन संरक्षण दिवस (Ozone Conservation Day)
03 अक्टूबर	विश्व प्रकृति दिवस (World Nature Day)

06 अक्टूबर	विश्व वन्यप्राणी दिवस (World Wildlife Day)
1-7 अक्टूबर	विश्व वन्यजीव सप्ताह (World Wildlife Week)
26 नवंबर	विश्व पर्यावरण संरक्षण दिवस (Environment Conservation Day)

3. राष्ट्रीय प्रयास–भारत सरकार ने वन संरक्षण अधिनियम, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, जल संरक्षण अधिनियम बनाकर इनके संरक्षण के लिए प्रयास किया है। गंगा एवं यमुना नदी के प्रदूषण को दूर करने का भी प्रयास जारी है, परंतु इस सबके लिए नागरिकों की जागरूकता और सहभागिता की महती आवश्यकता है।

4. वैश्विक प्रयास–विश्व स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO), अंतर-महाद्वीपीय जलवायु परिवर्तन समिति (IPCC), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) आदि संस्थाएं, पर्यावरण संस्थाएं पर्यावरण संरक्षण, जागरूकता आदि के लिए काम कर रही हैं। फिर भी कोपनहेगन सम्मेलन, कानकुन सम्मेलन से वे अपेक्षित परिणाम नहीं निकले, जिनकी विश्व को आज भी दरकार है।

अंत में निम्न पंक्तियों के साथ वृक्षारोपण व पर्यावरण जागरूकता का आह्वान है–

पृथ्वी हमारी सुंदर ग्रह, गृह उपवन-उद्यान है,
इसकी रक्षा करने में ही हम सबका कल्याण है।
पृथ्वी नहीं रही तो हम ही कहां रहेंगे,
चेतनाहीनता मौत है...जागरण ही उत्थान है ॥

आगर हिंदी साहित्य समिति,
मुंगेली, जिला–बिलासपुर-495334 (छ.ग.)

पर्यावरण और संस्कृति संरक्षण में छत्तीसगढ़ की महिलाओं का योगदान

डॉ. अनसूया अग्रवाल

सदाबहार वन अगर इस धरती को शीतल छाया और समृद्धि प्रदान करते हैं तो उसकी गोद से निकली धाराएं अपने अमृत से न केवल धरती को सींचती हैं, वरन् प्राणीमात्र के जीवन को आधार भी प्रदान करती हैं। वन, वायु, जल, भूमि, आकाश हमारे लिए प्रकृति के अमूल्य उपहार हैं। मानव की संस्कृति का विकास इन्हीं उपादानों के मध्य हुआ है। मानव ने अपनी संस्कृति व सभ्यता का विकास सर्वप्रथम नदी घाटी से किया। नदियां हमारे अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अमृत तुल्य जल देती हैं, इसलिए ये हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। वायु और जल, पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व के लिए नितांत आवश्यक हैं। वनों का सदा से मानव-जीवन में विशेष महत्व रहा है। प्राकृतिक संपदा स्रोत के रूप में ये महत्वपूर्ण तो रहे ही हैं, इनकी उपयोगिता प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने में भी है। प्रकृति ने उपहारस्वरूप हमें जो कुछ भी दिया है, उसके दोहन का अवसर भी प्रकृति ने हमें दिया है, किंतु प्रगति की दौड़ में बहुत तेजी से डग भरने वाला मानव प्राकृतिक संतुलन को अव्यवस्थित करने लगा है। यह भविष्य में उसके विनाश का कारण बन सकता है। वर्तमान समय में संस्कृति ह्रासोन्मुख है और पर्यावरण विघटन की ओर। इस दौर में मानव भौतिक रूप से जितना समृद्ध होता जा रहा है, सांस्कृतिक और पर्यावरणिक दृष्टि से उतना ही विपन्न। पर धन्य है छत्तीसगढ़ की पावन धरा की महिलाएं, जो सांस्कृतिक परंपरा को बनाए रखने के बहाने इन प्राकृतिक धरोहरों के संरक्षण का सफल प्रयास कर संस्कृति और पर्यावरण दोनों को बचाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। यह प्रयास न केवल अनुकरणीय है, अपितु स्तुत्य भी है।

छत्तीसगढ़ की महिलाएं स्वभाव से सरल हृदया, कर्मठ, कोमलतायुक्त दृढ़ता और त्यागमयी गुणों से युक्त अन्नपूर्णा हैं, जो देना ही जानती हैं, लेने की आकांक्षा जिनमें कभी नहीं रही। जो सेवा को अपना अधिकार समझती हैं, इसलिए देवी हैं, जो त्याग करना जानती हैं, इसलिए साम्राज्ञी हैं, जो संस्कृति-संरक्षण के बहाने पर्यावरण का संरक्षण करती हैं। इस तरह विश्व इनके वात्सल्यमय आंचल में स्थान पाता है, इसलिए जगत् माता हैं। ब्रह्म की यह सौंदर्यशाली अनुपम रचना जानती है कि प्रकृति रूपी अमूल्य धरोहर को कैसे बचाया जा सकता है, इसलिए वे समाज की ही नहीं, प्रकृति की भी संरक्षिका हैं।

विचार करें तो महिलाएं पर्यावरण संरक्षण के प्रति प्राचीनकाल से ही सजग और सचेत रही हैं। प्राचीनकाल से ही वे जल के शुद्धिकरण, संग्रहण और संरक्षण का प्रयास

करती रही हैं। बुजुर्ग महिलाओं ने सांस्कृतिक और धार्मिक आस्थाओं के बहाने जल के संरक्षण के लिए ऐसे-ऐसे सामाजिक आचार-विचार बनाए, जो सभी युग और देश-काल के लिए ग्राह्य सिद्ध हुए कालांतर में ही रीति-रिवाज और परंपरा के रूप में निवेशित होते हुए हमारी संस्कृति के प्रमुख घटक बन गए। जैसे पुत्र की कुशलता की कामना से रखा जाने वाला छत्तीसगढ़ का 'हलषष्ठी व्रत'। इस व्रत के लिए यहां की महिलाएं सगरी की पूजा करती हैं। दरअसल यह सगरी वृहद् तालाब है और कालांतर में सगरी का रूप धारण कर चुकी है। इस सगरी में महिलाएं पानी डालती हैं। सगरी के चारों ओर वनोपज और वनस्पतियां लगाती हैं और दो सगरी के मध्य एक छिद्र करती हैं। ये क्रमशः जल संग्रहण, जल को प्रदूषण से बचाए रखने और जल शुद्धि के उपाय हैं।

गणगौर में यहां की महिलाएं गंगा नदी के प्रतीक स्वरूप महानदी और अन्य नदियों की पूजा करती हैं। कहने को तो गंगा मात्र नदी है, किंतु गंगा ने अविच्छिन्न उर्वरता भारत को दी है। गंगा की न टूटने वाली धाराएं अपने से अधिक जलभार वाली नदियों को अपनी पीठ पर लादकर अनंत महासागर तक पहुंचाती हं, ताकि उनके जल को, ताप के भाप के पूर्ण रूप में, सूर्य की किरणें उठा लें और बादलों के माध्यम से निखरे हुए रूप में फिर दरका दे, ताकि जल-संग्रहण की निरंतरता बनी रहे। इस तरह महिलाएं प्रकृति की पूजा की परंपरा को जीवित रखकर सामूहिक लोक और नागर जीवन के अस्तित्व की रक्षा का प्रयास करती हैं।

चूंकि पर्यावरण और स्वास्थ्य दोनों के लिए ही प्रदूषण एक जटिल समस्या है, अतः इस समस्या से निपटने के लिए महिलाएं वृक्षों की पूजा करती हैं। मनुष्य का जब पृथ्वी पर जन्म हुआ तो सबसे पहले वृक्षों ने उसका साथ दिया। उसे रहने के लिए छाया दी, शरीर ढकने के लिए पत्ते दिए, खाने के लिए फल दिए और साथ में आज का तार्किक पर्यावरण संरक्षण भी।

यह कहना बहुत कठिन है कि मानव सभ्यता और पर्यावरण का रिश्ता कितना पुराना है, किंतु विष्णु पुराण के प्रथम अंश में मनुष्य और वृक्ष के बीच एक बेहद आत्मीय संबंध का संकेत मिलता है, जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मानव की सभ्यता और संस्कृति के विकास में इन वृक्षों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यही कारण है कि आज लोग कहते हैं कि समय बदल रहा है, मान्यताएं बदल रही हैं, किंतु भारतीय संस्कृति में वृक्षों के प्रति लोगों की आस्था और विश्वास ज्यों-का-त्यों बना है। कुछ वृक्षों को अनादि काल से आज तक पूजा जाता है। लोक-आस्था और लोक-विश्वास के अतिरिक्त धार्मिक ग्रंथों में इनकी महिमा, गुण एवं उपयोगिता वैज्ञानिक कसौटी पर खरी उतरती है। कुछ वृक्षों को वैसा ही सम्मान दिया जाता है, जैसे पुरातन पुरुषों को दिया जाता है। कुछ वृक्ष केवल वंदनीय ही नहीं होते, अपितु औषधीय गुणों से परिपूर्ण होते हैं, इसलिए सेव्य और उपयोगी होते हैं। कुछ वृक्ष शांतिकारक होते हैं, इसलिए यज्ञ में समिधा के निमित्त इनकी लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। इस तरह इन वृक्षों के साथ हमारा गहरा और आत्मीय रिश्ता है।

पीपल, आम, बरगद, नीम, बेल, अशोक, अर्जुन, तुलसी आदि वे पवित्र वृक्ष हैं, जिनकी पूजा करके छत्तीसगढ़ की महिलाएं अपनी धार्मिक आस्थाओं को तो जीवित रखती ही हैं, साथ ही पर्यावरण को भी स्वच्छ बनाए रखती हैं। नीम के पेड़ जहां होते हैं, वहां

का पर्यावरण स्वच्छ ही रहता है। हवा को शुद्ध रखने में पीपल का बहुत योगदान है। पीपल रात में भी ऑक्सीजन देता है। बरगद अपनी विशालता के अनुसार बड़ी सीमा तक प्रदूषण को कम करता है। इन वृक्षों के अध्ययन से पता चलता है कि बरगद और पीपल मात्र वृक्ष नहीं हैं, वरन् अपने आपमें एक संपूर्ण पारिस्थितिकीय-तंत्र (इको सिस्टम) हैं। वनों में ऐसे वृक्ष अन्य पौधों के अस्तित्व को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अशोक वृक्ष प्रदूषण कम करने के अतिरिक्त औषधि के रूप में भी प्रयुक्त होता है। तुलसी के पौधे की यहां देवी-तुल्य पूजा की जाती है, उसकी जड़ों में यहां की नारियां प्रतिदिन जल देती हैं सायंकाल तुलसी चबूतरे पर दीपक जलाती हैं। दरअसल तुलसी का पौधा भी प्रचुर ऑक्सीजन सांस के साथ निष्कासित करता है, उसकी पत्तियां पूर्णतः हरी-भरी और अत्यधिक प्राणवान होती हैं। इन पत्तियों का उपयोग छत्तीसगढ़ के हर घर में पूजा होती है, जिसमें इसका सेवन कर और सुगंध पाकर अनजाने ही साधक स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर लेता है।

इसी तरह शीतला अष्टमी व्रत में नीम, वटसावित्री में बरगद, सोमवती अमवस्या में पीपल और मांगलिक अवसरों पर आम और चंदन के वृक्षों की पत्तियों और लकड़ियों की पूजा करके धार्मिक परंपराओं के साथ पर्यावरण का भी संरक्षण करती हैं। महिलाओं की आस्था के कारण ही वैदिक परंपरानुसार यज्ञ, हवन आदि संपन्न किए जाते हैं, इससे पर्यावरण संतुलन बनाए रखने का उद्देश्य पूर्ण होता है। वायुमंडल का शुद्धिकरण होता रहता है। इतना ही नहीं, छत्तीसगढ़ की महिलाएं वृक्षारोपण, बाग-बगीचे, फल-फूल वाले पौधे तथा सुगंधित वाटिका लगाने में भी रुचि रखती हैं, जिसका सीधा प्रभाव घर-परिवार के लोगों के सुख और स्वास्थ्य पर पड़ता है और तो और वे भवन, वरुण, सूर्य-चंद्रमा, नक्षत्र, अग्नि आदि से भी अपना अटूट साहचर्य बनाए रखती हैं और इनके पूजन के बहाने पर्यावरण-संतुलन पर विशेष ध्यान देती हैं।

महिलाएं राष्ट्र की धुरी हैं। वे सजगतापूर्वक पूरी सृष्टि को संरक्षित रखने के साथ-साथ राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का अभूतपूर्व कार्य कर रही हैं। इनके प्रयासों से न केवल प्रकृति संतुलन की अव्यवस्था सुधर रही है, अपितु विकास की योजनाएं भी दीर्घजीवी हो रही हैं। यह सृजनशीलता बनी रहे, 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयः' की उदात्त भावना जन-जन में जागृत हो सके, वातावरण सुखमय, आनंदित बन सके, संस्कृति, सद्साहित्य और नैतिक भावनाओं में वृद्धि हो एवं धरा पर ही स्वर्ग के दर्शन होते रहें, प्राणिमात्र को अब यही प्रयास करना चाहिए।

इसके लिए जरूरी है, समवेत स्वर में न केवल महिलाएं, अपितु संपूर्ण जन यदि संकल्प लें कि पर्यावरण संरक्षण करते हुए वातावरण में संतुलन बनाए रखेंगे एवं वनों को कभी नष्ट नहीं करेंगे, सर-सरिताओं को मैला नहीं होने देंगे, गंदे पानी की नालियों, गटरों, कल-कारखानों के धुओं एवं अपशिष्ट पदार्थों की निकासी का उचित प्रबंधन कराएंगे, गोला-बारूद, बम-बंदूकों का विनाशकारी दुरुपयोग न तो स्वयं करेंगे और न करने देंगे तो समाजहित के साथ-साथ राष्ट्रहित भी होगा, जन-जागृति का वातावरण निर्मित होगा, जिससे मानवीय जीवन-मूल्यों की रक्षा हो सकेगी। हमारी आस्थाएं अभी धूमिल नहीं हुई हैं और हमारा यह विश्वास अभी बरकरार है—

कल नये क्षितिजों में सूर्य फिर उगेगा
कोई और होगा वह नवोदित सूर्य
वह गहरा नीला आकाश
उसकी अनंतता
कोई और होगा
कोई और होगा उस नये सूर्य की तेजस्वी किरणें
कल कोई और होगा इस विशाल सागर की समुज्ज्वल परिपूर्णता।
इस परिचित शिखर का दुकेलापन कोई और होगा।

प्राध्यापक हिंदी,
शा. माता कर्मा कन्या महाविद्यालय,
महासमुंद (छ.ग.)

ओजोन तथा इसका क्षरण

डॉ. जया सिंह

ओजोन एक प्राकृतिक गैस है, जो वायुमंडल में बहुत कम मात्रा में पाई जाती है। पृथ्वी पर ओजोन दो क्षेत्रों में पाई जाती है। ओजोन अणु वायुमंडल की ऊपरी सतह (स्ट्रेटोस्फियर) में एक बहुत विरल परत बनाती है। यह पृथ्वी की सतह से 17-18 कि. मी. ऊपर होती है, इसे ओजोन परत कहते हैं। वायुमंडल की कुल ओजोन का 90 प्रतिशत स्ट्रेटोस्फियर में होता है। कुछ ओजोन वायुमंडल की भीतरी परत में भी पाई जाती है।

स्ट्रेटोस्फियर में ओजोन परत एक सुरक्षा-कवच के रूप में कार्य करती है और पृथ्वी को हानिकारक पराबैंगनी विकिरण से बचाती है। स्ट्रेटोस्फियर में ओजोन एक हानिकारक प्रदूषक की तरह काम करती है। ट्रोपोस्फियर (भीतरी सतह) में इसकी मात्रा जरा भी अधिक होने पर यह मनुष्य के फेफड़ों एवं ऊतकों को हानि पहुंचाती है एवं पौधों पर भी दुष्प्रभाव डालती है।

वायुमंडल में ओजोन की मात्रा प्राकृतिक रूप से बदलती रहती है। यह मौसम वायु-प्रवाह तथा अन्य कारकों पर निर्भर है। करोड़ों वर्षों से प्रकृति ने इसका एक स्थायी संतुलन सीमित कर रखा है। आज कुछ मानवीय क्रियाकलाप ओजोन परत को क्षति पहुंचाकर, वायुमंडल की ऊपरी सतह में इसकी मात्रा कम रहे हैं। यही कमी ओजोन-क्षरण, ओजोन-विहीनता कहलाती है और जो रसायन इसे उत्पन्न करने के कारक हैं, वे ओजोन-क्षरक पदार्थ कहलाते हैं। ओजोन परत में छिद्रों का निर्माण, पराबैंगनी विकिरण को आसानी से पृथ्वी के वायुमंडल में आने का मार्ग प्रदान कर देता है। इसका मानवीय स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम करके कैंसर एवं नेत्रों पर कुप्रभाव डालता है।

ओजोन समस्या का ज्ञान

1980 के आस-पास अंटार्कटिक में कार्य करने वाले कुछ ब्रिटिश वैज्ञानिक अंटार्कटिक के ऊपर वायुमंडलीय ओजोन माप रहे थे, यहां उन्हें जो दिखा वे उससे जरा भी खुशगवार नहीं हुए। उन्होंने पाया कि हर सितंबर-अक्टूबर में यहां के ऊपर ओजोन परत में काफी रिक्तता आ जाती है और तब तक प्रत्येक दक्षिणी बसंत में अंटार्कटिक के 15-24 कि.मी. ऊपर स्ट्रेटोस्फियर में 50 से 95 प्रतिशत ओजोन नष्ट हो जाती है। इससे ओजोन परत में कुछ रिक्त स्थान बन जाते हैं, जिन्हें अंटार्कटिक ओजोन छिद्र कहा गया।

अंटार्कटिक विशिष्ट जलवायु स्थितियों के कारण ओजोन छिद्रता का प्रमुख केंद्र है और यही कारण है कि ओजोन-क्षरण का प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ रहा है, लेकिन कुछ हिस्से दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रभावित होंगे, जिनमें दक्षिणी गोलार्द्ध के अधिक भूखंड मसलन—ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका के कुछ हिस्से जहां की ओजोन परत में छिद्र है, अन्य देशों की अपेक्षा अधिक खतरे में हैं।

ओजोन छिद्र चिंता का कारण क्यों?

ओजोन परत हानिकारक पराबैंगनी विकिरण को पृथ्वी पर पहुंचने से पूर्व ही अवशोषित कर लेती हैं। ओजोन छिद्रों में इसकी मात्रा कम होने के कारण हानिकारक पराबैंगनी किरणें पृथ्वी की सतह पर पहुंचने लगेंगी। इसकी अधिक मात्रा का मानव-जीवन, जंतु-जगत्, वनस्पति-जगत् तथा द्रव्यों पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

ओजोन-क्षरण के प्रभाव

मनुष्य तथा जीव-जंतु—यह त्वचा-कैंसर की दर बढ़ाकर त्वचा को रूखा, झुर्रियों भरा और असमय बूढ़ा भी कर सकता है। यह मनुष्य तथा जंतुओं में नेत्र-विकार विशेष कर मोतियाबिंद को बढ़ा सकती है। यह मनुष्य तथा जंतुओं की रोगों की लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता को कम कर सकता है।

वनस्पतियां—पराबैंगनी विकिरण वृद्धि पत्तियों का आकार छोटा कर सकती है अंकुरण का समय बढ़ा सकती हैं। यह मक्का, चावल, सोयाबीन, मटर, गेहूं जैसी फसलों से प्राप्त अनाज की मात्रा कम कर सकती है।

खाद्य-शृंखला—पराबैंगनी किरणों के समुद्र सतह के भीतर तक प्रवेश कर जाने से सूक्ष्म जलीय पौधे (फाइटोप्लैंकटॉन्स) की वृद्धि धीमी हो सकती है। ये छोटे तैरने वाले उत्पादक समुद्र तथा गीली भूमि की खाद्य-शृंखलाओं की प्रथम कड़ी हैं, साथ ही ये वायुमंडलीय CO_2 को दूर करने में भी योगदान देते हैं। इससे स्थलीय खाद्य-शृंखला भी प्रभावित होगी।

द्रव्य—बढ़ा हुआ पराबैंगनी विकिरण पेंट, कपड़ों को हानि पहुंचाएगा, उनके रंग उड़ जाएंगे। प्लास्टिक का फर्नीचर, पाइप तेजी से खराब होंगे।

ओजोन-क्षरक पदार्थ

ये सभी मानव-निर्मित हैं—

सी.एफ.सी.—क्लोरोफ्लोरोकार्बन, क्लोरीन, फ्लोरीन एवं ऑक्सीजन से बनी गैसें या द्रव पदार्थ हैं। ये मानव-निर्मित हैं, जो रेफ्रिजरेटर तथा वातानुकूलिन यंत्रों में शीतकारक रूप में प्रयोग होते हैं। साथ ही इसका प्रयोग कम्प्यूटर, फोन में प्रयुक्त इलेक्ट्रॉनिक सर्किट बोर्ड्स को साफ करने में भी होता है। गद्दों के कुशन, फोम बनाने, स्टायरोफोम के रूप में एवं पैकिंग सामग्री में भी इसका प्रयोग होता है।

हैलोन्स—ये भी एक सी.एफ.सी. हैं, किंतु यह क्लोरीन के स्थान पर ब्रोमीन का परमाणु होता है। ये ओजोन परत के लिए सी.एफ.सी. से ज्यादा खतरनाक है। यह

अग्निशामक तत्वों के रूप में प्रयोग होते हैं। ये ब्रोमीन, परमाणु क्लोरीन की तुलना में सौ गुना अधिक ओजोन अणु नष्ट करते हैं।

कार्बन टेट्राक्लोराइड–यह सफाई करने में प्रयुक्त होने वाले विलयों में पाया जाता है। 160 से अधिक उपभोक्ता उत्पादों में यह उत्प्रेरक के रूप में प्रयुक्त होता है। यह भी ओजोन परत को हानि पहुंचाता है।

ओजोन कैसे नष्ट होती है?

1. बाहरी वायुमंडल की पराबैंगनी किरणें सी.एफ.सी. से क्लोरीन परमाणु को अलग कर देती हैं।
2. मुक्त क्लोरीन परमाणु-ओजोन के अणु पर आक्रमण करता है और इसे तोड़ देता है। इसके फलस्वरूप ऑक्सीजन अणु तथा क्लोरीन मोनोऑक्साइड बनती है–

$$Cl + O_3 = Clo + O_2$$

3. वायुमंडल का एक मुक्त ऑक्सीजन परमाणु क्लोरीन मोनोऑक्साइड पर आक्रमण करता है तथा एक मुक्त क्लोरीन परमाणु और एक ऑक्सीजन अणु का निर्माण करता है।

$$Cl + O = Cl + O_2$$

4. क्लोरीन इस क्रिया को 100 वर्षों तक दोहराने के लिए मुक्त है।

ओजोन समस्या के समाधान के प्रयास

भारत ओजोन समस्या के प्रति चिंतित है। उसने सन् 1992 में मांट्रियल मसविदे पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। ओजोन को क्षति पहुंचाने वाले कारकों को दूर करने के लिए क्षारकों के व्यापार पर प्रतिबंध, आयात-निर्यात की लाइसेंसिंग तथा उत्पादन सुविधाओं में विकास पर रोक आदि प्रमुख हैं।

प्रकृति द्वारा प्रदत्त इस सुरक्षा-कवच में और अधिक क्षति को रोकने में हम भी सहायक हो सकते हैं–

1. उपभोक्ता के रूप में यह जानकारी लें कि जो उत्पाद खरीद रहे हैं, उनमें सी.एफ.सी. है या नहीं। जहां विकल्प हो वहां ओजोन मित्र उत्पाद यानी सी.एफ.सी. रहित उत्पाद ही लें।
2. वातानुकूलित संयंत्रों तथा रेफ्रिजरेटर का प्रयोग सावधानी से करें, ताकि उनकी मरम्मत कम-से-कम करानी पड़े। सी.एफ.सी. वायुमंडल में मुक्त होने की बजाय पुनः चक्रित हो।
3. पारंपरिक रुई के गद्दों एवं तकियों का प्रयोग करें।
4. स्टायरोफाम के बर्तनों की जगह पारंपरिक मिट्टी के कुल्हड़ों, पत्तलों का प्रयोग करें या फिर धातु और कांच के बर्तनों का।
5. अपने-अपने क्षेत्रों में ओजोन परत क्षरण जागरूकता अभियान चलाएं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा ने 16 सितंबर को ओजोन परत संरक्षण दिवस के रूप में स्वीकार किया है। 1987 में इसी दिन ओजोन क्षरण कारक पदार्थों के निर्माण

और खपत में कमी संबंधी 'मांट्रियल सहमति' पर विभिन्न देशों ने (कनाडा) मांट्रियल में हस्ताक्षर किए थे। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गठित समिति ने सी.एफ.सी. की चरणबद्ध कमी करने के लिए समझौते का मसविदा तैयार किया है, जिसे मांट्रियल प्रोटोकाल कहा जाता है। यह 1987 से प्रभावी है। अब तक लगभग 150 देशों के हस्ताक्षर इस पर हो चुके हैं और इसके नियमों को स्वीकारा जा चुका है।

संदर्भ

1. पर्यावरणीय अध्ययन, 2000—पर्यावरण शिक्षक केंद्र, सेंटर फॉर एन्वायरमेंट एजुकेशन, सी.ई.ई. पर्यावरण एवं वन मंत्रालय।
2. पर्यावरण अध्ययन, श्री रतन जोशी, नयी दिल्ली।

व्याख्याता, शिक्षा विभाग,
मैट्स विश्वविद्यालय,
गुल्लू (आरंग)

(ई)

जल संरक्षण व वन प्रबंधन

सृष्टि की अनमोल देन : जल

डॉ. प्रीति कौशिक

जल मानव सहित सभी जीवधारियों के लिए प्रकृति का एक अनुपम उपहार है, जिसका कोई विकल्प नहीं है। जीवधारियों एवं वनस्पतियों को जीवित रखने तथा उनका विकास करने में जल की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। एक तरह से कहा जाए तो जल ही जीवन है। उपग्रहों द्वारा लिए गए नीले-हरे छायाचित्रों से ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी पर जल की पर्याप्त मात्रा है। अनुमान है कि पृथ्वी पर 1.4 बिलियन घन मीटर जल उपलब्ध है, लेकिन इस जलराशि का केवल तीन प्रतिशत जल ही मानव-जाति की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक है। वास्तव में पृथ्वी पर पाए जाने वाले ताजे जल का तीन-चौथाई भाग आर्कटिक और अंटार्कटिक क्षेत्रों की हिमानियों में निक्षेपित है। विश्व में कुल ताजे जल संसाधन के केवल 0.36 प्रतिशत तक ही मानव की पहुंच है।

पृथ्वी पर जल हमें तीन रूपों में प्राप्य है—ठोस (हिम), द्रव (जल) एवं गैस (वाष्प)। ग्लोब के समस्त जल का 97.3 प्रतिशत महासागरों में निहित है, जो खारा है। अनुमान है कि सभी सागरों और महासागरों में 1370.323×10^6 घन मीटर जल अवस्थित है तथा समुद्रों की औसत गहराई 3795 मीटर है। इन महासागरों में प्रशांत महासागर सबसे गहरा और बड़ा है।

मनुष्य जल का कई तरह से उपयोग करता है। इनमें से कुछ प्रमुख उपयोग हम इस तरह करते हैं। घरेलू कार्यों में जल का उपयोग 'प्राथमिक उपयोग' कहलाता है। यह पीने, खाना पकाने, नहाने व घरों की सफाई करने में प्रयुक्त होता है। मात्र जीवित रहने के लिए प्रतिदिन प्रति व्यक्ति को 2-3 लीटर जल पर्याप्त है। अमेरिकी अनुसंधानकर्ताओं ने अनुमान लगाया है कि विश्व में 250 मिलियन व्यक्ति जल की निम्न गुणवत्ता या अपर्याप्त जलापूर्ति के कारण बीमारियों से ग्रस्त रहते हैं। अफ्रीका व एशिया में प्रति वर्ष लगभग 25 हजार व्यक्ति ट्रेकोमा, मियादी बुखार, हैजा और आंतों की विभिन्न बीमारियों से मौत के शिकार होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा एकत्रित आंकड़ों से पता चलता है कि इनमें लगभग 80 प्रतिशत मौतें दूषित जल के कारण ही होती हैं।

औद्योगिक क्रियाकलापों में जल का प्रयोग उसका 'गौण उपयोग' कहलाता है। वैसे भी कल-कारखानों के संचालन में जल की विशेष भूमिका होती है। भाप से चलने वाली मशीनों में वाष्प निर्माण के लिए, रासायनिक विलयनों को तैयार करने में, वस्त्रों की रंगाई, छपाई व धुलाई करने में, एयरकंडीशनिंग व कूलिंग करने में जल का औद्योगिक उपयोग

होता है। आइसक्रीम व बर्फ के निर्माण में तथा शीतल पेय पदार्थों में भी कच्चे माल के रूप में जल का उपयोग किया जाता है। लोहा-इस्पात उद्योग में धातु को ठंडा करने, कोयला उद्योग में कोयले की धुलाई तथा चमड़ा उद्योग में खाल को धोने, रंगने एवं रासायनिक उद्योगों में क्षारों और अमलों के निर्माण में जल का औद्योगिक उपयोग अधिक महत्वपूर्ण है। शुद्ध जल की उपलब्धता उद्योगों के स्थायीकरण पर भी प्रभाव डालती है। इसी कारण ऊनी व सूती वस्त्र उद्योग, कागज-लुगदी, चमड़ा, शराब, रसायन और औषध निर्माण उद्योग मीठे जल-स्रोतों के निकट ही स्थापित किए जाते हैं। जल का अधिकतम प्रयोग 80 प्रतिशत तक कृषि क्षेत्र में सिंचाई के रूप में होता है। जहां पर्याप्त वर्षा नहीं होती, वहां सिंचाई के लिए जल की अधिक आवश्यकता पड़ती है। नगरों में जलापूर्ति का 85 प्रतिशत भाग उद्योगों द्वारा उपयोग में लाया जाता है। एक ओर कारखानों के संचालन में जहां जल का प्रयोग किया जाता है, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक अपशिष्टों को बहाने तथा सीवर प्रणाली को चालू रखने में जल का भारी उपयोग होता है। यही कारण है कि सीवर में जल का बढ़ता उपयोग जल प्रदूषण का एक बड़ा स्रोत बन गया है। परिणामतः औद्योगिक नगरों के छोरों पर बहने वाली नदियां, नदी कम गंदा नाला अधिक लगती हैं।

आज जल के भारी दुरुपयोग से जल की गुणवत्ता में काफी गिरावट आई है। यद्यपि जल में स्वयं शुद्धिकरण की क्षमता होती है, परंतु जब मानवजनित स्रोतों से उत्पन्न प्रदूषकों का जल में स्वयं शुद्धि की क्षमता से अधिक जमाव हो जाता है तो वह जल प्रदूषित हो जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जल के प्रदूषण को परिभाषित करते हुए एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है, 'प्राकृतिक या अन्य स्रोतों से उत्पन्न अवांछित बाह्य पदार्थों के कारण जल दूषित हो जाता है तथा उसकी विषाक्तता व सामान्य स्तर से कम ऑक्सीजन के कारण जीवों के लिए घातक एवं संक्रामक रोग फैलाने में सहायक होता है।'

विश्व में जल के दुरुपयोग की स्थिति बड़ी ही भयावह है। परिणामस्वरूप जल के स्रोत अनेक कार्यों के लिए अनुपयुक्त हो गए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की ईरी झील में प्रतिवर्ष हजारों टन प्रदूषक तत्व विसर्जित किए जाते हैं। इसमें फांसफेट के प्रवेश से झील में पनपी लाईकेन की वृद्धि रुक गई है और अनेक मूल्यवान मछलियों की जाति ही नष्ट हो गई है। कनाडा में तीव्र जन-विरोध एवं वैधानिक नियम-क़ानूनों के उपरांत भी औद्योगिक इकाइयां नदियों में विषाक्त औद्योगिक अपशिष्टों का विसर्जन करती हैं। ओंटारियो और क्यूबेक प्रांतों की नदियों व खाड़ियों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि इन जलीय स्रोतों में मिलने वाली मछलियों के खाने से अनेक घातक बीमारियां उत्पन्न हुई हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के लगभग 2.5 करोड़ व्यक्ति जो जल पीते हैं, उसकी आधिकारिक मानकों के अनुसार गुणवत्ता ठीक नहीं है। लॉस ऐंजिल्स नगर में जो पेय जल की आपूर्ति की जाती है, उसमें पेट्रोलियम की गंध आती है। जापान के तट पर पारायुक्त मछलियों का सेवन करने से मिनामाता रोग उत्पन्न हो गया। यहीं एक ऐसा उदाहरण भी देखने में आया कि सन् 1940 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका की नियाग्रा काउंटी में दो रासायनिक इकाइयों ने लव नहर में औद्योगिक अपशिष्टों को विसर्जित करना प्रारंभ किया तो इससे इस नहर का जल इतना अधिक जहरीला हो गया कि सन् 1978 में न्यूयार्क राज्य के अधिकारियों द्वारा इस नहर क्षेत्र को 'आपदा क्षेत्र' घोषित करना पड़ा। पश्चिमी यूरोप

में राईन नदी, जिसका शाब्दिक अर्थ शुद्ध नदी है, आज सबसे अधिक प्रदूषित है, यह एक गंदे नाले की तरह प्रवाहित होती है। रूर बेसिन में, राईन वेर रूर नदियों के जल में नहाने व मात्र तैराकी करने से अनेक मौतें हुई हैं। हमारे देश में भी गंगा जैसी अनेक पवित्र नदियों में आज जिस तरह से गंदे नालों को मिलाकर उन्हें अपवित्र किया जा रहा है, उससे न केवल पीने के पानी का संकट गहराता जा रहा है, बल्कि उस प्रदूषित जल से उपजे अनेक संकट आज हमारे सामने मुंह बाये खड़े हैं। सामाजिक और सरकारी स्तर पर यूं तो इन नदियों की सफाई के अनेक प्रयास हो रहे हैं, पर इसके परिणाम संतोषजनक नहीं हैं। आज देश की सभी नदियों के जल को शुद्ध और पेययुक्त बनाए रखने के लिए न केवल कठोर नियमों को बनाने, बल्कि उनके सख्ती से परिपालन की महती आवश्यकता है।

आज समस्त जल राशि चाहे वह सतही हो या भूमिगत किसी-न-किसी रूप में प्रदूषणयुक्त है। इस प्रकार प्रदूषित जल का प्रभाव समस्त भौतिक व मानवीय पर्यावरण पर पड़ रहा है, जिसके प्रभाव घोर नुकसानदायक हैं। जल प्रदूषण से सर्वाधिक आहत मनुष्य एवं सूक्ष्मजीव होते हैं। प्रदूषित जल का सेवन करने से हैजा, तपेदिक, पीलिया, अतिसार, मियादी बुखार, टायफाइड, पेचिश, आंत्रशोध, मलेरिया, फाईलेरिया, पोलियो, इंसेफेलाइटिस, डेंगू जैसे घातक रोग न केवल पनपते हैं, बल्कि मृत्यु का कारण भी बनते हैं। ऐस्बेस्ट्स के रेशों से युक्त जल के प्रयोग से फेफड़ों का कैंसर तथा पेट के अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। प्रदूषित जल से सिंचाई करने पर मिट्टी भी प्रदूषित हो जाती है, जिससे उसकी उर्वरता भी कम हो जाती है। क्षार व अम्लयुक्त जल से सिंचाई करने पर सूक्ष्म जीवाणु मर जाते हैं तथा मिट्टी में क्षारीयता बढ़ जाती है। नदियों, झीलों व तालाबों में जैविक व अजैविक पोषक तत्वों के सांद्रण में वृद्धि होने से पौधों की संख्या में नियंत्रण सीमा से अधिक वृद्धि हो जाती है। जल में विषाक्त रसायनों में धात्विक पदार्थों के सांद्रण में वृद्धि होने से पौधे एवं जीव-जंतु नष्ट हो जाते हैं। तेल के रिसाव तथा औद्योगिक अपशिष्टों के विसर्जन के कारण जलीय-जीव मर जाते हैं। अक्टूबर-नवंबर, 1996 में दिल्ली में फैलने वाले डेंगू बुखार का प्रमुख कारण विशिष्ट प्रकार के मच्छरों का गंदे जल में पनपना ही था। इस प्रकार के बुखार से न केवल दिल्ली में 200 से अधिक मौतें हुईं, बल्कि कई हजार रोगी अस्पताल में भर्ती किए गए। रेडियोधर्मी पदार्थों के जल में मिलने के कारण मनुष्य को ल्यूकनिया तथा कैंसर जैसे भयंकर रोगों से ग्रस्त देखा गया है। ऐसी भयावह परिस्थितियों में जल प्रदूषण की रोकथाम के लिए हर स्तर पर हर संभव प्रयास किए जाने आवश्यक हैं।

जल को प्रदूषित होने से बचाना हमारा प्राथमिक ध्येय होना चाहिए, क्योंकि जल स्वयं में अति महत्वपूर्ण तो है ही, इसके अभाव में मनुष्य और वनस्पति जगत् का जीवन भी सुरक्षित नहीं है। अतः बिना किसी प्रतीक्षा के हमें जल को प्रदूषित होने से न केवल बचाना होगा, बल्कि विश्वस्तर पर हमें ऐसे प्रयास करने होंगे जिनसे सभी को लाभ हो सके। जल प्रदूषण की रोकथाम के लिए निम्न उपाय आवश्यक तौर पर किए जा सकते हैं–

1. वाहित मल को स्वच्छ जल में विसर्जित करने से पूर्व उसे उपचारित किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए कैथोड रेट्यू तथा गंदगी का अवशोषण करने वाले उपकरणों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

2. उद्योगों के रसायन एवं गंदे अवशिष्टयुक्त जल को नदियों, सागरों, नहरों, झीलों आदि में सीधा न डाला जाए। साथ ही उद्योगों के ऐसे संयंत्र लगाने को कहा जाए, जिनसे वह गंदे जल को स्वच्छ करके ही बाहर निकाले।
3. सड़े-गले पदार्थ व कूड़ा-करकट को स्वच्छ जल के भंडार में विसर्जित नहीं किया जाना चाहिए।
4. शव को जलाने के लिए विद्युत शवदाह गृहों का निर्माण किया जाना चाहिए।
5. औद्योगिक अपशिष्टों के उपचार की व्यवस्था की जानी चाहिए। ऐसा न करने वाली औद्योगिक इकाइयों द्वारा वैधानिक नियमों का कड़ाई से पालन करवाने की योजना होनी चाहिए।
6. समुद्रों में परमाणु विस्फोट को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।
7. स्वच्छ जल के दुरुपयोग पर प्रतिबंध लगाना चाहिए। जल-प्रदूषण रोकने के लिए सामान्य जनता में जागरूकता और चेतना पैदा की जानी चाहिए। इसमें सभी प्रकार के प्रचार माध्यमों द्वारा जल-संरक्षण के उपायों का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।
8. जल में ऐसे जीव और वनस्पतियां विकसित की जाएं, जो जल को स्वच्छ रखने में सहायक हों।
9. प्रदूषित जल में विषाक्त रसायनों के निष्कर्षण की तकनीक पर बल दिया जाना चाहिए।
10. नदियों के जल ग्रहण क्षेत्रों में वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करके जल प्रदूषण के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
11. विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जल की शुद्धता की रासायनिक जांच समय-समय पर कराते रहना चाहिए।
12. मल विसर्जन से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए 'सुलभ इंटरनेशनल' जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग लेना चाहिए। सुलभ शौचालयों का निर्माण करने से निश्चित ही जल-प्रदूषण की मात्रा में कमी लाई जा सकती है।

जल-प्रदूषण की रोकथाम के लिए जल अधिनियम बनाया गया है, जिसके अंतर्गत जल प्रदूषित करने वालों के लिए दंड का प्रावधान है। केंद्र एवं राज्य स्तर पर जल-प्रदूषण के नियंत्रण और उसके बचाव के लिए एक प्रशासनिक तंत्र की स्थापना की गई है, जिसे 'जल प्रदूषण बोर्ड' कहते हैं। यह अधिनियम इस दृष्टि से बहुत विस्तृत है कि इसमें सरिताएं, जल-प्रवाह मार्ग, अंतर्देशीय जल, अंतर्भूमिक जल, समुद्र, ज्वारीय जल को राज्य के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत मान्यता देता है। राज्य एवं केंद्रीय बोर्ड में व्यापक प्रतिनिधित्व होता है और उन्हें परामर्श देने के पूरे-पूरे अधिकार दिए गए हैं तथा जल-प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण अथवा उसमें कमी के लिए तकनीकी सहायता को समन्वित करके प्रदान करने के लिए अधिकृत किया गया है। जल अधिनियम विषैले, हानिकारक अथवा प्रदूषित करने वाले पदार्थों को नदियों एवं कुओं में फेंके जाने को निषिद्ध करता है और प्रत्येक वह कार्य जो नदी के जल के उचित प्रवाह में बाधित होता है, रोकता है। यह अधिनियम यह प्रतिबंध भी लगाता है कि मल, जल या औद्योगिक प्रवाह को नदियों या कुओं में गिराने

के लिए पूर्व अनुमति की आवश्यकता होगी। बोर्ड को प्रदूषणकर्ताओं को ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करने पर दंडित करने का अधिकार प्राप्त है।

भारत के संविधान के अनुसार पर्यावरण प्रदूषण के संबंध में जनसाधारण के भी कुछ कर्तव्य और अधिकार निहित किए गए हैं। उसके अनुसार, यदि किसी अवस्था में उद्योग से प्रदूषण हो रहा है, ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति या समुदाय को यह अधिकार दिया गया है कि वह इसकी सूचना संबंधित बोर्ड को दे। यदि दो माह के भीतर उचित कार्यवाही नहीं होती है तो प्रभावित व्यक्ति या समुदाय प्रदूषणकारी पर मुकदमा दायर कर सकता है। जनसाधारण को चाहिए पर्यावरण संबंधी विभिन्न नियमावली के बारे में जानकारी रखे। भारत के संविधान के अनुच्छेद 48'क' में स्पष्ट किया गया है कि राज्य देश के पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन के साथ वन एवं वन्य-जीवों की रक्षा करेगा। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 51क (छ) में यह स्पष्ट किया गया है कि इस देश के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें नदी, झील, वन एवं वन्य-जीव भी सम्मिलित हैं, की रक्षा करेगा और इसके संवर्धन के साथ प्राणीमात्र के लिए दया-भाव रखेगा।

इसी सबको दृष्टिगत रखते हुए तथा जल के महत्व और इसकी उपयोगिता के कारण भारतीय संस्कृति में जल को देवता का स्वरूप माना गया है। तो आइए, सृष्टि की इस अनमोल धरोहर के संरक्षण के लिए न केवल हम एक सच्चे भारतीय होने का अपना कर्तव्य निभाएं, बल्कि प्रकृति के इस तोहफे की पवित्रता को बनाए रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर स्वयं को ही कृतार्थ करें।

प्रवक्ता, केशव मारवाड़ गर्ल्स डिग्री कॉलेज,
पिलखुवा, हापुड़, गाजियाबाद (उ.प्र.)

जल-संरक्षण और पर्यावरण

डॉ. ए.के. स्वर्णकार

जल को जीवन कहा गया है। जल हमारे जीवन और अस्तित्व के लिए नितांत आवश्यक है। यह शरीर जिन पांच महातत्वों से निर्मित है, उनमें एक जल भी है। जल के बिना मनुष्य रह नहीं सकता, इसलिए आवास-व्यवस्था के पूर्व वह जल-स्रोत की टोह लेता है। जीवन में प्रत्येक कार्य में जल उपयोगी है। स्वच्छता, पूजा-पाठ, आचार-व्यवहार, खेती, उद्योग आदि में इसका उपयोग होता है। जीवन-जगत् के लिए 'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून' उक्ति सार्थक है।

जल का महत्व कई रूपों में है। सनातन हिंदू-धर्म में जल के बिना कोई अनुष्ठान संपन्न नहीं हो सकता। यह हमारे जीवन को संतुलित एवं शीतलता प्रदान करता है। यही रस और स्वाद बनकर हमारे जीवन को सरस बनाता है। प्यासे के लिए यह अमृत बूंद है तो धार्मिक कार्य में प्रयुक्त कलश-घट में यह वरुण शक्ति का द्योतक है।

वर्तमान विश्व का सबसे चर्चित और ज्वलंत विषय है—'जल', जो जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता भी है। जनसंख्या वृद्धि के साथ ही जल की खपत बढ़ गई है, परंतु इसके स्रोत सीमित होने के कारण समस्या पैदा हो गई है। विचारक, चिंतक एवं समाजशास्त्री तो यहां तक कहते हैं कि अगला विश्वयुद्ध तेल के लिए नहीं, बल्कि पानी के लिए होगा। उनके इस कथन में सच्चाई है। यह कटु सत्य है कि जिस धरती का दो-तिहाई भाग जल है, वहां पीने के पानी की उपलब्धता अपर्याप्त है और जो उपलब्ध है वह भी प्रदूषण की चपेट में है। स्वच्छ जल जीव-जंतुओं और वनस्पतियों के लिए अमृत तुल्य है, किंतु वही जल दूषित हो जाने के बाद विष के समान हो जाता है। परिणामस्वरूप अनेक बीमारियां उत्पन्न होती हैं।

आज देश की अधिकांश जीवनदायिनी नदियों का जल मनुष्य के पीने और कहीं-कहीं नहाने लायक भी नहीं रह गया है। 'राम तेरी गंगा मैली हो गई' केवल एक फिल्मी गाना नहीं, अपितु जल-प्रदूषण का जीता-जागता उदाहरण है। कारखानों का प्रदूषित धुआं, एक ओर ताजमहल को मलिन कर रहा है तो दूसरी ओर उसके प्रदूषित जल से नदियां व नहरें दूषित हो रही हैं। विदित हो कि कावेरी, गोदावरी, साबरमती, कृष्णा और ताप्ती नदियों के जल का परीक्षण किया गया और उसे पीने लायक नहीं पाया गया। निःसंदेह यह एक चिंता का विषय है। जल में विसर्जित कूड़ा-करकट, शव, अधजली लाशें, राख, फूल-मालाएं, जूठा भोजन आदि जल को प्रदूषित करते हैं। परिणामस्वरूप जल उपयोग के लायक नहीं

रह जाता। किंतु आम जनता इस बात से अभी तक बेखबर है। वह गंगा जल अथवा अन्य नदियों के जल को अमृत समझती है। प्रदूषित पानी को पीने से अपचन, पेचिश, पीलिया, गैस और नहाने-धोने से खसरा, खुजली और कुष्ठ जैसे संक्रामक रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

जल-प्रदूषण का प्रभाव जीव-जंतुओं और वनस्पतियों पर भी होता है। सच पूछिए तो आज भारत की तमाम पुण्य-सलिला नदियों का जल प्रदूषित हो चुका है। गंगा, यमुना, गोदावरी और कृष्णा आदि नदियों का जल स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुपयुक्त साबित हो चुका है। और तो और गंगा सफाई के सरकारी प्रयासों के बावजूद गंगा को आज भी किसी नये भगीरथ की तलाश है, जो उसे प्रदूषण के अभिशाप से मुक्त करे। यह चिंता का विषय है कि तमाम प्रदूषण-नियंत्रण कानूनों के बावजूद केवल हुगली में चल रहे कपड़ा, पटसन, कागज, शराब और चमड़े के तकरीबन 160 कारखानों का अवशिष्ट जल बिना उपचारित किए ही नदी में डाल दिया जाता है। प्रदूषण से बचने के लिए यह आवश्यक है कि प्राकृतिक और मानव-निर्मित वातावरण में ताल-मेल बना रहे। यह ध्यान देना चाहिए कि मानव उद्योग-धंधे का विकास अवश्य करे, लेकिन प्राकृतिक सुंदरता को नष्ट न करे।

आज अरपा की प्रदूषित स्थिति को देखकर बहुत दुःख होता है। अरपा पहले पानीदार, प्रदूषणविहीन थी। आज उसका स्वरूप देखकर लगता है मानों उसके ही बच्चों ने अपनी मां का रूप अपने स्वार्थ के लिए विकृत कर दिया है। पहले अरपा सूखी नहीं थी, भीषण गर्मी के दिनों में पुराने पुल के नीचे पानी भरा रहता था। इसके दोनों किनारों पर बिही, सीताफल, संतरा एवं साग-सब्जियों के हरे-भरे बाग-बगीचे हुआ करते थे। अब तो कंक्रीट के जंगलों में अरपा का पानीदार चेहरा और हरियाली मानों गुम हो गई है। अब बिलासपुर नगर में जल-स्तर बहुत अधिक नीचे चला गया। प्रकृति और पर्यावरण के साथ खिलवाड़ का ही यह परिणाम है। अब भी वक्त है संभल जाएं, अपनी जीवनदायिनी मां अरपा के सौंदर्य को संवारें। उसके सूखे-बुझे हुए चेहरे में पानी वापस लाएं। आइए, हम सब अरपा के बेटे मिलकर अपनी मां के कायाकल्प हेतु कृत्संकल्प हों और आने वाली पीढ़ी को कल-कल निनादिनी हरी-भरी अरपा प्रदान करें।

नदियों में गंदगी डालने से पीने का पानी दूषित होता जा रहा है। नदियां केवल नदी नहीं होतीं, वे हमारी सांस्कृतिक पहचान भी होती हैं। मानव के स्वार्थ ने अपनी ही जननी की गोद को मलीन कर दिया है। जीवनदायिनी गंगा आज विनाश के कगार पर है। इंद्रावती व महानदी भी बदरंग-सी हो चली हैं, जिन्होंने बस्तर की इंद्रावती का भरपूर यौवन देखा है, वे आज की कृषकाय इंद्रावती को देखकर रोने पर विवश हो जाते हैं। आज नदियों के जल-स्तर में निरंतर गिरावट आ रही है। यह दुःखद और भावी खतरे का भी संकेत है। नदियां ही नहीं, आज विश्व के सागर भी प्रदूषण की चपेट में हैं, जिसके कारण सागर में रहने वाले जीव-जंतुओं का जीना दुश्वार होता जा रहा है।

आज कृषि और उद्योग क्षेत्रों में जल की बढ़ती हुई मांग के कारण कई राष्ट्रों में जल का भीषण संकट उत्पन्न हो गया है। जल सतत् प्रवहमान है, उसी को हमारी स्वार्थपरता ने बांधने का, अवरुद्ध करने का, दुस्साहस किया। यही कारण है कि व्यक्ति से राष्ट्र तक सभी जल विवादों से घिरे नजर आएंगे। जल प्राकृतिक संसाधन है, इसे अपने

प्राकृतिक रूप में रहने देना चाहिए, अन्यथा बहुत बड़ा संकट खड़ा हो सकता है। ऐसी स्थिति जल के लिए विश्वयुद्ध हो न हो, अपने देश में आंतरिक संघर्ष की आशंका को टाला नहीं जा सकता। कोई भी राष्ट्र अपने विकास में जल को समस्या नहीं बनने देगा, इसलिए प्रगतिशील राष्ट्र को अभी से जल के प्रबंधन के लिए विशेष उपाय करने चाहिएं। वर्षा के जल की खेती का जलागम प्रबंधन का क्रम हर जगह बनाना चाहिए। इसी में जल संकट का समाधान निहित है। यही वह वजह है कि व्यक्ति से राष्ट्र तक सभी जल-विवादों से घिरे हुए नजर आते हैं। जबसे मानवीय पुरुषार्थ में कमी आई, ताल-सरोवरों आदि का निर्माण कम हो गया और देश प्राकृतिक जल के भरोसे रहने लगा। इसमें व्यतिक्रम अनेक संकटों का कारण बनता है।

इसके अतिरिक्त आज देश व विश्व की सबसे बड़ी समस्या भू-जल का गिरता स्तर है। आने वाले दिनों में अतिरिक्त पानी राशनिंग पर मिले तो आश्चर्य न करें। यह सब इसलिए हुआ है कि जल सीमित है, उसका उपयोग करने वाले अत्यधिक बढ़ गए हैं। बढ़ते शहरीकरण के कारण ट्यूबवैल तक हमने गहरे खोद-खोदकर पानी की सतह बहुत नीचे पहुंचा दी है। इसलिए वर्षा के पानी का, चाहे वह कभी भी बरसे, उपयोग करें, उसकी खेती करें। यह वॉटर हारवेस्टिंग तकनीक ही हमें हमारी भावी पीढ़ी को प्यासा मरने से बचा सकती है।

वर्षा ऋतु में जब अधिक वर्षा होती है तो अतिरिक्त जल जो भूमि पर बहने लगता है, उसे एकत्रित करना तथा एकत्रित जल को वाष्पीकरण एवं निष्पंदन की हानियों से बचाकर फसलोत्पादन के उपयोग में लेना वॉटर हारवेस्टिंग कहलाता है। इस प्रकार से एकत्रित पानी का उपयोग शुष्क मौसम में तब किया जाता है, जब फसलों की सिंचाई की आवश्यकता होती है। इस विधि में पानी प्राकृतिक निचले क्षेत्रों तथा तालाबों में एकत्रित किया जाता है। आवश्यकतानुसार ऐसे तालाबों के क्षेत्रफल एवं गहराई बढ़ाई जा सकती है। तालाबों में एकत्रित जल की वाष्पीकरण से होने वाली हानि को रोकने के लिए क्षेत्रों में उपलब्ध पानी पर तैरने वाले पदार्थों का उपयोग करना चाहिए, ताकि जल एवं वायुमंडल का संपर्क टूट जाए और वाष्पीकरण की क्रिया कम-से-कम हो पाए। तालाब की निचली सतह से रिसाव द्वारा जल की हानि को रोकने के लिए अगर संभव हो तो सीमेंट व कंक्रीट की सहायता से पक्का बनवा देना चाहिए अन्यथा तालाब की निचली सतह से जल के रिसाव की हानि कम करने के लिए एक 8-10 सेमी. मोटी भूसे की पर्त लगाकर उसके ऊपर 8-10 सेमी. मोटी पर्त चिकनी मिट्टी की लगा देनी चाहिए।

पानी का सबसे निर्मल परिष्कृत स्वरूप है, आसमान से आने वाला जल। इसे हम नदी, नाले, समुद्र में बहने से रोक सकते हैं। इतना महत्वपूर्ण यह स्रोत है कि एक घंटे की वर्षा भी बारहमास का पानी दे सकती है। 'आकाश का पानी रोकेंगे, पाताल पानी बढ़ाएंगे' चलाई गई योजना का लाभ उठाकर रेगिस्तानी इलाकों—राजस्थान, गुजरात के घरों में, ऊंचे-ऊंचे किलों में वर्षा के पानी को इसी तकनीक का प्रयोग कर जल रोका जा सकता है। वहां कभी-कभी पानी गिरता है, फिर वर्ष भर उसका उपयोग करते हैं। इन घरों में बिना किसी तोड़-फोड़ के छत के जल को एक ही पाइप में संग्रहीत कर फिल्टर के माध्यम से घर में स्थित ट्यूबवैल या टैंक में डाला जाता है। यदि छत से पानी के निकास

के तीन-चार स्थान हैं तो उन सबको जोड़कर एक पाइप में एकत्र कर इसे फिल्टर से जोड़कर टैंक में जोड़ देते हैं। वर्षा ऋतु आने के पूर्व छत की सफाई कर ली जाती है। फिर चेक वॉल्ब से निकलने वाले पानी को देखकर उसे बंद कर देते हैं। पानी छत से उतरकर भू-तल में चला जाता है। याद रखें पानी की एक-एक बूंद कीमती है। हमें उसका अपव्यय रोकना है, तभी हम जल संकट से बच पाएंगे।

कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र,
सरकंडा, बिलासपुर (छ.ग.)

राष्ट्रीय नदी संरक्षण-योजना

इं. आर.एस. सिंह

गंगा एवं यमुना, गंग-प्रवाह क्षेत्र की दो प्रमुख नदिया हैं। ये नदियां गंग-प्रवाह क्षेत्र में रहने वाले करोड़ों लोगों की जीवन-रेखा हैं, परंतु इस क्षेत्र में सिंचाई के लिए भू-जल का अंधाधुंध दोहन तथा नदियों के किनारे बसे महानगरों एवं कारखानों से उत्सर्जित प्रदूषण, जलीय अवशिष्ट के कारण इन नदियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। भारत सरकार द्वारा आरंभ की गई कार्य-योजना के अंतर्गत नदियों में प्रवाहित किए जाने वाले शहरी एवं औद्योगिक कचरे के अंतर्विरोधन, प्रवाह-परिवर्तन तथा शोधन पर विशेष बल दिया गया है। नदियों में प्रदूषण-स्तर को कम करने तथा इनके प्रवहण-क्षेत्र से भू-जल के दोहन को युक्तिसंगत बनाने के लिए बुनियादी और विशेष पहल की आवश्यकता है।

- नदियों के किनारे अवस्थित शहरों, विशेष रूप से नदी तट पर बसे मुहल्लों में सामुदायिक शौचालयों के निर्माण तथा रख-रखाव एवं संचालन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
- स्वच्छता से संबंधित विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत उपलब्ध कराए जाने वाले संसाधनों को समन्वित करके सिर्फ स्वच्छता संबंधी योजना पर खर्च किया जाना चाहिए। ऐसा करने से नदियों के प्रदूषण को नियंत्रित करने के साथ-साथ शहरों के पर्यावरण में भी सुधार लाया जा सकेगा।
- जिन शहरों में सीवर-प्रणाली (मल-जल प्रणाली) उपलब्ध हं, वहां सिर्फ 40 से 50 प्रतिशत क्षेत्रों में ही सीवर प्रणाली उपलब्ध है। इन क्षेत्रों में सीवर लाइन डालने का कार्य बहुत खर्चीला है। इसलिए मानव-मल के निस्तारण के लिए दूसरी कम लागत वाली योजनाओं को अपनाने पर विचार किया जाना चाहिए।
- सीवर-सिस्टम द्वारा मल-निस्तारण की प्रविधि को अपनाने का विचार करते समय स्थानीय परिस्थितियों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। मल-निस्तारण हेतु उपलब्ध संसाधनों का चरण वार उच्चीकरण, जो प्रारंभिक प्रणाली (फुट-पाउंड सिस्टम) से यंत्रीकृत (मेकेनाइज्ड) सिस्टम की ओर जाता है, एक दूरदर्शी तथा वित्तीय दृष्टिकोण से संतुलित योजना होगी।
- अधिकांश मल-निस्तारण संयंत्रों की क्षमता इनकी योजना बनाने के समय तात्कालिक तौर पर उपलब्ध सीवेज के आधार पर निर्धारित की जाती हं, किंतु पूर्ण होने तक वह क्षमता अक्सर कम पड़ जाती है। अतः इसकी क्षमता की परिकल्पना कम-

से-कम 10 से 15 वर्षों के लिए की जाना चाहिए। अभिकल्पना कचरे की वास्तविक बी.डी.ओ. तथा इसमें उपस्थित अवक्षेपित ठोस प्रदूषकों की मात्रा के आधार पर होनी चाहिए।

- अनियमित विद्युत आपूर्ति को दृष्टिगत रखते हुए बड़े मल निस्तारण संयंत्रों, जिनमें मल निस्तारण पारंपरिक या यू.एस.बी.सी. विधि से प्रस्तावित है, गैर-पारंपरिक ऊर्जा के उत्पादन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिसका उपयोग बाधित विद्युत-आपूर्ति काल, जो सामान्यतौर पर होता रहता है, के समय किया जा सकता है।
- नदियों को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए जन-सहभागिता तथा जन-जागरूकता को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- सीवर प्रणाली का रख-रखाव करने वाले विभाग/ संस्था को ही मल-निस्तारण संयंत्रों का रख-रखाव एवं संचालन करना चाहिए।
- सीवर-प्रणाली तथा मल-निस्तारण संयंत्रों के रख-रखाव एवं संचालन करने के लिए उत्तरदायी स्थानीय निकायों के संसाधनों में बढ़ोतरी को शीर्ष प्राथमिकता देनी होगी। कार्य-योजना के अंतर्गत निर्मित-स्थापित संसाधनों के समुचित रख-रखाव एवं संचालन के लिए स्थानीय निकायों के पास पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित कर्मी होने चाहिएं।
- निर्मित, स्थापित संसाधनों के रख-रखाव तथा संचालन को व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाते हुए, निजी क्षेत्र को सौंपने का विचार करना चाहिए। सुलभ इंटरनेशनल सामाजिक सेवा संस्थान द्वारा सामुदायिक शौचालयों का रख-रखाव एवं संचालन, स्वच्छता से संबंधित संसाधनों का निजीकरण तथा जन-सहभागिता का ज्वलंत उदाहरण है।

राष्ट्रीय नदी-संरक्षण योजना के अंतर्गत गंगा-यमुना के संदर्भ में प्रदूषण-नियंत्रण

भारत की दो महान तथा पवित्र नदियों—गंगा और यमुना का भारतीय जन-मानस में सर्वदा ही उच्च आध्यात्मिक एवं धार्मिक महत्व रहा है। विशेषतौर पर गंगा नदी को अति पवित्र माना गया है। इसकी पवित्र जल-बूंद नवजात शिशु के मुंह में डालकर उसे अमरत्व प्रदान किया जाता है तथा इंसान के अंतिम पड़ाव पर यही जल-बूंद उसे मोक्ष प्राप्त कराती है। वस्तुतः गंगा प्राणदायिनी, कर्मदायिनी तथा मोक्षदायिनी है। संचयित गंगा-जल लंबे समय तक प्रदूषित नहीं होता। इसलिए इस विशाल देश के प्रत्येक घर में दैनिक पूजा, शरीर-पवित्रीकरण, आत्मिक शुद्धता तथा धार्मिक संस्कारों के लिए इसे संरक्षित रखा जाता है।

गंगा के प्रवाह-क्षेत्र में कृषि की सघनता बहुत अधिक है। देश के पूरे सिंचित क्षेत्र का लगभग 43 प्रतिशत क्षेत्र गंगा के प्रवाह-क्षेत्र में पड़ता है। समूचे प्रवाह-क्षेत्र में गंगा का जल हरिद्वार से अपर गंगा नहर में विक्षेपित किया जाता है। हरिद्वार तथा अलीगढ़ के बीच गंगा नदी में जो भी जल पुनः संचित होता है, उसे अलीगढ़ में लोअर गंगा नहर में विक्षेपित कर दिया जाता है। इसके फलस्वरूप गंगा में जल प्रवाह कन्नौज तथा

इलाहाबाद के मध्य बहुत क्षीण हो जाता है। इसके विपरीत कानपुर तथा इलाहाबाद में जनसंख्या का घनत्व भी अधिक है। इलाहाबाद के बाद गंगा में इसकी सहायक नदियों यथा—यमुना, घाघरा, सोन, कोसी, गंडक आदि के प्रवाह समाहित होते हैं। इस प्रकार हरिद्वार तथा इलाहाबाद के मध्य गंगा के जल-स्तर तथा जल-प्रवाह पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

सन् 1980 के दशक में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने विभिन्न स्रोतों की मदद से गंगा के प्रदूषण की जांच का गहन अध्ययन प्रारंभ किया। यह अध्ययन सन् 1984 में पूर्ण हुआ, जिससे निम्न तथ्य सामने आए—

- नदी प्रदूषण का तीन-चौथाई हिस्सा नदी के किनारे बसे शहरों के घरेलू कचरे से आता है।
- इस प्रदूषण का 88 प्रतिशत प्रथम श्रेणी के 25 शहरों से आता है।
- औद्योगिक कचरे के कारण 25 प्रतिशत प्रदूषण मुख्यतः दो औद्योगिक नगरों कानपुर एवं कोलकाता से आता है।

गंगा-कार्य योजना

नदी के किनारे बसे शहरों के लिए नदी उनकी जीवनधारा होती है। गंगा के किनारे बसे 25 बड़े नगरों, जिनकी आबादी एक लाख से अधिक है, से नदी के कुल प्रदूषण का तीन-चौथाई भाग घरेलू तथा औद्योगिक कचरे के रूप में आता है। ये नगर 2525 कि.मी. नदी की लंबाई, जो तीन राज्यों यानी—बिहार, उत्तर प्रदेश एवं बंगाल में अवस्थित है, को प्रभावित करते हैं, जिसके कारण नदी का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा सन् 1980 में तैयार की गई सर्वेक्षण रिपोर्ट के आधार पर गंगा के प्रदूषण को कम करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने फरवरी, 1985 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केंद्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन किया। इस प्राधिकरण में उत्तर प्रदेश, बिहार एवं बंगाल के मुख्यमंत्रियों, कुछ केंद्रीय मंत्रियों तथा सचिवों को प्राधिकरण में नामित किया गया। एक अवर विभागीय कार्य समिति का भी गठन किया गया है, जिसकी कार्य-योजना अवयवों को विस्तृत रूप से चरणबद्ध करने तथा उनके विभिन्न पहलुओं के क्रियान्वयन को निर्देशित एवं संचालित करने का दायित्व सौंपा गया। योजना के क्रियान्वयन के लिए जून, 1985 में गंगा-कार्य योजना निदेशालय की स्थापना, पर्यावरण विभाग की शाखा के रूप में की गई, जिसे केंद्रीय गंगा प्राधिकरण की सहायता करने का जिम्मा सौंपा गया। वर्तमान में गंगा-कार्य योजना निदेशालय का नाम बदलकर 'राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय' कर दिया गया। योजना का नामकरण राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना के रूप में किया गया है। उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, कर्नाटक, उड़ीसा, राजस्थान, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्रियों तथा कुछ केंद्रीय मंत्रियों को शामिल करते हुए प्राधिकरण का क्षेत्राकार बढ़ा दिया गया है। राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय के प्रमुख कार्य हैं—

- क्षेत्रीय स्तर के विभागों द्वारा तैयार की गई योजनाओं का मूल्यांकन एवं अनुमोदन करना।

- धन आवंटन।
- कार्य-योजना के विभिन्न क्रियाकलापों में सहयोग, संचालन तथा निरीक्षण करना।

कार्य-योजना के लक्ष्य

कार्य-योजना के लक्ष्य निम्नवत हैं–

- नदी जल की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए नदी में प्रदूषण स्तर को कम करना।
- नदी की जैव-विविधता को संरक्षित करना तथा समन्वित नदी-प्रवहण व्यवस्था के प्रस्ताव को अपनाना।
- उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनुसंधान करना।
- अन्य प्रदूषित नदियों के लिए समान कार्ययोजना अपनाने के लिए अनुभव प्राप्त करना।

रणनीति

कार्य-योजना के प्रथम चरण में नदी के किनारे बसे 25 नगरों से उत्सर्जित कचरे को नदी में गिरने से रोकने तथा उसे निस्तारित करने पर जोर दिया गया है। निस्तारित कचरे को सिंचाई या पुनः नदी में प्रवाहित करने का प्रस्ताव किया गया है। उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु कार्य योजना के निम्न विचार थे–

- कचरे को नदी में प्रवाहित होने से रोकने के लिए चालू नालों, सीवर का निक्षेपण-द्वार तथा मल-निस्तारण संयंत्रों का जीर्णोद्धार किया जाना।
- जहां पर प्राकृतिक ढाल की मदद से कचरा सीवर में नहीं पहुंचता हो, वहां नये-नये प्रवाह रोधक तथा मल-निस्तारण संयंत्र बनाने चाहिएं।
- चालू मल-निस्तारण संयंत्रों का जीर्णोद्धार किया जाना चाहिए। कार्य-योजना के प्रभावी होने के पूर्व उत्तर प्रदेश में ही एक मल-निस्तारण संयंत्र था।
- अधिकतम संसाधनों यथा विद्युत तथा खाद की प्राप्ति को दृष्टिगत रखते हुए नये मल-निस्तारण संयंत्रों का निर्माण किया जाना चाहिए।
- नदी तट से सटे मुहल्लों के कारण होने वाले प्रदूषण को कम करने के लिए कम लागत वाली स्वच्छता योजनाओं को लागू करना चाहिए।
- बिना जले तथा अधजले शवों को नदी में प्रवाहित होने से रोकने के लिए उसके किनारे विद्युत शवदाह-गृह का निर्माण किया जाना चाहिए।
- नदी के जल प्रवाह के शुद्धिकरण के लिए जैविक-संरक्षण का उपाय करना चाहिए।
- नदी तट के विभिन्न खंडों पर स्नान घाटों को विकसित करने के साथ-साथ नये स्नान-घाटों का निर्माण कराया जाना चाहिए।
- कार्य-योजना के लागू होने के पहले तीन राज्यों से कुल 1340 एम.एल.डी. कचरा नदी में प्रवाहित होता था। गंगा-कार्य योजना के प्रथम चरण में प्रदूषण नियंत्रण से संबंधित कुल 261 योजनाएं तीन राज्यों–उत्तर प्रदेश, बिहार व बंगाल में लागू की गईं। इन योजनाओं का लक्ष्य 873 एम.एल.डी. कचरे का मार्ग विक्षेपित करना था।

इन योजनाओं में कचरे के मार्ग अवरोधन तथा विक्षेपण से संबंधित 88, मल-निस्तारण संयंत्र से संबंधित 35, एल.सी.एस. से संबंधित 43, विद्युत शवदाह-गृह के संबंधित 28, नदी तट विकास से संबंधित 24 और विविध परियोजनाओं से संबंधित 32 योजनाएं शमिल थीं। कचरे की अवशेष मात्रा का मार्ग विक्षेपण तथा निस्तारण कार्य योजना के दूसरे चरण में पूरा करने का प्रस्ताव किया गया था। जहां तक उत्तर प्रदेश का सवाल है, कार्य योजना लागू होने के पूर्व 6 शहरों से कुल 680 एम.एल.डी. कचरा नदी में प्रवाहित होता था। कार्य योजना के प्रथम चरण में 431 एम.एल.डी. कचरे का मार्ग-विक्षेपण का प्रस्ताव किया गया तथा शेष मात्रा का अगले चरण में मार्ग विक्षेपित करने का लक्ष्य रखा गया।

गंगाजल की गुणवत्ता पर गंगा कार्य-योजना की योजनाओं का प्रभाव

जैविक ऑक्सीजन मांग (बी.डी.ओ.) तथा घुल्य ऑक्सीजन (डी.ओ.) जल के प्रदूषण के सूचक हैं। स्नान की आवश्यक जैविक ऑक्सीजन मांग (बी.डी.ओ.) तथा घुल्य ऑक्सीजन (डी.ओ.) की मात्रा क्रमशः 3 मिग्रा./ली. (अधिकतम) एवं 6 मिग्रा./लि. (न्यूनतम) होनी चाहिए। कार्य-योजना का प्रथम चरण लागू होने के पूर्व, गंगा नदी की निर्धारित लंबाई (हरिद्वार से वाराणसी तक) में जैविक ऑक्सीजन मांग (बी.डी.ओ.) का स्तर 15.50 से 4.8 मिग्रा./लि. था, यथा कानपुर 8.6, इलाहाबाद 15.50, वाराणसी 10.60 और हरिद्वार 4.8। कार्य-योजना का प्रथम चरण पूर्ण हो जाने पर जैविक ऑक्सीजन मांग (बी.डी.ओ.) की मात्रा नदी जल में कानपुर में 6.4 मिग्रा./लि., इलाहाबाद में 2.6 मिग्रा./लि., हरिद्वार में 1.6 मिग्रा./लि. तथा ऋषिकेश में 1.10 मिग्रा./लि. मापी गई। जहां घुल्य ऑक्सीजन (डी.ओ.) स्तर की बात है यह स्तर नदी जल में सभी जगह अपेक्षा से ऊपर है, 5 मिग्रा./लि.। (ये आंकड़े सन् 1998 की रिपोर्ट पर आधारित हैं)।

गंगा-कार्य योजना के प्रथम चरण से जो बात सामने आई वह है—ऊर्जा, जल तथा खाद के रूप में संसाधनों के घरेलू कचरे से प्राप्ति तथा चर्म उद्योगों से संबंधित कचरे से क्रोम नामक पदार्थ की प्राप्ति। ज्ञात हुआ है कि इलाहाबाद, वाराणसी तथा रामपुर में स्थापित मल-निस्तारण संयंत्रों की कुल ऊर्जा मांग का 33 प्रतिशत संयंत्रों से प्राप्त जैविक ईंधन (बायोगैस) से पूरा होता है। यह भी खुशी की बात है कि संयंत्रों से प्राप्त क्रोम की कीमत संयंत्रों की निर्माण लागत से अधिक पाई गई है।

यमुना-कार्य योजना

यमुना नदी यमुनोत्री ग्लेशियर से निकली है, जो उत्तराखंड राज्य के उत्तर काशी जिले में स्थित है। इस नदी की लंबाई इलाहाबाद में मिलने से पहले 1376 कि.मी. है। यह नदी भू-गर्भ जल एवं आर्थिक दृष्टिकोण से निम्न पांच जिलों के भागों से निम्नानुसार बहती है—

1. हिमालय भाग—172 कि.मी. (उत्पत्ति स्थान से तेज वाला बैराज तक, जो हरियाणा में है)
2. ऊपरी भाग—224 कि.मी. (तेजवाला बैराज से वजीराबाद बैराज तक)

3. दिल्ली भाग–022 कि.मी. (वजीराबाद बैराज से ओखला बैराज तक)
4. यूट्राफिकेटेड सेगमेंट–490 कि.मी. (ओखला बैराज से चंबल संगम तक)
5. जल मिश्रित भाग–172 कि.मी. (चंबल संगम से गंगा संगम तक)

उपर्युक्त दो, पहले और दूसरे भागों में, पानी की गुणवत्ता अच्छी समझी जाती है। तीसरा भाग बहुत ही खराब माना जाता है। इसका कारण हरियाणा द्वारा 73.94 प्रतिशत पानी की मात्रा सिंचाई के लिए है और दिल्ली में पीने के लिए 4.29 प्रतिशत पानी की मात्रा ली जाती है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश में सिंचाई के लिए 18.53 प्रतिशत पानी की मात्रा ली जाती है। दिल्ली भाग में वजीराबाद तथा ओखला बैराज के बीच पानी की गुणवत्ता निगम के निरर्थक तरल पदार्थ से पानी की उत्पत्ति की जाती है। चौथे भाग के अंतर्गत पृथ्वी पर बहने वाले पानी की मात्रा से पुनः नदी के पानी का तल मथुरा, वृंदावन एवं आगरा में बढ़ जाता है। इस तरह पानी की मात्रा पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी एवं पेड़-पौधों पर निर्भर करती है।

दोषाग्राही भाग एवं प्रदूषण के कारण

- **वजीराबाद से ओखला तक**–दिल्ली से घरेलू एवं औद्योगिक कूड़ा-कर्कट।
- **ओखला से वृंदावन तक**–दिल्ली से घरेलू निष्प्रयोज्य जल और सहारनपुर, गाजियाबाद, नोएडा आदि से औद्योगिक बहिष्प्रवाही।
- **वृंदावन से मथुरा तक**–वृंदावन एवं मथुरा से घरेलू दूषित पानी एवं रंगाई तथा छपाई की इकाइयों का औद्योगिक दूषित पानी।
- **मथुरा से इटावा तक**–आगरा एवं इटावा से घरेलू एवं दूषित जल।

नदी जब इटावा में चंबल नदी में मिलती है तो पानी की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार होता है। हिमालय के भू-भाग को छोड़कर नदी का पानी कहीं भी नहाने योग्य नहीं पाया जाता।

औद्योगिक प्रदूषण

यमुना-कार्य योजना के अंतर्गत 81 छोटी एवं मंझोली औद्योगिक इकाईयां चित्रित की गई हैं। इन 81 इकाइयों में से 22 हरियाणा में, 42 दिल्ली में और 17 उत्तर प्रदेश में स्थित हैं। इन औद्योगिक इकाइयों में कागज, चीनी, रासायनिक पदार्थ, चमड़ा एवं मदिरा आदि बनाए जाते हैं। इन तीन राज्यों में इन वस्तुओं का उत्पादन लगभग 628 मी. टन प्रतिदिन होता है, जो नदी की संपूर्ण जैविक ऑक्सीजन मांग का 70 प्रतिशत ही है। अतः इन औद्योगिक इकाइयों की निष्प्रयोजन सामग्री का धारा 1986 के अनुसार आस-पास की वस्तुओं में सुधार की दृष्टि से उपचार करना होगा।

व्यूह रचना

मल-उपचार हेतु मल-उपचार यंत्र लगाए जाना प्रस्तावित किया गया है। उपरोक्त के अतिरिक्त इस कार्यक्रम के लिए निम्न कार्य प्रस्तावित किए गए हैं–

1. नगर के प्रदूषित जल को रोकना और मोड़ देना।
2. कम लागत की मल-सफाई (सेनिटेशन योजना)
3. दाह-संस्कार स्थल का सुधार करना।
4. नदी के किनारे पेड़-पौधे आदि लगाना।
5. सामुदायिक हिस्सेदारी।
6. ठोस पदार्थों की संपूर्ण व्यवस्था।

विशेष आकृति

गंगा-कार्य योजना के प्रथम चरण की तरह द्वितीय चरण में भी कार्य-योजना के सभी कार्य किए जाएंगे, परंतु निम्न कार्यों में विशेष रूप से महत्व दिया जाना है—

- बाहरी (वनजसिद्ध सीवर की लागत को कम करने के लिए मल के आवागमन और अनुकूल उपचार हेतु मल का विकेंद्रीकरण करना प्रस्तावित किया गया है।
- मल के उपचार हेतु कम लागत वाले तरीकों, जैसे—वनरोपण, ऑक्सीकरण तकनीकी, जल सुधारक और यू.ए.एस.बी. तकनीक को उत्साहित किया जा रहा है।
- कार्य-योजना के अंतर्गत नदी में मिट्टी को जमने से रोकना, नदी के किनारों में लंबी दरारों का पड़ना, खेती-बाड़ी के लिए अंतिम छोर तक पानी की पहुंच, महामारी से बचना आदि कार्यों में जो बाधाएं आती हैं, उन्हें संबंधित प्रशासनिक मंत्रालयों के सहयोग से दूर करने पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

औद्योगिक नवीकरण

मल के उपचार का मुख्य उद्देश्य यह है कि मल में जो स्थाई सड़ने-गलने वाले कार्बनिक पदार्थ मौजूद रहते हैं, उनको मल से हटा दिया जाए, ताकि वे वायुमंडल को दूषित न बना सकें। इस तरह के उपचार के लिए अनेक तकनीकी तरीके हैं, जिनमें से आवश्यकतानुसार कोई भी तरीका अपनाया जा सकता है। इस कार्य के लिए ट्रिक्लिंग फिल्टर, ऑक्सीडेशन पांड आदि यंत्र उपलब्ध हैं। विभिन्न यंत्रों की दक्षता 70 प्रतिशत से 96 प्रतिशत तक होती है।

विभिन्न उपचारकर्ता इकाइयों की सापेक्षिक क्षमता

1. बारीक जाली	05 से 20	10 से 20	5 से 10
2. ठोस पदार्थ को तली में बैठाने वाले साधारण कूंड	35 से 65	30 से 70	25 से 40
3. रासायनिक पदार्थ का तली में बैठना	70 से 90	40 से 80	50 से 85
4. रिस-रिसकर छनने हेतु (मंद दर से)	70 से 90	80 से 95	70 से 95
5. रिस-रिसकर छनने हेतु (तेज दर से) (ठोस पदार्थों के साधारण ढंग से तली में बैठने के साथ)	65 से 92	80 से 95	70 से 95
6. गतिशील कीचड़ में साधारणतः ठोस पदार्थों का तली में बैठना	85 से 90	90 से 98	75 से 96

7. गतिशील कीचड़ में ऊंची दर से ठोस पदार्थों का तली में बैठना	65 से 96	80 से 96	65 से 96
8. बालू के माध्यम से छनने हेतु अल्पांतर छनना	85 से 96	95 से 98	90 से 95
9. रुके हुए अवमल का क्लोरीकरण		90 से 96	18 से 30
10. तालाब द्वारा उपचयन		99	80 से 90
11. खाई ट्रेंच द्वारा उपचयन	95		98
12. यू.ए.एस.बी.			50 से 70

समस्त उपचारकारक इकाइयों के उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तालाब द्वारा उपचार तरीका सबसे उचित है। बहुत-सी परिस्थितियों के अंतर्गत गर्म वातावरण में प्रचलित तालाबों के निर्माण के मुकाबले कुदरती तालाब काफी सस्ते पाए जाते हैं। कुदरती तालाबों के निर्माण हेतु आवश्यकतानुसार निपुण श्रमिकों की आवश्यकता नहीं होती और उनकी दिन-प्रतिदिन की कार्यक्षमता से कोई मतलब नहीं रहता। शहर के बाहरी क्षेत्र में इस कार्य पर व्यय न के बराबर ही आता है। मल उपचार हेतु किस तकनीक का उपयोग करना है, यह अधिकतर स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसके लिए गंभीरत पूर्वक विचार करना चाहिए तथा स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुए कम कीमत वाली तकनीक का उपयोग करना चाहिए। मल उपचार हेतु तालाब के उपयोग से लेकर मशीन के उपयोग तक विचार करना चाहिए।

अप सक्रियमल-निस्तारण हेतु मंदगति से छानने वाले छन्ने (फिल्टर), ऑक्सीकरण तालाब, घूमने वाले जैविक संयंत्र, स्थानीय आवश्यकता के अनुसार चुने गए। सभी संयंत्रों में घूमने वाले जैविक संयंत्र अधिक कामयाब नहीं पाए गए। नीरी में जो संयंत्र मल-निस्तारण हेतु लगाए गए थे, वे घूमने वाले जैविक संयंत्र, जो दूसरे देशों में 20 वर्ष से अधिक समय से लगाए जा रहे हैं, की तरह ही के हैं। इन इकाइयों में सपाट डिस्क का प्रयोग, रस्सी के बदले कीचड़ आदि को रोकने के लिए किया जाता है। स्वर्गआश्रम (ऋषिकेश, उत्तराखंड) में जो इकाई बिठाई गई, वह कामयाब नहीं है, चूंकि रस्सियां, उनको रोकने वाले बायोस्लिम आवश्यकता से अधिक थे। यह पाया गया कि रस्सियों के बीच जीव-जंतुओं तथा मल के साथ तैरने वाले पदार्थ फंस गए और उन्होंने गांठ का आकार ले लिया, जिसके कारण वायु मिश्रण (एरेशन) संपूर्ण रूप से नहीं हो पाया और इकाई की कार्यक्षमता घट गई।

कार्य संपादन एवं रख-रखाव

मल एवं कीचड़ के यंत्रों को सुचारू रूप से चलाने एवं उनका रख-रखाव करने की लागत, पानी के यंत्रों के मुकाबले अधिक आती है। आमदनी के जरिए हैं—भवन कर, सीवर कर, खाद की बिक्री, ट्रीटमेंट, प्लांट से मिलने वाला साफ पानी, (खाद और साफ पानी) दोनों में ही एन.पी.के. की मात्रा पेड़-पौधों की आवश्यकता से काफी अधिक होती है। इसके अलावा विद्युत, जो मीथेन गैस से और मछलियां जो ऑक्सीजन पाड से मिलती हैं। धनावंटन न मिलने के कारण पिछले दिनों ये समस्त साधन असफल रहे। वर्तमान में उत्तर

प्रदेश राज्य के छह नगरों में सीवेज पंपिंग स्टेशनों और उपचार इकाइयों को चलाने एवं उनके रख-रखाव की लागत 20 करोड़ रुपये से अधिक है। यह हानि उपचारित जल (ट्रीटेड वॉटर), खाद और होने वाली बिजली की आमदनी के बाद की है। द्वितीय चरण में इस कार्यक्रम के अंतर्गत कुछ और नगर जुड़ जाने से इन इकाइयों को सुचारू रूप से चलाने एवं इनके रख-रखाव की लागत बढ़ जाने की संभावना है। राज्य सरकारों के लिए अपनी आमदनी के जरियों से इन इकाइयों को चलाना एवं उनका रख-रखाव करना संभव नहीं है। अतः वायुमंडल शुद्ध करने के नाम से जनता एवं उद्योगों, जो नदी के किनारे स्थित हैं, पर सीवर एवं गृह कर अतिरिक्त लगाना चाहिए।

अन्य तरीका यह हो सकता है कि इन इकाइयों के चलाने तथा रख-रखाव का कार्य निजी संस्था को सौंप दिया जाए। अगर यह कार्य निजी संस्था को दिया जाता है तो खाद को बेचने से, पानी सिंचाई की सुविधा देने से, आमदनी बढ़ सकती है। इसका ज्वलंत उदाहरण निजी संस्था द्वारा सार्वजनिक शौचालय का सुचारू रूप से चलाना एवं उनका रख-रखाव है, जो गंगा कार्य-योजना के अंतर्गत बनाए गए हैं। सुलभ शौचालय सोशल सर्विस आर्गनाइजेशन तथा स्थानीय प्राधिकारी के बीच एक समझौता है, जिसके अंतर्गत सार्वजनिक शौचालयों को चलाना एवं उनका रख-रखाव की जिम्मेवारी सुलभ इंटरनेशनल की है। इस प्रकार स्थानीय निकाय अथवा राज्य सरकार पर इसका कोई अतिरिक्त भार नहीं पड़ता है। ये शौचालय प्रयोग एवं भुगतान (USE & PAY) आधार पर जनता के सहयोग से चलाए जाते हैं। इस तरह के कार्यों की, जनता एवं प्राधिकारियों द्वारा उसकी सफाई एवं अच्छे रख-रखाव के कारण प्रशंसा की गई है। प्रयोगकर्ताओं से शौचालय एवं स्नानघर के प्रयोग के लिए बहुत ही मामूली पैसा लिया जाता। पेशाबघर के प्रयोग के लिए कोई पैसा नहीं लिया जाता है। वृद्धों, अपंग तथा वे व्यक्ति जो पैसा देने में असमर्थ हैं, उनको ये सुविधाएं बिना पैसे के उपलब्ध कराई जाती हैं। उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए मल-उपचार-प्लांट भी निजी संस्था को रख-रखाव के लिए प्रायोगिक तौर पर सौंपे जाने चाहिएं।

जनता में इन कार्यों की जानकारी तथा उसका सहयोग

मल-उपचार के तकनीकी ज्ञान एवं लाभ की जानकारी, जिससे हमारी नदियां गंदगी से परे रहें, के संबंध में जनता द्वारा स्वीकार करने से पहले सभाओं तथा अन्य माध्यमों से उसका प्रचार किया जाना चाहिए। केंद्र सरकार ने इस बात की प्रशंसा की है कि गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से जनता को इसकी जानकारी दी गई है। गैर-सरकारी संस्थाएं इस बात की जानकारी स्कूल के प्रांगण में प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से बच्चों को तथा इश्तेहार, मीडिया तथा नुमाइश आदि में शिविर लगाकर आम जनता को दे रही है। आज भी जनता नदियों के घाट पर आबदस्त लेती है, जबकि घाट पर सार्वजनिक शौचालय बने हुए हैं। साथ-ही-साथ नदी में फूल-पौधे आदि भी फेंकते हैं, जिससे नदी में गंदगी फैलती है और पानी दूषित हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि गैर-सरकारी संस्थाएं इस कार्य में तुरंत लगाई जाएं, ताकि वे जनता को नदी के पानी को साफ बनाए रखने की जानकारी दें तथा प्रदूषण से बचने के उपाय भी बताएं। यह भी सुझाव दिया

जाता है कि अन्य स्वतंत्र संस्थाओं को यह कार्य सौंपा जाए कि गैर-सरकारी संस्थाएं, जो प्रदूषण रोकने हेतु कार्य कर रही हैं, उनका समय-समय पर मूल्यांकन करें ताकि किसी स्तर पर इस कार्य में शिथिलता न आए।

स्थानीय निकायों की कार्यक्षमता यथावत बनी रहे

स्थानीय निकायों/ संस्थाओं का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि नगर में जिन कार्यों का निर्माण हो चुका है, उनको चालू रखा जाए एवं उनका उचित रख-रखाव किया जाए। स्थानीय निकायों की आमदनी के साधन कम होने के कारण उनके लिए यह संभव नहीं है कि बढ़ते हुए व्यय को बर्दाश्त करें। राज्य के किसी भी स्थानीय निकाय में सॉफ्टवेयर संसाधन नहीं हैं। बहुत-सी स्थानीय संस्थाओं में आवश्यकतानुसार आदमी भी नहीं हैं। अगर कहीं हैं भी तो वे रोजाना के कार्यों में लगे रहते हैं और वे तनिक भी समय इन कार्यक्रमों में नहीं दे पाते हैं।

इन सब बातों को देखते हुए नीचे कुछ विकल्प दिए गए हैं–

- वर्तमान कार्यकर्ताओं को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाए कि जो कार्य पूर्व में पूर्ण हो चुका है, उनको सुचारू रूप से कैसे चलाया जाए और उनका रख-रखाव किया जाए कि पर्याप्त आमदनी हो।
- उत्तर प्रदेश जल निगम के पास संपूर्ण प्रणाली को चालू रखने एवं रख-रखाव करने हेतु काफी तकनीकी शक्ति है, परंतु वित्तीय माध्यमों की भी आवश्यकता है। यह तभी संभव हो सकता है, जब मकानों एवं उद्योगों पर अतिरिक्त कर लगाया जाए।
- तीसरा विकल्प यह है कि पूर्व में बनी संरचना को ठीक रूप से रखने एवं उसके सुचारू रूप से रख-रखाव का कार्य किसी निजी संस्था को सौंपा जाए और उस कार्य हेतु पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराई जाए।

लखनऊ,
उत्तर प्रदेश

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण

(जल के विशेष संदर्भ में)

डॉ. इंद्रबहादुर सिंह

प्रकृति-प्रेम एवं प्रकृति-संरक्षण की चिंतनधारा भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता है। भारतीय ऋषि-मनीषियों को प्रकृति एवं पर्यावरण प्रणाली का संपूर्ण एवं समग्र ज्ञान था। इन्हें प्रकृति, जीव के आपसी संबंधों तथा इन संबंधों से उत्पन्न परिणाम एवं प्रभावों का पूर्ण अनुभव था। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता के गरिमामय पद से अलंकृत किया जाता है और इसके पंचतत्वों से बने भौतिक घटक तथा वृक्ष-वनस्पतियों को देवतुल्य मानकर पूजा की जाती है।

वेद, रामायण एवं महाभारत में वृक्षों के प्रति मनोरम कल्पना की गई है। महाभारत के भीष्म पर्व में वृक्ष को सभी मनोरथों को पूरा करने वाला कहा गया है, 'सर्वकाम फलाः वृक्षा'। विष्णु धर्मसूत्र, स्कंदपुराण में वृक्ष के काटने को अपराध माना गया है। वृक्षों की भांति यहां पशु-पक्षियों के प्रति भी सुरक्षा एवं संरक्षण के साथ समुचित सम्मान का भाव सन्निहित है। वन्य पशुओं को भी यही सम्मान प्राप्त है।

प्रकृति और पर्यावरण की इन्हीं सब विशेषताओं के कारण यहां पर पर्यावरण-संरक्षण और इसके विकास के प्रति निरंतर जागरूकता बनी रही है, परंतु पर्यावरण के प्रति इस भावधारा के लुप्त होते ही शोषण और शोषक रूपी आत्मघाती मनोवृत्ति पनपी, जिसके अभिशप्त परिणाम से सभी अवगत हैं। यही कारण है कि आज स्वस्थ समाज के लिए पर्यावरण का अध्ययन नितांत आवश्यक हो गया है। मानव पर्यावरण का अभिन्न अंग है। प्रकृति और पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करने, इसे फिर से संरक्षित, सुरक्षित और समृद्ध करने के लिए हमें इनके प्रति फिर से भावनात्मक संबंध स्थापित करने होंगे। प्राचीन भारतीय संस्कृति की मान्यताओं को सामयिक परिप्रेक्ष्य में समय की कसौटी पर कसकर फिर से हमें 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'। का उद्घोष करना होगा। हमें प्रकृति और पर्यावरण के हर घटक को देवतुल्य मानकर इसको संरक्षित एवं विकसित करने का प्रयास-पुरुषार्थ करना होगा। यही युग का आह्वान है—

शांता द्यौः शांता पृथिवी
शांतमिदमुर्वशंतरिक्षम्।
शांता उदवंतीरापः
शांता नः संत्वोषधीः ॥

—अथर्ववेद, 21/9/1

अर्थात् अत्यधिक उष्ठाता वाला प्रकाश शांत हो, पृथ्वी की उथल-पुथल शांत हो, अंतरिक्ष शांत हो, उत्तम जल वाली उफनती नदियां शांत हों, औषधियां शांत हों। वेदकर्त्ता का कहना धरती पर और धरती तथा आकाश के मध्य जहां कहीं भी प्राकृतिक विपदाएं आएं, वे प्राणिमात्र के लिए शांतिदायक हों। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली समस्त औषधियां प्राणी के दुःख को शमन करने वाली हों अर्थात् ईश्वर ने जिस प्रकृति की सृष्टि की है, वह प्राणिमात्र के लिए सुखकारी हो। इस प्रकार का भावनात्मक संबंध हमें वेदों में देखने को मिलता है। प्रस्तुत लेख में अथर्ववेद को केंद्र में रखकर जल के संदर्भ में अध्ययन किया गया है।

'पर्यावरण' दो शब्दों--'परि' अर्थात् बाहर अथवा चारों ओर और 'आवरण' अर्थात् घेरा के योग से बना है। इस प्रकार पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ हुआ, 'वह आवरण जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है।' प्रकृति के अंतर्गत जो कुछ भी हमें दिखाई पड़ता है, वह पर्यावरण का एक अंग है। जल, वायु, मृदा, पर्वत, नदी, झील, तालाब, समुद्र, पेड़-पौधे एवं जीव-जंतु सभी पर्यावरण के ही अभिन्न अंग हैं। पर्यावरण प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। कोई भी जीव अपने पर्यावरण से अलग रहकर जीवन-यापन नहीं कर सकता। आवास, पोषण, जल, श्वसन, प्रजनन आदि प्रक्रियाएं संप्रति पर्यावरण से ही संभव हैं। 'किसी भी जीव व जीव समूह के चारों ओर विद्यमान परिस्थितियां, जो उस जीव या जीव-समूह को प्रभावित करती हैं, उसका पर्यावरण कहलाती हैं। मानव भी चूंकि एक जीवधारी है, अतः अन्य जीवों की भांति वह भी पर्यावरण का एक अभिन्न अंग है। भौतिक घटक जैसे खनिज, जल, वायु, मृदा, प्रकाश, तापक्रम आदि तथा वे सभी जैविक घटक जैसे सूक्ष्म या बड़े जीवधारी, जिनसे हमारा प्रत्यक्ष रूप से संपर्क होता है, हमारे पर्यावरण के महत्वपूर्ण भाग हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हमारा पर्यावरण वह भौतिक व जैविक संसार है, जिसमें हम निवास करते हैं।' वैदिक ऋषि अथर्वा, वाचस्पति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

ये त्रिसप्ताः परियंति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु में ॥

अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा और अहंकार—ये सात पदार्थ और सत्, रज तथा तम ये तीन गुण, इस प्रकार जगत् में तीन गुणा सात 'इक्कीस' देवता सब ओर आवागमन करते हैं। वाणी के स्वामी ब्रह्मा उनके अद्भुत बल को हमें प्रदान करें। इस मंत्र में प्राकृतिक शक्तियों से बल प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की गई है।

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता इस सदी की सबसे गंभीर समस्या का रूप धारण करके मानव के समक्ष प्रस्तुत है। मानव सृष्टि का सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान के द्वारा मनुष्य ने बहुत प्रगति की, किंतु प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन भी हुआ। आज स्थिति इतनी भयावह हो गई है कि समस्त पृथ्वी का अस्तित्व संकट में है। पर्यावरण संरक्षण हेतु धर्म एवं धार्मिक निर्देशों और विज्ञान का समन्वय करना अतिआवश्यक हो गया है। मानव ने बुद्धि एवं चिंतन द्वारा असीम ज्ञान अर्जन किया है। इस ज्ञान को दो धाराओं में विभक्त किया जा सकता है—

1. अंतर्बोध पर आधारित अध्यात्म अथवा धर्म।

2. अवलोकन, विश्लेषण एवं तर्क पर आधारित भौतिक जगत् से संबंधित निष्कर्ष, जिसे विज्ञान कहा जाता है।

संपूर्ण ब्रह्मांड को जानने-समझने की मानव की असीम जिज्ञासा के फलस्वरूप विज्ञान का उत्तरोत्तर विकास होता चला गया। मानव के चारों ओर जो कुछ भी भौतिक पदार्थ हैं, उनसे मिलकर उसका पर्यावरण निर्मित होता है, जिसमें जल, वायु एवं पृथ्वी तथा जैविक तत्व सम्मिलित हैं। आदर्श स्थिति में इन सबमें परस्पर संतुलन होना अनिवार्य है, तभी जीवन-चक्र सुचारु रूप से गतिमान रहते हुए विकसित होता रह सकता है। जल, वायु, मृदा (धरती) एवं जैविक तत्वों में किसी प्रकार का अवांछनीय भौतिक अथवा रासायनिक परिवर्तन जीवन-चक्र में व्यवधान उत्पन्न करता है। इसी को प्रदूषण कहा जा सकता है।

विज्ञान-विकास एवं पर्यावरण

विज्ञान की प्रगति के साथ उस अर्जित ज्ञान के उपयोग की कला ने तकनीक को जन्म दिया और इसी तकनीकी ज्ञान ने मानव को एक ऐसा अस्त्र दे दिया, जिससे वह इस धरती का असीम शक्ति-संपन्न, निरंकुश स्वामी बन बैठा, जिसके फलस्वरूप उसने पृथ्वी के संसाधनों का अविवेकपूर्ण दुरुपयोग किया। विकास की सामान्य अवधारणा अधिक-से-अधिक आर्थिक एवं भौतिक संपदा अर्जन करना एवं सुख-सुविधा युक्त जीवन माना गया है। अनियमित विकास के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने लगा। पृथ्वी अपने संसाधनों की एक सीमित मात्रा तक पर्यावरण को संतुलित रखने की क्षमता रखती हैं, परंतु इसके पश्चात् पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न होना अवश्यंभावी है और आज उसी विकट परिस्थिति से संपूर्ण विश्व आक्रांत है। निश्चित रूप से यह स्थिति एकाएक उत्पन्न नहीं हुई, वरन् बहुत धीमी गति से औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है।

धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण

मानव ज्ञान के अंतर्बोध पर आधारित धारा, जिसे अध्यात्म अथवा धर्म का नाम दिया गया है, मानवीय समस्याओं, विशेष रूप से पर्यावरण के संबंध में अत्यंत मुखर हैं। विशेष रूप से भारतीय चिंतन में पर्यावरण के संबंध में उस काल के मनीषियों की दूरदृष्टि आश्चर्यजनक है। वैदिक धर्म-शास्त्रों से लेकर जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम, सिख आदि धर्म में किसी-न-किसी रूप में ऐसी शिक्षाओं का समावेश है, जिनके अनुसार आचरण करने से पर्यावरण का संरक्षण स्वतः हो सकता है, क्योंकि धर्म और विज्ञान, ज्ञान की दो अलग धाराएं होने पर भी एक ही लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर हैं। धर्म के संस्दर्शन से विज्ञान विश्व को सुख-शांति देने की क्षमता रखता है।

इस दृष्टि से हिंदू धर्म-ग्रंथों एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि उनकी मूल भावना ही 'वसुधैव कुटुंबकम्' की अवधारणा पर आधारित है। हिंदू धर्म के मूल सिद्धांत वेदों पर आधारित हैं। वैदिककाल के मनीषियों को अपनी अंतर्चेतना से शायद यह ज्ञात था कि मानव अंततः अपने लिए भयंकर समस्याएं उत्पन्न कर लेगा, जिससे उसका विनाश हो सकता है। उन्होंने पहले ही इसके लिए सचेत कर दिया था।

प्रस्तुत लेख में 'जल' को अध्ययन का विषय बनाया गया है। यह अध्ययन अथर्ववेद पर आधारित है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण को महत्व प्रदान करना अत्यंत पुनीत कार्य माना गया है। यह किसी आराधना से कम नहीं है। पर्यावरणविद् एवं मनोविज्ञानी इस तथ्य से भलीभांति परिचित हैं कि मानवीय व्यक्तित्व के त्रिविध आधार—भौतिक, जैविक और मानसिक—तीनों परिवेश पर्यावरण से गहराई से जुड़े हैं। अंतःकरण का प्रकृति से संबंध है। आज इसी क्षेत्र में खोज जारी है। इसके निष्कर्ष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि पर्यावरण असंतुलन हमारे मन, भावना आदि को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहता।

आज हमारी धरती संकट में है। संकट में जल, वायु, मृदा आदि भी हैं और मानव भी संकट से घिरा हुआ है। आखिर ऐसा क्यों है? किस कारण से मानव के साथ पर्यावरण भी महामारी का दंश झेलने को विवश है। धरती माता एवं उनकी संतानें—जलचर, नभचर, उभयचर एवं पेड़-पौधे भी अपने अस्तित्व के खतरे से डरे-सहमे हुए हैं। यह सभी पर्यावरण के विनाश के कारण घट रहा है। विकास के नाम पर अपनी धरती के प्रत्येक कोने पर मानव ने विनाश ही किया है। नदी-नाले, पहाड़-पर्वत, जंगल-झुरमुट, सागर-महासागर, रेगिस्तान एवं यहां तक कि हमने वीरान ध्रुव प्रदेश को भी नहीं छोड़ा है। धरती पर जीवन को संचालित करने वाले लगभग दो-तिहाई कुदरती घटक छिन्न-भिन्न हो चुके हैं। प्रकृति का जर्रा-जर्रा जल, वायु और जीवन के लिए जरूरी पोषक तत्व प्रदान करने वाला पारिस्थितिकी-तंत्र बेहाल एवं बरबादी के कगार पर खड़ा हुआ है। धरती की कुल 24 पारिस्थितिकी-प्रणालियों में से 15 पूर्ण रूप से क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं। इससे पर्यावरण में बेहद असंतुलन आ चुका है। यही कारण है कि बरसात के मौसम में सूखा, गर्मी में बर्फ गिरती है, ठंड में लू और हवाएं चलती हैं। प्रकृति के साथ छेड़छाड़ से हमें तात्कालिक लाभ तो मिलता है, परंतु पर्यावरण विनाश के रूप में इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

जल-संसाधन

वर्षा के जल का कुछ भाग भूमि सोख लेती है, जिसे भूमिगत जल कहते हैं तथा शेष जल ढालू सतह से बहना प्रारंभ कर देता है। इसे बहता हुआ जल कहते हैं। जैसे—नदी, नाला, झरना, सोता आदि। इस प्रकार भू-पृष्ठ के ऊपर तथा भू-गर्भ के आंतरिक भागों में मिलने वाले समस्त जल-भंडारों को जल-संसाधन कहा जाता है। जल ही जीवन है। इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मानव, जल का उपयोग पीने के अतिरिक्त स्नान करने, कपड़े धोने, मछली पालने, सिंचाई, परिवहन आदि कई कार्यों में करता है। जल की सहायता से ही मानव मिट्टी पर कुछ पैदा कर सकता है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले जल-संसाधन दो श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं—

1. सामुद्रिक अथवा लवणीय जल,
2. स्वच्छ अथवा अलवणीय जल।

पृथ्वी का 3/4 भाग (72 प्रतिशत) समुद्री जल से घिरा है। यह विशाल एवं प्राचीनतम् पारिस्थितिकी-तंत्र है। इसकी औसत गहराई 3.5 किलोमीटर है। यह खारा है

तथा पीने योग्य भी नहीं है। यह खेती एवं उद्योग के लिए भी उपयुक्त नहीं है। यह लवणीय जल मछलियों एवं समुद्री जीवों के रहन-सहन तथा जल-परिवहन के लिए ही उपयुक्त है। जल की लवणता लगभग 3.5 प्रतिशत यानी एक लीटर जल में पैंतीस ग्राम लवण घुला होता है, जिसमें मुख्य सोडियम क्लोराइड (27 प्रतिशत) है। इसके अतिरिक्त अन्य उपस्थित लवण मैगनीशियम, पोटेशियम, कैल्शियम आदि हैं।

संपूर्ण पृथ्वी पर सिर्फ 3 प्रतिशत जल ही पीने योग्य है, जिसका 24.4 भूमि में, 0.4 प्रतिशत नदियों, झीलों, तालाबों, कुओं आदि में तथा 77.2 प्रतिशत ध्रुवों के हिमखंडों में बर्फ के रूप में जमा रहता है। इसका उपयोग पीने के अतिरिक्त कृषि व उद्योग के लिए होता है। सभी स्वच्छ जल में लवण का प्रतिशत 0.05 अथवा एक लीटर जल में 0.5 ग्राम से कम मिलता है। स्वच्छ जल का विशिष्ट गुण इसकी निम्न लवणता है।

जल-संसाधन का मानव के लिए उपयोग

जल-संसाधन के मानव के लिए निम्न उपयोग हैं—

1. जीवन के लिए जल स्वयं परम् आवश्यक पोषक तत्व है। अनेक भोज्य पदार्थों की प्राप्ति जल-संसाधनों से ही होती है। मत्स्य व्यवसाय जल पर ही आधारित है।

2. कृषि एवं उद्योग-धंधों का आधार है, सिंचाई के लिए आवश्यक है।

3. जीव-जंतुओं का आवास-स्थल है। इसके अतिरिक्त इन्हें अपनी वृद्धि एवं पोषण के लिए जल की आवश्यकता होती है।

4. अनेक प्रकार के खनिजों जैसे—नमक, चूना आदि की प्राप्ति होती है। जापान में मोतियों के लिए मोती सीप पाली जाती है।

5. जल-विद्युत तथा वाष्प-शक्ति के उत्पादन में सहयोग करता है।

6. यह जलवायु के नियमन और ऊष्मा के असीम भंडार का शोषण करने की क्रिया में भाग लेता है।

7. जल द्वारा वायुमंडल में आर्द्रता बढ़ती है तथा तापक्रम सामान्य बनाने में सहयोग करता है।

8. जलीय-पौधों की खेती करने के लिए एवं मवेशियों की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

9. शहर की नालियों की गंदगी को बहाने के लिए, नाव द्वारा यातायात के लिए, नहाने-धोने के लिए आवश्यक है।

10. जल दैनिक उपयोग की वस्तु है। पीने, भोजन बनाने के काम आता है।

11. समुद्र यातायात में भारी बचत करता है। नौपरिवहन मानव को यात्रा करने, भारी-से-भारी माल ढोने में सहयोग देता है।

12. समुद्र के गर्भ से करोड़ों टन तांबा, लोहा, निकिल, मैगनीज, मूंगा, कोयला, पेट्रोल, विभिन्न गैसें प्राप्त होती हैं। मछलियों के अतिरिक्त विभिन्न जलीय वनस्पतियां जैसे—शैवाल आदि भारी मात्रा में मौजूद हैं। कुछ अन्य बहुमूल्य धातुएं जैसे—सोना, चांदी आदि समुद्र की गहराई में चट्टानों के रूप में मिलते हैं। अभी समुद्री जल से सीमित मात्रा में नमक, आयोडीन, मैगनीशियम आदि ही निकाले जा रहे हैं।

अथर्ववेद में वर्णित जल

अथर्ववेद में सबसे अधिक जल को महत्व दिया गया है। वैदिक ऋषि कहता है, 'यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि सभी जड़-चेतन का धारण और पोषणकर्ता पर्जन्य सृष्टि का पिता और समस्त तत्वों से परिपूर्ण पृथ्वी इसकी माता है। इनसे ही सृष्टि उत्पन्न होती है। बादल जड़-चेतन को धारण और पोषण करने वाला है। मेघ सैकड़ों सामर्थ्यवाला और आत्मबल की शक्ति से युक्त है। जल के अधिष्ठाता देवता बादल का आह्वान करता हुआ ऋषि कहता है कि जो समुद्र का पान करके, वृष्टि कर हवि प्रदान करता है और जहां बहने वाली जलपूर्ण नदियों और जलाशयों के जल का सेवन कर हमारी गौएं तृप्त होती हैं। जल के औषधीय महत्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि रोग-निवारक और पुष्टिवर्धक पदार्थ जिस जल से उत्पन्न होते हैं, वह जल अमृतरूपी औषधियों से परिपूर्ण है। उसके दिव्य गुणों से गौएं और अश्व बलवान् होकर उपकारी होते हैं–

अप्स्वंतरमृतमप्सु भेषजम्।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ
वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥[1]

जल सुख प्रदाता है, परब्रह्म से साक्षात्कार करने, सुख का उपभोग करने और रमणीय तत्वों का दर्शन करने के लिए वैदिक ऋषियों ने उसकी प्रार्थना की है। वे कहते हैं कि हम वृद्धि प्रदान करने वाले उस जल का सान्निध्य पाना चाहते हैं, जो अन्नादि उत्पन्न करके प्राणिमात्र को पोषण देने वाला है। प्राणिमात्र की व्याधियों का औषधियों द्वारा निवारण करने वाला जल दिव्य गुणों से युक्त एवं सुख-साधनों का स्वामी है। हम उस औषधीय जल की उपासना करते हैं–

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महेरणाय चक्षसे।
तस्मा अरं गमाम के यस्यक्षयायजिन्वथ।
आपो जनयथा च नः।
ईशाना वार्याणं क्षयंतीश्चर्षणीनाम्।
अपो याचामि भेषजम् ॥[2]

जिस प्रकार माताएं प्रेम से अपनी संतानों को दूध पिलाकर पुष्टि प्रदान करती हैं, उसी प्रकार जल में जो तत्वरूप परम् कल्याणकारी रस है, उसकी प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। दिव्यगुण युक्त जल अभीष्ट को सिद्ध करने वाला, सुखकारी, सेवन योग्य, शांति प्रदान करने वाला है। इसमें सब दिव्य औषधियां विद्यमान हैं। सौर जगत् को आनंद पहुंचाने वाला और कल्याण करने वाला अग्नि देवता भी उसमें अवस्थित है–

अप्सु मे सोमो अब्रवीदंतदर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्व शंभुवम् ॥[3]

रोगों के निवारणार्थ औषधियां प्रदान करने वाला जल, मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखने वाला है। वैदिक ऋषि सिंधुद्वीप जल की प्रार्थना करता हुआ कहता है– निर्जल देश का जल हमारे लिए सुखकारी हो, जल वाले देश का जल सुख प्रदान करने वाला हो। भूमि

आदि खोदकर निकाला गया कुएं का जल तथा घड़े में भरकर लाया गया जल सुख प्रदान करे। इसी प्रकार वर्षा से प्राप्त हुआ जल भी कल्याणकारी हो—

शं न आद्यो धन्वन्याः
शमु संत्वनूप्याः
शं नः खनित्रिमा आपः।
शमु याः कुंभ आभृताः
शिवा नः संतु वार्षिकी॥

अथर्ववेद का शंताति ऋषि जल की प्रार्थना करता हुआ कहता है—जो जल सुवर्ण की आभा से युक्त, अत्यंत रमणीय और पवित्र है, जिससे अग्नि और सविता देवता उत्पन्न हुए हैं तथा जो श्रेष्ठ वर्ण वाला जल अग्निगर्भ है, वह हमारी व्याधियों का शमन करके हम सबको सुख और शांति प्रदान करने वाला हो। जिस जल में स्थित रहकर वरुण देव सत्य और असत्य का निरीक्षण करता चलता है और जो सुंदर वर्ण वाला जल अग्नि को गर्भ में धारण करता है, वह हमारे लिए शांति का दाता हो। इंद्रादि देवता स्वर्ग में जिस जल के सारभूत तत्व का तथा सोमरस का सेवन करते हैं, जो अंतरिक्ष में विविध रूप से वास करता है, वह अग्निगर्भा जल हम सबको सुख और शांति प्रदान करने वाला हो। हे जल के अभिमानी देवताओ! अपने कल्याणकारी नेत्रों द्वारा तुम हमें देखो और अपनी देह द्वारा हमारी त्वचा का स्पर्श करो। अमृततुल्य, तेजस्वी, शुद्ध और पवित्र जल हमें सुख और शांति प्रदान करने वाला हो—

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकायासु जातः सविता यास्विग्निः।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवंतु॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवंतु॥
यासां देवा दिवि कृण्वंति भयं या अंतरिक्षे बहुधा भवंति।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवंतु॥
शिवेन मा चक्षुषा पयश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे।
घृतश्रुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवंतु॥[4]

औषधि के निमित्त प्रयोगात्मक जल सुख प्रदान करने वाला तथा रोगों का शमन करने वाला है। अथर्वा ऋषि शत्रुओं के विनाश के लिए जल से प्रार्थना करते हुए कहते हैं—हे जल! तू अपने भीतर की ताप शक्ति के द्वारा उस शत्रु को शांत कर जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं। तू अपनी हरण शक्ति के द्वारा उसकी शक्ति को हर ले। हे जल! जो हमसे द्वेष करता है तथा जिससे हम विद्वेष करते हैं, तू अपने भीतर की प्रज्ज्वलन शक्ति के द्वारा उस शत्रु को जला दे। हे संतप्त करने वाले जल! तू अपनी इस शक्ति के द्वारा उस मनुष्य को शोक-संतप्त कर, जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं। हे जल! जो हमसे द्वेष के कारण शत्रुता रखता है अथवा जिससे हम भी द्वेष करते हैं। हे जल! जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं, उस शत्रु को तू अपनी शक्ति द्वारा तेजविहीन कर दे—

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति
तपत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥

आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति
हरत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म ॥
आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥
आपो यद् वः शोचिस्तेन ते प्रति
शोचते योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥
आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं
कृणतु योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म ॥[5]

सभी व्याधियों की औषधि में जल प्रमुख है। औषधि रूप में (स्नानादि के द्वारा) यह अनेक रोगों का शमन करता है। वैदिक ऋषि रोगियों से कहता है कि हे रोगिन! ऐसे जल से तेरे सभी क्षेत्रीय रोगों का शमन हो—

आप इद वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चंतु क्षेत्रियात् ॥[6]

जल को नदी भी कहते हैं। नदी क्यों कहते हैं, इस पर प्रकाश डालते हुए ऋषि कहता है—अच्छी प्रकार से सदा गतिशील रहने वाले जल! मेघ के ताड़ित करने पर इधर-उधर नाद करने के कारण तेरा नाम 'नदी' पड़ा। यह नाम तेरे अनुरूप ही है—

यददः संप्रयतीरहावनदता हते।
तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वा नामानि सिंधवः ॥[7]

जल का पर्यायवाची 'आपः' है। इसके संदर्भ में भृगु ऋषि ने कहा है—वरुण द्वारा प्रेरित होकर जब तू नाचता हुआ-सा मिलकर चलने लगा, तब इंद्र ने तुझे प्राप्त किया, इसी कारण तेरा नाम 'आपः' पड़ गया—

यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत।
तदाप्नोदिंद्रो वो यतीस्तस्मादापो अनुष्ठनः ॥[8]

'वारि' के संदर्भ में कहा गया है—अपनी इच्छा के विरुद्ध इंद्र ने अपनी शक्ति के द्वारा तेरा वरण किया, अतः हे देवनशील जल! तेरा नाम 'वारि' हुआ—

अपकामं स्यंदमाना अवीवरत् के हि किम्।
इंद्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्वार्नाम वो हितम् ॥[9]

'उदक' के विषय में ऋषि ने कहा है—हे प्रभावित होने वाले जल! इंद्र ने एक बार तुझ पर आधिपत्य जमाया। इंद्र के महत्व के कारण तूने स्वयं को बड़ा मानकर उदन किया, तभी से तेरा नाम 'उदक' पड़ा—

एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यंदमाना यथावशम्।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥[10]

जल का आह्वान करता हुआ ऋषि कहता है कि हम अनुभव करते हैं और उच्चारित शब्द हमारे कानों में आ रहे हैं। हे सौंदर्यमय आभायुक्त जल! अमृत के समान तेरा सेवन करने के उपरांत हमें बड़ी शांति की अनुभूति हो रही है। हे जल! तुम्हारा हृदय सुवर्ण के समान है। हे प्रभावित धाराओ! ऋतु तुम्हारा पुत्र है। हे बल प्रदान करने वाली धाराओ! तुम यहां आगमन करो, ताकि हम तुम्हें प्राप्त कर सकें—

आदिल् पश्याम्युत वाश्रृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥
इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरी।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥[11]

ऋषि आकाश में स्थित जल देव से वृष्टि करने के लिए कहता है—हे वायो! हे सूर्य! हमारी हवि को तुम ग्रहण करो। आकाश में स्थित जलदेव वृष्टि के द्वारा इस भूमि को सिंचित करो—

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्।
यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुपसिञ्चतम् ॥[12]

सृष्टि के आदि में प्रकट होकर जलों ने जगत् की रक्षा की। हिरण्यगर्भ से इन्होंने जगत् की रक्षा की। उन जलों के गर्भभूत प्रजापति को ये वैदिक ऋषि हविर्दान से संतुष्ट करते हैं—

आपो अग्रे विश्वभावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः।
यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥[13]

जल की महत्ता का वर्णन करता हुआ वैदिक ऋषि कहता है—हे राजन्! सविता देवता तुझे उसी प्रकार समृद्ध करे, जिस प्रकार तू अपने बंधुओं को समृद्ध करता है। हे रसयुक्त दिव्य जल! तू अपने तेज से इसका अभिषेक करे। सागर में टापू की भांति व्याघ्र तथा सिंह जैसे पराक्रमी पशुओं को जल की यह दिव्यधाराएं परम् सौभाग्य के निमित्त प्रेरित तथा विभूषित करती हैं—

अभित्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वासविता करत् ॥
एना व्याघ्रं परषस्वजानाः सिंह हविंति महते सोभगाय।
समुद्रै न सुभुवस्तस्थिवांसं ममृज्यंते द्वीपिनमप्स्वंतः ॥[14]

जिस जल के रस से औषधियों की उत्पत्ति होती है, मरुद्गण उस जल की वर्षा कराएं। जल की धाराएं पृथ्वी को समृद्ध करें तथा उससे विविध प्रकार की औषधियां उत्पन्न हों—

समीक्षयंतु तविषाः सुदानवोऽयां
रसा ओषधीभिः सचन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महंतु भूमिंपृथग्
जायंतामोषधयो विश्वरूपाः ॥[15]

ऋषि शंताति दिव्य जलों का आह्वान करते हुए कहते हैं—उत्तम कार्यों को करने वाले हम गतिमान जल-धाराओं में निरंतर प्रवाहित दिव्य जलों का आह्वान करते हैं। चारों ओर संव्याप्त, निरंतर गतिमान जल की धाराएं क्रियाशक्ति उत्पन्न करके हमें इन अनर्थों से मुक्ति दिलाएं, जिससे हम श्रेय प्राप्त कर सकें। सभी मनुष्य अपने-अपने नियत लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के कार्य सविता देवता की प्रेरणा से संपन्न करें। कल्याणप्रद औषधियां और उनको पुष्टि प्रदान करने वाला जल हमारे निमित्त कल्याणकारी एवं पापनाशक हो। बर्फ से ढंकी हुई पर्वतों की पापनाशक जलधाराएं गमन करती हुई समुद्र में जाकर मिल जाती हैं। ये धाराएं हमारे हृदय की अग्नि को शांत करने वाली औषधियां

प्रदान करें। हमारे चक्षुओं, एड़ियों और पांवों के अग्र भागों को जो-जो व्याधियां पीड़ित कर रही हैं, उन सब पीड़ाओं को वैद्य रूपी जल हमारे शरीर से निकाल बाहर करे। निरंतर बहती हे जलधाराओं! यह समुद्र तुम्हारा स्वामी और तुम इसकी पत्नियां हो। तुम रोगनिवारक औषधियां प्रदान करो, जिससे आरोग्य प्राप्त कर हम बल प्रदान करने वाले अन्नादि का उपभोग करने में समर्थ हों—

सस्त्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुपह्वये ॥
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चंवितः प्रणीतये।
सद्यः कृण्वंन्त्वेतवे ॥
देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वंतु मानुषाः।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥
हिमवतः प्रस्त्रवंति सिंधौ सहम सङ्गमः।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृदद्योत भेषजम् ॥
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत्।
आपस्तत् सर्व निष्करन् भिषजां सुभिषक्तभाः ॥
सिंधुपत्नीः सिंधुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुजजामहै ॥[16]

अथर्ववेद के ऋषि शंताति जल की स्तुति करते हुए कहते हैं—जल की दिव्यता अपने दिव्य स्रोत से भी सभी पापों का शोध करे। मातृरूप पोषक जल हमें पवित्र बनाए। घृतरूपी जल हमारी अशुद्धता का निवारण करे। इस जल के द्वारा हम पवित्र होकर ऊर्ध्वगामी हों—

आपो अस्मान् मातरः सूदयंतु धृतेन नो धृतष्व पुनंतु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहंति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥[17]

जल रोगों को दूर करने वाला है। अथर्वा ऋषि कहते हैं—जल रोग-निवारक ही नहीं, बल्कि जल ही रोगों के मूल कारण का नाश करने वाला है। सभी के लिए यह जल एक हितकारी औषधि है। वह जल तेरे रोगों का भी शमन करे—

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वंतु भेषजम् ॥[18]

वर्षा के जल की महिमा का वर्णन करते हुए भृगु ऋषि कहते हैं—वृक्ष के अग्र-भाग से हम पर गिरने वाली वर्षा के जल की बूंद वृक्ष के फल के समान ही है। अंतरिक्ष से गिरी बूंद वायु के फल के समान है। शरीर के अंग पर अथवा पहने हुए वस्त्र पर उसका स्पर्श हुआ है, वह प्रक्षालनार्थ प्रयुक्त जल के समान पाव देवता को हमसे दूर करे—

यदि वृक्षादभ्यपप्तम् फलं तद्
यद्यंतरिक्षात् स उ वायुरेव।
यत्रास्पृक्षत् तन्वो यच्च वासस,
आपो नुदंतु निर्ऋतिं पराचै ॥[19]

वह अमृत वर्षा उबटन, सुगंधित द्रव्य, चंदनादि सुवर्ण धारण तथा वर्चस की भांति समृद्धि रूप है। यह पवित्र करने वाली है। इस जल के स्पर्श मात्र से ही पाप देवता और शत्रु हमसे दूर-दूर रहें—

अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव।
सर्वा पवित्रा विततध्यस्मत् तन्मातारोन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥[20]

वैदिक ऋषि जल से शक्ति की याचना करता हुआ कहता है—सूर्य के सान्निध्य में रहने वाला वाष्पीकृत जल यज्ञ की सफलतापूर्वक संपन्नता के निमित्त शक्ति प्रदान करे। ऋषि आगे कहता है—हम उस जल के अधिष्ठाता देवता का आह्वान करते हैं, जो समुद्र का पान करके, वृष्टिकर हवि प्रदान करता है और जहां बहने वाली जलपूर्ण नदियों और जलाशयों के जल का सेवन कर हमारी गौएं तृप्त होती हैं—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥
अपो देवीरूप ध्वये यत्र गावः पिबंति नः।
सिंधुभ्यः कर्त्वं हविः ॥[21]

ऋषि बादल से प्रार्थना करता हुआ कहता है—अपने में जल को धारण करने और अकाल में नीचे न गिरने देने वाले हे पर्जन्य! सत्पुरुषों की रक्षा करने वाले हम तुझे नमन करते हैं। तू हमारे भीतर तप को एकत्रित करने वाला तथा पातकों पर वज्र से प्रहार करने वाला है। तू हमारे पुत्र-पौत्रादि को सुखी करता हुआ हमें भी सुख प्रदान करे। ऊपर से नीचे न गिरने देने वाले हे पर्जन्य! तुझ सहित हम तेरे वज्र को भी नमस्कार करते हैं। तू जिस हृदयरूपी गुहा में स्थित रहा है, वह हमें ज्ञात है। सागर में नाभि की भांति तू स्थित रहता है—

नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि।
मृउया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥
प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये वपुषे च कृण्मः।
विद्म हे धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अंतर्निहितासि नाभि ॥[22]

वैदिक ऋषि बादलों के विषय में कहता है—हे पर्जन्य देवता! गर्जनशील मरुद्गण तेरे स्तोता हों। बरसते हुए मेघों की धाराओं से तू पृथ्वी को भिगो दे। हे मरुद्गणो! सूर्य के ताप द्वारा मेघों को तुम समुद्र के ऊपर की ओर प्रेरित करो। बैलों के समान गर्जनशील जल के प्रवाह से तुम भूमि को तृप्त करो। हे गर्जनशील पर्जन्य देवता! तू औषधि रूप वनस्पतियों में गर्भ की स्थापना करता है। तेरे द्वारा प्रेरित मेघ जलपूर्ण वृष्टि को लाएं, तब अपनी रश्मियों को सूक्ष्म करता हुआ सूर्य लोप हो जाए—

गणास्त्वोप गायंतु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक्।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षंतु पृथिवीमनु ॥
उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवी तर्पयंतु ॥
अभिक्रंद स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्धि।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥[23]

ऋषि कहता है—हे मनुष्यो! श्रेष्ठ दानकर्त्ता तुम्हें तृप्त करें। अजगर के समान मोटे जल-प्रवाह प्रकट हों तथा वायु के द्वारा प्रेरित मेघ पृथ्वी पर उत्तम प्रकार से बरसें। सभी दिशाओं में विद्युत चमके और वायु संचरण करे, तब वायु द्वारा प्रेरित मेघ-भूमि की ओर अनुकूलता से आगमन करें। हे उत्तम दानशील मरुतो! अजगर की भांति आकार वाला जल-प्रवाह विश्व को शांत (तृप्त) करे और तुम्हारे द्वारा प्रेरित मेघ भूमि की रक्षा करे—

सं वोऽवंतु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षंतु पृथिवीमनु ॥
आशामाशां वि द्योततां वाता वांतु दिशोदिशः।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यंतु पृथिवीमनु ॥
आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवंतु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावंतु पृथिवीमनु ॥[24]

प्रजापालक सूर्य! तू समुद्र के जल को प्रेरित करता हुआ समुद्र को गति प्रदान करे। उसके द्वारा अश्व की भांति गति वाले तथा बरसने वाले मेघों से जल की वृष्टि हो। हे पर्जन्यदेव! तू इन गर्जनशील मेघों सहित हमारे सम्मुख आगमन कर। वर्षा का जल लेकर सूर्य तिरछी वर्षा करता हुआ प्राणों को तृप्त करे। उस समय ध्वनि करने वाले जल-प्रवाह चलें। हे वरुण! तू भी पृथ्वी पर आने वाले मेघों को जल से अलग कर। फिर तृणहीन भूमि पर श्वेत भुजा वाले मेंढक आकर शब्द करें। गुप्त अवस्था में रहने वाले व्रती-तपस्वियों के समान रहने वाले मंडूकगण पर्जन्य को प्रसन्न करने वाले वचनों का उच्चारण करें—

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाय ईरयन्नुदधिमर्दयाति।
प्रप्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसंतु गर्गरा अपां वरुणाव।
नीचीरपः सृज वदंतु पृश्निबाहवो मंडूका इरिणानु ॥
संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जयजिंवतां प्र मंडूका अवादिषु ॥[25]

अपने जलरूपी महान् कोश को मुक्त करने वाले हे पर्जन्य देव! तू उसे नीचे की ओर बहा, ताकि ये जल से परिपूर्ण नदियां बाधित न होती हुई पूर्व दिशा की ओर बहने लगें। द्यावापृथ्वी को तू जलराशि से युक्त कर, जिससे पशुओं को उत्तम पेय और हमें धान्यादि तथा औषधियां प्राप्त हों—

महांतं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनंदिनीरोषधयो भवंतु ॥[26]

नदी की स्तुति करता हुआ ऋषि कहता है—पारस्परिक भगिनी तुल्य स्नेह से जल को प्रवाहित करने वाली पवित्र नदियां अन्न और बलादि से मनुष्यों का कल्याण करती हैं—

एवा महान् बृहद्दिवोअथर्वावोचत् स्वां तंवमिंद्रमेव।
स्वसारौमातरिभ्वरी अरिप्रेहिन्वंति चैने शवसा वर्धयंति च ॥[27]

ऋषि ने केवल जल, पर्जन्य एवं नदी का ही वर्णन नहीं किया, अपितु उन्होंने बिजली के विषय में भी लिखा है—विद्युत (देवी) को, गड़गड़ाहटरूपी ध्वनि और अशनि को, गरजने वाले मेघों को हमारा नमन है। हे विद्युत देवी! तू दुःखी करने वाले दुर्जनों आदि को अपने वज्र के घातक प्रहार से दूर कर—

नमस्तेऽस्तु विद्यते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येन दूडाशे अस्यसि ॥[28]

आक्रमणकारियों का संहार करने के लिए इंद्र आदि समस्त देवताओं ने शक्तिशाली और दिव्य बाण के रूप में तेरी रचना की है। आकाश में चमकने और गर्जना करने वाली हे अशने! हम तुझे नमन करते हैं। तू हमें सुखी और भय-मुक्त कर—

यां त्वा देवा असृजंत विश्व
इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृउ विदथे गुणाना
तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥[29]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक ऋषियों ने पर्यावरणीय प्रकृति घटक जल में, वर्षा में, नदियों में, पर्जन्य में और बिजली एवं समुद्र में देवत्व की अवधारणा विकसित की है, क्योंकि देव तत्व मनुष्य के कल्याण के लिए हैं। यह जल अपने विभिन्न रूपों में जड़-चेतन के कल्याण के लिए है। संपूर्ण प्रकृति समस्त प्राणियों के लिए है, वे अपने लिए नहीं हैं। उनकी पूजा का महत्व इसीलिए है। इसी देवत्व की भावना को विकसित करना तथा अपने मनोगत पर्यावरण की दूषित भावना को बदलना होगा।

पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में अथर्ववेद में दिए गए निर्देशों तथा इसी संदर्भ में वैज्ञानिक विचारों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि मानव ने न तो वैदिक निर्देशों का ही पालन किया और न वैज्ञानिक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष को ही कभी गंभीरता से ग्रहण किया। वैदिक निर्देश केवल कर्मकांडों तक सिमटकर रह गए एवं वैज्ञानिक चिंतन तथा निष्कर्ष वाद-विवाद का मुद्दा भर बनकर रह गए। वैदिक निर्देशों के अनुसार जल की जीवनदायिनी शक्तियों की पूजा का विधान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि हम जिसे पूजते हैं, उसके प्रति हमारी भावना आदर एवं सम्मान से युक्त होती है। उसे कलंकित व प्रदूषित करने के बारे में कोई सोच भी नहीं सकता।

इसी प्रकार वैज्ञानिकों ने भी सारी परिस्थितियों का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण करने के उपरांत समय-समय पर चेतावनी दी है, परंतु विकास की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सब कुछ भुला दिया गया। वास्तविकता के धरातल पर देखा जाए तो असली समस्या की जड़ नीति-निर्धारण के स्तर से आरंभ होती है। नीति-निर्धारण राजनीतिज्ञों का कार्य होता है और राजनीतिज्ञों का लक्ष्य अपने छोटे से कार्यकाल, जो चार-पांच वर्ष का होता है, के सफलतापूर्वक पूर्ण करने का होता है। उसके बाद उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं बनती। उनका लक्ष्य सिर्फ उस सीमित कालखंड में अच्छे-से-अच्छे परिणाम देने तक सिमटे रहते हैं।

आज मानव-सभ्यता उस बिंदु से आगे निकल चुकी है, जहां से वापस लौटना बेहद कठिन है। परंतु फिर भी हताश होकर बैठना उचित नहीं है। मानव-जाति सामूहिक रूप से स्थिति की गंभीरता को समझते हुए धर्म-पथ पर चलते हुए वैज्ञानिक चेतावनियों के आधार पर अपनी दिशा का निर्धारण करे। इसी में सबकी भलाई है और मानव का अस्तित्व भी इसी पर निर्भर है।

अंत में यही कहूंगा कि अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी, जल, अंतरिक्ष, स्वर्गलोक, दिशा-उपदिशा तथा ऋतु विभाव इस त्रिवृत्त के संयोग से हमें लक्ष्य (प्रदूषण-मुक्त पर्यावरण) तक पहुंचा दें—

अग्निः सूर्यश्चंद्रमा भूमिरापो
द्यौरंतरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना
अनेन मा त्रिवृत्ता पारयंतु ॥[30]

संदर्भ

1. अथर्ववेद, भाग-1, प्रस्तुति–आचार्य वेदांत तीर्थ, मनोज पब्लिकेशंस, 761, मेन रोड, बुराड़ी, दिल्ली-110084, पृ. 35, संस्करण 2010
2. वही, पृ. 35-36
3. वही, पृ. 36
4. वही, पृ. 61
5. वही, पृ. 87-88
6. वही, पृ. 112
7. वही, पृ. 121
8. वही, पृ. 121
9. वही, पृ. 121
10. वही, पृ. 121
11. वही, पृ. 122
12. वही, पृ. 127
13. वही, पृ. 150
14. वही, पृ. 159
15. वही, पृ. 169
16. वही, पृ. 290-291
17. वही, पृ. 308
18. वही, पृ. 333
19. वही, पृ. 355
20. वही, पृ. 255
21. वही, पृ. 35
22. वही, पृ. 43-44
23. वही, पृ. 169-170
24. वही, पृ. 170
25. वही, पृ. 171
26. वही, पृ. 171
27. वही, पृ. 214
28. वही, पृ. 43
29. वही, पृ. 43
30. वही, पृ. 266

प्राचार्य,
एस.एस. भगवान सिंह महाविद्यालय,
पतार कलां, दुबार कलां, मिर्जापुर-231211

भू-जल संकट : कृषि के लिए घातक

रमाकांत सिंह चंदेल

हमारी अनादिनिधना, अक्षुण्ण व दिव्य भारतीय संस्कृति में आदिकाल से ही जल व कृषि दोनों का ही पर्याप्त स्थान व महत्व रहा है। जहां हमारे प्राचीनतम साहित्य वेदों व कालांतर में अष्ठादश पुराणों के कथा-प्रसंगों के अनुसार एक ओर हमारी समूची सृष्टि को क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान् श्रीमन्नारायण के नाभिकमल से उत्पन्न, श्री ब्रह्माजी द्वारा रचित व सृजित माना जाता है, वहीं भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा लोकरक्षण व कृषि-संस्कृति के उन्नयन से संबंधित विविध अनुपम प्रसंग हमारे अष्ठादश पुराणों में यत्र-तत्र-सर्वत्र प्राप्त होते हैं। जहां एक ओर शापित सगर पुत्रों व संपूर्ण मानव-मात्र के कल्याणार्थ महाराज भगीरथ द्वारा पावन सलिला गंगा को धराधाम पर अवतरित कराने को प्रसंग शताब्दियों से हमारे मानस-पटल पर अंकित होता आया है, वहीं दूसरी ओर महाराज जनक द्वारा सपत्नीक कृषि-कर्म करते समय प्राप्त पुत्री अवनिसुता जगज्जननी माता सीता को संपूर्ण जगत् के जन्म, पालन व संहार का कारण बताते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी ने उनकी निम्न श्लोक द्वारा वंदना की है–

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोहं रामवल्लभाम् ॥

–मानस, बालकांड, 5

किसी सुविख्यात लेखक ने कृषि को किसी राष्ट्र के उन्नयन का मूल व दृढ़ आधार माना है–

कृपा कृष्ण की हलधर का हल,
कर्मभूमि पर नूतन हल चल... ।

किंतु इनके महत्व को अविच्छिन्न बनाए रखने हेतु हमें आधुनिक परिवर्तनशील पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में इनके (कृषि-संपदा व जल-संपदा के) संरक्षण पर पुनर्विचार करना होगा। विशेषकर आधुनिक समय में उत्पन्न भू-जल संकट से जिस चिंताजनक स्थिति का जन्म हो रहा है, वह संपूर्ण मानव समाज के लिए प्रतिकूल होने के साथ ही हमें यह सोचने पर विवश करती है कि भारत व समूचे विश्व के वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों व समाजशास्त्रियों द्वारा इस दिशा में पर्याप्त चिंतन व जागृति फैलाने की परम आवश्यकता है।

जल को जीवन का पर्याय माना जाता है। सुप्रसिद्ध गीतकार व संगीतकार रवींद्र जैन ने एक ही वाक्य में यह सिद्ध कर दिया है। उनका कथन है–

जल जो न होता तो, ये जग जाता जल।

संपूर्ण जीवधारियों अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षियों व वृक्ष-लताओं के शरीर का लगभग 90 प्रतिशत भाग जल-निर्मित है। जीवन की समस्त क्रियाओं हेतु जल की परम आवश्यकता है। जलाभाव में इन क्रियाओं का निष्पादन सर्वथा असंभव ही है। भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से इस पृथ्वी का 3/4 भाग जलावृत्त है, जिसमें पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल राशि का 97 प्रतिशत भाग मौजूद है। किंतु वह जल अत्यधिक लवणयुक्त होने के कारण सुपेय नहीं है, न ही उपयोगी है। पृथ्वी का शेष 1/4 भाग भू-आच्छादित है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से प्राप्त जानकारी के आधार पर भूमि पर कुल पानी की मात्रा का केवल 3 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध है। वैज्ञानिकों का मत है कि पानी की यह मात्रा हिमाच्छादित हिमशिखरों पर बर्फ के रूप में, नदियों में, भू-जल के रूप में तथा वायुमंडल में वाष्प के रूप में विद्यमान रहती है।

वर्तमान में कृषि, पशु-पालन, उद्योग-धंधों तथा पेय जल हेतु नदी-जल व भू-जल का ही सर्वाधिक उपयोग हो रहा है। उक्त उपयोगार्थ नदी जल से पर्याप्त पूर्ति न होने के फलस्वरूप भू-जल का पर्याप्त दोहन किया जाता है। फलतः भू-जल स्तर 1 से 1.5 मीटर प्रति वर्ष के हिसाब से नीचे गिरता जा रहा है। परिणामस्वरूप भू-जल के ऊपरी जल स्रोत सूख रहे हैं। अतः जल की आवश्यकता की पूर्ति हेतु भू-जल के निचले एवं गहरे जल स्रोतों का दोहन किया जा रहा है, इनमें अधिकांश जल लवणीय गुणवत्ता का मिल रहा है। इसके कारण मृदा स्वास्थ्य खराब होने के कारण फसलोत्पादन व मानव स्वास्थ्य पर इसके अवांछित परिणाम स्पष्टः अनुभव किए जा रहे हैं। इसके साथ ही पानी के भूमि से निकालने की लागत में वृद्धि से फसल की उत्पादन लागत बढ़ती जा रही है।

अतः आज हमारे समक्ष यह विचारणीय प्रश्न है कि हम अपने भू-जल स्रोतों को किस प्रकार सुरक्षित रखकर कृषि, मानव व पशुधन के स्वास्थ्य को सुरक्षित बनाए रखें। विज्ञानवेत्ता मानते हैं कि निःसंदेह 'पौधों का प्रथम भोज्य' जल ही है। अतः जल संरक्षण सर्वोपरि है। जल की प्रत्येक बूंद का हमारे जीवन व हमारी कृषि-संपदा रक्षण में बड़ा महत्व है।

भू-जल स्तर के गिरने के कारण

इस समय देश के सभी भागों में जल-स्तर दिन-पर-दिन गिरता जा रहा है। जिसके लिए निम्न कारण जिम्मेदार बताए जाते हैं—

1. अधिक उत्पादन और कम पानी चाहने वाली फसल-प्रजातियों का प्रादुर्भाव—फसलों की नवीनतम बौनी एवं संकर प्रजातियों में सिंचाई जल की अधिक आवश्यकता होती है। इन प्रजातियों में अधिक उत्पादन हेतु अधिक मात्रा में पोषण-तत्वों की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति रासायनिक उर्वरकों द्वारा की जाती है, परिणामस्वरूप अधिक सिंचाई जलावश्यकता के चलते अधिक मात्रा में भू-जल का दोहन या नदियों एवं नहरों के पानी का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है, जो भू-जल स्तर के पतन के मूल रूप से उत्तरदायी है।

2. अधिक पानी चाहने वाली नकदी फसलों का उगाया जाना—वर्तमान में हम कृषि के मूलभूत सिद्धांत 'फसल चक्र' (Crop Rotation) को प्रायः विस्मृत करते जा रहे हैं। अतः हमारे कृषक बंधु केवल अधिक मात्रा में धनार्जन की इच्छा से अधिक पानी चाहने

वाली नकदी व अन्य फसलों जैसे—आलू, गन्ना, धान, गेहूं इत्यादि का अधिकाधिक उत्पादन कर रहे हैं। परिणामस्वरूप इन उत्पादों हेतु अधिक सिंचाई जल की आवश्यकता की पूर्ति की इच्छा से भू-जल का दोहन हो रहा है, किंतु दुःख का विषय है कि इसके फलस्वरूप गिरते भू-जल स्तर पर बहुत कम लोगों का ध्यान है।

3. बाढ़ सिंचाई विधि का प्रयोग करना—आजकल कृषि के यंत्रीकरण के फलस्वरूप जल के दोहन में अंधाधुंध वृद्धि हो रही है, क्योंकि पंपसैट व ट्यूबवैल द्वारा कम लागत व कम समय में अधिक जल बाहर निकाला जाता है, जिसके कारण हमारे कृषक कृषि-फसलों में बाढ़ सिंचाई (Flood Irrigation System) का प्रयोग करते हैं, अतः इससे भू-जल स्तर अधिक तीव्र गति से पतन को प्राप्त हो रहा है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारणों की संक्षिप्त चर्चा अनिवार्य है—

1. जीवांश खाद (Organic Manures) के प्रयोग का अभाव—जीवांश खादों का प्रयोग न करने से मृदा में उपलब्ध जीवांश कार्बन की मात्रा 0.0 प्रतिशत से 0.5 प्रतिशत के बीच रह गई है, जबकि स्वस्थ मृदा के लिए जीवांश कार्बन की मात्रा 0.8 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए। खेद का विषय है कि मृदा की जल-धारण क्षमता घटाने के कुप्रभाव से भू-जल का दोहन हो रहा है।

2. भू-जल का रिचार्ज न किया जाना—सामान्यतः हरित क्रांति 1966-67 के पश्चात् उच्च उपज हेतु अधिक जल की मांग के फलस्वरूप भू-जल दोहन बढ़ गया है, किंतु जल की मांग के अनुपात में भू-जल को पुनर्भरित (रिचार्ज) नहीं किया जा रहा है। राष्ट्रीय आंकड़ों के अनुसार देश में जल विकास की स्थिति 58 प्रतिशत है। अर्थात् 100 लीटर भू-जल के दोहन के उपरांत जल स्रोत को मात्र 58 लीटर जल ही लौटाया जा रहा है।

3. प्रतिवर्ष वर्षा की मात्रा का उत्तरोत्तर घटना—ग्लोबल वार्मिंग के परिणामस्वरूप जलवायु में निरंतर परिवर्तन हो रहा है, फलतः वर्षा की मात्रा निरंतर घटती जा रही है, परंतु कृषि फसलों, मानव व पशुओं तथा उद्योगों हेतु भूल-जल का उपयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। साथ ही मानव, पशुओं व उद्योगों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

4. कृषकों को निःशुल्क विद्युत उपलब्ध कराया जाना—कुछ राज्यों की सरकारें कृषक भाइयों को निःशुल्क विद्युत उपलब्ध करा रही हैं। खेद का विषय है कि हमारे कृषक अनियंत्रित रूप से भू-जल का दोहन कर उसका अपव्यय करते जा रहे हैं।

भू-जल स्तर के पतन से हानियां

1. भू-जल स्रोतों के सूखने की पूर्णतः संभावना,
2. कृषि फसलों व शाकाहार के लागत मूल्य में वृद्धि की संभावना,
3. हरे चारे की समस्या,
4. दुग्ध उत्पादन में घटोतरी की संभावना।

भू-जल स्तर के पतन को रोकने के उपाय

1. फसल चक्र (Crop Rotation) के सिद्धांत को आत्मसात किया जाए।
2. ड्रिप एवं बौछारी सिंचाई विधि एवं क्यारी विधि अपनाई जाए।

3. जीवाश्म खादों की मात्रा बढ़ाई जाए।
4. भू-जल स्तर को (रेन वॉटर) से रिचार्ज किया जाए।
5. तालाबों, पोखरों एवं झीलों में रेन वॉटर हार्वेस्टिंग की जाए।
6. पूर्व प्रधानमंत्री श्रद्धेय श्री अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा प्रारंभ की गई (रिवर लिंकेज योजना, 2002) को अपनाया जाए।
7. प्रत्येक गांव, शहर, सड़क के किनारे तथा बंजर भूमि में अधिकाधिक वृक्षरोपण किया जाए।
8. कृषकों को निःशुल्क विद्युत की आपूर्ति न कर उनसे यथोचित विद्युत मूल्य अवश्य ही लिया जाए।

निष्कर्षतः यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि हर परिस्थिति में सिंचाई जल का समुचित प्रयोग एवं प्रबंधन फसलोत्पादनार्थ किया जाए, तभी हमारे देश व परमपावनी पूजनीया वसुंधरा माता की गोद में खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, चारा फसलों, शाकाहार इत्यादि के उत्पादन में निरंतर वृद्धि होगी। कृषि संस्कृति के रक्षण व भू-जल के संरक्षण के प्रति सारे विश्व को प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता है। अपने द्वारा इस दिशा में कृत प्रयत्नों के फलस्वरूप ही हम यह गर्वोक्ति करने में समर्थ हो सकते हैं–

हरे खेत, नहरें नद निर्झर, जीवन शोभा उर्वर।

–सुमित्रानंदन पंत

अतः आइए, हम सभी समवेत प्रयत्नों से भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पर्यावरण के प्रति अपने पुनीत कर्तव्य का शुद्ध अंतःकरण से निर्वाह करें।

एन.टी.पी.सी., राजभाषा, विभाग,
उज्ज्वलनगर, सीपत (छ.ग.)

जल-प्रबंधन

रामकुमार सिंह

जल का जीवन से गहरा संबंध है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का जितना प्रयोग हो रहा है, उससे अधिक जल प्रदूषित हो रहा है और व्यर्थ बहकर बरबाद हो रहा है। इसलिए आज जल-प्रबंधन की महती आवश्यकता है।

भारत में जल-संसाधनों के प्रबंध हेतु निम्न प्रयास किए जा रहे हैं–

1. जल-संसाधन प्रबंधन एवं प्रशिक्षण योजना–सन् 1984 में भारत सरकार केंद्रीय जल आयोग ने सिंचाई अनुसंधान एवं प्रबंध-संगठन की स्थापना की। इस परियोजना का मुख्य उद्‌देश्य सिंचाई प्रणालियों को सुधारना था। सिंचाई संस्थाओं को कुशल बनाना तथा अनुरक्षण करना इसका उद्‌देश्य था।

2. राष्ट्रीय जल-प्रबंध परियोजना–भारत सरकार ने सन् 1986 में विश्व बैंक की सहायता से राष्ट्रीय जल-प्रबंध परियोजना प्रारंभ की है। इस परियोजना को भारत के कृषि-क्षेत्र को विकसित करने के उद्‌देश्य से प्रारंभ किया गया।

3. प्रौद्योगिकी हस्तांतरण–केंद्रीय जल आयोग ने राज्यों के प्रतिनिधियों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का कार्यक्रम प्रारंभ किया। इसके अंतर्गत राज्यों से आए प्रतिनिधियों को कार्यशाला के आयोजन, सेमिनार, श्रम इंजीनियर के आदान-प्रदान इत्यादि कार्यक्रमों द्वारा भारत के विभिन्न राज्यों में प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण किया जाता है।

4. अधोभौमिक जल संसाधनों के लिए योजना–केंद्रीय जल आयोग ने भारत के उन क्षेत्रों में जहां अधोभौमिक जल के उपयोग के क्षेत्र में अधिक कार्य नहीं हुआ, जैसे भारत का पूर्वी क्षेत्र, वहां नलकूप निर्माण और उन्हें क्रियाशील बनाने के लिए केंद्रीय योजना तैयार की है।

5. नवीन जल-नीति–भारत सरकार ने 31 मार्च, 2002 से नवीन जल-नीति लागू की। इसके अंतर्गत जल-संरक्षण को एक मुख्य विषय के रूप में अगली पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित किया गया।

जल संरक्षण एवं प्रबंधन की प्रणालियां

1. जिन क्षेत्रों में ढाल अधिक नहीं है, उन क्षेत्रों में (मंटुआर बंध) पुश्ते लगाए जा सकते हैं, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में किसान आपसी सहयोग से जो ऊपर, वह पुश्ता लगा लं तो उनके खेत में जब पानी भर जाएगा तो अतिरिक्त पानी नीचे के खेत में जाकर भरने लगेगा।

2. भूमिगत बांधों का निर्माण किया जाए, जिससे गैर-मानसून महीनों में भूमिगत (नाली) के जल को नदी के चैनलों में जाने से रोका जाए, इससे नदी का जल प्रदूषित होने से रोका जा सकेगा।
3. छोटे और बड़े पोखर और तालाबों का निर्माण किया जाए, जो 10 मीटर तक गहरे हों। जहां वर्षा कम होती है, उन क्षेत्रों में ऐसे आधे हेक्टेयर क्षेत्रफल के तालाबों में जल ग्रहण की क्षमता 50 हेक्टेयर तक होनी चाहिए।
4. जो क्षेत्र दूर-दूर तक फैले हैं, उन क्षेत्रों में विशेष प्रकार के तालाब बनाए जा सकते हैं, जिनमें पानी का रिसाव होता है, इन्हें सतही परिस्रवण ताल कहते हैं।
5. यदि क्षेत्र के कुएं का जल स्तर घट रहा है तो पंप की सहायता से नदी का पानी कुओं में भर दिया जाए।
6. जहां बड़ी नदियां हैं और प्रतिवर्ष बाढ़ आती है, ऐसे क्षेत्रों में नदियों की बाढ़ को उन क्षेत्रों में मोड़ देना चाहिए, जिन क्षेत्रों में कुएं और तालाब हों।
7. देश के कृषकों को यह बात समझाई जाए कि जो वर्षा का जल खेतों में भर जाता है, उन्हें खेतों से बाहर बहकर जाने से रोकने का उपाय वे स्वयं करें।
8. गांव अथवा नगर की नालियों को नदी के संपर्क से दूर रखने के लिए लोगों को जागरूक करने की योजना अमल में लाई जाए।

वर्षा जल का संरक्षण

भू-जल के अत्यधिक दोहन के कारण देश के अनके क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में पेयजल संकट उत्पन्न हो जाता है। प्रतिवर्ष भूमि पर गिरने वाले वर्षा जल में से 4000 घन कि.मी. अर्थात् दो-तिहाई भाग व्यर्थ बह जाता है। इसे रोकने के लिए ऊपरी छत से वर्षा-जल के संरक्षण की योजना बनाई गई है।

आजकल भवन या मकान की छतें आर.सी.सी. या आर.बी.सी. तकनीक से बनाई जाती हैं, जिससे छत पर वर्षा जल का प्रभाव न पड़े। अब ऊपरी छत से वर्षा जल के संरक्षण हेतु भवन की छत से पाइप लगा दिया जाता है। भूमि पर पाइप द्वारा छत वाले पाइप को जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार से पाइप का एक किनारा वर्षा जल प्राप्त करने के लिए छत से जुड़ा होता है, वहीं उसका दूसरा सिरा भवन से कुछ आगे एक कुएं से जुड़ा होता है। यदि कुआं न हो तो पिच गड्ढा खोदा जाता है या पुनर्भारण खाईं खोद दी जाती है। इस तकनीक द्वारा वर्षा का जल भूमि के अंदर पहुंचा दिया जाता है, इससे भूमिगत जल स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

समय-समय पर भूमि के पाइप वाले सिरे की सफाई आवश्यक है, ताकि वह जाम न हो जाए। इस प्रकार समय-समय पर इसका निरीक्षण किया जाना चाहिए।

जलभारण प्रबंधन (Watershed Management)

जलभारण या वाटरशेड भूमि पर एक जल निकास क्षेत्र है, जो वर्षा के बाद बहने वाले जल को किसी नदी, झील, बड़ी धारा अथवा समुद्र में मिलाता है। यह किसी भी आकार का हो सकता है। इस उपाय के अंतर्गत कृषि भूमि के लिए ही नहीं, अपितु भूमि

जल-संरक्षण, अनुपजाऊ एवं बेकार भूमि का विकास, वनरोपण और वर्षाकाल के जल का संचयन कार्य किया जा सकता है।

जल-भारण (वाटरशेड) प्रबंधन के उद्देश्य

1. वाटरशेड प्रबंधन द्वारा प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, जल और कृषि-संपदा का संरक्षण और विकास किया जा सकता है।
2. वाटरशेड प्रबंधन द्वारा भूमि पर बहने वाले वर्षा जल को रोकने की क्षमता बढ़ाई जा सकती है। कृषि की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।
3. वाटरशेड प्रबंधन द्वारा वर्षा जल का संचयन करके जल पुनर्भरण का कार्य किया जा सकता है।
4. वाटरशेड प्रबंधन द्वारा वर्षा जल का संचयन करके हरियाली, वृक्ष, फसलें और घास उगाई जा सकती है।
5. वाटरशेड प्रबंधन द्वारा ग्रामीण मानवशक्ति और जल ऊर्जा-प्रणाली को विकसित किया जा सकता है।
6. वाटरशेड प्रबंधन द्वारा मानव समुदाय की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है।

जल-भारण (वाटरशेड) कार्यक्रम : भारत के संदर्भ में

वाटरशेड कार्यक्रम को भारत में तीन चरणों में क्रियान्वित किया जा सकता है–

प्रथम चरण

प्रथम चरण के वाटरशेड कार्यक्रम में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं–

1. वाटरशेड कार्यक्रम के लिए भौगोलिक क्षेत्रों का पता लगाना, उनका वर्गीकरण करना और प्राथमिकता निश्चित करना।
2. नवीन तकनीक जैसे सुदूर संवेदन द्वारा वाटरशेड कार्यक्रम का मास्टर प्लान तैयार करना।
3. आधारभूत वैज्ञानिक कार्य जैसे कंपोस्ट का प्रयोग इस कार्यक्रम में सम्मिलित करना।
4. समुचित लाभकारी निवेश का प्रारंभ करना। उदाहरणतया बैलों द्वारा हल खींचना और गाड़ी चलाना।
5. वाटरशेड संबंधी समस्त आंकड़ों को आम आदमी की पहुंच तक लाना।
6. वाटरशेड कार्यक्रम के प्रसार के लिए समुचित प्रशिक्षण प्रदान करना और जन-संचार माध्यम जैसे समाचार-पत्र, आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा वाटरशेड कार्यक्रम के जन-जागरूकता अभियान को बढ़ाना।

द्वितीय चरण

वाटरशेड कार्यक्रम हेतु भारत के संदर्भ में निम्न तथ्य महत्वपूर्ण हैं–

1. वाटरशेड कार्यक्रम में समुचित ग्रामीण प्रौद्योगिक-प्रणाली को अपनाना।
2. ऊपरी प्रदेशों और क्षेत्रों में वाटरशेड प्रबंधन करना।
3. निचले क्षेत्रों एवं तटीय प्रदेशों में इस कार्यक्रम को संचालित करना।
4. क्षेत्रीय स्तर पर डाटा बैंक स्थापित करना।
5. सक्षम कृषि-औद्योगिक आधारभूत ढांचे का निर्माण करने का प्रयास, जिसमें बिजली आपूर्ति और उन्नत बीज शामिल हैं।
6. वाटरशेड प्रबंधन के संकल्पनात्मक पहलू जैसे खाइयों की लंबाई और चौड़ाई के बीच का अंतर पर अनुसंधान।
7. वाटरशेड कार्यक्रम पर एक साथ कानून बनाना और उन्हें लागू करना।

तृतीय चरण

वाटरशेड कार्यक्रम के तीसरे चरण में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं–

1. वाटरशेड कार्यक्रम में स्थानीय लोगों को शामिल करना।
2. प्रत्येक वाटरशेड कार्यक्रम में तकनीकी इकाइयों को शामिल करना।
3. वाटरशेड कार्य में उपयुक्त प्रौद्योगिकी तथा स्वस्थ पर्यावरण को प्राथमिकता देना।
4. वाटरशेड कार्यक्रम का केंद्रीकरण करने के लिए एक प्राकृतिक संसाधन मंत्रालय का गठन करना।
5. क्षेत्र के लोगों को पिछड़ेपन, सामाजिक अवरोधों तथा धार्मिक अनुकरण से बचाना।

निष्कर्ष

वाटरशेड प्रबंधन योजनाओं द्वारा ही भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश की जनता के लिए भविष्य की भोजन की मांग को पूरा किया जा सकेगा। यह कार्यक्रम मनुष्य को जल के कारण उत्पन्न खतरों, रोग और दोषपूर्ण जल पीने के दुष्प्रभाव से बचाता है। वाटरशेड कार्यक्रम द्वारा हरियाली और वन-क्षेत्र को बढ़ाया जा सकता है, जो भविष्य के पर्यावरणीय संतुलन के लिए भी आवश्यक है।

गुरुद्वारा के पास,
दयालबंद, बिलासपुर

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण और वनों की उपयोगिता

डॉ. श्याम निर्मम

भारतीय संस्कृति मूलतः आरण्यक संस्कृति रही है, अरण्य अर्थात् वन। जन्म से ही मनुष्य का नाता प्रकृति से जुड़ जाता है। इसी कारण प्रकति की आराधना तथा पर्यावरण का संरक्षण करना हमारा पुरातन भारतीय चिंतन है। प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना से युक्त जीवन व्यतीत करने वाले वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों—वसुंधरा, सूर्य, वायु, जल आदि की भावपूर्ण स्तुति की है। अथर्ववेद के भूमिसूक्त के स्रष्टा वैदिक ऋषि ने सहस्रों वर्ष पूर्व उद्घोषित किया था, 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' अर्थात् वसुंधरा जननी है, हम सब उसके पुत्र हैं। विश्व में विद्यमान प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक वनस्पति एवं प्रत्येक स्पंदनशील प्रजाति पर प्रकृति का बराबर स्नेह है। शायद यही प्रमुख कारण है कि वनों में निवास करने वाले वनवासी-आदिवासी लोगों का पर्यावरण के प्रति आदर व स्नेह सभ्यता की शुरुआत से रहा है।

मनुष्य तथा उसके पर्यावरण दोनों परस्पर एक-दूसरे से इतने संबंधित हैं कि उन्हें अलग करना कठिन है। एक प्रकार से मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है। 'ऋग्वेद' चारों वेदों में सबसे प्राचीन है, जिसमें सबसे अधिक मनुष्य तथा उसके पर्यावरण को महत्व दिया गया है। 'ऋग्वेद' में 10,427 सूक्त तथा ऋक हैं, जो पद्य के रूप में निहित हैं। इसमें जो ऋचाएं हैं, वे सभी ईश्वर की स्तुति के लिए हैं। इसमें देवताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—जल, वायु और भूमि देवता। पृथ्वी का अर्थ होता है—पहाड़, पौधे, मरुस्थल, पर्वत, महासागर, नदियां, झीलें, वृक्ष, जीव-जंतु, चट्टानें, खनिज पदार्थ, जलवायु, मौसम और ऋतुएं आदि। स्थली-खंड को भूमि अर्थात् सर्वव्यापी मातृभूमि या मां कहते हैं। यह मनुष्य के कल्याण के लिए सभी प्रकार की चीजें हमें देती हैं। इसे मानव जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष माना जाता है। एक प्रकार से मनुष्य पृथ्वी की देन है, परंतु वह उसके बिना जीवित भी नहीं रह सकता। एक ओर पृथ्वी मनुष्य की मां है तो दूसरी ओर वह उसका स्वामी भी है। वैदिक युग में मनुष्य कार्य और मनोरंजन पृथ्वी की शुभकामनाओं एवं आशीर्वाद प्राप्ति के लिए किया करता था, क्योंकि वह उसे अपना घर, परिवार तथा अपना शरीर मानता था।

पौधे और वन मनुष्य के जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी हैं, जिनका उपयोग वह आदिकाल से करता आ रहा है। हमारे ऋषियों तथा मुनियों को वृक्षों और वनों के महत्व की अनुभूति थी, जिसके कारण उन्होंने उसे धर्म में सम्मिलित करके मनुष्य द्वारा उनके संरक्षण पर बल दिया। अनेक पौधे, वृक्ष तथा वन्य-जीव मनुष्य-जीवन के लिए कितने उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं, इसे 'ऋग्वेद' के ऋषियों ने ज्ञान के रूप में हमारे समक्ष रखा

है। वे यह जानते थे कि प्राकृतिक स्रोतों का मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्व है। यदि इन्हें कोई हानि पहुंचती है तो एक तरह से मानव समाज का ही अहित होगा। शायद यही कारण है कि हिंदू परिवारों में पौधे उनके जीवन के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किए गए, जिसके अंतर्गत अनेक वृक्षों की पूजा के साथ-साथ उनको पूजा की सामग्री के रूप में भी प्रयुक्त किया गया। कुछ पौधों को औषधि कहकर उन्हें बीमारियों के उपचार हेतु काम में लिया गया। 'ऋग्वेद' में पौधों को लगाना एक नियमित कार्य बताया गया है, जिससे पृथ्वी पर स्वर्ग बनता है। पौधों को देवी-देवताओं से भी संबंधित किया गया, जिससे उपयोगी पौधों तथा वृक्षों का संरक्षण हो सके। 'तुलसी' को भगवान राम, शिव, विष्णु, कृष्ण, लक्ष्मी तथा जगन्नाथ से जोड़कर उसे महाऔषधि बताया गया। 'वत्ता' को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा काल के रूप में माना गया। 'अशोक वृक्ष' को बुध, इंद्र, आदित्य और विष्णु के रूप में अभिहित किया गया। 'पीपल' को विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा आदि के रूप में मानकर औषधि के रूप में उसको प्रयुक्त किया गया। इसी तरह 'आम' को गोवर्धन, लक्ष्मी तथा बुध के रूप में स्वीकार करके इसके पत्तों को पूजा में रखने का प्रावधान और हवन में समिधा के रूप में इसका प्रयोग किया गया। 'कदंब' वृक्ष को कृष्ण से और 'बेल' को शिव, महेश्वर, दुर्गा, सूर्य और लक्ष्मी से जोड़ा गया। इसे औषधि के रूप में भी प्रयुक्त किया गया। पौधों और वृक्षों की धार्मिक रूप से पवित्रता और उसकी उपयोगिता को देखकर उसके संरक्षण पर भी महत्व दिया गया। प्राचीन काल में हरे वृक्षों को काटना वर्जित था। उस समय का समाज यह भलीभांति जानता था कि पौधों को काटना और वनों को नष्ट करना, मनुष्य के जीवन के लिए अत्यंत हानिकारक है, क्योंकि इनके अभाव में बीमारियां फैलती हैं और पर्यावरण प्रदूषित होता है।

पर्यावरण संरक्षित रह सके, शायद इसीलिए विश्व पृथ्वी दिवस (22 अप्रैल), विश्व ओजोन दिवस (16 सितंबर), वन-महोत्सव दिवस (28 जुलाई) और विश्व पर्यावरण दिवस (5 जून) आदि जैसे महत्वपूर्ण आयोजन निर्धारित कर उनके उद्देश्यों को आम जनता तक पहुंचाकर विश्व-स्तर पर पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण के प्रति चेतना/ जागृति पैदा करना और विभिन्न उपायों की खोज करना है। विश्व में पर्यावरणीय समस्याओं और प्रदूषण से संबंधित समस्याओं के निराकरण के लिए 5 जून, 1972 को स्वीडन के स्टॉकहोम नगर में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा एक पांच स्तरीय मॉडल तैयार किया गया, जिसके अंतर्गत–

1. 'भूमंडलीय' में पृथ्वी (ओजोन परत) के उपायों पर विचार करना

2. 'महाद्विपीय' स्तर पर अम्ल वर्षा, विशेष प्रकार के कीटनाशक, हाइड्रोकार्बन का निष्कासन निहित है।

3. 'आंचलिक' (नदीय) भू-जल स्रोतों का संरक्षण पर विचार

4. 'धरातलीय' (क्षेत्रीय) औद्योगिक प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जनसंख्या वृद्धि तथा अन्य प्रदूषणों पर विचार करना एवं

5. मॉडल में गरीबी व अविकास, आवास, स्वच्छता व स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं पर विचार करना।

इस तरह 'विश्व पर्यावरण दिवस' को हम तभी सार्थकता दे सकेंगे जब विश्व स्तर पर आम जनता भी इसके निर्धारित उद्देश्यों को समझकर पर्यावरण संतुलन-संरक्षण करने की चेतना को अपने भीतर जागृत कर सके।

आज प्राकृतिक संसाधनों का दोहन जिस तरह से और जिस स्तर पर किया जा रहा है, उससे पर्यावरण को निरंतर खतरा बढ़ता जा रहा है। देखा जाए तो हमें सब कुछ प्रकृति द्वारा ही दिया गया है। इसीलिए मानव के लिए बेहद उपयोगी तथा प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों को 'प्राकृतिक संसाधन' कहा गया है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं—जल, वायु, मृदा, खनिज, खाद्य संसाधन और वन संसाधन आदि। प्राकृतिक संसाधन प्रकृति द्वारा निर्मित और प्रकृति से ही हमें प्राप्य हैं। इन्हें 'नवीनीकरण संसाधन' और 'अनवीनीकरण संसाधन' का नाम भी दिया गया है। ऐसे संसाधन जिन्हें उपयोग के उपरांत पुनःउत्पादित किया जा सके या जो पुनःप्रयोग में लाए जा सकें, उन्हें 'नवीनीकरण संसाधन' कहा जाता है, जैसे—वन, कृषि क्षेत्र, मृदा, जीव-जंतु, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि। 'अनवीनीकरण संसाधन' के अंतर्गत उन संसाधनों को माना जाता है, जो एक बार दोहन करने पर उनकी पुनः पूर्ति या पुनःनिर्माण संभव नहीं हो पाता, क्योंकि उनका निर्माण पृथ्वी की भीतरी सतहों में करोड़ों वर्षों में होता है। ऐसे 'अनवीनीकरण संसाधनों' में कोयला, पेट्रोलियम, धातुएं आदि माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त 'मानव संसाधन' वे हैं, जिन्हें मानव स्वयं प्राकृतिक तत्वों को अपने ज्ञान, श्रम व तकनीकी आधार पर संसाधन के रूप में प्रयुक्त करता है।

पृथ्वी पर प्राकृतिक संसाधनों का वितरण असतत् एवं अनियमित है, जिसका आकलन प्राप्त करने की क्षमता और तकनीकी योग्यता पर निर्भर करता है। बढ़ती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से प्राकृतिक संसाधनों के भंडार तीव्र गति से कम होते जा रहे हैं, जिसके कारण पर्यावरण न केवल विकृत हो रहा है, बल्कि मानव जाति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ता जा रहा है।

आज विकास और पर्यावरण की दृष्टि से 'वन' मानव जाति के लिए न केवल उपयोगी हैं, बल्कि वनों का उपयोग मनुष्य अपने हित के लिए सदियों से करता आया है और वर्तमान में उसकी उपयोगिता और बढ़ती जा रही है। प्राचीन समय में मानव अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति वनों से ही किया करता था, पर सीमा से अधिक उपयोग करने के कारण आज का मानव उनका दुरुपयोग अधिक कर रहा है। कृषि-क्रिया के विकास से वनों के ह्रास में कुछ मात्रा में अंतर तो अवश्य आया है, पर चूंकि वृक्षों का उगना स्वाभाविक क्रिया है, अतः कम या सीमित मात्रा में कटाई होने पर वनों का विनाश नहीं होता। पर जनसंख्या में निरंतर वृद्धि होने से आधुनिक समय में मानव द्वारा उपयोगी वस्तुओं की आवश्यकताएं भी बढ़ गई हैं। अतः वनों का अत्यधिक तीव्र गति से दोहन व विनाश हो रहा है। एक और तथ्य यह भी है कि यदि हम वनों का सीमित मात्रा में तथा सोच-समझकर उपयोग करें तो हमें वनों से दीर्घकाल तक लाभ व उपयोगिता में संवृद्धि हो सकती है।

आइए, वनों के विनाश और प्रकृति से निर्वनीकरण पर कुछ दृष्टि डालें। एक अनुमान के अनुसार सन् 1990 के दशक में प्रति मिनट लगभग 70 एकड़ वनों का विनाश हो रहा था तथा पिछले तीन दशकों में विश्व के लगभग 20 प्रतिशत वनों का विनाश हमें चिंतातुर बनाए हुए है। वनों के विनाश से एक ओर कई जीव-जातियां न केवल विलुप्त हो गईं और हो रही हैं, उससे कई तरह की समस्याएं भी सामने आने लगी हैं। सुदूर संवेदी उपग्रहों से लिए गए चित्रों से ज्ञात हुआ है कि भारत में प्रति वर्ष 13 लाख हेक्टेयर भूमि से वन नष्ट हो रहे हैं। वन विभाग की ओर से प्रकाशित वार्षिक रिपोर्ट की अपेक्षा यह

दर आठ गुना अधिक है। राष्ट्रीय सुदूर संवेदी अभिकरण ने 10.96 प्रतिशत बंद वन, 3.06 प्रतिशत खराब जंगल तथा 0.081 प्रतिशत समुद्र-तटीय वन बताए हैं। 'बंद वन' उन्हें माना गया है, जिनमें वन क्षेत्र 30 प्रतिशत भूमि को ढकता है, परंतु अंतर्राष्ट्रीय मापक में 'बंद वन' 40 प्रतिशत भूमि ढकता है। देश में सन् 1952 की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार पर्वतीय क्षेत्रों की 60 प्रतिशत भूमि तथा देश का कुल 33 प्रतिशत भाग वनों से ढका होना चाहिए। इस तथ्य को केवल अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह ही पूरा करते हैं। वन-विनाश में मध्य प्रदेश सबसे अग्रणी प्रदेश है। यहां 20 लाख हेक्टेयर क्षेत्र के जंगल नष्ट हो चुके हैं। महाराष्ट्र में 10 लाख हेक्टेयर, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर में 10-10 लाख हेक्टेयर और हिमाचल प्रदेश व राजस्थान में 5-5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र के जंगल नष्ट हो चुके हैं। इन सबका प्रमुख कारण है—खनन क्रिया के दौरान वनों को काटना, औद्योगिक क्षेत्रों की वृद्धि, इमारती व जलाऊ लकड़ी की आवश्यकता, कृषि कार्यों के लिए भूमि की आवश्यकता, परिवहन साधनों के लिए सड़क व रेल मार्ग आदि का निर्माण, बांध व पुल आदि के विभिन्न निर्माण कार्य, कागज उद्योग की वृद्धि, वनों से कच्चे माल का दोहन और वनों को निजी स्वार्थों के लिए काटना आदि—ये सब ऐसे तथ्य हैं, जिनके कारण मनुष्य और जीव-जंतुओं पर इसके दुष्प्रभाव दिखाई देने लगे हैं। इनमें कुछ प्रमुख हैं—वन्य जीव-जंतुओं के आवासों का नष्ट होना, तीव्र गति से मृदा अपरदन का होना, कृषि-योग्य भूमि का विनाश, पशुओं के चारे का अभाव, घास के मैदानों की कमी, उद्योगों के लिए कच्चे माल का अभाव, विभिन्न औषधियों के अतिरिक्त गोंद, रेजिन, रबड़ आदि की मात्रात्मक कमी, वर्षा के स्तर में घटत और पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति का सामना।

वन-ह्रास को रोका जाना चाहिए। इसके लिए हर तरफ से पहल जरूरी है। इसे रोकने के लिए कुछ प्रमुख उपाय निम्न प्रकार हैं—

1. ईंधन की लकड़ी के स्थान पर रसोई घरों में वैकल्पिक ऊर्जा का प्रबंधन हो।
2. इमारती लकड़ी के फर्नीचर के स्थान पर लोहे या अन्य धातुओं से फर्नीचर सामग्री का निर्माण किया जाए।
3. पर्यावरण की सुरक्षा की दृष्टि से दुर्लभ किस्म के वृक्षों की कटाई पर प्रतिबंध हो?
4. वनों पर आधारित उद्योग-धंधों में कच्चे माल की पूर्ति के लिए सामाजिक-वानिकी योजनाओं को क्रियान्वित करना।
5. सामाजिक-वानिकी, कृषि वानिकी तथा वन-खेती से वनों के क्षेत्रफल की आपूर्ति की जाए।
6. स्थानांतरणशील कृषि (झूमिंग कृषि) पर प्रतिबंध लगाया जाए।
7. चरागाहों के क्षेत्र संकुचन पर रोक लगाई जाए।
8. शवों की दाह-क्रिया में प्रयोग की जाने वाली लकड़ी के विकल्प के रूप में विद्युत या सी.एन.जी. शवदाह गृहों का निर्माण करके लोगों में आधुनिक चेतना की संवृद्धि की जाए।
9. होली, लोहड़ी तथा अन्य त्योहारों के समय लकड़ी को व्यर्थ न जलाया जाए। इसके लिए लोगों की धार्मिक भावनाओं व सांस्कृतिक मान्यताओं को बदलने के लिए पहल की जाए।

10. पशु संख्या नियंत्रित की जाए और वन्य जीवों के संरक्षण के लिए अभयारण्यों का विकास कर दोहरा लाभ प्राप्त किया जाए।
11. ढालू भूमि पर वृक्षों की कटाई को रोका जाए।
12. कृषि-योग्य भूमि के विस्तार के लिए अनावश्यक तौर पर वनों के ह्रास को रोका जाए। इसके लिए कड़े कानून बनाकर उनका सख्ती से पालन भी किया जाए।
13. ऐसी नदी घाटी परियोजनाओं तथा बांध-पुलों आदि की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, जिनके कारण वन क्षेत्र डूब जाता है।
14. वृक्षों की चयनात्मक कटाई तथा शेष रहे जंगलों की रक्षार्थ वनों के ह्रास को रोका जाए।
15. प्राकृतिक वन क्षेत्रों के स्थान पर वृक्ष तथा फलों के उद्यान लगाने से भी वन-विनाश पर अंकुश लगाया जा सकेगा और मानव को रसीले व स्वास्थ्यवर्धक फलों की प्राप्ति भी होगी। हिमाचल प्रदेश में सेब की खेती से वनों के ह्रास में वृद्धि और सेबों की पैकिंग करने के लिए वृक्षों की कटाई की जाती है, जिस पर रोक लगे तथा उसके अन्य विकल्प ढूंढे जाएं।
16. वनों की रक्षा के लिए सामाजिक आंदोलनों को संगठित रूप से चलाया जाए। गढ़वाल, हिमाचल में श्री सुंदरलाल बहुगुणा द्वारा चलाया गया 'चिपको आंदोलन' एक ऐसा ही जन-आंदोलन है, जिसकी महत्ता को हर कोण से समझा जाना चाहिए।
17. वनों के महत्व और उसकी उपयोगिता बताने के लिए जनसाधारण में विज्ञापनों एवं जन-संचार माध्यमों द्वारा जागृति और चेतना का प्रादुर्भाव किया जाए। 'तरु देवो भव' जैसी उक्तियों का सहारा लेकर हम निश्चित ही वन ह्रास को रोकने में कुछ सफलता अवश्य ही प्राप्त कर सकेंगे।

वनों के विनाश से यूं तो सभी प्रभावित होते हैं, पर इसका दुष्प्रभाव आदिवासियों पर सर्वाधिक होता है। बांधों के निर्माण तथा वन-विनाश से आदिवासी जनसंख्या न केवल प्रभावित होती है, बल्कि उनको मानसिक यंत्रणा भी झेलनी पड़ती है। प्रायः सघन वन, घास के मैदान अथवा दुर्गम प्राकृतिक परिवेश में आदिवासी निवास करते हैं, जिनका वनों से अटूट संबंध होता है। इनकी दैनिक जीवन की अधिकांश आवश्यकताएं भी वनों से ही पूरी होती हैं। वन्य-प्राणियों का आखेट तथा वनों से एकत्रित फल व कंदमूल इनका भोजन होता है। इनके आवास, वृक्षों की शाखाओं की टहनियों से तैयार किए जाते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आदिवासियों का जीवन पूर्णतः प्राकृतिक वनों पर निर्भर होता है और वनों के कटाव से निश्चित ही उनका जीवन-यापन कठिन हो जाता है।

वन एवं वन्य-जीवन की दयनीय दशा में सुधार और विकास के लिए भारत में अब पुनःजागृति उत्पन्न हुई है। सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा देश में वन एवं वन्य-जीवों के प्रबंधन हेतु अनेक योजनाएं और कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। वास्तव में वन एवं वन्य जीवों का बहुत गहरा संबंध है। क्योंकि वन ही वन्य जीवों के शरण-स्थल हैं। यहीं वन्य-जीव सुरक्षा और अपना भोजन प्राप्त करते हैं। भारत सरकार ने इस महान् कार्य के लिए ही पर्यावरण मंत्रालय की स्थापना की है, जिसके द्वारा अनेक कानून बनाए गए हैं। इस पुनीत कार्य के लिए राज्य सरकारों को भी सलाह, वित्त सहयोग और प्रोत्साहन दिया जाता है।

वनों से हमें असंख्य उत्पाद प्राप्त होते हैं, जिन्हें उन्हें बनाने और उनके निरन्तर रूप में उपलब्ध होने को सुनिश्चित करना ही वन क्षेत्रों के प्रबंधन के अंतर्गत आता है। पर्यावरण के सिद्धांतों के अनुसार औद्योगिक काष्ठ तथा इमारती काष्ठ वाले वृक्षों का स्थायीकरण, उनकी वृद्धि और विकास आदि का अध्ययन 'वन वर्धन' के अंतर्गत किया जाता है। भारत में टीक, चीड़, साल, शीशम आदि के कृत्रिम वन भी लगाए जाते हैं। वन-प्रबंधन के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों को सम्मिलित कर उसे पुख्ता बनाने के प्रयास किए जाते हैं। इसके अंतर्गत वनों में उपयोगी काष्ठ तथा आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण वृक्षों को उन्नत करना एवं उनकी संख्या में वृद्धि करना सम्मिलित है। वन में जल-चक्र को सुचारू रूप से बनाए रखने के साथ-साथ वन क्षेत्रों में खुले चरागाहों को विकसित कर उन पर नियंत्रित चराई का प्रबंधन किया जाता है। वन्य पादपों तथा जंतुओं का संरक्षण करना तथा उनकी संख्या बढ़ाने के समुचित उपाय करने के साथ इस बात का विशेष प्रबंधन करना कि कोई भी वन्यजीव संकटग्रस्त न होने पाए। वनों के प्राकृतिक सौंदर्य को बनाना तथा वनों में मानव के हस्तक्षेप को नियंत्रित करना भी वन-प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य है।

वन्य जंतुओं के विनाश से पारितंत्र का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाता है तथा उत्पादक-उपभोक्ता आदि में उचित संतुलन भी नहीं रह पाता, जो पर्यावरण के लिए हानिकारक है। वन्य-जंतुओं का वाणिज्यिक महत्व सर्वविदित है। विश्वभर में प्रतिवर्ष असंख्य मिलियन टन मछलियों का भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है, जिसका मूल्य करोड़ों रुपये है। मृत-जंतुओं के व्यापार से भी करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा कमाई जाती है। वन्य-जंतुओं पर अनेक प्रकार के अनुसंधान किए जाते हैं। इन पर ही विभिन्न प्रकार की औषधियों का सर्वप्रथम परीक्षण किया जाता है। नये-नये प्रतिरक्षी टीकों का प्रभाव ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम जंतुओं पर ही परीक्षण करते हैं, तत्पश्चात् उनका उपयोग मानव के लिए किया जाता है। वन्य जीवन का प्राकृतिक सौंदर्य मनमोहक तो होता ही है, जो सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है। विदेशी पर्यटक तथा हमारे देशवासी प्रकृति का आनंद लेने एवं वन्य जीवों को देखने के लिए अक्सर यात्राएं करते हैं। इससे हमें विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती है।

मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वनों को काटता जा रहा है। वनों के कटाव से किसी क्षेत्र की मिट्टी ढीली हो जाती है। मूसलाधार वर्षा बाढ़ का सबब बनती है और भूस्खलन भी होता है। वनों के कटते जाने से वर्षा भी समय पर नहीं होती। अतः इनके कटाव पर प्रतिबंध होना ही चाहिए। इसका एक उपाय और भी है कि वनों के काटने से पहले नये वनों की स्थापना की जाए। खाली स्थानों पर वृक्ष लगाए जाएं और जन सहयोग के आधार पर समय-समय पर वन-महोत्सव बनाए जाएं।

पर्यावरण को बनाए रखने के लिए वन संरक्षण की अनेक विधियां निर्धारित की गई हैं। इनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं—भारतवर्ष में कुल वन क्षेत्रफल के एक-तिहाई भाग में ऊंचे तथा विशालकाय वृक्ष नहीं हैं। अतः इन क्षेत्रों में इनका अधिक संख्या में रोपण करके वन आवरण की सघनता को बढ़ाया जा सकता है। साथ ही कृषि अयोग्य भूमि में वृक्ष लगाकर वन आवरण में वृद्धि की जा सकती है। अम्लीय, क्षारीय, जलाक्रांत मृदा में सुधार करके वृक्षारोपण में पहल की जा सकती है और मृदा के वनस्पति आवरण में वृद्धि करने के लिए

उपयुक्त वर्षों व पादपों को उगाना चाहिए। जिस स्थान पर लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है, वहां ईंधन की मितव्ययिता के साथ उपयोग करना चाहिए और वहां इस प्रकार के वृक्ष लगाए जाएं, जिनकी लकड़ी को ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सके। सड़क तथा रेल मार्गों के दोनों ओर, पार्क व कृषि फार्मों के चारों ओर छायादार वृक्ष लगाने चाहिएं। इसके अतिरिक्त कॉलेज प्रांगण, प्रशासकीय इमारतों में खाली स्थानों पर छायादार वृक्ष लगाकर उन्हें सौंदर्यवर्धक आकार देना चाहिए। ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों जैसे—सौर ऊर्जा, बायोगैस आदि का उपयोग भी किया जाना चाहिए तथा जल संभ्रमण वाले क्षेत्रों में लगे वृक्षों के काटने पर कड़ा प्रतिबंध होना चाहिए। वनों में आधुनिक विधियों के उपयोग से वृक्षों को रोक आदि पर नियंत्रण किया जाना संभव है। इससे वृक्षों की उन्नत किस्मों, ऊतक संबर्धन आदि से वृक्षों को अधिक स्वस्थ व उपयोगी बनाने में सहायता मिलेगी। वृक्षों की कटाई में कमी तथा नये पौधों की रोपण दर बढ़ाने से भी वृक्षों की संख्या में वृद्धि संभव है। साथ ही उद्योग में काम आने वाले काष्ठ वृक्षों का अधिक-से-अधिक संख्या में रोपण किया जाना चाहिए। इससे हमें निश्चित ही बेहतर परिणाम मिलेंगे।

भारत में यूं तो प्रकृति का साम्राज्य चारों तरफ बिखरा है। यहां अनेक वन्य जीव अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान और पक्षी विहार आदि हैं, जिनके कारण यहां का पर्यावरण अभी भी नियंत्रण में लगता है, पर यह सब संतोषप्रद नहीं है। भारत के कुछ प्रमुख वन्य-जीव अभयारण्य निम्न प्रकार हैं—बांदीपुर (कर्नाटक), भद्रा (चिकमंगलूर), बोरी (चिकमंगलूर), बोरी (होशंगाबाद, मध्य प्रदेश), चंद्रप्रभा (वाराणसी), दचीगाम (जम्मू-कश्मीर), डालमा (सिंहभूम, झारखंड), डांप (आईजोल, मिजोरम), डंडेली (धारवाड़, कर्नाटक), गांधीसागर (मंदसौर, मध्य प्रदेश), गौतमबुद्ध (गया, बिहार), इंटाग्की (कोहिमा, नागालैंड), जलदापारा (जलपाईगुड़ी, पश्चिम बंगाल), कावल (आदिलाबाद, आंध्र प्रदेश), किन्नरसानी (खम्माम, आंध्र प्रदेश), मानस (बरपेटा, असम), मदुमलाई (नीलगिरि, तमिलनाडु), सोमेश्वर (दक्षिण कनारा, कर्नाटक), पंचमढ़ी (होशंगाबाद, मध्य प्रदेश), परवाल (वारंगल, आंध्र प्रदेश), पालामद (पालामद, बिहार), पेरियार (इडुक्की, केरल), रणथंभौर (सवाई माधोपुर, राजस्थान), शिकारी देवी (मंडी, हिमाचल प्रदेश), सोनाईरूपा (तेजपुर, असम) सिंपलीपाल (मयूरभंज, उड़ीसा), तमसा (थाना, महाराष्ट्र), तंगुभद्रा (बेल्लारी, कर्नाटक) आदि भारत के महत्वपूर्ण वन्यजीव अभयारण्य हैं।

भारत में राष्ट्रीय उद्यान और पक्षी विहार भी अनेक हैं। उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—राष्ट्रीय उद्यानों में बांधवगढ़ (मध्य प्रदेश), बांदीपुर (कर्नाटक), बनरेधट्टा (बंगलौर), जिम कॉर्बेट (नैनीताल), दुधवा (खीरी, उत्तर प्रदेश), गिर फॉरेस्ट (जूनागढ़, गुजरात), कान्हा (मांडला, मध्य प्रदेश), काजीरंगा (असम), नागरहोल (कुर्ग, कर्नाटक), रॉसद्वीप (अंडमान-निकोबार), शिवपुरी (मध्य प्रदेश), वेल्वाडर (भावनगर, गुजरात), हजारीबाग (बिहार) मुख्य हैं। पक्षी विहारों में घाना (भरतपुर, राजस्थान), रंगाथिट्टू (मैसूर, कर्नाटक), वेदा-तंगल (चिंगलपेट, तमिलनाडु), मालापट्टी (नेल्लौर), पुष्पावती (चमोली, उत्तरांचल), राजाज़ी (शिवालिक हिमालय, उत्तराखंड), नंदा-केदार, गोविंद तथा मालन पशु विहार (उत्तराखंड) मुख्य हैं।

मानव-जीवन में वनों की महत्ता और उनकी उपयोगिता को स्वीकारते हुए भारत सरकार ने वनों के संरक्षण एवं विकास के लिए राष्ट्रीय वन नीति-1952 की बनाई। इस

नीति के अंतर्गत देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के एक-तिहाई भाग पर वन क्षेत्र होना चाहिए, लेकिन देश में अतिशय जनसंख्या की वृद्धि एवं वनों के कटान के कारण वन क्षेत्रों का निरंतर ह्रास होता जा रहा है। सरकारी आंकड़ों को ही यदि आधार माना जाए तो 1951-52 से 1979-80 के मध्य 4238 मिलियन हेक्टेयर वन भूमि आधिकारिक तौर पर गैर वन्य कार्यों (कृषि, उद्योग, परिवहन, सिंचाई, बस्तियों आदि) के लिए स्थानांतरित कर दी गई। फलतः वन संरक्षण के लिए भारत सरकार ने वन संरक्षण अधिनियम 1980 को लागू किया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वनों के कटान अर्थात् वन-भूमि-ह्रास को रोकना है। आरक्षित वन क्षेत्र को अनारक्षित या किसी वन क्षेत्र की भूमि को अन्य किसी दूसरे कार्यों में उपयोग हेतु केंद्रीय सरकार की लिखित अनुमति आवश्यक है। इस अधिनियम में ऐसी व्यवस्था भी है कि यदि किन्हीं सार्थक कारणों से वन क्षेत्र की भूमि को दूसरे प्रयोजनार्थ स्थानांतरित करना आवश्यक ही है तो जितने वृक्षों की संख्या में कटाई की गई है, उनसे दुगनी संख्या में वृक्षों का रोपड़ किया जाए।

देखने में आया है कि वनों लगातार का विदोहन जारी है। फलस्वरूप 'वन संरक्षण अधिनियम, 1980' को पुनः 1988 में संशोधित किया गया, जिसके अंतर्गत वन अधिनियम का उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध दंडात्मक प्रावधानों को और कड़ा करने के लिए संशोधन किया गया। साथ ही गैरवानिकी उद्देश्य का विस्तार करते हुए चाय व कॉफी बागानों, रबड़, पाम, औषधीय पौधों व गरम मसालों की कृषि को इसमें सम्मिलित किया गया। अधिनियम के अनुसार किसी भी आरक्षित वन या वन भूमि के गैरवानिकी उपयोग की घोषणा से पूर्व केंद्र सरकार का अनुमोदन राज्यों के लिए अनिवार्य कर दिया गया है। इस नियम का सख्ती से पालन किया ही जाना चाहिए। केंद्रीय पर्यावरण, वन एवं वन्य जीव विभाग द्वारा वनों की सुरक्षा एवं संरक्षण की निगरानी के लिए छह प्रादेशिक कार्यालय स्थापित करने और केंद्र सरकार के सुझाव पर विभिन्न राज्यों एवं संघ शासित क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण परिषदें स्थापित करने का भी प्रावधान किया गया है।

मनुष्य जन्म से ही प्रकृति की गोद में अपना विकास व जीवन व्यतीत करता रहा है। वन और धरती पर चारों तरफ फैली हरियाली मानव के जीवन को न केवल प्रफुल्लित करती है, अपितु उसे सुख-समृद्धि से संपन्न करके उसे स्वास्थ्य भी प्रदान करती है। वनों का संरक्षण किया ही जाना चाहिए, इसी में पूरी मानव जाति का हित निहित है। वन संरक्षण के लिए सरकारी स्तर पर किए जा रहे कार्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जरूरी है कि देश के आम नागरिक भी आगे बढ़कर इसमें अपनी अहम् भूमिका का निर्वहन करें, जिससे हमारी आने वाली संततियां शुद्ध वातावरण में खुशहाल जीवन व्यतीत कर सकें।

ई-28, लाजपतनगर,
साहिबाबाद-201005,
गाजियाबाद (उ.प्र.)

पादप एवं पर्यावरण

डॉ. पालेश्वर प्रसाद शर्मा

बाढ़ी आवत देखि करि, तरुवर डोलन लाग।
हम्म कटे की कुछ नहीं, पंखेरू घर भाग ॥

आज से छह सौ वर्ष पूर्व महाकवि कबीर ने वृक्षों के काटने पर उपरोक्त दोहा कहा था। वृक्ष बढ़ई लोगों द्वारा काटे जाने पर तरुवृंदों में हलचल होने लगती है। तरु वृंद आपदा आने पर वे परस्पर विपत्ति का संकेत कर देते हैं, बेचारे कटते वृक्ष अपनी छाया में जिन पक्षियों को आश्रय देते हैं, उन वृक्षों के कटने से पंछी बेसहारा हो जाएंगे। ये वृक्ष धरा पर पहले आए, इनके कारण प्राणियों को प्राणवायु मिलने लगी। वृक्षों में पीपल की पूजा भी इसीलिए होती है कि वह सबसे अधिक ओषजन– प्राणवायु प्रदान करता है और कार्बनडाईआक्साइड का शोषण करता है।

विभिन्न विद्वानों ने पर्यावरण को पारिभाषित किया है, 'स्पष्ट है कि किसी भी वस्तु के संपूर्ण कार्बनिक और अकार्बनिक वातावरण से आपसी उत्पन्न संबंध को पर्यावरण कहते हैं।' तथा दोनों के असंतुलन को प्रदूषण कहते हैं।

पृथ्वी पर समस्त सजीव भौतिक वातावरण एवं उद्‌विकासीय प्रक्रिया से परस्पर संबंधित एवं संपृक् हैं। एक प्राणी दूसरे को भोजन प्रदान कर सकता है अथवा उपयोगी या हानिकारक हो सकता है। भोजन एवं आवास, अस्तित्व एवं जीवन के लिए परस्पर संघर्ष एवं सशक्त का अशक्त की जीवनलीला समाप्त करना–मत्स्य न्याय कहलाता है। सशक्त, बलशाली जीवित रह सकते हैं, अशक्त, निर्बल समाप्त हो जाते हैं। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो जीवन-यापन के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर रहता है, परंतु बुद्धिजीवी होने के कारण तथा सर्वथा निर्बल होने के बावजूद वह प्राकृतिक संसाधनों का स्वामी बन गया। सामान्य जीवन में हम देखते हैं कि गाय का बछड़ा, मां के चाटने पर जन्म के घंटे भर के भीतर खड़ा हो जाता है, मां का दूध पीकर उछलने-कूदने लगता है, किंतु मानव-शिशु महीनों मां-बाप के सहारे बिस्तर पर पड़ा रहता है। पशुओं में प्रतिक्षण-जीविका एवं जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता है, वहीं मनुष्य ने अपने लिए सब सुविधाएं जुटा ली हैं। इतना ही नहीं उसने इन संसाधनों का स्वच्छंदतापूर्वक, अंधाधुंध दोहन एवं दुरुपयोग करना आरंभ कर दिया, परिणामतः प्राकृतिक संसाधन एवं जीवधारियों के बीच संतुलन बिगड़ गया और सभ्य मनुष्य की इस घोर उपेक्षा तथा दुरुपयोग के कारण जो गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई...वह है प्रदूषित पर्यावरण। प्रदूषित संसार समस्त

मानव-जाति को विनाश की ओर ले जा रहा है। अब तो स्थिति इतनी विकृत एवं भयावनी हो गई है कि वर्ष में सन् 2010 में ही छह-छह ज्वालामुखी विस्फोट तथा भांति-भांति की सुनामी, अर्थात् जल-प्रलय ने धरा तले, अवलांत सागर तले जो प्रदूषित वस्तु तथा विषैले तत्व पड़े हुए थे, वे समस्त प्राणियों के नगरों तथा ग्रामों में फैलकर...जीवन को विषाक्त करते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि मनुष्य की जीवनी-शक्ति इन विषैले तत्वों से क्षीण, जर्जर तथा मरणोन्मुख, भीषण से अनजान रोगों से महाकाल या अकाल मृत्यु को आमंत्रण दे रही है। महाकवि प्रसाद ने महाकाव्य कामायनी का प्रारंभ सत्तर वर्ष पूर्व...जल-प्रलय से किया था, वह दृश्य देखिए—

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छांह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।

ये मनुष्यों के पूर्वज मनु हैं तो दूसरे अमर ऋषि, महाकवि मुनि मृकुंड पुत्र मार्कंडेय को परात्पर परब्रह्म ने जल-प्रलय का दृश्य दिखाया था—

करारवृंदे ने पदारवृंदम्
मुखारविंदे न विनियेशयंतम्।
वटस्य पत्रस्य पुटेशयानम्
बालं मुंकुंद शिरसा नमामि ॥

हाहाकार करते पारावर की लहरों के ऊपर शिशु के रूप में महाप्रभु वट के विशाल पत्र पर पैर के अंगूठे को मुस्कराते हुए मुंह में लिए हुए हैं...प्रभु के शिशु रूप को देख मार्कंडेय प्रणाम कर रहे हैं।

विचारकों के अनुसार प्राकृतिक संसाधन के निम्न प्रकार हो सकते हैं—

1. वन संसाधन,
2. खनिज संसाधन,
3. ऊर्जा संसाधन तथा
4. भूमि या मृदा संसाधन।

इनमें प्रथम वन-संपदा का विशेष महत्व है। वन-संपदा के कारण अनेक आर्थिक समस्याओं का समाधान होता है—ईंधन, कोयला, वनौषधि, तेल, जड़ी-बूटी, लाख, गोंद, रबर, कागज, चंदन, इमारती लकड़ी, फर्नीचर या उपस्कर, सिगरेट के लिए कागज, बीड़ी के लिए तेंदु पत्ते तथा पशु-पक्षी, अन्य प्राणियों का आवास तथा उनसे मनुष्य को लाभ मिलता है। विशाल भारत में लगभग 750 लाख हेक्टेयर वन प्रदेश, अर्थात् 22.8 प्रतिशत भूमि में वन प्रदेश फैला है। हमारे छत्तीसगढ़ राज्य में भी 22 हजार करोड़ डॉलर की वन-संपदा है। प्राचीन नाम—दंडकारव्य या दंडकवन, जो आतंकियों से आक्रांत है, अभिशप्त है क्यों? ये नक्सली लुटेरे कीमती सागौन, साजा, सरई काटकर नदी द्वारा आंध्र प्रदेश ले जाकर बेचते हैं...और वन-बालाओं का अपहरण, हत्या करके पर्यावरण ही नहीं शांति, अमन-चैन के दुश्मन बने हुए हैं।

अरण्य का प्राकृतिक संतुलन विकृत होता जा रहा है। पुराणों के अनुसार महासागर में डूबी धरती का उद्धार, वाराह अवतार में, प्रभु ने किया था और महाराजा पृथु ने नगर, ग्राम के नियोजित रूप की व्यवस्था की थी, इसीलिए यह पृथ्वी कहलाई। उसी पौराणिक परिकल्पना एवं परंपरानुसार प्राणियों के चार प्रकार होते हैं—1. अंडज, 2. पिंडज, 3. स्वेदज तथा 4. उद्भिज्ज। पंछी, खग, सर्प, मछली आदि अंडों से उत्पन्न होते हैं, अतः ये अंडज हैं तथा मनुष्य, पशु आदि पिंड बनाकर मां की कोख से उत्पन्न होते हैं, अतः पिंडज तथा गंदगी, स्वेद, नाबदान, मल-मूत्र से कीड़े-मकोड़े पैदा होते हैं, अतः स्वेदज तथा धरती की कोख से वृक्ष, लता, पौधे, वनस्पति, द्रुम उत्पन्न होते हैं, इसलिए ये उद्भिज्ज कहलाते हैं। ये पादप हैं ये पैर अर्थात् जड़ों से पानी पीते है, अतः पादप कहलाते हैं। फल-फूल से लदे वृक्ष-द्रुम हैं तो सर्वथा औषधि का गुण लिए पौधे—वनस्पति कहलाते हैं।

प्राचीन ऋषि-मुनि अरण्य में साधना, तपस्या, चिंतन-मनन, स्वाध्याय, अध्यापन करते विश्वविद्यालयों के कुलपति होते थे। प्राचीन अनेक ग्रंथ श्रीमद्‌भगवद् गीता के सिवाय आरण्यक हैं और अपनी संस्कृति भी आरण्यक है।

भावावेश में कवि धरती को माता कहकर पुकारता है—

माता-भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका दुलारा पुत्र हूं। हमारी देवियां भी शैलजा, जलजा, भूमिजा हैं। धरा इसलिए भी मां है, क्योंकि वे परात्पर प्रभु की पत्नी हैं। प्रातः उठते ही हम धरती को प्रणाम कर कहते हैं—

समुद्र वसने देवि, पर्वत स्तन मंडले।
विष्णु पत्नि! नमस्तुभ्यं, पादस्पर्शं क्षमस्व में॥

कितनी भव्य कल्पना है, यही छायावाद की मूल धारणा है।

आइए पादपों का संक्षिप्त विवरण देखें—ये पादप प्रकृति को स्वच्छ, पवित्र, स्वस्थ, सुंदर बनाते हैं। वन जीवन का बड़ा अंश है। इन पादपों में प्राणवत्ता, प्राणशक्ति, परहित प्रवृत्ति, पावन-पवन, सुगंधित समीर, सौरभ तथा वायुमंडल में नीरोग बनाने की विशेषता होती है, शायद इसीलिए प्राचीनकाल में व्यक्ति वयोवृद्ध होते ही वानप्रस्थ, आश्रम में प्रवेश करता था। आज भी उत्तराखंड की तीर्थ-यात्रा में हवा का एक झोंका थकावट दूर कर यात्री को तरोताजा कर देता है।

प्राचीन साहित्य में महाकवि साहित्य को स्वांतःसुखाय के साथ बहुजन हिताय अर्थात् एक पंथ दो काज समझकर सृजन करते थे। वनस्पति के विवरण से बिहारी-सतसई, कबीर की साखी, दोहे, कृषि संस्कृति के लोकसाहित्य तथा ऋषि संस्कृति के श्लोक साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, इसीलिए वैद्यों को कविराज भी कहते थे। लोकसाहित्य में कमल कंद के रूप में पहेली बुझौवल देखिए—

बांभन रहय अकादसी, बंभनिन रहय तीजा।
एक चरित्तर मैं, देखेंव, कांदा ऊपर बीजा॥

गहरे तालाब में, पंक में धंसे ढेंस या कमलकंद से ही कमल पुष्प जल के ऊपर आकर खिलते हैं, इसीलिए उपवास में फलाहार के रूप में कमलकंद खाना वर्जित है। भयानक रोग यक्ष्मा की यह अचूक औषधि है तथा श्वेत कमल, अरुण कमल, नीलकमल,

शतदल कमल, सहस्रदल कमल तथा स्थल कमल, ब्रह्मकमल से कमल-गट्टा, मृणा तथा लक्ष्मी पूजा के लिए कमल अनिवार्यतः वांछनीय है, यहां तक कि इसी पुष्प की कली पूजा के लिए मान्य है तथा शेष किसी फूल की कली चढ़ाना वर्जित है, कच्चा नारियल वर्जित है, परंतु मूर्खों की दवा धन्वंतरि के पास भी नहीं है। एक विदेशी हकीम ने भारत के आयुर्वेद की ख्याति की परीक्षा लेने एक यात्री को भेजा। भारत के प्रसिद्ध वैद्य के पास दुबला-पतला, रोगी यात्री पहुंचा। कविराज ने पूछा, 'हकीम साहब ने कुछ कहा था' उसने कहा। ये कोरा कागज दिया था और कहा था—रात किसी इमली के पेड़ के तले सोते हुए जाना। तो वैद्य ने उत्तर दिया जाओ, रात किसी पीपल के तले सोना, यह पीपल रात को भी प्राणवायु छोड़ता है।

महाकवि कबीर ने मधुमेह की औषधि बताई है—

बलिहारी गुरु आपकी, प्रनवऊं बारंबार।
मानुष से देवता किय, करत न लागी बार॥

ये बलिहारी-वनैला पौधा है, चार दिन भोर में खाने से भयानक मधुमेह एकदम आधा हो जाता है।

साहित्य में पुष्प धन्वा के तरकश (तुणीर) में पांच फूलों के बाण हैं—अशोक, अरविंद, आम्रमंजरी, नीलोत्पल, नवमल्लिका। टाटा कैंसर चिकित्सालय के अनुसार कैंसर की विशिष्ट औषधि—श्यामा तुलसी का रस है तो हल्दी चेहरे की झाईं एवं सांवलापन दूर करने के लिए विवाह के पूर्व हरिद्रागात्र लगाने की प्रथा आज भी चली आ रही है।

बिहारी का दोहा है—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित द्युति होय॥

राधा, हल्दी का नाम है। विक्को कंपनी इसी हल्दी से लाखों की आमदनी कर रही है।

मैं विनोद में कहता हूं कि साहित्यकार को मूंगफली-भूमिफली के समान होना चाहिए, फूल ऊपर, फिर फली के रूप में धरा के भीतर, यानी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, दृष्टि आकाश आदर्श की ओर और चरण धरती पर यथार्थ को छोड़ना नहीं है। अथवा संसार में कमल पुष्प के समान रहना चाहिए। कर्दम-पंक में उत्पन्न पंकज, पंक, कीचड़ से ऊपर निर्लिप्त रहता है, यही एक आदर्श जीवन है। गद्दी-नशीन राजनेताओं पर करारा व्यंग्य का स्वाद लीजिए—

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर॥

तो नीति का उदाहरण, पादप के द्वारा ही तथा द्विप भी साथ है—लक्ष्मी कैसे आती है? लक्ष्मी चुपके से आती है, जैसे नारियल के डाभ में पानी भर जाता है और लक्ष्मी जाती है—जैसे हाथी के मल में निकला कपित्थ फल...ऊपर से ज्यों-का-त्यों...किंतु भीतर खोखला ...लक्ष्मी का आगमन या गमन...दोनों दबे पैरों, लक्ष्मी चंचला जो है। लताएं, जैसे अमर बेल, गिलोय, लौकी, कुम्हड़े, अपराजिता, विष्णुकांता प्रायः परोपजीवी हैं...अमरबेल तो नंगी, लुच्ची दोनों है, किंतु गिलोय दिव्य औषधि है तो चकबड़...सूर्योदय, सूर्यास्त के साथ

जागता-सोता है। घड़ी मिला लीजिए, कमलिनी और कुमुदिनी भी सूरज और चंदा के साथ वफाई निभा रही हैं तो कबीर अस्थिर यौवन की तुलना पलाश से करना नहीं भूलते—

कबीर कहा गरब्बियो, इस जोबन की आस।

टेसू फूले दिवस दस, खंखर भये पलास ॥

उधर सुआ किस प्रकार झूठी मृगतृष्णा में दुःखी होता है—

सेमर सुअना सेइया, दुई ढेंढी की आस।

ढेंढी फूटी चटाक दै सुअना चला निरास ॥

तो गोपिकाएं कृष्ण के वियोग में मधुवन को कोस रही हैं—

मधुवन तुम कत रहत हरे।

तो केले पर प्रसिद्ध वक्रोक्ति अलंकार प्रचलित है—

रंभा झूमत हौ कहा, केहिकारन इहिखेत।

तुमसे केते हैहै गए, अऊ हैहैं इहिं खेत ॥

यह केला भी अजीबोगरीब पादप है—फूल, फल, कच्चे-पके सब देता है, परंतु दंतकाष्ठ (मुखारी) के लिए एक सींक नहीं देता। वहीं शंखपुष्पी, श्वेतवसना लाजवंती, लजीली नववधू है तो हरित, श्वेत दूर्वा, गणपति, प्रिया और श्यामा तुलसी—शालिग्राम प्रिया है। गुरुनानक स्वयं वामन थे, किंतु ज्ञान में विराट थे। अपनी लघुता पर उन्होंने कहा है—

नानक नन्हें होइ रहो, जैसे नन्हीं दूब।

लता-वृक्ष सब जरि जायं, दूब खूब की खूब ॥

बिल्वपत्र, शमी पत्र—सदाशिव पर चढ़ना जरूरी है तो श्रेष्ठ औषधि भी हैं। पीपल के पत्ते बकरी के लिए खाद्य तो हैं, पर कबीर ने इसी बहाने उपदेश दिया है—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।

जो बकरी को खात है, ताकी कौन हवाल?

घर के ईशान कोण में बिल्व वृक्ष सर्वथा वास्तुशास्त्र के अनुसार शुभ होता है, वहीं कंटीले पौधे—कैक्टस, बेर, थूहर, आंगन में वर्जित हैं। लोग कहते हैं—

बोये पेड़ बबूल का, आम कहां से होय?

मनुष्य, पेड़, पशुओं में वर्णसंकर कम खतरनाक नहीं होते, किंतु राजनीति में भ्रष्ट राजनेता ज्यादा खतरनाक होते हैं। लाखों टन धान सड़ाकर प्रदूषण तो फैलाते हैं और मदिरा बनाने वाली विदेशी कंपनियों को बेचकर स्विस बैंक में, विदेशी बैंकों में काला धन जमा करते हैं। 63-64 वर्ष में गोदाम न बनाना क्या है? राजमहल, ताजमहल बन रहे हैं, परंतु गोदाम क्यों नहीं? ये जमोखार, नोट नहीं खाएंगे...पेट तो अन्न से भरेगा, परंतु केशव कही न जाए, क्या कहिए? ...तो पारिजात एक ऐसा पादप है कि जिसके पत्ते मधुमेह को ठीक करते हैं तो फूल धरती पर गिरने के बाद भी भगवान को चढ़ाए जाते हैं। शेफाली, प्रभात की धीमी बयार में चुपके से टपक पड़ती है और भीनी सुगंध देती रहती है।

वनस्पति जगत् में कई अनुपम, अद्भुत पादप हैं—सामान्यतः ग्राम के चारों ओर अमराई, ताल-तलैया का निर्माण...ग्रामीण परंपरा और प्रथा है...इसीलिए वृक्ष विवाह, तालाब विवाह, वृषोत्सर्ग मठोत्सर्ग...कृषि-प्रधान देश की कृषि-संस्कृति की विशेषता है। अमलतास, अशोक, आम, कदंब, देवदार, ताड़, तुलसी, नारियल, नीम, पलाश, पीपल, बबूल, बरगद,

अक्षय वट, शिरीष, शीशम, सरो, सहजन, सागौन, साल, हरसिंगार, पारिजात, पाटल, मंदार, कर्णिकार, वन-उपवन की शोभा हैं।

आज पॉलीथिन, प्रदूषण को दुगना कर रहा है और हमारी सरकार इसे रोक नहीं पा रही है। वहीं छोटे से भूटान में पॉलीथिन का प्रवेश भी वर्जित है। प्रदूषण का प्रकोप इतना है कि जीवाणु, कीटाणु की गिनती संभव नहीं। शुद्ध पानी दुर्लभ है, बोतल बंद पानी का प्रचलन इसका प्रमाण है। पर्यावरण प्रदूषित है...इसके सामान्य लक्षण हैं—दुर्गंध, खाज, खुजली, जूं, खटमल, कॉक्रोच (तिलचट्टा), मच्छर, चींटे, माहो, भांति-भांति के कीड़े—घुन, दीमक, पिस्सू, टिड्डे, पतंगा, ऊर्णनाभ, बिच्छू, सांप, ततैया, छिपकली, सरट (गिरगिट), अंधा सांप, घोंघा, गंदे पानी में (शंबूक), सड़े मांस में चील, कौए, गिद्ध, बगुले, सियार ...फफूंद, कालिमा...कटु स्वाद, मुंह में लेते ही वमन की उत्प्रेरणा, श्वसन-प्रश्वसन में कष्ट, नाक की नाली बरसाती नाली बन जाती है। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े खाने मेंढक आते हैं, मेंढक खाने सांप आते हैं और बदबू से बीमारी फैलती है, प्रदूषण-पर्यावरण पृथ्वी के सभी प्राणियों के लिए घातक है, मारक है। पर्यावरण को परिशुद्ध प्राकृतिक रखना है तो वन-उपवन, सरिता, सरोवर, खेत-खलिहान को, आस-पास को स्वच्छ, निर्मल रखना नागरिकों का प्रथम तथा सर्वोच्च कर्तव्य है, अन्न के उत्पादन के लिए अनेक वर्जित, विषैली, विदेशी दवाएं सबसे ज्यादा खतरनाक हैं, परंतु भ्रष्ट सरकार ने आंख-कान दोनों मूंद लिए हैं और इधर अव्यवस्था की लाश पर मक्खियां भिनभिना रही हैं। रात, घुप्प अंधेरे में घिरी है। लगता है, जैसे किसी ने चांद चुरा लिया है।

अंधेरा धूप को धमका रहा है...
और हम चुप्प हैं।
चुना था गांव के वट-वृक्ष का रक्षक उसे
वह कुल्हाड़ी लेकर आ रहा है—
और हम चुप हैं॥

एक बात कहूं—

तुम्हारी फाइल में शहर का मौसम गुलाबी है।
तुम्हारा आंकड़ा झूठा है, दावा किताबी है॥

एक साहित्यकार का सपना है—

चंदा में जुन्हैया हो, सूरज में तेज हो, बादलों में पानी, पानी में शीतलता-स्वच्छता हो, वनस्पति में वनलक्ष्मी हो, वनवासी में वनोत्सर्ग हो, खेतधानी हो, फूलों में सुगंध हो, तरुणों में तेजस्विता हो, कवि-कलाकारों में करुणा हो, वैज्ञानिकों में ज्ञान हो, संतों में सत्य हो, नारियों में कुलीनता हो, राजनेता में जनहित का उल्लास हो तो जीवन में सदैव मधुमास हो।

शिवमंदिर के पास,
विद्यानगर, बिलासपुर (छ.ग.)

वन-संसाधन के अतिदोहन के दूरगामी परिणाम

कु. स्नेहलता निर्मलकर

इस पृथ्वी पर विद्यमान सभी जीवधारियों का जीवन मिट्टी की एक पतली पर्त पर निर्भर करता है। वैसे यह कहना अधिक उचित होगा कि जीवधारियों के जीवन-चक्र को चलाने के लिए हवा, पानी और विविध पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है और मिट्टी इन सबको पैदा करने वाला स्रोत है। यह मिट्टी वनस्पति जगत् को पोषण प्रदान करती है, जो समस्त जंतु जगत् को प्राण वायु, जल और ऊर्जा देती है। वनस्पति का महत्व मात्र इसलिए ही नहीं है कि उससे प्राण वायु, जल, पोषक तत्व, प्राणदायिनी औषधियां मिलती हैं, बल्कि इसलिए भी है कि वह जीवनाधार मिट्टी बनाती है और उसकी सतत् रक्षा भी करती है। इसलिए वनों को मिट्टी बनाने वाले कारखाने भी कहा जा सकता है।

वन का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। अनेक आर्थिक समस्याओं का समाधान इन्हीं से होता है। ईंधन, कोयला, औषधियुक्त तेल व जड़ी-बूटी, लाख, गोंद, रबड़, चंदन, इमारती सामान और अनेक लाभदायक पशु-पक्षी और कीट आदि वनों से ही प्राप्त होते हैं।

भारत में लगभग 150 लाख हेक्टयेर भूमि पर वन हैं। हमारे देश में संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल में 22.8 प्रतिशत भाग में वन फैले हुए हैं। विभिन्न राज्यों में वनों का क्षेत्रफल भिन्न-भिन्न है। उदाहरण के लिए—उत्तर प्रदेश में 11.9 प्रतिशत, पंजाब में 2.6 प्रतिशत, बिहार में 22.5 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश में 20.5 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 3.5 प्रतिशत, उड़ीसा में 22.5 प्रतिशत, तमिलनाडु में 13.9 प्रतिशत, राजस्थान में 4.1 प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल में 8.8 प्रतिशत है। दुनिया के अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में वनों का क्षेत्र बहुत कम है। भारत की जनसंख्या के बढ़ते हुए भार तथा ईंधन की मांग के काण नदी तटों तथा अन्य अनुपजाऊ प्रदेशों में भी वन क्षेत्रों का होना अति आवश्यक माना गया है।

वनों के प्रमुख उपयोग एवं वन-विनाश के कारण व समस्याएं

वनों के कुछ प्रमुख उपयोग एवं वन-विनाश के कारण व समस्याएं निम्न हैं—

1. घरेलू एवं व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति तथा उत्पन्न समस्याएं—लकड़ी की प्राप्ति के लिए पेड़ों की कटाई वनों के विनाश का वास्तविक कारण है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिक एवं नगरीकरण में तीव्र वृद्धि के कारण लकड़ी की मांग में दिनों-दिन वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप वृक्षों की कटाई में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। भूमध्यरेखीय

सदाबहार वनों का प्रतिवर्ष 20 मिलियन हेक्टेयर की दर से सफाया हो रहा है। इस शताब्दी के आरंभ से ही वनों की कटाई इतनी तेज गति से हुई है कि अनेक पर्यावरणीय समस्याएं पैदा हो गई हैं। आर्थिक लाभ के नशे में धुत्त लोभी भौतिकतावादी आर्थिक मानव यह भी भूल गया कि वनों के व्यापक विनाश से उसका ही अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। विकासशील एवं अविकसित देशों में ग्रामीण जनता द्वारा नष्टप्रायः अवक्रमित वनों से पशुओं के लिए चारा एवं जलाने की लकड़ी का अधिक-से-अधिक संग्रह करने से बचा-खुचा वन भी नष्ट होता जा रहा है।

2. कृषि भूमि तैयार करना–

(क) मुख्य रूप से विकासशील देशों में मानव-जनसंख्या में तेजी से हो रही वृद्धि के कारण यह आवश्यक हो गया है कि वनों के विस्तृत क्षेत्रों को साफ करके उस पर कृषि की जाए, ताकि बढ़ती जनसंख्या का पेट भर सके। इस प्रवृत्ति के कारण सवाना घास प्रदेश का व्यापक स्तर पर विनाश हुआ है, क्योंकि सवाना वनस्पतियों को साफ करके विस्तृत क्षेत्र को कृषि-क्षेत्र में बदला गया है।

(ख) शीतोष्ण कटिबंधीय घास के क्षेत्रों (यथा–सोवियत रूस के स्टेपी, उत्तरी अमेरिका के प्रेयरी, दक्षिणी अमेरिका के पंवाज, दक्षिणी अफ्रीका के वेल्ड तथा न्यूजीलैंड के डाउंस) की घासों एवं वृक्षों को साफ करके उन्हें बृहद् कृषि-प्रदेशों में बदलने का कार्य बहुत पहले ही पूर्ण हो चुका है।

(ग) रूमसागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों के वनों को बड़े पैमाने पर साफ करके उन्हें उद्यान, कृषि भूमि में बदला गया है। इसी तरह दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मानसूनी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ती जनसंख्या की भूख मिटाने के लिए कृषि-भूमि का विस्तार करने के लिए वन क्षेत्रों का बड़े पैमाने पर विनाश किया गया है।

3. अतिचारण–उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधीय एवं शुष्क तथा अर्द्ध-शुष्क प्रदेशों के सामान्य घनत्व वाले वनों में पशुओं को चराने से वनों का क्षय हुआ है तथा हो रहा है। ज्ञातव्य है कि इन क्षेत्रों के विकासशील एवं अविकसित देशों में दुधारू पशु विरल तथा खुले वनों में भूमि पर उगने वाली झाड़ियों, घासों तथा शाकीय पौधों को चटकर जाते हैं, साथ-ही-साथ ये अपने खुरों से भूमि को इतना रौंद देते हैं कि उगते पौधों का प्रस्फुटन नहीं हो पाता। अधिकांश देशों में भेड़ों के बड़े-बड़े झुंडों ने तो घासों का पूर्णतया सफाया ही कर दिया है।

4. वनाग्नि–

(क) प्राकृतिक कारणों से या मानव-जनित कारणों से वनों में आग लगने से वनों का तीव्र गति से तथा अल्प समय में विनाश होता है। वनाग्नि के प्राकृतिक स्रोतों में वायमुंडलीय बिजली सर्वाधिक प्रमुख है। मनुष्य भी जाने एवं अनजाने रूप में वनों में आग लगा देता है।

(ख) मनुष्य कई उद्देश्यों से वनों को जलाता है–कृषि भूमि में विस्तार के लिए, झूमिंग कृषि के तहत कृषि-कार्य के लिए, घास की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए, आदि। वनों में आग लगने का कारण वनस्पतियों के विनाश के अलावा भूमि कड़ी हो जाती है, परिणामस्वरूप वर्षा के जल जमीन में अंतः-संचरण (Infiltration) बहुत कम होता है तथा धरातलीय वाही जल में अधिक वृद्धि हो जाती है, जिसके

कारण मृदा-अपरदन में तेजी आ जाती है। वनों में आए दिन आग लगने से जमीन पर पत्तियों के ढेर नष्ट हो जाते हैं, जिसके कारण ह्यूमस तथा पोषक तत्वों की भारी कमी हो जाती है। कभी-कभी तो ये पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।

(ग) वनों में आग के कारण मिट्टी, पौधों की जड़ों तथा पत्तियों के ढेरों में रहने वाले सूक्ष्म जीव मर जाते हैं। स्पष्ट है कि वनों में आग लगने या लगाने से न केवल प्राकृतिक वनस्पतियों का विनाश होता है तथा पौधों का पुनर्जनन अवरुद्ध हो जाता है, वरन् जीवीय समुदाय की भी भारी क्षति होती है, जिसके कारण पारिस्थितिकीय असंतुलन उत्पन्न हो जाता है।

5. वनों का चारागाहों में परिवर्तन–विश्व के रूमसागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों एवं शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों, खासकर उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका में डेयरी फार्मिंग के विस्तार एवं विकास के लिए वनों को व्यापक स्तर पर पशुओं के लिए चारागाहों में बदला गया है।

6. बहु-उद्देश्यीय नदी-घाटी परियोजनाओं के कार्यान्वयन के समय विस्तृत वन-विनाश–बहु-उद्देशीय नदी-घाटी परियोजनाओं के कार्यान्वयन के समय विस्तृत वन क्षेत्र का क्षय होता है, क्योंकि बांधों के पीछे निर्मित वृहत् जल-भंडारों में जल का संग्रह होने पर वनों से आच्छादित विस्तृत भू-भाग जलमग्न हो जाता है, जिस कारण न केवल प्राकृतिक वन-संपदा समूल नष्ट हो जाती है, वरन् उस क्षेत्र का पारिस्थितिकी संतुलन ही बिगड़ जाता है।

7. स्थानांतरीय या झूमिंग कृषि (Shifting or Jhuming Cultivation)–झूमिंग कृषि दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया के पहाड़ी क्षेत्रों में वनों के क्षय एवं विनाश का एक प्रमुख कारण है। कृषि की इस प्रथा के अंतर्गत पहाड़ी ढालों पर वनों को जलाकर भूमि को साफ किया जाता है। जब उस कृषि की उत्पादकता घट जाती है तो उसे छोड़ दिया जाता है।

वन संसाधन का संरक्षण (Conservation of Forest Resources)

मनुष्य इस पृथ्वी का सबसे सफल जीव है और जब से इसकी उत्पत्ति हुई है तभी से यह अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए प्रयासरत् है। इस प्रयास में इसने सबसे अधिक नुकसान वन एवं वन-संपदा को पहुंचाया है। इसने अपने लिए भोजन जुटाने, रहने के लिए मकान के निर्माण, दवा निर्माण के लिए कारखाने खोलने, शृंगार तथा विलासिता के साधन जुटाने, वस्त्र निर्माण, आवागमन हेतु मार्ग बनाने, खेती के लिए जमीन जुटाने, सिंचाई के लिए नहर बनाने, विद्युत तथा आवागमन जैसे दूसरे कई महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने अधिक-से-अधिक वनों की कटाई करके इनको नष्ट किया है।

वनों की उपयोगिता को देखते हुए हमें इसके संरक्षण हेतु निम्न उपाय अपनाने चाहिएं–

1. वनों के पुराने एवं क्षतिग्रस्त पौधों को काटकर नये पौधों या वृक्षों को लगाना।
2. नये वनों को लगाना या वनारोपण अथवा वृक्षारोपण।
3. आनुवंशिकी के आधार पर ऐसे वृक्षों को तैयार करना, जिससे वन संपदा का उत्पादन बढ़े।

4. पहाड़ एवं परती जमीन पर वनों को लगाना।
5. सुरक्षित वनों में पालतू जानवरों के प्रवेश पर रोक लगाना।
6. वनों को आग से बचाना।
7. जले वनों की खाली परती भूमि पर नये वन लगाना।
8. रोग-प्रतिरोधी तथा कीट-प्रतिरोधी वन वृक्षों को तैयार करना।
9. वनों में कवकनाशकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग करना।
10. वन-कटाई पर प्रतिबंध लगाना।
11. आम जनता में जागरूकता पैदा करना, जिससे वह वनों के संरक्षण पर स्वरफूर्त ध्यान दें।
12. वन तथा वन्यजीवों के संरक्षण के कार्य को जन-आंदोलन का रूप देना।
13. सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
14. शहरी क्षेत्रों में सड़कों के किनारे, चौराहों तथा व्यक्तिगत भूमि पर पादप रोपण को प्रोत्साहित करना।

वन संरक्षण संबंधी अधिनियम (Acts Related with Forest Conservation)

भारत सरकार ने वन-संरक्षण के लिए निम्न अधिनियम पारित किए हैं—

1. वन अधिनियम, 1927—यह अधिनियम वनों, वन उपज के अभिवहन और इमारती लकड़ी और अन्य वनोपज पर उदग्रहणीय शुल्क से संबद्ध विधि के लिए पारित किया गया है। यह अधिनियम 1 नवंबर, 1956 से पूर्व बिहार, मुंबई, दिल्ली, मध्य प्रदेश, ओडिशा, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में लागू था।

2. वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980—यह अधिनियम वनों के संरक्षण, उनसे जुड़े हुए मामलों, उसके सहायक या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने हेतु पारित किया गया।

यह अधिनियम जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर संपूर्ण भारत में लागू है। इसे 25 अक्टूबर, 1980 से लागू किया गया। यह अधिनियम अविवेकी अरक्षण और वन भूमि के कार्यों के दिक्परिवर्तनों को नियंत्रित करने के लिए बनाया गया था। इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी रक्षित वन को आरक्षित घोषित करने के लिए या वनभूमि को वन के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए परिवर्तित करने के लिए केंद्रीय सरकार की पहले से (Prior) मंजूरी की आवश्यकता होती है। यदि दिक्परिवर्तन की आज्ञा मिल जाए, तो क्षतिपूरक वनरोपण पर जोर दिया जाता है और अन्य योग्य स्थितियां थोपी जाती हैं। जहां बिना जंगल (Non-Forest) के भूमि प्राप्त हैं, वहां बिना जंगल भूमि के तुल्यांक क्षेत्र पर क्षतिपूरक वनरोपण होता है। जहां बिना जंगल (Non-Forest) भूमि नहीं होती, क्षतिपूरक रोपण निम्न कोटिकृत वनों में उस दिक्परिवर्तन क्षेत्र के दोगना क्षेत्र में किया जाता है।

वन (संरक्षण) एक्ट 1980 को कानून तोड़ने वालों के विरुद्ध संयुक्त अलंघनीय पैनल विधानों (Coroporation Strieter Panf Provision) के लिए 1988 में संशोधित किया गया। महत्वपूर्ण संशोधन निम्न प्रकार हैं—

(i) राज्य सरकार या अन्य प्राधिकारी किसी को ओदश नहीं दे सकता कि कोई भी वनभूमि चाहे पट्टे द्वारा या किसी अन्य तरीके से, व्यक्ति, महानगरपालिका या

एजेंसी संगठन (सरकार द्वारा न अपनाई गई हो) के बिना केंद्रीय सरकार की पहले मंजूरी के दे सकता।

(ii) वन भूमि या कोई हिस्सा जो पेड़ों से साफ हो, जो कुदरती ढंग से उगे थे, उस भूमि या हिस्से पर, उस भूमि का उपयोग पुनः वन-रोपण के लिए केंद्रीय सरकार की पहले मंजूरी के बिना नहीं हो सकता।

(iii) वर्तमान में बिना जंगल के जमीन का अभिप्राय उसके कार्यों (Non-forest Purpose) का क्षेत्र अन्य भागों तक विस्तृत किया गया है, जैसे—चाय, कॉफी, रबड़, ताड़, औषधीय पौधे इत्यादि।

3. वन (संरक्षण) अधिकार नियम, 1981—यह नियम वनों के संरक्षण के संबंध में बनाया गया है। इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर संपूर्ण भारत में है। इस नियम के अंतर्गत वनों की सुरक्षा के लिए एक समिति के गठन तथा समिति के संचालन संबंधी नियमों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इसके अनुसार एक समिति में निम्न सदस्य होंगे—

1. महानिरीक्षक (वन)	अध्यक्ष
2. अतिरिक्त महानिरीक्षक वन	सदस्य
3. संयुक्त आयुक्त, भूसंरक्षण वन	सदस्य
4. तीन पर्यावरणविद् (अशासकीय)	सदस्य
5. डिप्टी कमिश्नरी जनरल, वन	सदस्य (सचिव)

4. पशु अतिचार अधिनियम, 1871–(Cattle Trsopass Act, 1871)–यह अधिनियम पशुओं द्वारा अतिचार से संबंधित विधि को समेकित और संशोधित करने के लिए पारित किया गया है।

वनोन्मूलन एवं उसके प्रभाव (Deforestation and their Effects)

भारत में वनोन्मूलन के मृदा, जल और वायु अपरदन विनाशकारी प्रभावों के अंतर्गत आते हैं, जो प्रत्येक वर्ष 16,400 करोड़ से ज्यादा मूल्य की अनुमानित राशि को हानि पहुंचाते हैं। वनोन्मूलन का हमारी शस्य भूमि की उत्पादकता पर बड़ा समाघात होता है। यह दो प्रकार से होता है—

1. मृदा अपरदन बहुमुख वृद्धित होता है और मृदा बह जाती है, जिससे बाढ़ और सूखे का विशिष्ट चक्र प्रारंभ हो जाता है।
2. जब ईंधन अपर्याप्त हो जाता है, मनुष्य गोशमल (Cow Dung) और शस्य अवशेष को ईंधन की तरह मुख्यतः भोजन बनाने के लिए उपयोग करने लगता है। इस कारण पादप का प्रत्येक भाग धीरे-धीरे प्रयोग में ले लिया जाता है और मृदा में कुछ भी वापस नहीं जाता। कुछ समय पश्चात् इस पोषण का बहना शस्योत्पादकता को प्रभावित करता है, यह मृदा-उर्वरता के ह्रास का कारण बनता है।

वनोन्मूलन के प्रभाव

वनोन्मूल और अतिचारण भयानक मृदा अपरदन और भूस्खलन करते हैं। भारत में औसतन 60000 लाख टन ऊपरी मृदा का वार्षिक हनन पेड़ों की अनुपस्थिति में जल

अपरदन से होता है। सन् 1973 में 700 करोड़ रुपये, 1976, 1977 और 1978 में यह 889 करोड़ रुपये, 1,200 करोड़ रुपये और 1,091 करोड़ रुपये क्रमशः ऊपरी मृदा अपरदन के हनन से क्षय हुआ।

भारत आज विश्व में कैपिटा भूमि (Capita Land) के अनुसार सबसे ऊपर है। भारत में प्रति कैपिटा भूमि (Per Capita Land) 0.10 हेक्टेयर है। विश्व की औसत 1 हेक्टेयर की तुलना में कनाडा में 14.2 हेक्टेयर, ऑस्ट्रेलिया में 7.6 हेक्टेयर और संयुक्त राज्य अमेरिका में 7.30 हेक्टेयर है। भारतीय वन क्षेत्र विश्व वन्य क्षेत्र का सिर्फ 0.50 प्रतिशत है। भारत में प्रत्येक वर्ष लगभग 10.5 लाख हेक्टेयर वन का हनन हो रहा है। यदि यह क्रम इसी प्रकार चलता रहा तो देश में हम अगले 20 वर्षों या अधिक में शून्य वन (Zero Forest) मान तक पहुंच जाएंगे। 25 वर्षों के समय के दौरान (1951-76) भारत में वन्य क्षेत्र का 40.1 लाख हेक्टेयर हनन हुआ है। बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन ईंधन, चारा (Fodder), घाटी परियोजनाओं (Vally Projects), औद्योगिक उपयोगों (Industrialisation), सड़क निर्माण इत्यादि के लिए होता है। भारत में ईंधन का लगभग 1700 लाख टन वार्षिक उपयोग होता है और वन आवरण का 100-50 लाख हेक्टेयर ईंधन की मांग के लिए प्रत्येक वर्ष साफ कर दिया जाता है। यह ईंधन उपयोग सन् 1953 में 860.3 लाख टन से सन् 1980 में लगभग 1350 लाख टन तक पहुंच गया, जो वनों पर दाब को दर्शाता है। 20 वर्षों के दौरान (1951 से 1971) वन कृषि (24.32 लाख हेक्टेयर), नदी घाटी परियोजना (4.01 लाख हेक्टेयर) औद्योगिक उपयोगों (1.2 लाख हेक्टेयर), सड़क निर्माण (0.55 लाख हेक्टेयर) और विविध उपयोगों (3.88 लाख हेक्टेयर) के लिए काटे गए। इस प्रकार वनों का कुल 30.4 लाख हेक्टेयर का इस काल के दौरान हनन हुआ। भारत की भूमि सतह का लगभग 1 प्रतिशत प्रत्येक वर्ष वनोन्मूलन के कारण बंजर (Barren) हो रहा है। हिमालय श्रेणी में, वनोन्मूलन के कारण वृष्टि 3 से 4 प्रतिशत कम हो गई है।

आज जनसंख्या वृद्धि के साथ वन का विनाश भी बढ़ने लगा है। लोगों को यह नहीं मालूम की वृक्ष हमारे जीवन-रक्षक हैं। वृक्षों से ही हमें प्राणप्रद वायु (ऑक्सीजन) की प्राप्ति होती है। वृक्ष एवं जंगलों से हमें हमारी बहुत-सी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, साथ ही वन ही वर्षा कराते हैं। विस्फोटक जनसंख्या तथा मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनों की अंधाधुंध कटाई कर रहे हैं। इसी कारण आज वनों का अस्तित्व खतरे में है। वन के साथ-साथ मानव जीवन भी खतरे में है। इस विषम परिस्थिति में वन की रक्षा करना हमारा कर्तव्य ही नहीं, धर्म भी है। इसके लिए सरकार द्वारा बनाए गए अधिनियमों का पालन करना एवं कराना हम सबकी जिम्मेदारी है। आओ हम सब मिलकर संकल्प लें कि वृक्षों की अंधाधुंध कटाई बंद करें तथा वन को बचाने में अपना अमूल्य योगदान करें।

वन है तो जीवन है, वन नहीं तो जीवन नहीं,
वन हमारे जीवन-रक्षक हैं, आओ हम उनकी रक्षा करें।

डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय
कोटा, जि. बिलासपुर (छ.ग.)

वन-महोत्सव

श्रीमती कमल चंद्रा

बहुउपयोगी कार्यक्रम 'पंचज' से तात्पर्य है कि–

ज = जल (पानी)

ज = जंगल (वन)

ज = जर (जायदाद)

ज = जमीन (भूमि)

ज = जन (जनता)

जंगल हमारे जीवन में कितनी अहम् भूमिका निभाते हैं? इससे हमें भलीभांति परिचित होना ही होगा, अन्यथा बहुत देर हो जाएगी। कल्पना करें कि यदि यह वृक्ष आपस में बातें कर अनी व्यथा/ कहानी सुनाते तो वे क्या कहते। सुनो–

जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख का साथी हूं, हूं मैं मानव तेरा।
फिर भी तू उपकार चुकाता, काट-काट तन मेरा ॥
हल, बक्खर, जुआ, बाड़ी बोल कहां से लेता?
छप्पर, घास, बांस, बल्ली मैं ही तुझको देता ॥
कत्था, महुआ, ताड़ी तू बोल कहां से लेता?
लीसा, गोंद, पेंट, वारनिश मुझसे ही तू लेता ॥
प्लाई बोर्ड, पेटी, संदूक, मैं किस काम न आता?
ट्रक, बस बॉडी, रेल के डिब्बे, नाव, जहाज बनाता ॥
खेल-खिलौने, कुर्सी-टेबल, खटिया-पलंग सजाए।
औषधि, चारा, तेल, मसाले, फल-फूल मुझसे पाए ॥
आंधी, तूफां, वायु प्रदूषण, सब पर रोक लगाता।
कृषि उर्वरा शक्ति बढ़ाकर, मौसम मस्त बनाता ॥
सर्दी-गर्मी-वर्षा भारी हो, मैं तेरी रक्षा करता।
तन पर अपने धूप ताप सह, छाया तुझको देता ॥
आत्मज्ञान सुख-शांति पाने, जब तू वन में आता।
मोह-माया का बोध छुड़ाकर, तुझको सत्य दिखाता ॥
जन्म से लेकर अंत समय तक, तेरा साथ निभाता।
वृद्ध सहारा बनकर लाठी, मृत्यु चिता तक जाता ॥
हे! मानव एक निवेदन तुझसे, जो तू मुझको काटे।
हां! पहले तू दस वृक्ष लगा दे, उनको स्वस्थ बना दे ॥

जंगल से प्राप्त लकड़ी हमारे शैशव के पालने (झूले) से लेकर महाप्रयाग की यात्रा की साथी है। अन्य वनोपज भी हमारे दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हम स्वयं को वनों से अलग नहीं कर सकते। मानव सभ्यता का प्रारंभ जंगलों, कंदराओं, गुफाओं, पहाड़ियों, झरनों से ही हुआ है। विकास की इस दौड़ में हम आज कंक्रीट के जंगल तक आ पहुंचे हैं।

वर्तमान स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि हमने अपने विकास और स्वार्थ के लिए वनों को काट-काटकर स्वयं अपने लिए ही विषम स्थिति पैदा कर ली है। अंधाधुंध होने वाली कटाई से जो दुष्परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं, वे भी कम चौंकाने वाले नहीं हैं। इसकी कल्पनामात्र से ही सिहरन हो उठती है। घटता-बढ़ता तापमान, आंधी, तूफान, बाढ़, सूखा, भूमिक्षरण, जैसी विभीषिकाओं से जूझता मानव कदाचित् अब वनों के महत्व को समझने लगा है। तभी वनों के संरक्षण की दिशा में सोच बढ़ा है। व्यावहारिक रूप से यह उचित भी है और समय की मांग भी यही है।

वनों को विनाश से बचाने एवं वृक्षारोपण योजना को वन-महोत्सव का नाम देकर एवं अधिक-से-अधिक लोगों को इससे जोड़कर भू-आवरण को वनों से आच्छादित करना एक अच्छा नया प्रयास है। यद्यपि यह कार्य एवं नाम दोनों ही नए नहीं हैं। हमारे पवित्र वेदों में भी इसका उल्लेख है। गुप्तवंश, मौर्यवंश, मुगलवंश में भी इस दिशा में सार्थक प्रयास किए गए थे। इसका वर्णन इतिहास में उल्लिखित है।

सन् 1947 में स्व. जवाहरलाल नेहरू, स्व. डॉ. राजेंद्र प्रसाद एवं मौ. अब्दुल्ल कलाम आजाद के संयुक्त प्रयासों से देश की राजधानी दिल्ली में जुलाई के प्रथम सप्ताह को वन-महोत्सव के रूप में मनाया गया, किंतु यह कार्य में विधिवत्ता नहीं रख सके। यह पुनीत कार्य सन् 1950 में श्री के.एम. मुंशी द्वारा संपन्न हुआ, जो आज भी प्रतिवर्ष हम वन-महोत्सव के रूप में मनाते आ रहे हैं। वन-महोत्सव सामान्यतः जुलाई-अगस्त माह में मनाकर अधिक-से-अधिक वृक्षारोपण किया जाता हैं। वर्षाकाल में ये चार माह के पौधे थोड़े से प्रयास से अपनी जड़ें जमा लेते हैं।

यह विचार भी मन में आता है कि वन-महोत्सव मनाने की आवश्यकता ही क्यों हुई? वे क्या परिस्थितियां थीं कि साधारण से वृक्षारोपण को महोत्सव का रूप देना पड़ा? संभवतः बढ़ती आबादी की आवश्यकता पूर्ति के लिए कटते जंगल, प्रकृति के प्रति उदासीनता ने ही प्राकृतिक संतुलन बिगाड़ दिया। अनजाने में हुई भूल या लापरवाही के दुष्परिणाम सामने आते ही मानव-मन में चेतना का संचार हुआ और मानव क्रियाशील हो उठा।

हम सभी ये जानते हैं कि हमारे द्वारा काटे गए वृक्षों पर नाना प्रकार के पक्षियों का बसेरा होता था। शाखाओं, पत्तों, जड़ों एवं तनों पर अनेक कीट-पतंगों, परजीवी अपना जीवन जीते थे एवं बेतहाशा वनों की कटाई से नष्ट हुए प्राकृतावास के कारण कई वन्य-प्राणी लुप्त हो गए एवं अनेक विलोपन के कगार पर हैं। भूमि के कटाव को रोकने में वृक्ष-जड़ें ही हमारी मदद करती हैं। वर्षा की तेज बूंदों के सीधे जमीनी टकराव को पेड़ों के पत्ते स्वयं पर झेलकर बूंदों की मारक क्षमता को लगभग शून्य कर देते हैं।

वन-महोत्सव मनाने की आवश्यकता हमें क्यों पड़ रही है? इस प्रश्न के मूल में डी-फारेस्टेशन (गैरवनीकरण) मुख्य कारण है—गैर वनीकरण मानवीय हो या प्राकृतिक। यूं

तो प्रकृति स्वयं को सदा से ही सहेजती आई है। इस धरा पर वनों का आवरण कितना बढ़ा या घटा है। इस क्षरण में भूमि, कीट, पतंगे, वृक्ष, पशु-पक्षी सभी आ जाते हैं। भारतीय वन सर्वेक्षण संस्थान, देहरादून की भूमिका महत्वपूर्ण है कि वह अपने सर्वेक्षण से वनों की वस्तुस्थिति हमारे सामने लाता है, तभी हमें पता चलता है कि पूर्व में वनों की स्थिति क्या थी और आज क्या है?

वन नीति 1988 के अनुसार भूमि के कुल क्षेत्रफल का 33 प्रतिशत भाग वन-आच्छादित होना चाहिए। तभी प्राकृतिक संतुलन रह सकेगा, किंतु सन् 2001 के रिमोट सेंसिंग द्वारा एकत्रित किए गए आंकड़ों के अनुसार हमारे देश का कुल क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग कि.मी. है। इनमें वन भाग 6,75,538 वर्ग कि.मी. है, जिससे वन आवरण मात्र 20 प्रतिशत ही होता है और ये आंकड़े भी पुराने हैं। यदि मध्य प्रदेश की चर्चा करें तो मध्य प्रदेश का कुल क्षेत्रफल 308445 वर्ग कि.मी. है एवं वन भूमि 76265 वर्ग कि.मी. है यानी 24 प्रतिशत वन प्रदेश भूमि पर है, जबकि वास्तविकता यह कि प्रदेश का वन-आवरण अब लगभग 19 प्रतिशत ही शेष बचा है।

वनों का क्षरण अनेक प्रकार से होता है। इनमें वृक्षों को काटना, सुखाना, जलाना, अवैध उत्खनन प्रमुख हैं। द्रौपदी के चीर-हरण के समान हर एक लालची इस धरा के वृक्ष रूपी वस्त्रों का हरण करने में लगा है।

गांवों, नगरों, महानगरों का क्षेत्रफल बढ़ रहा है और जंगल संकुचित हो रहे हैं। दैनिक आवश्यकताओं के लिए लकड़ी के प्रयोग की मांग बढ़ी है। बड़े-बड़े बांधों का निर्माण होने से आस-पास के बहुत बड़े वन क्षेत्र जलमग्न होकर डूब चुके हैं और सदैव के लिए अपना अस्तित्व खो चुके हैं। इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गनाईजेशन (इसरो) द्वारा अत्याधुनिक रिमोट सेंसिंग प्रणाली द्वारा वस्तुस्थिति को चलचित्र की भांति पटल पर देखकर स्पष्ट कर लेते हैं। उपग्रहों को अंतरिक्ष में भेजकर उनका संचालन रिमोट द्वारा किया जाता है, जिससे हम जंगल, स्थान, वस्तु, जल का निश्चित आकार-प्रकार पता कर सकते हैं। आज की रिमोट सेंसिंग इतनी परिष्कृत हो चुकी है कि 6 × 6 मीटर के भू-भाग के सही अक्षांश-देशांश ज्ञात कर वास्तविकता सामने ला देती है। इसी प्रकार जिओग्राफिकल इनफोर्मेशन सिस्टम (जी.आई.एस.) के ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम (जी.पी.एस.) उपकरण हमें इस दिशा में मील का पत्थर साबित हो रहे हैं एवं पृथ्वी की भौगोलिक स्थिति की सूचना उत्कृष्ट कैमरों से रिमोट द्वारा संचालित कर एकत्रित की जा सकती है।

उक्त दोनों प्रणालियों का सकारात्मक प्रयोग कर हम इस दिशा को नया आयाम दे सकते हैं और अपनी प्राकृतिक विरासत को हम पुनः ज्यों-का-त्यों हस्तांतरित कर सकते हैं। इस दूरदर्शिता से वनों को बचाने के अभियान में योगदान कर राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। वृक्षारोपण करें, छायादार और फलदार वृक्षों को लगाएं, उन्हें अपनी संतान की भांति सहेजें, पालें-पोसें और संरक्षित करें।

इसके लिए भूमि एवं पौधों का चुनाव सही ढंग से करें। बहुत छोटे पौधे न चुनें, कीट-पतंगों, पक्षियों को लुभाने वाले पौधे न चुनें। कृषक भाइयों को सलाह दें कि वे अपने खेतों की मेढों पर नीलगिरी, सू-बबूल एवं बांस का वृक्षारोपण करें। इस प्रकार अपने प्रयासों से थोड़ी भी प्रकृति संरक्षित होती है तो सभी के प्रयासों से पूरी वसुधा संरक्षित हो सकेगी।

प्रकृति हमें मां की तरह धूप, ताप, वर्षा, सर्दी, गर्मी से बचाती है, अपने आंचल में शरण देती है। आइए इसकी रक्षा करें।

अंत में प्रसिद्ध पर्यावरणविद् श्री सुंदरलाल बहुगुणा, जिन्होंने जगत् प्रसिद्ध चिपको आंदोलन द्वारा वनों के विनाश को रोकने का सफल आयाम स्थापित किया, के समान, हम भी इस धरा को इस संदेश के साथ पहुंचाएं—

आओ अपनी भूल सुधारें।
पर्यावरण का रूप सुधारें॥
कहते हैं सब वेद-पुराण।
बिना वृक्ष के नहीं कल्याण॥

जबलपुर (म.प्र.)

जैव विविधता एवं इसका संरक्षण

संजू सिंह

जैव विविधता से आशय

जैसा कि इसमें नाम से ही स्पष्ट है इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के जंतु, विभिन्न प्रकार के पौधे एवं विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीव आते हैं। जैव विविधता एक प्रकार से प्राकृतिक संसाधन है, जिसमें विभिन्न जीवों को जीवन के लिए प्राकृतिक व जैविक स्रोत मिलते हैं, जिस क्षेत्र की जैव विविधता जितनी अधिक होती है, वह क्षेत्र उतना ही संपन्न होगा। सतत् विकास के लिए जैव विविधता आवश्यक है। जब हम एक नजर विश्व की जैव विविधता पर डालते हैं तो मालूम पड़ता है कि विश्व में अभि-निर्धारित जातियां 14,13,000 हैं। बहुत अधिक जातियां अभी निर्धारित नहीं हैं, यदि इसकी पहचान निर्धारित कर दी जाए तो इसकी संख्या 50 लाख से अधिक हो सकती है। अभि-निर्धारित जातियों की संख्या निम्नानुसार है—

कीट	751000	पादप	248000
वन्य प्राणी	281000	कवक	69000
प्रोटिस्ट	30000	शैवाल	26000
जीवाणु	4800	विषाणु	1000

सामान्य रूप से जीन की विविधता के कारण जैव विविधता विकसित होती हैं। जितनी अधिक जीन विविधता होगी, जैव विविधता उतनी ही अधिक होगी। दूसरी ओर जीन विविधता जितनी कम होगी, जैव विविधता उतनी ही कम होगी। हमारा देश जैव-विविधता के मामले में बहुत अधिक धनवान है, क्योंकि यहां पर लगभग सभी प्रकार की पारिस्थितिकी पाई जाती है। हमारे यहां लगभग 45000 पादप प्रजातियां तथा 81000 जंतु प्रजातियां पाई जाती हैं।

परिभाषा (Definition)

जीव-जंतुओं में पाई जाने वाली विभिन्नता, विषमता और पारिस्थितिकीय जटिलता ही जैव-विविधता कहलाती है।

जैव विविधता : राष्ट्रीय स्तर पर

भारत जैव विविधता के मामले में एक धनाढ्य देश है। यहां जैव विविधता में

बहुत-सी जातियां स्थानीय हैं। यहां बहुत अधिक जैव विविधता पाए जाने का कारण यह है कि यहां विभिन्न प्रकार की जलवायु—पश्चिमी घाट में आर्द्र शीतोष्ण है तो दूसरी ओर राजस्थान में तप्त मरुस्थल है, इसी प्रकार लद्दाख में मरुस्थल एवं हिमालय में बर्फीले पहाड़ हैं तो दूसरी ओर गर्म समुद्री किनारे हैं।

भारत में वनस्पति जात (Flora) एव प्राणि-जात (Fauna) दोनों की 1,15,000 जातियां ज्ञात हैं। यहां का क्षेत्रफल का 2 प्रतिशत है। यहां पाए जाने वाले वनस्पति जात (Flora) में बैक्टीरिया की संख्या 850 है, जो कुल विश्व की संख्या का 21.25 प्रतिशत है। शैवाल की कुल प्रजातियों की संख्या 2000 हैं, जो विश्व की कुल संख्या का 11.80 प्रतिशत है। ब्रायोफाईटा की 2850 प्रजातियां हैं, जो विश्व की ब्रायोफाईटा संख्या का 17.80 प्रतिशत है। इसी प्रकार टेरिडोफाईटा, नग्नबीजी एवं आवृत्त-बीजी की कुल प्रजातियां क्रमश : 1100, 64, 17500 हैं, जो विश्व में पाई जाने वाली प्रजातियों का क्रमशः 8.46 प्रतिशत, 8.53 प्रतिशत एवं 7 प्रतिशत है।

जैव विविधता में परस्पर संबंधित तीन स्तरों के आधार पर विविधताओं का वर्णन हम निम्न प्रकार कर सकते हैं—

1. **आनुवंशिका विविधता**—इसका संबंध एक ही प्रजाति के विभिन्न सदस्यों के बीच पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के आनुवांशिक पदार्थ (जीन) से है। विश्व के विभिन्न भू-भागों पर फैले एक ही प्रजाति के सदस्यों के बीच पाए जाने वाली आनुवांशिका विभिन्नता, जीव तथा विभिन्न पारिस्थितिक-तंत्र एवं जलवायु के मध्य परस्पर समायोजन एवं अनुकूल की क्षमता प्रदर्शित करती है।
2. **प्रजाति विविधता**—प्रजाति विविधता का अर्थ पूरे विश्व में पाए जाने वाले पेड़-पौधे, जीव-जंतु, सूक्ष्म जीव जिसमें जीवाणु एवं विषाणु भी शामिल हैं। विश्व में पाई जाने वाली विभिन्न प्रजातियों के कारण ही जैवमंडल संतुलित रहता है।
3. **पारिस्थितिकीय विविधता**—जैवमंडल में बहुत से पारिस्थितिकीय तंत्र पाए जाते हैं, जिसमें विभिन्न प्रजातियों का वास होता है। अतः विभिन्न परिस्थितियों में पाई जाने वाली विविधता ही पारिस्थितिकीय विविधता कहलाती है।

किसी भी स्थान में पाए जाने वाली जैव विविधता को मापने के लिए वैज्ञानिक तीन विधियां प्रयोग में लाते हैं—

1. **अल्फा विविधता (Alpha Diversity)**—किसी निश्चित क्षेत्र की जैव विविधता का आकलन करने के लिए वहां पाए जाने वाली प्रजातियों की कुल संख्या अल्फा विविधता कहलाती हैं।
2. **बीटा विविधता (Beta Diversity)**—किसी निश्चित क्षेत्र में पाए जाने वाली प्रजातियों की कुल संख्या का ज्ञान हो जाने के उपरांत, प्रजातियों की संरचना की पहचान की जाती है, जिसे बीटा विविधता कहते हैं।
3. **गामा विविधता (Gamma Diversity)**—किसी क्षेत्र में पाई जाने वाली प्रजातियों के मध्य परस्पर संबंध एवं अंतःक्रिया का ज्ञान किया जाता है।

जैव विविधता संरक्षण (Biodiversity Conservation)

जैव विविधता के महत्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि इसका संरक्षण किया

जाए। इसके अत्यधिक प्रयोग से बहुत-सी जातियां लुप्तप्रायः स्थिति में आ चुकी हैं। विश्व की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, इसलिए इसकी आवश्यकता भी तेजी से बढ़ती जा रही है। पहले एक प्रजाति को विलुप्त होने में 10 वर्ष लग जाते थे, लेकिन वर्तमान में यह इतनी बढ़ गई हैं कि प्रत्येक वर्ष एक प्रजाति विलुप्त हो रही है। विभिन्न कारणों से हो रहे प्रजातियों के विलुप्तीकरण को रोकने के लिए जैव विविधता का संरक्षण आवश्यक है।

जैव विविधता संरक्षण से तात्पर्य है, "प्राणियों और पौधों का उनके प्राकृतिक परितंत्र में या उनके प्राकृतिक पर्यावरण से हटाकर बागों तथा चिड़ियाघरों में उनका परिरक्षण (Preservation) ही जैव विविधता का संरक्षण है।" आज वन्य जीवन संरक्षण एक संपूर्ण परिकल्पना है और इसमें केवल पादप एवं प्राणियों की जातियां ही नहीं, बल्कि सूक्ष्मजीवी मृदा तथा प्राकृतिक कारणों का संरक्षण भी शामिल है। एक अध्ययन के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग 5 से 10 प्रतिशत वनों की अवैध कटाई होती है। इसके अतिरिक्त प्राणियों के विलुप्त होने का अन्य कारण अवैध शिकार, वातावरण का बढ़ता प्रदूषण आदि है। इन सभी कारणों सें। जैव-प्रजातियों का संरक्षण आवश्यक है, नहीं तो पारिस्थितिकीय प्रणाली अनियमित हो जाएगी और हमारी पृथ्वी जीव-विहीन हो जाएगी, जिसका सीधा असर मानव के अस्तित्व पर पड़ेगा। अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी जैव विविधता की रक्षा एवं उसका संरक्षण करें। जैसे—छत्तीसगढ़ के जसपुर जिले में उरांव जनजातियां अपना उपनाम पौधों या जंतुओं के नाम पर लिखती हैं और वे उस पौधे या जंतु को पवित्र मानते हुए उसका संरक्षण करती हैं। जैसे मिंज अर्थात् मछली, तिरकी अर्थात् चिड़िया, बखला अर्थात् जंगली कुत्ता इत्यादि।

जैव विविधता के संरक्षण के प्रयास विश्वस्तर पर किए जा रहे हैं, जिसके लिए IUCN संस्था भी कार्यरत है। इस हेतु किए जा रहे प्रयासों को हम दो भागों में बांट सकते हैं—

1. स्वस्थाने संरक्षण (In-Situ Conservation)—स्वस्थाने का अर्थ है ऐसा संरक्षण, जो उसी स्थान पर हो, जहां पर पादप या प्राणियों की प्रजातियां पाई जाती हैं अर्थात् पादप या प्राणियों की प्रजातियों को उनके प्राकृतिक पर्यावरण में ही संरक्षण, स्वस्थाने संरक्षण कहलाता है। स्वस्थाने (In-Situ) संरक्षण के तहत अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान, प्राणी उद्यान एवं प्रजातियों के संरक्षण के लिए चलाई जा रही विशिष्ट परियोजनाएं सम्मिलित हैं।

IUCN ने 1985 में एक नीति निर्धारित की, जिसमें परिलक्षित (Protected) स्थानों के उपयोग के तरीकों व सीमाओं की जानकारी दी गई है। IUCN ने इन परिरक्षित (Protected) क्षेत्रों को 8 भागों में विभाजित किया है—

1. वैज्ञानिक आरक्षित और पूर्ण प्रकृति आरक्षित (Scientific Reserve & Stuict Nature Reserved)
2. राष्ट्रीय उद्यान (National Park)
3. राष्ट्रीय स्मारक एवं भू-चिह्न (National Monuments & Land Marks)
4. प्रबंधित वन्य जीवन अभयारण्य और प्रकृति आरक्षित अभयारण्य (Managed Wild Life Sanctuaries & National Reserve)

5. परिरक्षित भूमि (Protected Landscape)
6. संपदा आरक्षित (Resources Reserve)
7. राष्ट्रीय जैविक क्षेत्र और मानव विज्ञान आरक्षित (National Biotic Areas & Anthopological Reserve)
8. बहुउपयोगी प्रबंध क्षेत्र (Multiple Use Management Areas)

स्वस्थाने संरक्षण (In-Situ Conservation) के लिए निम्न स्थान हैं–

1. राष्ट्रीय उद्यान (National Park)
2. अभयारण्य (Sanctuaries)
3. जीव मंडलीय आरक्षण (Biosphere)
4. प्राकृतिक आरक्षण (Natural Reserve)
5. प्राकृतिक स्मारक (Natural Monuments)
6. सांस्कृतिक दृश्यभूमि (Cultural Landscape)

2. अपस्थाने संरक्षण (Ex-Situ Conservation)–अपस्थाने संरक्षण का अर्थ है आवास के बाहर संरक्षण। अर्थात् पादप या प्राणियों की विभिन्न जातियों या जैव विविधता का संरक्षण उनके मूल आवास से दूर ले जाकर किसी संरक्षित क्षेत्र, स्थल या प्रयोगशाला में किया जाता है। अतः संरक्षण प्राकृतिक आवास में भी किया जा सकता है और प्रयोगशाला में भी किया जा सकता है।

अपस्थाने संरक्षण के संरक्षित क्षेत्र (Conservative Regions for Ex-Situ Conservation)–प्राकृतिक आवासों में निम्न विधियों द्वारा संरक्षण किया जाता है–

1. वानस्पतिक उद्यानों की स्थापना (Establishment of Botanical Gardens)
2. प्राणी उद्यान (Zoo) की स्थापना द्वारा
3. कृषि-अनुसंधान संस्थानों द्वारा
4. वानिकी अनुसंधान संस्थानों द्वारा

प्राकृतिक आवास के अलावा प्रयोगशाला में भी अपस्थाने संरक्षण किया जाता है, जिसकी विधियां निम्नानुसार हैं–

1. **बीज बैंक (Seed Bank)**–जिन पौधों में लैगिंक प्रजनन होता है, उनमें लैगिंक प्रजनन के फलस्वरूप बनने वाले बीजों का संरक्षण किया जाता है। बीजों के संरक्षण से दुर्लभ प्रजाति के पौधों, जो अब कम पाए जाते हैं या जिनका कृषि उपयोग कम हो गया है, का संरक्षण किया जाता है। इन बीजों का संग्रहण करने से पहले कई परीक्षण किए जाते हैं, जिनमें प्रमुख हैं रोगजनित होना।
2. **जीन बैंक (Gene Bank)**–जीन बैंक को जनन द्रव्य बैंक के नाम से भी जाना जाता है। सामान्यतः जीन बैंक का अर्थ ऐसे प्राणियों या पादपों से है, जिनसे नये प्राणी या पादप प्राप्त किए जा सकते हैं।
3. **इन-विट्रो संग्रह (In-Vitro Storage)**–यह जंगली पादपों के परिरक्षण एवं संरक्षण के लिए अपनाई जाने वाली विधि है, जिसमें वन्यजीवों के भ्रूणों को प्रयोगशाला में विकसित कर उनकी प्रजनन क्षमता को बढ़ाया जाता है, जिसमें

पौधों को कृत्रिम तरीके से उगाया जाता है, जिससे पादप जातियों की संख्या बढ़ती है और उसका संरक्षण होता है।

निष्कर्ष–जैव विविधता का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। इसके बावजूद मनुष्य अपने पर्यावरणीय निवास को उजाड़ने पर तुला हुआ है। नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण पेड़-पौधे, जीव-जंतु की लाखों प्रजातियां विलुप्त हो गई हैं तो कई विलुप्तप्रायः हैं।

सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य)
साईं महाविद्यालय, भिलाई

छत्तीसगढ़ के वन्य-जीव

श्रीमती नीहारिका देवांगन

भारत के हरित राष्ट्रीय कहलाने वाले छत्तीसगढ़ में कुल 3 राष्ट्रीय उद्यान और 11 वन्य-जीव अभयारण्य अपनी असाधारण प्राकृतिक सुंदरता, अनोखी और विभिन्न वनस्पतियों तथा पशु-वर्ग के लिए जाने जाते हैं। 3 प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान—1. इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान, 2. कांगेरघाटी राष्ट्रीय उद्यान, 3. संजय राष्ट्रीय उद्यान हैं।

1. इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान

इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान छत्तीसगढ़ के बेहतरीन और सबसे प्रसिद्ध वन्य-जीव उद्यानों में से एक है, जो सन् 1981 में बना। यह छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा जिले में स्थित है। इस उद्यान का नाम इंद्रावती नदी के नाम पर पड़ा। उद्यान का क्षेत्रफल कुल 2799.08 वर्ग कि.मी. है। भारत में टाइगर रिजर्व के तहत सन् 1983 में इसे राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा प्राप्त हुआ तथा यह भारत के सबसे प्रसिद्ध बाघ अभयारण्यों में से एक बन गया। इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान में मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय नम और शुष्क पर्णपाती वन शामिल हैं। पार्क में मुख्य रूप से पाई जाने वाली वनस्पतियां सागौन, सलाई, मछुआ, तेंदु, सिमल, हल्दु, बेर और जामुन हैं। प्रमुख वन्य जीव में लुप्तप्रायः वन्य भैंस, बारहसिंघा, बाघ, तेंदुए, भारतीय बाइसन, नीलगाय, सांभर, चौसिंगा, आलसी भालू, ढोल (जंगली कुत्ता) धारीदार हाइना, जंगली सूअर, फ्लाइंग गिलहरी, साही, पेंगोलीन के अलावा बंदर और लंगूर भी शामिल हैं। उद्यान में आमतौर पर मगरमच्छ, मॉनिटर छिपकली, भारतीय गिरगिट, भारतीय रॉक अजगर, कोबरा और रसेल बाइपर भी पाए जाते हैं। उद्यान में पक्षियों की भी विशाल विविधता है, जिनमें हिल मैना सबसे महत्वपूर्ण प्रजातियों में से एक है।

2. कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान

कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान बायोस्फीय रिजर्व के रूप में 34 कि.मी. लंबा, सुंदर तथा सुरम्य राष्ट्रीय उद्यान है। यह खोलबा नदी के किनारे जगदलपुर से 27 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग 200 वर्ग कि.मी. है। कांगेर घाटी को राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा सन् 1982 में प्राप्त हुआ। यह अपनी प्राकृतिक सुंदरता और अद्वितीय तथा समृद्ध जैव विविधता के लिए जाना जाता है। वन्य जीवन और वनस्पतियों के अलावा यहां पर्यटकों के आकर्षण केंद्र भी हैं, जैसे कुटुमसर गुफाएं, कैलाश गुफाएं, दानडक गुफाएं और

तीरथगढ़ झरने आदि। इनके अलावा कांगेर धारा और मैमसा धारा (एक मगरमच्छ पार्क), दो सुंदर पिकनिक स्थल विदेशी पर्यटकों के आकर्षण के केंद्र हैं। उद्यान की मुख्य वनस्पति मुख्यतः मिश्रित साल, सागौन तथा बांस के पेड़ों की प्रबलता के साथ वनों के नम पर्णपाती प्रकार शामिल हैं। कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान के प्रमुख वन्य जीव—बाघ, तेंदुए, माउसडीयर, जंगली बिल्ली, चीतल, सांभर, बार्किंग डीयर, गीदड़, लंगूर, रीसस मकाक, आलसी भालू, फ्लाइंग गिलहरी, जंगली सूअर, धारीदार हाइना, खरगोश, अजगर आदि हैं। इनके अलावा कोबरा, मगरमच्छ, मॉनिटर छिपकली भी पाए जाते हैं। पक्षियों में हिल मैना, चित्तीदार उल्लू, लाल जंगली फाउल, मोर, तोता, ईगल, फाकटा, भूरा तीतर, ट्री पाई तथा बगुला शामिल हैं।

3. संजय राष्ट्रीय उद्यान

संजय राष्ट्रीय उद्यान, छत्तीसगढ़ के सरगुजा और कोरिया जिले में स्थित है। यह मध्य भारत में सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्यानों में से एक है। यह घासीदास राष्ट्रीय उद्यान के नाम से भी जाना जाता है। संजय राष्ट्रीय उद्यान अपनी समृद्ध और विविध वनस्पति और जीवों के लिए प्रसिद्ध है। इसे राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा सन् 1981 में प्राप्त हुआ। संजय राष्ट्रीय उद्यान लगभग 2303 वर्ग कि.मी. के क्षेत्रफल में फैला है। इस राष्ट्रीय उद्यान में नाले तथा नदियों के पानी के बारहमासी स्रोत हैं तथा वन्य जीवन और पक्षियों के लिए पर्याप्त पानी की आपूर्ति करते हैं। संजय राष्ट्रीय उद्यान में वनस्पति मुख्यतः साल तथा बांस वनों के व्यापक पैच के साथ मिश्रित वन शामिल हैं। यहां के अन्य प्रमुख पौधों में सलाई, धवादा, पलास, सीमल, महुआ, हर्र, हल्दु, बेर तथा तेंदु शामिल हैं। संजय राष्ट्रीय उद्यान वन्य जीवन की एक विस्तृत विविधता का उदाहरण है। संजय राष्ट्रीय उद्यान में प्रमुख रूप से बाघ, तेंदुए, चीतल, नीलगाय, चिंकारा, सियार, सांभर, चार सींग वाले मृग, जंगली बिल्ली, बार्किंग डीयर, साही, बंदर, बाइसन, धारीदार हाइना, आलसी भालू, जंगली कुत्ते, जंगली सूअर, कोबरा, मॉनिटर छिपकली, अजगर आदि पाए जाते हैं। पक्षियों में मुख्य रूप से मोर, बुलबुल, ओरिओल, वागटेल्स, ब्लू किंगफिशर, फाकटा, बत्तख, नीलकंठ, कबूतर, डैबचिक, क्रिमसन, गुच्छेदार चिड़िया, तीतर, इरगेट तथा हेरोन शामिल हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य में जैव विविधता विस्तृत रूप में पाई जाती है। आवश्यकता है इसके संरक्षण की तथा विलुप्त हो रही कुछ प्रजातियों को बचाने की।

विभागाध्यक्ष, वनस्पति विभाग
स्वामी स्वरूपानंद इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन,
हुडको, भिलाई

वृक्ष-संरक्षण और वृक्षारोपण की अनिवार्यता

संज्ञा टंडन

जॉर्ज बर्नाड शॉ को फूलों से बहुत प्रेम था। एक दिन उनके एक मित्र उनके घर पधारे। घर में कोई भी फूलदान न देखकर उन्होंने आश्चर्य से पूछा, "आपको फूलों से बड़ा प्रेम है, लेकिन आपके कमरे में तो एक भी फूल नहीं है?" बर्नाड शॉ ने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "प्रेम तो मुझे अपने बच्चों से भी है, लेकिन क्या मैं उनकी गर्दन काटकर अपने कमरे में सजा लूं? मुझे फूलों से प्रेम है, इसीलिए तो वे मेरे बाग में हंसते, खिलते, खेलते हैं।"

कितनी सटीक बात कही थी उन्होंने। यही बात पेड़-पौधों के संदर्भ में कही जाए तो हम कहेंगे कि क्या नहीं देते हमें वृक्ष? खुशियां-ही-खुशियां, हरियाली, खाद्य पदार्थ, औषधि, छाया, पर्यावरण और प्रदूषण सुरक्षा। उनसे हमें प्रेम क्यों नहीं होना चाहिए? लेकिन फिर भी मानव इन्हें सदियों से काटता चला आ रहा है—इन्हें मुर्दा बनाकर अपने ऐशो-आराम के साधन जुटाने के लिए या फिर ईंधन की जरूरतें पूरी करने के लिए। किसी को चिंता नहीं है भविष्य की। कितना डर लगता है यह जानकर कि विश्व में प्रति मिनट 77 हेक्टेयर भूमि पर वन कट रहे हैं, जबकि विशेषज्ञों का मानना है कि प्राकृतिक संतुलन और जीवन-रूपी चक्र को चलाने के लिए पृथ्वी का 33 प्रतिशत भाग हरियाली से युक्त होना चाहिए।

चांद से लौटे यात्रियों ने चांद से दीखती हुई खूबसूरत पृथ्वी का जिस प्रकार वर्णन किया था, उसमें अत्यंत महत्वपूर्ण बात थी पृथ्वी का हरा-भरा दिखना। हरियाली ने न सिर्फ हमारी धरा को खूबसूरत बनाया है, बल्कि यही सबसे बड़ा कारण है पृथ्वी पर मानव-जीवन के अस्तित्व का। पेड़ हैं तो जल है, और पेड़ हैं तो अनुकूल जलवायु है। हम सौभाग्यशाली हैं कि पृथ्वी पर हम मानव के रूप में विद्यमान हैं, लेकिन हमारा अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है, धरा को हरियाली-विहीन करते जाने से। आज की विस्फोटक स्थिति यह है कि केवल 10 प्रतिशत क्षेत्र में अनिवार्य 33 प्रतिशत हरियाली की जगह बची है। यदि इसी तेजी के साथ वन-कटाई का कार्य चलता रहा तो बढ़ती जनसंख्या के सामने 10 प्रतिशत होता कितना-सा है!

आज जरूरत केवल इस बात की ही नहीं है कि हम लगे-लगाए पेड़ 'न काटें'। हो सकता है कि उनमें से न जाने कितने हमारे पुरखों के हाथों से रोपित किए गए होंगे? जरूरत इस बात की है कि हम अपने और अपनी आगामी पीढ़ियों के लिए

अधिकाधिक पेड़ 'लगाते भी चलें'। कुछ लोग कह सकते हैं कि यहां तो पीने के पानी की इतनी किल्लत है और आप नये वृक्ष लगाने की बात कर रहे हैं! इसका जवाब हम देंगे कि चूंकि हमने वृक्ष नहीं लगाए हैं, सिर्फ काटते रहे हैं, उसी का दुष्परिणाम है यह पानी की किल्लत।

प्राचीन ऋषियों ने वन-उपवन लगाने की परंपरा आश्रमों के साथ डाली थी। आज के वैज्ञानिकों के अनुसार भी जहां-जहां घनी बस्तियां बसाई जाती हैं, वहां बीच में 'ग्रीन बैल्ट' की गुंजाइश छोड़ना आवश्यक है। वृक्षों की कमी देखकर पुराने समय में भी कवि-हृदय ऋषि धरती माता से कह उठते थे—

यथा पल्लव पुष्पाढ्या, यथा पुष्पफलद्र्धयः।
यथा फलादृर्ध स्वारोहा, हा मातः क्वागमन द्रुमाः ॥

अर्थात् पत्तों के समान ही जिनमें प्रचुर पुष्प होते थे और पुष्पों के समान ही जिनमें प्रचुर फल लगते थे और इतने फलों से लदे होने पर भी जो सरलता से चढ़ने योग्य होते थे, बता वे वृक्ष अब कहां गए?

निदान बहुत सरल है। मांग बहुत छोटी-सी है। यदि 'एक व्यक्ति, एक बड़ा और स्थायी वृक्ष' का सिद्धांत प्रत्येक व्यक्ति अपना ले, तब भी स्वर्णिम युग आने में देर न लगे। जीवनदाता वृक्षों को काटना हम जीवहत्या के समान समझें। प्रकृति के अंग में वृक्ष, प्रदूषण निवारण के साथ-साथ इस धरा का सौंदर्य भी बढ़ाते रहेंगे और मानव को विविध जीवन-तत्व भी देते रहेंगे। आवश्यकता है बस जन-चेतना जागने की।

क्रांतिनगर, बिलासपुर (छ.ग.)

भारतीय संस्कृति में वृक्षों की महत्ता

डॉ. मंजुलता सूद/ श्रीमती शैलबाला जैस

आदि-मानव की सभ्यता-संस्कृति का उद्‌भव और विकास वन्य प्रदेशों में ही हुआ था। वेदों जैसा प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य सघन वनों में स्थापित आश्रमों में ही रचा गया। वन प्रकृति का सजीव, साकार स्वरूप प्रकट करते हैं, इसके अतिरिक्त ये मनुष्य के पालन-पोषण के उपयोगी तत्वों के भी स्रोत एवं कारक हैं। अग्नि-पुराण में कहा गया है, "एक वृक्ष दस पुत्रों के बराबर होता है," इसी से वनों का महत्व स्पष्ट होता है। प्रकृति और मानव सृष्टि के संतुलन का मूल आधार वन ही हैं। वे तरह-तरह के फल, फूल, वनस्पतियां, वनौषधि, जड़ी-बूटियां एवं खाद्य पदार्थों की प्राप्ति का 'स्थल' तो हैं ही, धरती पर जो प्राण-वायु का संचार हो रहा है, उसके समग्र स्रोत भी हैं। वनों, वृक्षों का मानव के साथ संबंध युगों से चला आया है। वन व वृक्ष अन्य सभी तरह के संसाधन प्रदान करते हुए रंग-बिरंगे पक्षियों, जीवों एवं वन्य प्राणियों को उनका भोजन तो देते ही हैं, बल्कि घोंसले एवं प्राकृतिक स्थली के रूप में उनको आश्रय प्रदान कर प्राकृतिक संतुलन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। पुरातनकाल से ही वृक्षों के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक व औषधीय प्रभाव का वर्णन पौराणिक, वैदिक, लोककथाओं, ग्रंथों व कहानियों में मिलता है। आयुर्वेद, चरक तथा सुश्रुता के विभिन्न ग्रंथों में औषधीय गुण वाले वृक्षों एवं वनस्पतियों का वर्णन किया गया है। यूनानी व आयुर्वेदिक उपचारों की संपूर्ण प्रणाली ही पौधों व वनोपज औषधियों पर आधारित है। यहां कुछ वृक्षों एवं पौधों के बारे में उल्लेख किया जा रहा है, जो भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, व उन्हें पूजित वृक्षों एवं पौधों के रूप में भारतीय जन अपने चहुं ओर उगाते हैं, उनकी देखभाल व संरक्षण करते हैं। पर्यावरणीय संस्कृति को जागृत करने में पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम में इन वृक्षों का बहुत बड़ा योगदान है, साथ-साथ इन पूजित वृक्षों द्वारा जो आयुर्वेदिक दिव्य औषधियां जन-जन को सहज रूप से सर्वसुलभ होती हैं, उसका भी वर्णन किया गया है।

बरगद–(वानस्पतिक नाम : फाइकस बैघालेंसिस, कुल मोरेसी) बड़, अंग्रेजी में बेनियन एवं संस्कृत में बहुपद के नाम से जाना जाता है। बरगद वृक्ष की दीर्घायु के कारण हिंदू पुराणों में इसे 'अमरत्व का प्रतीक' वृक्ष की संज्ञा दी गई है। बरगद भारत का राष्ट्रीय वृक्ष है। पुरातनकालीन, भगवान् बुद्ध की जातककथाओं में इस विशालकाय वृक्ष का उल्लेख है। मंदिरों, चौराहों व सार्वजनिक स्थलों, विद्यालयों में बहुतायत से यह देखने को मिलता है। बरगद पेड़ की पत्तियां, शाखाएं व इसकी वायवीय जड़ें विभिन्न पक्षियों एवं छोटे जंतुओं

को आश्रय एवं भोजन प्रदान करती हैं, साथ-ही-साथ पथिकों को घनी छांव भी प्रदान करती हैं। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार बरगद के पेड़ में आत्माओं का वास माना जाता है, अतः बुरी आत्माओं से मुक्ति एवं अच्छी आत्मा से आशीर्वाद व साथ-ही-साथ अमरत्व प्राप्ति हेतु इसकी पूजा-अर्चना करने का विधान मान्य है। आयुर्वेद में बरगद के पत्ते, जड़, तना, छाल एवं फल से प्राप्त दवाओं के बारे में वर्णन किया गया है। इनसे प्राप्त दवाओं का प्रयोग घाव भरने, सूजन एवं लाली दूर करने, छाल का उपयोग टॉनिक, दंत मंजन तथा रक्त शर्करा के नियंत्रण में, तने एवं पत्तों से प्राप्त सफेद स्राव का उपयोग दांत दर्द एवं पेचिश की दवा के रूप में किया जाता है।

पीपल–(वानस्पतिक नाम : फाइकस रिलीजियोसा, कुल मोरेसी)–अंग्रेजी में पीपल, संस्कृत में अश्वथा के नाम से जाना जाता है। यह भगवान् विष्णु के प्रतीक एवं वासस्थल के रूप में मान्य वृक्ष है। आध्यात्मिक तथ्य है कि पीपल में 'त्रिदेव का वास' है। जड़ में ब्रह्मा, तने में विष्णु एवं पत्तों में शिव बसते हैं। भगवान् बुद्ध को इस वृक्ष के नीचे बोधज्ञान प्राप्त हुआ था। यह प्रबुद्धता एवं शांति का प्रतीक है, इस कारण बौद्ध धर्मानुयायी इसे बोधिवृक्ष कहते हैं। हिंदू एवं बौद्ध दोनों ही धर्मानुयायी इसकी पूजा-अर्चना करते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता (3000 ईसा पूर्व से 1700 ईसा पूर्व) में व मोहनजोदड़ोकालीन सभ्यता में भी पीपल वृक्ष की पूजा का उल्लेख है। देवालयों, घर के आंगन, सार्वजनिक स्थानों, चौपाल, विद्यालयों में बहुतायत से यह वृक्ष पाया एवं लगाया जाता है। पीपल के पेड़ को काटना ब्रह्म-हत्या के समान नर्कगामी एवं रक्षित करना पुण्य कारक माना गया है। पीपल वृक्ष का हर भाग दवाई के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके तने की छाल घाव भरने एवं सूजन के लिए, जड़ को पेट दर्द, पेट के छाले व दांत दर्द हेतु, फल कब्ज दूर करने, उल्टी रोकने, प्यास शांत करने व हृदय रोग दूर करने हेतु प्रयुक्त होते हैं। फलों का सुखाया हुआ चूर्ण अस्थमा व बीज मूत्र रोगों में प्रभावी है। पत्तियां घाव भरने व उनका रस गर्म कर कान दर्द एवं कब्ज दूर करने में सहायक है। पीपल की छांव में प्राण वायु की प्रचुरता है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

नारियल–(वानस्पतिक नाम : कोकस न्यूसिफेरा लि, कुल एरिकेसी)– इसे अंग्रेजी में कोकोनट और संस्कृत में नारिकेल कहा जाता है। इसे कल्प वृक्ष की संज्ञा दी गई है अर्थात् 'इच्छापूर्ति वृक्ष' पूजित वृक्ष है। यह दिव्य चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। दक्षिण भारत में प्रचुरता से मिलने वाला यह वृक्ष पूरे देश में पाया जाता है। देवालयों में पूर्जा-अर्चना हेतु व किसी भी मंगल-कार्य के प्रारंभ में नारियल फोड़ना शुभ माना जाता है। मनोकामना पूर्ति हेतु भी नारियल इष्ट देव को चढ़ाया जाता है। नारियल खोल पर तीन काले निशान भगवान् शिव के त्रिनेत्र के प्रतीक माने जाते हैं। नारियल वृक्ष का प्रत्येक भाग मनुष्य के कार्य-पूर्ति हेतु प्रयोग में आता है। फल के रूप में खाने के प्रयोग के साथ ही इसका तेल खाने व मालिश करने व त्वचा एवं बालों का पोषण करने एवं उन्हें मुलायम व स्वस्थ बनाने हेतु उपयोग में लाया जाता है। यह हृदय रोग, उच्च दाब, पाचन, शर्करा, घाव भरना, बुखार, दर्द, दांत दर्द, अस्थमा की दवाइयों में प्रयुक्त होता है। नारियल का प्रयोग ग्रीष्म ऋतु में शारीरिक उष्णता दूर कर पोषण व विटामिन प्रदान करता है। उल्टी, पेचिश, कॉलरा व बुखार दूर करने में सहायक है। नारियल का फल चटनी, कच्ची गरी खाने में, खोपरा

विभिन्न मिठाइयां, सब्जी, करी इत्यादि बनाने में प्रयुक्त होता है। इसकी पत्तियां एवं तना घाव भरने में व अन्य भागों का भी पूर्णरूपेण उपयोग किया जाता है।

आम–(वानस्पतिक नाम : मिंजीफेरा इंडिका ली, कुल एनाकार्डियेसी)–अंग्रेजी में मैंगो व संस्कृत में आम्र के नाम से पहचाना जाने वाला, यह सदाबहार छायादार वृक्ष है। आम भारत का राष्ट्रीय फल है। भगवान् गणेश की पूजा-अर्चना पके आम्रफल से व देवी सरस्वती की आराधना आम्र मंजरी से की जाती है। घर-आंगन में आम्र वृक्ष लगाने की पुरातनकालीन परंपरा रही है। शुभ एवं मांगलिक कार्यों में आम्र-पत्र का बहुतायत से प्रयोग एवं इससे द्वार पर वंदनद्वार बनाने की परंपरा का निर्वाह शाश्वत रूप से आज भी प्रचलन में है। आम की लकड़ी, छाल भी शुभ मानी जाती है एवं हवन-पूजन में इसका उपयोग किया जाता है। पके आम्र फल में फाइटोकेमिकल पदार्थ, विटामिन ए, सी व ई पाए जाते हैं। यह स्वादिष्ट, पोषक, मीठा एवं खुश्बूदार होता है एवं अच्छा ऑक्सीडेंट है।

आयुर्वेदिक दवाइयों में आम्रवृक्ष के प्रत्येक भाग–जड़ से लेकर फल व गुठलियों तक का उपयोग किया जाता है। इसीलिए कहा गया है कि 'आम के आम और गुठलियों के दाम'। यूनानी दवाइयों में पके आम्र फल का उपयोग तंत्रिका तंत्र, विकार एवं रक्त संबंधी दोषों के निवारण हेतु किया जाता है। आयुर्वेद में आम्र फल सुखाकर उल्टी, पेचिश व मूत्र विकार, छाल का प्रयोग डिफ्थीरिया में, इसके तने से प्राप्त गोंद का उपयोग एड़ी, त्वचा व सूखा रोग के उपचार में किया जाता है। आम की पत्ती, जड़, तना, कच्चे एवं अधपके फलों का उपयोग जीवाणुरोधी रूप में किया जाता है। आम की गुठली से विटामिन एवं विभिन्न आयुर्वेदिक दवाइयां बनाई जाती हैं। कच्चे आम का चूर्ण, अमचूर आदि बनाकर पाचन संबंधी रोगों का निराकरण किया जाता है। कच्चे आम्रफल का पना गर्मी शांत कर, लू के निराकरण में सहायक है। पके आम्रफल को हृदय रोग, धड़कन बढ़ना, रक्ताल्पता के निदान व शारीरिक पोषण हेतु उपयोग में लाया जाता है। विभिन्न स्वादिष्ट व पोषक भोज्य पदार्थ कच्चे व पके आम्रफल से बनाए जाते हैं।

केला–(वानस्पतिक नाम : म्यूसा सेपियेंटम पेराडिसीयाका, कुल म्यूसेसी) अंग्रेजी में बनाना, संस्कृत में इसके फल को अमृत फल कहा जाता है। भारतीय परंपरा में इसे सौभाग्य व उर्वरता का प्रतीक माना जाता है। इस कारण भारत में मांगलिक अवसर पर केले के वृक्ष की पूजा सौभाग्यदायिनी मानी जाती है। इसके पत्तों का उपयोग दक्षिण भारत में भोजन परोसने हेतु पारंपरिक ढंग से होता है। स्वादिष्ट केले के वृक्ष का प्रत्येक भाग पूर्णरूपेण उपयोगी है। खाद्य के रूप में केले के कच्चे व पके फलों का उपयोग इनकी सर्वसुलभता के कारण बहुतायत से होता है। पाचन की विभिन्न समस्याओं–कब्ज, डायरिया एवं रक्तअल्पता, वात, एलर्जी, गुर्दा एवं मूत्र रोग, घाव भरने एवं जले हुए स्थान की चिकित्सा में केले का प्रयोग किया जाता है।

नीम–(वानस्पतिक नाम : एंजायरेक्टा इंडिका, कुल मेलियेसी)–अंग्रेजी नाम नीम, संस्कृत में नींब कहा जाता है। नीम के औषधीय गुणों के कारण इसे चमत्कारी वृक्ष एवं ग्रामीण औषधीय वृक्ष की संज्ञा दी गई है। आयुर्वेद में 4000 वर्ष पूर्व से ही नीम के औषधीय गुणों के बारे में वर्णन किया गया है। नीम को अरिष्ट अर्थात् कष्टों को हरने वाला तथा अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करने वाला व सर्वरोगं निवारक भी कहा जाता है। भारतीय

परंपरा में नीम को आंगन में लगाने को प्रोत्साहन दिया गया है। यह घर में बुरी आत्माओं को आने से रोकता है, ऐसी सर्वप्रचलित मान्यता है। घर के आस-पास लगा नीम का वृक्ष छांव के साथ सर्वसुलभ औषधियां भी प्रदान करता है। इसकी छांव रोगमुक्ती में सहायक है। नीम के फल, बीज, तेल, पत्ती, छाल, जड़, तना आदि स्वाद में कड़वे होते हैं व विभिन्न रोगों का निराकरण करने का गुण रखते हैं।

नीम की पत्तियां, शीतला माता, चेचक एवं त्वचा घाव भरने हेतु जीवाणु रोधक के रूप में इस्तेमाल की जाती है। इसका काढ़ा बनाकर पीने से बुखार व रक्त शोधन में सहायक होने के साथ-साथ दर्दनाशक गुण भी रखता है। विभिन्न प्रकार के त्वचा रोगों पर नीम अपने जीवाणुरोधी एवं विषाणुरोधी गुणों के कारण प्रभावी है। जैसे—एक्ने, कील-मुहांसे, हरपीज, छाले, घाव आदि। नीम की जड़, छाल, पत्तियां—जूं, मच्छर, खटमल नष्ट करने हेतु प्रभावी हैं। दांत साफ करने हेतु व दंत रोगों में नीम की दातौन प्राचीनकाल से व आज भी ग्रामीण भारत में उपयोग में लाई जाती है। नीम व इसके विभिन्न भागों से प्राप्त तेल, रस आदि का प्रयोग सौंदर्य प्रसाधन, साबुन, क्रीम, शैंपू व औषधियां बनाने में होता है। यह वृक्ष सर्वसुलभ है। निबौंली—नीम फल से निकला तेल भी औषधीय गुणयुक्त है। इसका प्रयोग कीटनाशक व जीवाणुनाशक के रूप में भी किया जाता है।

आंवला—(वानस्पतिक नाम : फाइलेंथस इंबलीका, कुल युर्फोविऐसी)—अंग्रेजी में गूजबेरी, संस्कृत में अमालकी के नाम से वर्णित है। जिस तरह धरती माता के रूप में संपूर्ण सृष्टि का पालन-पोषण करती है, उसी तरह आंवला फल भी अत्यधिक पोषण प्रदान करता है। अतः धरती माता की तरह ही पालनकर्ता मानकर इस वृक्ष व आंवला फल की पूजा की जाती है। बुरी नजर व बलाओं को यह वृक्ष व इसका फल दूर करते हैं, ऐसी मान्यता है। यह वृक्ष भगवान् विष्णु को प्रिय है, ऐसा माना गया है। सर्वगुणों की खान आंवला फल बहुत ही पोषक है। आंवला रसयुक्त जल से स्नान त्वचा रोगों को दूर कर शोधक गुण प्रदान करता है। एक आंवले में दो संतरे के बराबर विटामिन-सी होता है। आंवला विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियां एवं टॉनिक बनाने के काम आता है। यह उल्टी, चक्कर आना, भारीपन, शरीर की गर्मी दूर कर शीतलता प्रदान करता है, इसका सत्व लीवर टॉनिक व शारीरिक थकान दूर कर शरीर में नव-चेतना व ऊर्जा का प्रवाह करता है। यह च्यवनप्राश का प्रमुख घटक है। त्रिदोष नाशक त्रिफला—चूर्ण, हरड़, बहेड़ा व आंवला को मिलाकर बनाया जाता है। आंवला फल दस्तावर व बहुमूत्रक है। गर्मियों में शीतलता प्रदान करता है व ठंड में आंवले का विभिन्न जड़ी-बूटियों के साथ मिलाकर टॉनिक बनाकर सेवन किया जाता है। यह रक्तशोधक, रक्तविकार दूर करने वाला, लौह तत्व गुणों का अच्छा स्रोत व हृदयरोगों में लाभकारी है। सूखे व ताजे आंवला फल का पेचिश व उल्टी में चूर्ण या रस निकालकर प्रयोग किया जाता है। आंखों व बालों की समस्याओं में इसका सेवन व सिर की त्वचा में आंवला तेल की मालिश, सिर दर्द दूर कर बालों की समस्याओं को दूर करके उन्हें स्वस्थ व चमकदार बनाता है। रक्त शर्करा नियंत्रण में प्रभावी है। बालों की सफाई एवं पोषण हेतु शीकाकाई, आंवला तथा मेंहदी का प्रयोग किया जाता है। सौंदर्य प्रसाधन, तेल, क्रीम आदि में आंवला फल का प्रयोग बहुतायत से होता है।

तुलसी—(वानस्पतिक नाम : ओसिमम टेन्यूइफोरम, कुल लेमियेसी)—अंग्रेजी नाम होली बेसिल, संस्कृत नाम वृंदा। भारतीय पौराणिक कथाओं में तुलसी की देवी रूप में

पूजा-अर्चना की जाती है। यह एक चमत्कारिक पौधे के रूप में जाना जाता है। तुलसी विगत पांच हजार वर्षों से भारत में श्रद्धेय, शरीर, मन और आत्मा के लिए चिकित्सकीय औषधिय के रूप में जानी जाती है।

यम द्वारा तुलसी को वरदान है कि जिस घर में तुलसी की पूजा होती है, वहां बीमारियां नहीं होंगी। पद्मपुराण में वर्णित है कि प्राकृतिक वातावरण में रचित तुलसी की महक वातावरण को शुद्ध व सभी नकारात्मक वस्तुओं व नकारात्मक प्रभावों से दूर रखती है। भगवान विष्णु व कृष्ण को प्रिय तुलसी अलौकिक, आध्यात्मिक व औषधीय गुणों की खान है। तुलसी पौधे के सभी भाग औषधीय गुण रखते हैं। भारतीय घरों में हिंदू धर्मानुयायी तुलसी को घर के आंगन में लगाते हैं, शाम को वहां दीया जलाकर पूजा करते हैं। तुलसी को लक्ष्मी का प्रतीक मानकर प्रतिदिन जल चढ़ाते हैं। पुराणकारों ने तुलसी में ब्रह्मा, विष्णु, महेश व सभी देवताओं का निवास बतलाते हुए यहां तक कहा है कि जो तुलसी की पूजा करते हैं, उनको अनायास ही सभी देवी-देवताओं की पूजा का लाभ प्राप्त हो जाता है। तुलसी को लगाने एवं रक्षा करने, जल देने, दर्शन करने, स्पर्श करने से मनुष्य के वाणी, मन और काया के समस्त दोष दूर होते हैं। प्राचीनकाल में अमृत मंथन के अवसर पर समस्त औषधियों और रसों से पहले विष्णु भगवान् ने समस्त प्राणियों के उपकारार्थ तुलसी को उत्पन्न किया।

तुलसी पौधे के सभी भाग फल, पत्ते, तना, मंजरी से लेकर जड़ तक औषधीय गुण रखते हैं। यह कफ, पित्त, खांसी, ज्वर, वायु, चर्म रोग दूर कर शरीर को बल प्रदान करती हैं। मलेरिया बुखार, सर्दी आदि में विभिन्न अन्य आयुर्वेदिक औषधियों के साथ तुलसी का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है, यह सर्वविदित है। जीवाणुरोधी व विषाणुरोधी गुणों के कारण पर्यावरण रक्षा में तुलसी का महत्वपूर्ण स्थान है।

इसी तरह विभिन्न प्रकार के औषधीय वृक्षों व वनस्पतियों जैसे बेल, पपीता, अमरूद, अनार, जामुन, अशोक, कदंब व शमी आदि को मानव द्वारा अपने चारों ओर लगाया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति व पौराणिक मान्यताओं में वृक्षों को संरक्षित कर उनका पल्लवन व पालन-पोषण करने व जल चढ़ाने को धार्मिक मान्यताओं व पूजा-अर्चना के साथ जोड़कर पर्यावरण संरक्षण, संतुलन व संस्कृति के उत्थान में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

सहायक प्राध्यापक,
जंतु विज्ञान एवं सहायक प्राध्यापक,
गृह-विज्ञान विभाग,
कला एवं वाणिज्य कन्या महाविद्यालय,
देवेंद्रनगर, रायपुर-492004 (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ की नयी निस्तार नीति

जी. फणींद्रराव

वनों के बचाव अर्थात् पर्यावरण रक्षा के साथ-साथ ग्रामीणों की निजी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु छत्तीसगढ़ शासन ने सभी पक्षों पर विचार-विमर्श कर नयी निस्तार नीति की घोषणा की है। वनों के आस-पास रहने वाले ग्रामीण बहुत हद तक निस्तार के लिए जंगल पर आश्रित होते हैं। पर्यावरण रक्षा के नाम पर उन्हें उनके मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। इस बिंदु को ध्यान में रखकर छत्तीसगढ़ वन-विभाग ने जनहित में नयी निस्तार नीति प्रस्तुत की। इसका सकारात्मक प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचिर हो रहा है।

निस्तार व्यवस्था कहीं भी विधिवित परिभाषित नहीं है। परंतु इसका तात्पर्य क्षेत्रों में रह रहे कृषकों, कृषि मजदूरों एवं ग्रामीण कारीगरों को जलाऊ बल्ली, बांस एवं अन्य वनोपज को निजी घरेलू आवश्यकता की पूर्ति से रहता है। पूर्व में जो मालगुजारी व जागीरदारी वन थे, उनसे ग्रामीणों को कुछ विशिष्ट सुविधाएं मिला करती थीं। जब राज्य शासन द्वारा इन वनों को संरक्षित वनों के रूप में लिया गया, तब उनके चले आ रहे अधिकारों व सुविधाएं को यथावत मान्य किया गया था और वहीं से निस्तार का प्रदाय प्रारंभ हुआ। पूर्व में यह सुविधा केवल उन्हीं ग्रामों को प्राप्त थी, जहां के वन राज्य शासन के प्रबंध में आ गए। कालांतर में यह सुविधा व्यापक होकर बढ़ती गई और अधिकांश आपूर्ति उन क्षेत्रों में होने लगी, जो वनों से दूर थे व जिन्हें इस सुविधा की पात्रता नहीं थी। फलस्वरूप वनों पर निर्भर ग्रामीण, जिनमें अधिकांश आदिवासी हैं, निस्तार आपूर्ति के अभाव में वनों से लकड़ी काटकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर रहे थे, जिससे न केवल वनों की हानि होती थी, वरन् वनों पर आधारित ग्रामीणों का शोषण भी होता था।

राज्य के लगभग 40 प्रतिशत वन दयनीय अवस्था में हैं। चूंकि वनों के पास रहने वाले ग्रामीणों को इन वनों से लाभ नहीं मिल रहा था, अतः वे उसकी सुरक्षा व विकास के प्रति उदासीन हो गए। वनों से उनकी आवश्यकता की पूर्ति होने पर एक ओर अवैध कटाई में कमी आएगी, वहीं वे वनों की सुरक्षा, विकास एवं प्रबंधन हेतु जागरुक हो जाएंगे। प्रक्षेत्र वानिकी तथा कृषि वानिकी के अंतर्गत कृषकों द्वारा बड़ी मात्रा में रोपण किया गया है। वनों से रियायती दर पर लकड़ी दिए जाने के कारण उनके द्वारा उगाई जाने वाली लकड़ी का सही मूल्य नहीं मिल रहा था। इससे यह कार्यक्रम प्रभावित हो रहा था।

राष्ट्रीय वन नीति 1988 में भी यह निहित है कि वनों पर अधिकार व वनों से मिलने वाली सुविधाएं वनों के आस-पास रहने वाले समुदाय के लिए होनी चाहिएं। इसी परिप्रेक्ष्य

में विश्व बैंक द्वारा भी यह सलाह दी गई थी कि वनों के बाहर दी जाने वाली रियासतों को युक्तियुक्त किया जाए।

उपरोक्त समस्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निस्तार नीति निर्धारित की गई है, जिसमें निस्तार के अंतर्गत सुविधा की पात्रता केवल उन ग्रामीणों के लिए पूर्व अनुसार रहेगी, जो वनों की सीमा से 5 कि.मी. की परिधि में बसे हुए हैं।

नगरनिगम, नगरपालिका एवं नगर पंचायत क्षेत्र—चाहे ये वन सीमा से पांच कि.मी. की परिधि में या उनके बाहर स्थित हों, में वन-विभाग वनोपज प्रदाय की कोई व्यवस्था नहीं करेगा। इन क्षेत्रों के निवासी स्थानीय बाजार से ही वनोपज प्राप्त करेंगे। 5 कि.मी. की परिधि के बाहर स्थित ग्रामों को निस्तार के अंतर्गत कोई रियायत प्राप्त नहीं होगी। परंतु उपलब्धता के आधार पर पूर्ण बाजार मूल्य पर इन ग्रामों के ग्रामीणों को ग्राम पंचायत के माध्यम से वनोपज उपलब्ध कराई जा सकेगी। परंतु वनों से स्वयं के उपयोग के लिए सिर बोझ द्वारा उपलब्धतानुसार गिरी-पड़ी, मरी-सूखी जलाऊ लकड़ी ले जाने की सुविधा पूर्ववत रहेगी।

इस निस्तार नीति का क्रियान्वयन प्रदेश में दिनांक 1 जुलाई, 1996 से किया गया है। उल्लेखनीय है कि सन् 1958 से चली आ रही निस्तार व्यवस्था पूरे ग्राम विशेष के लिए होती थी तथा उसमें आदिवासी समुदाय या जनजाति समुदाय के लिए कोई विशिष्ट व्यवस्था नहीं थी, केवल बसोड़ जाति के लोग इसके अपवाद थे। नयी नीति में यही व्यवस्था पूर्ववत रखी गई है। अर्थात् वनों से 5 कि.मी. की परिधि में आने वाले समस्त ग्रामों के समस्त ग्रामीण सुविधा के पात्र होंगे, इसमें आदिवासी समुदाय या जनजाति समुदाय के लिए पूर्व अनुसार कोई अलग व्यवस्था नहीं है। पहले की भांति उपलब्धता के आधार पर उन्हें बांस-बल्ली आदि उपलब्ध कराया जाएगा तथा ग्राम वन समिति/ वन सुरक्षा समिति/ ग्राम पंचायत द्वारा उपलब्ध मात्रा का सुसंगत वितरण किया जाएगा।

नवीन निस्तार नीति

राज्य शासन द्वारा पूर्व में जो सुविधाएं दी जा रही थीं, वर्तमान निस्तार नीति में उन सुविधाओं में संशोधन किया गया है। अब ये सुविधाएं निम्न प्रकार हैं—

1. राज्य में प्रचलित निस्तार व्यवस्था को समाप्त करते हुए बस्तर जिला एवं बसोड़ समुदाय के लिए प्रचलित प्रावधानों को छोड़कर शेष क्षेत्र के लिए निम्नानुसार निस्तार नीति निर्धारित की जाती है—

   (क) निस्तार के अंतर्गत सुविधा की पात्रता केवल उन ग्रामीणों के लिए पूर्व अनुसार रहेगी, जो वनों की सीमा से 5 कि.मी. की परिधि के अंतर्गत स्थित हैं। 5 कि.मी. की परिधि की गणना में यदि किसी ग्राम का आंशिक भाग भी आता है तो वह पूर्ण ग्राम परिधि के भीतर जाएगा। ऐसे ग्रामों को वन-विभाग अधिसूचित करेगा।

   (ख) नगरनिगम, नगरपालिका एवं नगर पंचायत क्षेत्र चाहे वे वन सीमा 5 कि.मी. की परिधि में या उनके बाहर स्थित हों, के लिए वन-विभाग वनोपज प्रदाय की कोई व्यवस्था नहीं करेगा। इन क्षेत्रों के निवासी स्थानीय बाजार से ही वनोपज प्राप्त करेंगे।

(ग) 5 कि.मी. की परिधि के बाहर स्थित ग्रामों को निस्तार के अंतर्गत कोई रियायत प्राप्त नहीं होगी। परंतु उपलब्धता के आधार पर पूर्ण बाजार मूल्य पर इन ग्रामों के ग्रामीणों को ग्राम पंचायत के माध्यम से वनोपज उपलब्ध कराई जा सकेगी।

(घ) वनों से स्वयं के उपयोग के लिए अथवा बिक्री के लिए सिर-बोझ द्वारा उपलब्धतानुसार गिरी-पड़ी, मरी-सूखी, जलाऊ लकड़ी ले जाने की सुविधा पूर्ववत रहेगी।

2. 5 कि.मी. की परिधि में आने वाले ग्रामों को उपलब्धता के आधार पर वनोपज का प्रदाय संयुक्त वन प्रबंधन के लिए गठित ग्राम वन समिति, वन सुरक्षा समिति के माध्यम से किया जाएगा।
3. जिन 5 कि.मी. तक के ग्रामों में संयुक्त वन-प्रबंध समिति गठित नहीं हुई है, वहां ऐसी समिति गठित होने तक उपलब्धता के आधार पर स्थापित विभागीय निस्तार डिपो से वनोपज का प्रदाय किया जाएगा। इस प्रकार के निस्तार डिपो की स्थापना ऐसे ग्राम समूह के लिए एक जाई रूप से की जाएगी।
4. वनों से 5 कि.मी. से अधिक दूरी वाले ग्रामों के लिए यदि संबंधित ग्राम पंचायत द्वारा प्रस्ताव पारित कर वनोपज की मांग की जाती है तो उपलब्धता के आधार पर उन्हें ऐसे वनोपज निर्धारित मूल्य पर जिसमें रॉयल्टी, विदोहन, परिवहन एवं अन्य वास्तविक व्यय का समावेश रहेगा, प्रदाय की जाएगी तथा इसके लिए वनोपज का मूल्य अग्रिम रूप से देना होगा।
5. उपरोक्तानुसार वनोपज प्रदाय करने से पूर्व वन मंडलाधिकारी, ग्राम पंचायतों को वनोपज की श्रेणीवार दरों की जानकारी देगा, ग्रामीणों को वनोपज वितरण एवं डिपो प्रबंध का दायित्व ग्राम पंचायत का रहेगा। सामग्री वितरण करने हेतु पंचायत अतिरिक्त वितरण व्यय एवं युक्ति लाभ को ध्यान में रखते हुए दर निर्धारण कर सकेगी।
6. वन विभाग द्वारा निस्तारी वनोपज का प्रदाय 1 जनवरी से 30 जून तक प्रति वर्ष किया जाएगा।
7. बस्तर जिले में बसोड़ो के लिए पूर्व निस्तार व्यवस्था यथावत प्रचलित रहेगी।
8. यह नयी व्यवस्था दिनांक 1 जुलाई, 1996 से प्रभावशाली होगी।
9. मुर्दों को जलाने की व्यवस्था, मुर्दों को जलाने के लिए जलाऊ लकड़ी उपभोक्ता दर पर वेंडर्स को उपलब्ध कराने की पूर्व व्यवस्था चालू रहेगी।

वनमंडलाधिकारी
सामाजिक वानिकी, बिलासपुर

भूमि-प्रदूषण

डॉ. मिनी गुप्ता/ डॉ. अरुणेश गुप्ता

भूमि वह साधन है, जिससे हमें भोजन प्राप्त होता है। भूमि समस्त जीवधारियों की जरूरतों को पूरा करती है। समस्त वनस्पतियों एवं जीव-जंतुओं का आश्रयस्थल भूमि है। भूमि पर ही फसलें उत्पन्न होती हैं। भूमि में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों के कारण ही भूमि की उर्वरता बनी रहती है। यदि ये सूक्ष्मजीव न होते तो भूमि में फसल नाम का कुछ न हुआ होता और भूमि सर्वथा बंजर होती।

रासायनिक प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण इत्यादि आज एक समस्या बनते जा रहे हैं। इन सभी प्रदूषणों का प्रभाव भूमि पर अवश्य पड़ता है और किसी-न-किसी तरह से ये भूमि से संबंधित रहते हैं, भूमि-प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। भूमि के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी परिवर्तन, जिसका प्रभाव मानव, जीव-जंतु तथा वनस्पतियों पर पड़े तो भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता तथा उपयोगिता कम हो जाए तो उसे भूमि प्रदूषण कहते हैं। भूमि प्रदूषण का महत्व वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण एवं अन्य प्रदूषण से कम नहीं है, क्योंकि उपरोक्त प्रदूषण कहीं-न-कहीं भूमि से संबंधित हैं।

भूमि प्रदूषण के मुख्य दो कारक हैं—अकृषकीय एवं कृषकीय। अकृषकीय कारक वे हैं—जिनके कारण प्रदूषण बढ़ने की संभावना रहती हैं, जिनमें मुख्य रूप से धातुएं, अवमल, बाहित मल-जल, रेडियो एक्टिव वाले अपशिष्ट आदि आते हैं तथा कृषीय कारण वे हैं—जिनमें कृषकीय अपशिष्ट एवं कृषि रसायन आदि प्रभावित करते हैं।

भूमि प्रदूषण के कारक

भूमि प्रदूषण के मुख्य स्रोत कारक हैं—घरेलू कचरा, नगरनिगम कचरा, औद्योगिक कचरा, प्लास्टिक कचरा, कृषि-जन्य कचरा एवं अन्य अपशिष्ट। घरेलू कचरा जैसे कागज के टुकड़े, फर्नीचर के टुकड़े, लकड़ी की राख, कूड़ा-करकट, कांच के टुकड़े, प्लास्टिक थैलियां, टीन या लोहे का अनुपयोगी कचरा, बिगड़े हुए उपकरण, फलों के छिलके, पत्ते, चायपत्ती, डंठल, जूठन, रसोई घर का गीला कचरा आदि आते हैं। बाजार में सड़े-गले पदार्थ, पशुओं का चारा, नाली-गटरों से निकली कीचड़, मानव मल, धातुओं की रद्दी आदि नगरनिगम के कचरे इसमें आते हैं। औद्योगिक कचरे में अलग-अलग प्रकार के अपशिष्ट विभिन्न उद्योगों से निकलते हैं, जैसे शक्कर उद्योग से गन्ने के अवशेष, चमड़ा उद्योग से चमड़े के टुकड़े, कपड़ा उद्योग से कपड़े के टुकड़े, रासायनिक उद्योग से विभिन्न प्रकार

के रसायन आदि निकलते हैं। प्लास्टिक एक अजैविक पदार्थ है, इसे जल्दी से नष्ट नहीं किया जा सकता। उपयोग के पश्चात् अनुपयोगी प्लास्टिक प्रदूषण कारक होते है। पत्तियां, घास, बीज, फसलों के अवशेष, कीटनाशकों एवं उर्वरकों के अपशिष्ट कृषि-जन्य कचरा कहलाता है। इसके अतिरिक्त गोबर, खनन अपशिष्ट, पशुओं का मल, लाशें आदि भूमि प्रदूषण फैलाते हैं।

भूमि प्रदूषण का प्रभाव

भूमि प्रदूषण के विभिन्न कारकों से भूमि प्रदूषित होती है, जिसका प्रभाव भूमि पर रहने वाले जीव-जंतु एवं मानव के स्वास्थ्य पर पड़ता है। घरेलू कचरे के प्रभाव से जो प्रदूषण होता है, उससे संक्रामक बीमारी, त्वचा रोग, एलर्जी, घरेलू मक्खी से टायफाइड, हैजा, आंव, दस्त इत्यादि बीमारियां होती हैं। नगरनिगम के कचरे के प्रभाव से कई बीमारियां होती हैं, मनुष्यों और जीव-जंतुओं को नुकसान पहुंचाता है। प्लास्टिक के प्रदूषण से कैंसर होने का खतरा बना रहता है। कृषि-फसलों के उपयोग में लाए गए कीटनाशी से मनुष्य और जानवरों के स्वास्थ्य के ऊपर प्रभाव पड़ता है। पशुओं की लाशें, जीव-जंतु के ढांचे इत्यादि की दुर्गंध से वातावरण प्रदूषित हो जाता है, जो मनुष्य एवं जीव-जंतुओं के लिए हानिकारक रहता है।

आज प्लास्टिक व पॉलीथिन से जिस प्रकार हमारे दैनिक उपभोग की सामग्री का निर्माण किया जा रहा है, उससे लगता है कि यह हमारे जीवन का एक हिस्सा है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में लगभग 250 लाख टन प्लास्टिक कचरा प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है। जर्मनी के पर्यावरण वैज्ञानिक के अनुसार यदि 50,000 पॉलीथिन की थैलियां तैयार की जाती हैं तो 17 किलो सल्फरडाइ ऑक्साइड गैस वायमुंडल को प्राप्त होती है तथा कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन व हाइड्रोकार्बन का वायु में प्रवाहित होता है और प्लास्टिक फाइबर बनाने में 13 किलो नाइट्रोजन ऑक्साइड और 12 किलो सल्फरडाइऑक्साइड निकलकर वायमुंडल में मिलता है। इससे पेड़-पौधों एवं जानवरों को नुकसान पहुंचता है। पोलीस्टीरीन नामक प्लास्टिक को जलाने से क्लोरोफ्लोरो कार्बन बाहर आते हैं, जो ओजोन कवच को नष्ट करते हैं। प्लास्टिक उद्योग में इसके पुनःचक्रण के लिए पर्यावरण अनुकूल प्रौद्योगिकी को अपनाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

भूमि प्रदूषण की रोकथाम के उपाय

भूमि प्रदूषण को निम्न उपायों से रोका जा सकता है–

1. अनुपयोगी पदार्थों को पुनःचक्रित करना चाहिए।
2. औषधीय कूड़ा-कचरा को सुव्यवस्थित फेंकने का इंतजाम होना चाहिए।
3. भूमि-प्रबंधन पर ध्यान देना चाहिए।
4. कचरे से बायोगैस के महत्व को समझना चाहिए।
5. गांव एवं शहरों में कूड़े-करकट के लिए प्रशासन को सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए।
6. जैव कीटनाशकों के उपयोग के महत्व को समझना चाहिए।

7. मलबे को शहर के मध्य से उठाने का इंतजाम होना चाहिए।
8. कीटनाशक दवाओं के न्यूनतम उपयोग की सलाह किसानों को देनी चाहिए।
9. ठोस अनुपयोगी पदार्थ पॉलिथीन इत्यादि जमीन में नहीं दबाना चाहिए।
10. प्रदूषण-प्रतिरोधी वनस्पतियां उगानी चाहिएं।
11. शहर या गांव के बाहर व्यर्थ पड़ी भूमि का उपयोग कूड़ा-करकट निस्तारण के लिए करना चाहिए।
12. सुलभ शौचालयों के निर्माण एवं उपयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए।
13. सड़कों पर कचरा फेंकने पर दंड का प्रावधान होना चाहिए।
14. बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के दौरान पर्यावरण को स्वच्छ बनाने की शिक्षा देनी चाहिए।
15. पौधों में बीमारी रोकने के लिए फसल-चक्र को समझाना चाहिए।
16. कूड़े-करकट से कंपोस्ट-खाद तैयार करनी चाहिए।
17. औद्योगिक कचरा बिना उपचार के फेंकने पर कठोर प्रतिबंध से होना चाहिए।
18. भूमि क्षरण को रोकने के प्रयास के साथ-साथ अधिक-से-अधिक पेड़-पौधे लगाने चाहिएं।
19. पशुओं के गोबर का उपयोग खाद के रूप में किया जाना चाहिए।
20. उद्योगों में चिमनी से निकलने वाले धुएं एवं धूल-कणों को हटाने के लिए रेडियोधर्मी पदार्थों को जमीन के अंदर टैंकों में जला देना चाहिए।
21. नगर प्रबंधन संस्थान को कूड़ा संग्रहण निस्तारण एवं प्रबंधन कार्य को चुस्त बनाना चाहिए।
22. कम-से-कम मात्रा में पॉलिथीन तथा प्लास्टिक उत्पादों का उपयोग करना चाहिए।

संदर्भ

1. नरेंद्रमल सुराणा, पर्यावरण अध्ययन, पृ. 159-160
2. के.एल तिवारी. पर्यावरण अध्ययन, पृ. 111-115

विभागाध्यक्ष (वाणिज्य)
कला एवं वाणिज्य कन्या महा.,
देवेंद्रनगर रायपुर (छ.ग.)
दुर्गा महाविद्यालय,
रायपुर (छ.ग.)

मृदा संरक्षण एवं पर्यावरण

डॉ. चंद्रावती नागेश्वर

क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा,
पंच तत्व मिली बने शरीरा।
प्रभु ने प्रकृति का निर्माण किया,
जीवों को फिर जन्म दिया॥
और सबको संदेश दिया,
मिल-जुलकर तुम रहना प्यारे।
अपनी हद में रहना सारे॥

मृदा अर्थात् उपजाऊ मिट्टी। मिट्टी भी ऐसी जो जीवित हो। जीवित मिट्टी में जीवनी शक्ति होती है। जीवन से ही जीवन का क्रम जुड़ता है। जीवन में निरतंरता आती है। बिना मिट्टी के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

मिट्टी मिट्टी को रचती है।
मिट्टी मिट्टी से बनती है॥

मृदा का स्वरूप

ईश्वर ने सृष्टि की रचना बड़े ही मनोयोग से और बड़ी समझदारी से की है। हर चीज के लिए एक व्यवस्था है। प्रकृति में भी एक लय है, तालमेल है, संतुलन है। मिट्टी का भी अपना रचना संसार है। पानी के वेग से चट्टानों का टूटना, तेज बहाव के साथ नाचते-कूदते, टूटते-बिखरते मैदानों की यात्रा करना और फिर उर्वरा शक्ति से भरकर मृदा के रूप में बदल जाना—यही है मृदा का इतिहास। इस मृदा में जल है, ऑक्सीजन है, पोषक तत्व हैं, अनेक यौगिक हैं और गंदगी को नष्ट करने की अद्भुत क्षमता है। इसकी कोख में अनेक पेड़-पौधे, अन्न उपजते हैं। इसकी गोद में अगणित जीव-जंतु खेलते हैं, पलते हैं, बढ़ते हैं और फिर एक निश्चित अवस्था के बाद इसी में मिल जाते हैं। फिर से उसी मिट्टी से नया जीवन इस धरती पर मिलता है।

मिट्टी मिट्टी में मिलती है।
मिट्टी मिट्टी को गढ़ती है॥

सुजलां, सुफलां, मलयज, शीतलां
शस्य श्यामलां मातरम्, वंदे मारतरम्...

शुभ्रज्योत्सना पुलकित यामिनीम्,
फुल्ल कुसमितां द्रुमदल शोभिणीम्,
सुखदां, वरदां मातरम्, वंदे मातरम्... ।

ये धरती मां की तरह ही हमारा पालन-पोषण करती है। हमें अन्न देती है, पेड़-पौधे, कंद-मूल, फल-फूल, पत्ते, छाल, औषधि देती है। शुद्ध-शीतल वायु भी मिलती है। हरे-भरे छायादार पेड़ देने वाली उपजाऊ भूमि हमारे चारों ओर सुरक्षा-चक्र बनाती है। इसकी रातों में उज्ज्वल चांदनी है, खिले हुए फूलों से लदी प्रकृति हमें असीम सुख और आनंद देती है। यह हमारी माता ही तो है।

तभी तो आनंद-मग्न होकर कवि के साथ हमारा मन भी गा उठता है, 'मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे-मोती...'

यह गीत प्रकृति के प्रति हमारे लगाव को या कहें तो हमारे प्रति प्रकृति के अंत-र्संबंधों को दर्शाता है। ये मिट्टी युग-युगांतर से करोड़ों लोगों का भरण-पोषण करती आ रही है। बदले में मानव इस मिट्टी पर आघात ही करता जा रहा है।

कूड़ा-करकट, कचरा, हानिकारक रसायन इस मृदा को मुर्दा बना रहा है। धरती का श्रृंगार करने वाले वनों को काट-काटकर उसका चीर हरण कर रहा है। यहां तक कि पशुओं के चरागाह भी उसकी गिद्ध दृष्टि से महफूज नहीं हैं, तभी तो धरती चीख रही है—

मेरे सीने में हरी घास तो रहने दो
मेरा आभूषण तो छीन लिया,
अब लिबास तो रहने दो।

हमारे देश में गोबर के गणेश की पूजा की जाती है, मिट्टी के माधव या प्रतिमा की पूजा की जाती है। रेत से बने शिव-पार्वती की पूजा की जाती है, काष्ठ या लकड़ी के बने जगन्नाथ की पूजा होती है। इतना ही नहीं पत्थर से बनी प्रतिमा की पूजा भी होती है। वृक्षों की पूजा होती है, नीम, पीपल, बरगद, आंवला, महुआ, पलाश और तुलसी की पूजा होती है, यहां तक कि नदियों की पूजा भी होती है। गंगा मैया, यमुना मैया, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा मैया हैं। ये सब इसीलिए नहीं कि हम भारतीय मूर्ख या बेअक्ल हैं। ये सब प्रकृति के प्रति हमारी कृतज्ञता के प्रतीक हैं। शैशव से जवानी और वृद्धावस्था तक पहुंचने में प्रकृति के जिन-जिन उपादानों से हमें सहयोग मिला, उनके प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन है ये पूजा। उनके संरक्षण का उनसे वायदा है ये श्रद्धा।

प्रकृति का परिचालन, नियंत्रण और संतुलन पद्धति से होता है। Give and Take अर्थात् सारी सृष्टि लेन-देन के सिद्धांत पर चलती है। यहां कोई भी चीज मुफ्त में नहीं मिलती। जो वस्तु हमें सहज रूप से बिना प्रयास मिलती है, उसकी भी कीमत किसी-न-किसी रूप में हमें या हमारी अगली या पिछली पीढ़ी को अथवा हमारे अपनों को चुकानी पड़ती है। सबसे हिसाब लेने और देने वाला तो विधाता है और मानव अपने बुद्धिमद में इतना मतवाला होता जा रहा है कि विधाता के अस्तित्व को ही नकारने पर उतारू होने लगा है। एक छोटा-सा उदाहरण है—एक बार कुछ वैज्ञानिक ईश्वर के पास गए और उनसे कहा—तुम ईश्वर हो? सर्वशक्तिमान कहते हैं तुम्हें लोग, लेकिन हम नहीं मानते? ईश्वर चुप रहे। पुनः वैज्ञानिकों ने कहा—हम वह सब काम कर सकते हैं, जो तुम

कर सकते हो। देखो हम तुम्हारे सामने बिना कोई करिश्मा के $H_2 + o_2$ मिलाकर पानी बना सकते हैं, पानी को वायु में बदल सकते हैं और तो और पांच तत्वों से ये मानव-देह बना सकते हैं। उन्होंने हवा, पानी, अग्नि के साथ मिट्टी (क्षिति) मिलाने के लिए मुट्ठी भर मिट्टी उठाई। तब ईश्वर ने कहा—ऐ मानव पहले मिट्टी बनाना तो सीखो। और मानव आज तक मिट्टी नहीं बना पाया।

माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूंगी तोय ॥

यह मिट्टी की आत्मा की आवाज है। ये मिट्टी जो पद-तल रौंदी जाती है, वही मीनार बनती है। ये तो वक्त-वक्त की बात है। कभी नदी पर नाव चलती है तो कभी नाव पर नदी भारी पड़ती है और उसे डुबो देती है। यही हाल मानव का है। विश्व का सबसे विलक्षण प्राणी, जिसने अपने बुद्धि-बल से नदियों के प्रवाह की दिशा बदल दी, तूफान का पथ मोड़ दिया, लगभग असंभव को संभव बना दिया, आज लाचार और विवश है अपनी ही नासमझी और स्वार्थलोलुपता से, अपने पैरों कुल्हाड़ी चलाकर लहूलुहान होकर पीड़ा से कराहने लगा है।

भूमि हमारी माता सदृश है। मां तो हमें जन्म देती है, लेकिन मिट्टी हमें जीवन देती है, पोषण देती है। अपने सीने पर हमारा पद प्रहार सहती है। हम इसे पसीने से सींचते हैं तो यह स्वर्ण कण की तरह फसल पैदा करती है, जो हमारा भरण-पोषण करती है। हम इसे खोदते हैं गहरे-और-गहरे तो सोना, चांदी, तांबा, लोहा, बाक्साइट, कोयला, हीरा जैसी मूल्यवान निधि हमें सौंपती है। और गहरे जाएं तो अमृत रूपी जल की सौगात सौंपती है। बस देती ही रहती है।

हम मानवों का यह कर्तव्य बनता है कि मिट्टी की इन सौगातों के बदले हम उसका आभार मानें उसका दुरुपयोग न करें, बल्कि उसके संरक्षण हेतु सजग रहें तभी तो देने और लेने का यह क्रम निरंतर चलता रहेगा। मिट्टी के पूजन की परंपरा यूं ही नहीं बनी है। यह मिट्टी के प्रति कृतज्ञता दर्शाती है।

विशाल कचरा घर—विज्ञान और भौतिकता के मद ने हमारी आस्था, श्रद्धा और कर्तव्य भावना को क्षति पहुंचाई है। प्रकृति से छेड़छाड़ और उपभोग प्रवृत्ति ने हमें स्वार्थी और लालची बना दिया है। भूमि ने हमें खनिज, रत्न, कीमती धातु, अनाज, फल-फूल, औषधि युक्त वनस्पति दी है और हमने इसे कूड़े-कचरे, गंदगी के ढेर से भर दिया है। अस्पताल के रोगाणुयुक्त पीव, रक्त, विषैले अपशिष्ट पदार्थ, टिन, कांच, प्लास्टिक के टुकड़े, पॉलिथीन, हानिकारक रसायन, कारखानों की विषैली गंदगी से पाट दिया है। मिट्टी का कण-कण दुःखी है हमारे इस दुष्कृत्यु से। शहरी मल-जल से शुद्ध जल वाली नदियों को प्रदूषित कर दिया, औद्योगिक कचरे को नदियों में बहाया या भूमि में यूं ही डाल दिया। इससे भूमि की उर्वरता क्रमशः घट रही है।

भूमिक्षरण

जनसंख्या वृद्धि, बढ़ते शहरीकरण, औद्योगीकरण से कृषि-योग्य भूमि कम हो रही है। अनाज की मांग खाद्यान्न के रूप में बढ़ गई, आवास एवं अन्य प्राथमिक

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वन कटने लगे, वन्य जीव की कई प्रजातियां विलुप्त हो गई और हो रही हैं, जल प्रदूषित हो गया। कारखानों के धुएं, वाहनों के धुएं से वायु प्रदूषित हो गई। सड़कों, रेलमार्गों का जाल बिछने लगा, इससे भी भूमि का दायरा घटने लगा। पेड़-पौधे अपनी जड़ों से आस-पास की मिट्टी को बांधे रखते हैं, वर्षा के जल से भूमि कटाव को रोकते हैं, उर्वर भूमि को नदी तालाब में जाने से रोकते हैं। वनों की अंधाधुंध कटाई से भू-क्षरण बढ़ गया, पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन की गति तीव्र हो गई। वन मेघों को आकर्षित कर वर्षा कराने में सहायक होते हैं, वन क्षेत्र में कमी होने से मेघ मार्ग भटककर दूर चले जाते हैं। मौसम-चक्र गड़बड़ा जाता है। अवर्षा, अल्पवर्षा, अतिवर्षा से मानव त्राहि-त्राहि कर उठता है। पर्याप्त वर्षा के अभाव से पेय जल एवं भू-जल स्तर नीचे चला जाता है। उपजाऊ मिट्टी बारिश के दिनों में नदियों के भाल में जमा होने लगती है। उर्वरा भूमि या मृदा इस कमी को रासायनिक खाद के जरिए पूरा नहीं किया जा सकता। रासायनिक खाद के दीर्घकालीन प्रयोग से भूमि बंजर हो जाती है, भूमि में लवणीयता बढ़ जाती है। रसायनिक खादों का विष अनाज, शाक-सब्जी, फलों के माध्यम से मानव शरीर एवं पशुओं में पहुंचता है और नयी-नयी बीमारियों को जन्म देता है। कीटनाशी रसायन, डी.डी.टी. भी खाद्यान्न को विषैला बनाते हैं, जिनका सेवन रोग-कारक है।

मृदा प्रदूषण की भयानक स्थिति–प्रदूषण की शक्तियां पूरे वेग से काम करती हैं, वे मृदा के अलावा हवा, पानी सबको दूषित करती हैं। हानिकारक रसायन, इंसान, पशु के मल-मूत्र अपशिष्ट ठोस पदार्थ, इंसानी उपयोग के बाद निकलने वाला कचरा, कीटनाशी औषधियां आदि प्रकृति के चक्र को इतनी बुरी तरह बाधित करती हैं कि वास्तविक स्थिति में आने में बहुत वक्त लग जाता है। परिवहन के साधनों की धुआं उगलने की गति से पेड़-पौधे पनप नहीं पाते, उस धुएं से छोड़ी गई नाइट्रोजन ऑक्साइड धूप में नाइट्रेट बनकर वर्षा के जल और ओले से मिलकर पानी की सतह और मिट्टी तक पहुंचकर मृदा परत को हानि पहुंचाती है। मानव के लिए हितकर मृदा को कांच के टुकड़े, प्लास्टिक के टूटे-फूटे सामान अत्यधिक क्षति पहुंचाते हैं। एक वर्ग मीटर मृदा में दस लाख से अधिक एंथ्रोपोड्स, गोल कृमि, प्रोटोजोआ मिलते हैं। इसी तरह के अनेक मित्र कीट और केंचुए मिट्टी की ऊपरी परत के एक या दो इंच तक ही रहते हैं, जो मिट्टी को भुरभुरा बनाते हैं, पौधों के अवशेषों से उपजाऊ खाद बनाते हैं। कीटनाशी दवाओं से इनका विनाश हो जाता है।

खनिज उत्खनन और मृदा–कोयला, लौह, मैगनीज, बॉक्साइट, तांबा, टीन अयस्क आदि के निरंतर उत्खनन से पेड़ों की कटाई, उपजाऊ मिट्टी का क्षरण, उपज की संभावना का नाश, बड़े-बड़े गड्ढे, बाढ़ को आमंत्रण–इन परिस्थितियों के बनते रहने से रही मृदा भी बहकर नदियों, तालाबों को उथला करती हं। दलदल बनाती हैं। कई बार तो ये खदानें सल्फ्यूरिक अम्ल और खनिज क्षार को आस-पास के पर्यावरण में इस तरह घोल देती हैं कि वहां वनस्पति और पौधों के विकसित होने की कोई संभावना ही शेष नहीं बच पाती। इस तरह मरुस्थल का विस्तार होता है।

इस तरह मृदा की मुख्यतः दो तरह की समस्या हमारे सामने हैं–1. उर्वरता का ह्रास, 2. मृदा अपरदन या क्षरण।

पृथ्वी के समस्त जीवों के लिए मृदा से ही भोज्य पदार्थ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्राप्त होते हैं। वन संपदा भी उर्वर भूमि की ही सौगात है। राष्ट्रीय संपदा भी है मृदा। सामाजिक संपदा के रूप में भी महत्वपूर्ण है। सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। भोजन, वस्त्र, आवास की अनिवार्य जरूरत भी मृदा पर निर्भर है।

मृदा की उर्वरता ह्रास के प्रमुख कारण हैं--

1. वनों की कटाई,
2. कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु रासायनिक खाद एवं कीटनाशियों का बेतहाशा उपयोग,
3. घरेलू कचरा,
4. औद्योगिक कचरा,
5. चिकित्सीय अवशिष्ट,
6. अम्लीय वर्षा,
7. कांच, प्लास्टिक फेंकना।

अपरदन के कारण--

1. हवा से,
2. वर्षा से,
3. हिमनदी से,
4. वन-विनाश,
5. भूमि के ढाल की तीव्रता,
6. झूम खेती,
7. खनन प्रक्रिया,
8. परिवहन हेतु सड़कें, रेल मार्ग,
9. पशुचारण,
10. जीव-जंतु एवं वन्य पक्षियों के विलुप्त होने से मृत पशु के मिट्टी में एकरूप न होने से गंदगी, बीमारी की संभावना बलवती होती है।

मृदा संरक्षण

मानवों के साथ-साथ समस्त जीव-जंतुओं के भोजन की व्यवस्था के लिए मृदा संरक्षण अनिवार्य है। स्वस्थ और खुशहाल मानव-जीवन के लिए मिट्टी की आहत अंतर्रात्मा की पुकार सुननी होगी। मिट्टी से अपना जुड़ाव बनाना होगा। देना-पावना के मंत्र को सार्थक बनाना होगा। सुखी जीवन का मूल आधार है संतुलन।

न राजा रहेगा, न रानी रहेगी।
ये माटी सभी की कहानी कहेगी ॥

मानव जीवन की विकास यात्रा की साक्षी और सहभागी है--मृदा। यह हमारी माता है। इसे मां की तरह सम्मान और देख-रेख चाहिए, तभी तो वृद्धावस्था में भी आशीषों का आंचल पसारे रहेगी।

मृदा संरक्षण के उपाय

1. वनों की अंधाधुंध कटाई को रोकना होगा। वृक्ष काटने की तकनीक ऐसी हो कि वे पुनः विकसित हो सकें। जड़ से न काटे जाएं।
2. रेलवे लाइन, सड़क के किनारे छायादार, फलदार वृक्ष लगाए जाएं।
3. ढाल को लंब रूप काटकर जुताई कार्य हो। कंटूर कृषि पद्धति से पानी व्यर्थ नहीं बहता है और भू-क्षरण में कमी होती है।
4. पशुचारण पर नियंत्रण हो।
5. फसल बदल-बदलकर बोयी जाए। (फसल-चक्र)
6. नदी के तटों पर तटबंध बनाए जाएं।
7. ढाल वाले स्थानों में सीढ़ीदार खेत बनाए जाएं।
8. मेड़बंदी कर पानी के बहाव को कम कर सकते हैं।
9. बाढ़, तूफान से मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत को नुकसान होता है। लंबी आयु वाले जलवायुनुकूल पेड़ लगाने से मृदाक्षरण में कमी आती है।
10. रासायनिक खाद की जगह कंपोस्ट खाद, केंचुआ खाद, पारसमणि खाद (गाय के सींग में 150 ग्राम गोबर भरकर भूमि में गाड़ देने से उत्कृष्ट कोटि का खाद बनता है, गाय का सींग खाद का कारखाना है) इस विधि का प्रचार-प्रसार हो। एक सींग में बने खाद से एक हेक्टेयर भूमि उपजाऊ होती है।

    हानिकारक कीटों को नष्ट करने के लिए जैविक विधि अपनाई जानी चाहिए। कीटनाशी दवा के छिड़काव से पर्यावरण प्रदूषण होता है, दवा सींचने वाले को भी श्वांस रोग, चर्म रोग का खतरा रहता है। फसल, सब्जी, शाक, कीटनाशक रसायन अवशोषित कर विषैले बन जाते हैं। अतः इनका प्रयोग सोच-समझकर अत्यल्प मात्रा में किया जाए।
11. रासायनिक कचरों, औद्योगिक अपशिष्टों से बचाव—औद्योगिक अपशिष्ट भूमि को विषैला करते हैं। ये अपशिष्ट मृदा के माध्यम से भूमिगत जल तक चले जाते हैं। वर्षा के जल के साथ कुओं, तालाब, नदियों और समुद्र तक को दूषित बनाते हैं। यह धीमा जहर मानव को रोगी, अपंग और दुःखी बनाता है। आज के वैज्ञानिकों ने ऐसे उपाय खोज निकाले हैं, जिससे अपशिष्ट पदार्थों की हानियों को अल्पतम किया जा सके। उन उपायों को अपनाकर मृदा के अमरत्व को बरकरार रख सकते हैं।
12. जल-मल निकास और घरेलू कचरे के उचित प्रबंधन व्यवस्था हो। अपने घर को साफ करके कचरा रोड के उस पार या नुक्कड़ में फेंक देने से वातावरण दूषित होता है। सड़ी-गली सब्जी, पशुचारे का अपशिष्ट, बासी भोजन, मल-मूत्र आदि घर के बाहर फेंकने से नालियां बजबजाती रहती हैं, मच्छर पनपते हैं, हैजे के जीवाणु, चर्म रोग के जीवाणु पुनः परिवर्तित रूप में हमारे शरीर में बसने का अवसर पा जाते हैं।

गैरजिम्मेदार नागरिक एवं नगरपालिका कर्मचारी दोनों मिलकर नगर और नगरवासियों का स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं, साथ ही मृदा का मुख बदरंग करते हैं।

13. मृदा का शोधन—मृदा न दलदली हो, न अम्लीय और न क्षारीय हो। मृदा की ऊपरी पर्त के निरंतर बहाव से और जमाव से जमीन दलदली होती है। प्रवाहित जल मृदा को क्षारीय बनाता है, जो उसकी उर्वरा शक्ति को नष्ट करता है। जल कटाव, भूमि कटाव से तालाब, झील उथला होता जाता है। खाद का संतुलित उपयोग करके मिट्टी के मिजाज को परखकर कृषि कार्य करने से किसान और भूमि दोनों का फायदा होगा।

14. ह्यूमस की निराली दुनिया—मृदा के हर रेशे में, हर कण में, हर रोम में सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणुओं का आवास है। ये पोषक जीवाणु ह्यूमस बनाते हैं। पेड़-पौधों के अवशेषों, हरी खाद, मल-मूत्र, पतझड़ की पत्तियां हमारी नजर से बचकर अपना काम करती रहती हैं। विघटन प्रक्रिया से मृदा का मित्र ह्यूमस पदार्थ धरती की उपजाऊ शक्ति बढ़ाता है। जल प्लावन रोकने में सहायता करता है।

अंततः मृदा संरक्षण से ही मानव-जीवन का संरक्षण जुड़ा हुआ है। मृदा को मुर्दा न मानकर सजीव मानें। ये जीवित मानवी, अदृश्य रूप से हमारा पूरा ध्यान रखती है। इसीलिए तो धरती के कण-कण में ईश्वर-अंश जीवों का वास माना गया है। धरती मां को नारी रूप में कल्पित किया गया है, जो वास्तविकता के निकट ही है। मां की तरह जीवन, पोषण, संरक्षण देने वाली धरती के रूप-सौंदर्य को प्राकृतिक रूप में रहने देने में ही मानव की भलाई है।

धरती की ऊपरी पर्त ही तो उपजाऊ है। यह पर्त हटी तो उपज का शीलभंग हुआ। क्रमिक रूप से उपज कम होने पर भूमि कटाव, जल प्रकोप होता है। जल कटाव और जल जमाव से भूमि क्षारीय बनती है, ज्यादा लवणीयता से भूमि का ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। इससे मृदा को हृदयाघात की संभावना हो सकती है।

धरती मेरी माता, पिता है आसमान।
मुझको तो अपना-सा लागे सारा जहान ॥

जब तक प्रकृति से अपनत्व और आत्मीयता का रिश्ता नहीं रखेंगे, तब तक जीवन में शारीरिक, मानसिक रोग, विकलांगता, पीड़ा से स्थायी मुक्ति संभव नहीं है। और संबंध दोनों ओर से निभता है।

295/II बी, बालको, कोरबा

(उ)

साहित्य और पर्यावरण चेतना

वाली जलधाराएं, फूलों से लदे वृक्षों की प्राकृतिक सुषमा ने कवियों को सदैव प्रकृति के प्रति आकृष्ट किया है।

वैदिक साहित्य प्रकृति के रमणीय वर्णन से भरा पड़ा है। वैदिक वाङ्मय में 'उषा' की नया सवेरा की सूचना देने वाली के रूप में अर्चना की गई है तो सूर्य, चंद्र, अग्नि, पर्वत, वायु श्रद्धापूर्ण वर्णनों से भरा पड़ा है। हमारे शरीर की रचना भी आकाश, जल, अग्नि, वायु और पृथ्वी--इन पांच तत्वों के मिश्रण से मानी गई है। 'गिरयः ते पर्वता हिमवंतोऽरण्यं तं पृथ्वीस्योनमस्तु' कहकर वेदों में ऋषियों द्वारा स्वच्छ जल, वायु, अग्नि, सूर्य तथा पृथ्वी को देवता मानकर उनकी स्तुति की गई। वनों व पर्वतों के साथ-साथ पृथ्वी के विकास की कामना की गई है। संस्कृत के महाकवियों वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति आदि ने प्रकृति के मूर्त रूप का वर्णन किया है। कालिदास ने मेघों को अपना संदेशवाहक बनाया तो क्रौंच वध से व्यथित वाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना की व रामचंद्र को प्रकृति की गोद में विचरण कराया। प्रकृति चित्रण की यह अविरल धारा संस्कृत साहित्य से हिंदी साहित्य में निरंतर प्रवाहित होती रही है। हिंदी साहित्य में भी पर्यावरण से संबंधित अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं, जो पर्यावरण के संरक्षण व संवर्द्धन में उपयोगी हैं। वे यहां के विविध पौधों, पशु-पक्षियों, विविध प्रकार के वृक्षों की सुंदरता का वर्णन कर प्रकृति के प्रति अपनी सजगता का परिचय किसी-न-किसी रूप में देते रहे हैं।

प्रकृति भारतीय संस्कृति का स्रोत है। यहां के अनेक रीति-रिवाज तथा संस्कार प्रकृति के आधार पर निर्धारित हैं। नदियों में भारतीयों के लिए गंगा बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसे पतितपावनी, देवपगा कहा गया है। नदियां तो और भी हैं—यमुना, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कावेरी आदि किंतु सांस्कृतिक दृष्टि से जो महत्व गंगा को प्राप्त हुआ है, वह अन्य नदियों को नहीं। आदिकालीन कवि विद्यापति ने भारत की इस पवित्र नदी—गंगा की स्तुति की है, जिसका न केवल धार्मिक महत्व है, अपितु आर्थिक महत्व भी है, जो भारत के एक बड़े भू-भाग को सिंचित करती हुई भूमि को उपजाऊ बनाती है, साथ ही संस्कृति इसकी गोद में पलती है—

ब्रह्मा कमंडलुबास, सुबासिनि सागर नागर गृहवाले
पालक महिष विदारण कारण घृतकरवाल बीचिभाले
जय गंगे! ज्य गंगे शरणागत भय गंगे।[1]

भक्तिकालीन कवियों ने प्रकृति को अपने उपदेश का माध्यम बनाया। उन्होंने अपनी साधना को जन-सामान्य तक पहुंचाने के लिए जिन प्रतीकों व रूपकों का चुनाव किया व उपादान प्रकृति से लिए जैसे इंद्रा, पिंगला तथा सुषम्ना नाड़ियों को गंगा, यमुना तथा सरस्वती कहा गया। कहीं-कहीं इंद्रा, पिंगला के लिए सूर्य-चंद्र का प्रयोग भी किया गया। कबीर की उक्ति है—

सूर समाना चंद मैं, चहूं किया घर एक
मन का च्यंता तब भया, कछुपूरबला लेख।[2]

भक्तिकाल में प्रकृति का वर्णन शिक्षिका, उपदेशिका, संसार की नश्वरता का बोध कराने वाली शक्ति के रूप में हुआ है। कबीर की निम्न पंक्तियों में प्रकृति के माध्यम से (जल एवं कमल) आत्मा व परमात्मा के संबंध को अभिव्यक्त किया है—

साहित्य में पर्यावरण चेतना

डॉ. सुनीता वर्मा

छायामन्यस्य कुर्वंति तिष्ठंति स्वयमातये,
फलान्यपि परार्थाय वृक्षाः सत्पुरुषा इव।

वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़-पौधे, पशु, मानव सब मिलकर पर्यावरण बनता है। प्रकृति में सबकी मात्रा और रचना इस प्रकार व्यवस्थित है कि पृथ्वी पर संतुलनमय जीवन चलता रहे। अनादिकाल से मानव का प्रकृति से घनिष्ठ संबंध रहा है। सृष्टि के प्रारंभ में मानव ने प्रकृति की गोद में आंखें खोलीं। प्रकृति की अनंत संपदाओं का उपयोग कर अपना विकास किया। प्रकृति ने भी अपनी अनंत संपदाओं के कोश उसके लिए खोल दिए। प्रकृति ने उसे जीवनदायिनी शुद्ध वायु, सूर्य का प्रखर प्रकाश, नदी व झरने का अविरल प्रवहमान स्वच्छ जल प्रदान किया। उसके लिए मेघों को जल से भर दिया। आदि मानव जीव-जातियों के समान अपने पर्यावरण में संतुलन और सामंजस्य बनाए रखने वाली जाति थी। उन्होंने पर्यावरण को जैसा पाया वैसा रहने दिया। उन्होंने सूर्य, वायु, अग्नि, पानी, भूमि, वन आदि प्राकृतिक पदार्थों की देवता मानकर पूजा की। वे जानते थे कि इन्हीं में उनका जीवन निहित है। परंतु विकास की प्रक्रिया में मानव-जाति एक संस्कृति निर्माता जाति के रूप में उभरी। उसमें प्राकृतिक पदार्थों पर विजय प्राप्त करने की लालसा जागी। आज इक्कीसवीं शताब्दी में स्थिति यह हो चुकी है कि मानव ने धरती, आकाश, समुद्र एवं अंतरिक्ष को एक सीमा तक अपने नियंत्रण में कर लिया है। भोगो और फेंक दो की संस्कृति ने पर्यावरण को प्रदूषित कर विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया।

भारतीय संस्कृति का संपूर्ण विकास प्रकृति की गोद में ही हुआ है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का जन्म कमलनाल से माना जाता है। जल-प्लावन के समय मनु ने प्रकृति की गोद में ही स्थान पाया, सृष्टि के पालनकर्ता विष्णु सागर की अतल गहराइयों में निवास करते हैं तो सृष्टि के संहारक शिव 'कैलाश' की मनोरम बर्फ से आच्छादित शिलाओं के मध्य। इस प्रकार प्रकृति की रमणीक वनस्थली ही भारतीय संस्कृति को जन्म देने वाली है।

माता भूमिः पुत्रोअहं पृथिव्याः।

अर्थवेद के पृथ्वी सूक्त में भूमि के प्रति भारतीय भावना का जैसा सुंदर वर्णन पाया जाता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कवि को भूमि हर प्रकार से धन-धान्य से पूर्ण प्रतीत होती है, वह उसे सुमनस्यामा कह श्रद्धा व्यक्त करता है। उसकी दृष्टि में पृथ्वी विश्वंभरा है, काम दूधा है, जो मानव की हर आवश्यकता को पूर्ण करने में समर्थ है। हमारे पूर्वजों का प्रकृति से घनिष्ठ संबंध रहा है। हरी-भरी एवं वीर्यवती औषधियों से पूर्ण वन, निरंतर बहने

हमारी रक्षा करती है। यही ओजोन परत सूर्य से आने वाली हानिकारक गैसों या किरणों, मुख्यतः पराबैंगनी किरणों, को पृथ्वी पर आने से रोकती है। यह जीवधारियों के लिए रक्षा-कवच है। वैज्ञानिकों के मतानुसार पराबैंगनी किरणों के सीधा संपर्क में आने से मनुष्य, जीव, वनस्पति आदि में रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम होती है, मानव में त्वचा कैंसर, आंखों के मोतियाबिंद जैसे रोगों की वृद्धि होती है। इसका जीव-जंतु, कृषि उपज पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ओजोन परत में छेद के लिए क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन, जिसका प्रयोग रेफ्रीजरेटर, एयरकंडीशनर बनाने के लिए किया जाता है, अत्यधिक ऊंचाई पर उड़ने वाले जेट विमान से निकला जहरीला धुआं, परमाणु बमों के विस्फोट से निकली गैसें, उपग्रह प्रक्षेपण से उत्पन्न भयंकर गैसों, औद्योगीकरण से निकली जहरीली गैस एवं धुएं के कारण इस धरती की चादर ओजोन परत में छेद हो गया है। हमने अपनी धरती को जैसा पाया, वैसा नहीं रहने दिया, अपितु उसे प्रदूषित कर दिया। यदि ओजोन की झीनी चादर हट गई तो पृथ्वी का तापक्रम निरंतर बढ़ेगा व ध्रुवीय क्षेत्रों की बर्फ पिघलने से समुद्रों का जल स्तर बढ़ जाएगा, जिससे अनेक द्वीप व तटीय शहर जलमग्न हो जाएंगे। शायद इस विकराल स्थिति की कल्पना प्रसाद ने कामायनी में की है—

उदर गरजती सिंधु लहरियां कुटिलकाल के जालों-सी
चली आ रही फेन उगलती, फन फैलाए ब्यालों-सी।

भारतीय साहित्य में प्रकृति के साथ मैत्री और साहचर्य का संबंध बहुत पुराना है। प्रकृति और मनुष्य के इस संबंध में पीछे कवियों की एक सुंदर, स्वस्थ एवं संतुलित जीवन जीने की कामना निहित है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में पर्यावरण चेतना पर गहन चिंतन-मनन किया है। तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है। श्रीराम, सीताजी की खोज में पक्षियों, पशुओं, लताओं, वृक्षों यहां तक भौरों से पूछते हुए चलते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी
तुम्ह देखी सीता मृग नैनी
खंजन, सुक, कपाते, मृगमीना,
मधुय निकर कोकिला प्रवीना।

श्री राम का पक्षी जटायु (गिद्ध) से प्रेम, हनुमान (बंदर) से प्रेम, जामवंत (भालू) से प्रेम, लक्ष्मण का जड़ी-बूटियों से इलाज करना तुलसी के प्रकृति प्रेम को प्रकट करता है। शायद इसलिए उन्होंने रामचरित मानस के एक कांड का नाम अरण्यकांड रखा है। यह उनका प्रकृति प्रेम ही है। प्रकृति भी मनुष्य के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होती है। तुलसी की निम्न पंक्तियां इसका प्रमाण हैं, जिसमें राम के वन चले जाने पर उनके घोड़ों की दयनीय दशा का चित्रण किया है—

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं,
जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं
नहिं तृण चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि
व्याकुल भए निषाद सब रघुबर आजि निहारि।

इस प्रकार के अनेक वर्णन सूर-साहित्य में भी मिलते हैं, जिसमें कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद ब्रज के वृक्षों, लताओं, पशु-पक्षियों, गायों, नदी को भी कृष्ण के विरह में पीड़ित

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी,
तेरे ही नाल सरोवर पानी
जल में उत्पति, जल में वास,
जल में नलिनी तोर निवास
आ तलि तपतिनि ऊपर आगि,
तोर हेतु कहुं कैसिन लाग
कहे कबीर जे उदिक समान, ते नहिं मुए हमारी जान।[7]

अगर हम वाङ्मय साहित्य में प्रतिपादित तथ्यों का अनुशीलन करें तो यहां के पर्यावरण और मानव में परस्पर सामंजस्य का जो वर्णन मिलता है, वह अत्यंत दुर्लभ है। जल, पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चंद्र आदि प्राकृतिक शक्तियों की उपासना की परंपरा रही है। शरीर को इन पांच भौतिक उपादानों से निर्मित माना गया है, जो इन्हीं पंच तत्वों में विलीन हो जाएगा—

क्षिति जल पावक गगन समीरा
पंच रचित अति अधम शरीरा।[8]

उपरोक्त पंक्तियों पर विचार करने से स्पष्ट है कि कवि ने पंचतत्वों के महत्व पर प्रकाश डाला है। इसमें से एक के असंतुलन या समाप्त होने से मानव के अस्तित्व के समाप्त होने का खतरा भी उत्पन्न हो सकता है। स्पष्ट है पर्यावरण और मनुष्य के इस संबंध के पीछे कवि की एक सुंदर, स्वच्छ एवं स्वस्थ जीवन की कामना रही है। वस्तुतः पर्यावरण और मानव का आपसी सामंजस्य एवं सहयोग संतुलित जीवन के लिए आवश्यक है।

आज हम प्रकृति से अपने आपको विमुख करते जा रहे हैं और आधुनिक विज्ञान के सहारे निरंतर प्रकृति में पंचतत्वों के संतुलन को छिन्न-भिन्न किए जा रहे हैं। सच तो यह है कि हम प्रकृति के सामंजस्य को भुला बैठे हैं। जंगल के जंगल कटते जा रहे हैं और हवाओं में जहर घुलता जा रहा है। गंगा प्रदूषित हो गई है, कृष्ण की लीलास्थली यमुना में जहर घुल गया है। प्रकृति के साथ खिलवाड़ करके पूरे वातावरण को ही हम प्रदूषित करते जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण भोगवादी एवं उपयोगितावादी दृष्टिकोण है। हम हर वस्तु को व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से इस्तेमाल करते हैं। पंचतत्वों का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। पर्यावरण के साथ खिलवाड़ की सजा भी प्रकृति हमें—अति जलवृष्टि, अनावृष्टि, अल्पवृष्टि, अम्लीय वर्षा आदि के रूप में दे रही है। कबीर की निम्न पंक्तियां पर्यावरण की दृष्टि में उल्लेखनीय हैं—

झीनी-झीनी बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि कै मैली कीन्हीं चदरिया
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया।[9]

कबीर कहते हैं कि मैंने झीनी-झीनी चादर बीनी अर्थात् बुनी और उसका संभाल कर उपयोग किया। परमात्मा ने इस चादर को जैसा दिया, मैंने उसे वैसा-का-वैसा रहने दिया, थोड़ी भी मैली नहीं की। पर तुमने तो उसे मैला कर दिया। हमारी पृथ्वी के ऊपर के वायुमंडल में ओजोन (o_3) की चादर है, यह ओजोन परत अल्ट्रा वायलेट किरणों से

देता है, सारी पृथ्वी हरियाली से ढंक जाती है। यही कारण है कि निराला अपनी 'बादल राग' कविता में बादलों को बरसने का आह्वान करते हैं—

जीर्ण बहु है, शीर्ण शरीर, तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विल्पव के वीर, चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र ही है आधार, ऐ जीवन के पारावार।[2]

आज हम स्वार्थवश वृक्षों को काटते जा रहे हैं, जंगलों के स्थान पर बड़े-बड़े भवन, सड़कें, कल-कारखाने बनते जा रहे हैं। गगनचुंबी इमारतों व कारखानों से निकलने वाले धुएं ने आज बादलों को ढंक लिया है, जो बादल कभी वर्षा से अमृत बरसा, पौधों को नवजीवन देते थे, आज मनुष्य की भोगवादी प्रवृत्ति के कारण अम्लीय या तेजाबी वर्षा कर लोगों के मन में भय का संचार कर रहे हैं।

आज संपूर्ण विश्व प्रतिस्पर्धा के दौर से गुजर रहा है, कौन प्रकृति का कितना दोहन कर सकता है। आज का औद्योगिक प्रणीत एवं वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों से लैस मानव प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहता है। अगर ऐसा होता तो उसे वर्षा की राह न देखनी पड़ती, वह सूरज व चांद के निकलने का इंतजार न करता, सूर्य की गर्मी से बचने के लिए उस पर चादर डाल देता, हम कितनी भी प्रगति कर लें, पर प्रकृति पर शासन नहीं कर सकते, अपने हिसाब से वायुमंडल को मोड़ नहीं सकते। शायद इसी ओर संकेत करते हुए प्रसाद कामायानी में लिखते हैं—

विश्व देव सविता या पूषों
सोम मरुत चंचल पवमान
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान।[3]

प्रकृति देश के साथ-साथ संस्कृति का हिस्सा रही है। अनुष्ठानों तथा पूजा-विधि के लिए अनेक तरह के फूल, फल तथा गंगाजल की जरूरत पड़ती है, अनेक नदियों के जल तथा विभिन्न स्थानों की मिट्टी से मंदिरों का निर्माण होता है। इनके पीछे हमारे मनीषियों का पर्यावरण के प्रति सुरक्षा की भावना निहित थी। पर आज पर्यावरण के प्रति हमारे विचारों में अंतर आ गया है। बढ़ती जनसंख्या के कारण वन के वन काटे जा रहे हैं, इनके स्थान पर नगर और ग्राम बसाए जा रहे हैं, परिणामस्वरूप अनेक पशु-पक्षियों की प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और अनेक के विलुप्त होने का खतरा बढ़ गया है। आज मानव धरती पर रहने का केवल अपना हक मानता है दूसरे का नहीं। प्रकृति पर नियंत्रण और दोहन इसका प्रमुख लक्ष्य है। इसी दृष्टिकोण के कारण हमारा प्राकृतिक पर्यावरण बुरी तरह से प्रभावित है। कवि प्रकृति के भीषण रूप धारण करने का कारण, मनुष्य की प्रकृति पर विजय की लालसा निरूपित करते हुए कहता है—

प्रकृति त्रस्त थी, भूतनाथ से नृत्य विकंपित पद अपना
उधर उठाया, भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना।
वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पंख लगाकर उड़ने की
जीवन की असीम आशाएं कभी न नीचे मुड़ने की।[4]

समकालीन कविता में प्रकृति सांस्कृतिक जागरुकता एवं पर्यावरण सजगता के प्रति नवीन दृष्टिकोण लिए है। नवीन तकनीक के कारण मानव का जीवन सुख-सुविधापूर्ण हो

बताया है। इस प्रकार सूर, तुलसी, कबीर, जायसी ने मानव के साथ प्रकृति के तादात्म्य को चित्रित किया है।

भक्त शिरोमणि सूरदास ने भी मानव हृदय के भावों का प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित किया है। वह मनुष्य के सुख में हंसती और दुःख में रोती है। हमारे मनीषियों ने जड़ और चेतन जगत् को एक ही ब्रह्मा से उत्पन्न माना है, इसलिए हमारे यहां जड़ प्रकृति भी चेतन है, यही कारण है वियोगिता गोपियों को पूरी यमुना नदी, कृष्ण के वियोग ज्वर में काली दिखाई देती है—

देखियति कालिंदी अति कारी
अहौं पथिक कहियौ उन हरिसौं, भई विरह जुर जारी।
गिरी-प्रजक तैं गिरति धरनिधंसि, तरंग तरफ तन भारी।[9]

"सूरदास के उपास्य कृष्ण ब्रजभूमि में अवतरित हुए थे। उनका व्यक्तित्व प्रकृति की ही गोद में विकसित हुआ और प्रकृति के उन्मुक्त क्षेत्र ही उनकी बाल लीलाओं और किशोर केलियों का रंगस्थल बना। उनके लोकोपकारों, कार्यों की कर्मभूमि भी प्रकृति ही रही। वन में गौ-चारण करते हुए गिरिधर ने यहीं विकट असुरों का वध करके जनता के आतंक को दूर किया। राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन का दृश्य आज भी यमुना की आंखों में घूम रहा है।"[10]

भारतीय साहित्य के प्रत्येक युग में पर्यावरण के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। सृष्टि के आरंभ के साथ ही जंगल के वृक्षों को मानव बड़ा ही पवित्र स्थान देता है, वह वृक्षों को काटने की बजाय लगाने पर जोर देता है। बरगद, पीपल, गूलर, नीम, आम आदि वृक्ष पूजे जाते रहे हैं। केदार वृक्ष के नीचे निवास करने के कारण भगवान शिव का नाम केदारनाथ पड़ा। भगवान् बुद्ध को तो बोधि वृक्ष के नीचे ही ज्ञान मिला था। बेल, तुलसी, दूब, रुद्राक्ष के पौधों को भारतीय संस्कृति में बहुत पवित्र स्थान दिया गया है। प्राचीनकाल से अनेक प्रकार की लकड़ियों से यज्ञ होम किया जाता था। विवाह, मुंडन, जन्मोत्सव, उपनयन आदि अवसरों पर लकड़ियों से होम करने की प्रथा अब भी है। पर आज हम अपनी संस्कृति को ही बिगाड़ने पर तुले हैं। हमारी संस्कृति में मिट्टी, जल, पेड़-पौधे, पशुओं, गाय, बैल, सिंह, गज आदि पूजनीय माने गए, इसके पीछे पर्यावरण संरक्षण की भावना रही है। कवि पंत ने तो प्रकृति सौंदर्य के समक्ष मानव-सौंदर्य की भी उपेक्षा की है—

छोड़ द्रुमों की मृदुछाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन
भूल अभी से इस जग को।[11]

निराला के चिंतन में जनता और पर्यावरण का गहरा संबंध है। दोनों एक-दूसरे की बात समझते हैं, एक-दूसरे के अंतर्संबंधों को समझते हैं। कृषि-प्रधान भारत में वर्षा व कृषक का घनिष्ठ संबंध रहा है, बादल राग का विप्लवी बादल कृषक के दग्ध हृदय पर अपनी छाया लेकर आता है, लू के झोंकों से झुलसे हुए पेड़-पौधों व लोगों को जीवन का नया संदेश देता है। वर्षा के साथ-ही-साथ खेत में खड़ा दुर्बल किसान हल चलाना प्रारंभ कर

स्थान पर उपभोग की वस्तु बना डाला है। आज उपभोक्तावादी दुनिया में फल, फूल, जीव, सूर्य, चंद्र आदि प्राकृतिक तत्व अपने वास्तविक रूप-रंग के साथ नहीं हैं, अपितु टोमेटो जूस, मैंगो जूस आदि के नाम पर बोतलों एवं डिब्बों में बेचा जा रहा है। आज हम खुली हवा में सांस लेने की बजाय विदेशी फूल-पत्तों वाले लॉन या फ्लैट, जिसमें चार-पांच फूलों के गमले लगे हों, में ज्यादा सहजता महसूस करते हैं। आज हम प्राकृतिक वातावरण से तब रू-ब-रू होते हैं, जब पिकनिक पर जाते हैं, पहाड़ी आबोहवा हमारे स्वास्थ्य-लाभ का आधार बन गया है। हम अपने नदी, पहाड़, जंगल से नहीं, अपितु पर्यावरण से दूर होते जा रहे हैं। यही विडंबना है।

पर्यावरण असंतुलन के दौर में पर्यावरण के प्रति सचेत होना आवश्यक है। हमारे यहां ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्ति, कर्म और ज्ञान तीन मार्ग बताए गए हैं, उसमें भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सहज मार्ग माना गया है। वैसे ही अगर हम अपने पर्यावरण के विभिन्न तत्वों जैसे—जीव-जंतु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, जल, वायु, भूमि, अग्नि, आकाश को ईश्वर मानना प्रारंभ कर दें तो शायद हम अपनी हिंसक प्रवृत्ति का त्याग कर पर्यावरण का संरक्षण और संवर्धन कर नया आयाम दे सकें। अतः प्रकृति के प्रति भक्ति चाहे देवी-देवताओं के वाहनों के रूप में हो या देवी-देवताओं के निवास स्थान के रूप में हो, उसे जीवित करना होगा। लोगों के मन में एक नयी आस्था जगानी होगी अन्यथा प्रकृति के विनाश के लिए हमें आने वाली पीढ़ी कभी क्षमा नहीं कर पाएगी और पर्यावरण असंतुलन के लिए हमें दोषी ठहराएगी। आज का कवि इस चिंता में है—

सूरज और चांद को लग गया ग्रहण
डालियों में धंस गए विष बुझे तीर
नदियों में घुल गया हवाओं का लहू
फूलों पर बैठ गई बारूद की गंध
क्या छोड़ जाऊंगा विरासत में आखिर
क्या छोड़ जाऊंगा।[7]

संदर्भ

1. प्रो. कृष्णदेव शर्मा, विद्यापति पदावली, पृ. 393
2. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. 10
3. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली।
4. तुलसीदास, रामचरित मानस, गीता प्रेस, किष्किंधा कांड, पृ. 637
5. शांति सेठी/ राधास्वामी, सत्संग व्यास, संत कबीर, पृ. 188
6. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ. 13
7. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, पृ. 732
8. वही, पृ. 419
9. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, सूर सागर अरीक, पृ. 238
10. डॉ. हरवंशलाल वर्मा, सूर और उसका साहित्य, पृ. 354
11. सुमित्रानंदन पंत, वीणा।
12. सं. रामविलास शर्मा, राग-बिराग, पृ. 56

गया है, वहीं पर्यावरण में उसका हस्तक्षेप बढ़ा है, बढ़ते उत्पादनों तथा कारखानों द्वारा पर्यावरण-प्रदूषण विश्वव्यापी है। मनुष्य ने पृथ्वी नहीं, आसमान पर भी अपना अधिकार कर लिया है। उपग्रह के टुकड़ों के मलबे से अंतरिक्ष भर गया है, परमाणु परीक्षण कर रहे देश अपना वर्चस्व दिखाना चाह रहे हैं, उन्हें न पर्यावरण की चिंता है, न ही लोगों की। पर्यावरण से छेड़छाड़ का परिणाम कितना घातक हो सकता है, यह हमें भोपाल से जानने की जरूरत है—

रात कैसे कहर ढाती है? यह कोई भोपाल से पूछे
निगलता कैसे अंधेरा सूर्य मुखियों को...
जर्द होता है किस तरह उम्मीद का चेहरा
छीनती है मौत कैसे फूल का सेहरा...
मालियों का स्वार्थ कैसे आग बन जाता है चमन का
मनुज का विषदंत कैसे कहानी बनती चुभन की
हवस कैसे हादसे दिखाती है यह कोई भोपाल से पूछे?

(शिक्षा विभाग, राजस्थान के शिक्षकों के काव्य-सम्मेलन 'सुनो ओ नदी रेत की' संपादन बलदेव बंशी, लेखक बलवती लाल व्यास (1985) से साभार।)

आज हम पर्यावरण को इतना प्रदूषित कर चुके हैं कि जल, वायु, भूमि, आकाश, जो जीवनदायिनी तत्व हैं, वे विषैले हो गए हैं। गंगा जैसी नदी प्रदूषित है, नदियों में नालों का पानी एवं औद्योगिक कचरा निःसृत हो रहा है, हवा में जहर घुल गया है, मोटरगाड़ियों से निकलने वाले धुएं के कारण सांस लेना कठिन हो गया है। आज नदी, वृक्ष, फूल, फल को कवि वैसा नहीं देख पाता, जैसे प्राचीन कवियों ने देखा था। आज प्रकृति को देखने का कवि का नजरिया बदला गया है। कवि प्राकृतिक पर्यावरण के दूषित होने से चिंतित है—

किस ऋतु का फूल सूंघूं
किस हवा में सांस लूं
किस डाली का सेब खाऊं
किस सोते का जल पीऊं
पर्यावरण वैज्ञानिकों,
कि बच जाऊं।[5]

आज का कवि पर्यावरण के अस्तित्व को लेकर चिंतित है, वह औद्योगिक विकास के कारण प्राकृतिक दुनिया को नष्ट नहीं होने देना चाहता। कवि जानता है, मानव की मूलभूत आवश्यकताएं प्रकृति द्वारा पूरी होती हैं और मानव प्रकृति के उपयोग के बिना नहीं रह सकता। पर प्रकृति में मानव के अनावश्यक हस्तक्षेप ने उसे विलुप्त होने के कगार पर पहुंचा दिया है। इस पर युवा कवि अपनी वेदना व्यक्त करता है—

नक्शे में ढूंढो हमारे दर्द का रंग
हमारे घर-गांव की वनस्पतियां
इस ऋतु में खिलने वाले फूल
और बोलने वाली चिड़ियों के नाम नक्शे में ढूंढों।[6]

संक्षेप में कहा जाए, आज मनुष्य पर्यावरण से निरंतर कटता जा रहा है। उपभोक्तावादी प्रकृति के कारण आज मनुष्य ने वन, भूमि, पृथ्वी, आकाश को पूज्य के

अंतःकरणीय प्रदूषण के विज्ञान सूत्र : ज्ञानेश्वरी में

डॉ. अ.श्री. झाड़गांवकर

अंतःकरणीय प्रदूषण के कारण व्यक्ति में विकार उत्पन्न होते हैं, जिसके फलस्वरूप उसका जीवन अशांति से भरा, अविवेकी तथा कष्टों से भरपूर हो जाता है।

वस्तुतः ज्ञानेश्वरी में ज्ञानेश्वर महाराज ने अंतःकरण की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि अंतःकरण में मन, बुद्धि, चित और अहंकार का समावेश होता है। उन्होंने ज्ञानेश्वरी में अंतःकरणीय प्रदूषण के विज्ञान सूत्र उदाहरण सहित प्रस्तुत किए हैं। आइए, उन सूत्रों के माध्यम से देखें की कैसे मन का प्रदूषण, बुद्धि को प्रदूषित करता है, जिसके प्रभाव से बुद्धि में विकार उत्पन्न होते हैं। बुद्धि अपना निर्णयात्मक बल खो देती है तथा उसका अहंकार धीरे-धीरे बढ़ता जाकर, चित को भी अपने चंगुल में ले लेता है।

इस प्रकार मन, बुद्धि, अहंकार, चित अर्थात् अंतःकरण प्रदूषित होकर मानव को पापी दर्जे तक पदावनत कर देता है।

अंतःकरण के घटक

ज्ञानेश्वर महाराज ने गीता का मर्म (अर्थ) ज्ञानेश्वरी के माध्यम से सरलता से जनता-जनार्दन को समझाया है। वे कहते हैं कि अंतःकरण के चार घटक होते हैं—

मन, बुद्धि, अहंकार, और चित ऐसे चार।
अंतःकरण के प्रकार, अर्जुन जानो ॥

—18/448

स्पष्ट ही है कि मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त के चार घटकों से अंतःकरण का निर्माण होता है। आइए, अब घटक में प्रदूषण क्या और कैसा प्रभाव डालता है? उसका विस्तृत विज्ञान सूत्र देखें।

1. मन में उत्पन्न होने वाले प्रदूषणीय तत्व तथा उनका प्रभाव

ज्ञानेश्वर महाराज मन का विज्ञान-सूत्र बतलाते हुए कहते हैं कि मन चंचल होता है तथा वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

स्वभावतः यह मन, अत्यंत चंचल।

—6/418

छोड़ेगा क्या मन, अपना स्वभाव।

—6/416

13. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ. 16
14. वही, पृ. 83
15. एकांत श्रीवास्तव, अन्न हैं मेरे शब्द, पृ. 104
16. एकांत श्रीवास्तव, मिट्टी से कहूंगा धन्यवाद, पृ. 80
17. वही, पृ. 85

विभागाध्यक्ष (हिंदी)
स्वामी स्वरूपानंद इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन,
हुडको, भिलाई (छ.ग.)

जाती है, तब व्यक्ति असंवेदनशील हो जाता है। उसमें अहंकार का भाव उत्पन्न होने लगता है। वह अपने आपको कर्ता-धर्ता समझकर लाभ पाना चाहता है।

मैं कर्ता इन कर्मों का, मुझे लाभ मिले इन फलों का।

–13/187

अहंकारीय प्रदूषण के कारण वह अकर्म करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है।

जो-जो होवे निषिद्ध कर्म, इसके लिए नित्य तत्पर।

–14/251

उसे पवित्र और अपवित्र कर्म के भेद का ज्ञान नहीं रहता।

पवित्र अथवा अपवित्र। यह भेद न जाने।

–18/559

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि अहंकारीय प्रदूषण के प्रभाव के कारण व्यक्ति आत्मघात (फांसी पर लटकना) भी कर लेता है।

इस कारण अपना ही स्वतः, घात करता पूरी तरह।

–6/70

4. चित्त-प्रदूषण का प्रभाव

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि चित्त प्रदूषण, अंतःकरणीय प्रदूषण की अंतिम सीढ़ी होती है। चित्त की प्रदूषणीय अवस्था प्राप्त होने के पूर्व मन, बुद्धि, अहंकार के तत्व प्रदूषिण हो चुके होते हैं। वे कहते हैं कि चित्त में व्याप्त प्रदूषण के प्रभाव के कारण व्यक्ति के चित्त में अस्थिरता उत्पन्न होती है। मनुष्य व्याकुलता से ग्रसित हो जाता है।

अथवा मनुष्य होता व्याकुल। चित जैसे अस्थिर।

–15/113

चित्त प्रदूषित व्यक्ति अपने आपको ज्ञानी, धनी और सबसे चतुर समझने लगता है–

कहता मेरा अहो भाग्य, मेरे समान न है कोई सुखी।

–14/151

और कहे आज कोई भी अन्य, मेरे समान नहीं ज्ञानी और धनी।
मेरा चित्त है असामान्य, आकाश भरा चतुरता से॥

–14/157

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि ऐसा चित्त-प्रदूषित व्यक्ति दुष्कर्म करने में सदा तत्पर रहता है। उसका त्त ऐसे कर्मों में उल्लसित रहता है।

दुष्कर्म का आवे क्षण। चित होता उल्लास पूर्ण।

–14/250

वे कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को पाप कर्म करने का दुःख नहीं होता–

दुःख न होता चित में। लेश मात्र।
निर्लज्ज जो पापकर्मों में। संकोची जो पुण्य कर्म करने में॥

–13/681

ज्ञानेश्वर महाराज मन के प्रदूषित होने का उदाहरण देते हुए कहते है, मान लो किसी व्यक्ति (पुरुष) की नजर किसी सुंदर स्त्री पर पड़ी तो उसका मन भ्रम में पड़ेगा और उसकी चल-विचलता (चंचलता) बढ़ जाएगी तथा वह बुद्धि को छलेगी, जिसके कारण व्यक्ति अपना विवेक खो देगा।

वह विवेक को भुला देगी।

–6/415

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि मन के प्रदूषित होने पर व्यक्ति अकर्म करने लगता है।

ऐसे तीव्र चंचलता से, सुख पाने के लोभ से।
छलांग लगाता बिना डरे, कर्मकांड की अग्नि में॥

–14/171

वे आगे कहते हैं कि मन, बुद्धि, विवेक के प्रदूषण को पाकर, उसे प्रत्येक स्त्री भोग की वस्तु लगती है।

गर स्त्री जो दिखाई पड़ती, उसे वह निषिद्ध न समझता।

–14/229

उपरोक्त स्थिति अर्थात् मानसिक प्रदूषण के प्रभाव को बतलाते हुए ज्ञानेश्वरजी आगे कहते हैं–

आशा दौड़े इच्छा के आगे, इच्छा दौड़े मन के आगे।
पैरों से नापे विश्व, स्पृहा उसकी॥

–14/236

2. बुद्धि-प्रदूषण का प्रभाव

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, जब बुद्धि प्रदूषित हो जाती है; तब वह विषयासक्त होती है। तब मानव विधिहीन कर्म करने लगता है।

बुद्धि जिसकी विषयासक्त, विधिहीन कर्म वे करते।

–18/241

ज्ञानेश्वर महाराज बुद्धि प्रदूषण का प्रभाव प्रदर्शित करते हुए कहते हैं, व्यक्ति को कहां, कैसे बोले, कैसा आचरण करे, इसका भी ध्यान नहीं रहता।

कब कैसा आचरण करे। किससे क्या बोले।
कहां क्या लेवे-देवे, इसका भी ध्यान न रहे॥

–14/190

उसकी रुचि अकार्य करने में विशेषतः रहती है।

अकार्य में विशेष रुचि।

–14/192

3. अंहकारीय प्रदूषण का प्रभाव

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि जब बुद्धि प्रदूषण के कारण अबुद्धि में परिवर्तित हो

समकालीन काव्य-सृष्टि में पर्यावरण-दृष्टि

चन्द्रशेखर सिंह

पर्यावरण दृष्टि अर्थात् प्रकृति की ऐसी सृष्टि, जो प्रकृति तथा मानव हितों का संवर्धन करे। वायु, जल, भूमि, मनुष्य, जीव-जंतु, सूक्ष्म जीव सभी पर्यावरण को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित करते हैं। पर्यावरण का सीधा अर्थ है—हमारा आस-पास, हमारी धरती, हमारा आकाश। पर्यावरण उन सभी स्थितियों और प्रभावों का मेल है, जो जीव-समूह के जीवन और विकास पर ही नहीं, वरन् वनस्पति जगत् और प्रकृति पर भी प्रभाव डालता है।

हमारी पृथ्वी ही सौरमंडल का एक ऐसा ग्रह है, जहां जीव-जंतुओं, पेड़-पौधों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण है। पृथ्वी सूर्य के न तो बहुत पास है, न बहुत दूर, इसलिए पृथ्वी सूर्य के निकटतम ग्रह शुक्र और बुध की तरह न तो गर्म है और सूर्य से बहुत दूर स्थित ग्रह बृहस्पति की तरह न बहुत अधिक ठण्डी। पृथ्वी के चारों ओर फैले वायुमंडल में प्राणवायु (ऑक्सीजन) आसानी से उपलब्ध है, जो सभी प्राणियों एवं वनस्पतियों के लिए अति आवश्यक है। पृथ्वी पर जल भी उपलब्ध है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पृथ्वी पर जीवन संभव हो सका है।[1] धरा पर निवासरत समकालीन कवि ने अपने कल्पना आकाश में जल, हवा तथा मानव को स्थान देते हुए अपनी लेखनी तूलिका से जो चित्र खींचा है, वह जीवन में नयी स्फूर्ति का संचार करता है।

जब मैं कमरे से बाहर निकला
तो बादलों से छनी हलकी धूप
और पानी से धुली
ठंडी हवा ने
जैसे साथ-साथ छुआ
लगा जैसे
दो बहुत ही घनिष्ठ दोस्त
दो तरफ से एकाएक
सामने आकर खड़े हो गए हैं
और हम तीनों
एक-दूसरे को पाकर
अकचका गए हैं
खुश हो गए हैं
नये हो गए हैं[2]

—भवानीप्रसाद मिश्र

अंतःकरणीय प्रदूषित व्यक्तित्व

ज्ञानेश्वर महाराज अंतःकरणीय प्रदूषण का विज्ञान सूत्र स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति दुराचारी होता है। जन-जनार्दन के लिए दुःखदायी होता है।

वैसा उसका दुराचार, दुःखदायी जगत के लिए।

–13/661

इसीलिए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि जब अंतःकरण ही शुद्ध नहीं होगा अर्थात् प्रदूषित होगा तो व्यक्ति के कर्म केवल दिखावटी होते हैं, यह एक दुःखद संयोग ही होगा।

हे पांडु पुत्र! अंतरंग जब न रहे शुद्ध।
बाह्य कर्म में निष्ठता, विडंबना ही केवल ॥

–13/469

अंतःकरणीय प्रदूषण से बचाव

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, अंतःकरणीय प्रदूषण से बचने का एकमात्र उपाय है व्यक्ति बाह्य रूप से अच्छा कार्य कर अपने शरीर को निर्मल बनाए तथा अंतरंग को ज्ञान की अग्नि में तपाकर निर्मल करे।

कर्म करे अच्छे, बाह्य अंग जिसे धोएं।
अंतरंग भी निर्मल किया, ज्ञान की अग्नि से ॥

–13/475

इस प्रकार शरीर और ज्ञान के प्रदूषण से मुक्त जब अंतःकरण होगा तो व्यक्ति पवित्रता से युक्त होगा, उसके अंतःकरण में कभी विकार उत्पन्न ही न होंगे।

कर्म से शुद्ध शरीर, ज्ञान से उज्ज्वलित अंतःकरण।
ऐसे दोनों तरह से पवित्र, हुआ वह अर्जुन ॥

–13/465

ऐसा पवित्र अंतःकरण लिप्त न, होता कभी विकारों से।

–13/450

ऐसा है ज्ञानेश्वर इंगित अंतःकरणीय प्रदूषण के प्रभावों का विज्ञान तथा उनके दूर करने का सूत्र, जो मानवीय जीवन के लिए पथ-प्रदर्शक होगा।

कुलपति,
डॉ. सी.वी. रामन विश्वविद्यालय,
करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

पत्ते और छाल
खा रहे हैं।
मर रहे हैं, दान
कर रहे हैं।
जलसों-जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं
झुलसे हुए चेहरों पर कोई चेतावनी नहीं है।

–धूमिल

चीखती-चिल्लाती-दौड़ती जनाकुल गाड़ियां, धुआं उगलती कल-कारखानों की चिमनियां, मानव धमनियां बंजर किए जा रही हैं। जमाने की हवा क्या बदली, प्रकृति की हवा ही बदल गई है। अब स्वच्छ हवा की चाह केवल स्वप्न है, क्योंकि–

क्रमशः
कुहरे की लहरीली सलवटें
मुड़ रहीं, जुड़ रहीं
आपस में गुंथ रहीं।

–गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

पर्यावरण के अंतर्गत मानवीय प्रक्रियाओं द्वारा परिवर्तित प्रदूषित वातावरण भी सम्मिलित है। पर्यावरण प्रदूषण के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या भी एक बड़ा कारण है। समकालीन कवियों की दृष्टि भी इस पर पड़ी है।

यदि जनसंख्या की तुलना में
इस विश्व में पौधे कम होंगे।
तो इतना याद रखना सजन
न तुम होंगे न हम होंगे।

–डॉ. श्रीमती सुनंदा मरावी

शहरी संगीत ने पर्यावरण-विसंगति पैदा की है, क्योंकि शहरीकरण से मानव-जीवन यांत्रिक बन गया है और उसकी सहजता व स्वाभाविकता उससे दूर हो गई है, फलतः उसकी चिर-परिचित सहचरी प्रकृति से उसकी मौलिक संवेदना लुप्त हो गई है।

और मैं शहरी आदमी
प्रकृति से इस तरह अलग होता हूं
कि पेड़ को पीछे छोड़ बस में बैठ जाता हूं
बस में बैठे मेरी इच्छा है
कि पूरे रास्ते में दोनों ओर पेड़ मिलते रहें
मैंने अपने कमरे में
पूरे जंगल की तस्वीर लगा रखी है।

–विनोदकुमार शुक्ल

लाखों वर्ष पूर्व जब मानव-जीवन की शुरुआत हुई थी, तब प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे, लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य की महत्वाकांक्षाएं बढ़ीं, आबादी बढ़ी, वैसे-वैसे प्राकृतिक संसाधनों का मनुष्य द्वारा दोहन बढ़ता गया। मनुष्य प्रकृति से अधिक-से-अधिक ऊर्जा, ज्यादा उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को निचोड़ने में लग गया। 'उपभोक्ता संस्कृति' ने मनुष्य की सोच बदल दी है। 'भोगवादी सभ्यता' की सोच है प्रकृति खरीद-फरोख्त की वस्तु है— 'खरीदो और भोगो'। दूसरे मनुष्य यह भी सोचता है कि धरती पर रहने का हक केवल मनुष्य का ही है। इस सोच की वजह से मनुष्य जंगल और वन पशुओं को क्षति पहुंचा रहा है। वन और वन्य जीवों का विनाश, कल-कारखानों से निकलने वाला धुआं, महानगरों की गंदगी, वाहनों के धुएं, प्रदूषित जल आदि ने पर्यावरण-संतुलन बिगाड़ दिया है।[3] समकालीन कवि असंतुलित पर्यावरण पर चिंता व्यक्त करते हुए काव्य में पर्यावरणीय सृजन करता है।

पृथ्वी पर
मनुष्य ही ऐसा एक प्राणी है
जो भीड़ में अकेला, और
अकेले में भीड़ से घिरा अनुभव करता है।
सभ्यता की निष्ठुर होड़ में,
संस्कृति को पीछे छोड़ता हुआ,
प्रकृति पर विजय
मृत्यु को मुट्ठी में करना चाहता है।
अपनी रक्षा के लिए
औरों के विनाश का सामान जुटाता है।
आकाश को अभिशप्त,
धरती को निर्वसन
वायु को विषाक्त
जल को प्रदूषित करने में संकोच नहीं करता।[4]

—अटल बिहारी वाजपेयी

व्यंग्य के संग भी पर्यावरण का रंग ओझल नहीं हुआ है, क्योंकि साहित्य की सभी विधाओं में व्यंग्य का समावेश है। कविता तो व्यंग्य की उर्वरा भूमि रही है, जो कबीर, निराला से लेकर समकालीन कवियों तक के काव्य में प्रवहमान है। हिन्दी काव्यधारा में सन् 1960 के बाद देश, काल, परिवेश में आए परिवर्तनों के कारण एक नया मोड़ उपस्थित हुआ, जिसमें काव्य का स्वर बदला दिखाई पड़ता है, जिसमें विद्रोह, आक्रोश, असंतोष एवं मोहभंग की अभिव्यक्ति हुई, जिससे समकालीन कविता को व्यंग्य के लिए पर्याप्त आहार मिला।[5]

व्यंग्य सृष्टि में पर्यावरण दृष्टि की अनुपम वृष्टि की पुष्टि देखिए—

उस मुहावरे को समझ गया हूं
जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है न मौसम
बदल रहा है।
लोग बिलबिला रहे हैं। (पेड़ों को नंगा करते हुए)

कीमती कालीन जब से मेरे घर में आ गए,
बेहिचक घर आने-जाने की अदा जाती रही।
बाथरूमों की नयी कलचर में इतना बंद हूं।
खुलके बारिश में नहाने की अदा जाती रही॥[11]

—डॉ. कुंवर बेचैन

यद्यपि आदिकाल से काव्य में पर्यावरणीय अभिव्यक्ति मिलती है, लेकिन समकालीन कवियों ने समसामयिक परिदृश्यों को मूर्त किया है। इनमें नयी पीढ़ी के अतिरिक्त वे कवि भी शामिल हैं, जो पूर्व की पीढ़ियों से लेखन कर रहे हैं, जिन्होंने समकालीन राष्ट्रीय परिदृश्य से प्रभावित होकर युगीन धड़कनों को लय दी है। इनमें अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, नागार्जुन, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, केदारनाथ सिंह, नरेश मेहता, दुष्यंत कुमार, धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, कुमार विकल, बलदेव वंशी, नरेंद्र मोहन, चंद्रकांत देवताले, राजकुमार चौधरी, गोरख पांडेय, राजेश जोशी, अरुण कमल, विष्णुनागर, मंगलेश डबराल, असद जैदी, ज्ञानेंद्रपति, सुमनराजे एवं पुष्पिता के अतिरिक्त एकांत श्रीवास्तव, मदन कश्यप, अरुण आदित्य, गीत चतुर्वेदी, काव्यानी, श्रीकांत जोशी, कुमार अरुण, विद्याभूषण, कुमार विश्वबंधु, आशुतोष झा, राहुल राजेश और पंकज चतुर्वेदी जैसे नयी पीढ़ी के कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।[12]

इन कवियों के दिशा-निर्देशक सिद्धांतों पर भी दृढ़ता से विचार करना आवश्यक है, क्योंकि वे सदा स्वस्थ-सुखद भविष्य की कल्पना करते आए हैं।

वास्तव में पर्यावरण के संबंध में समुचित चिंतन के अभाव में, विचारहीन वैकासिक योजनाएं धीमी गति से मृत्यु की ओर ले जाने जैसी हैं। अब तो समय है कि हम अपनी राह बदलें और संपूर्ण मानव जाति का हित संवर्धन करें व प्राकृतिक सौंदर्य को बचाएं, अन्यथा पर्यावरण की उपेक्षा, हमें प्राकृतिक सौंदर्य की यथार्थ अनुभूति से विलग कर देगी और हमारे ड्राइंग रूम में कैनवास पर बने बिंब में हम अनुभूति ढूंढते नजर आएंगे।[13] हमें सोचना होगा, हम आने वाली पीढ़ी को क्या सौगात दे रहे हैं? जहरीली हवा, जहरीला पानी, जहरीली मिट्टी। हमारे पूर्वजों ने धरती, आकाश, हवा, पानी को देवता माना था, क्योंकि वे जानते थे कि प्रकृति से ही जीवन है। आज का मनुष्य यह भूल गया है।[14] इसी अनछुई भूल को स्पर्श कराने का अथक प्रयास है, 'समकालीन काव्य सृष्टि में पर्यावरण दृष्टि।'

तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की
ये एहतियात जरूरी है इस जहर के लिए।
जिएं तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए"[15]

—दुष्यंतकुमार त्यागी

संदर्भ

1. प्रो. धनंजय वर्मा, हिंदी भाषा और वैज्ञानिक चेतना, पर्यावरण, पृ. 67
2. डॉ. रामविलास गुप्त एवं वीना गुप्त, कमल हिंदी काव्य संकलन, भाग-3, कमल प्रकाशन, पृ. 233
3. प्रो. धनंजय वर्मा, हिंदी भाषा और वैज्ञानिक चेतना, पर्यावरण, पृ. 67-68

शहर की गंदगी एवं कूड़े-कचरे ने प्रकृति के सौंदर्य को कमतर किया है, जिससे उसे ठेस लगी है। बादलों की प्रतीकात्मक आत्महत्या की व्यंग्यात्मक व्याख्या देखिए—

आकाश से बादलों ने शहर को देखा
बादल इस शहर की खिड़कियों से
बेहद नाराज हुए
जो आकाश देखने के लिए नहीं
कचरा फेंकने के लिए खुलती हैं।
बादल ने
अपनी नन्हीं बूंदों के साथ
शहर से दूर
पहाड़ से टकराकर आत्महत्या की
तब से इस शहर में सूखा है
जो बाहर कम और भीतर ज्यादा है।[9]

—महाराजकृष्ण संतोषी

एक सुंदर स्वप्न अनेक सुंदर स्वप्नों में समाकर जीवन को विराट सौंदर्य देता है, परंतु आज पर्यावरण की जो भयावह स्थिति है, उससे मानव का स्वप्न तो क्या स्वयं का अस्तित्व तक खतरे में आ गया है। पहले जब सब ठीक था, तब प्रकृति के गीत गाए जाते थे, परंतु आज विपरीत परिस्थिति में भी पर्यावरण-चेतना के हित में प्रतिबद्ध समकालीन साहित्य सृजेता कान को घुमाकर पकड़ रहे हैं, किंतु बात वही कह रहे हैं। केवल पर्यावरण चेतना पर ही दो सौ से अधिक गजल लिखने वाले डॉ. शरद मिश्र कहते हैं—

हरियाली चारों ओर थी पहले की सृष्टि में।
सब कुछ हरा-हरा दिखा करता था दृष्टि में।
जल-मृदा बन विनाश और ध्वनि का प्रदूषण
अंतर बहुत पड़ा है आज वृष्टि में।

—डॉ. शरद मिश्र

वन्य जीवों के विनाश ने भी वन समृद्धि के वृद्धि में बाधा डाली है। व्यंग्यात्मक प्रस्तुति का काव्यात्मक लहजा देखिए—

यह सूचना पोथा चमन, हजार साल पर।
नर्गिस नहीं खिलाएगी अब फूल डाल पर॥
जबसे किया तेंदुओं, चीतों, शेरों का सफाया।
तबसे नजर टिकी हुई गैंडों की खाल पर॥
पकड़े जाने पर ऐंठकर बोला था शिकारी।
हमको भरोसा है अपने नेता की ढाल पर॥

—काग के भाग बड़े सजनी, पृ. 35

डॉ. कुवर बेचैन ने प्रकृति से विमुख हो रहे बनावटीपन के आवरण के बीच अपने अस्तित्व को खोते हुए मानव को देखा तो बेचैन होकर कहा—

पर्यावरण एवं पारिस्थितिक चिंतन कामायानी के संदर्भ में

श्रीमती रंजना तिवारी

अपने धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि प्रकृति के प्रत्येक घटक की तुलना देवी-देवताओं से की गई है, जिनके प्रति हम आदर रखते हैं। यह प्रकृति एवं समस्त भूमंडल मानव के लिए कभी रहस्य बना हुआ है, कभी उसका उदात्त भाव हमें चमत्कृत कर जाता है।

प्राकृतिक तथा सामाजिक दोनों घटक मानव के लिए बहुत अधिक महत्व के हैं। इन घटकों पर तकनीकी विकास का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। विकास केवल पूंजीपति वर्ग से संबंधित नहीं है, बल्कि यह समाज के हर वर्ग से संबंधित है। विकास का आशय केवल राष्ट्रीय उत्पाद में विकसित देशों की वृद्धि ही नहीं। इसका अर्थ है, सभी को फायदा और वह भी मात्र वर्तमान पीढ़ी के लिए नहीं, अपितु भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए भी।

नार्वे के प्रधानमंत्री जी.एच. जुटलैंड का विचार सुस्थिर विकास के संबंध में कुछ इस तरह है,

'सुस्थिर विकास ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें यह निश्चित किया जाता है कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ आगे आने वाली पीढ़ी की आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं की आपूर्ति में कोई कठिनाई न हो।'

सुस्थिर विकास वह विकास है, जो हमें सिखाता है कि कहीं वर्तमान विकास जैव-विविधता के लिए खतरनाक तो नहीं है? कहीं इससे मृदा-अपरदन तो नहीं होगा? क्या यह वन-संरक्षण को बढ़ावा देता है?

हमारा साहित्य प्रारंभ से ही इस विचार का समर्थक है। इसलिए संस्कृत साहित्य से हिंदी साहित्य तक सभी साहित्यकारों ने प्रकृति को अपनी सहचरी, प्रेरणादायिनी शक्ति और मनोरम, अनुपम आनंद प्रदान करने वाली मानकर साहित्य में विशेष स्थान दिया है। पर्यावरण संतुलन के नष्ट होते ही मानव सभ्यता भी नष्ट हो जाएगी, यह दूरदृष्टि हमारे साहित्यकारों के पास पहले से ही थी।

आज से 60-70 वर्ष पहले इस बात का उद्घोष महाकवि जयशंकर प्रसाद ने कर दिया था कि यदि मानव अपने फायदे के लिए, दंभ में आकर अपनी विलासिता के लिए, प्रकृति का उपभोग प्रारंभ करेगा तो यह प्रकृति भी अपनी सहनशीलता को छोड़ मनुष्य को दंड देने में जरा भी संकोच नहीं करेगी।

4. अटल बिहारी वाजपेयी, मेरी इक्यावन कविताएं, पृ. 29
5. डॉ. विनय कुमार पाठक एवं डॉ. श्रीमती जयश्री शुक्ल, हिंदी व्यंग्य : कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ. 137-138
6. चंद्रकांत देवताले, हिंदी काव्य संकलन, भाग-3, अकाल दर्शन, पृ. 72-73
7. डॉ. रामविलास गुप्त, एवं वीना गुप्त, कमल हिंदी काव्य संकलन, भाग-3, कमल प्रकाशन, पृ. 180
8. डॉ. शिवकुमार अवस्थी, रचना (द्वैमासिक), मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, साहित्य में पर्यावरण चेतना, पृ. 55
9. प्रो. कमलकांत तिवारी, समकालीन काव्य संकलन, राजीव प्रकाशन, पृ. 209
10. गिरधर राठी, समकालीन भारतीय साहित्य, सित.-अक्टू.-2000, पृ. 188
11. डॉ. शिवकुमार अवस्थी, रचना (द्वैमासिक), मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, साहित्य में पर्यावरण चेतना, पृ. 56
12. डॉ. विनय कुमार पाठक एवं डॉ. श्रीमती जयश्री शुक्ल, हिंदी व्यंग्य : कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ. 138-139
13. डॉ. शिवकुमार अवस्थी, रचना (द्वैमासिक), मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, साहित्य में पर्यावरण चेतना, पृ. 56
14. प्रो. धनंजय वर्मा, हिंदी भाषा और वैज्ञानिक चेतना, पर्यावरण, पृ. 69
15. चंद्रकांत देवताले, हिंदी काव्य संकलन, भाग-3, अकाल दर्शन, पृ. 67

विभागाध्यक्ष, हिंदी
डॉ. जे.पी. मिश्र शासकीय विज्ञान महाविद्यालय,
मुंगेली, जिला बिलासपुर-495334 (छ.ग.)

कर दिया। दूसरे में शासक और जनता के बीच विषम युद्ध की सामूहिक बलि ने सामाजिक जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस तरह हम 'पारिस्थितिकी' (इकॉलॉजी) तथा पर्यावरण (एनवायरमेंट) की समस्याएं प्राप्त कर सकते हैं। देवताओं की दृष्टि में आत्म भोग के लिए प्रकृति के सभी शक्ति-स्रोतों का इतना दोहन किया गया कि विश्व वीरान हो गया (अपना नव-नव निर्माण किए रखना यह विश्व सदैव हरा)। मानुषी सभ्यता स्वतंत्रता की उच्छृंखलता के कारण भौतिक साधनों का संग्रह तथा हिंसापूर्ण संघर्ष हुए, जिससे प्रदूषण और प्रतिद्वंद्विता ने सारस्वत प्रदेश तथा सरस्वती नदी को वीरान कर दिया। अतः दोनों ही प्रकार की विषमताओं की पीड़ा से स्पंदित विश्व आतंकित रहा। उसके संतुलन की चेष्टा सृष्टि, विस्तार और नियमन द्वारा हुई है। इसे प्रबंध के काव्यात्मक दर्शन 'समरसता' की अवधारणा द्वारा व्यंजित किया गया है।

समरसता जड़ और चेतन के बीच अर्थात् जीव (मनुष्य) और संसार (जगत्) के बीच कास्मिक ऐक्य (अभेद्य) है। काव्य में प्रकृति का मानवीकरण तथा मानव का प्रकृतिकरण इस बात का उदाहरण है।

भौतिक प्रकृति के संदर्भ से संघर्ष का जैविक सिद्धांत प्रचलित है। इड़ा मनु को बताती है कि प्रकृति के संग संघर्ष करना मैंने तुम्हें सिखाया, किंतु मनुष्य को केंद्र में रखा, यंत्र या भौतिक देह को नहीं। मैंने बिखरी प्राकृतिक विभूति को विज्ञान से नियमित करके मनुष्य को ही स्वामी बनाया, किंतु मनु तो प्राकृतिक शक्तियों, पंचभूतों के विरुद्ध ही संघर्ष छेड़कर महानाश की स्थिति ला रहे हैं। विज्ञान और ज्ञान के कलशों की वाहिका इड़ा इस महाशक्ति को मानव की महाचेतना के साथ एकाकार करने की संयोजिका है। यहां पर्यावरण-विज्ञान का अद्‌भुत नियम प्रकट हो उठा है।

समरसता के जिस सिद्धांत की प्रतिष्ठा प्रसादजी ने कामायनी में की है, उसमें सबसे पहली है मनुष्य और समाज की प्रकृति के साथ समरसता। नारी और पुरुष में समरसता देखिए—

'तुम भूल गए पुरुषत्व—मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी भी।'

प्रकृति के ऋतु चक्र के अनुसार मनुष्य के जीवन में अवस्था चक्र आता है। जन्म-यौवन-मृत्यु का वृत्त घूमता रहता है। पंचभूत का यह सृजन-संहार तांडव प्रकृति तथा मनुष्य दोनों को संचालित करता है। इस संतुलन को बलि, आहुत (यज्ञ, देव-यजन) युद्ध ज्वालाओं का प्रदूषण भंग करते हैं।

देव-यजन के पशु यज्ञों की पूर्णाहुति की ज्वाला,
जलनिधि में बन जलती कैसी आज लहरियों की माला।
उनको देख कौन रोया यों अंतरिक्ष में बैठ अधीर,
व्यस्त बरसने लगा अश्रुमय यह प्रलय हलाहल नीर।

यहां श्रद्धा पशु यज्ञ का घोर विरोध कर तर्क करके बताती है कि निरीह और उपयोगी पशुओं की हत्या तो आत्मघाती सिद्ध होगी, क्योंकि पशु भी हमारे पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखने में सहयोग करते हैं।

विकास जब तक मानव-मात्र पर केंद्रित था तब तक ठीक, लेकिन विकसित देशों की नकल करता हुआ समूचा विश्व, जब यह जाने बगैर कि किस कीमत पर तकनीकी वैज्ञानिक विकास हुआ है या हो रहा है, वह तकनीकी विकास, आज अपनी बुलंदियों को छू रहा है। इस प्रयास में हवा, पानी और भोजन तीनों प्रदूषित हुए हैं तथा हमारे प्राकृतिक संसाधनों का सबसे ज्यादा ह्रास हुआ है। यदि यही दौर चलता रहा तो हम मीडोस की विश्व प्रसिद्ध रिपोर्ट 'विकास की सीमाएं' में वर्णित साक्षात् प्रलय से साक्षात्कार करेंगे।

इसी अनियंत्रित विकास की ओर प्रसादजी ने भी हमारा ध्यान कामायनी के माध्यम से दिलाया है। कामायनी के 'चिंता सर्ग' में मनु हिमालय की चोटी पर अकेले बैठे हैं और यह दृश्य है प्रलय के बाद का। मनु सोचते हैं कि मैं तो देव जाति का हूं, जिसके पास सभी प्रकार की शक्तियां थीं अर्थात् वह देव जाति जो वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की बुलंदियों को छू रही थी। पांचों तत्व—आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि जिनके इशारों पर नाचते थे, अपनी क्षमताओं और शक्ति में देव जाति अहंकार में डूबी।

मणिदीपों के अंधकारमय अरे निराशापूर्ण भविष्य,
देव दंभ के महामेघ में सब कुछ ही बन गया हविष्य।
अरे अमरता के चमकीले पुतलो! तेरे वे जयनाद-
कांप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बनकर मानो दीन विषाद।

और मनु ने पाया कि

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूल मद में,
भोले थे, हां तिरते केवल सब विलासिता के नद में।
वे सब डूबे, डूबा उनका वैभव, बन गया पारावार,
उमड़ रहा था देव-सुखों पर दुःख-जलधि का नाद अपार।
वह उन्मत्त विलास हुआ क्या! स्वप्न रहा या छलना थी।
देवसृष्टि की सुख-विभावरी ताराओं की कलना थी।
विकल वासना के प्रतिनिधि वे सब मुरझाए चले गए
आह जले अपनी ज्वाला से फिर वे जल में गले गए।

उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से मनु ने मानव-जाति को चेतावनी दी है कि प्रकृति से छेड़छाड़ और प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन इकॉलॉजी सिस्टम को बिगाड़ देता है, फिर कुछ भी नहीं बचता।

चिंतातुर मनु समरसता का पाठ पढ़ाते हैं। प्रबंध के आरंभ में 'जड़ और चेतन' दोनों एक ही सत्य तत्व के रूप में हैं, प्रबंध के अंत में जड़ और चेतन दोनों ही, लेकिन 'समरस' हो गए हैं। इकॉलॉजी तथा जेनेटिक्स के अनुसार भी जड़-चेतन के बीच एक अटूट जीवन-शृंखला है। अगर उसको अव्यवस्थित कर दिया जाए (पशु, पक्षी और प्राणी की किसी जाति को समाप्त करके या प्रकृति में वन, जल, भूमि और पर्वत आदि को समाप्त करके) तो स्वयं संसार के आवयविक जीवन (आर्गेनिक लाइफ) के समाप्त हो जाने का खतरा हो जाता है।

कामायनी में पहले देव संस्कृति उजड़ती है तथा बाद में युद्ध द्वारा मानुषी सृष्टि बरबाद होती है। दोनों के कारण एक तो नहीं, लेकिन एक समान हैं। पहले में वासना और शक्ति की ज्वाला ने जीव जगत् के जैविक चक्रों (बायोलॉजिकल साइकल्स) को विपथगामी

डॉ. इंद्रबहादुर सिंह के काव्य में 'पर्यावरण-प्रदूषण'

डॉ. संतराम देशमुख

'पर्यावरण' शब्द फ्रेंच भाषा की क्रिया 'इन्वारोरेन' का हिंदी रूपांतरण है, जिसका अंग्रेजी रूपांतरण 'द राउंड' है जिसका अर्थ है, "चतुर्दिक दिशाओं अथवा चारों ओर से घेरती है।" मनुष्य के संदर्भ में पर्यावरण का आशय मात्र 'प्राकृतिक पर्यावरण' से ही संबंधित नहीं हो सकता, क्योंकि मानव जीवन सृष्टि के अन्य जीवों की अपेक्षा जटिल है। मानव प्राकृतिक पर्यावरण में रहते हुए अनेक अनुक्रियाएं करता है और प्राकृतिक पर्यावरण की शक्तियों का उपयोग करते हुए अपनी छाप छोड़ता है। वह छाप 'सांस्कृतिक पर्यावरण' को जन्म देती है। इस प्रकार प्राकृति विज्ञानियों की पर्यावरण में मानव सृजित पर्यावरण की अभिकल्पना समन्वित हो जाती है और 'पर्यावरण' शब्द अपेक्षाकृत अधिक व्यापक हो जाता है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने कहा है, "पर्यावरण उन चतुर्दिक घेरे हुए तत्वों का योग है, जो किसी जीवधारी को प्रभावित करता है।"[1]

पर्यावरण के अध्ययन में निम्न बातों का अध्ययन सम्मिलित है—

1. मानव पर पर्यावरण का प्रभाव और
2. वातावरण पर मानव का प्रभाव।

बदलते समय के साथ पर्यावरण का अध्ययन व्यापक होता जा रहा है। पर्यावरण की प्रारंभिक परिभाषाएं प्राकृतिक विज्ञान से संबंधित रही हैं, परंतु विषय क्षेत्र के विस्तार के साथ परिभाषाएं मानविकी से भी संबद्ध हो गईं तथा इसमें भौतिक, सामाजिक, आर्थिक तथ्य सम्मिलित होते गए। पर्यावरण की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

1. "पर्यावरण किसी जीवधारी को प्रभावित करने वाले समस्त कारकों का योग है।
   —फिटिंग
2. "वनस्पति एवं प्राणी अपने प्राकृतिक निवास से संबद्ध रहते हैं।" *—डार्विन*
3. "पर्यावरण में वे सभी भौतिक-अभौतिक प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित वस्तुएं सम्मिलित हैं, जो प्राणी को चारों ओर से घेरे हुए हैं और उसे प्रभावित करती हैं।"
   —डॉ. विनय कुमार पाठक
4. "पर्यावरण के अंतर्गत जैविक एवं अजैविक कारकों के पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन होता है।" *—डॉ. इंद्रबहादुर सिंह*
5. "एक समाज से दूसरे समाज की संस्कृति में भिन्नता के कारण उसके पर्यावरण में अंतर होता है।" *—एंडर्सन तथा पार्कर*

एक माया! आ रहा था पशु अतिथि के साथ,
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ।

कामायनी में प्रसादजी ने सरल संकेतों से काम चला लिया, आज हमें अपने इकॉलॉजी तथा पर्यावरण को बचाना है तो कुटीर उद्योग एवं ऐसे विकास की तरफ जाना होगा जो कालांतर में विनाश न लाए। कामायनी में प्रगति के एक चरण में सारस्वत सभ्यता का विकास होता है। इन्हीं संदर्भों में यह महाकाव्य आज भी प्रासंगिक है, आधुनिक विश्व में पर्यावरण मनुष्य के जीवन के साथ संबद्ध है। जनसंख्या और प्रदूषण की वृद्धि ही तो महाप्रलय है, जिससे पृथ्वी वहन क्षमता खोकर डूबने-तैरने लगती है। कामायनी में तो उषा का उदय हो भी गया। हम जो अब डूबे तो पता नहीं उबर भी सकेंगे या नहीं।

70 के दशक से ही पर्यावरण की चिंता प्रारंभ हुई। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी चर्चा रियो-डि-जनेरियो में 1992 की 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास संगोष्ठी' में हुई, जिसे पृथ्वी सम्मेलन कहा जाता है। इस घोषणा का उद्‌देश्य 'अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी राष्ट्रों में परस्पर सहयोग' था।

जैसा हम साहित्य और साहित्यकारों के संदर्भ में जानते हैं, जयशंकर प्रसादजी कामायनी के माध्यम से पारिस्थितिकी विज्ञान और पर्यावरण को समरसता की चाशनी में पगाकर मानवता को मिठास का आभास दे जाते हैं।

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त,
विजयनी मानवता हो जाए॥

संदर्भ

1. पर्यावरण शिक्षा, डॉ. शरदेंदु किसलय।
2. कामायनी पर नयी किताब, रमेश कुंतलमेघ।

विभागाध्यक्ष एवं सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
कला एवं वाणिज्य कन्या महाविद्यालय
देवेंद्र नगर, रायपुर (छ.ग.)

प्रमुख प्रदूषक एवं उनके स्रोत

मानव उपयोग के लिए निर्मित वस्तुएं एवं त्याज्य सामग्रियां प्रदूषण के स्रोत हैं। इनसे पर्यावरण प्रदूषित होता है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने निम्न प्रकार के प्रमुख प्रदूषक एवं उनके स्रोत बताए हैं–

1. धुआं, तारकोल, धूल एवं मिंट।
2. कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड।
3. सल्फ्यूरिक अम्ल।
4. हाइड्रोजन सल्फाइड।
5. फ्लोरीन क्लोराइड।
6. क्लोरीन, ब्रोमीन एवं आयोडीन।
7. भारी धातुएं जैसे–सीसा, लोहा, जस्ता, क्रोमियम, कैल्शियम।
8. कृषकीय प्रदूषण यथा–कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी दवाएं आदि।
9. स्वचालित्त वाहनों से निर्मित धुआं, जिसमें सीसा, नाइट्रोजन ऑक्साइड, एल्डीहाइड, एथिलीन आदि होते हैं।

प्रदूषकों के मुख्य प्रकार

प्रदूषकों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने इन्हें दो वर्गों में विभक्त किया है–

1. अजैव (नॉन डिग्रेडेबिल) प्रदूषक–इसके अंतर्गत पारा, डी.डी.टी., पेट्रोलियम आदि रसायन आते हैं। ये एक बार पर्यावरण में पहुंचने पर विघटित नहीं होते, बल्कि सांद्रता बढ़ती जाती है।

2. जैव अपकर्षीय (बायोडिग्रेडेबिल)–इस वर्ग के अंतर्गत प्राकृतिक रूप से अपघटित होने वाले तत्व आते हैं, लेकिन इनकी मात्रा स्वाभाविक रूप से अपघटित होने की अपेक्षा अधिक होने पर समस्या मूलक हो जाती है और पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है।

प्रदूषण के प्रकार

प्रदूषकों की प्रकृति, विविधता, पर्यावरणीय प्रभाव आदि के आधार पर प्रदूषण को निम्न वर्गों में बांटा जाता है–

1. वायु प्रदूषण,
2. जल प्रदूषण,
3. तापीय प्रदूषण,
4. ध्वनि प्रदूषण,
5. मृदा प्रदूषण,
6. नाभिकीय प्रदूषण और
7. सामुद्रिक प्रदूषण।

उपर्युक्त प्रदूषकों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार हैं–

6. "पर्यावरण मूर्त चीज न होकर अमूर्त वस्तु है।" —*जेविस*

7. "जीवन की असंख्य गतिविधियां अदृश्य एवं अमूर्त होती हैं और हमें प्रभावित करती हैं। पर्यावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष होता है।"

—*देवेंद्र सिंह गहरवार*

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पर्यावरण की संकल्पना मानव से संबद्ध रही है। आज की जैविक संकल्पना सर्वमान्य है, जो पारिस्थितिकी से संबद्ध है। जैविक संकल्पना के स्थापित होने के पश्चात् मानव एवं प्राणी जगत् में भेद स्थापित करते हुए पर्यावरण को सामाजिक विरेचना से जोड़ा गया तथा समाज विकास के वैज्ञानिक विश्लेषण में मानव को सामाजिक जैविक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया, फलतः पर्यावरण की संकल्पना मानव के सामाजिक-आर्थिक विकास से संबद्ध हो गई। इस संकल्पना के प्रमुख विचारक मार्क्स थे। समाज के उत्तरोत्तर विकास के फलस्वरूप प्राकृतिक एवं तकनीकी प्रगति हुई, जिससे पर्यावरण के तत्वों का गहन उपयोग प्रारंभ हो गया। साथ ही समाज और प्रकृति के संबंध जटिल होते गए। मानव के संदर्भ में पर्यावरण की धारणा व्यापक हो गई। इसमें प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तत्व सम्मिलित हैं। मानव-जीवन का पर्यावरण जटिल सृष्टि के अन्य जीवों की तरह सरल नहीं है। इसीलिए पर्यावरण को संपूर्ण पर्यावरण से भी अभिहित किया जाता है। पर्यावरण विभिन्न स्थानिक तत्वों एवं सामाजिक, आर्थिक तंत्रों से संबद्ध होता है। इन तंत्रों की विशेषताएं अलग-अलग होती है, परंतु पर्यावरण इन्हीं का समग्र रूप होता है।

पर्यावरण प्रदूषण : परिभाषा

प्रकृति में विभिन्न तत्वों के भौतिक, रासायनिक एवं जैविकीय तत्वों के परिवर्तन से प्रदूषण उत्पन्न होता है। यह एक अवांछनीय स्थिति है। जीवों की मृत्यु के पश्चात् उनका सड़ना, धूल का उड़ना, वनस्पतियों का सड़ना, जीवों का मल-विसर्जन आदि से पर्यावरणीय प्रदूषण उत्पन्न होता है। प्राकृतिक रूप से उत्पन्न प्रदूषण स्थायी न होकर प्रक्रिया के साथ-साथ समाप्त हो जाता है। प्रकृति प्रदूषण का निस्तारण भी स्वयं करती हैं। जब कोई जीव मरकर सड़ने लगता है तो चील, कौवे तथा सूक्ष्मजीव उसे खा जाते हैं और प्रदूषण स्वयं समाप्त हो जाता है। कालांतर में सभ्यता के विकास के साथ अनेक परिवर्तन हुए। आर्थिक समृद्धि एवं रहन-सहन के साथ छीजनों की वृद्धि होती गई। ऊर्जा के उपयोग से जैव ईंधनों का दहन प्रारंभ हो गया। औद्योगिक एवं नगरीय मल-जल नदियों में विसर्जित होने लगे। फलतः जलवायु में अवांछित पदार्थ मिलने लगे, जिससे प्राणवायु एवं शुद्ध जल का अभाव होने लगा। विविध कृषि एवं औद्योगिक क्रियाकलापों के कारण मृदा में भी अवांछित तत्व पाए जाने लगे हैं, जो मानव एवं जीव-जगत् के लिए हानिप्रद हैं। इस प्रकार डॉ. इंद्रबहादुर सिंह के शब्दों में कहा जा सकता है, "प्रदूषण एक अवांछनीय स्थिति है, जिसमें रासायनिक, भौतिक एवं जैविक परिवर्तनों से जल, वायु, मिट्टी आदि के स्वाभाविक गुण समाप्त होने लगते हैं तथा जैव एवं वनस्पति जगत् पर उनका हानिकारक प्रभाव दृष्टिगत होने लगता है। वस्तुतः प्रदूषण एक असामान्य वातावरणीय स्थिति है।"[2]

6. शुष्क एवं आर्द्र वायु में प्रदूषकों की मात्रा तथा
7. वायु की गुणात्मकता।

डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने वायु प्रदूषण का वर्णन अपनी कविताओं में बड़ी सहजता से किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

कारखानों की धुआं उगलती चिमनियां
जैसे कोई कलमुंहा कंपाउंडर लगा रहा हो निरंतर
जहरीले इंजेक्शन वात के गात में।
धुआं उगलती चिमनियां जैसे कोई अंधेरे का सौदा
विकास के नाम पर पोत रहा हो कालिख
सूरज के गाल पर।

वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपायों पर विचार करते हुए डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने लिखा, 'क्षेत्रीय वायु गुणवत्ता के अध्ययन पर विशेष बल देते हुए विश्वसनीय तथ्यों पर ध्यान देना होगा। वायुमंडल में ग्रीन हाउस प्रभाव विचारणीय तथ्य है। वायु प्रदूषण का वायु की संरचना तथा भौतिक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव, दृश्यमानता में ह्रास, वनस्पतियों, जीवों तथा समुद्री जीव-जंतुओं पर प्रतिकूल प्रभाव का आकलन आवश्यक है। इसके नियंत्रण के लिए प्राविधिक नियमन के साथ वायु में विद्यमान गैसीय तत्वों की सुरक्षा का उपाय करना अपेक्षित है। इसके लिए अनुकूल ईंधन चयन, कणीय पदार्थों पर नियंत्रण, वाहन उत्सर्जित बिना जले हाइड्रोकार्बन का घटना, सीसे की मात्रा का घटना सम्मिलित हैं। इसके लिए कानून की सहायता की अपेक्षा, वायु की गुणात्मकता के मानकों के प्रति समाज के हर वर्ग को सजग किया जाना समीचीन है। वर्तमान आर्थिक विकास की होड़ के साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास से होने वाली हानियों के प्रति सचेष्ट और सचेत रहकर ही वायु प्रदूषण की समस्या का निदान किया जा सकता है।

2. **जल प्रदूषण**—जल प्रदूषण से अभिप्राय है—नदी में ऊर्जा या ऐसे पदार्थों का निक्षेप, जिनसे जल के गुण में कमी हो जाए। वस्तुतः प्रदूषित जल में जैविक, रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तन हो जाता है। जैविक तत्वों में सूक्ष्म बैक्टीरिया एवं विषाणु बढ़ जाते हैं। रासायनिक अपद्रव्यों के कारण पी.एच. मान 5.5 से कम एवं 9.5 से अधिक हो जाए तो जल का रंग, स्वाद एवं गंध बदल जाती है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने जल प्रदूषण के निम्न कारण बताए हैं—

1. नगरीय बहिस्राव,
2. कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट,
3. कृषि क्षेत्रों से बहिस्राव एवं
4. जल परिवहन।

प्रदूषित जल पीने योग्य नहीं रह जाता। फलतः स्वच्छ जल की आपूर्ति कठिन होती जा रही है। प्रदूषित जल के कारण पीलिया एवं पोलियो रोग नगरीय क्षेत्र में प्रायः पाए जाते हैं। हमारे देश में 50 प्रतिशत लोग प्रदूषित जल से बीमार होते हैं।

डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने जल प्रदूषण के नियंत्रण हेतु निम्न उपाय सुझाए हैं—

1. उपचारित जल को नदियों में प्रवाहित किया जाए।

1. वायु प्रदूषण–डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने वायु प्रदूषण को रेखांकित करते हुए लिखा है, "वायु प्रदूषण का तात्पर्य वायु में सहनशीलता से अधिक धूल, गैस, धुआं, कुहरा, पदार्थ कण एवं वाष्प की उपस्थिति है, जो जैव जगत् के लिए हानिकारक होता है तथा उससे जीवन की प्रसन्नता एवं संपत्ति की क्षति होती है। औद्योगिक अपशिष्ट तथा विविध रासायनिक घोलों से वायु प्रदूषण होता है।" वायु प्रदूषण प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों कारणों से होता है।

प्राकृतिक कारणों में निम्न मुख्य हैं–

1. ज्वालामुखी क्रिया,
2. वनों में लगने वाली आग,
3. दलदली भागों में पदार्थों का सड़ना एवं कतिपय पौधों को सम्मिलित किया जाता है।

मानवीय कारणों में अधोलिखित प्रमुख हैं–

1. दहन क्रियाएं, एवं
2. औद्योगीकरण एवं नगरीकरण आदि।

ज्वालामुखी क्रियाएं, राख-धुआं वायुमंडल को प्रदूषित करती हैं। वनों की आग से उत्पन्न धुआं-राख प्रदूषण उत्पन्न करता है। वायु प्रदूषण में प्राकृतिक कारण कभी-कभी अपना प्रभाव दिखाते हैं। सामान्यतः मानवीय कारक चिंताजनक वायु प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। मानवीय कारकों में निम्न कारकों को डॉ. सिंह ने प्रमुख माना है–

1. वाहनों द्वारा ऊर्जा दहन,
2. उद्योगों द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ,
3. उद्योगों द्वारा ऊर्जा दहन आदि।

डॉ. सिंह ने लिखा है, "वस्तुतः औद्योगिक क्रांति के बाद प्रदूषण तीव्र हो गया है। हमारा ध्यान सदैव उत्पादन क्षमता को बढ़ाने की ओर ही रहा। कभी व्यर्थ पदार्थों को सही ढंग से निपटाने का प्रयास नहीं किया गया तथा दिन-प्रतिदिन इकट्ठे होने वाले व्यर्थ पदार्थ हमारे लिए संकट का कारण बने हैं। बड़े उद्योगों से उत्पादों का निर्माण करने वाले नगर हमारे जीवन में क्रांति लाते हैं, लेकिन इस समृद्धि की बड़ी कीमत देनी पड़ रही है।"[3] इन उद्योगों के कारण देश के महानगरों में औद्योगिक प्रदूषण विद्यमान है। देश में प्रदूषण के बिना औद्योगीकरण कैसे हो? यह हमारे लिए समसामयिक चुनौती है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि वाहनों, उद्योगों, ताप-विद्युत गृहों, महानगरों के विस्तार, विभिन्न प्रकार के ईंधनों के दहन एवं विभिन्न दुर्घटनाओं के कारण वायु प्रदूषण होता है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने वायु प्रदूषण का विश्लेषण करने में निम्न तथ्यों पर विशेष ध्यान देने के लिए कहा है–

1. वायुमंडल का अध्ययन,
2. वायु प्रदूषकों का परिवहन तथा उनकी वायु में व्याप्ति,
3. वायुमंडलीय रसायनों का संश्लेषण तथा गति,
4. वायुमंडलीय ताप,
5. वायुमंडलीय जल-चक्र में परिवर्तन,

एक बार सबक
कहिए
चीख-चीखकर
असह्य बन रही पीर से
पहुमि प्रिया ने बदली कोख।[4]

4. ध्वनि प्रदूषण–ध्वनि प्रदूषण एक शोर है। यह वह ध्वनि है जो अवांछनीय है। यह वायुमंडलीय प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने इसके संदर्भ में कहा है, "ध्वनि प्रदूषण आधुनिक नगरीय सभ्यता को आक्रांत करने के पश्चात् ग्रामीण क्षेत्रों को भी प्रभावित कर रहा है। कारखानों की मशीनों, तेज गति से चलने वाले वाहनों, हवाई जहाज, ध्वनि विस्तारक यंत्रों से ध्वनि प्रदूषण होता है।"[5] ध्वनि की तीव्रता को नापने के लिए डेसिबल इकाई का उपयोग किया है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने ध्वनि प्रदूषण का मानव पर दो प्रकार का कुप्रभाव बताया है–

1. स्वास्थ्य संबंधी एवं
2. कार्यक्षमता संबंधी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सुरक्षा की दृष्टि से दिन में 55 डेसिबल एवं रात में 45 डेसिबल मानक स्तर निर्धारित किया है। हमारे महानगरों में ध्वनि का दबाव 90 से 100 डेसिबल के मध्य है। 80 डेसिबल से अधिक ध्वनि कानों के लिए घातक होती हैं। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि पर्यावरणीय ध्वनि प्रदूषण प्रत्येक दशक में दुगना होता जा रहा है। उस पर नियंत्रण हेतु आवश्यक कानून बनाया गया है। ध्वनि प्रदूषण से श्रवण दोष, बहरापन, अनिद्रा, थकान, उच्च रक्तचाप, चिड़चिड़ापन, गैस्ट्रिक केंद्रीय तंत्रिका पर प्रभाव, मस्तिष्क एवं तंत्रिका-तंत्र पर घातक प्रभाव, स्मृति-ह्रास, गर्भवती महिलाओं में प्रसव-पीड़ा में वृद्धि, कुछ मिनटों तक सुनने पर कान में दर्द, अस्थायी बहरापन, पागलपन, त्वचा में जलन एवं अन्य स्वास्थ्य संबंधी हानियां होती हैं। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए निम्न उपाए बताए हैं–

1. वाहनों के इंजन तथा साइलेंसर को उचित ध्वनि की सीमा तक रखा जाए और गाड़ियों के रख-रखाव पर ध्यान दिया जाए।
2. पुराने वाहनों को सड़कों पर चलाने की अनुमति नहीं होनी चाहिए।
3. वाहनों में प्रयुक्त प्रेशर हॉर्न को प्रतिबंधित करना चाहिए।
4. ध्वनि विस्तारक यंत्रों की सीमित उपयोग करना चाहिए।
5. उद्योगों को अपने यंत्रों का उचित रख-रखाव करना चाहिए।
6. अधिक ध्वनि वाले उद्योगों को नगर-गांव से दूर लगाना चाहिए।
7. ध्वनि वाले उद्योगों को अपने श्रमिकों को रक्षा उपकरण उपलब्ध कराना चाहिए।
8. रेडियो, टी.वी. को कम ध्वनि स्तर पर सुनना चाहिए।
9. नागरिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था पर समन्वित रूप से सतत् जागरुक रहकर इसका सम्यक् समाधान निकाल सकते हैं।

डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने अपने काव्य में ध्वनि प्रदूषण का नाना रूपों में चित्रण किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

2. कृषि में जैविक कीटनाशकों, उर्वरकों का उपयोग किया जाए तथा कम-से-कम रासायनिक एवं उर्वरक कीटनाशकों का उपयोग किया जाए।

3. पेय जल स्रोतों को साफ रखा जाए।

4. नदियों में शवों को न फेंका जाए।

5. नदियों में कपड़े धोने एवं पशुओं को नहलाने पर प्रतिबंध लगाया जाए।

6. समय-समय पर गुणवत्ता प्रबोधन किया जाए और

7. जन-जीवन में जल को स्वच्छ रखने की चेतना जागृत की जाए।

जल प्रदूषण का निम्न रूप और देखने को मिलता है—

1. भौम-जल प्रदूषण—बंगाल के कतिपय जनपदों के भौम-जल में संखिया पाया गया है। सामान्यतः भौम-जल में नगरीय एवं औद्योगिक अपशिष्ट वाहित जल-मल नालों एवं जल बहावों से रिसकर भौम-जल में मिल जाता है। भौम-जल के अति-दोहन के कारण भी मिट्टी एवं शैलों से आर्सनिक का रिसाव हो जाता है, इससे पेट की बीमारियां होती हैं।

2. तापीय जल प्रदूषण—जलराशि में अवांछनीय ताप का अधिक मात्रा में मिल जाना तापीय जल प्रदूषण कहलाता है। अनेक औद्योगिक इकाइयों में संयंत्रों के शीतलन के लिए शीतल-जल का प्रयोग किया जाता है। संयंत्र शीतलन के पश्चात् प्रयुक्त जल का तापमान जल के मौलिक तापमान से 8-10 डि.से. बढ़ जाता है। नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र, औद्योगिक इकाइयां, कोयला दहन से चलने वाले संयंत्र, जल विद्युत ऊर्जा संयंत्र आदि तापीय जल प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। इन संयंत्रों द्वारा निकला जल नदियों के तापमान में वृद्धि कर देता है। तापीय जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने लिखा है, "जल राशि में ताप वृद्धि के फलस्वरूप ऑक्सीजन की मात्रा कम होने लगती है। जल में घुलित ऑक्सीजन जल-जीवन के लिए महत्वपूर्ण होती है। तापमान से प्रजनन-चक्र, पाचन एवं श्वसन प्रभावित होता है। तापमान बढ़ने से जल में घुले विष और प्रभावी हो जाते हैं। रोगाणु का प्रभाव भी तीव्र हो जाता है। उच्च तापमान के कारण नील हरित शैवाल तीव्र गति से बढ़ती है। यह अतितापीय जल प्रदूषण की सूचक है। नील हरित शैवाल जलीय खाद्य-शृंखला के संतुलन को बिगाड़ देती है। जल का उच्च तापमान अनेक क्रियाओं को तीव्र कर देता है, फलतः जल-जीव समाप्त हो जाते हैं या उनका जीवन छोटा हो जाता है।" उच्च तापमान में मछलियों को अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। तापीय प्रदूषण नियंत्रण हेतु शीतकारी तालाब सर्वाधिक सुगम विधि है। तालाब से ताप वायुमंडल में लौट जाता है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने अपनी कविताओं में तापीय जल प्रदूषण का वर्णन करते हुए लिखा है—

बैठे हैं लगाए घात
बड़े-बड़े नरभक्षी
विकलांग समृद्धि के उपासक
उल्लू और घुग्घू,
पाले, अनैसर्गिक,
कैंसरयुक्त विचार,
सिखाइए,

3. पौधों पर आधारित कीटनाशक,

4. जैविक कीटनाशक,

5. जैव-खरपतवारनाशी औषधि का उपयोग और

6. जैविक खेती।

डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने मृदा प्रदूषण को ध्यान में रखकर कई कविताएं लिखी हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

भरी सभा में रही पुकार
हो रही बेहुरमत
खींचते वस्त्र चारों ओर से
शत-शत दुःशासन।
एक बार आश्वासन भर
फूंकिए पांचजन्य
उठाइए सद्विवेकी हाथ
चिंतनशील,
जीवनदायी प्रवृत्ति से!

6. नाभिकीय प्रदूषण—यूरेनियम एवं थोरियम के उत्खनन के समय नाभिकीय प्रदूषण होता है। परमाणु संयंत्र में प्रयुक्त रेडियोधर्मी छड़ों के विघटन से प्रदूषण होता है। नाभिकीय अस्त्र-शस्त्र आदि के कारण भी नाभिकीय प्रदूषण उत्पन्न होता है। विद्युत ऊर्जा उत्पादन के लिए निर्मित नाभिकीय संयंत्र समस्यामूलक हैं। ये समस्याएं दो प्रकार की हैं—

1. इन संयंत्रों में विस्फोट एवं दुर्घटना की संभावना बनी रहती है। दुर्घटना के कारण विकिरण प्रभाव से पर्यावरण एवं जीव-जगत् पर निश्चित ही कुप्रभाव पड़ेगा।

2. परमाणु अपशिष्ट के निस्तारण की अल्प प्रविधि विकसित परमाणु ऊर्जा उत्पादन की प्राविधिकी ने अभी तक परमाणु अपशिष्टों के निस्तारण हेतु उपयुक्त प्रविधि का विकास नहीं किया है। अद्यतन प्रविधि के अनुरूप हमारे देश के परमाणु ऊर्जा आयोग ने कचरे के उपचार वाले संयंत्रों को विद्युत गृहों के पास ही स्थापित करने की योजना बनाई है।

नाभिकीय सुरक्षा हेतु विकिरण सुरक्षा मानकों को कार्यस्थल पर लागू करना अनिवार्य है। व्यक्तिगत बचाव हेतु समस्त निर्देशों का पालन करना चाहिए तथा नाभिकीय विस्फोट कभी भी हवा में नहीं करना चाहिए।

डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने इस प्रकार के नाभिकीय प्रदूषण को ध्यान में रखकर अनेक कविताएं लिखी हैं। सोवियत संघ की चेरनोबल दुर्घटना को केंद्र में रखकर उन्होंने कविता लिखी। इतना ही नहीं, जब भारत व पाकिस्तान ने परमाणु विस्फोट किया, तब भी उन्होंने कविताएं लिखीं। हिरोशिमा-नागासाकी पर हुए बम प्रहार को भी उन्होंने कविता का विषय बनाया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

...इन बारूदों, हठों और
सनक के बीच
क्या बचा रहेगा कोई बीज
जिससे फसलें पुनः लहलहाएंगी

सारा आक्रोश
सारा पौरुष
और
सारा स्वाभिमान
इस पाश में कसकर
हो जाता चूर-चूर
भयंकर
काली नागिन का है यह पाश
जो हो गई उल्टी
डंसकर।[5]

5. मृदा प्रदूषण—मृदा प्रदूषण मानव के क्रियाकलापों का प्रतिफल है। आधुनिक कृषि फसलों के प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पादन लेने की प्रवृत्ति के कारण रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों का उपयोग बढ़ा है। नगरीय कूड़ा-कचरा, औद्योगिक अपशिष्ट, खनिज उत्खनन आदि के कारण मृदा की गुणवत्ता में ह्रास हुआ है। मृदा में मिले रसायन खाद्य-श्रृंखला के माध्यम से मानव जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने मृदा प्रदूषण के निम्न प्रमुख कारण बताए हैं—

1. रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक,
2. नगरीय, ग्रामीण एवं औद्योगिक अपशिष्ट एवं
3. उत्खनन।

डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने लिखा है, "मृदा की उर्वरता के अनुरक्षण के लिए मृदा पोषकों का प्रतिस्थापन आवश्यक है, जो कृषि उत्पादन में वृद्धि करके नष्ट किए बिना यंत्रीकरण आदि हरित-क्रांति का केंद्रीय तत्व होना चाहिए। हमारी पारंपरिक कृषि-पद्धति में हल चलाने एवं खोदने की प्रणाली से पानी बहाव एवं वायु अपरदन पर नियंत्रण था तथा खरपतवार भी अपेक्षाकृत कम ही आते थे। उपर्युक्त प्रक्रिया में मिट्टी के जीव मृदा को बराबर उपजाऊ बनाने का कार्य करते हैं, मिट्टी को ऊपर से नीचे की ओर खोदते हैं तथा पौधों के वर्द्धन में सहायक होते हैं। हमारे पारंपरिक एवं आधुनिक कृषि-यंत्र मिट्टी को नीचे से ऊपर खोदते हैं, जबकि प्रकृति इसके विपरीत कार्य करती है।"

कीटनाशकों का प्रभाव शाक-सब्जियों पर प्रत्यक्ष पड़ता है। ये मिट्टी में मिलकर मृदा प्रदूषण एवं मृदा से जल में पहुंचकर जल प्रदूषण भी उत्पन्न कर देते हैं। प्राकृतिक रूप से मिट्टी जब स्वस्थ रहती है, तब ही कीटनाशक प्रभावी होते हैं, लेकिन विपरीत स्थिति में फसल के शत्रु तीव्र गति से बढ़ते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति को नष्ट करके ही हम भूमि का उत्पादन बढ़ा सके हैं। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने कहा है, "खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचाई सुविधाओं का अंधाधुंध विस्तार करने से पानी इकट्ठा हो जाता है, जिससे भूमि का खारापन बढ़ता जा रहा है। इससे उत्पादन क्षमता कम हो जाती है तथा फसलों में जल-प्रदूषणजन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं।" डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने मृदा प्रदूषण कम करने के लिए निम्न उपाय बताए हैं—

1. पारिस्थितिकी अनुकूलन कृषि-प्रणाली,
2. जैविक खाद का उपयोग,

और खनिज-संपदा बिक चुकी है
आसमान के चौराहे पर
नीलाम होने से रोक सको तो रोको।
ये धरती और समुद्र
बादल और आसमान
तितली और फूल को
बिकाऊ बना रहे हैं।[8]

संदर्भ

1. समकालीन काव्य में पर्यावरण, डॉ. इंद्रबहादुर सिंह के शोध-लेख से उद्धृत।
2. वही।
3. वही।
4. सुनहले भविष्य के लिए, डॉ. इंद्रबहादुर सिह।
5. समकालीन काव्य में पर्यावरण, डॉ. इंद्रबहादुर सिंह के शोध-निबंध से द्धृत।
6. इतिहास का नया पथ, डॉ. इंद्रबहादुर सिंह।
7. रिश्तों की पहचान, डॉ. इंद्रबहादुर सिंह।
8. नये क्षितिज की तलाश, पृ. 87

93, जवाहरनगर, दुर्ग (छ.ग.)

बालियां झुक-झुककर लेंगी बलैंया
पहने हरी धानी चूनर... ।[6]

7. सामुद्रिक प्रदूषण–समुद्र को रत्नाकर, जलधि, सागर आदि नामों से अभिहित किया जाता है। सागर-महासागर जल के महानतम् स्रोत हैं। पर्यावरण संतुलन में इनकी केंद्रीय भूमिका है। ये जीवमंडल में ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड का संतुलन व्यवस्थित रखते हैं। इन महासागरों की विशाल जल-राशि अनेक जलीय जीवों एवं वनस्पतियों का निवास-स्थान है। ये जलीय-जीव मानव के खाद्य में भी सम्मिलित हैं। सामुद्रिक प्रदूषण से जलीय वनस्पतियों एवं जीवों के अस्तित्व को संकट हो सकता है। प्रदूषणजन्य कारणों से समुद्र की प्राकृतिक अवस्था में परिवर्तन होने से उसके तल में पाई जाने वाली काई समाप्त हो जाती है। काई के समाप्त होते ही उस पर निर्भर मछलियां मृत हो जाएंगी या उनकी संख्या कम हो जाएगी। छोटी मछलियों के कम होने पर उन पर निर्भर बड़ी मछलियां मरने लगेंगी या उनकी भी संख्या कम हो जाएगी। इस प्रकार मत्स्य खाद्य पर निर्भर संसार की बहुत बड़ी जनसंख्या पर खाद्य संकट संभव है। संप्रति सामुद्रिक परिवहन, मछली पकड़ने वाले जलयान, समुद्र तट पर स्थापित औद्योगिक प्रदूषक इकाइयां, सामुद्रिक उत्खनन आदि सामुद्रिक प्रदूषण को बढ़ाते हैं। सामुद्रिक प्रदूषण मानव की आर्थिक क्रियाओं का प्रतिफल है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने सामुद्रिक प्रदूषण के निम्न प्रमुख स्रोत बताए हैं–

1. नदियों का प्रदूषित जल,
2. विश्वव्यापी सामुद्रिक परिवहन से तेल का छलकाव,
3. विश्वव्यापी सामुद्रिक परिहवन से ताप की वृद्धि और
4. बहुधात्विक खनिजों का उत्खनन।

संप्रति खनिज तेलजन्य सामुद्रिक प्रदूषण प्रखर है। इनके बहाव के स्तर को कम करने की प्राविधिकी अपनाने की आवश्यकता है। सामुद्रिक तापमान को बढ़ाने वाली गतिविधियों को सीमित करने का प्रयास करना चाहिए। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने सामुद्रिक प्रदूषण को ध्यान में रखकर लिखा है–

समुद्र को वे दास बना रहे हैं
नदियों को रखैल
और आसमान को उन्होंने
सायरन से सन्नाटे में बदल दिया है।
चांद घूरे बैठा है,
मुर्गा भोर में बांग नहीं देता
कोयल गाती नहीं
और तितलियों के रंगीले पंख झुलस गए हैं।
पेड़-पौधों और वनों को उन्होंने कारखाने में बदल लिया है
जहां आरे के घर्र-घर्र के साथ पेड़ कट रहे हैं
चिड़ियां रो रही हैं
पर उनके लिए कुर्सी तैयार हो रही है।
धरती की फसल अपने गर्भ में नीलाम हो रही है

औरतों में देखने को मिली। ये सभी औरतें गाती-बजाती रंग-बिरंगी पोशाकों में जंगल पहुंचीं, गीतों की स्वर लहरियां गूंज उठीं। लकड़ियां लाते, झाडू लगाते, पानी लाते, आटा गूंथते, पूरी तलते और पूजा करते कहीं भी गीत बंद नहीं हुआ। उस अद्भुत स्वर्गिक आनंद को, पूड़ी-सब्जी के स्वाद को, मैं कभी भूल नहीं सकी। पर्यावरण की सुरक्षा में, उसे महत्व देने में, निरंतर ऊर्जावान बनाए रखने में, हमारा ग्रामीण समाज आज भी हमसे अधिक सक्रिय है। पर्यावरण को संतुलित रखने में स्वाभाविक जीवन-शैली जितनी कारगर है, उतनी आधुनिक जीवन-शैली नहीं। प्रगति व विकास के विभिन्न सोपानों को पार करते हमने चहुमुंखी विकास कर लिया, लेकिन कतिपय पर्यावरणीय संकटों का सामना भी कर रहे हैं, जो इस पीढ़ी के लिए चुनौती बन गया है। प्रकृति प्रदत्त वायु, जंगल, झरने, समुद्र, भूमि, मिट्‌टी, ऊर्जा, कृषि खनिज सभी हमारी अमानवीय वृत्ति के शिकार हो रहे हैं, इसलिए अब चैतन्य होकर पक्षियों के रैन-बसेरों को बचाना है। जंगली जानवरों, आदिवासियों, वनस्पतियों की प्रजातियों को संभालना है, जो हम सबके लिए 'संजीवनी बूटी' ही है। सनमाइका की चमक में, धरती के रोमछिंद्र बंद हो रहे हैं। औद्योगीकरण-नगरीकरण की प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका सक्रिय होनी चाहिए। हमारे पंचतंत्र एवं जंगल-बुक जैसे ग्रंथों में जैव-विविधता एवं उसके संरक्षण के महत्व को विस्तार से बताया गया है।

यह समय पर्यावरण के बढ़ते खतरों से सावधान रहने का समय है। जड़-चेतन व भावी पीढ़ी के लिए पर्यावरण की सुरक्षा, आपदा प्रबंधन, मानव-स्वास्थ्य आदि बातों की जागरुकता हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

पर्यावरण की प्रदूषण विषयक चुनौतियां आम जन को परेशान कर रही हैं। हम अपने आपको सुरक्षित रखने में असमर्थ हो रहे हैं। प्रसंगवश कुछ उदाहरण प्रासंगिक हैं। भिलाई निवासी स्टील प्लांट व सीमेंट प्लांट के बारीक कणों को सुबह पर्दे और जमीन पर स्पष्ट देख रहे हैं। सीमेंट प्लांट सेक्टर-4 की बस्ती से लगा हुआ है। गाजर घास का सामना हम कर ही रहे हैं, उसके साथ और एक अनचाही घास (मूली जैसी) उगने लगी है, जो गाय, भैंसों और बकरियों के चारागार के बीच में उग रही है। शोर-प्रदूषण मानसिक बीमारी का कारण है।

एक बार दीपावली के दिन वैशाली नगर में बहन के यहां गई, देखा उसका बेटा (एक वर्षीय) पटाखों के शोर से भयभीत होकर जोर-जोर से रो रहा है। पटाखे निरंतर कान और मस्तिष्क को झकझोरते फूटते रहे, बच्चा रोता रहा और बेदम होकर बीमार पड़ गया। धनाढ्‌य वर्ग की दिखावा-संस्कृति के उस दिन और बच्चे भी शिकार हुए। मेरी सहेली बड़े घमंड से कहती है, "हमने अपने बेटे को 5000 रु. के पटाखे जलाने को दिए।" चिंतन का यह विषय है कि यदि पूरे भारत में सहेली जैसे लोग हों तो दीपावली शुभ नहीं, अशुभ होगी। हर क्षेत्र में होड़ लेने की अंधी प्रवृत्ति पर्यावरण के लिए चुनौती नहीं तो क्या है? क्या शहर, नगर और गांव भी शोर प्रदूषण के घातक परिणाम भुगत रहे हैं। जंगल में अब मंगल नहीं, कान्हा की बांसुरी नहीं, बंदूकों की आवाजें पीछा कर रही हैं। निर्दोष जनों का खून बह रहा है, सैलानी सहमें हुए हैं, नदी-झरनों का जल-स्तर घट रहा है, पहाड़ों पर विस्फोट, नयी परियोजनाओं के लिए जंगलों का कटना, गगनचुंबी भवनों का बनना, नव-धनाढ्‌य उद्योगपतियों का निजी निवासों से होड़, धरती पर अनावश्यक बोझ पृथ्वी के विघटनकारी तत्वों में बढ़ावा देना, एक आदमी की चुनौती है, लेकिन फिर भी पर्यावरणविद् चुनौतियों की लंबी सूची में हल ढूंढने में लगे हैं। आम आदमी के सतर्क रहने में ही हम

पर्यावरणीय : चुनौतियां एवं समेकित विकास

डॉ. शीला शर्मा

पर्यावरण प्रकृति-प्रदत्त एक खूबसूरत उपहार है, जिसे संभालकर रखने से, उसकी सुरक्षा से, समस्त जड़-चेतन सत्ता स्वाभाविक जीवन जीने में समर्थ होगी। पर्यावरण के सारे घटक, जीवन की उत्पत्ति तथा विकास में पुरातन काल से अपना विशिष्ट योगदान देते रहे हैं। कवियों, लेखकों, कलाकारों ने तो इसे अनेक रूपों में परिभाषित किया है। जीवन-रक्षक ये घटक छत्तीसगढ़ के अनेक स्थानों में अपनी खूबसूरती व सुषमा से पर्यटन उद्योग के लिए संभावनाओं के द्वार खोलते हैं। घटारानी, जतमई, सियादेही, बारनयापारा या अचानकमार की जो प्राकृतिक सुषमा है, वह छत्तीसगढ़ की पहचान है। प्रकृति से हमारा मोह प्रेमी-प्रियतमा-सा है, इसलिए कवि पंतजी सवाल करते हैं—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन?

प्रथम रश्मि का आना रंगिनी।
तूने कहां पहचाना?
कहां-कहां हे बाल-विहगिनी।
पाया तूने यह गाना।

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास हिमालय की अप्रतिम खूबसूरती से इतने अभिभूत हुए कि उनके सभी नाटकों में, कविताओं में, हिमालय विद्यमान रहता है। कैलाश की सुंदरता को कवि कालिदास ने स्फटिक का बना कहा है। पुराण भी इन विहारों के वर्णन से भरे पड़े हैं। साहित्य में पर्यावरण चेतना आज निर्मित चुनौतियों से लड़ने में सक्षम है। पंतजी ग्रामश्री कविता में, 'फैली खेतों में दूर तलक कोमल हरियाली, लिपटी जिससे रवि की किरणें में चांदी की-सी उजली डाली।' लिखकर गांव को गांव रहने की प्रेरणा देते हैं। इसी तरह सतपुड़ा के घने जंगल, ऊंघते अनमने जंगल, 'कविता में जंगली संस्कृति' के महत्व को बताते हैं। राहुल सांस्कृत्यायन का यात्रा-साहित्य पर्यावरण सजगता की मिसाल है। बाबा आम्टे व सुश्री मेधा पाटकर पर्यावरण के रक्षक हैं। नयी दुनिया अखबार से पता चला कि एक किसान ने बंजर धरती में जंगल उगा दिया है। पर्यावरण के रक्षक और भी लोग हैं, जो दूसरों के लिए जीते हैं। यह विषय राष्ट्रीय चिंता का है।

बचपन में मां के साथ एक बार नानी के गांव गई, वहां 'वनदेवी' की पूजा करने का अवसर मिला। लोकजीवन में भी प्रकृति से रागात्मक संबंध बनाने की समझ इन ग्रामीण

पंत-काव्य में प्राकृतिक पर्यावरण की शब्दावली

डॉ. ईसाबेला लकड़ा

यदि प्राकृतिक पर्यावरण स्वच्छ और स्वस्थ है तो समाज व देश भी सर्वांगीण उन्नति की ओर अग्रसर होगा। साहित्य इस तथ्य को संजोकर रखता है। प्रकृति के कवि पंत द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण की प्रयुक्त शब्दावलियां स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व की स्थितियों को ही संसूचित नहीं करतीं, शुद्ध मुक्त जीवन में आनंद के प्रसार की गाथा भी अभिव्यक्त करती हैं। इसी तथ्य को केंद्रित करके मैंने पल्लव और गुंजन काव्य पर केंद्रित विषय को संचित करने का प्रयास किया है।

सुमित्रानंदन पंत के काव्य में प्रकृति का वैभव, प्रधान रूप से दिखाई पड़ता है, इसीलिए प्रकृति विस्तार से उन्होंने उसकी व्यापक शब्दावली का उपयोग अपनी कविताओं में किया है। किसी वस्तु-विषय की अधिक जानकारी के लिए उसके अंगों-उपांगों के विषय में जान लेना आवश्यक होता है। उसी प्रकार प्रकृति के अंतर्गत आने वाले तत्वों—नदी, पहाड़, पर्वत, पशु, पक्षी, नक्षत्र, वृक्ष, भ्रमर, पुष्प आदि के विषय में जान लेने से ही प्रकृति संबंधी जानकारी मिल जाती है।

प्रकृति संबंधी शब्दावली को अध्ययन की सुविधा के लिए मुख्य रूप से सात वर्गों में बांटा गया है—जीव-जंतु से संबंधी, आकाश-पिंड संबंधी, मौसम-संबंधी, वनस्पति-संबंधी, वायु-संबंधी, पुष्प-संबंधी एवं जल-संबंधी शब्दावली।

1. जीव-जंतु संबंधी

पंतजी ने प्रकृति के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति में अनेक जीव-जंतु तथा पक्षियों को विशेष संदर्भों में प्रस्तुत किया है। साहित्य में अनेक कवियों ने भौंरा, अलि, मधुप आदि शब्दों का प्रयोग विशेष प्रतीकों के रूप में किया है। इन्हें हम कीट-पतंगा संबंधी शब्दावली के अंतर्गत वर्गीकृत कर सकते हैं—

कवि पंत ने 'पल्लव' और 'गुंजन' में अलि, भ्रमर, मधुप, भौंरा, भौर-मन, मलिंद आदि को विभिन्न रूपों में प्रयोग किया है जैसे—'गुंजन' में 'भ्रमर' को मधुवन में विचरण करने वाले सामान्य भौरे के रूप में प्रयोग किया है। 'अलि' शब्द का प्रयोग कवि या अंतरात्मा के प्रतीक में, व्याकुल भौरे का संबोधन के रूप में, भावी पत्नी के लिए तथा कहीं निर्जन के लिए किया है तो कहीं चांदनी के लिए। जैसे—

सबकी रक्षा है। त्रिविध गुणों वाली हवा को हम शुद्ध बनाएं, प्रतिस्पर्धात्मक गतिविधियों की अंधी नकल से बचें, पवित्र नदियों की शुद्धिकरण योजना के सहभागी बनें। अभयारण्यों को अपना घर समझें, परमाणु विस्फोटों, खेतों के ऊसर होने से रोकने के लिए पर्यावरण-रक्षक दृष्टिकोण अपनाएं।

सरकारी प्रयासों के साथ ईमानदारी से जुड़कर ही हम धरती को बचा पाएंगे। हम समाजसेवी संस्थाओं, शिक्षण संस्थाओं, एन.सी.सी., एन.एस.एस. के जरिए पर्यावरण बचाओ मिशन के अंतर्गत बिना खर्च किए सफाई अभियान, स्वच्छता अभियान, वृक्षारोपण, बीमारी उन्मूलन आदि पर नियंत्रण कर देश-सेवा कर सकते हैं। सार्वजनिक स्थानों पर आवश्यक जानकारी प्रचारित कर हवा, पानी, बिजली, अपशिष्ट पदार्थों का निष्पादन करने में हमारी भूमिका सक्रिय हो सकती है।

पर्यावरण की सुरक्षा व बचाव में अपनी स्वयं की पूज्य बुद्धि, व्यावहारिक ज्ञान, भागती जीवन-शैली में परिवर्तन, स्वयं का विवेक, 'जीओ और जीने दो' की पद्धति से हम भावी पीढ़ी को बचा पाएंगे। पर्यावरण के समेकित विकास एवं संवर्धन में अपनी सोच को साफ-सुथरा करना है अर्थात् मानसिक प्रदूषण मुक्ति हमारी सभी पर्यावरणीय समस्याओं का अंत है। प्रकृति के तत्वों, विभिन्न पक्षों को संतुलित करने में हमारी सोच ही कारगर सिद्ध होगी। वैचारिक प्रदूषण दूर करने की कोशिश में कवि निदा फाजली के शब्दों में यही कहना है—

शुक्रिया ए दरख्त तेरा
तेरी घनी छांव
मेरे रास्ते की दिलकशी है।
शुक्रिया ए चहकती चिड़िया
तेरे सुरों से मेरी खामोशी में नगनमी है।
पहाड़ मेरे लिए ही
मौसम सजा रहा है
नदी का पानी
हवा से बादल बना रहा है,
मेरे लिए गुलाब
धूप में तप रहा है
कोई अकेला कहां है?

संदर्भ

1. पर्यावरण विज्ञान, डॉ. विजय कुमार तिवारी, एस. चंद एंड कंपनी लि., रामनगर, नयी दिल्ली-110055
2. कविता और मूल्य संक्रमण, डॉ. कमलेश गुप्ता।
3. इंडिया टुडे (साहित्य वार्षिकी), 1994-95, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली।
4. स्वविवेक व मौलिकता के आधार पर।

अध्यक्ष-प्राध्यापक (हिंदी)
शासकीय डॉ. वा.वा. पाटणकर पी.जी. कन्या महा.
दुर्ग, छत्तीसगढ़-491001

गाता खग संध्या तट पर
मंगल मधुमय जग जीवन।

–गुंजन, पृ. 30

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कवि पंत ने गुंजन में खग को मन का प्रतीक माना है, वहीं पल्लव में 'बादल' को आकाश के पलक रूपी खग कहा है। यथा–

तुम्हारी आंखों का आकाश
सरल आंखों का नीलाकाश
खो गया मेरा खग अनजान
मृगेक्षिणी! इसमें खग अज्ञान।

–गुंजन पृ. 48

पवन धेनु, रवि के पंगुल श्रम,
सलिल अनल के विरल तान,
व्योम पलक, जल खग बहते चल
अंबुधि की कल्पना महान्।

–पल्लव, पृ. 133

2. आकाश-पिंड संबंधी

नक्षत्रगण, ग्रह, सप्तऋषि, सूर्य, चंद्र आदि के समूह को आकाश-पिंड कहते हैं। यह सब प्रकृति के अंतर्गत है। कवि पंत ने 'पल्लव' और 'गुंजन' में आकाश-पिंड संबंधी शब्दावली के अंतर्गत चांद, तारे, नक्षत्र, ज्योत्स्ना, इंदु, शशि, कलानाथ, एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। उसी प्रकार तारे, नक्षत्र, उडूगण भी पर्यायवाची के अंतर्गत आते हैं।

'पल्लव' और 'गुंजन' में कवि ने 'शशि' का प्रयोग मधुबन की कुटिल कलाओं के लिए किया है, किंतु अन्यत्र मुक्तात्मा के प्रतीक रूप में और कहीं मृग-शिशु के प्रतीक अर्थ में। इसी प्रकार 'दशमी का शशि' का मुग्धानायिका के संदर्भ में तो कहीं लहर रूपी लतिका के फूल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'शशि-मुख' की तपस्विनी बालिका (गंगा) के मुख से तुलना की है, अन्यत्र इसे चांदनी के लिए प्रयुक्त किया है। 'शशि-कर' अप्सरा के चरणों की तुलना चंद्रमा के किरणों से की है। जैसे–

शशि कर-सी लघु पद, सरसी में
करती तुम अभिसार,
दुग्ध-फेन शरद ज्योत्सना में
ज्योत्स्ना-सी सुकुमार।

–गुंजन, पृ. 97

'पल्लव' में पंतजी ने शशि की-सी में कलित कलाएं के द्वारा व्यक्ति के जीवन-चक्र के विभिन्न क्रियाकलापों को स्पष्ट किया है। तो कहीं 'शशि' शब्द का प्रयोग भौंरे के सदृश्य माना है तो अन्यत्र 'शशि के यान' अर्थात् बादल को चंद्रमा का रथ कहा है। यह 'बादल' कविता से उद्धृत है–

हम अपलक तारों की तंद्रा,
ज्योत्स्ना के हिम, शशि के यान।

–पल्लव, पृ. 135

वह स्वप्निल शयन-मुकुल-सी
है मुंदे दिवस के द्युति दल,
डर में सोया जग का अलि
नीरव जीवन गुंजन कल।

—पल्लव, पृ. 131

कवि ने पल्लव में 'अलि' शब्द का प्रयोग छाया के रूप में किया है तथा 'मलिंदा' भौरे का प्रयोग बादल के रूप में किया है। यह उदाहरण 'बादल' कविता से उद्धृत है—

संध्या का मादक पराग पी,
झूम मलिंदों से अभिराम
नभ के नीलकमल में निर्भय
करते हम विमुग्ध विश्राम।

इसके अतिरिक्त 'पल्लव' और 'गुंजन' में जुगनू को प्रहरी का प्रतीक माना है तथा तितली के पंख को अप्सरा के सदृश्य माना है। वहीं जुगनुओं से उड़ते हुए कवि के प्राण अपने प्रियतम को खोज रहे हैं। जैसे—

जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान।

—पल्लव, पृ. 66

जंतु-संबंधी

सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव' और 'गुंजन' में वन्य पशुओं का भी उल्लेख प्रतीकों के रूप में किया है। जैसे—मत्तगंज, शशक, मृग आदि सभी बादल के लिए प्रयुक्त हुए हैं तथा कीश का अर्थ बंदर के समान बादल को क्रीड़ा करते हुए बताया है। गुंजन में मृग और मृगी का सामान्य अर्थों में प्रयोग हुआ है, किंतु 'पल्लव' में बादल को मृग के समान चौकड़ी भरते हुए बताया है। उदाहरण—

कभी चौकड़ी भरते मृग से
भू पर चरण नहीं धरते,
मत मत्तगंज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते।

—पल्लव, पृ. 129

पक्षी-संबंधी

कवि पंतजी ने प्रकृति के खग, पक्षी आदि को अपनी कविताओं में अनेक प्रतीकों के रूप में समावेश किया है। सामान्यतया ये सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, किंतु कवि ने इनका प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। यथा—'खग' को मानव मन का प्रतीक माना है तो कहीं खग का गान लोकमंगल की कामना से है। जैसे—

गाता खग प्रातः उठकर
सुंदर, सुखमय, जग जीवन।

'वन-वन उपवन' शब्द का प्रयोग मधु ऋतु के रूप में किया गया है। वन की सूखी डाली, दुःख के प्रतीक के अर्थ में कवि ने किया है। वहीं वन, जग-जीवन के रूप में पंतजी की कविताओं में प्रयुक्त हुआ है, जैसे—

दुःख दाग से नव अंकुर
पाता जग-जीवन से वन
करुणाई विश्व की गर्जन,
बरसाती न जीवन कण।

—गुंजन, पृ. 22

कवि पंत ने प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग बड़े रोचक एवं विलक्षण ढंग से किया है। जैसे गृह-वन उपवन के फैले प्राकृतिक वैभव को उन्होंने प्रेयसी की मुस्कान से मुस्कराता देखा है। पक्षियों को वन के राजकुमार के रूप में माना है। जैसे—

दूर वन के ओ राजकुमार!
अखिल डर-डर में तेरे गान।

—गुंजन, पृ. 83

कवि ने 'वन' शब्द को चांदनी के अर्थ में एक स्थल पर प्रस्तुत किया है। पल्लव में पंतजी ने सौंदर्य को छाया तथा वन को सांस का प्रतीक माना है। उदाहरण—

सुछवि के छाया, वन की सांस
भर गई इनमें हाव, हुलास।

—पल्लव, पृ. 54

'विजन वन' का प्रयोग असार संसार में परिवर्तन की नित्यता को बताने के लिए किया गया है। यह परिवर्तन सूचक है, जैसे—

एक सौ वर्ष वन-उपवन,
एक सौ वर्ष विजन वन।
यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, संहार।

—पल्लव, पृ. 153

किंतु 'गुंजन' में पंत ने 'विजन वन' का प्रयोग पक्षी के लिए किया है। पल्लव और गुंजन में विजन वन का शब्द साम्य होते हुए भी अर्थ में अंतर है। एक ओर यह कार्य परिवर्तन का प्रतीक है तो दूसरी ओर 'विहग' के प्रतीकार्थ के रूप में मानवीकरण किया है, जैसे—

विजन वन के ओ विगह कुमार,
आज घर-घर रे तेरे गान।
मधुर मुखरित हो उठा अपार,
जीर्ण जग का विपण्ण उद्यान।

—गुंजन, पृ. 81

कवि पंत ने 'मधुवन' का प्रयोग अपने काव्य में भिन्न-भिन्न अर्थों, प्रतीकों के रूप में किया है। गुंजन में 'मधुवन' नव-जीवन का प्रतीक है। उन्होंने कहीं मन के लिए 'मधुवन' शब्द का प्रयोग किया है तो कहीं वन में व्याप्त बसंत ऋतु की मनोहरता, मादकता और मधुरिमा के लिए किया गया है। उन्होंने वन को मधुवन भी कहा है। इतना ही नहीं कवि पंत ने 'नव मुकुलित मधुवन' का प्रयोग आंखों के लिए किया है। जैसे—

3. मौसम-संबंधी

इस वर्ग के अंतर्गत सभी ऋतुओं का समन्वय रखा गया है—चाहे वह ग्रीष्म हो या ठंड, बसंत हो या पावस। पंतजी ने अपने काव्य 'पल्लव' और 'गुंजन' में मौसम संबंधी शब्दावली का प्रयोग भी भरपूर किया है, जिसके अंतर्गत उन्होंने मधुमास, बसंत ऋतु, पावस ऋतु, शिविर, सावन आदि अनेक शब्दों का उल्लेख किया है। उनके इस प्रकार के प्रयुक्त शब्दों में रूप समानता के होते हुए भी अर्थ भेद है। इस प्रकार के भिन्न प्रतीकार्थी में कवि पंत की प्रकृति के व्यापक एवं सूक्ष्म दृष्टिकोण का ज्ञान होता है।

पंत ने गुंजन में 'मधुमास' का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है, जैसे भावी पत्नी की स्मृति से बसंत के छा जाने से की है। अन्यत्र मधुवन में व्याप्त बसंत से की है, जो यौवन का प्रतीक है। उदाहरणार्थ कवि ने प्रथम यौवन की तुलना मधुमास से की है, कहीं चिड़ियों के चहचहाने को सर्वत्र बसंत छा जाने के प्रतीकार्थ में प्रयुक्त किया है। जैसे—

मेरा वैसा गान,
न पूछो मेरा कैसा गान।
आज छाया वन-वन मधुमास।

—गुंजन, पृ. 106

'पल्लव' में मधुमास का प्रयोग कहीं बसंत ऋतु के लिए तो कहीं सरल बालिका के रूप में और कहीं बसंत (मधुमास) सुख के प्रतीक अर्थ में किया गया है। जैसे—

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी सांस।

—पल्लव, पृ. 147

पंत मधुमास से यौवन की तुलना करते हैं तो कहीं सरल बालिका के रूप में 'मधुमास' का वर्णन इस रूप में प्रस्तुत करते हैं—

प्रथम यौवन मेरा मधुमास
मुग्ध उर मधुकर, तुम मधु प्राण।
शयन लोचन, सुधि स्वप्न विलास,
मधुर-तंद्रा प्रिय ध्यान।

—गुंजन, पृ. 64

मधुरिमा के मधुमास
मेरा मधुकर का-सा जीवन,
कठिन कर्म है, कोमल है मन,
विपुल-मृदुल सुमनों से सुरभित।

—पल्लव, पृ. 57

4. वनस्पति-संबंधी

वन, उपवन, तरु, वृक्ष, लता, डाली, पर्वत आदि सभी वनस्पति हैं। ये प्रकृति की संपदा हैं। पंतजी ने पल्लव और गुंजन के संदर्भ में वनस्पति संबंधी शब्दावली का विविध भांति प्रयोग किया है, जिसके अंतर्गत वन, उपवन, मधुवन, तरु, विटप, डाल, गिरि, पर्वत, कानन आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें कुछ शब्द एक-दूसरे के पर्याय हैं, किंतु प्रयोग की दृष्टि से उनमें भेद है। उदाहरण—

कहीं वायु विरहिणी की विरहाग्नि को और अधिक उद्दीप्त करने में सहयोग देती है, कभी हवा को ही व्याकुल होते हुए 'वात' शब्द का प्रयोग कवि ने पल्लव में छाया के लिए किया है, किंतु गुंजन में व्याकुल हवा के लिए हुआ है। 'अनिल' कभी भावी पत्नी की केशराशि में उलझता है तो दूसरी ओर अनिल सर्वत्र संसार को हर्ष और सुख से सराबोर कर देता है। कभी विरहिणी के व्यथा-अश्रु पोंछते हुए किया है तो कहीं वह स्वयं दुःखित होकर अश्रु बहाती है, कहीं बादलों को अस्त-व्यस्त करती है तो कहीं उसे मछली बनकर अपने जाल में फांस लेती है और कहीं बादल हवा की डाल पर बंदरों की भांति लटकते हैं।

6. पुष्प-संबंधी

पंतजी ने पल्लव और गुंजन में पुष्प से संबंधित शब्दावली को फलों के अनेक पर्याय यथा—कुसुम, पुष्प, प्रसून, फूल आदि को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से संदर्भानुसार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया है। इसके अतिरिक्त उसने फूलों के अनेक प्रकारों यथा—बेला, गुलाब, मोंगरा, पलाश, कमल आदि का उल्लेख अधिकतर सुख-दुःख, जीवन, खुशी, आंसू तथा अनेक प्रकार के सौंदर्य-विलास आदि के रूप में किया है।

गुंजन में फूल को सुख का प्रतीक माना गया है। कहीं-कहीं जीवन का प्रतीक भी माना है तथा कवि ने मधुवन के खिलते हुए लालिमायुक्त फूल की तुलना लाजवंती नायिका के शरमाने से की है। उदाहरणस्वरूप—

लालिमा भर फूलों में, प्राण।
सीखती लाजवंती मृदु लाज,
माधवी करती झुक सम्मान,
देख तुम में मधु के सब साज। **–*गुंजन, पृ. 58***

गुंजन में फूल शब्द का प्रयोग द्विरुक्ति के रूप में भी आया है। जैसे—

यह फूल-फूल करता विलास।

'पल्लव' में फूल शब्द का प्रयोग दुःखानुभूति तथा आंसू के रूप में किया गया है तथा कहीं-कहीं इसका प्रयोग बाणों से किया गया है। जैसे—

प्रथम मधु के फूलों का बाण,
दुरा उर में, कर मृदु आघात।

–*पल्लव, पृ. 54*

इस तरह कहा जा सकता है कि फूल शब्द का प्रयोग कहीं सुख के प्रतीक रूप में किया गया है तो कहीं इसके विपरीत पल्लव में दुःख के रूप में किया है।

इसी तरह 'कुसुम' शब्द का प्रयोग भी गुंजन में सुखानुभूति तथा जीवन की तुलना के रूप में किया है। दूसरी ओर पल्लव में 'म्लान कुसुम' में भी कवि ने उनकी मुस्कान देखी है। जैसे—

म्लान कुसुमों की मृदु मुस्कान,
फूलों में फलती फिर अम्लान,
महत् है अरे, आत्म बलिदान,
जगत् केवल आदान-प्रदान।

–*पल्लव, पृ. 158*

नयनों का नव मुकुलित मधुवन
पलकों की मृदु पंखुड़ियों पर
मंडराते मिलते ये खग गण। **–गुंजन, पृ. 69**

कवि पंत मधुवन को नव-जीवन का प्रतीक मानते हैं। निम्न उदाहरण से देखिए–

रे गूंज उठा मधुवन में
नव गुंजन अभिनव गुंजन
जीवन के मधु-संचय को
उठता प्राणों में स्पंदन।

कवि पंत ने तरु, तरुवन, तरुडाल, तरुवेलि का प्रयोग इस शब्दावली के अंतर्गत किया है। गुंजन में तरु का प्रयोग वृक्ष के लिए और पल्लव में 'जटिल तरु' का प्रयोग जीवन की कर्म भूमि की कठोरता की ओर संकेत देता है। इसके अतिरिक्त 'तरुवर' को उच्चाकांक्षाओं के समान, अटल, अनिमेष, कुछ चिंतन करते हुए बताया है। उदाहरण–

गिरिवर के उर से उठकर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
हैं झांक रहे जीवन नभ पर,
अनिमेष, अटल, कुछ चिंता पर।

–पल्लव, पृ. 58

5. वायु से संबंधी

कवि पंत ने 'पल्लव' और 'गुंजन' में वायु-संबंधी शब्दावली का भी उल्लेख प्रतीक के रूप में किया है। समीर, वात, मारुत, अनिल, वायु, पवन, हवा आदि पर्यायों का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया है। दिशानुकूल बहने वाली हवाओं के नामों का प्रयोग कवि ने स्पष्ट रूप से किया है, यथा–'मलय समीर'। इसके अतिरिक्त फूलों से उठने वाली सुगंधित वायु जैसे सौरभ-समीर, सुरभि-समीर आदि का भी उल्लेख किया है। पंत ने गुंजन में समीर को विभिन्न प्रतीकों में व्यक्त कर भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया है, जैसे–मलय-समीरण मानव-जीवन की प्रत्येक सांस अर्थात् सांस लेने, सुख का अनुभव करने, गाना गाने, सुधि लेने, स्वप्न देखने, सुगंध लेने, हृदय को हुलसित करने और प्राण को पुलकित करने आदि में 'मलय' समीरण का ही प्रभाव रहता है, जैसे–

वितरती गृह-वन मलय समीर
सांस, सुधि स्वप्न, सुरभि, सुख गान,
मार केशर-सर मलय समीर
हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण।

–गुंजन, पृ. 59

कवि ने 'पल्लव' में 'समीर' शब्द का प्रयोग कहीं शिशिर के लिए, तो कहीं ठंडी आहे भरने, तो कहीं सृष्टि के कालमयी रूपी परिवर्तन चक्र वाले प्रेमी के रूप में माना है। संसार की नश्वरता देखकर समीर को ही ठंडी आहें भरते हुए कवि ने प्रयोग किया है। जैसे–

अचिरता देख जगत की आप,
शून्य भरता समीर निःश्वास।

–पल्लव, पृ. 150

जीवन की चंचल सरिता में,
फेंकी मैंने मन की जाली,
फंस गई मनोहर भावों की
मछलियां सुधर, भोली-भाली।

–गुंजन, पृ. 70

'जल' शब्द का प्रयोग गुंजन में गंगा जल के लिए तथा सामान्य अर्थ में अधिकतर किया है। 'नौका-विहार' कविता के संदर्भ में निश्चल जल को शुचि दर्पण माना है। अन्य स्थलों पर 'जल' को जीवन के प्रतीक अर्थ में प्रयुक्त किया है। यहां 'जीवन' जल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जैसे–

क्या यह जीवन? सागर में,
जल भार मुखर भर देना।
कुसुमित-मुलिनों की क्रीड़ा
व्रीड़ा से तनिक न लेना।

–गुंजन, पृ. 14

पल्लव में 'जल के धूम' का प्रयोग बादल के प्रतीक अर्थ में किया है तथा 'हिमजल' का प्रयोग बादल के जल से है। पंत के काव्य में प्रतीक योजना की बहुलता है, जो 'बादल' शीर्षक कविता से स्पष्ट है–

हिम है सागर के धवल हास,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल फेन, उषा के पल्लव,
वारि वसन, वसुधा के फूल।

–पल्लव, पृ. 133

इस प्रकार कवि पंत ने दोनों कृतियों में इसके अलावा सलिल, सागर जैसे शब्दों का प्रयोग कहीं जीवन के लिए तो कहीं बादल के लिए किया है। पंत ने प्राकृतिक-पर्यावरण शब्दों को निरखकर, परखकर साहित्य के सौंदर्य को द्विगुणित किया है।

सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
शासकीय बिलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बिलासपुर (छ.ग.)

कुसुमित शब्द का प्रयोग कवि ने जन-समूह के जीवन, मनमोहक किनारे तथा अप्सरा के शारीरिक सौंदर्य की कल्पना के रूप में किया है। जैसे—

मेंहदी-युत मृदु करतल छवि से
कुसुमित सुभग सिंगार,
गौर देह-द्युति हिमशिखरों पर
बरस रही साभार।

—गुंजन, पृ. 97

गुंजन में 'बेला' शब्द का प्रयोग उसके फैलाव की दृष्टि से चिर-विकास के लिए प्रयुक्त किया है तो वहीं हृदय के हार के रूप में 'नवेली वेला' का प्रयोग मिलता है। कवि ने गुंजन में ही 'मोंगरा फूल' को कर्ण फूल के सदृश्य माना है। इसके अतिरिक्त 'जलज' शब्द का प्रयोग सामान्य कमल के लिए किया है। 'नीलजलज' और 'नीलकमल' कहकर आंखों से तुलना के लिए प्रयुक्त किया है। जैसे—

नील-कमल-सी हैं वे आंखें।

दूसरी ओर पल्लव में 'नीलकमल' शब्द का प्रयोग किया गया है, किंतु यहां 'नीलकमल' को आकाश के प्रतिरूप माना है। जैसे—

संध्या का मादक पराग पी,
झूम मलिंदों से अभिराम,
नभ के नीलकमल में निर्भय
करते हम विमुग्ध विश्राम। *—पल्लव, पृ. 131*

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कवि ने पल्लव और गुंजन में फूलों के पर्याय रूप को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से भिन्न अर्थों में प्रयोग किया है। इसी तरह सुमन और प्रसून को भी सुख और दुःख का पर्याय माना है। इसके अतिरिक्त फूलों को अनेक नामों से अभिहित करके उन्हें मानव-जीवन से संबंधित सौंदर्य के रूप में व्यक्त किया है। पृथ्वी के सौंदर्य बखान भी प्रसूनों के माध्यम से किया है। इस तरह कवि ने पुष्प संबंधी शब्दावली का अपने इन काव्यों में अनेक मनोभावों के लिए किया है। पुष्प यदि एक स्थल पर सौंदर्य एवं सुख-वैभव का प्रतीक है तो उसके अन्य पर्यायवाची शब्द दुःख, विरह के कारण भी हैं।

7. जल-संबंधी

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत की लेखनी किसी क्षेत्र से अछूती नहीं रही है। उन्होंने प्रकृति के अंतर्गत समस्त जल-मंडल को भी समाहित कर लिया है। पंत ने पल्लव और गुंजन के संदर्भ में सरिता, जल सलिल, सागर, घन, जलद, अंबुधि आदि शब्दों की विवेचना की है, जिसे हमने जल संबंधी शब्दावली के अंतर्गत रखा है। प्रायः ये शब्द एक-दूसरे के पर्याय हैं, किंतु अर्थ प्रयोग की दृष्टि से इनमें अंतर पाया जाता है।

गुंजन में 'सरिता' को जीवन की चेतन सत्ता माना है और 'आत्मा है सरिता के भी' कहकर यह बताया है कि जीवन की सरिता में भी आत्मा का संगीतात्मक स्तर है। अन्यत्र जीवन की तुलना चंचल सरिता से की गई है। जैसे—

संदर्भ अंतर्विरोधों के बावजूद व्यापक आयामों को अपने भीतर समेटे हुए है। कविता की चुनौतियां जब जनता के संघर्ष से, समस्याओं से जुड़ती हैं तो मार्ग निकल ही आता है। आज व्यापक निराशा, बिखराव और टूटन का माहौल है। बेचैनी एवं गहरी छटपटाहट है। आज की कविता में कवि संभावनाओं के प्रति सजग है। संवेदन-शून्य होते जा रहे आज के दौर में संवेदना की जरूरत है, पर हम केवल संवेदना से समाज को नहीं बदल सकते।

कविता सपनों को जीवित रखती है, मनुष्यत्व को जिलाए रखने का माध्यम बनती है। आज का कवि बदलते यथार्थ के बीच, बदलते मूल्य-बोध की तीखी पहचान लिए हुए है। जटिल माहौल में व्यक्ति की क्रियात्मक क्षमता उसकी स्पंदित जीवंत संवेदनाओं को कैसे सहेजा जाए इस चिंता के साथ आज के कवि बराबर खड़े हैं। जातीय जीवन के निकट होती, 'कविता में नयी' रोशनी के तलाश की ललक तीव्र है। समकालीन हिन्दी कविता का इतिहास फलक इसलिए अति विस्तृत है क्योंकि कविता-संबंधी नये प्रतिमान के आधार पर कविता-कर्म की सार्थक यात्रा के असंख्य पदचिह्न हमें प्राप्त होते हैं। त्वरित गति से भारतीय समाज में हुए परिवर्तन का प्रभाव हमें समकालीन कविता में दृष्टिगोचर होता है।

छायावाद का अपना काव्यादर्श रहा है, लेकिन उस काव्य-दर्शन की परिसीमाओं को तोड़कर मानवीय स्थिति से उद्भूत काव्यादर्श गठित करने में निरालाजी का जो योगदान रहा है, वह हिंदी कविता के इतिहास का महत्वपूर्ण पृष्ठ है, जिसे प्रायः समकालीन कविता से जोड़ा गया है। अब यह सवाल उठता है कि निराला इतने प्रमुख क्यों हैं? क्यों वे समकालीन कविता के प्रमुख अंशदाता हैं? निराला इसलिए प्रमुख हैं, क्योंकि उनकी कविता का वस्तु क्षेत्र छायावादी नहीं है। बल्कि यह कहना अधिक संगत प्रतीत होता है कि निराला के साथ हिंदी कविता का अंतरंग व्यक्तित्व ही बदल गया।

वस्तु-चयन संबंधी परिवर्तित स्थिति, भाषा-विन्यास, संवेदनात्मक संगठन आदि में निराला समयबद्ध कवि सिद्ध हुए। निराला की कविता का यथार्थ समकालीन कविता के यथार्थबोध तक इसलिए विस्तार पाता है क्योंकि उसमें मानवीय संस्पर्श की ऊष्मा भरी हुई है। 'तोड़ती पत्थर' एवं 'कुकुरमुत्ता' कविता में यथार्थ का सीधा सन्निवेश है। हिंदी कविता में पहली बार सर्वहारा के आत्मविश्वास के स्वर की अनुगूंज अपनी विशिष्ट बुनावट के कारण समकालीन यथार्थ के निकट अपना स्थान ग्रहण करती है। 'राम की शक्ति-पूजा', जिसमें एक गहनतम यथार्थ है– 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति'। निराला के प्रति प्रगतिवादी कविता तत्पश्चात् प्रयोगवादी मानव-संकलन 'तारसप्तक' का योगदान समकालीन कविता को प्राप्त हुआ। रघुवीर सहाय ने समकालीन कविता को पारिभाषित करते हुए लिखा, ''मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव-भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है।''

नागार्जुन और त्रिलोचन ऐसे समकालीन कवि हुए हैं, जिनकी काव्य-यात्रा प्रगतिवादी दौर से शुरू हुई लेकिन समकालीन पीढ़ी के युवा कवियों के साथ आज भी उनकी रचनाशीलता की गणना होती है। सामाजिक गतिविधियों के समानांतर चलती इनकी कविताएं जीवन-यथार्थ की असंख्य विवृत्तियों को समाहित किए हुए हैं। उनका यथार्थ आवेगयुक्त मानसिकता से आप्लावित न होकर तर्कसंगत एवं बौद्धिक है। व्यापक अनुभवों से युक्त होने के कारण उनमें यथार्थ के रचे-बसे रूप को आत्मसात् करने और उनकी संभावनाओं को महसूस करने की अदम्य शक्ति है। संभवतः इसी कारण वे समकालीन

समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना

डॉ. कृष्णा चटर्जी

समकालीनता एक जीवन-दृष्टि है, जहां कविता अपने समय का आकलन करती है–तर्क और संवेदना की सम्मिलित भूमि पर। यह एक प्रकार से मुठभेड़ है सर्जनात्मक धरातल पर, जहां वस्तुओं के प्रचलित नाम, अर्थ बदल जाते हैं। कविता में जीवन को एक नया विन्यास मिलता है। समकालीनता की पहचान आसान नहीं। अपने समय से आंख मिलाए बिना न रचना संभव है, न आलोचना।

समकालीन हिंदी कविता का आशय मूलतः उसके समय-सापेक्ष से न होकर मूल्य सापेक्ष से है। समकालीनता को परिभाषित करने वाले मूल्यों के बीच अंतर्विरोध और संघर्ष से विवादपूर्ण स्थिति उत्पन्न होती है, जिसमें कविता की वस्तु और शिल्प में कोई समान प्रतिमान नहीं रह जाते। जीवन की बाह्य परिस्थितियों के बोध तक सीमित न रहकर यथार्थ की पहचान कर सारे अंतर्विरोध और द्वंद्वों के बीच से गुजरता मानव विकास पथ की ओर अग्रसर होता है। अपने युग की उपेक्षा करने वाली दृष्टि समकालीन नहीं हो सकती। समकालीन हिंदी कविता में आधुनिकतावाद और उत्तर आधुनिकतावाद के रूप में कलावाद का पुनर्जन्म पूंजीवादी और साम्राज्यवादी संस्कृति के चरित्र पर पर्दा डालने की कोशिश में हुआ। अशोक बाजपेयी ने 'समकालीन कविता' को 'तथाकथित जनवाद और तथाकथित कलावाद के बीच द्वंद्व' कहा है। समकालीन कविता का आभ्यंतर इतना गंभीर है कि वह हमारे जीवन के किसी एक आयाम को नहीं, बल्कि जीवन की समग्रता को दीप्त करता है।

स्वाधीनता के बाद हमने लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर राष्ट्रीय जीवन की पुनर्रचना के जो स्वप्न देखे थे, वे न केवल अधूरे रह गए, बल्कि संकट की स्थिति में पहुंच गए हैं। अतः हम समकालीनता के बोध को उस पुनर्रचना के संघर्ष से अलग करके नहीं देख सकते। यह बोध राष्ट्रीय जीवन के आधुनिकीकरण अर्थात् सामंती सामाजिक तथा वैचारिक अवशेषों को समाप्त कर जनवादी मूल्यों पर आधारित समाज और संस्कृतिक के निर्माण के संघर्ष का अभिन्न अंग है। डॉ. रमेश कुंतल मेघ के अनुसार, "विशेष युग में आधुनिक बोध, आधुनिक बोध की समस्याओं से जूझता है, अपने युग की सामयिकता को अंगीकार करता है तथा अपने समय के प्रमुख एवं स्वीकृत सर्वप्रभावशाली बोध के अनुरूप ही विश्व और देश को मानवता और भारतीय मनुष्य को रूपांतरित कर देता है। अतएव बोध के प्रमाणीकरण का आधार समसामयिकता रही है।" आज का सृजनात्मक

समकालीन कविता में प्रकृति के प्रति वैसा लगाव नहीं दिखाई देता, जैसा छायावादी कवियों में था। वैसे प्रकृति कोई वायवी अमूर्त सत्ता नहीं है। मनुष्य से स्वतंत्र उसकी जीवित सत्ता है, जो हमें जीवन देती है, जिसके साथ हम क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। प्रकृति हमारे जीवन में साझीदार है। हमारे सारे जीवन में प्रकृति रची-बसी है। प्रकृति के साथ हमारे दो तरह के रिश्ते होते हैं—सहयोग और संघर्ष के प्रकृति मनुष्य को ताकत देती है, उसमें ऊर्जा का संचरण करती है, हम बराबर उससे उत्प्रेरित होते रहते हैं। वह हमारा पालन करती है। उसके बिना हमारा जीवन अपूर्ण है।

प्रकृति के सर्जनात्मक रूप के साथ ही उसका विध्वंसकारी रूप भी जुड़ा हुआ है। लेकिन जब प्रकृति उत्पीड़ित करती है, कष्ट देती है तो हम उससे लड़ते हैं, संघर्ष करते हैं। बाढ़, सूखा, अकाल आदि ऐसी प्राकृतिक विपदाएं हैं, जिनसे जीवन सीधा प्रभावित होता है। कविता में भीषण विनाशात्मक स्थितियों की झलक मात्र पर्याप्त नहीं है, वरन् प्रकृति के प्रति सचेत होना होगा। उसे गहरे भाव-बोध के धरातल पर उजागर करना होगा।

हार गईं तुम
प्रकृति!
रच निरुपंम
मानव-कृति।

हत्यारी और निर्मम होती यह व्यवस्था 'प्राकृतिक संपदा' को अपने हित में नष्ट करने से नहीं हिचकती। मानवीय संवेदना के ह्रास को देखकर कवियों ने रचनात्मक ढंग से चिंता व्यक्त की है। यांत्रिकता के बढ़ते हुए दबाव में रागात्मकता कम हुई है, पर उससे निरंतर संघर्ष करता हुआ मनुष्य बेहतर जीवन निर्माण में संलग्न है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता देखिए—

सैकड़ों हजार गिद्ध
व्योम के प्रसार में उधार क्षुब्ध क्रुद्ध पंख
मांस की पुकार मार
अंधकार का अपार आर-पार नोचते।
देश के करोड़ों पुत्र
छोड़ सिंधु, गंग, ब्रह्म, विंध्य के महाप्रदेश,
क्षीण, वृत्तिहीन, त्रस्त
खा पछाड़, यत्र-तत्र पेट को मरोड़ते।

आज सांस्कृतिक संकट की जो स्थिति पैदा हो गई है, उसमें मूल्यवान मानवीय-मूल्यों का क्षय, नैतिकता का ह्रास प्रमुख है। निश्चय ही उसके मूल में राजनीतिक, आर्थिक स्थितियां हैं। इन अंतर्विरोधी वस्तु-स्थितियों की तह में जाकर जो जीवंत, सुंदर, सारवान है, उसको व्यापक मानवीय धरातल पर उकेरना होगा, अविच्छिन्न जीवंत यथार्थ के साथ सरोकार स्थापित करना होगा।

यह सच है कि समकालीन कविता की रचना-प्रक्रिया संरचनात्मक स्तर पर दुरुह प्रतीकों, खंडित बिंबों या चमत्कारिक अराजक, भौंड़े प्रतीकों से भिन्न रूप ग्रहण करती है। आज की कविता यथार्थ की ठोस भूमि पर खड़ी है। आज के बेहद निर्मम समय में कविगण अपने को बचाते हुए यथास्थिति में बदलाव के लिए विकल एवं उद्विग्न हैं। आज का यथार्थ

कविता के अभिन्न अंग भी बन गए। त्रिलोचन का कविता-संसार हमारी लोकचेतना की अनुभूतियों से सृजित है। 'नगई महरा' कविता अपना परिवेश स्वयं जुटाती है। आज के इस दौर में जब काव्य-दृश्य का अधिकांश हिस्सा जातीय चरित्र से च्युत और भूगोलहीन है, तब ऐसी कविता हमारे लिए कितनी मूल्यवान है। 'नगई महरा' कविता की कुछ पंक्तियां देखिए—

चौकीदार ने पुकारा
लो नगई और लखमनी
दोनों हाथ जोड़े सिर झुकाए हाजिर हुए
फिर उसका दोष बतलाकर पूछा गया
अपना दोष मानते हो
मानते हैं—दोनों ने साथ कहा।
पूछा गया—डांड, बांध तुम को मंजूर है
सिर-माथे हम को मंजूर है, दोनों बोले।
पंचों ने कहा, 'दस रुपये डांड है, भगत देना होगा
यह भी मंजूर है।

त्रिलोचन के समान नागार्जुन की कविता ने भी जातीय चरित्र के पक्ष को प्रक्षेपित किया है। नागार्जुन की 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता में सिर्फ गरीबी का ही चित्रण नहीं है, बल्कि एक पूरा परिवेश जीवंत हो उठता है—

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआं उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आंखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद।

नागार्जुन का कविता संसार विस्तृत है। वे जनवादी कविता के प्रामाणिक कवि बनकर समकालीन कविता से जुड़ते हैं। उन्होंने काव्य-सौंदर्य और मानवीय आकांक्षा को विलयित करके समकालीन कविता में अपनी पहचान बनाई। रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, केदारनाथ सिंह, विजेंद्र, अशोक बाजपेयी, धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, केदारनाथ अग्रवाल, चंद्रकांत देवताले, विष्णु खरे, ज्ञानेंद्रपति, आलोक धन्वा, सुदीप बनर्जी, मंगलेश डबराल, अरुण कमल, राजेश जोशी इत्यादि समकालीन कवि माने जाते हैं।

समकालीन कविता में मनुष्य और प्रकृति के बीच के शाश्वत् रिश्ते को पुन-र्व्याख्यापित करने का प्रयत्न किया गया है। मानवीय संवेदना-भाव, जिसका प्रकृति के साथ घनिष्ट सहचरी रूप है, मिलकर जीवन के प्रति गहरे आस्था-भाव को जन्म देते हैं। लेकिन जब रचनाकार मानवीय निर्ममता की तह में न जाकर ऊपर-ही-ऊपर प्रतीकों के माध्यम से चिड़ियों, तिनकों, पहाड़ों, वृक्षों की सैर करता है तो उसके अतिरिक्त खतरे भी पैदा होते हैं। आज के कवि विघटित होते जीवन-मूल्यों को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

झूठ की आंखें
सत्य का सुख
समय का रुख है
अभय जनता को
सत्य ही सुख है
सत्य का सुख।

कविता सपनों को जीवित रखती है, मनुष्यत्व को जिलाए रखने का माध्यम बनती है। कविता की चुनौतियां जब जनता के संघर्ष से, समस्याओं से जुड़ती हैं तो मार्ग निकल ही आता है। आज व्यापक निराशा का, बिखराव और टूटन का माहौल है, लेकिन वर्तमान के गर्भ से ही भविष्य जन्म लेगा, जो स्थितियां हैं, उसी के भीतर से मुक्ति का रास्ता मिलेगा, दृष्टि मिलेगी। 'कुमारेंद्र पारसनाथ' के कुछ अंश जो 'पहल' के कविता विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। कहना समीचीन है, ''जब हम समकालीन कविता की बात करते हैं, तो हमारे सामने दो जातियों की कविताएं खड़ी होती हैं। एक जाति की कविता वह है, जो खुशनुमा होने की कोशिश में अपने जर्द पड़े मुल्क और लहूलुहान वक्त की पहचान को धूमिल करती है और दूसरी जाति की कविता वह है जो उस पहचान को और भी तेज और साफ करती है और इस कोशिश में खुद क्षत-विक्षत और रक्ताक्त हुई रहती है।'' यह एक मानवीय अनुभूति है, जिससे समकालीन कविता बनती है।

संदर्भ

1. समकालीन काव्य यात्रा, नंदकिशोर नवल
2. समकालीन हिंदी कविता, ए. अरविंदाक्षन
3. समकालीन हिंदी कविता, रमेश अनुपम
4. समकालीन हिंदी कविता, वि.प्र. तिवारी
5. हिंदी कविता कल और आज : सारस्वत, गणेशदत्त
6. नयी कविता, कांति कुमार
7. समकालीन कविता की प्रवृत्तियां, सर्राफ
8. समकालीन आलोचना, वीरेंद्र सिंह

सहायक प्राध्यापक (हिंदी
शासकीय वि.पा. तामस्कर
स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय,
बिलासपुर (छ.ग.)

ज्यादा जटिल, पेचीदा और संश्लिष्ट रूप लिए हुए है। आज का सृजनात्मक संदर्भ अंतर्विरोधों के बावजूद व्यापक आयामों को अपने भीतर समेटे हुए है। कविता की चुनौतियां जब जनता के संघर्ष से समस्याओं से जुड़ती हैं तो मार्ग निकल ही आता है। आज व्यापक निराशा का, बिखराव और टूटन का माहौल है, बेचैनी एवं गहरी छटपटाहट है। आज की कविता में कवि संभावनाओं के प्रति सजग है। संवेदन शून्य से होते जा रहे आज के दौर में संवेदना की जरूरत है। पर हम केवल संवेदना से समाज को बदल नहीं सकते। कवि बदलते यथार्थ के बीच बदलते मूल्यबोध की तीखी पहचान लिए हुए हं। जटिल माहौल में व्यक्ति की क्रियात्मक क्षमता, उसकी स्पंदित जीवंत संवेदना को सहेजने में चिंतित आज के कवि में जातीय जीवन के निकट होती कविता, नयी रोशनी की तलाश की ललक तीव्र है।

निष्कर्ष

आज प्रश्न यह है कि नयी कविता को समकालिकता तक लाने का क्या प्रयोजन है? साथ ही प्रश्न यह भी कि विराटधारा से कुछ कवि एवं उनकी कुछ ही कविताओं को चुनकर रखा जाना, आखिर किस उद्‌देश्य की पूर्ति करेगा? तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो हम पाएंगे कि उनमें से हर कवि में ऐसा कुछ निजी है, जो समकालीनता की पहचान देता है। प्रगतिशीलता और जनवाद की मूल भावना को सुरक्षित रखते हुए कवियों ने जन, लोक, समाज और अपने आस-पास की प्रकृति, मनुष्य और मानवीय संबंधों को केंद्र में लाकर कविता रची। युद्ध के खतरे, सांप्रदायिकता का विष, प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा, मां, पिता, स्त्री, पेड़, नदी जैसे विषय केंद्र में आए। सूक्ष्म पर्यवेक्षण और अंतर्मंथन--इन कविताओं की विशेषता है। इसे समकालिक कविता की महत्वपूर्ण विशेषताओं के रूप में आंका जा सकता है। यहां व्यक्ति की अस्मिता के लिए चिंतातुर अज्ञेय हैं तो भारतीय जन-समाज और राजनीति के प्रति चौकीदार की-सी सजगता के साथ जनवाणी का डंडा फटकारते नागार्जुन भी हैं। नागार्जुन यदि परम खुश, सरल और सपाट हैं तो उनसे विपरीत परम जटिलता में अपने द्वंद्व के साथ लोक की त्रासदी को भोगते गूढ़ मुक्तिबोधजी हैं। सॉनेट के कारीगर त्रिलोचन अगर वहां हैं तो ठेठ भदेश भाषा और संस्कारों के साथ बीमार शासन और तंत्र की बखिया उधेड़ते धूमिल भी हैं। यहां कलावादी लगते भी कलावादी नहीं, अशोक बाजपेयी आत्मीयों की स्मृतियों, प्रेम और मृत्यु के ध्रुवों के बीच हैं तो भाषा को नये सिरे से अर्थ देने वाले और उसके सहारे ही साधारण से असाधारण जड़ देने वाले विनोद शुक्ल और विष्णु खरे हैं। कलावाद और जनवाद के बीच दोनों में स्वीकृत और दोनों में अस्वीकृत शमशेर वहां हैं, जिनके बिंब और उनके अंदर की एक स्थायी प्रेम-पीड़ा से रचे अद्‌भुत नक्काशी के शिल्प हैं।

बात बोलेगी
हम नहीं
भेद खोलेगी
बात ही
सत्य का मुख

ओरी-ओरी बोंए मोंगरा चिरइया रे सुवना,
के कमल फूलय छतनार।
का तोर टेड़ा-टेडुलिया रे सुवना,
के बगिया छिंचय दिन-रात।
काकर बर गुंहिबे एली-चमेली रे सुवना,
काकर बर मोंगरा के हार।
राजा बर गुहिहौ एली-चमेली रे सुवना,
रानी बर मोंगरा के हार।

पेड़-पौधों और फल-फूलों की सुंदरता से मनुष्य विरक्त नहीं—संयुक्त है, जिससे पर्यावरण और उससे मन का आवरण भी द्वंद्वरहित निर्मल-विमल-निर्मुक्त-उन्मुक्त होता है। आज हमारे वन, पहाड़, पर्वत उजड़ और बिगड़ रहे हैं, जिसकी सुरक्षा में गांव की अपढ़ ग्राम्य बालाओं का यह स्वर, प्रेम के ही संदर्भ से ही सही प्रकृति के राग-अनुराग का स्थापन और अनुगायन भी तो है—

पहर-पर्वत म मेंहदी लगायेंव रे सुवना,
मेंहदी के जोगी रखवार।
लेई लेबे जोगिया दार-चांउर रे सुवना,
छाड़ि देबे मेंहदी के झाड़।
दार-चांउर तोर घर बाढ़य रे सुवना,
नयी छाड़ौं मेंहदी के झाड़।
लेई लेबे जोगिया थारी भर रुपिया रे सुवना,
छाड़ि देबे मेंहदी के झाड़।
लेई लेबे जोगिया थारी भर सोनवा रे सुवना,
छाड़ि देबे मेंहदी के झाड़।
थारी भर रुपिया-सोनवा ले तोर घर बाढ़ै रे सुवना,
नयी छोड़ौ मेंहदी के झाड़।
देई देबे तोर छोटकी ननदिया रे सुवना,
के छाड़ि दे हौं मेंहदी के झाड़।

यहां पेड़-पौधों, फूल-पत्तों के सदृश नायिका को खड़ी करता, सौंदर्य के प्रकाशन के साथ जीवन का जीवंत उपांग-अंग ही नहीं, उसकी प्रतिष्ठा और अनिवार्यता की अभिष्ठि है कि जिसके बिना जीवन संपूर्ण नहीं।

दश कूप समा वापी, दश वापी समोहृदः।
दश हृद-समः पुत्रों, दश पुत्र सम द्रुमः।

दस कुओं के बराबर एक बावड़ी। दस बावड़ी के बराबर एक तालाब है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है तथा दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।

मत्स्य पुराण की यह स्थापना परंपरा का मूलांश है। यह जन-मान्यता थी, जिसका परिपालन लोकजीवन में व्यवहृत है, किंतु सभ्यता के उस प्रकाश को हमारे पश्चिमीकरण की प्रवृत्ति ने तोड़ा है। आज शासन-प्रशासन पौध-रोपण का प्रयास तो करता है, किंतु जन-आंदोलन के अभाव में वैसी सक्रियता का अभाव है, जिससे पर्यावरण के प्रति घनात्मक-सकारात्मक सरोकारों की शून्यता महसूस की जा रही है। आधुनिक युग में

लोकगीतों में पर्यावरण चेतना

डॉ. जगदीश कुलदीप

पर्यावरण के प्रति संचेतना हमारी परंपरा का प्राणतत्व है, यही कारण है कि हमारे लोकसाहित्य में उसकी अनुगूंज का प्रखर-प्रबल स्वरूप दूर और देर तक हमें आंदोलित करता रहता है। बिना प्रकृति के मनुष्य-जीवन की कल्पना की ही नहीं जा सकती है, इसलिए जब-जब मनुष्य प्रकृति से कटा या हटा है, उसका जीवन छंटा और बंटा-छूंछा हुआ है, उसके आनंद-उल्लास का आकाश वृहद् न होकर लघु हुआ है, सिमटा और सिसका है, अर्थात् समस्याओं से ग्रसित होता गया है। आधुनिक जीवन भौतिक सुख-सुविधाओं की अतिशयता, मशीनी-करण की अतिरिक्त आकांक्षा ने न केवल मनुष्य को प्रकृति से काटा और बेरोजगारी का प्रसाद बांटा है, वरन् मानवीय संवेदनाओं, गरिमा-महिमा से भी रिक्त किया है। इसलिए जीवन में जिंदादिली-मानवीयता के महत् महिमा मंडन से प्रबुद्ध-शुद्ध करता है तो प्रकृति का सान्निध्य-साहचर्य-जुड़ाव-झुकाव सिद्ध करना आज की प्राथमिकता में शामिल करना अनिवार्य है। नयी पीढ़ी में पर्यावरण संबंधी ज्ञान, पाठ्यक्रम द्वारा केवल किताबी ज्ञान प्रदान कर नहीं, बल्कि जीवन के जीवंत प्रसाद-प्रकाश से भरना होगा। यह कार्य हमारे पारंपरिक मूल्यों, लोकजीवन के आसंग-प्रसंग, लोकगीत, लोकसाहित्य, लोकविश्वास और मान्यताओं ने शिद्दत से पकड़ा-घेरा और एक जीवंत-आदर्श को संवेदित-संप्रेषित किया है।

सुवा लोकगीत नृत्य विधा में न केवल विरहिणी नायिका की मनोदशा का प्राधान्य है, अपितु आस-पास के वातावरण और प्रकृति के प्रति गहरी मानवीय संवेदना का संवेद्य-स्वर भी है। तभी तो नायिका कह उठती है—

धरती के अंचरा हरियर-हरियर रे मोरे सुवा,
पिंवरा अउ ओखर पांव।
लाली सुरुज जइसे मुकुट दाते मोरे सुवा,
माथा मय अपन नवांव।

आज अपने आस-पास की खाली जगहों में, बंजर-पड़त भूमि में वैज्ञानिक और पर्यावरण-विद् 'पौध-रोपण' को महत्व देते हैं, जिसका बीज-वपण अपने आंगन और बगिया 'बारी' में पुष्प वाटिका को लगाकर परिवेश को साफ-शुद्ध-निरापद रखने की चेष्टा, प्रकारांतर में उसके प्रभाव से परिवार-जीवन-समाज के आंगन को भी फूलों की तरह निर्द्वंद्व, मनोमालिन्य को उसके सुवास से सुवासित-सुगंधित करना और प्रेरित करना भी है—

कय ओरी बोंए एली-चमेली रे सुवना,
कय ओरी मोंगरा अनार।

बिटिया परदेसी चिरई के जात रे सुवा मोर,
झन रो भाई मोर झन रो।

कहां रे पंछी तोर मनमतु-जन-मन
रे सुवना, कहां लिए अवतार।
मोरे जन-मन डोंगरी पहारे,
रे सुवना, बांस मीरा म लियेवं अंवतार।

क्या आज घटते वन के पशु-पक्षियों की लुप्त होती प्रजातियों का अपराध-बोध हमें व्यथित करता है, हमारे भौतिक दुनियावी मोह, लालच ने उन पशु-पक्षियों को नुकसान पहुंचाया है, जिन्होंने हमारी प्रकृति के उल्लास को शब्दों में गाया है। हमारी सुबह को रंगीन और शाम को सुरमई बनाया है। यह अकारण नहीं कि पौराणिक साहित्य रामचरितमानस के महानायक श्रीराम की संवेदना सीता-विछोह में वृक्ष और पशु-पक्षियों को भी साथ कर लेते हैं, उनसे मिलकर दुःख-सुख बांटते हैं—

हे विटप! हे खग-मृग बयनी।
तुम देखि सीता मृगनयनी।

तुलसीदासजी ने तो वृक्षों की तुलना में संतों को खड़ा किया है कि वे समाज के लिए हितकर हैं, कष्ट सहकर समाज और व्यक्ति को नया रंग-रूप और विकास का स्वरूप-प्रारूप देते हैं। और वृक्ष जिनकी देन जीवन से मृत्युपर्यंत अगणित और अमिट है कि जिनके ऋण से उऋण होना संभव नहीं लगता—

तुलसी संत सुअंब तरु, फूलहि-फलहि पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥

राजा राम अयोध्या नगरी की स्वीकृति से नहीं, वरन् वन-प्रदेश की सेवा-सुश्रुषा और लोकस्वीकृति प्राप्त कर राजा का पद निर्वहित करते हैं। वहां वन-प्रदेश के साहचर्य में ऋषि-मुनि, कोल-किरात, निषाद-भील, आदिवासी-शबरी, गिद्ध, नर-वानर, रीछ आदि के बीच रमते हुए, उनके सहयोग से जमते वनांचल का प्रसाद ही उन्हें राज-राजेश्वर नियुक्त करता है। क्या यह प्रकृति के प्रति राग-अनुराग का कारण नहीं लगता? वहीं हमारे योग ऋषि लीलानायक भगवान् श्रीकृष्ण गोपाल-गोसंवर्धन, गोचारण, गोरक्षण तथा कृषि संस्कृति के समर्थक-संरक्षक बनकर संपूर्ण लीला वन-प्रदेश में ही रचते हैं, इसलिए श्यामसुंदर के वियोग में प्रकृति भी रोती और दुःखी होती है। कृष्ण को प्रकृति में पर्यवसित मानकर उच्च भाव-भूमि का स्पर्श करते हुए गोपियां उलाहना में मधुबन के वृक्षों को संबोधित करती हैं—

मधुबन तुम क्यों रहत हरे

यही कारण है कि वनों के प्रति अपनी निष्ठा, लगन और देयता, रम्यता, आनन्दउल्लास को हृदयस्थ करते हुए गोपियों की निश्छल प्रेमानुभूति के प्रसंग में 'कृष्ण' कह उठते हैं—

उद्धव मोहि ब्रज बिसरत नाही
मधुर मधुप और कुंजन की छांही।

यह ब्रज वास्तव में प्रकृति का क्रीड़ांगत उल्लासमय वातावरण का उपहार ही तो है, जहां ग्वाल-बालाओं की सहज, सरलता, निष्कपटता का कार्य-व्यवहार। इंद्र पूजा की बजाय गोधन और पर्वतों-मैदानों के प्रति अपनी निष्ठा का स्वरूप कृष्ण का गोवर्धन-पर्वत

मशीनीकरण के पिशाच, आधुनिक यंत्रों का बढ़ता दबाव-फैलाव हमारे पर्वतों को नग्न कर रौंद रहा है, इसकी समानता में महाभारत का वह दृश्य खड़ा किया जा सकता है, जिसमें लाचार द्रौपदी पांडवों के वस्तुगत अधिकार में परिगणित-परिवर्तित होकर कौरवों द्वारा उसकी इज्जत तार-तार की जाती है।

उपर्युक्त सुवालोकगीत में जोगिया हैं, ऋषि-मनीषी हैं, जिनके सामने नायिका पौध-रोपण रक्षण सदृश स्वाभिमान की रक्षार्थ द्रव्यों के लालच आग्रह को स्वीकार नहीं करती, ठीक वही करती हैं, जैसे द्रौपदी की लज्जा लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण बचा ले जाते हैं, पर हमारे पौधों की हरियाली रूपी वस्त्राभरण को आधुनिक मायावी स्वार्थी मनोवृत्ति और मशीनी दैत्य तथा पश्चिमीकरण जीवन-शैली का घटाटोप लगातार डसता जा रहा है, जिसका परिणाम हमारे सम्मुख है। ये लोकगीत, लोकमूल्य हमें सिखाते-पढ़ाते हैं और ज्वलंत स्थितियों को खोलकर रख देते हैं कि हमारी स्थितियां क्या है? कैसा जीवन-विजन हमें गढ़ना है आदि-आदि। उन अपढ़-अनपढ़ ग्रामीण-जन का निर्मल मन देखिए कि उसे पर्यावरण का क्षय किसी भी स्वार्थी मनोवृत्तियों के विनिमय से ईष्ट नहीं है, इसलिए सोना-चांदी-रुपयों का मोह उसे पद-दलित और पथभ्रष्ट नहीं कर सकता, अपनी प्रकृति रूपी जीवनाधार प्रेयसी की समता में कोई खड़ा ही नहीं हो सकता। आज हम क्षणिक सुखोन्माद और स्वार्थलिप्सा से आमूल-चूल बहकर न केवल पर्यावरण के हरित प्राण ऊर्जा को अनावृत्त कर प्रदूषण को आमंत्रित-अभियंत्रित कर रहे हैं, वरन् अपनी मानवीय संवेदनाओं और मनुष्य होने का जो प्रकृति के सहकार-सहोकार-व्यवहार से अर्जित करते हैं, को भी तोड़-मरोड़ और छोड़ रहे हैं। प्रकृति हमारे साहित्य में आलंबन-उद्दीपन के रूप में हमारी संवेदनाओं को रूपाकार बनाती है। प्रकृतिजन्यता साहचर्य-सान्निध्य से हमारा कल्पनालोक साकार-साधार होता है, जो यथार्थ के करीब सटीक बैठता है—

चोंच तोर दिखय लाली कुंदरु रे मोरे सुवा,
आंखी दिखय मसूरी के दार।
जोधरी के पाना सांही डेना संवारे रे मोरे सुवा,
सुनि लेबे बिनती हमार।

अंगना लगाइलौ तुलसी के बिरवा रे मोरे सुवा,
जेहि देखि रइहौ मन बांध।
नित-दिन लिपिहौ नित-दिन पोतिहौ रे मोरे सुवा,
नित-दिन दियना जलाव।
तुलसी के बिरवा हरियर-हरियर रे मोरे सुवा,
धनी के खुसी बताय।

वियोगिनी नायिका को प्रवासित नायक अपनी कुशल-क्षेम के बिंब को प्रकृतिजनित हरियाली के समान रखता है। यह प्रकृति से उसका रागात्मक संबंध ही तो है। वही नायिका पीपल के वृक्ष और लोकोक्ति के माध्यम से अपनी जन्म-भूमि के प्रेम, बेटी होने की पीड़ा और पारंपरिक सामाजिक मान्यताओं के द्वंद्व को तोड़ती हुई कहती है—

पीपर होतेवं जरी जमातेव रे सुवा मोर,
आमा उल्होतेवं डार।

इनका संरक्षण-संवर्धन और पूजन-वंदन कर प्रतिष्ठा प्रदान की जाती है। 'बालवमूर' जो बबूल प्रजाति का ही विशेष पौधा (झाड़ी) है, को माता का विशेष कृपा पात्र है, जिसकी जड़ें अभिमंत्रित व आमंत्रित कर मिजल्स चिकनपाक (माता के प्रकोप) व अन्य टोने-टोटके में निवारणार्थ उपयोग किया जाता है। इस भांति हमारी लोकआस्था पवित्र पुष्पों, गेहूं के अंकुरित को शृंगारित करने का गायन माता का शृंगार गीत है—

हो मइया फूल गजरा, हो माता फूल गजरा
गूंथा हो मालित माया बर फूल गजरा
कउने फूल के अजरा-गजरा, कउने फूल के हार
कउने फूल के माथ मटुकिया सोलहो सिंगार
मइया फूल गजरा, गूंथा हो मालिन माया बर
चंपा फूल के अजरा-गजरा, चमेली फूल के हार
गोंदा फूल के माथ मटुकिया सोलहो सिंगार
मरया फूल गजरा गूंथा हो मालिन माया बर।

तालाब-जलाशय और पौध-रोपण एक-दूसरे के पूरक तथा प्रकृति को समुन्नत करने वाले कार्य हैं। हमारे लोकसाहित्य में ईश्वर को भी साधारण मानव की तरह लोककल्याणकारी कार्यों को करते हुए उनका लोकीकरण कर सामाजिक शुचिता का आदर्श और प्रादर्श प्रस्तुत किया जाता है, वैसे भी राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, लोकमंगल के लिए ही उन्होंने मानवीय लीलाएं की थीं—

कउन खनावै ताल सगुरिया कउन बंधावै पार।
कउन बरन हे ताल सगुरिया कउन बरन हे पार।
राम खनावै ताल सगुरिया लखन बंधावै पार।
सेट बरन हे ताल सगुरिया लाल बरन हे पार।

छत्तीसगढ़ में प्रचलित ददरिया लोकगीत करुणा का हृदय द्रावक है, साथ ही शृंगार गीत है, जो जीवन का उल्लास, प्रेमगीत है। कृषि-कर्म में श्रम-परिहार का संयोजन, जिसमें श्रांत-क्लांत मन ऊर्जा से भरकर कर्म को द्रुतगति से करने में सन्नद्ध-सचेष्ट हो जाता है—ने भी उद्दीपन के रूप में प्रकृति के साथ संयोजना प्रकट की है—

पीपर पाना कस मन डोलय रे
का होगे संगी बोलत नइये रे।

साजा सुखागे सरई बिना रे
छोटे देवरा सुखागे भौजाई बिना रे
चले आबे खारे-खार न रे दोस।

आमा ल टोरे खाहूंच कहिके
मोला दगा म डारे आहूच कहिके।

आमा के डारा टोरे म टूटही
तोर-मोर जोड़ी मरे म छूटही।

की प्रतिष्ठा पूजा की शुरुआत अपने पर्यावरण का संवर्धन-संरक्षण का कर्म है, जिसे आज के प्रवचनकार संत-महंत की वाणियों से निःसृत होते देखा जा सकता है, जो मूलतः सफल मानव की खोज को सामने लाता है। यह सत्य है कि सफल मानव तो प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण की शुचिता-सौम्यता-प्रदेयता-उदारता के सान्निध्य में ही मिलेंगे।

छत्तीसगढ़ संस्कृति की एक प्रमुख लोकविद्या बांसगीत वादन-गायन है, जो गोचारणकाल की उपज है और है घास-प्रजाति बांस से मुंह की वायु को फूंककर बजाया जाने वाला पौरुष वाद्य।

गोचारण और कृष्णलीला के बहाने यादवी संस्कृति और कृषि कार्य-व्यापारों का समारोहण-उद्घाटन करते हुए प्रकृति संरक्षण और वनों के प्रति आस्था-विश्वास व्यक्त करना। यही कारण है कि श्रीकृष्ण द्वारा दावानल सेवन की रक्षा के लिए समस्त सरवामों सहित किया गया कार्य, राक्षसी संस्कृति का प्रतिनिधि कंस श्रीकृष्ण को अपने अनुचरों द्वारा मरवाना चाहता है, वनशोभा को नष्ट करना चाहता है, जिसे कृष्ण जैसा पर्यावरण चेतना संपन्न व्यक्तित्व संघर्ष कर विरोधी स्वर को समूल नष्ट करता है और निर्विघ्न गोचारण संभव होता है—

ये डोंगर म देखेवं घटा घनघोर मोकइया ल,
अउ देखेवं साजा के जिंहा झाड।
अरे बांस झिनाझित डोंगरी म बाजथे
अउ हरियर दिखय कनई के पान।
अरे नदिया झुरे झुर झिरिया बोहावै रे,
अउ उपजे हे कांसा के कयोढ़।
अउ तीरे अउ तीरे म गोंदिला अउ घपटे हय
अउ हरियर दिखय न जेकर पान हो।

गो-संरक्षण, कृषि संस्कृति का तथा प्रकृति का भी रक्षण-परिरक्षण ही है, क्योंकि वनाच्छादित भूमि में ही गोचारण संभव है और कृषि तो स्वयं ही हरियाली का प्रारूप पर्याय है—

कोन बन अहिरा गइया ल चरावै न रे सुवना,
कोन बन म पानी ल पियावै।
मधुबन म गइया ल चरावै न रे सुवना,
समधा म पानी ल पियावै।

इसी तरह जसगीत-जंवारा गीत वर्ष में दो बार देवी मां की महिमा-स्तवन का स्रोत है, जो चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से, क्वांर शुक्ल पक्ष (आश्विन) की प्रतिपदा से नवमी तिथि तक देवी की गाथा रात्रि में गाई जाती है जिसे नवरात्रि अथवा 'नेवरात' और 'आजकल' जगरात भी कहते हैं, जिसमें गेहूं-जौं को अंकुरित कर जल-पौध उपवन की महिमा प्रतीकात्मक रूप से माता की प्रतिच्छाया ही मानी गई है। यह वन-उपवन संरक्षण-संवर्धन की प्रवृत्ति या उपयोगितावादी दृष्टि अथवा धर्म-प्राण जनता का विश्वास कि वह विविध पेड़-पौधों-वृक्षों में ईश्वरी सत्ता को प्रत्यक्ष करता है, क्योंकि ये उनकी रक्षा का भार वहन करते हैं, जैसे—पीपल में वासुदेव, बट में ब्रह्मा, नीम-महामाया, कउहा-अर्जुन, आंवला, तुलसी महरानी आदि। इनके लकड़ियों को ईंधन के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जाता, बल्कि

छत्तीसगढ़ कबीरपंथियों का भी गढ़ है, जहां दामाखेड़ा जैसा प्रसिद्ध कबीर धाम है। कबीर पंथियों में सात्विकता का प्राधान्य है। सादा जीवन, सहजता, आडंबरहीनता, निर्गुण-निराकार की उपासना प्रमुख है, जहां 'चौका आरती' पूजन का विधान है। हर सुखद-दुःखद अवसरों पर इस पूजा-विधान का आयोजन किया जाता है, जिसमें द्वीप प्रज्ज्वलन कर गुरु अथवा महंत-दीवान मंगल गीतों से भाव पुष्प समर्पित करते हैं। इसमें 125 कपूरी पानों की अनिवार्यता, पुष्प-पत्रों, श्रीफल, लौंग, इलायची, दाख, छुहारा, पंचमेवों, आम्रपर्णों, केले के पत्तों की आवश्यकता होती है। कहा जा सकता है कि प्रकृति की महत्ता और उसके घटक तत्वों की पवित्रता के पार्श्व में प्रकृति-देवता का ही आराधन-स्तवन है।

निष्कर्षतः यह कि जिस ग्लोबल वार्मिंग से पर्यावरण-प्रदूषण से असुरक्षित त्रसित-व्यथित-दुखित-पीड़ित हैं, उसका उपचार, निदान हमारे पूर्वज सालों-साल पूर्व हमारी पारंपरिक लोकपरंपरा, लोकविश्वास, लोकमान्यता, लोकमूल्यों, लोकसंस्कृति और लोकगीतों में पाते हैं। यह अकारण नहीं कि हमारे पूर्वज जलाशय, पेड़-पौधों, धर्मशाला, मंदिर के निर्माण में इसी प्रकृति संरक्षण-संवर्धन की भावना और लोकदेवता की आराधना पुष्प रूप में करते थे। अगर हमने पश्चिम का अंधानुकरण नहीं किया होता या अपनी प्राचीन ठोस और ठसक जमीन के वातानुकूल ही हमारा अनुसरण-सरण होता तो हम इतनी प्रश्नाकुल स्थितियों में अनुत्तरित नहीं रहते, भयावह मोड़ों के अंध-अंतरीपों में उलझे हुए शायद नहीं दिखते। अभी देर नहीं हुई है कि जब जागे तभी सवेरा की तर्ज पर अपनी स्थितियों-परिस्थितियों का समीक्षात्मक आंकलन-सिंहावलोकन कर अपनी सामयिक प्रतिबद्धता को सुनिश्चित करें। सिर्फ शासकीय प्रयासों से चित्रपट नहीं बदला जा सकता, एक दूसरी लड़ाई—वैचारिक क्रांति के रूप में—व्यक्ति की नैतिक प्रतिबद्धता तय कर आंदोलन खड़ा किया जाए, जिसमें बच्चे-बूढ़े, जवान, नारी-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण-शहरी स्तर पर वृक्षों, तालाबों, नदियों, गोचर, मैदानों के संरक्षण के साथ ग्रामीण गृह उद्योगों की स्थापना तथा कारखानों के निर्माण के साथ पर्यावरण को क्षति न पहुंचाने वाले निर्धारक तत्वों का कड़ाई से परिपालन किया जाए तथा हरित पेटियां, पेड़-पौधों का रक्षा-कवच विकसित करने की योजना बनाई जाए और उसका सतत् निरीक्षण भी सुनिश्चित करें। इसके लिए सरकारी प्रयासों के अलावा स्वयंसेवी संस्थाओं तथा संबंधित फर्मों द्वारा एक समिति बनाई जाए, जिसकी पर्यावरण सुरक्षा पेटी के लिए किए गए कार्यों, संस्थानों, व्यक्तियों को पुरस्कृत कर एक आदर्श की स्थापना करें, जिससे हम समय के इस तूफान को झेल सकेंगे—ऐसा विश्वास व्यक्त किया जा सकता है। नारायणलाल परमार की यह पंक्ति हमें सोचने के लिए अवकाश और आकाश का आगाज करती है—

कतको तुम रेंगौ रद्दा नयी सिराय
जाना है हमला तेन गांव अभी दूरिहा हे।

चकर भाठा कैंप, नगर पंचायत बोदरी,
जिला-बिलासपुर (छ.ग.)

कया के पेड़ म काया नइये
निरदयी तोर हिरदय म माया नइये।

इन लोकगीतों का मूल स्वर प्रेम है, आह्लाद है, किंतु प्रकृति सदृश प्रीतम के सान्निध्य में जुड़ाव के साथ। पीपल के पत्ते की तरह मन स्पंदित है, अस्थिर है कि नायिका किस बात से नायक से विरह की कल्पना मात्र से प्रकंपित है, जिसमें प्रकृति के साहचर्य से ही बात प्रभावी होती है। पारिवारिक जीवन-वृत्त में हास-परिहास को व्यक्त करने वाले अनेकशः रिश्ते हैं, जिनमें देवर-भाभी, साली-जीजा, दादा-दादी, नाना-नानी से पौत्र का हास्य निश्च्छल और उन्मुक्त तथा निर्मल है। ऐसी ही साजा और सरई नामक पेड़ों के साथ-साथ विकास होता है और एक की अनुपस्थिति में मानो वह बाधित और व्यथित है। देवर-भाभी का निर्माल्य, प्रेम-ठिठोली, हंसी-मजाक में उकेरा गया है कि पारिवारिक जीवन में हास-परिहास का उत्कर्ष समवयस्क देवर-भाभी में सहजता से अभिव्यक्त होता है, इसीलिए भाभी के मित्रवत् व्यवहार के अभाव में देवर असहज है, व्यग्र है। आम्रपर्ण को उसके शाखा-प्रशाखाओं से विलग करना वृक्ष की आंशिक मृत्यु ही है। अर्थात् नायक-नायिका का परस्पर संबद्धता जीवन है, जहां आशा है, उल्लास और प्रेम है, किंतु अभाव ठेस पहुंचाने वाला पीड़ादायक है।

नायक-नायिका आसन्न विपत्तिमात्र से भयाक्रांत है और वे कह उठते हैं, साधारण अवस्था में उनका विलग होना संभव नहीं है। मृत्यु ही उनके अलगाव का कारण होगी, जिसे पेड़-पौधों के प्रतीकों में अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से कहा गया है। कल्पना और यथार्थ का संयोजन और उसकी व्यंजना प्रकृति प्रतीकों के आश्रय में कहना लोकमन की विशेषता है।

कबीर साहित्य अपने निर्गुण, निराकार की आराधना में जितना निमग्न है, उतना ही संसार के अनावश्यक प्रलापों, रुढ़ियों, आडंबर, अंधविश्वास के दंश को तोड़ने और उपयोगितावादी मानवीयता के शुचितापूर्ण व्यवहारों में सत्यता को ईश्वरीय आभा का प्रकाश घोषित कर उसकी आराधना को प्रकृति-प्रसंग से जोड़कर देखने का आकांक्षी और आग्रही है—

पत्ता टूटा डाल से ले गई पवन उड़ाय।
अब के बिछुड़े कब मिलोगे दूर रह्यो जाय।

जल में कुंभ, कुंभ में जल है,
बाहरी भीतरी पानी।
फूटहि कुंभ जल, जलही समाना,
यह तथ कहयो ज्ञानी।

आत्मा-परमात्मा के सान्निध्य और उसकी एकतानता, एकीकरण को इससे बेहतर प्रकृतिजन्य प्रतीकों के अभाव में भावित कर पाना दुष्कर है। वृक्ष की सत्ता पत्तों के साथ है, उसके अभाव में वृक्ष विक्षिप्त है, आत्मा दुःखी है, परमात्मा का सान्निध्य चाहता है। पेड़-पौधे, वन-उपवन, जलाशय परमात्मा के प्रतीक हैं, इनसे दूर रहकर मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, आज इनके कटते, छंटते, प्रदूषित होते रूप से जीवन की कल्पना कितनी दुःखद है। भला किसी से कहने की बात है, यह तो हम और हमारा संपूर्ण मानवसमाज शिद्दत से महसूस कर रहा है। हमारा रक्षा-कवच टूट रहा है, जिसके कारण मानव अव्यवस्था, व्याधि, इत्यादि से पीड़ित हो रहे हैं।

चार बांस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण
ता ऊपर सुल्तान है--मत चूको चौहान।

–कवि चंद्रबरदाई

महाकवि कबीर ने कहा–

पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात,
देखत ही छिप जाएगा ज्यों तारा परभात।

भवानीप्रसाद मिश्र और मैथिलीशरण गुप्त भला कब चूकते–

कुम्हार के घड़े को क्या मालूम था
उसे बार-बार भरा जाएगा
और बार-बार खाली किया जाएगा।

–भवानीप्रसाद मिश्र

चारु चंद्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है, अवनि और अंबर तल में।

–मैथिलीशरण गुप्त

महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर ने अपनी कविता में कहा–

बहुत दूरी तय की
बहुत व्यय किया
देखने गए पर्वतमालाएं
देखने गए सिंधु
देखा नहीं यहां पर नयन भर के,
घर से दो कदम चल के
एक धान के शीश पर,
एक शिशिर का बिंदु।

इसी तरह लोकगीतों के स्वरों में भी पर्यावरण के मर्म उभरते हैं और मन के तारों को झंकृत कर मनोरंजन और ज्ञान दोनों की सीमाओं को छूते हैं। इनमें शब्दों की गरिमा चमत्कृत ही नहीं होती, बल्कि जीवन के कठिन क्षणों में हास-परिहास का पुट बिखेर देती है। कुछ उदाहरण–

मन चंगा तो कठौती में गंगा।

चांदनी रात सनम, चांद के लच्छे-लच्छे,
इश्कबाजी में बिगड़ जाते हैं अच्छे-अच्छे।

उर्दू के प्रसिद्ध व्यंग्य कवि चिरकिन की शायरी हो या सूंड बनारसी का कलाम, इनके शब्द रसों की भाव-भंगिमा से जीवन की तनी भृकुटियां ठहाका मारकर हंस पड़ती हैं और ये ठहाके हास-परिहास को दुगुनी गति से बढ़ा देते हैं–

कविता और पर्यावरण

डॉ. अजीज रफीक

मनुष्य के जीवन में कविता सुख और संघर्ष का पर्याय है। कविता शक्ति देती है, जीवन की दुर्गम सांसों के संघर्ष को सुगम बनाने का प्रयास करती है। उसे चेतना देती है, चेतावनी देती है और संतोष, सुख, वैभव और सफलता देती है। इसलिए कविता किसी युग की थाती नहीं है। यह मनुष्य जीवन के पहले दिन से, सृष्टि के प्रथम दिवस से ही उसके साथ अपने आप जुड़ जाती है। जैसे कविता में जीवन की अभिन्नता है, उसी तरह जीवन में पर्यावरण की अभिन्नता है। पर्यावरण संपूर्ण परिमंडल में व्याप्त 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर' का संचित स्वरूप है तो इस पंचरचित अधम शरीर में मानव-जीवन का वास-सुवास भी पर्यावरण के आधार पर ही निश्चित होता है। इसीलिए कविता कभी वीरगाथा काल की हुई, कभी भक्तिकाल की हुई, कभी रीतिकाल की तो आज आधुनिक काल की बनी हुई है। अब यह कहना मुश्किल है कि कविता में पर्यावरण है या पर्यावरण में कविता है। वैसे मानव-जीवन के संपूर्ण प्रयासों, सुख-दुःख के संघर्षों की कहानी कविता में समाई है। पर्यावरण पर भी कविताएं लिखी गई हैं। इसलिए कविता का क्षेत्र उसका विस्तार आज ही नहीं, हर युग में बढ़ा है। पर्यावरण तो उसे प्रेरणा देता है—दे सकता है। उसे ग्रहण करना या न करना कविता के वश की बात है।

अब यह विचार करना भी जरूरी है कि कविता का जन्म कब और कैसे होता है और कवि की उसमें क्या भूमिका होती है? या कविता की ग्रहणशीलता धारण करने वाला सजग सहृदय व्यक्ति कविता का आश्रय लेकर अपना जीवन सफल और सरल कब, कैसे बना सकता है? कविता कब, कैसे पैदा होती है? यह एक कठिन प्रक्रिया है, जिससे समाज के आमजन को क्या लेना-देना? न उसे कवि से कोई गुंजाइश होती है। वह तो केवल जीवन के थके-हारे क्षणों में कविता, गीत, लोकगीत की कुछ पंक्तियां गुनगुनाकर अपने फूले दम को हल्का करने की कोशिश करता है। इस प्रकार कविता का पहला और सार्थक उद्देश्य मनुष्य के तनावों को दूर कर उसे मनोरंजन प्रदान करना है। फिर बाद में यही मनोरंजन की प्रक्रिया ठोस ज्ञान में बदलकर, कभी उसके लिए तो कभी उसके दिमाग के तर्क-चिंतन को संबल प्रदान करता है। कुल मिलाकर कविता का व्यापक उद्देश्य मानव-जीवन को सार्थकता प्रदान कर उसे जीने की राह दिखाना और सिखाना है।

कविता से पर्यावरण की स्थिति-उपस्थिति और नियति से आदिकाल का प्रथम कवि भी प्रभावित था—

पर्यावरण : इतिहास-दर्शन एवं साहित्य

डॉ. डी.एस. ठाकुर

प्रकृति जीवन-दर्शन की निर्माता है। यह व्यक्ति को अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी बनाती है। भाव, अनुभूति को केंद्रित करने का भाव पैदा करता है। पाश्चात्य एवं पौर्वात्य दोनों ने दार्शनिक दृष्टि, प्रकृति से ग्रहण की है

इतिहास साहित्य की आंख है। ऐतिहासिक तथ्य ही ज्ञान एवं प्रेरणा का आधार बनता है। विचार एवं चिंतन को बलवान बनाता है। क्रौंच पक्षी का प्रसंग इतिहास में पाते हैं, जो महाग्रंथ का कारण बनता है। वृक्ष पर बैठा खगेचर कारण उपस्थित करता है। बहेलिया के प्रति घृणा एवं चिड़िया के प्रति प्रेम क्रौंच के मर्म का कारण बनता है। आगे चलकर 'रामायण' का सृजन करता है। इतिहास में प्रकृति प्रेम पाता है, आखेट की प्रवृत्ति का भी दृष्टिकोण होता है। इतिहास में जितने भी महापुरुष हुए हैं, भारतीय विरासत की नींव का कार्यनिष्ठ हैं। आगे के लिए परंपरा एवं पीढ़ी तैयार करता है, जो संसार के बीच होते हैं, इतिहास, दर्शन, धर्म एवं कर्म का पैमाना भी है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज का निर्धारण करता है। इन सभी अंगों को पोषित 'पर्यावरण' ही करता है। जीवन का आधार बनता है। वैश्वीकरण के विकृत प्रभाव, इतिहास में अंकित हो रहे हैं, लेकिन स्वार्थलिप्सा में मानवता एवं धर्मनिरपेक्षता चिंता का कारण है। व्यक्ति को चिंतन-मनन करना होगा। भौतिक चकाचौंध तृष्णा को जन्म देती है। मृग-मरीचिका से प्यास नहीं बुझती। इतिहास में सत्य को स्थापित करना होगा।

मांटेन ने लिखा है, "Admiration is the foundation of all philosophy, investigation the progress and ignorance the end."[1]

प्रकृति ने गौतम को बुद्ध तक बनाने में विशेष योगदान दिया। साध्य के रूप में बुद्ध इंद्रियजित होकर प्रकृति को साधन एवं अपने को स्वयं साधना में केंद्रित करते हैं। वही बोधवृक्ष (पीपल का पेड़) के नीचे बुद्धत्व को प्राप्त होकर लोककल्याण में अग्रसर होते हैं, अंतर्मुखी होकर बहिर्मुखी को केंद्रित करते हैं। आज भी उनके अनुयायियों ने उन्हें भगवान् के स्थान पर स्थापित किया है। तीर्थंकर, शंकराचार्य, रामकृष्ण, नामदेव, कबीर, जायसी, तुलसीदास, सूर सभी के केंद्र में प्रकृति रही है, इनके साहित्य में पर्यावरण-दर्शन के रूप में प्रस्तुत हुआ है। भारतीय दर्शन में प्रकृति का विशेष आदर एवं सम्मान है, जहां ज्ञान एवं ध्यान को केंद्रित करते हैं। डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा, "दर्शन का अर्थ जीवन की व्याख्या करना नहीं, जीवन को बदलना है।"[2]

चिरकिन चढ़े दरख्त में, चिरके अलग-अलग
अमां रंगत जुदा-जुदा हैं, खुश्बू अलग-अलग।

–चिरकिन

बताएं क्या-क्या अमंगल हो रहा है
सवेरे-शाम दंगल हो रहा है
लड़ा करती हैं मुझसे श्रीमतीजी
मेरा घर मंत्रिमंडल हो रहा है।

–सूंड बनारसी

राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी की इन प्रसिद्ध पंक्तियों में शब्द-साधना की शक्ति देखकर वाहवाही के लिए तबीयत मचल जाती है–

चरण धरत झझकत हिये, भावय नींद न शोर
सुवरन को ढूंढत फिरय, कवि, व्यभिचारी चोर।

पर्यावरण के रंग में रंगी कविताओं की बानगी प्रस्तुत करते हुए कवि की यह कल्पना अकाट्य प्रमाण देती है। उस कविता के भाव कुछ इस तरह हैं– 'सात समुद्र की स्याही बनाकर, जंगल के सभी पेड़ों से कलम बनाकर भी यदि प्रेम की कथा लिखूं तो वह पूरी नहीं होगी।' इसलिए कविता में पर्यावरण या पर्यावरण में कविता के इन अकथ्य कथा संदर्भों और प्रसंगों को आप जितना अधिक खींचेंगे, विस्तार देंगे, वह उतना ही खिंचेगा या विस्तार पाएगा, किंतु तनाव के क्षण जीवन में से न तो कभी खत्म होंगे और न ही जीवन संघर्षो से जूझने की गति में कोई कमी आएगी। कविता में पर्यावरण की महत्ता का रेखांकन जब होता है तो मूक प्रकृति भी बोलने लगती है। कविता उससे बातें करती है और मनुष्य कविताओं में डूबकर अपने जीवन के ऊंच-नीच भरे हालातों की जानकारी लेता-देता है। ऐसा ही एक परिदृश्य इन पंक्तियों में आ रहा है–

इस वक्त आप हैं हम हैं,
कल कहां होंगे कह नहीं सकते,
यह नदी जीवन की बहती धारा है
जिससे हम देर तक साथ बह नहीं सकते।

सह-संपादक, शोध प्रभांजलि,
मुंगेली, जिला-बिलासपुर (छ.ग.)

भक्तिकालीन संतों का योगदान पर्यावरण, इतिहास, धर्म, दर्शन एवं साहित्य अनेक क्षेत्र में संत, कबीर का रहस्यवाद पूरा प्रकृति पर आधारित है। साधना में उन्हें ध्यान, धारणा एवं योग तक पहुंचने में मददगार साबित हुए उनके इड़ा, पिंगला, सुषुमा साधक को एकाग्रता स्थापित करने में सहायक होते हैं। कबीर निराकार में साकार की दर्शन कर लेते, उनकी रचनाएं इनके प्रमाण है। नामदेव, तुकाराम, नानक, रैदास सभी के लक्ष्य सिद्धि में प्रकृति सहायक हुई है, जायसी प्रेम की पराकाष्ठा पद्मावती की कल्पना में कवि सजीवता का निर्वाह करते हैं। ''पद्मावती चाहत ऋतु पाई गगन सोहावन भूमि सुहाई, चमुकि बीजुबरसै जल सोना।''[11] प्रकृति दर्शन से ओत-प्रोत है। ऋतुओं के क्रम निर्धारित करना मान सरोवर के चारों ओर प्रकृति की छटा है, वर्तमान समय न पर्यावरण प्रदूषण की वजह से, न कृति है, न प्रकृति वरन् विकृति का रूप देखने को मिलता है। गुरुजी कल्पना कवि सुआ के रूप में करता है, जो प्रकृति के निवासी है। विडंबना ही कहिए कि वर्तमान में लोग गुरु को बंदी बना लिए है। तुलसी एवं सूर के साहित्य में चाहे विनय पत्रिका अथवा रामचरित मानस में पर्यावरण मौलिक रूप से सामने रहे है। सौंदर्य की छटा कवि यही प्राप्त करता है। समस्त कृति में वन शोभा को कवि रस, छंद एवं अलंकार में बिखेरते हुए हैं, आज प्राकृतिक छटा की कमी की वजह से कल्पना केवल कल्पना रह गई है। सूर का चित्रण—

सदा बसंत रहत जहं बास, सदा हर्ष जहां नहीं उदास।[12]

सूरदास दिव्यचक्षु के धनी थे, उनके सवैया इनके प्रमाण हैं। कवि वृंदावन की प्रस्तुति पाठक को अपनी ओर खींच लेता है। यमुना के आस-पास सौंदर्य की छटा अनुपम एवं अद्भुत है, इसलिए दर्शक साकार रूप लीला का आभास करते हैं। आगे चलकर रीतिकाल के कवियों को रचना धर्म का निर्वाह कर प्रकृति के आधार पर किए हैं। देव, घनानंद, बिहारी, पद्माकर एवं सेनापति ने सतही धरातल पर पर्यावरण को समझने-समझाने का प्रयास किया है। देव कवि ने प्रकृति के रहस्य को समझा है—

डार द्रुम पालना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झिंगोला सौहे तन छवि भारी दै।
पवन झुलावै केकी कीर बतरावै देव,
कोकिल हलावै हुल सावै करतारी दै॥[13]

पर्यावरण ऋतुओं के क्रम निर्धारित करते हैं, जो हमारे जीवन एवं जगत् का आधार है। पूरी दुनिया की पहचान पर्यावरण से है। वैदिक ऋषि ने ठीक ही लिखा है—

नभश्च नभस्यश्च वार्षिका वृतू अग्निरुतः।
श्लेशासि कल्पेतां द्यावा पृथ्वी कल्पनता भाऽऽ ओषधयः॥[14]

उपरोक्त में मानव को आह्वान करने की बात कही गई है। इसी तरह द्विज देव ने लिखा है—

चातक चकोर मोर दा दुर सुभना जोर।
निज-निज दाऊं ठाऊं ठाऊन संभरिगे॥[15]

सेनापति ने सावनी सभा को इस प्रकार साकार किया है—

सेनापति उनये नये, जलद सावन के।
चारिहू दिसान घुमरन भरै ताई कै॥[16]

भारतीय साहित्य में गीता का अपना महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए भगवान कृष्ण वृक्षों में अश्वत्थ होने की बात कहते हैं। अतः जिसमें साहित्य का भाव हो, जिसमें लोक एवं जन-कल्याण निहित हो, एक शब्द में कहें तो समस्त साहित्य एवं साहित्य का मूल आधार प्रकृति है। लौकिक एवं अलौकिक ग्रंथ की ही बात क्यों न हो—वेद, पुराण, उपनिषद् सभी में प्रकृति व्याप्त है। प्रकृति एक ग्रंथ है, जिसका रचतिया ईश्वर है। रामायण में महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं—

सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वानुरक्तः सुहृज्जने।
रामे प्रमादः मा कार्षीः पुत्र भ्रमरि गच्छति।[3]

आश्चर्य जिस सृष्टि के आधार की उपासना करते हैं, उनका निवास वन है, पर्यावरण वातावरण ही नहीं, भूतकाल में भी जीवन एवं जगत् के आधार रहे हैं। "भारतीय दर्शन का आदि स्रोत वेद माने जाते हैं।[4] फिर दर्शन भारत के 6 दर्शन—न्याय, गौतम, वैशेषिक, कणाद, सांख्य, कपिल, योग-पंतजलि, पूर्व मीमांसा जैमिनी, उत्तर मीमांसा व्यास उपरोक्त सभी जीव, जगत् एवं ब्रह्म को अपने सिद्धांतों के आधार पर प्रतिपादित किए हैं, समस्त दर्शन में पर्यावरण ही आधार रहे हैं। बिना पेड़-पौधों के जीवन का अस्तित्व नहीं है। समस्त भारतीय धर्म ग्रंथ का आधार स्तंभ पर्यावरण है। जितने तत्वदर्शी, ऋषि, मुनि, साध्वी हैं का आधार ही प्रकृति हैं। वे धारणा, ध्यान, योग एवं चिंतन की एकाग्रता को वन में रहकर केंद्रित किए हैं, इसलिए एक विद्वान् ने वन के महत्व में लिखा है कि 'राम का वन गमन राम के अयन (रामायण) का मूलभूत आधार (मूलाधार) है। पादुका लेकर भरत का अयोध्या लौटना...राम का दंडक में प्रवेश करना स्वाधिष्ठान का सूचक है। राम को अगस्त्य का अस्त्रदान मणि पूरक चक्र, कबंध का वृत्तांत अनाहत है।"[5]

वेद में प्रकृति दर्शन सर्वत्र विद्यमान है, इसलिए डॉ. राधाकृष्णन ने ठीक ही लिखा, "वेद मनुष्य के धार्मिक और दार्शनिक विचारों का मानव भाषा में प्रथम परिचय प्रस्तुत करता है, प्राचीनतम इतिहास, सामाजिक नियम, सदाचार, दर्शन, कला, धर्म आदि ज्ञान का आधार वेद है।"[6] तो दूसरी ओर आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "काव्य की चरम लक्ष्य सर्वभूत को आत्मभूत करा के अनुभव कराना है, उसके साधन से अहंकार का त्याग आवश्यक है। जब तक अहंकार से पीछा न छूटेगा, तब तक प्रकृति के मूल रूप मनुष्य के भीतर नहीं आ सकते।"[7] जयदेव के वसंत वागत भी महत्वपूर्ण है—

मृग मद सार भर भस वशंवाद नवदल माल तमाले।
युवा जन हृदय विदारण मनसिज नख रुचि किंशुकजाले ॥[8]

विद्यापति में पर्यावरण के सूक्ष्मता का बोध होता है—

जलद सरिस जलधार का जरे रांगलि राति।[9]

अतः अस्तित्व का आधार पेड़-पौधे हैं, लेकिन है कि "विडंबना यह है कि जहां वन्य पशुओं और वन में निवास करने वाले आदिवासियों के हितों में टकराहट होती है, पलड़ा वन-पशुओं का ही भारी पड़ता है। ऐसा ही एक विवाद अभी हाल में सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान और वन्य क्षेत्र के आदिवासियों के बीच शुरू हुआ, जो जलाशय से मछली मारकर आजीविका प्राप्त करते हैं। मत्स्य क्षेत्र राष्ट्रीय उद्यान के दायरे में आता है और इसलिए इसमें मछली नहीं मारी जा सकती।"[10]

सुमित्रानंदन पंतजी ने 'ग्रामश्री' कविता में लिखा है—

फैली खेतों में दूर तरल मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटी जिससे रवि की किरणें चांदी की-सी उजली जाली।[28]

कुछ कवि मिट्टी में प्रकृति महिमा को प्रकट करते हैं, इसलिए हरिवंशराय बच्चनजी लिखते हैं—

जिसे माटी की महक न भाए।
उसे नहीं जीने का हक है।।[29]

प्रकृति पीड़ा को प्रयोगवादी कवि आधुनिक जीवन-शैली पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं—

सांप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं,
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया,
एक बात पुछूं (उत्तर दोगे)
तब कैसे सीखा डसना,
विष कहां पाया?[30]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं, "मनुष्य प्रकृति के सहयोग तथा सहानुभूति के बिना पनप नहीं सकता, वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल नहीं होगा।"[31]

अतएव समग्र मूल्यांकन के रूप में नीरज के कथन ठीक ही लगते हैं—

करती है जब विद्रोह प्रकृति होकर अधीर।
आदमी स्वयं तब अपनी मौत बुलाता है।
जब बम अब आज माता है निज पौरुष निर्बल पर।
तब उसका ही निर्माण उसे खा जाता है।[32]

खेत जले, खलिहान जले, सब पेड़ जले, सब पात जले।
मेरे गांव में रात न जाने कैसा पानी बरसता था।
दूध के बदले इक मां के आंचल से खून टपकता था।[33]

व्यक्ति जानता है—साधु, साधक, साधन एवं साध्य सभी का केंद्रियभूत पर्यावरण है, लेकिन आज प्रकृति विलासिता की भेंट चढ़ चुका है, लेकिन इसके शिकार गरीब लोग ही हो रहे हैं। दुष्यंतजी ठीक ही लिखते हैं—

न हो कमीज तो पांवों से पेट ढंक लेंगे।
ये लोग कितने मुनासिब है हमसफर के लिए।[34]

समग्र मूल्यांकन के रूप में कह सकते हैं, हमें पुनः चिंतन, मनन करने की जरूरत है। वायु का आधार पर्यावरण है, नहीं तो आने वाला समय में निरंक रहेगा। स्वामी रामदेव ने लिखा है, "औषधि लेनी भी पड़े तो आयुर्वेदिक औषधियों को प्राथमिकता देनी चाहिए, क्योंकि यह हमारी मिट्टी, संस्कृति व प्रकृति से जुड़ी हुई व निरापद है।"[35]

अतः कह सकते हैं कि "पर्यावरण संरक्षण प्रत्येक भारतीय नागरिक का पुनीत कर्तव्य है।"[36]

इतना ही नहीं कवि कालिदास के 'ऋतु संहार' में देखते ही बनता है—

द्रुमा सफष्या सलिलं रूपद्रमं स्त्रियः सकामा पवनज सुंधिः।
सुखाः प्रतीपा दिवससाश्चरम्याः सर्व प्रिये चारुतरं बसंते ॥[17]

निराला एवं पंत दोनों प्रकृति के कवि हैं, आगमन का स्वागत इस प्रकार करते हैं—

भरा हर्ष बाके मान, नर्वोत्कर्ष छाया।[18]

वहीं पंत—

नव वसंत आया,
कोयल ने उल्लसित कंठ से अभिवादन गाया।[19]

पर्यावरण का गुणगान न केवल भारतीय साहित्यकारों व पाश्चात्य कवियों में शेक्सपियर, मिल्टन, टेनीसन, ब्राउनिंग, स्विनबर्ग, थॉर्मसन—सबने प्रकृति की सत्ता को स्वीकार किया है। लोग फेलो ने बसंत के हर्षोल्लास का चित्रण इस प्रकार किया है—

Came the spring with all its splen dor,
all is birds and all its blossoms all its flowers,
and leave and grass.[20]

अतः ऋतु परिवर्तन एवं ऋतुओं का निर्धारण वर्षा पर निर्भर है और वर्षा पर्यावरण पर। पद्माकर कवि जाड़े का चित्रण इस प्रकार करते हैं—

गुलगुली गिल में गलीचा है, गुनी जन है।
चांदनी है चिक है चिरागन की माला।[21]

तो दूसरी ओर शेक्सपियर प्रकृति का स्वागत इस प्रकार करते हैं, जो जन-मानस के लिए पर्यावरण संवर्द्ध की ओर संकेत हैं—

When icicless hang by the wall
and dick the shepherd blouss his nail.[22]

नाटककार की दृष्टि में जाड़े का भी महत्व है। हजारीप्रसाद ने लिखा है कि सृष्टि की सुंदर सृष्टि प्राकृतिक ही है, पर मनुष्य सुंदर सृष्टि के अवयवों से अपनी इच्छा से सौंदर्य का निर्माण करता है।[23]

वसंत आता नहीं लो आ जाता है।[24]

जीवन में ग्रीष्म का भी महत्व है, बिहारी ने ठीक ही लिखा है—

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत् तपोवन सो कियो, दीरध, दाध निदाध ॥[25]

जगदीश चंद्र बसु जैसे वैज्ञानिक चाहिए, जो पर्यावरण का संवर्द्धन एवं संरक्षण कर सके। जो 'शस्य' शब्द से शस धातु से निस्पन्न हुआ है, उन्होंने चिंतन किया। शस्य का अर्थ है—जो मारा जाए, उन्होंने सोचा कि पौधे में जीवन होता है। उन्होंने रेजोनेंट रिकॉर्डर तथा क्रेसकोग्राफ दो यंत्रों द्वारा पौधे संबंधी जानकारी दी। कबीर के कथन का मूल्यांकन के रूप में कह सकते हैं—

वृक्ष कबहु नहि फल चखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारण साधु धरा शरीर ॥[26]

नीति श्लोक में भर्तृहरि ने यहां तक कहा है कि—

परोपकाराय फलंति वृक्षाः।[27]

आज के ज्वलंत समस्या पर व्यंग्य करते हुए डॉ. बृजेश ने लिखा है—

ठाने पेड़-पौधों के जंगलों को काटना है।

क्योंकि अब कांकरीट का जंगल उगाना है।।[37]

संदर्भ

1. बृहत् हिंदी निबंध, भास्कर, पृ. 65
2. सूक्ति सागर, रमाशंकर गुप्त, पृ. 221
3. रामायण, वाल्मीकि, पृ. 111
4. भारतीय संस्कृत कोश, लीलाधर शर्मा, पृ. 410
5. रामायण के महिला पात्र, पांडुरंग राव, पृ. 217
6. इंडियन फिलॉसफी, डॉ. राधाकृष्णन, पृ. 230
7. चिंतामणि, भाग-2, रामचंद्र शुक्ल, पृ. 21
8. गीत गोविंद काव्यम्, जयदेव, पहला सर्ग।
9. विद्यापति, शिव प्रसाद सिंह, पृ. 230
10. भूमंडलीयकरण की चुनौतियां, सच्चिदानंद सिन्हा, पृ. 121
11. पद्मावत, श्यामसुंदर दास, पृ. 150
12. सूरसागर, रामचंद्र आचार्य शुक्ल, पृ. 111
13. वृहद् हिंदी निबंध, भास्कर, पृ. 51
14. सूक्ति सागर, रमाशंकर गुप्त, पृ. 17
15. वृहत् निबंध, ऋतु वर्णन, भास्कर, पृ. 51
16. वही, पृ. 28
17. ऋतु संहार, का:लिदास।
18. राग-विराग, सं. रामविलाश शर्मा, पृ. 71
19. तारा पथ, सं. रामविलाश शर्मा, पृ. 23
20. सूक्ति सागर, रमाशंकर गुप्त, पृ. 321
21. वही, पृ. 211
22. वही, पृ. 15
23. अक्षत, वसंत अंक, डॉ. श्रीराम परिहार।
24. निबंध निकेत से उद्धृत, हजारीप्रसाद द्विवेदी।
25. बिहारी सतसई, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ. 151
26. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, पृ. 242
27. नीति श्लोक से भर्तृहरि।
28. तारा पथ, रामविलास शर्मा, पृ. 25
29. मिट्टी की महिमा कविता, बृहद् निबंध, भास्कर।
30. इंद्रधनुष रौंदे हुए थे, अज्ञेय, पृ. 292
31. संस्कृत आलोचना, बलदेव प्रसाद आचार्य उपाध्याय, पृ. 215
32. गोपालदास नीरज, सं. शेरजंग गर्ग, पृ. 12

33. वही, पृ. 43
34. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृ. 72
35. योग साधना, स्वामी रामदेव।
36. पर्यावरण विज्ञान, डॉ. विजय कुमार तिवारी, पृ. 424
37. विकास संस्कृति, अंक समाधान 15-16, त्रैमासिक पत्रिका, डॉ. बृजेश सिंह।

प्राध्यापक, अध्यक्ष, (हिंदी विभाग)
शासकीय ई. राघवेन्द्रराव विज्ञान स्नातक कन्या महाविद्यालय
बिलासपुर-495001 (छ.ग.)

पर्यावरण चुनौतियां एवं शिक्षा-परिवेश

कृष्णकुमार भट्ट 'पथिक'

पर्यावरण की चुनौतियों से तात्पर्य पर्यावरण की शुद्धता से है। यह सामाजिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्राकृतिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक एवं इतिहास के दायरे में अनेक रूपों में अभिव्यक्त होकर, मानव-जीवन के प्रयासों के बीच ठोस चिंतन की वैचारिक जमीन पर इतिहास के सुनहले पृष्ठों को निर्मित करने के लिए समाज की जीवित सांसों को नयी पहचान देकर स्थापित होती है। 'क्या लिखूं' निबंध में 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने इतिहास के वर्तमान को अंतर्द्वंद्व का काल कहा है, जिसमें तरुण वर्तमान का सुखद भविष्य पर्यावरण में रचने का स्वप्न देखते हैं और वृद्ध-पीढ़ी इतिहास के अतीत का पर्यावरण में फिर से रचना संसार पर्यावरण की परतों में परत-दर-परत खोजती है। शिक्षा का परिवेश पर्यावरण का सुलगता सवाल है।

पर्यावरण में शिक्षा का परिवेश माता के चुंबन और पिता के दुलार के बीच प्रारंभ होता है। एक देशवासी और विदेशी की शिक्षा में अंतर होता है—भारत की शिक्षा में 'अ' से अनार का, 'ज' से जहाज को, बच्चा आसानी से ग्राह्य करता है, जबकि विदेशी बालक को युवा होने पर भी 'घोड़ा', 'यज्ञ' और 'आहुति' जैसे शब्दों के अर्थ समझाने के लिए फिल्म स्ट्रिप दिखानी पड़ती है।

शालेय स्तर पर छत्तीसगढ़ में इन दिनों 'इको क्लब' की स्थापना चर्चित है और 'मध्याह्न भोजन' के आयोजन में सहभोज एवं साहचर्य का सामाजिक पर्यावरण है। छत्तीसगढ़ शासन के नये बनने वाले कानून में अधिकारियों एवं कर्मचारियों की जिम्मेदारी सुनिश्चित करने में शिक्षा विभाग को शामिल किया गया है। 'सूचना का अधिकार' स्कूल-कॉलेजों में समान रूप से जारी है। 'भारत विरुद्ध भ्रष्टाचार' के अन्ना हजारे के आंदोलन को युवा वर्ग का सहयोग रहा है।

समाज के इतिहास में चल रहे पर्यावरण का निश्चित एच.टू.ओ. (H_2O) पानी जैसा प्रभाव शैक्षणिक परिवेश के 'बोलता आईना' में परिलक्षित है। 'कौन बनेगा करोड़पति' में अमिताभ बच्चन द्वारा पूछे गए सवाल, राखी सावंत का न्याय जैसे दूरदर्शन चैनलों पर आती हुई क्रियाओं की चर्चा युवा वर्ग के शैक्षणिक परिवेश में छत्तीसगढ़ के स्कूलों में 'हाथ धोओ' आयोजनों की तरह अपनी इतिहास प्रतिक्रियाएं आज के पर्यावरण की सामाजिक-मानसिक चुनौतियां हैं।

पर्यावरण एक विषय के रूप में अनिवार्य स्वीकृत है। शैक्षणिक संस्था के बाहर कार्यरत पर्यावरण समितियां शालेय एवं महाविद्यालयीय छात्र और छात्राओं के लिए कार्य करती हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना के अंतर्गत छात्र एक सप्ताह तक महाविद्यालय के बाहर किसी गांव में रहकर श्रमदान द्वारा ग्राम-विकास का कार्य, बौद्धिक चर्चा और प्रतिदिन कम-से-कम एक पृष्ठ का पोस्टर-अखबार संपादित करते हैं। सामाजिक पर्यावरण में राष्ट्रीय सेवा योजना के स्वयंसेवक छात्र बकौल दुष्यंत कुमार—

परिंदे आज पर तोले हुए हैं,
हवा में सनसनी घोले हुए हैं।

बचपन में पड़ोस की अनपढ़ मामी, अपनी ससुराल गई दो लड़कियों को पत्र लिखाने के लिए आया करती थी। पत्र मैं अपने ढंग से व्यवस्थित कर लिखा करता था। आधे पत्र में अपढ़ मामी नमस्ते-दुआ-सलाम लिखाती, फिर बात प्रारंभ करती। प्राचार्य पद पर कार्य करते हुए मुझे औपचारिक शिक्षा केंद्र, आंगनबाड़ी एवं प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों में पर्यवेक्षण-निरीक्षण का कार्य करते हुए कहना पड़ा, 'यह सब समृद्धि, जो किसी अधिकारी के जीवन में उपलब्ध सब पढ़ाई-लिखाई की देन है, आप पढ़िए और हस्ताक्षकर कीजिए।' पढ़ाई सोच की दिशा-इतिहास बदल सकती है कहने की जरूरत नहीं है, 'स्कूल आ पढ़े बर जिंदगी ला गढ़े बर।'

भारत में पर्यावरण की चुनौतियों को शिक्षा के परिवेश से पर्यावरण प्रदूषण दूर करने के लिए 2 फरवरी को विश्व जल संग्रहण दिवस, 21 मार्च विश्व वानिकी दिवस, 22 मार्च विश्व जल दिवस, 22 अप्रैल पृथ्वी दिवस, 22 मई विश्व जैव-विविधता दिवस, 6 जून विश्व पर्यावरण दिवस, 16 सितंबर को विश्व संरक्षण दिवस और वन-महोत्सव एक सप्ताह तक स्कूल-कॉलेजों में वैचारिक-चर्चाओं के साथ और बाहर पर्यावरण एवं पर्यटन समितियों में आयोजित किए जाते हैं। स्कूली छात्र-छात्राएं 'जल ही जीवन है', 'पर्यावरण बचाओ, प्रदूषण भगाओ' जैसी तख्तियां लिए शहर-गांवों की सड़कों पर रैलियां निकालते हैं और गूंजते नारों के बीच लगता है सड़कों पर शिक्षा-जगत् इतिहास के पर्यावरण की चुनौतियों का सामना कर रहा है।

नया बांध बनाने के लिए काफी जमीन डूब में आती है। कुछ समय पहले विकास खंड मुख्यालय 'हरसूद' ग्राम अखबारों में अपने ग्राम की जमीन के छायाचित्रों के साथ अमीर खान के 'पीपली लाइव' फिल्म में एक किसान द्वारा आत्महत्या करने की घोषणा नर दौड़ती मीडिया की तरह मीडिया के कैमरों में कैद होती रही। बांध से पर्यावरण को चुनौतियां मिलती हैं, जब मीडिया के सतत् आग्रह एवं हरसूद निवासियों की मांग पर जमीन का अधिग्रहण करने की जगह डूब क्षेत्र से दूर नये हरसूद ग्राम का निर्माण शासन ने कराया। दुर्ग के कथाकार गुलबीर सिंह भाटिया की एक कहानी की नायिका जब बहुत दिनों बाद बांध में डूब गए अपने निवास के पास से गुजरती है, तो उसके मस्तिष्क में उस डूब के पहले की यादें उभरती हैं। बिलासपुर के अचानकमार अभयारण्य से कुछ वन्य ग्रामों में बसने वाले निवासियों के सीमित घरों वाले ग्रामों को नयी जगहों पर आयाम दिया गया। मेनका गांधी का पशु-पक्षी प्रेम विख्यात है। स्व. शायर कैफी आजमी की पुत्री फिल्म

अभिनेत्री शबाना आजमी आज भी झोंपड़पट्टियों में सुविधाओं के नाम पर जाती हैं। झोपड़-पट्टियों की सड़कों पर पसरी गंदगी, जो स्वयं वे लोग साफ न कर गंदगी में रहते हैं--को साफ करने के लिए शहर के संभ्रांत लोग होते हैं। महात्मा गांधी ने अपने 'स्टुडेंट एवं वेकेशन' निबंध में छात्र/ छात्राओं से अपने अवकाश का समय ग्रामों में बिताने का आग्रह किया था।

संरक्षक

छत्तीसगढ़ शासकीय राजपत्रित अधिकारी संघ, मुंगेली,

मस्जिद के पीछे, तारबाहर, बिलासपुर-495004

पर्यावरण की भारतीय चिंतन-परंपरा और डॉ. बृजेश सिंह की गजलें

डॉ. इंद्रनाथ सिंह

डॉ. बृजेश सिंह देश के प्रख्यात पर्यावरणविद् हैं। पर्यावरण की भारतीय चिंतन-परंपरा पर उनकी पर्यावरण पर केंद्रित गजलें पूर्णतया खरी उतरती हैं। पर्यावरण चेतना पर डॉ. बृजेश सिंह ने 300 से भी अधिक गजलें लिखी हैं, जो पर्यावरण के प्रायः सभी पक्षों को संस्पर्श करती हैं।

'प्रकृति-प्रेम एवं प्रकृति-संरक्षण की चिंतनधारा भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता है। भारतीय ऋषि-मनीषियों को प्रकृति एवं पर्यावरण प्रणाली का संपूर्ण एवं समग्र ज्ञान था। इन्हें प्रकृति, जीव के आपसी संबंधों (Inter-relationships) तथा इन संबंधों से उत्पन्न परिणाम एवं प्रभावों का पूर्ण अनुभव था। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में प्रकृति (Nature) को माता के गरिमामय पद से अलंकृत किया जाता है और इसके पंचतत्वों से बने भौतिक घटक (Components) तथा वृक्ष-वनस्पतियों को देवतुल्य मानकर पूजा की जाती है। अथर्ववेद का ऋषि प्रार्थना करता हुआ कहता है—

"ये त्रिसप्ताः परियंति विश्वा रूपाणि विभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु में ॥"[1]

अर्थात् पृथ्वी; जल, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा और अहंकार—ये सात पदार्थ और सत्व, रज तथा तम—ये तीन गुण, इस प्रकार जगत् में तीन गुणा सात 'इक्कीस' देवता सब ओर आवागमन करते हैं। वाणी के स्वामी ब्रह्मा उनके अद्‌भुत बल को हमें प्रदान करें।

पर्यावरण शब्द 'परि' आ उपसर्ग पूर्वक वृ आवरणे धातु में ल्युट् प्रत्यय लगाकर बना है। उपसर्ग के कारण धातु का अर्थ बदल जाता है। 'परि' का अर्थ चारों ओर, या चारों तरफ, 'आवरण' का अर्थ—अच्छी प्रकार से आच्छादन, ढकना है। यहां पर्यावरण एक विशेष अर्थ में रूढ़ है। यह शब्द लौकिक एवं वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध नहीं होता। पर्यावरण शब्द का अर्थ है—अच्छी प्रकार से चारों तरफ ढकने वाला। मूलतः पर्यावरण शब्द अंग्रेज़ी के Environment शब्द का हिंदी रूपांतर है। हमारे चारों तरफ जो कुछ भी है वह हमारा संपूर्ण पर्यावरण या परिस्थिति है। हमारे चारों तरफ ही नहीं, अपितु स्थावर-जंगम आदि के अलावा संपूर्ण ब्रह्मांड को चारों तरफ से आच्छादित करने वाला पदार्थ या तत्व-समूह पर्यावरण है।

पर्यावरण की परिभाषा एवं परिव्याप्ति

प्रत्येक जीव या जड़-चेतन के चारों तरफ पाया जाने वाला भौतिक-अभौतिक सम्मिश्रण ही वातावरण या पर्यावरण है। यही पर्यावरण जीवों के क्रिया-संचालन हेतु

उपयुक्त साधन और वातावरण का निर्माण करता है। जीव और उसका वातावरण प्रकृति का जटिल गतिक घटक है। पर्यावरण अनेक कारकों का समूह है। ये कारक जीवों को अपनी पारस्परिक क्रियाओं के द्वारा प्रभावित करते रहते हैं। वहीं जीव भी अपनी बुद्धि, व्यवहार और जीवन-वृत्त का पारस्परिक क्रिया-प्रभाव पर्यावरण पर डालते हैं। पर्यावरण एक विज्ञान है। अतः हम सामान्यतया 'विज्ञान' के अर्थ पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि वैज्ञानिक-पद्धति से किसी भी विषय सामग्री पर प्राप्त किया गया सुव्यवस्थित, सुसंगठित एवं क्रमबद्ध ज्ञान ही विज्ञान कहलाता है। 'कूर्म' पुराण में कहा गया है कि जो ज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और सदैव विकार-रहित एक स्वरूप अथवा अव्यय है, वही विज्ञान है–

''विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्।
अज्ञानमितरत्सर्वम्।''[2]

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि जीव और वातावरण पर्यावरण की इन पारस्परिक क्रियाओं एवं संबंधों का वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किया गया सुव्यवस्थित, सुसंगठित एवं क्रमबद्ध ज्ञान ही वातावरणीय जीव विज्ञान (Environment) या पर्यावरण विज्ञान (Environmental Science) कहलाता है। अनेक विद्वानों ने पर्यावरण की अपने-अपने ढंग से परिभाषा की है। उनमें से कुछ परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं–

1. ''पर्यावरण उन समस्त बाहरी दशाओं और प्रभावों का योग है, जो प्राणी के जीवन और विकास को प्रभावित करते हैं।''[3]
2. ''पर्यावरण उन सबको कहते हैं, जो जैव स्वरूप अथवा वस्तु को निकट से घेरे होते हैं एवं उन्हें प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।''[4]
3. ''प्रभावकारी दशाओं का वह संपूर्ण योग जिसमें जीव रहते हैं, पर्यावरण है।''[5]
4. ''पर्यावरण का तात्पर्य मानव के चारों ओर पाई जाने वाली परिस्थितियों के उस समूह से है, जो इनके जीवन एवं क्रियाओं पर प्रभाव डालती हैं।''[6]
5. ''पृथ्वी का धरातल और उसकी सारी प्राकृतिक दशाएं, प्राकृतिक संसाधन, भूमि, जल, पहाड़, मैदान, खनिज पदार्थ, पौधे, पशु तथा संपूर्ण प्राकृतिक शक्तियां, जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव-जीवन को प्रभावित करती हैं, भौगोलिक पर्यावरण के अंतर्गत आती हैं।''[7]
6. ''पर्यावरण उन सभी बाह्य दशाओं एवं प्रभावों का योग है, जो भू-पृष्ठ पर जैविक तत्वों के विकास-चक्र को प्रभावित करते हैं।''[8]

वर्तमान समय में कुछ विद्वानों ने पर्यावरण की जगह परिस्थान (Habitat or milieu) शब्द का प्रयोग किया है, जिसका मतलब भी परिस्थितियों के समूह (Set of surroundings) से है। ए. गाउडी ने 'The nature of the Environment' पृथ्वी के भौतिक घटकों (Physical or abiotic components) को ही पर्यावरण का प्रतिनिधि स्वीकार किया है। इनके अनुसार पर्यावरण को प्रभावित करने में मानव एक महत्वपूर्ण कारक है।

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि पर्यावरण के अंतर्गत जैविक एवं अजैविक कारकों के पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। भारतीय दर्शन में पर्यावरण की समता प्रकृति से की जाती है। अतः ''पृथ्वी पर मानव के चारों दिशाओं में फैले प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं परिस्थितिकीय कारकों के छादन अथवा आवरण को ही पर्यावरण कहते हैं।''

पर्यावरण की विशेषताएं

पर्यावरण की निम्न विशेषताएं हैं—

1. पर्यावरण एक खुला तंत्र है।
2. जैविक एवं अजैविक घटक पर्यावरण के महत्वपूर्ण भाग हैं।
3. पर्यावरण में कोई भी जीवधारी अकेला जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। जीवों का परस्पर साथ मिलकर रहना आवश्यक लक्षण है। प्रत्येक जीवधारी को अन्य जीवों के साथ साहचर्य स्थापित करना पड़ता है।
4. जीव पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति अनुकूलता प्रदर्शित करते हैं।
5. जीवों के चारों ओर की जैविक व अजैविक वस्तुएं पर्यावरण की रचना करती हैं।
6. पर्यावरण की अपेक्षा आवास (habitat) ज़्यादा महत्वपूर्ण होता है। आवास के उस स्थान का पर्यावरण से गहरा संबंध होता है। वहां की परिस्थितियों एवं पर्यावरण की अनुकूलता ही उस जीवधारी या पादप को वहां बसने के लिए प्रेरित करती है।
7. पर्यावरण संसाधनों का भंडार है।
8. पर्यावरण में क्षेत्रीय विविधता पाई जाती है।
9. पर्यावरण स्व-नियंत्रण और स्व-पोषण पर आधारित होता है।
10. पर्यावरण निरंतर परिवर्तनशील है।
11. पर्यावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रकार का होता है।
12. भौतिक पर्यावरण अपार शक्ति का भंडार है।

पर्यावरण का क्षेत्र

पर्यावरण का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। अतः यह परम् आवश्यक हो जाता है कि जीव व पर्यावरण के मध्य संबंधों का अध्ययन किया जाए। प्राकृतिक परिस्थिति को मात्र जीव-विज्ञान की शाखा के रूप में निरूपित करना श्रेयस्कर नहीं होगा, क्योंकि वर्तमान में परिस्थितिकी का जो स्वरूप एवं स्थिति है, उसे प्राप्त करने हेतु विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं ने कुछ-न-कुछ योगदान किया है। जैसे—मृदा विज्ञान, रसायन, भौतिकी, भूगोल, जीवाश्म विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, मौसम विज्ञान आदि। मृदा विज्ञान ने विभिन्न किस्म के जीवों का मृदा से संबंध बताया है। इसके अतिरिक्त भूगोल एवं जीवाश्म विज्ञान ने पृथ्वी पर वर्तमान एवं भूतकाल के जीवों के विकास एवं विस्तार का अध्ययन किया है। इसी भांति विभिन्न प्रकार के आंकड़ों को एकत्रित करने, उन्हें वर्गीकृत एवं विश्लेषित करने में गणित एवं उसकी महत्वपूर्ण शाखा सांख्यिकी का काफी उपयोग किया जाने लगा है।

स्पेक्ट्रो-फोटोमीटर, इंफ्रा-रेड गैस एनेलाइजर, फ्लेमफोटोमीटर, रेडियोमीटर तथा प्रयोगशाला के बाहर भी तकनीकी तरीकों का विस्तृत व्यवहार इस विषय के अध्ययन में किया जाने लगा है। पारिस्थितिकी ऊर्जा का उत्पादन पारिस्थितिकी पर्यावरण की नवीन शाखा हैं, जिसने नये पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह ऊर्जा संरक्षण की मात्रा, जीवों में जैव भार बढ़ने की दर, जीवों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया, हरे पौधों (प्रथम उत्पादक) और जंतुओं (द्वितीय उत्पादक) के बारे में ज्ञान कराता है। भविष्य में होने वाले पृथ्वी के वातावरण में जो परिवर्तन आने की संभावना है, उसे हम 'ग्लोबल परिवर्तन' (Global Change) के अंतर्गत रखते हैं।

इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, वाणिज्य, संगीत, विधि, इतिहास, शासनशास्त्र, सैन्य विज्ञान, शिक्षाशास्त्र आदि ने मानव को एक जीव रूप में अध्ययन करके, उसके मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास में अपना भरपूर प्रत्यक्ष एवं प्रोक्ष सहयोग दिया है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि पारिस्थितिकी एक अनुशासनात्मक विज्ञान है, जिसका क्षेत्र प्रायः सभी विषयों एवं विज्ञान-शाखाओं से जुड़ा है। इस भांति पर्यावरण का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है और इसका सीमांकन करना अत्यंत कठिन है।

पर्यावरण-प्रदूषण : अर्थ एवं परिभाषा

आज़ विकसित एवं विकासशील देश, मानव समाज की सुविधाओं को बढ़ाने के लिए भौतिक संपदा एवं परिवेश का दोहन कर रहे हैं। विकासशील देश औद्योगिक एवं तकनीकी विकास करके विकसित हो रहे हैं। मानव अपनी स्वार्थ-पूर्ति हेतु प्रकृति एवं प्राकृतिक परिवेश के साथ निर्दयता और अविवेकपूर्ण आचरण कर रहा है। वह नयी तकनीक द्वारा प्रकृति एवं परिवेश में अवांछित परिवर्तन कर रहा है, जिसके कारण प्रकृति का परिवेश प्रदूषित होता जा रहा है। औद्योगिक एवं तकनीकी दृष्टि से समृद्ध क्षेत्रों में वायु प्रदूषण के कारण श्वास लेना दुर्लभ है, जल-प्रदूषण के कारण जल पीना हानिकारक है। प्रदूषित होने से भूमि बंजर एवं बीहड़ होती जा रही है। ध्वनि-प्रदूषण के कारण सुनना दुर्लभ हो गया है।

जिस क्रिया से जल, वायु, मृदा एवं वहां के संसाधनों के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में किसी अवांछनीय परिवर्तन से जैव जगत् एवं संपूर्ण परिवेश पर हानिकारक प्रभाव पहुंचे, उसे प्रदूषण कहते हैं। वे सभी कारक, पदार्थ, कारण, तत्व अथवा यौगिक जिससे प्रदूषण होता है, उसे प्रदूषक (Pollutants) कहते हैं।

वायु, जल एवं मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों के किसी ऐसे अवांछनीय परिवर्तन से, जिससे मनुष्य स्वयं को संपूर्ण परिवेश के प्राकृतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों को हानि पहुंचाता है, प्रदूषण कहते हैं। प्रदूषण पर प्रकाश डालते हुए आचार्य डॉ. दशरथ लाल निषाद 'विद्रोही' ने लिखा है—

"प्रदूषण जमीं पे बढ़ता जा रहा है।
फिकर जिसकी इंसां नहीं कर रहा है ॥
हवा-पानी-आवाज प्रदूषण को जाने।
बाकी को इंसां नहीं समझ पा रहा है ॥
विचार प्रदूषण से मृदा अन्न दूषित।
जिससे करम बिगड़ता जा रहा है ॥
बेईमानी जिससे फैलती जमीं पर।
सारा जहां अब कहां जा रहा है ॥
समय अब भी बाकी सोचो 'विद्रोही'।
जहन्नुम जहां को इंसां कर रहा है ॥"[9]

"Pollution is an undesirable change in the physical, chemical or biological characteristics of our air, land, water, that may or will harmfully effect human life or that of desirable species, our industrial procces, living conditions and cultural asets, of deteriorates our raw material resources."[10]

"हमारे रहन-सहन के लिए हवा, जल, मिट्टी, पेड़-पौधे एवं जीव-जंतु आवश्यक हैं। इनमें से किसी भी अवयव से ऐसा परिवर्तन, जो उसे दूषित या गंदा करे, प्रदूषण कहलाता है।"[11]

आज के विकसित समाज में पर्यावरण प्रदूषण वर्तमान मानव की प्रमुख समस्याओं में से एक है। मनुष्य ने प्रारंभ से ही विज्ञान, तकनीक एवं औद्योगिक ज्ञान में अभूतपूर्व प्रगति की है और यह प्रगति निरंतर जारी है। इसके समक्ष पर्यावरण प्रदूषण की समस्या दिन-प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या मनुष्य द्वारा पर्यावरण के अनुचित ढंग से उपयोग द्वारा उत्पन्न होती है। अदूरदर्शितापूर्ण प्राकृतिक संसाधनों का शोषण तथा पारिस्थितिकी संतुलन को नष्ट करने इत्यादि का उत्तरदायी मनुष्य स्वयं है। मनुष्य अपनी अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनों को काटता है, खनिज पदार्थों का शोषण करता है, अणु शक्ति का विस्फोट करता है, बांधों का निर्माण करता है आदि। मानव के इन सब क्रिया-कलापों के कारण पारिस्थितिक संतुलन में परिवर्तन हो जाता है। यद्यपि प्रकृति सदा इस संतुलन को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहती है।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार

पर्यावरण प्रदूषण के वर्गीकरण के अनेक आधार हैं। अतः अब तक जो भी वर्गीकरण किए गए हैं, वे स्वेच्छा से किए गए हैं। वर्गीकरण के विभिन्न आधारों में, स्वरूप माध्यम या साधन, क्षेत्र एवं स्रोत, स्थिति इत्यादि प्रमुख हैं।

पर्यावरण प्रदूषण को सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है—

1. प्रत्यक्ष और
2. अप्रत्यक्ष प्रदूषण।

वह प्रदूषण जो पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं के लिए प्रत्यक्ष रूप से हानिकारक होता है, अर्थात् जिसका प्रभाव जैव मंडल पर सीधा पड़ता है, प्रत्यक्ष प्रदूषण कहलाता है। इसके अंतर्गत मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के परिवहन साधनों, चिमनियों, वायुयानों, कल-कारखानों, गृहों तथा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के जलने से निकलने वाला धुआं, कारखानों एवं घरों से निकलने वाला वाहित मल, प्रदूषित जल, नगरों एवं ग्रामों के निकट एकत्रित कूड़ा-करकट, खाद, मनुष्य तथा पक्षियों-पशुओं का मल-मूत्र, मृतक शव, औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ इत्यादि आते हैं। प्रत्यक्ष प्रदूषण पर प्रकाश डालते हुए कवि ने लिखा है—

"बिना सोचे मानव प्लास्टिक-रबर जलाए।
क्यों न ऐसे कृत्यों से वह सजा पाए॥
नियंत्रण कहीं न, तो होगा क्या आगे?
धुएं से कल-वाहन प्रदूषण बढ़ रहा है॥
सूर्य का विषाक्त किरण छिज रहा है॥
धड़ल्ले से रासायनिक दवा, खाद डालें।
अवनि में होवें उन्हें कम करने वाले॥
नहीं तो सभी के सभी होंगे रोगी।
पर्यावरण दूषण से नैतिक लड़ रहा है॥
जल-मल अवशिष्ट जलाशय में न डालें।
सही सोच से इसे खाद बना लें॥
कल-वाहन मानव से वायु दूषित न होवे।
फिर देखेंगे सब ठीक चल रहा है।"[12]

वह प्रदूषण जिसका प्रभाव जैव मंडल पर प्रत्यक्ष रूप से न पड़कर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है, उसे अप्रत्यक्ष प्रदूषण कहते हैं। इसके अंतर्गत रेडियोधर्मी पदार्थ, सभी प्रकार के कीटनाशक पदार्थ, खरपतवार नाशक दवा, अन्य प्रकार के विषैले रसायन, ध्वनि-प्रदूषण इत्यादि आते हैं। भ्रष्टाचार तथा अपराध जैसे समाज विरोधी तत्वों को सामाजिक प्रदूषण माना जाता है। इनको भी अप्रत्यक्ष प्रदूषण के अंतर्गत रखा जाता है। ध्वनि-प्रदूषण का उदाहरण प्रस्तुत है—

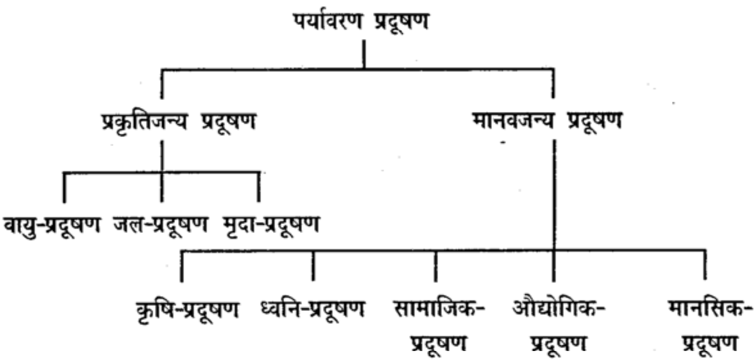
''सीटी मारकर और चिल्लाकर,
अपने जन को हैं बुलाते।
गलियों में सब बच्चे मिल,
खेल रहे, खूब शोर मचाते ॥
गांव-घर में कांव-कांव,
और जन हैं झगड़ा करते।
दंगा-फसाद सभी कर रहे,
आज कोई किसी से न डरते ॥
निकल चलो प्रमुख मार्ग पर,
सुन लो वाहनों की तेज आवाज।
गली-गली और घर-घर में,
जोरों से बजते फिल्मी धुन साज ॥
हर मुंह चाहिए से अधिक,
आवाज में बातें करता है।
ध्वनि-विस्तारक उच्चस्वर में हो,
तभी उसका दिल भरता है ॥
इस तरह ध्वनि दूषित हो रही,
करना होगा इसका हद बंद।
अकारण हर ध्वनि विस्तार पर,
करना ही होगा प्रतिबंध ॥
इसके लिए हर मानव को,
आगे बढ़कर आना होगा।
ध्वनि-प्रदूषण को रोकने,
उचित कदम उठाना होगा ॥
समय रहते ध्यान न दिया,
तो और हो जाएंगे बहरे।
कुछ समय के बाद बहुजन,
सचमुच में होंगे बहरे ॥''[13]

पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण अदूरदर्शिता, भावी दुष्परिणामों के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण कहा जा सकता है, जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या और भी गंभीर हो जाती है—

''प्रदूषण?
प्रदूषण दिनोंदिन बढ़ रहा है
ध्वनि, हवा, पानी, मृदा, अन्न

और बिगड़ रहा मन!
मन के बिगड़ने से विचार
प्रवृत्ति में भी प्रदूषण घोल रहे
किसी को कुछ सूझता नहीं
अनाप-शनाप बोल रहे
और अनैतिक अपनी शक्ति तौल रहे
आज आवश्यकता है
सद्‌चित भूमा मन की
जो आरत सुने जन-जन की
वो लेकर आते अवतार
अनैतिकों पर करते प्रहार
और निर्दयता से करते संहार
उसी दिन अनैतिकों की होगी रात काली
तब होगी हमारी सच्ची दीवाली।'[44]

पर्यावरण प्रदूषण का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—



वैदिक एवं पौराणिक स्वस्त्ययनों में पर्यावरणीय दृष्टि

चारों वेदों के अधिकांश मंत्रों में प्रकृति के साथ साम्यावस्था की बातें बताई गई हैं, साथ-ही-साथ प्रमुख उपनिषदों के स्वस्त्यन में हमें मानव की संपूर्णता-पूर्णता की परिकल्पना के साथ एक संपूर्ण मानव बनाने को उत्प्रेरित करते हैं। यहां कुछ पौराणिक स्वस्त्ययन दिए जा रहे हैं, जो संपूर्ण पर्यावरण ब्रह्म अर्थात् संपूर्ण पर्यावरण की भावना से उत्प्रेरित हैं। इसमें सभी स्थावर-जंगम-प्राणीमात्र तथा अणु-परमाणु में शांति, पुष्टि, तुष्टि के भाव हैं। हमारी प्रकृति के जो श्रेष्ठ तत्व हैं, वे हमें बढ़ावें तथा जो अरिष्टकारक तत्व हैं, वे सब हम प्राणी मात्र से दूर हों, ऐसी भावना की गई है। पंचमहाभूत हमारे लिए शुभकारी हों, समस्त ऋतुएं और समस्त वनस्पतियां हमारे लिए कल्याणकारी हों। दिन-रात रूपी समय-चक्र भी हमारे लिए कल्याणकारी हों। यथा—

"शुभानि वर्द्धंताम्।
शिव आपः संतु।

शिवा ऋतवः संतु।
शिवा ओषधय संतु।
शिव वनस्पतयः संतु।
शिवा अग्नयः संतु।
शिवा आहुतयः संतु।
शिवा वनस्पतयः संतु।
अहोरात्रे शिवे स्याताम्।"

इस प्रकार ये प्रकृति से रागात्मक संबंध बनाने के लिए प्रेरित करते हैं। हमें बताते हैं कि प्रकृति केवल भोग्या नहीं है, अपितु माता के रूप में हर समय हमारे साथ रहती है। इस प्रकार प्रकृति से तादात्म्य और सखाभाव करते हैं। विभिन्न पौराणिक ग्रंथों से यहां कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

1. ऋग्वेद

"शन्नः कनिक्रद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु।
शन्नो द्यावापृथिवी शं प्रजाभ्यः शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।
शतं जीव शरदो वर्द्धमानः शतं हेमंतांच्छतनु वसंतान्।
शमिंद्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः।"

2. यजुर्वेद

"ॐ पुनंतु मां देवजनाः पुनंतु मनसाधियः।
पुनंतु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा।
ॐ द्यौः शांतिरंतरिक्षः शांति
पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांति
वनस्पतयः शांतिर्विश्वे देवाः शांति
ब्रह्म शांतिः, सर्व शांतिः
शांतिरेव शांतिः
सामाशांतिरोधि।"

3. अथर्ववेद

"गणास्त्वोयगायंतु मारुताः पर्जन्योघोषिणः पृथक्।
स्वर्गावर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु।
स्वस्तिमत्र उत्पितत्रिणो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगतः पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगव दृशेम सूर्यम्।"

4. ऐतरेय उपनिषद्

"ॐ वाङ मे मनसि प्रतिष्ठिता।
मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि।
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे माप्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्
संदधाम्यृतं वादिष्यामि।

सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु।
तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।"

5. मुंडकोपनिषद्/ मांडूक्योपनिषद् तथा प्रश्नोपनिषद्

"ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देव भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-र्व्यशेम हि देवहितं यदायुः॥
स्वति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥"

6. ईशावास्य उपनिषद्

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥"

7. केन उपनिषद्

"आप्यायंतु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बल मिंद्रियाणि च सर्वाणि।
सर्व ब्रह्मोपनिषदं माऽहं ब्रह्मं निराकुर्या
मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणंमेऽस्तु॥
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु।
ते मयि संतु।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥"

8. कठोपनिषद्

"ॐ सह नाववतु।
सह नौ भुनक्तु॥
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विना वधीतमस्तु॥
मा विद्विषावहै।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥"

9. तैतित्तरीय उपनिषद्

"ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः।
शं नो भवत्वर्यमा॥
शं न इंद्रो बृहस्पतिः।
शं नो विष्णुरुरुक्रमः॥
नमो ब्रह्मणे।

नमस्ते वायो ॥
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥
ऋतमवादिष्यामि ।
सत्यमवादिष्यामि ॥
तन्मामवतु ।
तद्वक्तारमवतु ॥
अवतु माम् ।
अवतु वक्तारम् ॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥"

10. शिव संकल्पसूक्तम्

"ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवंत दुसुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङमंज्योतिषांज्योतिरेकंतन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणी यज्ञे कृण्वंति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वयक्षमंतः प्रजानांतन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यत्प्रज्ञानमुतचेतोधृतिश्चयज्ज्योतिरंतरमृतंप्रजासु ।
यस्यान्नऽऋतेकिंचनकर्मक्रियतेतन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
येनदंभूतंभुवनम्भविष्यत्परिग्रहीतममृतेनसर्वम् ।
येनयज्ञास्तायतेसप्तहोतातन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यस्मिन्नृचः सामयजूंषियास्मिन्प्रतिष्ठितारधनाभाविवारा ।
यस्मिश्चितसर्वमोम्प्रजानांतन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
सुषारथिरश्वानिवयन्मनुष्यान्नेनीयतेयीशुमिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठयदाजिरंजविष्ठंतन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥"

11. पौराणिक स्वस्त्ययन

"ॐ शांतिरस्तु । पुष्टिरस्तु । तुष्टिरस्तु ।
वृदिरस्तु । अविघ्नमस्तु । आयुष्यमस्तु ॥
आरोग्यमस्तु । शिवमस्तु । शिवं कर्मास्तु ।
कर्मसमृद्धिरस्तु । धर्मसंपदस्तु । वेदसंपदस्तु ॥
शास्त्रसंपदस्तु । धनधान्यसंपदस्तु ।
पुत्रपौत्रसंपदस्तु । इष्टसंपदस्तु ॥
अनिष्टनिरसनमस्तु यत्पापंरो गोऽशुभकल्याणं
तद् दूरे प्रतिहतमस्तु ।
यच्छ्रेयस्तदस्तु । उत्तरे कर्मण्यविघ्नमस्तु ॥
उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु । उत्तरोत्तराः क्रियाः ।
शुभाः शोभनाः संपद्यंताम् ॥"

12. तिथिकरण मुहूर्त

"नक्षत्रग्रहलग्नसंपदस्तु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रग्रहलग्ना-
धिदेवताः प्रीयंताम् ।

तिथिकरणे समुहर्ते सनक्षत्रे सग्रहे सलग्ने
साधिदैवते प्रीयेताम् ॥
दुर्गामांचाल्यौ प्रीयूताम् ।
अग्निपुरोगाविश्वेदेवाः प्रीयंताम् ॥
इंद्रपुरोगा मरुद्गणाः प्रीयंताम् ।
वशिष्ठपुरोगा ऋषिगणाः प्रीयंताम् ॥
माहेश्वरीपुरोगा उमामातरः प्रीयंताम् ।
अरुंधतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयेताम् ॥
ब्रह्मपुरोगाः सर्ववेदाः प्रीयंताम् ।
विष्णुपुरोगाः सर्वेदेवाः प्रीयंताम् ॥
ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयंताम् ।
श्रीसरस्वत्यौ प्रीयेताम् ॥
श्रद्धामेधे प्रीयेताम् ।
भगवती कात्यायनी प्रीयताम् ॥
भगवती माहेश्वरी प्रीयताम् ।
भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम् ॥
भगवती पुष्टिकरी प्रीयताम् ।
भगवती तृष्टिकरी प्रीयताम् ॥
भगवंतौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम् ।
सर्वाः कुलदेवताः प्रीयंताम् ।
सर्वाः ग्रामदेवताः प्रीयंताम् ॥
हताश्च ब्रह्मद्विषः ।
हताश्च परिपंथिनः ॥
हता अस्य कर्मणो विघ्नकर्त्तारः ।
शत्रवः पराभव यांतु ॥
शाम्यंतु घोराणि ।
शाम्यंतु पापानि ॥
शाम्यंत्वीतयः ।
शुभानि वर्द्धन्ताम् ॥
शिवा आपः संतु ।
शिवा ऋतवः संतु ॥
शिवा ओषधयः संतु ।
शिवा वनस्पतयः संतु ॥
शिवा अग्नयः संतु ।
शिवा आहुतयः संतु ॥
शिवा अतिथयः संतु ।
अहोरात्रे शिवे स्याताम् ॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।"

प्रकृति एवं पर्यावरण का आधाराधेय रूप

वी.एस. आप्टे ने प्राचीन साहित्य के प्रयोगों की दृष्टि से प्रकृति का अर्थ, ''मूल तत्व अर्थात् दृश्य जगत् का वह स्वरूप, जिस पर मानव कृतित्व का प्रभाव प्रायः नगण्य-सा है। इसी अर्थ में पांच तत्वों को प्रकृति कहा गया है। यथा—पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु।'' लगाया है।[15]

प्रकृति की व्यापक परिभाषा करते हुए डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने लिखा है, ''वह संपूर्ण विश्व की सर्जनात्मक प्रतिकृति है।''

इसी प्रकृति रूपी परमात्मस्वरूप तत्वों का कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' के मंगलाचरण में वर्णन करते हुए कहा है, ''विधाता की प्रथम सृष्टि जल, हवन की गई हवि को देवताओं तक ले जानी वाली शक्ति अग्नि, यजमानरूपी होता शक्ति, दिन-रात के समय-चक्र को निर्मित करने वाली सूर्य-चंद्र रूपी शक्ति, आकाश रूपी मूर्ति, समस्त बीजों का कारण रूपी पृथ्वी, शक्ति और प्राण वायु रूप शिव तत्व आप सबकी रक्षा करें—

''या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं-
या हविर्या च होत्री।
ये द्वे कालं विधतः श्रुति विषय गुणा या
स्थिता व्याप्य विश्वम् ॥
यामाहुः सर्व बीजप्रकृतिरिति मया
प्राणिनः प्राणवंतः।
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु
वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥''[16]

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष से समस्त ब्रह्मांड का आविर्भाव हुआ है तथा प्रकृति को वे दृश्य जगत् के लिए तथा किसी अन्य सत्य के लिए भी अनिवार्य मानते हैं। इसी संदर्भ में गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ऐसे आठ प्रकार से विभक्त मेरी प्रकृति है, जो अपरा प्रकृति है, इसे चेतन प्रकृति जानो, जिससे यह संपूर्ण जगत् धारण किया जाता है। इस आधार पर प्रकृति को क्षेत्र तथा पुरुष को क्षेत्रज्ञ कहते हैं—

''भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
अपरेय मितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥''[17]

मुंडक उपनिषद् में प्रकृति के संदर्भ में कहा गया है—

''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च खं
वायुर्ज्योतिराप पृथिवी विश्वस्य धारिणी।''[18]

इसी प्रकृति रूपी परमेश्वर से मन, इंद्रियां, आकाश, वायु, जल, ज्योति और सब जीवों को आश्रय देने वाली पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि समग्र जड़-चेतन प्रकृति द्वारा आविर्भूत है। प्रकृति से ही जीव-जंतु, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, लता-गुल्म, वृक्ष, पर्वत, नदी आदि की उत्पत्ति हुई है।

परंपराओं व सांस्कृतिक प्रथाओं द्वारा प्रकृति-पर्यावरण संरक्षण

प्रत्येक सनातनधर्मी को कुछ आचार-विचार अथवा पूजन-कर्म प्रतिदिन करना पड़ता है। इनमें कई तरह की साधनाएं सम्मिलित हैं। यह प्रक्रिया हमें याद दिलाती है कि प्रकृति हर रूप में पूजनीय है। इसका शोषण वर्जित है। इससे प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। इस तरह गाय, बैल, हाथी, धोड़ा, सर्प की भी पूजा की जाती है। पक्षी, सोन चिड़िया, कोयल, हारिल, पेड़-पौधे, केला, पीपल, तुलसी, नीम जैसी वनस्पतियों आदि की पूजा की परंपरा है। हमारी यह श्रद्धा प्राणी मात्र तक ही सीमित नहीं है, अन्य स्वरूप में जल, पृथ्वी, पहाड़, नदी, औजार, हल-हेंगा, उपकरण, वाहन, अस्त्र-शस्त्र, पुस्तक, स्लेट-पट्टी, स्याही, चूल्हा, दीपक, बर्तन आदि की भी पूजा की परंपरा है। जीवन-व्यवहार में संपर्क में आने वाली वस्तुएं भी हमारे नित्य अथवा कभी-कभार पूजन की परिधि में आ गई हैं। जब हम इन वस्तुओं को पूज्य मानते हैं तो नैतिक दृष्टि से यह संभव नहीं रहता कि उन्हें क्षति पहुंचाएं अथवा उनका दुरुपयोग करें। यह धारणा प्रकृति व पर्यावरण के संवर्धन की प्रेरणा है।

कृत्य रूप धर्म, जो लंबे समय से चला आ रहा है इसने आस्था और विश्वास का विकास किया है। पर्यावरण को ठीक-ठाक बनाए रखने में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस तरह की परंपराएं कृषि, बागवानी, निर्माण, औषधि जैसे जीवन के हर क्षेत्र में विकसित हुई हैं।

जन्मजात परंपराओं की तरह पुराने विश्वासों ने भी पर्यावरण-संतुलन और जैव-विविधता को कायम रखने में योगदान किया है। इनमें से कुछ का भले ही तार्किक आधार न हो, परंतु लोग उनका अनुसरण करें यह वांछित ही है, क्योंकि यह संवर्धन में सहयोगी है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में पहाड़ियों पर बने मंदिरों के इर्द-गिर्द आरक्षित वन हैं। इन्हें 'देवराई' कहा जाता है। अब ये प्राचीन अभयारण्य बन चुके हैं। इनमें से किसी को पेड़ की टहनी तक काटने की अनुमति नहीं है और नहीं यहां पक्षी या पशु प्राणी का शिकार किया जा सकता है। यहां किसी तरह के हस्तक्षेप के बिना, प्रतिबंध की नीति का कड़ाई से पालन किया जाता है। इससे वनस्पति के विकास में सहायता मिली है। जब पहाड़ी के ढलान पर से वृक्ष नहीं काटे जा सकते, तब भू-क्षरण और भूस्खलन रोकना आसान हो जाता है। हवा शुद्ध और ठंडी रहती है। सामान्य तौर पर इस क्षेत्र में जल का स्रोत है। यह बारहों मास प्रवाहित होता है। सघन वन पक्षियों, पशुओं को बसेरा देते हैं। इस तरह वहां प्रत्येक देवराई वनस्पति का भंडार है। जनविश्वास है कि यदि इस वन-परंपरा से छेड़छाड़ की जाती है तो देवता दंड देंगे। यह आस्था है। भले ही यह अंधानुकरण हो, लेकिन इससे संवर्धन में मदद मिलती है।

आध्यात्मिकता एवं पर्यावरण

इसी तरह कर्म का विधि-विधान है अथवा पाप की अवधारणा है। यदि कोई जीवित वृक्ष काटता है अथवा अकारण प्राणी को मारता है तो पाप का भागी है। वास्तविक रूप से कोई पाप करता और कर्म के माध्यम से नरक में भोग भोगता है। यह औचित्य का प्रश्न है। औचित्य का प्रश्न हमेशा प्रभावकारक नहीं होता, परंतु आस्था कारगर होती है। कई वस्तुओं को मां अथवा ईश्वर का दर्जा देना ऐसा ही एक विश्वास है। पृथ्वी या नदी जड़ हैं। इस विश्वास के अनुसार वह मां कैसे? परंतु सनातन दर्शन ने उन्हें मातृत्व की

श्रद्धा से महिमा-मंडित किया है। ऐसा होते ही उनके प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आना स्वाभाविक है।

इनका नारीत्व आधिपत्य जमाने के लिए न होकर उसे दैविक सम्मान और महिमा प्रदान की जाती है। जिन पेड़-पौधों को ईश्वर-तुल्य माना गया है, औषधि का स्रोत हैं। उन्हें देवताओं की नित्य पूजा हेतु घरों के अगल-बगल में जानबूझकर लगाया जाता है। यह भले ही देखने में सामान्य कार्य लगता हो, परंतु सनातन विश्वास के अंतर्गत इनका आध्यात्मिक धार्मिक मूल्य है। तार्किकों को भले ही अटपटा लगे, परंतु उन्हें इस बात पर सहमत होना पड़ेगा कि सिर्फ बौद्धिक होकर अथवा तर्क का सहारा लेकर पर्यावरण संकट का समाधान नहीं हो सकता। कदाचित्, प्राचीन ऋषियों में मानव-मनोविज्ञान की अच्छी दक्षता थी। इसलिए उन्हें जो बौद्धिक रूप से सही लगा, वह उन्होंने जनता के सामने प्रस्तुत किया।

वैदिक सभ्यता आध्यात्मिकता और सौंदर्य का आस्वादन साथ-साथ करती है। आम धारणा के विपरीत वैदिक सौंदर्य प्रशंसनीय है। कुछ आध्यात्मिक मान्यताओं को छोड़कर शेष उसकी पक्षधर हैं। उनका मानना है कि सौंदर्य मनुष्य को मोह-पाश में बांधता है, आध्यात्मिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है। परंतु वैदिक दर्शन ने अपूर्व दृष्टिकोण सामने रखा, मौलिक पक्ष लिया है। उसने सौंदर्य की उपासना की है। वास्तव में यह एक विशिष्टतापूर्ण वैदिक दृष्टिकोण है। इसी का विकास एवं पल्लवन आगे चलकर हुआ।

सौंदर्य और पूर्णता पर्यायवाची हैं। जिस तरह पूर्णता दिव्य स्वरूप है, जो भी सुंदर है, उसके लिए दिव्यता ईश्वरीय है, उसी तरह वैदिक प्रकृति में सौंदर्य को ईश्वर की कृति का सौंदर्य मानते हैं। उन्होंने सूर्योदय, सूर्यास्त की सुषमा, पहाड़, वृक्ष-फूल, जल-प्रपात, मेघ, बिजली, औषधियों आदि के सौंदर्य को निरखा-परखा है। उन्होंने फूलों की सुरभि को सराहा, स्फटिक, धवल, शुद्ध जलधारा में स्नान किया। फलों की मिठास का आस्वादन किया। वनस्पतियों के गुण-धर्म को परखा। पक्षियों के कलरव में गीत का आनंद लिया। मेघ के गर्जन, बहते जल की दहाड़, समुद्र का गर्जन, बिजली की कौंध एवं वज्रापात आदि को देखा-सुना और उससे आनंद की अनुभूति प्राप्त की। यह सब उनके लिए ब्रह्म के नाना रूपों की परम् दिव्य अभिव्यक्ति थी। सौंदर्य की दृष्टि यहां भोग नहीं, पूजा थी। अतः सभी सौंदर्य पक्ष पूजा के पात्र बने।

व्यावहारिकता के आधार पर जन-सामान्य की इच्छाओं के प्रति सदाशय होकर धर्म ने सुंदर वस्तुओं के उपभोग की अनुमति दी है। इस तरह व्यक्ति का सौंदर्य निखारना आम आचार बन गया। लोगों ने सुगंधित तेल का उपयोग किया। फूलों की सजावट और गहनों का प्रचलन हुआ। सौंदर्य-प्रसाधनों की भारत में समृद्ध परंपरा रही है। गहने, वस्त्र, केश-विन्यास आदि इसी का अंग हैं। शरीर की तरह गृह की सुंदरता के लिए सजावट का विकास हुआ। जब पूजा होती है, तब अपने बैलों या वाहनों का शृंगार किया जाता है। यह सब आनंद के लिए ही एक सीमा तक है, लेकिन इसका एकदम बहिष्कार नहीं किया गया। यह मनोविज्ञान के आधार पर अनुभूत बात है कि किसी को अध्यात्मवादी बनने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। इसलिए उसे एक सीमा तक ऐंद्रिक आनंद उठाने की अनुमति है। इच्छाओं का दमन हानिकारक है। इसलिए जहां दमन संभव नहीं, वहां तक उसे आनंद की दिशा देना ही उत्कृट आचार-विचार है।

सभी प्राचीन सभ्यताएं समय के अंतराल में आरोह-अवरोह में से होकर गई हैं। वैदिक सभ्यता एवं सनातन धर्म भी इसका अपवाद नहीं हैं। इसी तरह समय की दौड़ में

कुछ उदासीनता छाई, कुंठा जगी, इस वास्तविकता को सहज रूप से स्वीकार करना चाहिए। कोई भी सांस्कृतिक-सामाजिक परंपरा पूर्ण नहीं है। कितनी भी कठोर हो, त्रुटि होना नियति है। अतः कभी-कभी भोग का अतिरेक हुआ। कभी बाह्य सांस्कृतिक आक्रमण हुआ। इससे अच्छे विचार पिछड़ गए।

इस प्रकार हम धीरे-धीरे सांस्कृतिक पतन की ओर अग्रसर हैं। लगता है हम आध्यात्मिक मूल से अलग हो रहे हैं। हम भौतिकवाद के प्रवाह में बह रहे हैं। दुर्भाग्य से पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से हम बुद्धि-भ्रमित हो रहे हैं और समझने लगे हैं कि हमारे यहां सही व प्रगतिशील कुछ नहीं है। हमें पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करना चाहिए। यही सभ्य होने का तरीका है। भौतिकवाद के शिकार ये लोग उनकी संस्कृति का अंधानुकरण कर रहे हैं। जिस तरह की समस्याओं से वे लोग ग्रसित हैं, हम भी उनसे पीड़ित हो रहे हैं। व्यक्तिगत स्तर पर, सामाजिक और पर्यावरण के स्तर पर, सभी ओर यही परेशानी भुगत रहे हैं। हम भूल गए हैं कि हमारा दर्शन अलग है, हमारा चिंतन अलग है, हमारे आचार-विचार भी भिन्न हैं।

हमें अपने साहित्य, दर्शन एवं संस्कृति से सीख लेनी चाहिए। हितोपदेश में मूषिक बड़ी तत्परता से कहता है कि हम क्या हैं? कौन हैं? इसका बराबर चिंतन-ध्यान करना चाहिए—

"कोहं काच में शक्तिः
इति चिन्त्यं मुहुर्मुहः।"

यह एक विडंबना है कि जो देश भौतिक दृष्टिकोण के लिए विख्यात हैं, वे आज अपनी अंगुलियां जला चुके हैं। उनका अपनी तथाकथित तरक्की से भ्रम टूट गया है। वे अब अपने विपुलता जनित दुःखों से मुक्ति पाने के लिए तड़प रहे हैं। उन्हें स्थायी विकास के मॉडल की तलाश है। हम भारतीयों के वह प्रांजल आदर्श हैं, परंतु हमने उसे रूढ़िवादी, कालातीत बताकर खारिज कर दिया है। आज पाश्चात्य लोग अपने भौतिकवाद से ऊब चुके हैं, वे पथ-प्रदर्शन के लिए पूर्व की ओर देख रहे हैं। उनकी सोच है कि केवल अध्यात्मवाद ही मानव-मात्र की समस्याओं का समाधान कर सकता है और यहां हम भी उससे अलग हो रहे हैं।

यह दृष्टिकोण सही नहीं है। हमारे पास पारस है। हमें उसे पत्थर समझकर फेंक नहीं देना चाहिए। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने सनातन दर्शन व दिव्य ज्ञान को समझें, अपनी विरासत को परखें, उसे संजोकर रखें। हमें अपनी जीवन-शैली पर गर्व करना चाहिए। यह प्रकृति के अनुरूप है। यह समय की कसौटी पर खरी उतरी है। हमें भौतिकवाद की चकाचौंध एवं झंझावात में बह नहीं जाना चाहिए। हमें प्रकृति एवं पर्यावरण की मर्यादाओं में संतोष भाव से जीना चाहिए। गंगा की पवित्रता, उसकी धार्मिकता एवं सामाजिक समरसता पर प्रकाश डालता हुआ एक सनातनधर्मी कवि कहता है—

"इस मुल्क की अजमत की निगहबान है गंगा।
हिंदोस्तां की शान-ओ-पहचान है गंगा॥
गंगा की वजाहत की अमानत है जिंदगी।
आबोहवा से इसके सलामत है जिंदगी॥
मिल-जुल के सदा रहने की तहजीब रवां है।
गंगा की रवानी ये तो कुरबान हवा है॥
शादाब-ए-सहने चमन की जान है गंगा।
हिंदोस्तां की शान-ओ-पहचान है गंगा॥

है इश्क फरिश्तों की बुलंदी का नशानी।
गंगा तो सभी दीनोधरम की है दीवानी ॥
गंगा की नजाकत की शहादत है जिंदगी।
सदियों की रवायत में है गंगा की बदंगी ॥
काशी की अकीदत पे मेहरबान है गंगा।
हिंदोस्तां की शान-ओ-पहचान है गंगा ॥
अपना धरम है गंगा की पाकीजगी रहे।
हर कौम व मजहब में न नाराजगी रहे ॥
गंगोजमन की रस्म जमाने की दवा है।
हिंदू या मुसलमां हो ए हर शै की शफा है ॥
नफरत की सियासत से परेशान है गंगा।
हिंदोस्तां की शान-ओ-पहचान है गंगा ॥
गंगा का नूर हरसू जमाने में बयां है।
हर मंदिरों-मस्जिद की इबादत में निहां है ॥
मधुकर-ए-बेनजीर इबारत है खुदा की।
गंगा जुदा हुई तो, सलामत न जिंदगी ॥
अहले वतन की जान व ईमान है गंगा।
हिंदोस्तां की शान-ओ-पहचान है गंगा ॥''

अथर्ववेद में वर्णित पर्यावरण-तत्व

भारत के सभी प्राचीन ग्रंथों में पर्यावरण के तत्व पाए जाते हैं। विषय-विस्तार के भय से यहां मात्र अथर्ववेद में वर्णित पर्यावरण-तत्व पर प्रकाश डाला गया है—

अथर्ववेद में सूर्य श्रेष्ठ देवता है। वह सबको चलाने वाला है। वह परमेश्वर है। वह प्रकाशमान सूर्य, जो सर्वप्रेरक है, सर्वनियामक है, सारी पृथ्वी को, सारे कार्यों को सदैव देखता रहता है। वह सर्वनियंता, समस्त संसार का स्रष्टा, एक नेत्र स्वरूप ईश्वर आकाश और धरती पर सबसे ऊंचा है, श्रेष्ठ है। वह पुरुषोत्तम है—

''सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम ॥''[19]

मानव-जीवन 'कर्मयोनि' और 'भोगयोनि' दोनों का समन्वित रूप है। यह मानव-शरीर हमें इसलिए मिला है कि हम अपने कर्मों के भोग को भोगें और नवीन कर्म करने के लिए प्रयासरत् हों। जो आत्मज्ञानी मृत्यु के भय से मुक्त कराए, उसी के साथ अथवा उसके बताए मार्ग के अनुसार चलकर हम जीवन को सुखी बनाएं। वैदिक ऋषि कहता है—जीवन देने वाले के जीवन के साथ तू जीवित रह, उत्तम जीवन वाला होकर तू जीवित रह। तू मुत्यु को प्राप्त न हो, आत्मसाक्षात्कार करने वाले ज्ञानियों के जीवन-सामर्थ्य से तू जीवित रह, मृत्यु के वशीभूत मत हो—

''आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥''[20]

दिव्य गुणों से युक्त अग्नि देवताओं को समीप लाने वाली है। शत्रु का विनाश करने वाली है। वैदिक ऋषि अपने दुश्मन, जो सर्वत्र विचरण करने वाले, दूसरों को दुःखी करने वाले, समाज के दुश्मन हैं, उनका विनाश करने के लिए कहता है। हे अग्नि! तू ज्ञान का

भंडार है। तेरा पराक्रमी प्रकाश हम देखें। अतींद्रिय ज्ञान वाले, उपासनाओं आदि से साक्षात् होने वाले हे अग्ने! तू अपने प्रभाव से राक्षसों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित कर। तेरी आज्ञा से राक्षस अपना-अपना परिचय देते हुए आगमन करें—

1. *"पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्रणो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः।*
   त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आयंतु प्रब्रुवाणा उपेदम ॥"[21]
2. *"त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धां इहा वह।*
   अथैषामिंद्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥"[22]
3. *"आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थय जज्ञिषे।*
   इतो नो अग्ने भूत्वा यातधानान् वि लापय ॥"[23]

सूर्य के सान्निध्य में रहने वाला वाष्पीकृत जल, समुद्र का पान करके, वृष्टि कर हवि प्रदान करता है। वही जल नदियों-जलाशयों में रहता है। इस स्वच्छ जल का सेवन कर हमारी गौएं तृप्त होती हैं। रोग निवारक और पुष्टिवर्धक पदार्थों के दिव्य गुणों से गौएं और अश्व बलवान् होकर उपकारी होते हैं। वैदिक ऋषि इसी जल की प्रार्थना करता हुआ कहता है—

1. *"आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।*
   महेरणाय चक्षसे ॥"[24]
2. *"यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।*
   उशतीरिव मातरः ॥"[25]
3. *"तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।*
   आपो जनयथा च नः ॥"[26]

हम सभी जानते हैं कि बादल से वर्षा होती है और उसी से जल मिलता है। वैदिक ऋषि बादल की प्रार्थना करता हुआ कहता है कि अपने में जल को धारण करने और अकाल में नीचे न गिरने देने वाले हे पर्जन्य! सत्पुरुषों की रक्षा करने वाले हम तुझे नमन करते हैं। तू हमारे भीतर तप को एकत्रित करने वाला तथा पातकों पर वज्र से प्रहार करने वाला है। तू हमारे पुत्र-पौत्रादि को सुखी करता हुआ हमें भी सुख प्रदान करे—

1. *"नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि।*
   मृऽया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥"[27]
2. *"प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये वपुषे च कृण्मः।*
   विद्म ते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अंतर्निहितासि नाभिः ॥"[28]
3. *"समुत्पतंतु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यंतु।*
   महऋषमभ्य नदतो न भस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयंतु ॥"[29]

बिजली की प्रार्थना करता हुआ ऋषि कहता है कि विद्यतु (देवी) को, गड़गड़ाहट रूपी ध्वनि और अशनि को, गरजने वाले मेघों को हमारा नमन है। हे विद्युत देवी! तू दुःखी करने वाले दुर्जनों आदि को अपने वज्र के घातक प्रहार से दूर कर—

1. *"नमस्ते अस्तु विद्यते नमस्ते स्तनयित्नवे।*
   नमस्ते अस्त्वश्मने येन दूडाशे अस्यसि ॥"[30]
2. *"यां त्वा देवा असृजंत विश्व इषुं कृण्वानाअसनाय धृष्णुम्।*
   सा नो मृद विदथे गृणाना तस्मै ते नमो अस्तु देवी ॥"[31]

वैदिक ऋषि नदी के प्रदेय का वर्णन करता हुआ कहता है, नदियों आदि के जो अक्षय स्रोत ग्रीष्म आदि में भी कभी क्षीण न होकर संयुक्त हुए प्रवाहित होते हैं, उन सबसे हम पशु आदि धन को प्राप्त करते हैं—

1. ''ये नदीनां संस्त्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः।
तेभिर्मे सर्वैः संस्त्रावैर्धनं संस्त्रवयामसि ॥''[82]

2. ''ये सर्पिषः संस्त्रवंति क्षीरस्य चोदकस्य च।
तेभिर्भे सर्वैः संस्त्रावैर्धनं संस्त्रावचामसि ॥''[83]

अथर्ववेद में नाना प्रकार के रोगों के नाना प्रकार की औषधियों का वर्णन मिलता है। कुष्ठ रोग के औषधियों में राम भंडरा, इंद्र वारुणि, नील आदि का वर्णन करता हुआ ऋषि कहता है, श्वेत कुष्ठ के रोगी के श्वेत दागों को दूर कर अपना वर्ण प्रदान करने वाली हे औषधियो! तुम कष्ट, श्वेत कुष्ठ और दाग-धब्बों आदि को नष्ट करो, जिससे इस रोगग्रस्त व्यक्ति की देह में पहले जैसी लालिमा आ जाए—

1. ''किलासं च पलितं च निरितो नाशया वृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥''[84]

2. ''असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।
असिकन्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत ॥''[85]

वायु की प्रार्थना करता हुआ ऋषि कहता है, ''अंतरिक्ष में विचरणशील हे वायु! तेरे अंदर जो शक्ति विद्यमान है, उसके द्वारा तू उन शत्रुओं को शांत कर जो हमसे द्वेष करते हैं तथा जिनसे हम द्वेष करते हैं। हे हरणशक्ति के दाता वायु! जो हमसे बैर करता है या जिसे हम अपना बैरी जानते हैं, तू उसकी शक्ति का हरण कर—

1. ''वायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योस्मान्।
द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥''[86]

2. ''बायो यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥''[87]

3. ''वायो यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥''[88]

4. ''वायो यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति।
शोचयोस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥''[89]

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में ऋषि कहता है, एक बालक का अपनी माता के साथ जैसा संबंध होता है, वैसा ही हमारा संबंध क्षमाशील जननी पृथ्वी के साथ है। पृथ्वी माता का हृदय अमृत से भरा है। यह अमृत रस उस परमपिता परमात्मा का दिया हुआ है, जो समस्त ब्रह्मांड में छाया हुआ है।

हमारे सम्मुख पृथ्वी माता का केवल स्थूल रूप ही है, जिस पर अनेक विशाल समुद्र, पर्वत, नदियां, वन, रेगिस्तान, वनस्पति, हिमशिखर आदि स्थित हैं। ये सभी मानव-जीवन के लिए कल्याण की वृष्टि करने वाले हैं। प्रकृति का यह असीम सौंदर्य मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए उपयोगी है।

पृथ्वी पर फैले विशाल चारागाह, कृषि-संपन्न भूमि, उमड़ते-घुमड़ते बादल, विविध ऋतुएं—ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर और वसंत आदि सर्वत्र मनोहरी छटा बिखेरती रहती हैं। पृथ्वी के गर्भ से निकलने वाले अन्न के दाने, खनिज पदार्थ, नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न, सोना, चांदी, हीरे-जवाहरात, हमारी श्रीवृद्धि करते हैं। अनेक दुधारू पशु, रंग-बिरंगे पक्षी, जलचर, कीट-पतंग सभी तो इस धरती पर आश्रय लेते हैं। पृथ्वी माता का रम्य भौतिक स्वरूप सभी के लिए प्रत्यक्ष है। भौतिक समृद्धि का जो भी स्वरूप है, वह इस पृथ्वी पर ही प्राप्त होता है। पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं, ''माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''

पृथ्वी पर निवास करने वाले अनेक जीव अनेक समूहों और वर्गों में विभाजित हैं। फिर भी वे सभी एक सूत्र में बंधे हैं। मनुष्य मनुष्य हैं, पशु पशु हैं, पक्षी पक्षी हैं, जलचर जलचर हैं। 'अनेकता में भी एकता' का संगीत समस्त पृथ्वी पर फैला है। यही सब प्राणियों को इस पृथ्वी से बांधे हुए है—

1. *"द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने।*
   यथा जीवा आदिरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥"[40]
2. *"इंद्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्‌भिरुग्रः प्रहितो न आगन्।*
   एष वां द्यावा पृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥"[41]
3. *"ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम्।*
   ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वेदेवा मरुत ऊर्जमापः ॥"[42]

अथर्ववेद में पलाश को पर्ण मणे कहा गया है। ऋषि इसकी प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे पर्ण (पलाश) मणे! धीवर, रथकार, लोहार आदि का कार्य करने वाले तथा बुद्धिजीवी विद्वानों को हमारे अधीन कर—

1. *"ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिठाः।*
   उपस्तीन् वर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥"[43]
2. *"पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया।*
   संवत्सदस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ॥"[44]

खैर-वृक्ष व पीपल का वर्णन भी अथर्ववेद में मिलता है—बलशाली से बलवान् की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार खैर-वृक्ष के अंदर पीपल (या विश्ववृक्ष) उत्पन्न हुआ है। उसे धारण करने पर वह हमारे शत्रुओं (विकारों) को नष्ट करे—

1. *"पुंमानुपुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि।*
   स हंतु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥"[45]
2. *"यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः।*
   तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषी महि ॥"[46]

बांस का वर्णन करता हुआ ऋषि कहता है—शाला के मध्य स्तंभ रूप में स्थिर हे बांस! तू उग्र बनकर प्रकाशित होता हुआ शत्रुओं को दूर करे। हे शाले! तेरे भीतर निवास करने वाले कभी हिंसित न हों तथा इच्छित संतानों से संपन्न होकर दीर्घायु प्राप्त करें—

"ऋतेन स्थूणामधि शेह वंशोग्रो
विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून्।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां
शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥"[47]

आकाश का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—अभीष्ट की पूर्ति करने के कारण अंतरिक्ष गौ के समान है। वायुरूपी अपने बछड़े से वह हमें अन्न, बल, आयु, पुत्र-पौत्रादि, धन-संपदा प्रदान करे और हमारे हव्य को स्वीकार करने वाला हो—

1. *"अंतरिक्ष धेनुस्तस्यां वायुर्वत्सः।*
   सा में वायुना वत्सेनेषमूर्ख कामं दुहाम् ॥
   आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥"[48]
2. *"द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः।*
   सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ॥
   आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥"[49]

ऋषि, चंद्रमा का वर्णन करता हुआ कहता है—पूर्व आदि दिशाओं में स्थित चंद्रमा के सामने सभी प्राणी नत-मस्तक होते हैं और उनके द्वारा चंद्रमा भी वृद्धिकारक होता है। उसी की भांति हमारे सामने भी सभी नत-मस्तक होकर हमें प्रसन्नता प्रदान करें—

1. *"दिशो धेनवस्तासां चंद्रो वत्सः।*
   ता में चंद्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्॥
   आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा॥"[50]
2. *"दिक्षु चंद्राय समनमंत्स आर्ध्नोत्।*
   यथा दिक्षु चंद्राय समनमन्नेवा
   मह्यं सं नमः सं नमंतु॥"[51]

कुश का उपयोग आज भी होता है। वैदिक काल में भी कुश का उपयोग होता था। वैदिक ऋषि कहता है—वेदी रूप भूमि को आच्छादित करने वाली ये कुशाएं बहुत उत्तम हैं। ये देवताओं और अदिति के सुख से बैठने योग्य हैं। इस कुशा को यज्ञवेदी को ढांपने के निमित्त फैलाया गया है—

"प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या
वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अहवाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो
आदितये स्योनम्॥"[52]

कुश के ही समान मूंज का भी वर्णन मिलता है। ऋषि कहता है—मूंज नामक घास वाला स्थान इस ज्वर का निवास है तथा इसका गृह महावृष्टि वाला है। हे ज्वर! जब से तू उत्पन्न हुआ है, तब से बाल्हीकों में दिखाई पड़ता है—

1. *"ओको अस्य मूजवंत ओको अस्य महावृषाः।*
   यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः॥"[53]
2. *"तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।*
   शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि॥"[54]

ऋषि दूर्वा के विषय में कहता है—ब्राह्मणों के शाप को समाप्त करने वाली, देवताओं द्वारा उत्पन्न होने वाली तथा पिशाचों द्वारा किए गए पापों का शमन करने वाली जड़ 'वीरुध' (दूर्वा) हमारे शापों की निवृत्ति उसी प्रकार कर डालती है, जैसे जल शरीर के समस्त मल को दूर कर देता है—

1. *"अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी।*
   आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान्मच्छपथां अधि॥"[55]
2. *"दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्।*
   तेन सहस्रकांडेन परिणः पाहि विश्वतः॥"[56]

अथर्ववेद का ऋषि कहता है कि सूर्य हमारे नेत्र, वायु प्राण, अंतरिक्ष, आत्मा तथा पृथ्वी देह है। अमर नाम वाले हम पृथ्वी और आकाश द्वारा संरक्षित होने के लिए उनका आश्रय लेते हैं। ऋषि प्रार्थना करता हुआ कहता है—हे पृथ्वी और आकाश! तुम हमारी आयु, बल, कार्य, कृत्या, बुद्धि तथा इंद्रिय को उत्कृष्ट बनाओ। दीर्घायु प्रदान करने तथा आयु की रक्षा करने वाले स्वधावान पृथ्वी और आकाश हमारे संरक्षक हैं। वे हमारी रक्षा करते हुए हमें कभी नष्ट न होने दें—

"सूर्यो में चक्षुर्वातः
प्राणोंतरिक्षमात्मा

पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स
आत्मानं नि दधे
द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥[57]
उदायुरुद बलमुत् कृतमुत्
कृत्यामुन्मनीषामुदिंद्रियम्।
आयुष्कृदायुत्पत्नी स्वधावंतौ
गोपा में स्तं गोपायतं मा।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥'[58]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक ऋषियों का जीवन पर्यावरणमय था। उनके द्वारा वर्णित पंचभूत, औषधियों, वनस्पतियों का मूल्य आज भी बरकरार है। आज पर्यावरण में विकृतियां बढ़ रही हैं, जो हमें विनाश की ओर ले जा रही हैं।

डॉ. बृजेश सिंह की ग़ज़लों में पर्यावरण

डॉ. बृजेश सिंह जाने-माने पर्यावरणविद् हैं। उन्होंने पर्यावरण व प्रदूषण समाधान पर 300 से अधिक ग़ज़लें लिखी हैं, जिनमें पर्यावरण संबंधित प्रायः सभी पक्षों को समाहित किया गया है।

ग्लोबल वार्मिंग और प्रदूषण पश्चिमी जगत् के अंधाधुंध प्रकृति-दोहन से पैदा हुई समस्याएं हैं। इनकी जड़ें उस देश में ढूंढना व्यर्थ होगा जहां के लोकप्रिय मंत्रों में वनस्पति तक के लिए शांति-मंत्र के शब्द हैं। उनमें अंतरिक्ष तक में शांति की कामना की गई है—

"ॐ द्यौः शांतिः
रापः शांतिः
औषधयः शांतिः
वनस्पतयः शांतिः
विश्वदेवाः शांतिः
ब्रह्म शांतिः
सर्व शांतिः
शांतिरेव
सा मा शांतिरेधि
ॐ शांतिः
शांतिः
शांतिः।"

पर्यावरण से हमारा आशय पौधों-वृक्षों, नदियों-झरनों, पर्वतों, पशुओं की रक्षा से है। वेद प्रकृति, जल, सूर्य, अग्नि, चंद्र एवं ग्रहों, उपग्रहों, वायु, वरुण, मरुत आदि की प्रशंसा में गाई गई ऋचाएं हैं। यज्ञ प्रकृति से मिले पदार्थों को वापस प्रकृति को ही सौंपने का एक पवित्र विश्वास है। पग-पग पर नदियों, वनस्पतियों आदि का महिमा-मंडन रामायण जैसी पुराकथाओं में भी किया गया है। हमारे शास्त्र श्री कृष्ण की बात करते हैं, जो गाय-बछड़ों से बात करते हैं, राम की बात करते हैं, जो समुद्र की पूजा करते हैं, हनुमानजी की बात करते हैं, जो पर्वत से संजीवनी बूटी के लिए विनम्र निवेदन करते हैं। ऐसे धर्म-प्राण

विश्वासजगत् में अगर पीपल को काटना अपराध है, तो कैसा अपराध? सवाल यही है कि सदियों पहले से ही पर्यावरण के लिए जहां इतनी सजग-चेतना है, वहां विशेषज्ञ आएं और पर्यावरण बचाने की नसीहतें दें तो बड़ा हास्यास्पद लगता है। ऐसे उपदेशवादी पर्यावरणविदों को लक्ष्य करके कवि ने लिखा है—

1. *'मुंह से पर्यावरण-पर्यावरण इनको चिल्लाना है।*
ठोस कोई सम्यक् नीति न इन्हें सुझाना है ॥
कथित पर्यावरणविदों का ऐसा पर्यावरण प्रेम।
मकसद एक कि अखबारों में फोटो छपवाना है ॥
अपनी जमीन अपनी न रही कैसा कानून।
खेत में पेड़ लगाया तो खत्म मालिकाना है ॥
खुद को ज़रूरत तो आदमी किंकर्तव्यविमूढ़।
दफ्तरों के चक्कर-दर-चक्कर लगाना है ॥
निर्भय पेड़ लगाएं, ज़रूरत पे उपयोग करें।
ऐसा सम्यक्, सहज, सरल कानून बनाना है।"

2. *"इनका आसमां को अपने सिर उठाना है।*
सस्ती लोकप्रियता का साधन बनाना है ॥
ऐसे-ऐसे भी पर्यावरण-प्रेमी मिलते हैं।
जिनको ताजिंदगी न खुद दस पेड़ लगाना है ॥
मुफ्त में ज्ञान बांटते फिरते मिल जाते हैं।
जमीनी समस्या का न समाधान सुझाना है ॥
ग्रामीण समस्या को जानने की फुर्सत नहीं।
पर्यावरण की चिंता में इनको दुबलाना है ॥
पेशानियों में बल डाले ये घूमते-फिरते।
बिन ठोस किए धरे पर्यावरणविद् कहाना है ॥"

3. *"जाने-अनजाने प्रदूषण को बढ़ावा दिलाना है।*
पर्यावरण को विकास की भेंट चढ़ाना है ॥
प्रकृति से लेन-देन का संतुलन था पहले।
मगर अब लेना-ही-लेना जग ने ठाना है ॥
वास्तविकता कुछ और सतही तौर पर मगर।
दुनिया में बहुत शोर कि पर्यावरण बचाना है ॥
आंख मूंद दोहन-पर-दोहन करते जा रहे।
इसलिए पर्यावरण संतुलन का गड़बड़ाना है ॥
ठोस कुछ करने की इच्छाशक्ति नहीं 'बृजेश'।
दिखावा-ही-दिखावा है बस चिचियाना है ॥"

4. *"सरकारी तंत्र पर ज़रूरी नकेल कसाना है।*
पर्यावरण संरक्षण हेतु जन-मन को जगाना है ॥
तभी ही है संभव पर्यावरण की अभिरक्षा।
कठोर कानून बना उसे अमल में लाना है ॥
लचर कानूनों के होते कुछ हो नहीं सकता।
दिखावे हेतु न पर्यावरण दिवस मनाना है ॥

जवाबदेही तय करना अब लाजिमी होगा।
ना उचित जिम्मेदारियों से मुंह छिपाना है ॥
पर्यावरण उपेक्षा की गलतियां स्वीकारने में।
'बृजेश' अब कतई नहीं हिचकिचाना है ॥''

हिमालय को पर्यावरण के साथ-साथ आध्यात्मिक व संस्कृति का प्रतीक निरूपित करते हुए डॉ. बृजेश सिंह निर्दिष्ट करते हैं—

1. *''हिमालय को विकास की न भेंट चढ़ाना है।*
अक्षम्य अपराध पर्यावरण पे चोट पहुंचाना है ॥
हिमालय की नदियां भारत की जीवन-रेखा।
मैदानों में पहुंच विपुल अन्न उपजाना है ॥
हिमगिरी भारत का गौरवमयी वो ताज है।
सिरमौर आध्यात्मिक विरासत गाइबाना है ॥
हिमालय को झुककर चूमता है आसमां।
गहन गरिमा के आगे मानों सिर झुकाना है ॥
ऋषियों की तपस्थली पावन हिमालय 'बृजेश'।
आध्यात्मिक ऊर्जा का अनमोल खजाना है ॥''

2. *''हिमगिरि में अटा औषधियों का खजाना है।*
आदिकाल से लुटाया आगे भी लुटाना है ॥
हिमालय भेजता है जड़ी बूटियों का तोहफा।
पावन गंगा के जल को माध्यम बनाना है ॥
गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्र का जनक हिमालय।
जीवनदाता इसलिए जन-मन में पूजाना है ॥
खुद तो ऊंचा सुरसरि को भी उठाया है।
महती योगदान कि पतित पावनी बनाना है ॥
हिमालय से हिंदू धर्म का गहरा रिश्ता 'बृजेश'।
शास्त्र ने जर्रे-जर्रे में देवों का वास माना है ॥''

3. *''हिमालय को रक्षक का दायित्व निभाना है।*
तपस्थली का जर्रा-जर्रा इबादतखाना है ॥
सदियों से रक्षक सजग प्रहरी हिमगिरि अपना।
अभेद दीवार बन याद वो अरि से टकराना है ॥
जीवनदायी नदियों का उद्गम-स्थल हिमालय।
गंगोत्री यमुनोत्री को पावन तीर्थ कहाना है ॥
हिमालय के बिना भारतीय संस्कृति अधूरी।
मनीषियों द्वारा हिंद का मस्तक ठहराना है ॥
दुश्मन का हिमालय पर चोट का मकसद 'बृजेश'।
हिंदुस्तान के मस्तक पर आघात पहुंचाना है ॥''

4. *''पर्यावरण के प्रति विश्व को सचेत हो जाना है।*
अगर जीव जगत् को महाविनाश से बचाना है ॥
मैदानी इलाकों को नरक बना दिया हमने।
अब कोशिश पर्वत, जंगलों को निपटाना है ॥

पर्वतारोहण रोमांच है सैलानियों का।
विश्व मुकुट एवरेस्ट पे कचरा फैलाना है॥
अनियंत्रित पर्वतारोहण कार्यक्रमों से।
साल-दर-साल हिमालय का कद घटाना है॥
चीन-पाकिस्तान-नेपाल की क्या कहें हिंद ने भी।
प्रणम्य हिमालय की उपेक्षा को ठाना है।''

कवि ने पृथ्वी का भी आभार व्यक्त किया है कि उसी की कृपा से जीवन मिला है। वहीं पृथ्वी की शृंगार व जीवन-रेखा नदियों के महती योगदान को निर्दिष्ट करते हुए उन्हें प्रदूषित होने से बचाने का आह्वान किया है–

''नदियों से रिश्ता हमारा सनातन पुराना है।
प्रत्येक तीर्थ में पुण्य का काम नहाना है॥
सभी कर्मकांड नदियों के तटों पर होते।
नदियों को पावन पवित्र शास्त्रों ने माना है॥
महानदी, कावेरी, गोदावरी, ब्रह्मपुत्र।
गंगा, नर्मदा को पतित-पावनी ठहराना है॥
कल-कारखानों, नाली के गंदे पानी से।
जीवनदायी नदियों को नरक-कुंड बनाना है॥
जल-स्रोत प्रदूषित करना महापाप 'बृजेश'।
शपथ लें न खुद को पाप का भागी बनाना है॥''

डॉ. बृजेश सिंह, वैदिक परंपरा जो अरण्य संस्कृति के रूप में विख्यात है, जिसे ऋषियों ने इसे तपस्थली के रूप में महिमामंडित किया है, उन वनों की रक्षा हेतु जन-मन से आह्वान करते हैं–

1. *''वनों के दुश्मनों पे जरूरी अंकुश लगाना है।*
लालची खुदगर्जियों से वनों को बचाना है॥
कई वन माफियाओं को सियासी संरक्षण।
वन अधिनियम को इन्हें अंगूठा दिखाना है॥
जन-प्रतिनिधि कई वनों के दुश्मन बन बैठे।
उजड़े वनों को देख आंख भर आना है॥
जंगल नष्ट करने वाले माफियाओं का निज।
विरोध देख आंखों में खून उतर आना है॥
'बृजेश' न मूक दर्शक खुलकर सामने आएं।
पर्यावरण प्रेमियों को अपना सीना अड़ाना है॥''

2. *''वन है तो जीवन है, न कभी भी भुलाना है।*
बहुत ही जरूरी पेड़-पौधों को बचाना है॥
जमीनी स्तर पर उतरकर कुछ करना लाजिमी।
बैठे-बैठे न ख्याली पुलाव पकाना है॥
वनों से मिलती हैं बहुमूल्य औषधियां।
ऋषि-मुनियों, मनीषियों ने महत्ता को बखाना है॥
ज्ञान-आत्मज्ञान एकांतवास से ही मिलता है।
अरण्य को तभी तो तपःस्थली बनाना है॥

जितना भी बखानें वह कम ही है 'बृजेश'।
वनों की महत्ता का कभी अंत न पाना है ॥"

3. *"मनुज का वनों पर इस कदर कहर बरपाना है।*
अपराध-बोध से मुश्किल आंखें ऊपर उठाना है ॥
गरदनें शर्म से झुकी-झुकी-सी हमारी।
अब किस मुंह से कुदरत से नजर मिलाना है ॥
कभी गगन से बातें करते वृक्षों की श्रृंखला।
अब उसी वन का वृक्षहीन हो अश्क बहाना है ॥
प्रकृति से इंसान की छेड़छाड़ इस कदर कि।
सूर्यदेव का कुपित हो आग बरसाना है ॥
प्रकृति देव मनुज आपका अक्षम्य अपराधी।
'बृजेश' अपराध का न प्रायश्चित हो पाना है ॥"

4. *"दिन-ब-दिन अनवरत् वनों का औसत घटाना है।*
विकास का कुल्हाणा जंगलों पे चलना है ॥
उद्योगों से निकल रहे विविध जहरीले रसायन।
फितरत नदियों के जल को जहरीला बनाना है ॥
पर्यावरण समस्या ठीक से समझने की जरूरत।
प्राकृतिक साधनों से संतुलन बनाना है।
ताकतवरों के पास संसाधनों का जखीरा है।
पर्यावरण अनदेखी निज वर्चस्व जमाना है ॥
बिगड़ते पर्यावरण की प्रलंब सूची 'बृजेश'।
विकास के नाम प्रकृति से लूटपाट मचाना है ॥"

5. *"विकास के नाम बेदर्दी से वनों को कटाना है।*
पर्यावरण पर परिचर्चा से इन्हें कतराना है ॥
जिस बेरहमी से जंगलों का सफाया हो रहा।
दुनिया शिद्दत से लगी कि जहन्नुम में जाना है ॥
दिन-ब-दिन मुंह है कि फैलता ही जा रहा है।
प्रदूषण की सुरसा से मुश्किल पार पाना है ॥
बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना।
जंगलों को नष्ट कर पीठ थपथपाना है ॥
प्रदूषण के मुद्दे को नहीं हंसी में उड़ाना है।
'बृजेश' पर्यावरण संरक्षण बीड़ा उठाना है ॥"

कवि पृथ्वी को मातृस्वरूपा निरूपित कर उसकी अभ्यर्थना करता है तथा उसके प्रति आभार व्यक्त किया है--

"शास्त्रों के पन्ने-पन्ने पर गुण बखाना है।
जीवदात्री धरती का बहुत उपकार माना है ॥
प्राणियों को पालती ये मातृस्वरूपा है।
धारित्रि है इसलिए धरती नाम धराना है ॥
मंगल बुध बृहस्पति शुक्र हों या शनि सभी।
पुरुषवाचक ग्रह कोई भी वीराना है ॥

प्राणियों को धारण करने की शक्ति रखती।
धरती की संतानों को न एहसान भुलाना है ॥
धरती चाहती औलादें मिल-जुल रहे मगर 'बृजेश'।
फितरत मालिकाना हक जताना खून बहाना है ॥"

जगत् में ऐसे कितने राष्ट्र होंगे, जिन्होंने एक नदी को पूरे देश में मां का दर्जा दे रखा है? समर्पणभाव जो मां गंगा के लिए, वही वृक्षों-पौधों के लिए भी। पीपल सरीखे वट-वृक्षों से लेकर तुलसी जैसे पौधे तक को जितनी श्रद्धा भारत में प्राप्त है, उतनी शायद ही कहीं और होगी, लेकिन आज परिस्थितियां बदल गई हैं। कवि ने लिखा है–

1. *"आदिकाल से इसकी महत्ता को पहचाना है।*
पेड़-पौधों को देवस्वरूप में ही जाना है ॥
पेड़-पौधे की महत्ता प्रतिपादित पन्ने-पन्ने पे।
वेद-पुराणों में इन्हें प्राणाधार माना है ॥
वृक्षारोपण परम पुनीत मान शास्त्र का।
एक पेड़ दस पुत्रों-सा हितकारी ठहराना है ॥
अखबारों में फोटो छपे आज एक ही है लक्ष्य।
बस मुंह से पर्यावरण-पर्यावरण चिल्लाना है ॥
पर्यावरण पर प्रतिपल सजग थे पूर्वज हमारे।
पेड़-पौधे से प्राणवायु प्रवाहित माना है ॥"

2. *"ठाने पेड़-पौधों के जंगल को कटाना है।*
क्योंकि अब कंक्रीट का जंगल उगाना है ॥
तप रही धरती तप रहा आसमान आज।
इस अंध प्रगति का मूल्य सबको चुकाना है ॥
जिसको देखो वही उजाड़ने में लगा हुआ।
आज महज नारा कि पर्यावरण को बचाना है ॥
कई-कई संस्थाएं ढोंग रचाती फिरती है।
वृक्षारोपण पे सस्ती लोकप्रियता कमाना है ॥
पेड़ों की महत्ता ज्ञान पूर्वजों को था तभी तो।
माने कि बड़े पुण्य का काम पेड़ लगाना है ॥"

अग्नि, सूर्य, चंद्र, जल, वायु, प्रकृति के सभी तत्वों के प्रति गहरा पूज्य भाव हमारे आख्यानों में है। जरा एक नजर अपने देवी-देवताओं के जीवन पर डालिए। वे प्रकृति एवं जीव-जंतुओं के कितने निकट हैं? अपने आभूषण एवं वाहन के रूप में उन्होंने पशु-पक्षियों को चुना है। कवि पृथ्वी द्वारा दिए गए उपहारों को सौगात मानता है। आदमी से वह अपेक्षा करता है कि पृथ्वी के उपकारों को येन-केन-प्रकारेण वह वापस करे। वह पृथ्वी के प्रदेय को कर्ज के रूप में देखता है और उसे लौटाने की बात करता है। कवि कहता है कि अगर हम धरती की इस कृतज्ञता के प्रति कृतघ्नता का भाव अपनाएंगे तो सर्वनाश हो जाएगा–

1. *'पृथ्वी ने दिया हमें सौगातों का खजाना है।*
आदमी की हरकतें फकत एहसान झुठलाना है ॥
पृथ्वी प्रदत्त उपहारों में आकंठ डूबे हैं हम।
पर कुछ-न-कुछ तो धरती का कर्ज लौटाना है ॥
धरती को यदि कुछ वापस दे सकें अगर।

ये कृतज्ञता का बोझ कुछ सिर से हटाना है ॥
पीढ़ियां अदूरदर्शिता के लिए कोसेंगी।
संभल जाएं अन्यथा भविष्य में पछताना है ॥
धरा को जल्द जल वापस करें, अगर खुद को।
आगामी पीढ़ियों की नजरों में न गिराना है ॥''

2. *''कभी आसमां से सूरज को आग बरसाना है।*
कभी तूफ़ानों को सिर की छत उड़ाना है ॥
हैरत में डालता यह देखकर आज 'बृजेश'।
कुछ इस कदर कुदरत का मेहरबां हो जाना है ॥
कहीं अतिवृष्टि कहीं अनावृष्टि का आलम।
इस तरह कुदरत को कहर आज बरपाना है ॥
कभी सितारों की ऐसी स्थिति बन जाती है।
रक्त प्यासों को फकत घमासान मचाना है ॥
कुदरत की तूलिका से इस तरह हो रहा रेखांकन।
फकत संसार का आंगन लहू से सजाना है ॥''

शांति मंत्र के अर्थ का भाव ही है कि शांति कीजिए प्रभु--त्रिभुवन में, जल में, गगन में, अंतरिक्ष में, अग्नि में, पवन में, औषधि-वनस्पति, वन-उपवन में, सकल विश्व में, जड़-चेतन में शांति कीजिए। राष्ट्र-निर्माण सृजन में, नगर-ग्राम में, जगत् के कण-कण में शांति कीजिए। कवि स्वस्ति वाचन करता हुआ लिखता है--

'''वेद-शास्त्र इन शक्तियों का आभार माना है।
ऊर्जा अक्षय स्रोत को प्रणम्य ठहराना है ॥
जलप्रपात, सूर्यकिरण, सिंधु की लहरें और।
पवनशक्ति को ऊर्जा आदिस्रोत कहाना है ॥
शाश्वत् स्रोत प्रदूषण रहित उपक्रम है ये।
ऊर्जा समस्या समाधान इनसे कराना है ॥
पेट्रोलियम, कोयला प्रदूषण जीवन खा रहा।
आगामी पीढ़ी हेतु न अभिशाप बनाना है ॥
प्राकृतिक ऊर्जा दोहन महंगा पड़े तो भी।
प्रदूषणरहित इस उपक्रम को अपनाना है ॥''

कवि केवल सांस्कृतिक ही नहीं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी रखता है। इसलिए वह भविष्य के प्रति भी सचेत है। वह पाठक को सचेत करता हुआ कहता है कि कोयला, पेट्रोल ये कब तक आपका साथ देंगे? एक-न-एक दिन तो इन्हें समाप्त होना ही है। अतः वैकल्पिक ऊर्जा की व्यवस्था करनी होगी। वह प्राचीन ऋषि-मुनि को स्मरण करते हुए कहता है कि सूर्य की शक्ति का पूर्वजों को ज्ञान था। शास्त्रों में लिखा गया है। सूर्य की रोशनी से ही जीवन पलता है। सृष्टि का अस्तित्व सूर्य से ही है। कवि वैदिक ऋषियों की तरह कहता है--

1. *''आखिर कब तक इन सबको साथ निभाना है।*
कोयला पेट्रोल ईंधन को खत्म हो जाना है ॥
आदित्य ऊष्मा की शरण में जाना ही होगा।
ऊर्जा समस्या का यदि समाधान कराना है ॥

सूर्य की शक्ति का पूर्वजों को अहसास था।
शास्त्रों के पन्नों-पन्नों ने महत्व बखाना है॥।
सूर्य की रोशनी में पलती हैं जिंदगियां।
सूर्य नहीं तो यह सृष्टि प्रलय में समाना है॥
अक्षय ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है सूरज।
सृष्टि के अंत तक न कभी खत्म हो पाना है॥''

2. *''सूर्य की ऊर्जा से अंतरिक्ष यान उड़ाना है।*
संग्रहित कर अंधेरे में प्रकाश लाना है॥
सूर्य से ऊर्जा प्राप्ति का वैज्ञानिकों को।
चाहिए कि व्यावहारिक मार्ग अपनाना है॥
ऊर्जा के अनंत स्रोत को उपेक्षित किया हमने।
दिनकर की शक्ति को न हमने पहचाना है॥
धुआं उगलती हैं गगनचुंबी चिमनियां।
ऊर्जा हेतु बिजलीघरों का प्रदूषण फैलाना है॥
कारखानों की विषाक्त हवा जिंदगी निगलती।
सुविधाओं हेतु कितना बड़ा मूल्य चुकाना है॥''

जल ही जीवन है। जल नहीं तो जीवन नहीं। कवि जल को संजीवनी मानता हुआ कहता है कि इसकी रक्षा हर तरह से होनी चाहिए। जल व पर्यावरण को खत्म करना प्रकारांतर से जीवन को समाप्त करना है। कवि विश्व-सभ्यताओं का वर्णन करता हुआ लिखता है कि जल के किनारे ही सभ्यताएं पैदा और विकसित हुई हैं। इतना ही नहीं एक दिन ये सभ्यताएं जल में ही विलीन भी हो गई। हड़प्पा-मोहनजोदड़ों व द्वारिका की सभ्यता का विनाश इसका ज्वलंत उदाहरण है। हमारे जितने भी धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रम हैं, वे सब जल द्वारा ही संपन्न होते हैं। इसलिए जल को हर हालत में स्वच्छ व सुरक्षित रखना है—

1. *''जल आबेहयात जीव में जीवन पहुंचाना है।*
संजीवनी इसे जीव को जीवन से मिलाना है॥
जल व पर्यावरण को खत्म करने की साजिश।
फकत आदमी के वजूद को ही मिटाना है॥
जल के सान्निध्य में पलती रही हैं सभ्यताएं।
पानी को पीना पानी से ही नहाना है॥
जल से ही होता श्राद्ध-जल से ही आचमन।
जल के बिना न धर्म कर्मकांड हो पाना है॥
वेद शास्त्र सब जोर देकर कहते 'बृजेश'।
जल से ही आई दुनिया, जल में ही समाना है॥''

2. *''जल की महत्ता शिद्दत से हर किसी ने माना है।*
जल से ही सृष्टि में जीवन को आना है॥
गुणगान करे किन शब्दों में जल की महत्ता का।
जल से सृष्टि जल को प्रलय भी उपजाना है॥
जल को व्यर्थ ही बरबाद करते रहते हैं हम।
एक दिन न मिले जल जलजला आ जाना है॥

तन के पंचमहाभूतों में प्रमुख होता है जल।
जलतत्व कमी से जीवन को नष्ट हो जाना है ॥
प्रमुख आधार जल ही होता है जीवन का।
'बृजेश' पानी से ही जीवन पनप पाना है ॥"

कहा जाता है कि जल से ही सृष्टि का विकास हुआ है। इसमें जीवन से सभी तत्व विद्यमान हैं। यह प्रकृति का सबसे बड़ा खजाना है। आज सारी दुनिया जल पर अधिकार करने के लिए संघर्षरत् है। जल की शक्ति से सारी दुनिया अचंभित है। कवि, इस जल को स्वच्छ व संजोकर रखने की बात करता है–

"जल में ही अंतर्निहित जीवन तत्व माना है।
प्रकृति प्रदत्त सबसे बड़ा जल ही खजाना है ॥
सारी दुनिया ही इसके पीछे भाग रही है।
जल के जलवे से अचंभित सारा जमाना है ॥
ऋषियों, मनीषियों, वैज्ञानिकों ने हरदम ही।
जल को सृष्टि के विकास का आधार माना है ॥
मनीषी जलविज्ञानवेत्ता को प्रणम्य मानते।
अपने ज्ञान से जिन्हें जग को तृप्त कराना है ॥
अंतर्मन से आज सबको संकल्प लेना है कि।
जल संरक्षण जीवन का मुख्य लक्ष्य बनाना है ॥"

प्रकृति में समानता नहीं है। कहीं तो जल-ही-जल है और कहीं जल है ही नहीं। जहां जल है वहां के लोग जल की कीमत नहीं जानते, उसका दुरुपयोग करते हैं, उसको स्वच्छ व सुरक्षित नहीं रखते। लेकिन जहां जल नहीं है, वहां का जीवन संकटमय है। आठ-दस किलोमीटर की दूरी से जल आता है। जानवर, पक्षी, कीड़े-मकोड़े जल के बिना तड़प-तड़पकर मर जाते हैं। प्रकृति की इस निष्ठुरता से हृदय कांप उठता है, मगर मनुष्य की चेतना जागृत हो जाती है और जल की बूंद-बूंद को अमृत समझकर उसकी सुरक्षा करती है। कवि जल के दुरुपयोग को ध्यान में रखकर लिखता है–

1. *"लोगों को बेशुमार पानी से नहाना है।*
जल का प्रयोग करता आदमी मनमाना है ॥
जल प्रदोहन यूं चलता रहा तो यकीन मानो।
भविष्य में स्नान की सिर्फ रस्म निभाना है ॥
जल अपव्यय को शिद्दत से न रोकते हैं अगर।
फकत भविष्य पीढ़ी के पथ पे कांटे बिछाना है ॥
माले मुफ्त दिले बेरहम हिसाब से खर्चते।
अनमोल जल को न अच्छा इस कदर बहाना है ॥
पानी निश्चित ही जिंदगी की संजीवनी होती।
जल का अभाव फकत सृष्टि को मिटाना है ॥"

2. *"सहेजकर संरक्षित रखना न व्यर्थ गंवाना है।*
जल दुनिया का सबसे बड़ा खजाना है ॥
जल से ही पेड़-पौधों को जीवन पाना है।
'बृजेश' खेतों में पहुंच इसे अन्न उपजाना है ॥
देह या आंखों का हो पानी तो पानी है।

पानी बिन मनुज शरीर शव-सा हो जाना है ॥
जहां जल वहां रेलम-पेल-सी जिंदगी का जलवा।
जहां नहीं उसे फकत श्मशान ही गिनाना है ॥
जल बिना धरती की कोख सूनी-सूनी।
मरुस्थल-सा चमन पड़ा रहता वीराना है ॥''

बृजेश के अंदर का कवि बार-बार जल के महत्व को रेखांकित करता हुआ कहता है कि जल अनमोल है। इसे व्यर्थ में मत बहाइए। जल के बिना यह धरती जीव-विहीन हो जाएगी। यह प्रकृति-प्रदत्त बेशकीमती उपहार है, इसे संभालकर रखना है। यह खेलने या मनोरंजन की वस्तु नहीं है। जिस ग्रह पर जल नहीं है, वहां जीवन नहीं है। जल-विहीन पृथ्वी कैसी होगी, यह सोचकर ही हृदय कांप उठता है? जल की महिमा भारत ही नहीं, दुनिया के सभी देशों में सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास के पन्ने-पन्ने पर लिखा है। जल का अपव्यय हमारे धर्मशास्त्रों में वर्जित है। आज धरती को छेदकर जल का प्रदोहन कर रहे हैं, इससे जगह-जगह धरती खोखली होकर धंस रही है। कवि कहता है, यह प्रदोहन बुद्धिमानी से करो। जितना ज़रूरत है, उतना ही ग्रहण करो। नदी, तालाबों, कुओं में वर्षा का जल संचित करो, उसे व्यर्थ बहने से रोको। जल के संदर्भ में कवि लिखता है—

1. *''पन्ने-पन्ने पर लिखा कि इसको बचाना है।*
जल अपव्यय को शास्त्रों ने अपराध माना है ॥
जल के प्रदोहन में विवेक की होती ज़रूरत।
जितनी ज़रूरत हो उतना ही प्रयोग में लाना है ॥
सारे संकटों से बढ़कर जल का अभाव होता।
जल के बिना सकल जीवन खत्म हो जाना है ॥
जल का दोहन करते रहे पर न वापस किया।
खर्चें तो कुबेर का भी खाली होता खजाना है ॥
खाते में डालने की ज़रूरत न समझा आदमी।
ठान लिया कि केवल भुनाना-ही-भुनाना है ॥''

2. *''जल के मोल को समझें न व्यर्थ बहाना है।*
जल के बिना ये जग जीवविहीन हो जाना है ॥
बेशकीमती इस तोहफे को संभाले रहना।
कुदरत का दिया ये सबसे बड़ा नज़राना है ॥
जल को न समझो महज खेलने का सामान।
यह ईश्वर प्रदत्त आबेहयात गाइबाना है ॥
ऊपरवाले की रहमत की कोई हद होती नहीं।
उसकी रहमत पे, उसकी शान में गुनगुनाना है ॥
जल खत्म हो अगर तो दुनिया का क्या होगा।
सोचने मात्र से ही शरीर को थरथराना है ॥''

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि आज 'विकास' और 'बिगड़ता पर्यावरण' दोनों ही समस्याएं गंभीर से गंभीरतम् होती जा रही हैं। ये दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हैं, इसलिए डॉ. बृजेश सिंह का ध्यान विकास-प्रक्रिया के पर्यावरणीय विश्लेषण की ओर गया है। डॉ. इंद्रबहादुर सिंह ने लिखा है, 'विकास-प्रक्रिया की पर्यावरणीय सीमा क्या हो? जिन पर्यावरणीय तत्वों का उपयोग कर हम उच्च जीवन-स्तर प्राप्त करने का प्रयास

कर रहे हैं, उन तत्वों का उपयोग कितना, कब और कैसे किया जाए? इसी परिप्रेक्ष्य में जैव-संपदा, खनिज, ऊर्जा, जल, मृदा आदि का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए। पर्यावरण के ये मुख्य घटक, सजीव एवं निर्जीव संसाधन, राष्ट्रीय विकास एवं समाज-कल्याण के आधार हैं। जनसंख्या वृद्धि, ग़रीबी और प्राकृतिक संसाधन के दुरुपयोग, अनियोजित उपयोग के कारण पर्यावरण पर गंभीर दबाव है। देश के पर्यावरण की कई कमियों को तीव्र औद्योगिक विकास के साथ सामाजिक न्याय से संयोजित कर ठीक किया जा सकता है। इस बात पर ध्यान देना होगा कि अपेक्षित परिवर्तनों के लिए जो विकास कार्यक्रम प्रारंभ किए जा रहे हैं, उनका पर्यावरण पर बुरा प्रभाव न पड़े। योजना के प्रारंभ से ही सभी विकासात्मक परियोजनाओं में उत्पादन के साथ पर्यावरणीय और पारिस्थितिक आवश्यकताओं को शामिल करना होगा। हमारी जो निर्णयात्मक प्रक्रिया है, उसमें इस बात को स्पष्ट रूप से मानना होगा कि पर्यावरण को निःशुल्क संसाधन के रूप में नहीं मानना चाहिए। यदि विकास को आर्थिक या भौतिक रूप में देखा जाए एवं यदि उसमें जीवन की सामाजिक-सांस्कृतिक गुणवत्ता की अभिवृद्धि को समाज का अभिन्न अंग माना जाए तो पर्यावरण की नष्ट होती संसाधनता का संरक्षण भी विकास का अभिन्न अंग होना चाहिए।''

डॉ. बृजेश सिंह ने अपनी अद्‌भुत ग़ज़लों के माध्यम से जो कहा है, उससे स्पष्ट होता है कि वे पर्यावरण एवं विकास में कोई विरोध नहीं, बल्कि वे एक-दूसरे के पूरक हैं। निम्न गीत में पर्यावरण, प्रकृति, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, परंपरा व प्रगति को देखा जा सकता है—

''यह कल-कल, छल-छल बहती
क्या कहती गंगा धारा?
युग-युग से बहता आता
यह पुण्य प्रवाह हमारा॥
हम, इसके लघुतम् जल-कण,
बनते-मिटते हैं क्षण-क्षण।
अपना अस्तित्व मिटाकर,
तन-मन-धन करते अर्पण॥
बढ़ते जाने का शुभ प्रण,
प्राणों से हमको प्यारा॥
इस धारा में घुल-मिलकर,
वीरों की राख बही है।
इस धारा की कितने ही
ऋषियों ने शरण गही है॥
इस धारा की गोदी में,
खेला इतिहास हमारा॥
यह अविरल तप का फल है,
यह राष्ट्र-प्रवाह प्रबल है।
शुभ संस्कृति का परिचायक,
भारत मां का आंचल है॥
यह शाश्वत् है चिर जीवन,
मर्यादा धर्म सहारा॥

क्या इसको रोक सकेंगे,
मिटने वाले मिट जाएं।
कंकड़-पत्थर की हस्ती,
क्या बांधा बनकर आएं॥
ढह जाएंगे गिरि-पर्वत,
कांपे भू-मंडल सारा॥"

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि पर्यावरण संबंधी समस्याओं का सीधा संबंध जीवन-शैली और व्यावसायिक गतिविधियों से है। इस दिशा में चेतना जागृति के उपरांत भी प्रगति नहीं है। इसके मुख्य कारण हैं–

1. राजनीतिक,
2. सांस्कृतिक,
3. विधिक एवं
4. व्यावसायिक दृष्टि से एकीकृत कार्य-योजना का अभाव।

अतः इनके हल के लिए प्रशासकीय नागरिक, उद्योगपति, प्रशासन तथा सरकार समन्वित क्रियाओं द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण को आधारभूमि पर ही नियंत्रित करने के लिए सशक्त कदम उठाएं। प्रकृति के साथ पुनः जीव संबंध स्थापित करने की आवश्यकता है, जिससे उत्पन्न विकृतियां दूर हों और एक सुस्वरात्मकता स्थापित हो और अंततोगत्वा पर्यावरण प्रदूषण समाप्त हो। संयोग की बात है कि भारतीय ज्ञान के पुरोधाओं ने प्राचीनकाल में ही ऐसी विधियों का विकास कर लिया था, जिनका उपयोग करके कालांतर में पर्यावरण प्रदूषण से पूर्ण मुक्ति मिल सकती है।

डॉ. बृजेश सिंह भारतीय चिंतन-परंपरा के ग़ज़लकार हैं। इसलिए वह पंच-महाभूत, वनस्पतियों तथा औषधियों में चेतनत्व दृष्टि रखते हैं। अतः ऋषि, साहित्यकार इन वनस्पतियों और औषधियों से प्रार्थना करते हैं। हम इन वनस्पतियों को जितना आदर देंगे, इन्हें प्रसन्न रखेंगे तो ये वनस्पतियां भी उसी प्रकार हम सभी का कल्याण करेंगी।

डॉ. बृजेश का अभिमत है कि भारतीय संस्कृति की वह जीवन-शैली जो नदी-पर्वतों को भी सजीव रूप में स्वीकार करते हुए उसमें परमेश्वर का वास मानती है, श्रेष्ठ है। अतः प्रदूषण का कोई भी उद्यम ईश्वरी सत्ता का उल्लंघन है। नदियों, पर्वतों, वृक्षों की पूजा का सीधा अर्थ यह है कि जीवनदायी शक्तियों की हम कद्र करें तथा उनका अनुग्रह प्राप्त करें। डॉ. बृजेश सिंह ने पर्यावरण-प्रदूषण चेतना पर 300 से अधिक गजलें लिखी हैं, जो दो ग्रंथ के रूप में पर्यावरण समाधान व प्रदूषण समाधान शीर्षक से प्रकाशनाधीन हैं। विकास संस्कृति पत्रिका में इन गजलों का प्रकाशन हो चुका है। पर्यावरण पर केंद्रित इन गजलों में पर्यावरण के प्रायः हर पक्ष को समाहित किया गया है। सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल विद्युत परियोजनाओं के लिए आगे आने का आह्वान है, क्योंकि ये प्रदूषण रहित अक्षय ऊर्जा के स्रोत हैं। कोयला आधारित विद्युत उत्पादन, प्रदूषण का सबसे बड़ा स्रोत है। लेकिन आखिर यह कब तक चलने वाला है, कोयला कभी तो खत्म होगा ही।

डॉ. बृजेश सिंह द्वारा लिखित एक दर्जन ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है, दो दर्जन ग्रंथ प्रकाशनाधीन हैं। आपके लेखन में अध्यात्म-दर्शन एवं भारतीय संस्कृति के चिंतन के साथ ही राष्ट्रीयता का भाव प्रमुख रूप से समाविष्ट है। गद्य एवं पद्य दोनों ही प्रक्षेत्र में आपकी अद्‌भुत पकड़ है। संस्कृत में कई गीतिकाव्य की रचना आपने की है, जिनमें सरस्वती शतकम्, सरस्वती पंचकम्, सरस्वत्याष्टकम्, ललिता-पंचकम्, गायत्र्याष्टकम्

उल्लेखनीय हैं। 'आहुति' महाकाव्य का प्रणयन कर 2500 वर्षों के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक व राजनीतिक इतिहास का विवेचन करते हुए आपने भारतीय संस्कृति को अनुपमेय स्थापित किया है। महाराणा प्रताप साहित्य व मध्ययुगीन इतिहास के विशेषज्ञ के रूप में डॉ. सिंह प्रख्यात हैं। 'आहुति' महाकाव्य लेखन पर विद्वान् समीक्षकों ने उन्हें 'महाकवि' निरूपित करते हुए काव्य-कौशल की प्रशंसा की है। 2000 (दो हजार) मुक्तकों की रचना कर 'मुक्तक-सम्राट' के रूप में डॉ. बृजेश सिंह को प्रसिद्धि प्राप्त है। 1600 गजलें लिखकर 'महागजलकार' के रूप में जाने वाले डॉ. बृजेश सिंह ने विश्व की सबसे बड़ी समाधान संज्ञक गजल की रचना की है, जिसमें 6000 शेर समाहित हैं। विभिन्न विषयों पर डॉ. बृजेश सिंह द्वारा शताधिक आलेखों का प्रणयन किया गया है, जो विभिन्न शोध-ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।

डॉ. बृजेश सिंह के वृहद् रचना संसार से प्रभावित हो विभिन्न प्रतिष्ठित साहित्यकारों द्वारा आपकी रचनाधर्मिता पर कलम चलाई गई है, जिनमें डॉ. इंद्रबहादुर सिंह रचित 'डॉ. बृजेश सिह की रचना-धर्मिता', महेश कुमार शर्मा रचित 'डॉ. बृजेश सिंह के साहित्य में अध्यात्म, धर्म, दर्शन और संस्कृति', डॉ. वनिता खरे रचित 'डॉ. बृजेश सिंह : व्यक्ति और स्रष्टा', श्री इंद्रनाथ सिंह रचित 'महागजल समाधान में अभिव्यक्त चेतना' व 'हिंदी गजल दुष्यंत से बृजेश तक', ई. अरुण यदु रचित 'डॉ. बृजेश सिंह की चिंतन दृष्टि और समकालीन परिदृश्य' उल्लेखनीय हैं। उपरोक्त ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक ग्रंथ विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे जा रहे हैं।

डॉ. बृजेश सिंह का रचना संसार इतना वृहद् है कि किसी भी समीक्षक को विवेचना करते समय आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। पर्यावरण के प्रति उनकी दृष्टि अत्यंत व्यापक है।

यजुर्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि देवतत्व हमसे अपेक्षा करते हैं कि तुम हमें हविष्यान्न दो तो हम तुम्हें विहित वर्षा देंगे। इस प्रकार पर्यावरण देवतत्व तथा प्राणी 'परस्परं भावयंतः श्रेयं परमवाप्स्यथ' (गीता)। परस्पर आदान-प्रदान रूपी सहयोग से प्रकृति की गुणधर्मिता के साथ परम् श्रेय मार्ग को हम सब प्राप्त करते हैं—

"देहि में ददामि ते नि मे धेहि निते दधे।
निहारं चहरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥"

संदर्भ

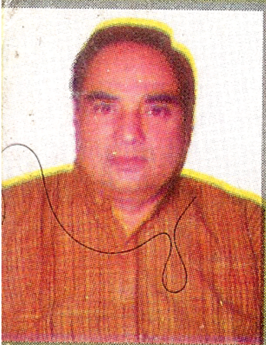
1. अथर्ववेद, प्रस्तुति : आचार्य वेदांत तीर्थ, पृ. 31, मनोज पब्लिकेशन्स, 761, मेन रोड, बुराड़ी, दिल्ली-110084, संस्करण-2010
2. कूर्मपुराण, 2/39
3. Environment is the sum total of all the external conditions and the influences on the developmental cycle of biotic elements over the earth's surface, Herkovites, 1948
4. Environment is totality of milieu factor of an organism, Fitting, 1922
5. A.G. Tansley.
6. पर्यावरणीय अध्ययन, आर.पी. सिंह, पृ. 2 पर अर्नेस्ट हेकेल की परिभाषा।
7. वही, आर.एम. मैकाइवर की परिभाषा।
8. तकनीकी शब्दकोश, भारत सरकार।

9. हमारा पर्यावरण, आचार्य डॉ. दशरथलाल निषाद 'विद्रोही', पृ. 18, संगम साहित्य एवं सांस्कृतिक समिति, मगरलोड, जनपद-धमतरी, छत्तीसगढ़-493663, संस्करण-2008
10. यजुर्वेद में पर्यावरण, डॉ. उपेंद्र कुमार त्रिपाठी, पृ. 33
11. वही, पृ. 34
12. हमारा पर्यावरण, पृ. 16
13. वही, पृ. 26
14. वही, पृ. 42
15. The Practical Sanksrit English Dictionary.
16. अभिज्ञान शाकुंतलम्, प्रथम अंक, श्लोक-1
17. गीता अध्याय 7, श्लोक 4-5
18. मुंडक उपनिषद्, 2/1/3
19. अथर्ववेद, पृ. 12
20. वही, पृ. 13
21. वही, पृ. 37
22. वही, पृ. 38
23. वही, पृ. 38
24. वही, पृ. 35
25. वही, पृ. 35
26. वही, पृ. 35
27. वही, पृ. 43
28. वही, पृ. 43
29. वही, पृ. 169
30. वही, पृ. 43
31. वही, पृ. 44
32. वही, पृ. 45
33. वही, पृ. 45
34. वही, पृ. 52
35. वही, पृ. 52
36. वही, पृ. 85
37. वही, पृ. 85
38. वही, पृ. 85
39. वही, पृ. 85
40. वही, पृ. 94
41. वही, पृ. 95
42. वही, पृ. 95
43. वही, पृ. 110
44. वही, पृ. 110
45. वही, पृ. 110
46. वही, पृ. 111
47. वही, पृ. 120

48. वही, पृ. 207
49. वही, पृ. 208
50. वही, पृ. 208
51. वही, पृ. 208
52. वही, पृ. 231
53. वही, पृ. 252
54. वही, पृ. 253
55. वही, पृ. 70
56. वही, पृ. 71
57. वही, पृ. 226
58. वही, पृ. 226

वन-संरक्षक, बिलासपुर (छ.ग.)

*****



इंद्रनाथ सिंह

जन्मतिथि : 8 जून, 1952

पता : फारेस्ट क्वार्टर न. 1, फारेस्ट कॉलोनी, भक्त कंवरराम गेट के पास, जरहाभाटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।

शैक्षिणक योग्यता : एम.एससी. (जंतुशास्त्र, स्वर्ण- पदक), एल-एल.बी. (मेरिट), वानिकी में स्नातकोत्तर डिप्लोमा एवं जी.आई.एस. (ए.एन.यू.) ऑस्ट्रेलिया।

प्रकाशन : ग़ज़ल समीक्षा, वन-संस्मरण, जन-सहयोग एवं वन सुरक्षा, अनुशासन।

प्रकाशन : महाग़ज़ल समाधान में अभिव्यक्त चेतना।

काशनाधीन : वन संस्मरण, जनसहयोग एवं वनसुरक्षा, अनुशासन, 'हिन्दी गज़ल दुष्यंत से ब्रजेश तक', तथा 'महाकाव्य ाहुति में राष्ट्रीय चेतना'।

म्मान : हिन्दी अकादमी हैदराबाद द्वारा सन् 1996 में शब्द सम्राट की उपाधि, लघु वनोपज प्रबंधन में स्वर्णपदक, महाराणा ताप रत्न अलंकरण सन् 2011 में, संयुक्त वन प्रबंधन में प्रशस्ति पत्र, वन खेल-कूद प्रबंधन में प्रशस्ति पत्र, सानांचल ाहित्यकार संस्थान सोनभद्र (उ.प्र.) द्वारा प्रभाश्री राष्ट्रीय सम्मान।

शेष : जी.आई.एस. एवं वानिकी में तीन माह का डिप्लोमा (एन.एन.यू., सी.एस.आर.ओ.) ऑस्ट्रेलिया, यू.एस.ए., येल निवर्सिटी से वानिकी प्रबंधन पर प्रशिक्षण, सदस्य ए.एन.यू. पुस्तकालय, संरक्षक अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा, संरक्षक त्रिय महासभा रतनपुर, राष्ट्रीय अध्यक्ष, महाराणा प्रताप अकादमी।



बृजेश सिंह

जन्म : 7 अक्टूबर, 1958

शिक्षा : बी.टेक. (सिविल इंजीनियरिंग), डी.सी.ई. (ऑनर्स), महर्षि महेशयोगी वि.वि. से स्थापत्यवेद (वास्तुशास्त्र)।

प्रकाशित ग्रंथ : 1. नागा बाबा कमौली वाले का जीवन-दर्शन (शोध/समीक्षा ग्रंथ), 2. खिल-खिल जाता मन का उजास (काव्य-संग्रह), 3. महान महाराणा (समीक्षा/संदर्भ ग्रंथ), 4. भजनामृत (भजन-संग्रह), 5. सरस्वती-शतकम् (संस्कृत गीतिकाव्य), 6. महाराणा का प्रताप (समीक्षा/ संदर्भ ग्रंथ), 7. मुक्ताहार (मुक्तक-संग्रह), 8. निष्कर्ष (गजल-संग्रह), 9. मेवाड़ र्शन ओर स्वातंत्र्यचेता महाराणा, 10. मुक्तक मणि (मुक्तक-संग्रह)।

देय पर शोध : 'महागज़ल समाधान में अभिव्यक्त चेतना - इंद्रनाथ सिंह', 'डॉ. बृजेश सिंह व्यक्तित्व और स्रस्टा - ॉ. वनिता खरे' उजागर हुआ है।

ाहित्यिक अवदान पर शोध-ग्रंथ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर दो ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं—1. डॉ. बृजेश सिंह की रचना- र्मिता - डॉ. इंद्रबहादुर सिंह, 2. डॉ. बृजेश सिह के साहित्य में अध्यात्म, धर्म, दर्शन और संस्कृति - महेशकुमारशर्मा।

नेबंध/शोध आलेख : शताधिक निबंधों/शोध आलेखों का प्रणयन जिनका विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं व संकलनों समय-समय पर प्रकाशन व आकाशवाणी-दूरदर्शन से प्रसारण। दो दर्जन से अधिक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय शोध गोष्ठियों में शोध आलेखों की प्रस्तुति।

द-प्रतिष्ठा व सामाजिक उत्तरदायित्व : विकास संस्कृति साहित्य परिषद् व विकास संस्कृति पर्यावरण परिषद्, विकास स्कृति अभियंता परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष पद पर पदासीन। 'विकास संस्कृति' राष्ट्रीय साहित्यिक पत्रिका के प्रधान लाहाकार। साथ ही विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक संस्थानों के प्रमुख के रूप में पदासीन।

शेष : 1. 7000 शेरों की विश्व की सबसे बड़ी 'समाधान' संज्ञक गजल-संग्रह के रचयिता। 2. 2000 मुक्तकों व 500 गजलों के लेखक, 3. 'आहुति' महाकाव्य के प्रणेता, 4. महाराणा प्रताप साहित्य व स्वतंत्रता संग्राम इतिहास के शेपज्ञ लेखक, 5. संस्कृत गीतिकव्य सरस्वती शतकम् का प्रणयन। शताधिक प्रतिष्ठापूर्ण साहित्यिक सामाजिक म्मानों से सम्मानित।

पादन : महाराणा प्रताप (समीक्षा/शोध/संदर्भ ग्रंथ), बिलासपुर अंचल के प्रतिनिधि कवि पीठ महोत्सव (शोध कार्य), तक (वार्षिक शोध पत्रिका)।

ा : एल-3, 428, विकास संस्कृति मार्ग, विद्यानगर बिलासपुर (छ.ग.)।

बाइल : 09300310578